पृथ्वीराज रासउ

पाठालोचन इतिहास, तथा साहित्यालोचन संबंधी भूमिका,
निर्धारित पाठ, पाठान्तर, अर्थ और टिप्पणियों से युक्त

संपादक
डॉ० माताप्रसाद गुप्त, एम. ए., डी. लिट्.
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय

प्रकाशक
साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

पृथ्वीराज रासउ

पाठालोचन इतिहास, तथा साहित्यालोचन संबंधी भूमिका,
निर्धारित पाठ, पाठान्तर, अर्थ और टिप्पणियों से युक्त

संपादक
डॉ० माताप्रसाद गुप्त, एम. ए., डी. लिट्.
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय

प्रकाशक
साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

प्रथमबार

सं० २०२० वि०

इस संस्करण का कोई अंश किसी अन्य पुस्तक मे सम्पादक की
अनुमति के बिना कृपया न छापा जाए ।

पृष्ठ: ५९७

मूल्य ६०-००

श्रीसुमित्रानन्दन गुप्त द्वारा
साहित्य मुद्रण, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित,
और
साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) से प्रकाशित ।

देश और आदर्शों के लिए मर-मिटने वाले

भारतीय इतिहास के अद्वितीय वीर

पृथ्वीराज

की अमर कीर्त्तिगाथा

और

पुरानी हिन्दी का एक सब से उज्ज्वल रत्न

पृथ्वीराज रासउ

अपने प्रस्तुत वैज्ञानिक संस्करण के रूप में

नव भारत के निर्माता

और

उसके सर्वोच्च आदर्शों के प्रतीक

माननीय पं० जवाहरलालजी नेहरू

को

समस्त श्रद्धा के साथ समर्पित है

—माताप्रसाद गुप्त

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना

१६५२ की बात है। पंजाब यूनीवर्सिटी में पी-एच० डी० के लिए 'पृथ्वीराज रासो की लघु वाचना' पर वहाँ के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष स्वर्गीय डॉ० बनारसीदास जैन की प्रेरणा से और उनके निर्देशन में उनके एक शोध-छात्र श्री वेणीप्रसाद शर्मा ने पी-एच० डी० के लिए कार्य करना प्रारंभ किया। किन्तु अकस्मात् १६५४ के अप्रैल में डॉ० जैन का देहावसान हो गया। तदनन्तर पंजाब यूनीवर्सिटी ने मुझसे अनुरोध किया कि श्री शर्मा का निर्देशन मैं करूँ। स्वर्गीय डॉ० जैन मुझ पर बड़ा स्नेह रखते थे अतः मैंने उसके लिए स्वीकृति भेज दी। लघु वाचना की प्रतियाँ बीकानेर में प्राप्त थीं। उन्हें मँगाकर श्री शर्मा ने काम आरंभ कर दिया। उस समय रचना की दो और वाचनाएँ प्राप्त हो चुकी थीं जो उस वाचना से भी छोटी थीं जिस पर श्री शर्मा कार्य कर रहे थे, और इन सब के पूर्व रचना की मध्य और बृहत् वाचनाओं के कई छोटे-बड़े रूप प्राप्त हो चुके थे। इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि लघु वाचना के पाठ-निर्णय मात्र से समस्या का हल नहीं होगा, रचना का प्रामाणिक पाठ उसकी समस्त वाचनाओं की सहायता से ही निर्धारित हो सकेगा। किन्तु यह कार्य श्री शर्मा के न बस का ही था और न उनके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आता था, इसलिए मैंने स्वयं इस पर कार्य करने का संकल्प किया। यह संकल्प निरन्तर लगे रहने पर पाँच वर्षों में पूरा हुआ। गत चार वर्षों से रचना प्रेस में रही है, और अब वह पाठकों के सम्मुख आ रही है, यह देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। श्री शर्मा का कार्य १६५७–५८ में पूरा हो गया था, और पंजाब यूनीवर्सिटी से उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि उक्त कार्य पर प्राप्त हो गई थी। अब उनका कार्य विश्वभारती प्रकाशन, चण्डीगढ़ से प्रकाशित भी हो गया है, यह समस्त रासो-प्रेमियों के लिए हर्ष का विषय होगा।

'पृथ्वीराज रासो' के सम्पादन की समस्याएँ अत्यन्त जटिल थीं। पाठालोचन के मेरे दीर्घकालीन अनुभव में हिन्दी की एक भी रचना ऐसी नहीं आई है जिसका पाठ-निर्धारण इतना उलझा हुआ हो। किंतु मुझे उसके इसी उलझाव ने एक ऐसी नई दृष्टि प्रदान की है जो मुझे पाठालोचन के अपने शेष समस्त कार्य से भी नहीं प्राप्त हो सकी थी। इसलिए मुझे इस कार्य के सम्पन्न होने से और अधिक प्रसन्नता है।

इस महान् यज्ञ में सबसे बड़ा सहयोग मुझे प्रति-दाताओं से प्राप्त हुआ है, और उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं। मैं डॉ० नामवर सिंह तथा मुनि जिनविजय जी का कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे लघुतम वाचना की सामग्री प्राप्त हुई; मैं उपर्युक्त डॉ० वेणीप्रसाद शर्मा और श्री अगरचन्द नाहटा का कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे लघु वाचना की प्रति[illegible]याँ प्राप्त हुईं; मैं प्रयाग के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों का कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे मध्य वा[illegible] की प्रतिलिपि प्राप्त हुई; और मैं भाण्डारकर ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, पूना, रॉयल एशियाटिक सोसा[illegible]म्बई, नेशनल गैलेरी आव् मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली तथा इलाहाबाद यूनीवर्सिटी लाइब्रेरी के अधिका[illegible]ा कृतज्ञ हूँ, जिनसे मुझे रचना की बृहत् वाचना की सामग्री प्राप्त हुई। इन महानुभावों और सं[illegible] सहयोग के अभाव में यह यज्ञ किसी प्रकार भी पूरा नहीं हो सकता था।

इस संस्करण की एक पाण्डुलिपि तयार करने मे पाठालोचन विषय के इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के मेरे तीन पूर्ववर्ती छात्रों श्री कन्हैया सिंह, श्री हरिशंकर शर्मा, और श्री रामपाल उपाध्याय से मुझे सहायता प्राप्त हुई, इसलिए मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ।

प्रकाशकों ने रचना को अपनी विवशताओं के कारण कुछ विलंब से मुद्रित और प्रकाशित करते हुए भी छपाई की दृष्टि से ऐसी दुर्गम और दुरूह कृति को अधिक से अधिक शुद्ध रूप में प्रकाशित करने का प्रयास किया है, इसलिए वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। फिर भी, पाठकों को कुछ न कुछ अशुद्धियाँ मिलेंगी, अतः संस्करण के अन्त में एक शुद्धि-पत्र दिया जा रहा है, जिसके अनुसार वे यथास्थान अपनी प्रतियों में संशोधन करने का कष्ट करेंगे।

किन्तु सबसे अधिक मैं कृतज्ञ हूँ स्वतन्त्र भारत के निर्माता माननीय पं० जवाहरलाल जी नेहरू के प्रति, जिन्होंने हिन्दी के आदिकाल के इस सर्व-श्रेष्ठ काव्य-पुष्प की मेरी भेंट को ग्रहण करना स्वीकार किया। उनकी इस स्नेहपूर्ण कृपा के लिए मैं आजीवन आभारी रहूँगा।

दो-एक बातें और। भूमिका मे रचना का नाम 'पृथ्वीराज रासो' मिलेगा और रचना में 'पृथ्वीराज रासउ'। रचना का नाम कृति के केवल अंतिम छन्द में आया है और वहाँ पर लघुतम वाचना की दो प्रतियों में पाठ क्रमशः 'रासु' और 'रासउ' है, तथा शेष प्रतियों में 'रासौ' है। 'रासु' जिस प्रति में है, उसमें उ की मात्रा का प्रयोग—जैसा आप भूमिका में देखेंगे—अउ, ओ, और औ के लिए भी हुआ है। लघुतम वाचना भी दूसरी प्रति में पाठ 'रासउ' है, इसलिए उक्त 'रासु' के 'रासउ' होने की ही संभावना सबसे अधिक है। भूमिका में कृति के नाम में 'रासो' का प्रयोग केवल इसके अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित होने के कारण किया गया है। शेष ग्रंथ में वह सर्वत्र 'रासउ' है। पाठक कृपया 'रासो' को भी 'रासउ' ही पढ़ेंगे।

रचना बारह सर्गों में विभाजित मिलेगी। सर्ग-विभाजन का आधार मैंने यथास्थान भूमिका में स्पष्ट कर दिया है। किन्तु सर्गों का नामकरण मेरा किया हुआ है, और इसलिए कल्पित कहा जा सकता है। लघुतम वाचना में न सर्गों का विभाजन है और न उनका नामकरण। शेष वाचनाओं में उनके जो नाम मिलते हैं उनमें परस्पर साम्य बहुत कम है, और विषय-वस्तु को देखते हुए वे प्रायः अनुपयुक्त भी हैं, इसलिए इन नए नामों की कल्पना करनी पड़ी है। भविष्य में यदि संभव हुआ तो कुछ अधिक ठोस आधारों पर सर्गों का नामकरण किया जा सकेगा।

हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
११.५.६३ ई०

माताप्रसाद गुप्त

भूमिका

१. पृथ्वीराज रासो
की
प्रयुक्त प्रतियाँ और उनका पाठ

'पृथ्वीराज रासो' की प्राप्त प्रतियों की संख्या सौ से ऊपर है। इनकी एक अच्छी सूची डॉ० मोतीलाल मेनारिया के 'राजस्थानी पिंगल साहित्य' में दी हुई है।[1] उस सूची में ६० के लगभग प्रतियों के प्राप्ति-स्थान दिए हुए हैं। इनके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के वार्षिक और त्रैवार्षिक हिन्दी हस्त लिखित पुस्तकों के खोज-विवरणों, 'राजस्थान में हिन्दी हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' के विभिन्न भागों तथा विभिन्न पुस्तकालयों और व्यक्तियों के संग्रहों से जिन प्रतियों की सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनकी संख्या भी ४०-४५ से कम नहीं है। किन्तु ये अलग-अलग आकार-प्रकार में उन प्रतियों में से किसी न किसी प्रति से मिलती-जुलती हैं जिनका उपयोग इस संस्करण के प्रस्तुत करने में किया गया है, और ये प्रयुक्त प्रतियाँ अपने आकार-प्रकार की प्रतियों में अनेक दृष्टियों से प्रायः सबसे अधिक महत्व की भी हैं, इसलिए नीचे इन्हीं का विवरण दिया जा रहा है।

(१) धा० : यह प्रति धारणोज, ताल्लुका पाटन, गुजरात में बारोट वीराजी पंथूजी के पास बताई जाती है। मैंने १९५२ के अन्त में उन्हें पत्र लिखा था, तो उन्होंने लिखा था कि उनके पास एक बहुत पुरानी पुस्तक है जो संस्कृत में लिखी हुई है, और जिसे वे पढ़ नहीं पाते हैं किंतु उनके स्वर्गीय पिता पंथूवजा जी कहा करते थे कि वह पोथी 'पृथ्वीराज रासो' की है। उन्होंने मुझे पुस्तक दिखाने के लिए तत्परता भी प्रकट की, किन्तु जो समय उन्होंने दिया था वह मुझे अनुकूल नहीं पड़ रहा था, और उनके पत्र से यह भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो रहा था कि जिस पोथी के बारे में उन्होंने लिखा था वह 'पृथ्वीराज रासो' की ही थी, इसलिए मैंने उन्हें लिखा कि यदि वे कुछ दिनों के लिए वह पोथी प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को भेज सकें तो अच्छा हो। इसका उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। इसके बाद भी मैंने उन्हें तीन पत्र डाले, और स्पष्ट लिखा कि यदि वे उसे विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को न भेज सकते हों, तो मैं स्वतः वहाँ पहुंच कर उसे देखूँ, किन्तु फिर भी किसी पत्र का उत्तर उनसे न मिला। एक अनिश्चित वस्तु के लिए गुजरात की यात्रा और वह भी उसके एक देहात की, व्यावहारिक न समझ पड़ी; अतः मूल प्रति का उपयोग मैं नहीं ही कर सका। गुजरात के विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्यापन हो रहा है। वहाँ के विश्वविद्यालय, उनके कोई उत्साही अध्यापक या अन्वेषण-छात्र इस प्रति की फोटोग्राफ प्राप्त कर सकें तो वह बहुत उपयोगी होगा।

इस प्रति का पता कई वर्ष हुए प्रसिद्ध प्राचीन प्रतियों के संग्रहकर्त्ता मुनि पुण्य विजय जी को लगा था। उन्होंने उसी समय इसकी एक प्रतिलिपि करा ली थी। उनसे यह प्रतिलिपि श्रीअगरचन्द नाहटा ने ले ली थी। मूल प्रति के न मिलने पर मैंने मुनिजी को लिखा कि वे इस कार्य के लिए मुझे

[1] मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी पिंगल साहित्य, पृ० ४४।

कुछ समय के लिए उक्त प्रतिलिपि भिजवा दें, और मुनि जी ने नाहटाजी को इसलिए लिखा भी, किन्तु नाहटाजी ने सूचित किया कि उक्त प्रतिलिपि श्री नरोत्तमदास स्वामी के पास थी, और गुम हो गई; उसकी एक प्रतिलिपि स्वामीजी के पास अवश्य थी, जो उन्हीं की की हुई थी। किन्तु स्वामी जी ग्रंथ के 'लघुतम रूपान्तर' का संपादन कर रहे थे, इसलिए वे उसे देने में असमर्थ रहे।

कुछ समय पीछे मुझे यह ज्ञात हुआ कि स्वामी जी के द्वारा की हुई प्रतिलिपि की भी एक प्रतिलिपि डॉ० नामवरसिंह ने अपने 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक खोज-प्रबंध के लिए की थी। मेरे अनुरोध पर इस कार्य के लिए उन्होंने उसे कृपापूर्वक मुझे दे दिया, जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। सं० १६६७ की लिखी प्रति की तीसरी पीढ़ी की यह आधुनिक प्रतिलिपि ही उक्त प्रति और उसकी प्रथम और द्वितीय प्रतिलिपियों के अभाव में उपयोग में आ सकी है।

मुनिजी के द्वारा कराई गई प्रतिलिपि और उसकी अपनी प्रतिलिपि का परिचय देते हुए श्री नरोत्तमदास स्वामी ने लिखा है, "प्रतिलिपिकार ने बड़ी सावधानी से प्रतिलिपि तैयार की थी, पर 'रासो' की भाषा और भाषा शैली से परिचित न होने के कारण अनेक अशुद्धियाँ रह गयीं। मूल प्रति का पाठ भी संभवतः शुद्ध नहीं था, ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी प्रति बड़ी महत्वपूर्ण थी। इस प्रतिलिपि पर से मैंने एक संशोधित प्रतिलिपि बहुत वर्षों पूर्व तैयार की थी। संशोधन प्रधानतया शब्दों की वर्तनी (Spelling) से ही सम्बन्ध रखने वाले थे जो छन्दानुरोध के कारण किए गए थे।"[1] इससे यह प्रकट है कि स्वामी जी के द्वारा की हुई प्रतिलिपि 'संशोधित प्रतिलिपि' थी और संशोधन 'प्रधानतया' शब्दों की वर्तनी के सम्बन्ध के किए गए थे। किन्तु स्वामी जी प्राचीन हिन्दी और राजस्थानी साहित्य के मान्य विद्वान हैं, इसलिए वे संशोधन पर्याप्त सावधानी से किए गए होंगे, यह हमें मान लेना चाहिए।

डॉ० नामवरसिंह के द्वारा की हुई इस प्रति-प्रतिलिपि की प्रतिलिपि अवश्य ही सावधानी से ही हुई है—उन्हें 'रासो' की भाषा पर कार्य करना था। किन्तु ऐसा लगता है कि उक्त आदर्श के कुछ उल्लेख, जो पाठ-निर्धारण की दृष्टि से महत्व के थे, उनके कार्य की दृष्टि से महत्व के न होने के कारण अथवा अनजाने ही छूट गए। संयोग से मुझे स्वामी जी की प्रतिलिपि भारतीय हिन्दी परिषद् के जयपुर अधिवेशन के अवसर पर १९५४ के दिसम्बर में हस्त लिखित ग्रन्थों की प्रदर्शिनी में उलट पुलट कर देखने को मिल गई थी। उस समय मैंने अपनी दृष्टि से उसकी एकाध महत्व की बातें लिख भी ली थीं। उन बातों के सम्बन्ध में डॉ० नामवरसिंह की प्रतिलिपि का मिलान करने पर एक-दो स्थलों पर अन्तर दिखाई पड़ा। स्वामी जी की प्रतिलिपि में निम्नलिखित दो दोहों के बीच में "तथा अउर पाठान्तर" शब्दावली मुझे मिली थी, जो डॉ० नामवर सिंह की उस प्रतिलिपि में नहीं मिली :—

सुनि वर सुन्दर उभय हुव स्वेद कंप सुर भंग।
मनु कमलिनि कल सम हरि अस्रित करने तंन रंग॥
सुनि रव प्रिय प्रिथिराज कउ उभय रोम तिन अंग।
सेद कंप सुर भंग भयउ सपत भाइ तिहि अंग॥[2]

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि में बाद वाला दोहा चौकोर कोष्ठकों के अन्तर्गत रक्खा हुआ है और उसकी क्रम-संख्या भी नहीं दी हुई है, किन्तु पाठालोचक के लिए 'तथा अउर पाठांतर' की शब्दावली स्वतन्त्र महत्व की थी, जो प्रतिलिपि में छोड़ दी गई है। इसी प्रकार स्वामी जी की प्रतिलिपि में निम्नलिखित उल्लेख पुष्पिका के रूप में मिलते हैं :—

[1] 'राजस्थान भारती', अप्रैल १९५४, 'पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर', पृ० ३।
[2] नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, ६१. २२५१।

" इति श्री कवि भट्ट चंदवरदायी कृत राजा श्री प्रिथीराज चहूआण रासउ रसाल संपूर्ण । सं० १६६७ वर्षे शाके १५३२ प्रवर्तमाने आषाढ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ महाराजाधिराज महाराजा श्री कल्याण मल्ल जी तत्पुत्र राजा श्री भाव जी तत्पुत्र राजा श्री भगवानदास जी पाठनार्थं ।

यह रासो की बुक धारणोजग्राम निवासी बारोट पशुवजा की है । और वह धारणोज निवासी सेठ किशोरदास हेमचंद शाह के द्वारा कॉपी करने को प्राप्त हुई है ।"

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि में केवल प्रथम वाक्य आता है, शेष नहीं ।

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि के साथ एक और कठिनाई हुई—कन्नौज-प्रयाण तथा कन्नौज-युद्ध सम्बन्धी उसका सम्पूर्ण अंश मुद्रित रूप में ही मुझे प्राप्त हो सका, क्योंकि उस अंश की प्रतिलिपि प्रेस कापी के रूप में प्रेस चली गई थी और अप्राप्त हो गई थी । स्वाभाविक है कि इस मुद्रित अंश में मुद्रण-जनित कुछ पाठ-विकृतियाँ भी आ गई होंगी । किन्तु इन त्रुटियों के होते हुए भी चूँकि डॉ० सिंह ने अपनी ओर से पाठ-संशोधन का कोई प्रयास नहीं किया था इसलिए यह प्रतिलिपि उतनी ही विश्वसनीय थी जितनी सामान्यतः कोई भी हस्तलिखित प्रतिकृति हो सकती थी, इसलिए मूल प्रति तथा उसकी प्रथम और द्वितीय प्रतिलिपियों के अभाव में इसका उपयोग बिना किसी हिचक के किया जा सका है ।

इस प्रति के पाठ की विशेषता यह है कि रचना के प्राप्त समस्त पाठों में यह सब से छोटा है, यद्यपि पूर्ण है । इसमें न खण्ड-विभाजन है और न छन्दों की क्रम-संख्या दी हुई है—कहीं-कहीं वार्त्ताओं के रूप में वर्णित कथा की सूचना मात्र दे दी गई है । गिनने पर कुल रूपक[1]-संख्या ४२२ ठहरती है । ति भी पूर्ण है, यह प्रसन्नता की बात है । इसकी पुष्पिका ऊपर दी ही जा चुकी है ।

(२) मो० : यह प्रति प्रसिद्ध जैन विद्वान् मुनि जिनविजय के संग्रह की है । यह 'रासो' के सबसे छोटे पाठ की एक मात्र अन्य प्राप्त प्रति है, और उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी धा० है । इस प्रति के लिए मुनि जी को जब मैंने लिखा, वह श्री अगरचन्द नाहटा के पास थी । कदाचित् प्रति की जीर्णता के ध्यान से नाहटा जी ने मूल प्रति न भेजकर उसकी एक फोटो-स्टैट कापी मुझे भेज दी । इस बहुमूल्य प्रति के उपयोग के लिए मैं मुनि जी का अत्यन्त आभारी हूँ । प्रस्तुत कार्य के लिए इसी फोटो-स्टैट कापी का उपयोग किया गया है । मूल प्रति मैंने १९५६ के जून में डा० दशरथ शर्मा के पास दिल्ली में देखी थी । फोटो-स्टैट होने के कारण यह कॉपी प्रति की एक वास्तविक प्रतिकृति है ।

इस प्रति के प्रारम्भ के दो पन्ने नहीं हैं, शेष सभी हैं । इसमें भी खण्ड-विभाजन और छन्दों की क्रम-संख्या नहीं है । इसमें वार्त्ताओं के रूप में इस प्रकार के संकेत भी प्रायः नहीं दिए हुए हैं जैसे धा० में हैं । प्रारम्भ के दो पन्ने न होने के कारण इसकी निश्चित छन्द संख्या कितनी थी, यह नहीं कहा जा सकता है, किन्तु इन त्रुटित दो पत्रों में से प्रथम पृष्ठ रचना के नाम का रहा होगा, जैसा अनिवार्य रूप से मिलता है, और शेष तीन पृष्ठ ही रचना के पाठ के रहे होंगे । तीसरे पत्रे के प्रारम्भ में जो छन्द आता है वह धा० १७ है, जिसका कुछ अंश पूर्ववर्तीय द्वितीय पत्र पर रहा होगा और धा० की तुलना में इसमें २०–३१ प्रतिशत रूपक अधिक हैं, इसलिए धा० के १६ रूपकों के स्थान पर इसके प्रथम दो पत्रों में २०–२१ रूपक रहे होने चाहिए । फलतः इन निकले हुए दो पत्रों में २० छन्द मान लेने पर प्रति की कुल रूपक संख्या ५५२ ठहरती है । यह प्रति अत्यन्त सुलिखित है और उपर्युक्त दो पत्रों के अतिरिक्त पूर्णतः सुरक्षित भी है । इसका आकार ६·२५"×३" और इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

[1] ना० प्र० स० संस्करण में प्रारम्भ में रूपक और छन्द-संख्या दोनों दी गई हैं, किन्तु पीछे केवल छन्द-संख्या दी गई है । छन्द-संख्या छन्द के एक वृत्त में जितने चरण होने चाहिए, उसके आधार पर दी जाती है; किन्तु कुछ छन्द मालाओं के रूप में भी चलते हैं, यथा भुजंगी, पद्धडी आदि । ऐसे छन्दों के सम्बन्ध में पूरी माला की गणना एक रूपक के रूप में की जाती है । पुरानी प्रतियों में सामान्यतः रूपक-गणना ही मिलती है ।

"इति श्री कविचन्द विरचिते प्रथीराज रासु संपूर्ण। पंडित श्री दान कुशल गणि। गणि श्री राजकुशल। गणि श्री देव कुशल। गणि धर्म कुशल। मुनि भाव कुशल लषितं। मुनि उदय कुशल। मुनि मान कुशल। सं० १६९७ वर्षे पौष सुदि अष्टम्यां तिथौ गुरु वासरे मोहनपुरे।"

यह एक काफ़ी सुरक्षित पाठ-परम्परा की प्रति लगती है, क्योंकि इसमें पाठ-त्रुटियाँ बहुत कम हैं, और अनेक स्थलों पर एक मात्र इसी में ऐसा पाठ मिलता है जो बहिरंग और अंतरंग सभी सम्भावनाओं की दृष्टि से मान्य हो सकता है। फिर भी श्री नरोत्तमदास स्वामी ने कहा है कि इसका "पाठ बहुत ही अशुद्ध और भ्रष्ट है।"[1] उन्होंने यह धारणा इस प्रति के सम्बन्ध में कैसे बनाई है, यह उन्होंने नहीं लिखा है। किन्तु इस प्रकार की धारणा के दो कारण संभव प्रतीत होते हैं, एक तो यह कि इसमें वर्त्तनी-विषयक कुछ ऐसी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जिनके कारण शब्दावली और भाषा का रूप विकृत हुआ लगता है, दूसरे यह कि इसका पाठ अनेक स्थलों पर अपनी सुरक्षित प्राचीनता के कारण दुर्बोध हो गया है, और उन स्थलों पर अन्य प्रतियों में बाद का प्रक्षिप्त किन्तु सुबोध पाठ मिलता है। कहीं कहीं पर ये दोनों कारण एक साथ इकट्ठा होकर पाठक को और भी अधिक उलझा देते हैं।

वर्त्तनी सम्बन्धी इसकी सबसे अधिक उलझन में डालने वाली प्रवृत्तियाँ आवश्यक उदाहरणों के साथ निम्नलिखित हैं:—

[१] इसमें 'इ' की मात्रा का अपना सामान्य प्रयोग तो है ही, 'अइ' के लिए भी उसका प्रयोग प्रायः हुआ है, यथाः

गुन तेज प्रताप ति वर्णि 'कहि'। दिन पंच अनंत न अंत लहइ। (मो० ९५.५१-५२)
ब्रह्म वेद नहि चवि अलप युधिष्ठिर 'बोलि'।
जु सायर (सायर) जल 'तजि' मेर मरजादह होलइ। (मो० २२४.३-४)
रहि गय उर ज्यैव उरह मि (=मइ) अवर न बुझइ।
मुअ न जीवइ कोइ मोहि परमषर 'सूझि'। (मो० ५४५.३-४)
किरणाटी रांणी 'कि' (=कइ) आवासि राजा विदा मांगन गयु। (मो० १२२ अ)
'पछि' (=पछइ) राजा परमारि आवासि विदामांगन गयु। (मो० १२३ अ)
'पछि' (=पछइ) राजा परमारि सुपुली विदा मांगन गयु। (मो० १२४ अ)
'पछि' (=पछइ) राजा वाघेली कै अवास विदा मांगन गयु। (मो० १२५ अ)

तुलना कीजिये:—

'पछइ' राजा कछवाही 'कइ' आवासि विदा मांगन गयु। (मो० १२६ अ)
मनु अकाल टडीअ सवन 'पवि' (=पवइ) छूटि प्रवाह। (मो० २३४.२)
तिन 'मि' (=मइ) दसि 'सि' (=सइ) अरि तुलन 'उप्पारि' (उप्पारइ) गज दंत। (मो० ४३८.२)
तिन 'मि' (=मइ) कवि गन पंच सिंहि (=सइहिं) साथ भाष दिठउ काज।
विन 'मि' (=मइ) दिवगति देवन समइ तिन महि पुहु प्रथीराज। (मो० ४३९)
जे कछू साध मन 'मि' (=मइ) भइ सब ईछा रस दीन्ह। (मो० ५१३.२)
'असमि' (=असमइ) सोइ मग्गु सुकवि नृपति 'विचारि' (=विचारइ) सब। (मो० ५२०.२)

इस प्रवृत्ति की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि कहीं कहीं 'इ' की मात्रा को 'अइ' के रूप में पढ़ा गया है:—

तम 'सरवगइ' (=सरवगि) सू केवि राज गुरु राज सम। (मो० ४०२.३)

[२] 'इ' की मात्रा का प्रयोग पुनः 'ऐ' के लिए भी हुआ मिलता है, यथाः ऊपर मो० १२२ अ, १२३ अ, १२४ अ, तथा १२५ अ के उद्धरणों में आए हुए 'कि' की तुलना कीजिए:—

[1] 'पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर', राजस्थान भारती, अप्रैल १९५४, पृ० ३।

पछइ राजा भटिआनी कै आवासि त्रिद्रा मंगिन गयु। (मो० १२७ अ)
भरी मोज 'भाजि' (=भाजइ) नही सारि भाति।
भरि मल मानै नही लोह लागै। (मो० १२७.१९-२०)
सुनि त पंग चहूआन कुं सुष जंपि इह 'विन' (=वैन)।
बोल सूर सामंत सब कहु एकठु सैन (=सेन)। (मो० २२९)
जल विम भट सुभट भो करि अपहि भुज 'विन' (=वैन)।
परमतत्व सूझि (=सूझइ) नृपति मगि मगि फरमांविन (<फरमानेन)। (मो० ५४७)
'ति' (=तै) राषु हिंदुआन गंज गोरी गाहंतु।
'तें' राषु जालोर चंपि चालुक चाहंतु।
'तै' राषु पगुर भीम भटी 'दि' (=दै) मथु।
'तै' राषु रणथंभ राय जाद्‌व 'सि' (=सइ) हिथु। (मो० २०८.१-४)
भये तोमर मतिहीन करीय किली 'ति' (=तै) ढिली। (मो० ३३.४)
'ति' (=तै) जीतु गजंनु गंजि अपार हमीरह।
'ति' (=त) जीतु चालुक विहरि संनाह सरीरह।
'ति' (=तै) पहुपंग सू गहु इतु जिम गहि सू रहइ।
'सि' (=तै) गोरीय दल दहु वारि कठ जिन वन दहइ।
तुव तुंग तेग तव उचमन ति (=तैं) तो पाशन मिलयु। (मो० ४२४.१-५)
भरे देव दांनव जिम 'विर' (वैर) चीतु। (मो० ४२४.४१)

इस प्रवृत्ति की पुष्टि भी इस प्रकार होती है कि कहीं-कहीं पर 'इ' की मात्रा को 'ऐ' के बदला गया है, यथा:—

बिहुजन 'वोळै' (=बोलि) दिन धरहु आज। (मो० ४०.५४)

[३] कहीं-कहीं 'इ' की मात्रा का प्रयोग 'अय' के लिए भी हुआ मिलता है, यथा:—

'किमास' (मो० ७३.४)
वही (मो० ७७.१)
वही (मो० ८२.२)
वही (मो० ९९.२)
वही (मो० १०१.२)
वही (मो० १०५.१)
वही (मो० १०८.३)
वही (मो० ११६.१)
वही (मो० १२१.१)
वही (मो० ५४८.२)

तुलना कीजिए:—

सा मंत्री 'कयमास' काम अंधा देवी विहडा गति। (मो० ७४.४)
हि (=इह) 'कयमास' कहुं कोइ जानहुं। (मो० ९८.४)

[४] 'इ' की मात्रा का प्रयोग 'ए' की मात्रा के लिए भी हुआ है, यथा:—

दुहु राय रषत ति रत 'उठि'।
बिहुरे जब पावस अभ उठे। (मो० ३१४.५-६)
मीयं देह छिवि विरषि ससाने।

जिते मोह सज्जा लगये 'आसमानि'।
शकुंने मरंने जनंने विहाने।
वजे दहुं दुंभिदे विशू 'मनि'। (

इस प्रवृत्ति की पुष्टि भी कहीं-कहीं 'इ' की मात्रा के 'ए' की मात्रा के रु
होती है, यथा :—

विनि गंडु नृप अर्धनिसा सम दासी 'सुरिआते' (सुरिआति)।
देव धरह जलु वन अनिल कहिग चंद कवि प्रात॥
पहिचानु जयचंद इहत ढिलीसुर पेषै।
नहिन चंद उलुहारि दुसह दारुण तब दिषै।
गहीय चंदु रह गजने जाहां सजन जु 'नरेंद'।
कबहूं नयन निरषहु मनहु रवि अरबिंद।

[५] 'इयइ' या 'इये' के स्थान पर प्रायः 'ईइ' लिखा गया है यथा :—

सोइ एको बान संभरि धनी बीउ बान नह 'संधीइ'।
घरिआर एक लग मोगरीअ एक बार नृप हुकीयै।
इम बोल रिहि कलि अंतरि देहि स्वामि 'पारथीइ' (=पारथियइ)।
अरि असीइ लष को अंगमि परणि राय 'सारथीइ' (=सारथियइ)।
मंगल वार हि मरन की ते पति सचि तन 'षंडीइ' (=षंडियइ)।
जेत चढि शुध कमधज सू मरन सच मुष 'मंडीइ' (=मंडियइ)।
छिनु इक दरहि 'विलंबीइ' (विलंबियइ) कवि न करि मनु मंदु।
सह सहाब हर 'दिषीइ' (=दिषियइ) सु कछू भूमि पर मिछ।
सीरताज साहि 'सोभीइ' (=सोभियइ) सुदेसि।
'सुनीइ' (=सुनियइ) पुन्य सम मझ राज।

[६] 'इयउ' के स्थान पर प्रायः 'ईउ' लिखा मिलता है :—

इम जंपि चंद 'विरदीउ' (विरदियउ) सु प्रथीराज उनिहारि एहि। (मो०
इम जंपि चंद विरदीउ (=विरदियउ) पट स कोस चहुआन गयु।
इम जंपि चंद 'विरदीउ' (=विरदियउ) दस कोस चहुआंन गउ।
जिम सेत वज 'साजीउ' (=साजियउ) पथ।

[७] 'उ' की मात्रा का प्रयोग प्रायः 'अउ' के लिए हुआ है, यथा :—

सव ही दास कर हथ सुवंय सुनायघूउ।
बानावलि वि दहु बांन रीस रिस 'दाहयु'।
मनहू नागपति पतिन अप 'जगाइयु'।
पायक धनू घर कोडि गनि असी सहस हयमंत जहु।
षंगुर किहि सामंत सुइ जु जीवत अहि प्रथीराज 'कुं'।
निकट सुनि सुरतांन बांम दिसि डच हथ 'सु' (सउ)
जस अवसर सतु सचि अछि लूटीय न करीय 'भू' (भउ)।
'सु' (= सउ) बरस राज तप अंत किन। (मो० २१ व
'सु' (= सउ) उपरि 'सु' (= सउ) सहस दीह अगनित लष दह
कन [उ] ज राडि पहिलि दिवसि 'शु' (= शउ) मिं सात निवड़िया।

[८] कभी-कभी 'उ' की मात्रा से 'ओ' की मात्रा का भी काम लिया गय

निशपक पंच बदीए होई 'धागु'।
आखेटक्कसंखे नृप आयो। (मो० ९२.३-४)

[९] और कभी-कभी 'उ' की मात्रा से 'ओ' की मात्रा का काम लिया गया है:—
कवि देषत कवि कु मन 'रत्तु'।
न्याय नयन कन [उ] जि पहुत्तो। (मो० १७६.१-२)

इसकी पुष्टि एकाध स्थान पर 'उ' के स्थान पर 'ओ' की मात्रा मिलने से भी होती है:—
प्रात राज संप्रापतिग जाहां दर देव 'अनोपं'।
सयन करि दरबार जिहि सात सहस अंस भूप ॥ (मो० २१४)

[१०] इसी प्रकार कहीं कहीं 'उ' वर्ण का प्रयोग 'ओ' के लिए हुआ मिलता है:—
तुलंत जू तुज तराजून्ह गोष।
मनु घन मझि तडितह 'उप'। (मो० १६१.२७-२८)
गंग जल जिमन धर हलि 'उजे'।
पंगरे राय राठुर फोजे। (मो० २८४.१५-१६)

प्रति की वर्त्तनी-सम्बन्धी ऐसी ही प्रवृत्तियों का यहाँ उल्लेख किया गया है जो हिंदी की प्रतियों में प्रायः नहीं मिलती है, और इसीलिए हिंदी पाठक को ऐसा लग सकता है कि ये प्रतिलिपिकार की अयोग्यता के कारण हैं। किन्तु ऐसा नहीं है। नारायणदास तथा रतनरंग रचित 'छिताईवार्ता' की भी एकप्रति में, जो इस प्रति के कुछ पूर्व की है, वर्त्तनी-सम्बन्धी ये सारी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, यद्यपि वे परिमाण में कम हैं;[१] पश्चिमी राजस्थानी तथा गुजराती की इस समय की प्रतियों में तो ये प्रवृत्तियाँ प्रचुरता से पाई जाती हैं।[२] फलतः वर्त्तनी-सम्बन्धी इन प्रवृत्तियों का परिहार करके ही प्रति के पाठ पर विचार करना उचित होगा। और इस प्रकार के परिहार के अनन्तर मो० का पाठ किसी भी प्रति से बुरा नहीं रहता है, वरन् वह प्रायः प्राचीनतर—और इसलिए कभी-कभी दुर्बोध भी—प्रमाणित होता है, यह सम्पादित पाठ और पाठांतरों पर दृष्टि डालने पर स्वतः स्पष्ट हो जायगा।

(३) अ० : अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में रचना की तीन महत्व की प्रतियाँ हैं, जिन पर पुस्तकालय की संख्याएँ ५९, ६० तथा ६२ पड़ी हुई हैं। तीनों प्रतियाँ एक ही पूर्वज आदर्श की है—क्योंकि अनेक स्थलों पर तीनों में समान अशुद्धियाँ हैं, और तीनों में छन्द-भेद के आधार पर छन्दों की क्रम-संख्या देने की पद्धति, छन्दों का क्रम तथा दो-चार अपवादों को छोड़ कर छन्द-संख्या भी वही है। अन्तर तीनों में यह है कि ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियों में त्रुटित स्थल बहुतायत से हैं, जब कि ६० संख्यक प्रति में त्रुटित स्थल इने-गिने हैं। इससे सामान्यतः यह समझा जाता है कि ६० संख्यक प्रति उक्त पूर्वज आदर्श की उस समय की हुई किसी प्रतिलिपि की परम्परा में आती है जब वह अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित थी और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ उसकी उस समय की हुई किसी प्रतिलिपि की परम्परा में आती हैं जब वह कीटभक्षण से अथवा अन्य किसी प्रकार से स्थान-स्थान पर कुछ कट-फट

[१] दे० 'छिताईवार्त्ता', सम्पा० माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९५८।

[२] दे० 'षष्टि शतक प्रकरण', सम्पा० भोगीलाल ज० सांडेसरा, बड़ोदा, १९५४,
'वसन्त विलास फागु', सम्पा० कान्तिलाल व्यास, बंबई, १९४२,
'औक्तिक प्रकरण' [प्राचीन गुजराती गद्य सन्दर्भ], सम्पा० मुनि जिन विजय, अहमदाबाद सं० १९८६,
'सम्यकत्व कथाओ' ,, ,, ,,
'जिन वल्लभसूरि गुरु गुण वर्णन' ,, ,, ,,
'कान्हड दे प्रबन्ध', सम्पा० कान्तिलाल व्यास, जयपुर, १९५३।

गया था।[1] तथ्य यह है कि ५९ तथा ६२ का सामान्य पूर्वज तथा ६० का पूर्वज लगभग एक ही समय उक्त पूर्वज आदर्श से उतारे गए और उस समय ही वह पूर्वज कीटादि के द्वारा क्षत-विक्षत था। किन्तु पूर्वज आदर्श की उक्त प्रतिलिपि तथा ६० संख्यक प्रति के बीच की किसी पीढ़ी में इन क्षत-विक्षत स्थलों पर त्रुटित पाठ को पूरा करने के लिए काफ़ी मात्रा में प्रक्षेप-क्रिया हुई, जिसके परिणाम-स्वरूप देखने में ६० संख्यक प्रति ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियों की तुलना में अवश्य अधिक त्रुटिहीन लगती है, किन्तु ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ प्रायः प्रक्षेपहीन हैं, जो निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जावेगा, इसीलिए इस शाखा के पाठ के पुनर्निर्माण की दृष्टि से ये ६० की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वासनीय और महत्वपूर्ण हैं:—

खण्ड १. मोती० ८(=स० २.३५५) इसके दूसरे तथा तीसरे चरणों का पाठ अन्य प्रतियों में है :—

कमोदनि कुंदह केतुकि बीक। कनैर कसौंदिय केवर कोह।

५९ में 'कमोदनि' से 'कनैर' तक की शब्दावली छूटी हुई है। प्रति ६० में चरण २ तथा ३ को मिला कर निम्नलिखित शब्दावली रख दी गई है :—

करिकै सब ग्वार्शिनि हुंडै फिरि एक परस्पर अप्पस कोह।

६२ यहाँ खण्डित है।

२. भुजंग (= स० १.५—१०) के पूर्व ५९ में निम्नलिखित शब्दावली और आती है—

लाल माली कवित्त।
जिनै उच्चरी शुद्धि गंगा पवित्तं।
गिरा शेष वाणी कवि काव्व वंदे।

अन्तिम छूटे हुए चरण के स्थान पर ६० में है:—

नाम चव्वाणनं चन्द छन्दे।

और ६२ में है:—

प्रस्पं ति वाणी भखी कव्वि चन्दे।

वास्तव में ये त्रुटित चरण पूरे रूपक के अन्तिम चार चरण हैं, जो इन प्रतियों में भी अन्यत्र प्रायः इसी प्रकार आते हैं:—

सतं दंडमाली सुलाली कवित्तं। जिन बुद्धि तारंग गंगा पवित्तं।
गिरा शेष वाणी कवि कव्वि वंदे। तिनै हि पुछि वचिष्ट कवि चंद छंदे।

ये चरण इन प्रतियों के पूर्वज आदर्श में किसी प्रकार से रूपक के प्रारम्भ में भी त्रुटित रूप में आ गये थे, और ५९ में उसी प्रकार उतरे रहे, किन्तु ६० तथा ६२ के बीच के किन्हीं पूर्वजों में मनमाने ढंग से ठीक कर लिए गए।

उपर्युक्त रूपक में ही अन्य प्रतियों में आने वाला अन्त का निम्नलिखित चरण ५९ तथा ६२ में नहीं है :—

जिनै सेत बंध्यौ सु भोज प्रबन्धं।

६० में इसकी अभावपूर्ति निम्नलिखित चरण द्वारा की गई है :—

अनेकं अगे अन्न हुए अनद्द।

उपर्युक्त रूपक में ही अन्य प्रतियों में आने वाला अन्त का निम्नलिखित चरण ५९ में नहीं है:—

गिरा शेष वाणी कवि कव्वि वंदे।

[1] श्री अगरचन्द नाहटा : 'पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ', राजस्थानी, भाग ३, अंक २, पृ० ३३।

६० में इसकी अभावपूर्त्ति निम्नलिखित चरण द्वारा की गई है :—

कवि पृम रच्यो ज अग्गे सु वंदे ।

६२ यहाँ पर खण्डित है।

२. उधोर ८ (=पृ० १८४१—५६) : इस छन्द के चरण २९—३० अन्य
लेखित हैं :—

चढि बनसपति सोहति दंति। मानहुं इंद्रधनु की पंति ।

५९ तथा ६२ में 'चढि बनसपति' मात्र शेष है, ६० में वह भी निकाल दिया गया है

३. दो० ५ (=स० ४५. २१७): इस दोहे का प्रथम चरण अन्य प्रतियों में है :—

घटि बढि केलि कलउज्जनी पेम ल दीरघ होत।

५९ तथा ६२ में 'केलि' के बाद की शब्दावली नहीं है, जब कि ६० में यह है :—

कलिंग अवर पेस कहु केन ।

३. कवि० ७ (=स० ४६.१११) का चतुर्थ चरण अन्य प्रतियों में है :—

छिति छितान घर धर्म कर्म हिय भरतिहि रोचन।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, और ६० में है :—

सूर वीर गम्भीर धीर क्षत्रिय मन रोचन।

४. कवि० २ (=स० १२.५४) का प्रथम चरण अन्य प्रतियों में है:—

आसोजै हांनिग शाव परबत वेहानै ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, जबकि ६० में है:—

होलासाह हमीर धीर कहि कहुं बषानै।

४. कवि० ७ (= स० १२.२६९) का अन्तिम चरण अन्य प्रतियों में है:—

बेदुलह धाइ बध्धाइयां बोल ऊंचा ऊंचा भरी।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, जबकि ६० में है:—

जो चढत दुलहं बढ्यौ सुबक धरा धुंधु मिलि घरहर्‌यौ।

४.कवि० ९ (स० १३.३५) के अन्तिम दो चरणों का पाठ अन्य प्रतियों में है:—

उत्तंग ढाक की बेरषह को हंके अछारहां ।

निसि जाम तीनि विप्पेपत्तिय पंजू राग सुढारहां।

५९ तथा ६२ में 'वैरषह' तथा 'पंजू' के बीच की शब्दावली नहीं है, जबकि ६० में
गढ़कर अभावपूर्ति निम्नलिखित प्रकार से की गई है:—

उत्तंग ढाल की बेरषह पंजू राग सुढारहां।

गय थट्ट हया हेषारवां चलियारह हजारहां।

५. नारा० १ (= स० १२.२२८) का अन्तिम चरण अन्य प्रतियों में है:—

चरित्त चारु चालुकं नरिंद को नरथ्थती।

५९ तथा ६२ में यह छूटा हुआ है, ६० में इसके स्थान पर है:—

गजस्थर्ट हयस्थर्ट नरस्थर्ट नरप्पति ।

५. दो० ११ (= स० १२.१५५) के दूसरे चरण का पाठ अन्य प्रतियों में है:—

बीरंदाइ बसीठियां द्वे हिंदू सुलतान।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है और ६० में इसका पाठ है:—

घर धक्यौ लीनी धरा जित्यौ भीम पर्‌यांन ।

६. पद्ध० २ (= स० ४८.४९-६१) के चरण ७-१० का पाठ अन्यों में है:—

मुक्कले बूत तब लिहि रिसाइ। असमथ्थ सेव किम भूमि पाइ।
बंधौ समेत सामन्त सथ्थ। उत्तरे आनि दरबार तथ्थ।

५९ तथा ६२ में 'असमथ्थ' के बाद 'सथ्थ' तक की शब्दावली छूटी है। किन्तु ६० में इन चरणों के स्थान पर दो चरण निम्नलिखित कर लिये गए हैं:—

मुक्कले बूत तब लिहि समथ्थ। रिसाइ उत्तरे अग्गि दरबार तथ्थ।

१०. कवि० ५ (=स० ६१.१५२३) का चरण ३ अन्य प्रतियों में है:—

पर्‌यो चंद पुंडीर चंद पिथ्यौ मारंतौ।

५९ तथा ६२ में प्रथम 'चंद' के बाद दूसरे 'चंद' तक के शब्द छूटे हुए हैं, ६० में इनके स्थान पर 'पुन्नपामार' शब्द रख दिये गए हैं।

११. कवि० ९ (=स० ६१.१८३१) के चरण १ और २ का पाठ अन्यों में है:—

हय हय हय आयास केलि सज्जी सुब्योम सिर।
किल किलंत कामक्कि डक्क बज्जी सुहंस हर।

५९ तथा ६२ में 'सज्जी' के बाद 'बज्जी' तक की शब्दावली छूटी हुई है। ६० में दोनों चरणों का पाठ इस प्रकार है:—

हय हय हय आयास केलि सज्जिय सुहंस हरि।
कहुं गघरिग कहुं परिग अरिग थरहरिग सुहड भर।

१२. कवि० ३ (=स० ६१.२१६४) के चरण २ और ३ अन्यों में हैं:—

हय तुम दुस्सह मिलन स्वामि हुज्जै सुभथ घर।
हौं रविमंडल भेदि जीव लगि सत्त न छंडौं।

५९ तथा ६२ में 'मिलन' के 'मिल' के बाद 'लगि' के 'ल' तक का अंश छूटा हुआ है, ६० में दोनों चरण इस प्रकार कर दिए गए हैं:—

हम तुम दुसह मिलगि सत्त न छंड्यौ सबर।
इमह वंस भज्जिग नरेस करि षंड विहंड्यौ।

ये उदाहरण भी ग्रंथ के पूर्वार्द्ध मात्र से हैं, उत्तरार्द्ध में ६० में इस प्रकार के प्रक्षेप और भी अधिक हैं; ५९ तथा ६२ उत्तरार्द्ध में भी वैसे ही हैं, जैसे ऊपर पूर्वार्द्ध में मिले हैं। प्रकट है कि ६० अपनी शाखा के पाठ की वास्तविक प्रतिनिधि नहीं रह गई है, ५९ तथा ६२ ही में उसकी प्रतिनिधि होने की योग्यता है। पुनः ५९ और ६२ में से, जैसा हमने ऊपर देखा है, ६२ की अपेक्षा ५९ कम प्रक्षिप्त है। वह कुछ कम खण्डित भी है—केवल प्रारम्भ के ३½ रूपक इसमें नहीं हैं, जबकि ६२ में प्रारम्भ के १७ रूपक नहीं हैं। इसलिए अ० के पाठ के लिए ५९ संख्यक प्रति का ही उपयोग किया गया है, केवल प्रारम्भ के उस अंश के लिए जो ५९ संख्यक प्रति में खण्डित है, ६० संख्यक प्रति का उपयोग किया गया है। इस शाखा के पाठ में कुल १९ खण्ड हैं, और कुल रूपक-संख्या १११० के लगभग है।

अ० परिवार की ये प्रतियाँ मुझे लुधियाना के श्री वेणीप्रसाद शर्मा के द्वारा प्राप्त हुई थीं, जिन्होंने इन्हें इस शाखा के पाठ संपादन के लिए प्राप्त किया था। इस कृपा के लिए मैं उनका आभारी हूँ।

५९ सस्यक प्रति सुलिखित है। इसका आकार १०'५"×६'२५" है। इनमें प्रतिलिपि-तिथि नहीं दी हुई है। अन्त में निम्नलिखित दोहा अवश्य आता है जो ६० तथा ६२ में नहीं है:—

महाराज नृप सूर सुव कुरमचंद उदार।
रासौ पृथीयराज कौ राख्यौ लगि संसार॥

किन्तु यह दोहा पुष्पिका का नहीं लगता है, बल्कि निम्नलिखित पूर्ववर्ती छन्द पर आधारित उसका विस्तार मात्र लगता है:—

प्रथम वेद उद्धरिय बंभ मच्छह तनु किन्नउ।
तुतीय वीर वाराह धरनि उद्धरि जसु लिन्नो।
कौमारिक महेस धम्म उद्धरि सुर सध्धिय।
कूरम सूर नरेस हिंदु हद उद्धरि रख्यिय।
रघुनाथ चरित्तु हनुमंत कृत भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज सुजसु कविचंद्र कृत चंद्रसिंह उद्धरिय तिमि॥

यह छन्द ६२ में भी है।

६० संख्यक प्रति में इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे आते हैं :—

मन्त्रीश्वर मण्डन तिलक वच्छा वंश भरभाण।
करमचंद सुत करम बढ़ भागचंद सब जाण॥१॥
तसु कारण लिखियो सही पृथ्वीराज चरित्र।
पढता सुख संपत्ति सकल मन सुख होवे मित्र॥२॥

इन कर्मचन्द तथा भागचन्द का ठीक पता लग गया है। कर्मचन्द कल्याणमल्ल के अमात्य थे, जिनके प्रयत्नों से कहा गया है कि अकबर ने कल्याणमल्ल को जोधपुर की अधीशता प्रदान की थी। इन कर्मचन्द के दो पुत्र थे, भागचन्द और लक्ष्मीचन्द। कर्मचन्द का यह वंश उनके एक पूर्वपुरुष 'वत्सराज' के नाम पर 'वच्छावत' कहलाता था। भागचन्द जहाँगीर के शासन काल में थे और कहा जाता है कि बीकानेर-नरेश सूरसिंह ने इन्हें सपरिवार बीकानेर लाकर धोखे से मरवा डाला था।[1] इसी प्रकार सूरसिंह सुत चन्द्रसिंह कूर्मवंशीय का भी पता लग गया है। ये चन्द्रसिंह कूर्म वंशी सूरसिंह के पुत्र थे जो प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व विद्यमान थे।[2] अतः यह प्रमाणित हो जाता है कि तीनों प्रतियाँ परस्पर बहुत आस-पास की हैं और इनमें ६० संख्यक प्रति—जिसमें भागचन्द का उल्लेख होता है—कुछ पूर्व की और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ उसके कुछ बाद की हैं। फलतः ६० संख्यक प्रति प्रायः सवा तीन सौ वर्ष और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ प्रायः तीन सौ वर्ष पुरानी होनी चाहिए और इन प्रतियों की जीर्णता देखने में भी इतनी ज्ञात होती है।

(४) फ० : यह प्रति मूलतः उसी आदर्श की है जिसकी अ० परिवार की प्रतियाँ हैं, क्योंकि उस परिवार का पाठ-त्रुटियों में से अधिकतर इसमें भी पाई जाती हैं। फिर उस परिवार की ६० संख्यक प्रति कि भाँति इसमें भी प्रक्षेप के द्वारा त्रुटि-परिहार का यत्न किया गया है। नीचे दिए हुए उदाहरणों से यह बात देखी जा सकती है :—

१. उधोर ८ : अ० परिवार की प्रतियों की भाँति इसमें भी चरण २१ नहीं था किन्तु इस त्रुटि का परिहार फ० में इस प्रकार किया गया कि चरण २३ के अंतिम शब्द बदल दिए गए जिससे उसका तुक चरण २२ से मिल जावे और फिर चरण २४ के बाद निम्नलिखित चरण अर्द्धाली पूरी करने के लिए बढ़ा लिया गया :—

सोभित भृकुटि भामिनि सोह।

२. कवि० ३ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण २ तथा ३ परस्पर स्थानांतरित थे, जिसके कारण अन्त्य-वैषम्य था, फ० में मूल के चरण ३ तथा ४ के अन्त के शब्दों को बदल कर इसे ठीक कर लिया गया।

३. कवि० ४ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ४ नहीं था, उसके स्थान पर इसमें निम्न लिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

[1] दे० श्री शिवदत्त शर्मा : 'मन्त्री कर्मचन्द', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, १९८१ पृ० २९५।

[2] दे० श्री नरोत्तमदास स्वामी : 'पृथ्वीराज रासो', राजस्थान भारती, वर्ष १, अंक २, पृ० ६।

तू करिग्य सिष्यहि करै जू प्रीतम दाउन ।

३. कवि० ७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ४ का अधिकांश नहीं था। उसके स्थान प इसमें निम्नलिखित चरण गढ़ लिया गया :—

वंस मध्य वर त्रीस अरिह संग्राम अरोचन ।

४. कवि० २ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ नहीं था; उसके स्थान पर इसमें यथा चरण २ निम्नलिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

पुकारइ पम्मार जइत सब जगही जानं ।

४ कवि० ७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ६ नहीं था, उसके स्थान पर यथा चरण ५ निम्नलिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

सावंत सकल सूरति मिलंति इह स बात दुवोंध करी ।

४. कवि० ९ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ५ तथा ६ की शब्दावली छूटी हुई थी जो एक चरण की शब्दावली के लगभग थी, इस त्रुटि को ठीक करने के लिए इसमें निम्नलिखित नया चरण गढ़ कर यथा चरण ६ रख लिया गया :—

सुलतान राउ प्रथीराज तनु लिषग्गि जेन प्रौढारइह ।

५. नारा० १ : अ० परिवार की भांति इसमें भी चरण ४ नहीं था; इसकी पूर्ति निम्नलिखित नवनिर्मित चरण ४ से कर ली गई :—

श्लोक सोक संहरं सुता सुपाव संभ्रमी ।

५. दो० ११ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण २ नहीं था, जिसकी पूर्ति निम्नलिखित नवकल्पित चरण से कर ली गई :—

इच्छन इच्छइ नन भूरि ता भीम नृप मानु ।

९. कवि० ३ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ नहीं था; इसकी पूर्ति यथा चरण ३ निम्नलिखित नवनिर्मित चरण बढ़ा कर कर ली गई :—[१]

इच्छन इच्छा इच्छनन भूरि ता भीम नृप मानु ।

१३. दो० १७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ की शब्दावली छूटी हुई थी, उसकी पूर्ति निम्नलिखित नवकल्पित चरण २ जोड़ कर कर ली गई :—

पृथ्वीराज चहुवान कौ तौ जिनु अपे मोहि ।

ये सभी प्रक्षेप अ० परिवार के ६० संख्यक प्रति के प्रक्षेपों से भिन्न हैं, इसलिए दोनों का प्रक्षेप-सम्बन्ध नहीं है ।

इस प्रकार के प्रक्षेपों के अतिरिक्त इसमें लगभग ९० रूपक और मिलते हैं, जो परिवार अ० की किसी प्रति में नहीं मिलते हैं; लगभग ये सभी छन्द आगे उल्लिखित ना० तथा स० में मिल जाते हैं, और फ० में उसकी अपनी क्रम संख्याओं के बाहर पड़ते हैं। इसलिए यह प्रकट है कि ये छन्द फ० में बाद में मिलाए गए, और प्रक्षेप अथवा पाठ मिश्रण के द्वारा उसमें आए ।

इन दृष्टियों से देखने पर फ० प्रति अ० परिवार की प्रतियों के होते हुए महत्वहीन और भ्रामक प्रमाणित होती है, और इसलिए यह अ० परिवार की प्रतियों का स्थान नहीं ग्रहण कर सकती है। फिर भी इसमें अनेक ऐसे स्थल हैं जो अत्रुटित हैं और अ० परिवार की प्रतियों में त्रुटिपूर्ण अथवा प्रक्षिप्त हैं :—

१. भुजं० १, चरण १५

२. अघोर ८, चरण २८–२९

[१] यह द्रष्टव्य है कि उद्धृत ५ दो० ११ की त्रुटि-पूर्ति भी इसी नवकल्पित चरण द्वारा की गई है ।

२. दो० ३, चरण २
३. दो० ५, चरण १ के कुछ शब्द
६. पद्ध० २, चरण ७–१०
९. कवि० ३, चरण १
१२. दो० १२ के पूर्व का कवित्त, चरण १, २ के कुछ शब्द
१५. कवि० ८, चरण ३, ४
१५. कवि० १६, चरण १, २
१६. कवि० १६, चरण २
१७. कवि० ४ के बाद की विज्जुमाला, चरण ७, ८
१७. कवि० १५, चरण ४
१७. त्रोटक ५, चरण १४, १५
१८. कवि० २, चरण ३, ४
१८. दो० ११ के कुछ शब्द
१९. दो० १४, चरण २

इन पूर्ण पाठों के सम्बन्ध में जो कि प्रक्षिप्त नहीं हैं—क्योंकि अन्य शाखाओं की प्रतियों में भी मिलते हैं—दो बातें सम्भव हो सकती हैं : एक तो यह कि फ० उस समय की प्रतिलिपि है जबकि इसका और अ० परिवार का पूर्वज आदर्श और इतना त्रुटित नहीं था जितना अ० परिवार की प्रतियों की प्रतिलिपि के समय हो गया : दूसरा यह कि फ० में किसी अन्य शाखा के पाठ की सहायता से त्रुटियाँ दूर कर दी गईं। किन्तु अब भी फ० में ऐसे बहुतेरे स्थल हैं जहाँ पर पाठ उसी प्रकार त्रुटित है जिस प्रकार अ० परिवार की प्रतियों में है; अतः यदि पाठ त्रुटियों को दूर करने के लिए किसी अन्य शाखा की प्रति या प्रतियों का सहारा लिया गया होता तो इस पिछले प्रकार की त्रुटियाँ भी अधिकतर दूर हो गई होतीं, जैसा कि नहीं हुआ है। इसलिए यही सम्भावना अधिक प्रतीत होती है कि इसकी प्रतिलिपि अ० परिवार की प्रतियों के कुछ पूर्व हुई थी जब इन सबका सामान्य मूलादर्श क्षत-विक्षत होते हुये भी इतना क्षत-विक्षत नहीं हुआ था जितना अ० परिवार की प्रतियों की प्रतिलिपि के समय हो गया था। अतः अ० परिवार की प्रतियों के होते हुए भी इस प्रति का महत्व है, विशेष रूप से उन स्थलों पर अपनी शाखा का पाठ-निर्धारित करने के लिए जो अ० परिवार की प्रतियों में त्रुटित अथवा प्रक्षिप्त हैं।

इसका आकार लगभग १२″×७·२५″ तथा इसकी पुष्पिका निम्नलिखित है :—

"सं० १७२८ मार्गसिरु सुदि १ बुधवासरे फतेपुरा मध्ये लिषतं अमरा आत्मार्थे।"

यह महत्वपूर्ण प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह की है और उन्हीं से मुझको प्रस्तुत कार्य के लिए प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

(५) म० : यह भांडारकर आरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट की १४५५ (१८८१–९५) संख्यक प्रति है। इसका पत्रा २ से ४२ तक का अंश खण्डित है। इसका पाठ खण्डों में विभाजित है। छन्दों की क्रम-संख्या कुछ दूर तक छन्द-भेद के अनुसार प्रायः उसी प्रकार चलती है जिस प्रकार अ० या फ० में पूरे पाठ में चला है, किन्तु तदनंतर वह एक सम्मिलित संख्या के रूप में चलने लगती है, जैसे वह ना० या स० में चली है, जिनका उल्लेख आगे होगा।

खण्डों के नामों में भी इसी प्रकार की अनेकरूपता परिलक्षित होती है। प्रथम खण्ड को 'अध्याय' कहा गया है, दूसरे को प्रारम्भ में 'पर्व' किन्तु अन्त में 'खण्ड' कहा गया है। इसके बाद एक अंश आता है जिसके न प्रारम्भ में कोई शीर्षक दिया गया है और न अन्त में कोई पुष्पिका ही दी गई है

और तीन भिन्न-भिन्न खण्डों में बँटा हुआ है। इस दृष्टि से देखने पर यह अंश अ० और फ० के साथ सादृश्य रखता हुआ प्रतीत होता है, और उपर्युक्त दूसरे खण्ड का परिशिष्ट-सा लगता है। इसके अनन्तर जो खण्ड आता है उसके प्रारम्भ में कोई शीर्षक नहीं दिया हुआ है और वह पन्नों के निकल जाने से खण्डित है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि इसे क्या कहा गया था। इस खण्ड के प्रारम्भ के दो रूपकों तक क्रम-संख्या छन्द-भेद के अनुसार मिलती है किन्तु तदनंतर पद्धति बदल जाती है और प्रति के अन्त तक वह एक सम्मिलित क्रम-संख्या के रूप में चलती है। इस खण्डित अंश के बाद दो खण्ड आते हैं जिन्हें 'प्रस्ताव' कहा गया है, दो खण्ड आते हैं जिन्हें पर्व-खण्डादि कुछ नहीं कहा गया है, एक खण्ड आता है, जिसे 'खण्ड' कहा गया है, तीन खण्ड आते हैं जिन्हें पर्व-खण्डादि कुछ नहीं कहा गया है और एक खण्ड आता है जिसे 'प्रस्ताव' कहा गया है और यही प्रति का अन्तिम खण्ड है। 'अध्याय', 'पर्व', 'खण्ड' और 'प्रस्ताव'—चार भिन्न-भिन्न नामों के आधार क्या हैं, यह स्पष्ट नहीं होता है। इस प्रकार के अध्याय, पर्व, खण्ड और प्रस्ताव कुछ मिलाकर इस प्रति में १० होते हैं। इस प्रति का आकार लगभग ८'२''×४'५'' तथा इसकी प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है :—

"संवत् १८०५ वर्षे मागसिर सुदि ११ तिथौ शनिवासरे ग्राम मथांणीया लिषतं पं० उदैराज।"

इस प्रति में कन्नौज-युद्ध के अनन्तर पृथ्वीराज के दिल्ली-आगमन तथा उसकी केलि-विलास तक की कथा आती है। इतने अंश में यद्यपि यह खण्ड-विभाजन और कथा-क्रम में प्रायः अ० और फ० के साथ सादृश्य रखती है, किन्तु इसमें 'हांसी प्रथम युद्ध' तथा 'हांसी द्वितीय युद्ध' नाम के दो खण्ड ऐसे हैं जो अ० और फ० में नहीं हैं, ना० और स० में हैं और शेष खण्डों में भी अनेक छन्द अ० और फ० की तुलना में अधिक हैं, जो प्रायः संपूर्ण रूप से केवल स० परिवार की प्रतियों में मिलते हैं, ना० परिवार की प्रतियों में नहीं। फलतः जबकि अ० में कथा के इस अंश में कुल ६८२ रूपक हैं, इसमें प्रति के प्राप्त १८५ पन्नों में ही लगभग १८५० रूपक हैं, और यदि खण्डित २२ पन्नों में उसी अनुपात से २२० रूपक के लगभग मान लिये जावें तो इस प्रति की कुल रूपक-संख्या २०७० के लगभग पहुँचती है। फलतः इस प्रति के पाठ का आकार अ० की तुलना में लगभग तिगुना है।

यह प्रति इस प्रकार अपने ढंग की अकेली है। ऐसा लगता है कि इसका कोई पूर्वज प्रायः उसी आकार-प्रकार का था जिस आकार-प्रकार का अ० का था, किन्तु पीछे उसमें इतनी पाठ-वृद्धि की गई कि छन्दों की क्रम-संख्या देने में कुछ दूर तक, गलत-सही, पूर्ववर्ती विधि का निर्वाह करने के बाद यह असंभव दिखाई पड़ा कि और आगे भी उसको चलाया जा सके, इसलिए उक्त दूसरी पद्धति को अपना लिया गया। इस प्रक्रिया के अवशेष म० के खण्ड १० तथा ११ में अभी तक सुरक्षित हैं। खण्ड १० में १४२ तक छन्द-संख्या लिखी जाकर पुनः १२५ से प्रारम्भ हुई है और ११ में ९८ तक छन्द-संख्या पहुँचकर ९० से और पुनः ९७ तक पहुँच कर ९२ से प्रारम्भ हो गई है।[1]

इस प्रति में खण्ड १ में ही निम्नलिखित छन्द-लक्षण आते हैं :—

अ० १. नारा० ६ के बाद : पढमो बारह मत्ते बीयां अठारह साहिणा भट्ठो।
जहां पढमं तहां तीयो दह पंचमि भूसीयं गाहा ॥१॥

" " : जा पढम ताय पंचम सत्तम असेस होइ गुरुहूग।
गुव्विणी विण पढ्ढणा गाहा दोस पयासई ॥२॥

अ० १. दो० ४ के बाद : सगुणा जिह च्यार पढंत परी।
ठंच सोलहमत्त विसामु करी।
सुणि च्यंगलि भा कहि वीर इयं।

[1] दे० आगे 'म० के क्रम-संख्या के बाहर के छन्द' उपशीर्षक 'रचना का मूल रूप' शीर्षक के अन्तर्गत।

	यह सोडय जाणहु पायडियं ॥
अ० १. दो० ५ के बाद :	पयोहर च्चारि पसलिय तांम।
	ति सोलह मत्तह सुखीयदाम।
	णपुथह हारु भरे इय अंत।
	ति अठह अगळ छप्पण मंत ॥
अ० १. दो० २२ के पूर्व :	पढ पंदह हरणं अहसह हरणं फुनि वसु हरणं पट्ठ हरणं।
	अंते गुर मोहे लतहुवन मोहे सिठि सरोहे परतोहै।
	जे परम मनोहर हरई मनोहर सा सकरं।

ये छन्द 'प्राकृत पैंगल' में क्रमशः १.५४, १.६५, २.१२९, २.१३३ तथा १.१९४ हैं। किन्तु 'प्राकृत पैंगल' में इन लक्षण के छन्दों के साथ 'पृथ्वीराज रासो' का एक भी छन्द उदाहरण में नहीं दिया गया है, इसलिए 'रासो' के इस पाठ में ये छन्द 'प्राकृत पैंगल' से आए होंगे और इस पाठ को अन्तिम रूप 'प्राकृत पैंगल' के बाद मिला होगा।

यह मूल्यवान् प्रति मुझको इन्स्टीट्यूट से ही प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उसका अत्यन्त आभारी हूँ।

(६) ना० : यह प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में है, जिसकी एक प्रतिलिपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग के लिए उन्होंने करा दी थी। मूल प्रति के लिए मैंने नाहटाजी को लिखा था, किन्तु उसकी जीर्णावस्था के कारण उन्होंने भेजने में असमर्थता सूचित की। अतः इसकी उक्त प्रतिलिपि का ही उपयोग किया जा सका है।

इस प्रति का पाठ भी खण्डों में विभाजित है—कुल ४६ खण्डों में रचना समाप्त हुई है। यह प्रति आदि से अन्त तक पूर्ण है। कुल मिलाकर इसमें ३३९७ रूपक हैं।

इसके पाठ में दो बातें ऐसी हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इसके पूर्व की किसी पीढ़ी में न खण्ड-संख्या इतनी थी और न छंद-संख्या ही और दोनों में वृद्धि हुई है। खण्डों के वर्त्तमान पाठ में भी कुछ खण्डों की पुष्पिकाओं में उनकी पुरानी क्रम-संख्या पड़ी रह गई है जो उनकी वर्त्तमान स्थिति से बहुत पिछड़ी हुई है, यथा:—

पुष्पिका में दी हुई खण्ड-संख्या	वर्त्तमान पाठ में खण्ड-स्थिति
पृथ्वीराज वंशावलि राजाजन्म कथा : ३	२
मुगलपराजय पृथ्वीराज विजय : ७	८
कान्हपाटी बन्धन कथा : ८	१०
दिल्ली राज्याभिषेक चामण्ड राय हस्तेन पतिसाह ग्रहण : ९	१२
कनवज गमन जयचन्द द्वारे संप्राप्तो : २१	३१

इस सूची में से प्रथम ही ऐसा खण्ड है जो पुष्पिका के अनुसार वर्त्तमान स्थिति से आगे बढ़ा हुआ लगता है, शेष सभी वर्त्तमान स्थिति से पिछड़े हुए हैं। किन्तु प्रथम भी वर्त्तमान स्थिति में कदाचित् इसलिए तृतीय से द्वितीय हो गया है कि पहले वंशावली के सम्बन्ध का जो द्वितीय खण्ड था, वह वर्त्तमान पाठ में प्रथम के साथ मिला दिया गया, जैसा प्रथम खण्ड की पुष्पिका की वर्त्तमान शब्दावली "आदि प्रबन्ध मंगलाचरण वंशावलि वर्णन" से प्रकट है। पूर्ववर्ती ७,८, ९ क्रमशः वर्त्तमान ८, १०, १२ हैं। अतः इनके बीच में वर्त्तमान खण्ड ९ तथा ११ पीछे किसी समय मिलाये गए, यह प्रकट है। छन्द-संख्या के बारे में भी यही बात दिखाई पड़ती है : बीच-बीच में अनेक छन्द ऐसे मिलते हैं जो दी हुई क्रम-संख्या के बाहर पड़ते हैं। वर्त्तमान खण्ड ३१ में तो १४ तक रूपक-संख्या एक बार चल लेने के बाद पुनः १ से प्रारम्भ होकर ६४ तक चलती है।

इस प्रति की पुष्पिका निम्नलिखित है :—

"सम्वत १७९२ वर्षे मार्ग शीर्ष मासे शुक्ल...श्री तोलीयासर ग्रामे वाचक श्री पुन्योदय जी गणि शिष्य...श्रीरस्तु ॥ शुभम्"

इस प्रति का आकार १३.७५" × ९.५" है।

इस पाठ की और भी कुछ प्रतियाँ मिलती हैं, और एकाध कुछ पहले की भी हैं, किन्तु वे खण्डित हैं। यह प्रति पूर्ण और अत्यन्त सुरक्षित है। इस महत्व पूर्ण प्रति का उपयोग मैं सम्मेलन के अधिकारियों की कृपा से कर सका, इसलिए उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

(७) द० : यह रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन के टॉड संग्रह की ८२ संख्यक प्रति है। यह रचना की प्राचीनतम प्राप्त प्रतियों में से है और सं० १६९२ की है। इसमें कुल ३६ खण्ड हैं। यह 'बान बेध खण्ड' के पूर्व ही समाप्त हो गई है। इसके अतिरिक्त चौथे 'नाहर राय कथा' खण्ड के छन्द ५-१२, सत्ताईसवें 'शुक वाक्य खण्ड' के दो पत्रे (छन्द ५-४८) तथा छत्तीसवें 'पृथ्वीराज ग्रहण खण्ड' का एक पत्रा (छन्द ४-१९) त्रुटित हैं, और सातवाँ खण्ड 'देवगिरि युद्ध' अपूर्ण छूटा हुआ है : केवल ९ रूपक उसके उतारे गए हैं। टॉड संग्रह की ६० तथा १५७ संख्यक प्रतियाँ भी मूलतः इसी परिवार की हैं, किन्तु उनमें 'शुकवाक्य' तथा 'देवगिरि' खण्ड नहीं है। इसलिए उपर्युक्त त्रुटित अंशों में से शेष तीन के सम्बन्ध में ही उनका सहारा लिया जा सकता है। नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण तथा उस संस्करण के पाठ वाली प्रतियों में 'देवगिरि समय' में द० के ९ रूपकों के बाद ४१ रूपक आते हैं और 'वानवेध खण्ड' में टॉड संग्रह की ६० संख्यक प्रति में २८६ रूपक हैं। द० के प्राप्त रूपकों में इतने और रूपक जोड़ने पर उसकी कुल रूपक-संख्या लगभग ३४७० होती है।

द० का आकार १३.८" × ९.५" है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

"संवत् १६९२ वर्ष चैत्र मासे शुक्ल पक्षे २ द्वितीया रविवारे लखितं।"

इसके अनंतर कुछ और लिखा हुआ है जिस पर इस समय कुछ पोता हुआ है और इसलिए वह अपाठ्य हो गया है। उसके बाद आता है :—

"संवत् १९२६ वर्ष काती सुद ५ सो ये पोथी दसोरा कृपारांम सीतारांम कने थी मोल लीधु रुपीया २५ आंकरा दीधा पोथी वणारणजी श्री रूपचन्द जी...जो री उदैपुर मध्ये लीधी।"

इस पाठ में भी बाद में की हुई पाठ-वृद्धि के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं : 'रितु वर्णन' नामक ३४ वें खण्ड के प्रथम पाँच रूपकों के बाद ५१ रूपकों का 'शुकचरित्र' रख दिया जाता है, और तदनंतर पुनः 'रितु वर्णन' खण्ड के रूपकों की क्रम-संख्या ५ से प्रारम्भ होकर १४० तक चलती है।

इस महत्व पूर्ण प्रति का माइक्राफिल्म इलाहाबाद यूनिवर्सिटी पुस्तकालय से मुझे प्राप्त हुआ था, जिसके लिए मैं पुस्तकालय के अधिकारियों का अत्यन्त आभारी हूँ।

टॉड संग्रह में इस परिवार की और भी कुछ प्रतियाँ हैं, किन्तु वे प्राय: खण्डित हैं; ऊपर जिस अन्य प्रति का उल्लेख किया गया है, उसका भी आदर्श कीटादि से बहुत क्षत-विक्षत हो गया था जिसके कारण प्रतिलिपिकार को स्थान-स्थान पर त्रुटित पाठ को छोड़ना पड़ा है। अतः इस प्रति का महत्व अपने परिवार का प्रतियों में सबसे अधिक है।

(८) शा० : यह प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में है। यह दो मोटी जिल्दों में है। यह प्रति रचना के सबसे बड़े पाठ की सब से प्राचीन प्रति है। इसमें खण्डों की संख्या तथा रूपक-संख्या प्रायः वही है जो सभा के संस्करण की है, केवल 'महोबा खण्ड' इसमें नहीं है। इसमें कुल रूपक-संख्या अन्त में १०७०९ दी हुई है।—

इसका आकार १२" × १०" के लगभग है, और इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

"रासारी पोथी रा रूपक संख्या १०७०९ बत्तीस अक्षर मीलने श्लोक ग्रन्थ जे दो छे। ए पोथी

श्री दीवाणजी रै थी उतरी छै। लिषतं गणि ज्ञान विजयै। श्री बड़ा तलाब मध्ये लिषतं। संव...४७वर्षे आश्विन मासे।"

'४७' के पूर्व के अङ्क तथा अक्षर पूर्ववर्त्ती पत्रे के यहाँ पर चिपक जाने के कारण मिट गए हैं।

इस प्रति की एक आधुनिक प्रतिलिपि, जो मशीन के कागज़ पर की हुई है, सौभाग्य से उस समय की की हुई मिल गई है जब यह विकृति नहीं हुई थी। यह प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई में है और उसकी बी. डी. २७४ है। इसके कुछ खण्डों के अन्त या प्रारम्भ में निम्नलिखित शब्दावली आती है, जो आदर्श की है :—

खण्ड २ अन्त : "महामहोपाध्याय श्री १०६ श्रीअमर विजय गणि। शिष्य चेला गणि ज्ञान विजय लिषतं आत्मार्थे श्री उदयपुर मध्ये सं० १७४७ रा भाद्रवा सुदि २ दिने।"

खण्ड ३ अन्त : "लिषतं गणि ज्ञान विजयै आत्मार्थे।"

खण्ड ४ अन्त : "गणि ज्ञान विजय लिषतं।"

खण्ड ७ अन्त : "सम्वत १७४७ वर्षे सकल वाचक शिरोमणि महामहोपाध्याय श्री अमर विजय गणि। तत् शिष्य ज्ञान विजय गणि लिषतं आत्मार्थे। सकल मासोत्तम भाद्रमासे।"

खण्ड २१ प्रारम्भ : "अथ सकल वाचक शिरोमणि महामहोपाध्याय श्री ५ श्री अमर विजय गणि गुरुभ्यो नमः।

खण्ड २१ अन्त : गणि गिनांन विजय लिषतं श्री उदयपूरे।

खण्ड २२ अन्त : सम्वत १७४७ वर्षे आसू सुदि १० दिने।

इधर बहुत दिनों से यह विवाद रहा है कि सभा की प्रति सं० १६४७ की है या १७४७ की। इस प्रतिलिपि से यह प्रवाद समाप्त हो जाता है।

खेद है कि सभा के अधिकारियों से सभा की प्रति न प्राप्त हो सकी, अतः इस प्रतिलिपि का ही उपयोग प्रस्तुत कार्य के लिए करना पड़ा है। इस प्रतिलिपि के लिए मैं रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई के अधिकारियों का अत्यन्त आभारी हूँ।

(९) उ० : यह प्रति पहले आगरा कालेज में थी और अब भारतीय सरकार की नेशनल गैलेरी आव् मॉडर्न आर्ट में है। यह रचना के सबसे बड़े पाठ की एक अत्यन्त सुरक्षित और मूल्यवान् प्रति है। यह चार जिल्दों में है और १६०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। यह प्रति आगरा कालेज को १८६१ में उदयपुर के महाराजा ने भेंट की थी, यह उक्त प्रति के मुखपृष्ठ पर उस समय के प्रिंसिपल श्री पियर्सन द्वारा सितम्बर २, १८६१ की तिथि देते हुए लिखा हुआ है।

इसमें खण्डों या प्रस्तावों का क्रम और उनकी संख्या वही है जो उपर्युक्त शा० अथवा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण में है, केवल 'महोबा समय' इसमें भी नहीं है और कुछ खण्ड सभा के संस्करण की तुलना में इसमें कुछ आगे-पीछे मिलते हैं। प्रस्तुत संस्करण में सुविधा के लिए उनकी क्रम संख्या वही दी गई है जो सभा के संस्करण में है।

प्रति का आकार लगभग १२"×१०" है। इतनी बड़ी प्रति एक ही व्यक्ति की लिखी है, केवल अन्त के दो पत्रे अन्य व्यक्ति के लिखे हैं। सम्भावना यह प्रतीत होती है कि पूर्ववर्ती पत्रों के जीर्ण होकर निकल जाने के बाद वे फिर से जीर्ण पत्रों से ही उतारकर लगाए गए हों। वर्त्तमान अन्तिम पत्र पर पुष्पिका के नाम पर केवल इतना है :—

"ह० गौकुललाल पुरोहित॥"

कुछ खण्डों की पुष्पिकाएँ दी हुई हैं, किन्तु प्रतिलिपि-सम्बन्धी कोई उल्लेख कहीं नहीं है। 'राजा रयन सी समय' और 'विवाह समय के' बीच 'विज्ञप्ति' शीर्षक के साथ निम्नलिखित छन्द अवश्य आते हैं, जो सभा के संस्करण में नहीं हैं :—

मिलि पंकज ग (गुन ?) उदधि करद कागद कातरणी ।
कोटी कवीका जलद कमल कटि कते करनी ।
इहि तिथि संख्या गुनित कहे कका कवि याने ।
इह श्रम लेपन (छेपन) हार भेद भेदे सो जानै ।
इन कष्ट ग्रंथ पूरन करय मन बंझा दुख ना लहय ।
पालियै जतन पुस्तक पवित्र लिखि लेखक विनती करय ॥१॥
गुन मनियन रस पोइ चंद कवियन करि द्धिय ।
छन्द गुनि ते तुट्टि मंद कवि भिन्न भिन्न किद्धीय ।
देस देस बिप्परिय मेल गुन पार न पावय ।
उद्दिम करी मेलवत आदिवन आलय आवय ।
चित्रकोट रान अमरेस नृप हित श्री मुख आयस दयौ ।
गुन बिन करुना उदधि लिखि रासो उद्दिम कीयो ॥२॥
लघु दीरघ ओछो अधिक जो कछु अन्तर होय ।
सो कवियन मुख सुद्ध ते कहो आप बुद्धि सोइ ॥
॥ इति विज्ञप्ति ॥

विज्ञप्ति के ये छन्द आदर्श के ज्ञात होते हैं; इनमें राणा अमरसिंह के आदेश से चन्द के बिखरे हुए छन्दों को इकठा कर उसके पाठ के पुर्ननिर्माण का उल्लेख हुआ है। राणा अमरसिंह का राज्यकाल सं० १६५२ से १६७६ तक है। छन्दों का पाठ कुछ विकृत हो जाने के कारण ठीक तिथि नहीं ज्ञात हो रही है; वह सम्भवतः १६७३ है जो 'गुन' 'उदधि' के उलट कर पढ़ने से बनती है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि किन्हीं कका कवि ने उक्त राणा के आदेश से वह आदर्श विभिन्न प्रतियों की सहायता से बनाया जिससे यह प्रति या इसकी कोई पूर्वज प्रति उतारी गई। अन्य साक्ष्यों के अभाव में इसे २ सितम्बर, १८६१ (=सं० १९१८) के कुछ पूर्व की प्रतिलिपि मानना चाहिए।

यह महत्वपूर्ण प्रति मुझे भारतीय सरकार की नेशनल गैलेरी आव् मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली के क्यूरेटर, श्री मुकुल डे से प्राप्त हुई थी, इसलिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। इसे मेरे उपयोग के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वाइस चांसलर श्री भैरवनाथ झा ने मँगा दिया था, इसलिए मैं उनका भी आभार मानता हूँ।

पिछली ना० तथा यह लगभग एक ही पाठ देती हैं, इसलिए रचना के पूर्वार्द्ध के पाठ के लिए एक तथा उत्तरार्द्ध के पाठ के लिए दूसरी का उपयोग कर लिया गया है।

(१०) स० : यह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा कई जिल्दों में प्रकाशित रचना का प्रसिद्ध संस्करण है, जो श्री मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या द्वारा संपादित होकर कई वर्षों में १९१० ई० तक प्रकाशित हुआ था। इसका आकार वही है जो ना० का है, जो इस संस्करण का मुख्याधार है। ना० परिवार की कुछ अन्य प्रतियों का भी उपयोग इसके संपादन में किया गया है। इसमें 'महोबा समय' भी अन्त में जोड़ दिया गया है, जो इस पाठ की भी प्रति में नहीं मिलता है, केवल अलग स्वतन्त्र खण्ड के रूप में मिलता है। यह संस्करण सावधानी से तैयार किया गया है, और मुद्रण की भूलों के अतिरिक्त ना० परिवार के पाठ को प्रायः ठीक-ठीक प्रस्तुत करता है। अब यह संस्करण दुर्लभ हो गया है। इसकी प्रति मुझे प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उसके अधिकारियों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

—:०:—

२. पृथ्वीराज रासो
के
मूल रूप के निकटतम प्राप्त पाठ

ऊपर जिन प्रतियों का परिचय दिया गया है, उनमें रूपक-संख्या, हमने देखा है, निम्नलिखित है :—

(१) धा० : ४२२, (२) मो० : ५५२, (३) अ० : १११०, (४) फ० : १२००, (५) म० [अ० परिवार के ६८३ रूपकों के स्थान पर] : २०७०, (६) ना० : ३३९७, (७) द० : ३४७०, (८) शा० : १०७०९, (९) उ० : यथा शा०, (१०) स० : यथा शा०। साथ ही यह भी हम देखते हैं कि धा० के प्राय: सभी छन्द मो० में, मो० के लगभग सभी छन्द अ० में, अ० के सभी छन्द फ० में, फ० के लगभग सभी छन्द म० में, म० के अधिकतर छन्द ना० में किन्तु प्राय: सभी छन्द शा० उ० स० में; ना० के अधिकतर छन्द शा० उ० स० में, और द० के सभी छन्द शा० उ० स० में पाये जाते हैं।[1] अतः पहला प्रश्न यह उठता है कि इस पूरी पाठ-परम्परा में क्या निरन्तर पाठ-वृद्धि होती रही है, और आकार की दृष्टि से मूल या उसके सब से अधिक निकट पाठ धा० का रहा होगा, अथवा मूल या उसके सब से अधिक निकट पाठ शा० उ० स० का पाठ रहा होगा और उत्तरोत्तर संक्षेप होते-होते उस का आकार धा० का हुआ होगा; अथवा मूल पाठ की स्थिति बीच में कहीं पड़नी चाहिए और एक ओर जहाँ उसमें उत्तरोत्तर पाठ-वृद्धि हुई, दूसरी ओर उसका उत्तरोत्तर संक्षेप भी हुआ। ये विकल्प विचारणीय हैं। इन विकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ही यह निश्चय किया जा सकेगा कि रचना के मूल पाठ का आकार क्या था। रचनाओं में पाठ-वृद्धि होना ही सामान्यत: देखा जाता है, संक्षेप-क्रिया अपवाद के रूप में ही मिल सकती है, इसलिए धा० को आधार मान कर पहले हमें यह देखना चाहिए कि अधिकाधिक छन्द-संख्या वाली प्रतियों के पाठों में उत्तरोत्तर पाठवृद्धि के प्रमाण मिलते हैं या नहीं; इस विकल्प के लिये सन्तोषजनक प्रमाण न मिलने पर ही अन्य दो विकल्पों के विषय में विचार करना आवश्यक होगा।

उक्ति-शृंखला

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह दिखाई पड़ेगा कि धा० में अनेक स्थलों पर एक रूपक में—प्राय: उसके अन्त में—जो उक्ति आई है उसकी कुछ न कुछ शब्दावली बाद वाले रूपक में—प्राय: उसके प्रारम्भ में—भी है और इस प्रकार एक उक्ति-शृंखला बनी हुई है, यथा निम्नलिखित रूपकों के बीच। जिन प्रतियों में उक्ति-शृंखला बीच में अन्य रूपकों के आने के कारण त्रुटित हुई है, उनका उल्लेख धा० का पाठ देते हुये नीचे दाहिने सिरे पर किया जा रहा है :—

(१) धा० ५१ : जो थिर रहै सु कहहुं किन हूं पूछ तुम्ह सोइ।
धा० ५२ : थिर बाढे वल्लभ मिलनु जउ जोवन दिन होइ।

१ देखिये विभिन्न परिशिष्ट।

(२) धा० ६८ : तदिन करिग अंगुलि धरइ बान भरिग प्रिथिराज ।
धा० ७० : भरिग बान चहुवान जानि हुर देव नाग नर ।
(धा० मा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(३) धा० ७४ : तउ मा लउं स्वामिनि सकल जइ तुंसी होइ परतखि ।
धा० ७५ : भइ परतक्खि कवी मनि आइय । (शा० उ० स०)

(४) धा० ८१ : तिहूं पुर परागवानि अग्गे आउ राय आयेसु ।
धा० ८२ : आइसु सुनि सुनि अगा गे दियो मानकर अप्पु । (शा० उ० स०)

(५) धा० ८६ : कैबनाउ कैवास मोहि कै हर सिद्धि वर छंडि ।
धा० ८७ : जो छंडइ सपताप करि वरु छंडै कवि चन्द । (शा० उ० स०)

(६) धा० १०१ : अतिबल सूं बल ना कह्यौ किम चल्लइ भूआल ।
धा० १०२ : चलौं चन्द सत्थह सेवग सुभ ।

(७) धा० १२१ : अरि नयर नीर उत्तर कहे स ।
धा० १२२ : भुल्लि भट्ट पुब्बहि चल्यो कहि उत्तर कनवज्ज ।
(धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(८) धा० १२९ : कंचन करस झकोलति गंगह जलु भरहि ।
धा० १३० : भरंति नीर सुन्दरी । (धा० म० ना० द० शा० उ० स०)

(९) धा० १३१ : अगम हट्ट पट्टन नयर रतन मोति मनियार ।
धा० १३२ : अमरगति हट्टति पट्टन मंझ । (शा० उ० स०)

(१०) धा० १४१ : जु पुच्छत चन्द गयो दरबार ।
धा० १४६ : पुच्छत चन्द गयो दरवारह ।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(११) धा० १६१ : एक चहुवान प्रिथिराज हारे ।
धा० १६२ : सुनि नृपत्ति रिपु कै सबद तामस नयन सुरत्त । (ना०)

(१२) धा० १६६ : वरनइ वइ उनिहारि इह ज्यूं चहुवान संउत्त ।
धा० १६७ : इम जंपइ चन्द वरद्दिया प्रिथीराज उनिहारि इहि ।

(१३) धा० १७४ : सुमजु भट्ट सत्थह अछे जिह करंति त्रिय लाज ।
धा० १७५ : एक कहइ विट्टिय सुभट इह न सत्थि प्रथिराज । (म० शा० उ० स०)

(१४) धा० १८३ : पुष्फांजली पंग सिर नाइ जयति पिय कामदेव ।
धा० १८४ : पुष्फंजलि सिर मंडि प्रभु गुरु लग्गी फिरि वाइ ।

(१५) धा० १८६ : किहु कामिनि मुख (मुख-शेष में) रति समर नृप निय निंद बिसारि ।
धा० १८७ : सुक्खं सुक्ख म्रिदंग तार जयनै रागं कला कोकिलं ।...
ए सइ सुक्ख सुखाइ तार सहिता जै राय राज्यं गता ॥ (धा० म० शा० उ० स०)

(१६) धा० १८८ : तरुने प्रान लटापट प्पगयरा जइ राय संप्राप्तिनं ।
धा० १८९ : प्राप्ति राउ संपरपतिग जहं दर देव अनूप । (म० शा० उ० स०)

(१७) धा० १९१ : द्रव्य दरिस बहु संग लिए भट्ट समप्पन जाइ ।
धा० १९२ : गयो राज मिल्लान चन्द वरदिहह समप्पन । (म० शा० उ० स०)

(१८) धा० १९२ : ... ... पान देहि दिढ हत्थ गहि ।
धा० १९३ : सुनि तमूक सा पट्टि करि वर उट्ठिय ढिठि वंक । (धा० म० ना० शा० उ० स०)

(१९) धा० १९३ : सुनित मूल सा पट्टि करि मर उट्ठिय ढिठि वंक ।

धा० १९५ : भुव चंकिय करि पंगु नृप अप्पिग हत्थ तंबोक ।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)
धा० १९८ : जउ मुक्कहि सत सत्थअनु तो कल लीन्हसि सत्थ ।
धा० १९९ : जउ मुक्कउँ सत सत्थिअनु तो संमरि कुल काज ।
धा० २०० : मनु अकाल तिडिय सघन चरया तु छूटि प्रवाह ।
धा० २०१ : प्रवासी [प्रवाहे-पाठां०] त तज्जी न लज्जी अहारे ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०
धा० २०२ : जल छंडहि अच्छहि करइ मीन चरित्तनु भुल्ल ।
धा० २०३ : भुल्लयो पुहवि नरिंद त जुद्ध विजुद्ध सह । (म० शा० उ० स०)
धा० २०३ : भुल्लयो पुहवि नरिंद त जुद्ध विजुद्ध सह ।
धा० २०४ : भुल्यो रंग सुमीन नृप पंगु चल्यो हय पुट्ठि । (म० ना० शा० उ० स०
धा० २०४ : सुनि सुन्दरि वर वज्जने चढ़ी अवासन उट्ठि ।
धा० २०५ : दिक्खति सुन्दरि वर वलनि चमकि चढंति अवास ।
धा० २०५ : नर कि देउ किधुं काम हर गंग हसंत अवास ।
धा० २०६ : इक्कु कहै दुर देव है इक कह इंदु फनिन्द । (म० ना० शा० उ० स०)
धा० २०६ : इक्क कहै असि कोटि नर इहु प्रिथिराज नरिंद ।
धा० २०७ : सुनि वर सुन्दर उभय हुव स्वेद कंप सुरभंग । (ना० द०
धा० २११ : मनो दान दुज अंघ समप्पति अंजुलिय ।
धा० २१२ : अपंति अंजुलीय दान जान सोभ लगए । (म० ना० द० शा० उ० स०)
धा० २१८ : मिलत हस्य (हत्थ-पाठां०) कंकम (कंकन-पाठां०) लखिउ कहहिकन्ह यहु काहु
धा० २१९ : इह अपुव्व धीरत्त तुहि कंकन हत्थ नरिंद ।
धा० २३७ : सय रिपु दिल्लियनाथो स पुन आला अग्य सुंसनं ।
धा० २३८ : सुनि स्रवननि प्रिथिराज कहु भयो निसानह घाउ ।
धा० २४२ : [मनुह लंक विग्रह करन चलउ रघुप्पति राउ-पाठां०]
धा० २४४ : [रामदल बंनर सयल] औहि रक्खण बहु बंध ।
(धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०
धा० २४५ : ... ... सहु दिक्खइ मयमत्त ।
धा० २४६ : दिक्खयहि मंत मयमत्त मत्ता । (म० ना० द० उ० स०
धा० २४६ : जु कहि जु कहि प्रिथिराज गहियो ।
धा० २४७ : गहि गहि कहि सेनान सब चलि हयगय मिलि एक ।
धा० २४७ : जाणूं पावस चुक्वइ (पुक्वइ-पाठां०) अनिल हलि बद्दल बहु भेक ।
धा० २४८ : हयं गयं नरं भरं उने त्रिये जलहरं (जलद्दरं-पाठां०) ।
धा० २६३ : [रावत्त कइ स रयरक्खनउ] रखत रक्खहि राव तिह ।
धा० २६४ : तैं रक्खे हिंदुवाण गंजि गोरी गाहंतो । (म० ना० द० शा० उ० स०
धा० २६४ : पहु परनि जाहु दिल्ली कवै जु होइ घरे घर मंगुली (मंगली-पाठां०)
धा० २६५ : सूर मरन मंगली सार (स्यार-पाठां०) मंगली ग्रिह आये । (म० शा० उ० स०
धा० २६५ : खित चढ़ि राइ राठौर सउं मरण सनंमुख मंडियइ ।
धा० २६६ : मरन दिजइ प्रिथिराज दसहि छत्रिय करि पयठो ।
धा० २६९ : इक छिप्पित नयक तठक्क (ठठक्क-पाठां०) परी ।

धा० २७० : ठठक्की सेन सभि मीर मिल्छे । (धा० स० ना० द० शा० उ० स०

(३८) धा० २७० : चंपे चाहि चहुवान हरि सिंघ नायो ।
धा० २७१ : करि जुहार हर सिंघ नयो चहुवान पहिल्लो । (मो० म० शा० उ० स०

(३९) धा० २७६ : निडर निसंक जुझत रन आठ कोस चहुवान गउ ।
धा० २७७ : सम रठोरनि राठवर निडर जुझ्झ गिरि जास ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०

(४०) धा० २७७ : दिनयर दल प्रिथिराज कूं चंपिउ पंग सम ताम ।
धा० २७८ : चंपति पिछोरिय गति चखह हय पट्टन तनु देख । (म० शा० उ० स०

(४१) धा० २७९ : जब लगि सहु दल रुक्कियो तब सुकन्ह हयवर चढ्यो ।
धा० २८० : चढत कन्ह सामंत हय जय जय कहै सहु देव । (ना० शा० उ० स०

(४२) धा० २८२ अ : सिर अधौं कर स्वामिकै हनौ गयंदन जोह ।—मो०]
धा० २८३ : सिर तुट्टे रुंधयो गयंद कड्ढ्यो कट्टारो । (म० ना० शा० उ० स०

(४३) धा० २८३ : तिम थहि सो लोयन गंगधर तिसतिस संकर सिर धुन्यो ।
धा० २८४ : धुनि सीस ईस सिर अहहनह घन घन कहि प्रिथिराज । (म० शा० उ० स०

(४४) धा० २८७ : सामंत पंच खित्तहि खपिग मिरत अंति भइ विक्खहर (विप्पहर-पाठां०) ।
धा० २८८ : विखहर (विपहर-पाठां०) पहट्ट पर्थ हय गय नर भार सार हथ्थेन ।
(म० शा० उ० स०

(४५) धा० २९० : सामंत निघट तेरह परिग नृपति सुपट्टिअ पंच सर ।
धा० २९३ : संझ सपट्टिय नृपति रण दिय पारस परिकोट ।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०

(४६) धा० ३०१ : मरन जानि मन मझ्झ रिउ गिर लक्खिनह बधेल ।
धा० ३०० : जिते समर लक्खन बधेल आहुनति खग्गवर । (म० शा० उ० स०

(४७) धा० ३०४ : सामंत सत्त जुज्झे प्रथम दिल्लीपति प्रिथिराज भउ ।
धा० ३०५ : दिल्लीपति दिल्लीय संपत्तउ ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०

(४८) धा० ३०६ : जस मंडन नरभर सबल महि मंडन महिलानु ।
धा० ३०७ : पहिलहि (महिलहि—पाठां०) मंडन निपति ग्रिह कनकंति लजानि । (मो०)

(४९) धा० ३१३ : गुरुबंधधव (बंधव-पाठां०) भृति लोइ भई विपरीत गति ।
धा० ३१४ : सकल लोक पुच्छत गुरु इच्छहि ।
(मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

(५०) धा० ३१९ : मरन छंडि महिला मन मोह्यो ।
धा० ३२० : विहि महिला महिला विसराई ।

(५१) धा० ३२० : सुनि सुनि समो राजगुरु नाई ।
धा० ३२१ : समउ जानि गुरुराज रहि कहि कहि कवि सहु बत्त ।

(५२) धा० ३२७ : उभय उभय रिस उप्पज्यो मिलिय चंद गुरुराज ।
धा० ३२८ : मिलिय चंद गुरुराज विराजहि राज दर । (ना० द० शा० उ० स०)

(५३) धा० ३३२ : कहा पयंपह निपति सूं कहो चंद गुरु भाखि ।
धा० ३३३ : कागद अप्पहि राजगुरु मुख जंपह इहु बत्त ।

(५४) धा० ३३३ : कागद अप्पहि राजगुरु मुखि जंपह इहु बत्त ।

धा० ३३४ : अन्य महिल द्वासी निरखि परखि पंचन जोगु। (अ०फ०ना०द०शा०उ०स०
धा० ३४० : सवन मंडि कनवजिनो स सुपनंतरि तथ्य।
धा० ३४१ : सपनंतरि सुंदरिय इंभ लग्गी परिरंभह। (मो०
धा० ३४२ : तिहि दिवस देव पिथिराज वर संक्ष सुवर भर महल दिय (किय-पाठां०)
धा० ३४३ : करि महल मंत मंड्यो छंदहि चामंडराय वर वंदी। (द० शा० उ० स०
धा० ३४६ : जे भर भीर संमुह सहहि ते बत्तीस हजार।
धा० ३४७ : लग्गा धर तिणि धरि गणहि ते पहु पंच हजार।
धा० ३४७ : लग्गा वर तिणि वरि गणहि ते पहु पंच हजार।
धा० ३४८ : पंच हजारह मंहि जुडइ जे अग्गा वर स्वामि।
धा० ३४८ : कर वज्जी वज्जह सहइ ते सौ पंच अहामि।
धा० ३४९ : तिनमंहि सौ जे भयहरण सीलसत्त जमजित्त।
धा० ३४९ : तिनमंहि दसवारुण दलण उप्पारहिं गयदन्त।
धा० ३५० : तिनमंहि पंच प्रपंच से लखिय न गति तिन काज।
धा० ३५९ : मिले पुब्ब पच्छिम हुतो चाहुवान सुरताण।
धा० ३६० : मिले जाइ चहुवान सुरताण खग्गे। (धा० मो० ना० द० शा० उ० स०
धा० ३६५ : तुह दुज्जी दुज्जी घरी दिन पछर्‌यो (पलट्यो-पाठां०) चहुवान।
धा० ३६६ : दिन पलट्यैं पलट्यौ न मनु भुज वाहे सत्र शल्ल।
धा० ३६६ : अरि मिर्‌यौ (मिट्यौ-पाठां०) मिटे न को लखो जु धाता पत्र।
धा० ३६७ : विधात्रा लिखतं यस्य न तेन मुच्यंति मानवा।
धा० ३६९ : तजि पुत्र मित्र माया सकल गहिय चन्द गज्जनइ राहि।
धा० ३७० : गहिय चन्द रह गज्जने जह सजन नूं नरिंद। (अ०फ०ना०द०शा०उ०स०
धा० ३७५ : भवल भोग रहु छंडिकै किम जोगे (जोगी-पाठां०) रहु भट्ट।
धा० ३७६ : वहु संजोगी वहु संजोगी अमल परदाह।
धा० ३७७ : छन इक दरहि बिलंबिय मन न करिय कवि मंदु।
धा० ३७८ : तिहि बिलम्ब कवियन करिग सुकवि अप्पनिय इच्छ। (शा० उ० स०
धा० ३८१ : कर अनन्य (अन्यन-पाठां०) दीधो असीस।
धा० ३८२ : दइत असीस न सिर नयो वन अच्छ्यो फुरमान।

(धा० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०

धा० ३८३ : जिहि बहुत चन्द महिमान कीन।
धा० ३८४ : करहि चन्द महिमान सब अगर धूप दिव देह।

(मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०

धा० ३८५ : प्रखत चन्द मन मरनसुं हम इच्छयो सुविहानु।
धा० ३८६ : भव विहान दर वजे ता दुव्व निसान। (शा० उ० स०
धा० ३९१ : [दौरि चंदि संमुह चलै वे कुल्लै सुरतान।—मो०]
धा० ३९२ : बोल्यो सु चंद हज्जूर गाहि। (मो० ना० द० शा० उ० स०
धा० ३९२ : जोगहि विरुद्ध हम मिलण मत्ति।
धा० ३९३ : हमहि मिलहि वे चंद सुनि विरहि दक्खिन्द सछोभ। (ना० द० शा० उ० स०
धा० ३९२ : जोगहि विरुद्ध हम मिलण मत्ति।
धा० ३९४ : जोग भोग रह रीति सब सब जाणउ सुविहान।

(७३) धा० ३९८ : सु [दु] रोग मन रोग भो कढन कहूं सु विहान ।
धा० ३९९ : जू कढ्ढग्ग कूं पतिसाह तुही । (शा० उ० स०)

(७४) धा० ४०० : अंखि हीन बलहीन तउ (मउ-पाठां०) को (का-पाठां०) मग्गइ मति नट्ठ ।
धा० ४०१ : अंखि विनट्ठी बल घट्यो मति नट्ठी सुलतान ।

(७५) धा० ४०५ : पहिचानि चंद वर सुनिग सीस । सिर नयो नहीं मन भई रीस ।
धा० ४०७ : रिस सुनि सीसु निषेधु कीय जिय लुभि चंद सुहाल । (ना०द०शा०स०उ०)

(७६) धा० ४०६ : संभरि नरेस करि रीस सीस सुनहि न धनु सज्जहि ।
धा० ४०७ : रिस सुनि सीस निषेधु कीय जिय लुभि चंद सुहाल ।

(७७) धा० ४१६ : हनौं रिपू घरियार सउं जउ अप्पइ विय बान ।
धा० ४१७ : इक्क बाण चहुवाण राम रावण उथ्थप्पिय । (ना०)

(७८) धा० ४२० : सुलताण पर्यो खां पुकर्यो त दिन चंद राजन मरण ।
[धा० ४२२ : मरन चंद बरदिया राज पुनि सुनिग साह हनि ।—मो०] ।
(धा० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

उपर्युक्त को देखने से ज्ञात होगा कि उक्ति-शृंखला के ७८ स्थलों में से ५४ स्थलों पर विभिन्न प्रतियों में ऐसे अंश आते हैं जो उस शृंखला को त्रुटित करते हैं, और अलग-अलग प्रतियों में इस शृंखला-त्रुटि की संख्या है : धा० : ११, मो० : १५, अ० फ० : १५, म० : २९,[1] ना० : ३३, द० : २७, शा० उ० स० : ४९ । शृंखला-त्रुटि उपस्थित करने वाले छन्द इन समस्त प्रतियों में अन्यथा भी सदोष हैं और प्रसङ्ग में अनावश्यक हैं, यह स्वतः देखा जा सकता है ।[2]

उपर्युक्त विश्लेषण से तीन बातें ज्ञात होती हैं :—

[१] धा०, मो० तथा अ० फ० में उक्ति-शृंखला प्रायः सब से कम स्थलों पर त्रुटित है, ना० और द० में उसके प्रायः दूने स्थलों पर त्रुटित है, म० में तिगुने और शा० उ० स० में साढ़े तीन गुने । उक्ति-शृंखला के इस प्रकार अधिकाधिक त्रुटित होने का एक मात्र कारण ऐसे व्यक्तियों के द्वारा की हुई पाठ-वृद्धि होनी चाहिये जो इसे जान नहीं सके और इसलिए इसे सुरक्षित रखते हुए पाठ-वृद्धि न कर सके । अतः यह प्रकट है कि धा०, मो० तथा अ० फ० रचना के मूल पाठ के सबसे अधिक निकट हैं, ना० तथा द० अपेक्षाकृत दूर और म० तथा शा० उ० स० सब से अधिक दूर । यदि संक्षेप-क्रिया हुई होती तो परिणाम इसका ठीक उलटा मिलता—शा० उ० स० म० के पाठ सब से अधिक सुशृंखलित मिलते, उनसे कम ना० तथा द० के और इनसे भी कम अ० फ०, मो० तथा धा० के ।[3]

[1] ऊपर हम देख चुके हैं कि म० में रचना का दो-तिहाई पाठ ही है, पूरा पाठ होता तो यह संख्या कदाचित् ४४ के लगभग होती ।

[2] आगे 'पृथ्वीराज रासो का मूल रूप' शीर्षक के अन्तर्गत धा० में मिलने वाली उक्ति-शृंखला-त्रुटियों पर विचार किया गया है ।

[3] कई वर्ष पूर्व जब मुझे रचना के अन्य पाठ प्राप्त नहीं हुए थे, इस समस्या पर विचार मैंने प्राप्त तीन पाठों अ०, ना० तथा स० में मिलने वाले अत्युक्ति-सूत्र की सहायता से किया था । (पृथ्वीराज रासो के तीन पाठों का आकार-सम्बन्ध—हिन्दी अनुशीलन पौष-चैत्र, सं० २०११) उक्त पाठों में प्राप्त हुए संख्यात्मक विवरणों की तुलना के अनन्तर मैं इस परिणाम पर पहुँचा था कि ना० और तदनंतर स० में उत्तरोत्तर अ० की तुलना में अत्युक्ति-वृद्धि हुई दिखाई पड़ती है, इस लिये वे उत्तरोत्तर अ० के अधिकाधिक प्रक्षिप्त रूपांतर होंगे, यह नहीं कि ना० और फिर अ०

[२] पहले हमने देखा है कि मो० पाठ आकार में धा० का लगभग सवाया है, अ० फ० पाठ मो० का लगभग दूना है, म० ना० तथा द० पाठ अ० के लगभग तिगुने हैं, और शा० उ० स० पाठ अलग-अलग म० ना० द० का भी तिगुना है। किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि विभिन्न पाठों में शृंखला-त्रुटि इस अनुपात में नहीं मिलती है, यद्यपि मोटे ढंग पर धा०, मो० तथा अ० फ० की तुलना मे वह ना० तथा द० में अधिक है, और ना० तथा द० की तुलना में वह म० तथा शा० उ० स० मे अधिक है। प्रश्न हो सकता है कि इसका कारण क्या है। इसका कारण यही है कि पाठ-वृद्धि मुख्यतः दो दिशाओं में हुई है: एक तो नए-नए प्रसङ्गों और नई-नई कथाओं की कल्पना की दिशा में और दूसरे प्राप्त प्रसंगों और कथाओं को कुछ और विवरणों के साथ प्रस्तुत करने की दिशा में। ऊपर शृंखला-त्रुटियों पर जो विचार किया गया है उसमें इस दूसरी दिशा में की हुई पाठ-वृद्धि ही ली जा सकी है, पहली दिशा में की हुई पाठ-वृद्धि नहीं, क्योंकि उसमें ऐसे ही कथा-प्रसंग देखे जा सके हैं जो रचना के सब से छोटे पाठ धा० तक में मिलते हैं, शेष कथा-प्रसंग छूट गए हैं।

[३] रचना के जो सब से छोटे पाठ धा० तथा मो० हैं, वे भी इस प्रकार किए गये प्रक्षेपों से मु त नहीं है। दो-एक स्थलों तक इस प्रकार की कोई बात होती, तो यह समझा जा सकता था कि धा० तथा मो० में पाई जाने वाली वह उक्ति-शृंखला-त्रुटि अन्यों के द्वारा की हुई पाठ-वृद्धि के अतिरिक्त किसी और प्रकार से भी हुई हो सकती है, किन्तु एक दर्जन के लगभग स्थलों पर मिलने वाली यह उक्ति-शृखला-त्रुटियाँ प्रक्षेप पूर्ण पाठ-वृद्धि के कारण ही हुई हो सकती हैं, किसी अन्य प्रकार से नहीं।

छंद—शृंखला

ऊपर हमने जिस प्रकार धा० के छंदों को लेकर देखा है कि मूल रचना में आदि से अन्त तक उक्ति-शृंखलाएं रही होंगी, जो बीच में नवीन छंदों के रखने से उत्तरोत्तर त्रुटित होती रही हैं, उसी प्रकार यदि हम धा० के छंदों को लेकर पुनः ध्यान से देखें और विभिन्न पाठों का मिलान करें तो ज्ञात होगा कि पहले अनेक छंद या रूपक एक और अविभक्त थे किन्तु बाद में उनको विभक्त कर बीच-बीच में नए छंद रख दिए गए, जिससे पूर्ववर्ती छंद-शृंखला रचना में अनेक स्थलों पर त्रुटित हो गई। नीचे धा० में आने वाले ऐसे रूपक दिए जा रहे हैं, जो रचना की किन्हीं भी प्रतियों में त्रुटित हुए हैं। उनकी रूपक-संख्या धा० से देते हुए, जिन प्रतियों में वे त्रुटित हुए हैं उन का उल्लेख किया जा रहा है।

(१) धा० ३३-३४ : छंद पद्धडी है। अ० फ०, ना० तथा द० में यह एक ही रूपक है किन्तु धा० तथा मो० में ५६ दो रूपकों में बँटा हुआ है, जिनके छंद अलग-अलग बताए गए हैं, यद्यपि बीच में कोई अन्य रूपक नहीं आते हैं। म० यहाँ खंडित है। शा० उ० स० में धा० और मो० के दो रूपकों के बीच तीन अन्य रूपक भी आते हैं जो अन्य किसी प्रति में नहीं हैं।

(२) धा० ३६ : छंद पद्धडी है। धा० तथा अ० फ० में यह एक रूपक है। मो० में यह दो

उत्तरोत्तर स० के संक्षिप्त रूपांतरों के रूप में निर्मित हुए हों, क्योंकि संक्षेप-क्रिया में छन्द कम किए जा सकते हैं, पंक्तियाँ कम की जा सकती हैं, किन्तु यह नहीं हो सकता है कि संख्याएँ घटा-बढ़ा दी जावें। संख्याओं में परिवर्तन केवल प्रक्षेप की दृष्टि से किए जा सकते हैं, और म० की तुलना में ना० में और ना० की तुलना में स० में जो पाठ-भेद संख्यात्मक विवरणों में मिलता है उसमें अत्युक्ति-मूलक प्रक्षेप की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रबल दिखाई पड़ती है, इसलिए म० पाठ की तुलना में ना० पाठ तथा ना० पाठ की तुलना में स० पाठ को परवर्ती होना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि उक्त परिणाम की पुष्टि उक्ति-शृंखला त्रुटियों के इन अधिक दृढ़ प्रमाणों द्वारा हुई है।

रूपकों में बँट गया है और दोनों के बीच में तीन नए रूपक आ गए हैं। म० खंडित है। द० शा० उ० स० में यह तीन तथा ना० में यही पाँच रूपकों में बँट गया है और इन खंडों के बीच अनेक छंद आते हैं जो धा० अ० फ० में नहीं मिलते हैं।

(३) धा० ४० : छंद पद्धडी है। धा० तथा अ० फ० में यह एक रूपक है। मो० में यह दो रूपकों में बँट गया है, और दोनों के बीच धा० २९ (=अ० ६. दो० ३) को रख दिया गया है। म० खंडित है। ना० द० शा० उ० स० में भी यह दो रूपकों में बँटा हुआ है, और बीच में धा० २९ (आ० ६. दो० ३) के अतिरिक्त एक अन्य रूपक भी रख दिया गया है।

(४) धा० १९३ : छंद दोहा है। यह धा० मो० अ० फ० ना० द० में एक रूपक है, किन्तु म० शा० उ० स० में दो और पंक्तियों को मिला कर दो रूपकों में बाँट दिया गया है।

(५) धा० २४१ : छंद भुजंगी है। यह धा० मो० अ० फ० में एक ही रूपक है, किन्तु म० ना० द० शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है, और उनके बीच में कुछ अन्य रूपक भी रख दिए गए हैं जो धा० मो० अ० फ० मे नहीं हैं।

(६) धा० २६९ : छंद त्रोटक है। यह धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स० में एक ही रूपक है। मो० में इसे दो रूपकों में बाँट कर धा० २३९ को रख दिया गया है।

(७) धा० २९१ : छंद दोहा है। यह धा० मो० अ० फ० द० में एक ही रूपक है, किन्तु म० ना० शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है जिनके बीच में एक और रूपक रख दिया गया है।

(८) धा० २७० : छंद त्रोटक है। यह धा० अ० फ० में एक ही रूपक है, किन्तु मो० म० न० द० शा० उ० स० में इसे दो रूपकों में बाँटकर बीच में धा० २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४ तथा २९५ को तथा कुछ ऐसे रूपकों को भी रखा गया है जो धा० अ० फ० मे नहीं हैं।

(९) धा० ३६०-३६२ : छंद भुजंगी है। यह मो० ना० द० उ० स० में एक ही रूपक है किन्तु धा० में दो रूपकों में और अ० फ० में तीन रूपकों में बँट गया है, जिनके बीच में अनेक रूपक ऐसे आते हैं जो धा० मो० में नहीं हैं, यद्यपि वे ना० द० शा० उ० स० में अन्यत्र आते हैं।

(१०) धा० ३६९ : छंद कवित्त है। यह केवल धा० में एक रूपक है, शेष समस्त अर्थात मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स० में दो रूपकों मे बँट गया है : कवित्त के प्रथम चार चरणों के साथ अन्य दो चरण मिलाकर एक रूपक बना लिया गया है, बीच मे अन्य अनेक रूपक और रख दिए गए हैं, तदनंतर पूर्ववर्ती कवित्त के शेष दो चरण एक स्वतन्त्र रूपक के रूप में आते हैं।

(११) धा० ३८३ : छंद पद्धडी है। यह धा० मो० अ० फ० ना० द० में एक ही रूपक है। शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है जिसके बीच में एक अन्य रूपक भी रख दिया गया है।

(१२) धा० ४०३-४०५ : छंद पद्धडी है। यह अ० फ० में एक रूपक है, धा० में यह दो रूपकों बँट गया है, मो० ना० द० शा० उ० स० में यह तीन रूपकों में बँट गया है, और बीच-बीच में दूसरे रूपक भी आ गए हैं, जिनमें से कुछ धा० अ० फ० में मिलते हैं और कुछ नहीं मिलते हैं।

इन छंदों को प्रसंग-शृंखला की दृष्टि से स्वतः देखा जा सकता है।[1] उपर्युक्त मे द्वितीय अर्थात् धा० ३६ ही एक मात्र ऐसा छंद है जिसमें संयोगिता और उसकी सखियों की वसंतागमन में हर्षोत्फुल्लता का वर्णन करके अन्त के चार चरणों में एक भिन्न विषय-पृथ्वीराज के सामन्तों का मिलकर कन्नौज पर चढ़ाई करने के निश्चय—का उल्लेख है। शेष छंदों में आदि से अन्त तक एक ही विषय है और उनकी छंद-शृंखला त्रुटित होने के साथ साथ प्रसंग-शृंखला भी त्रुटित हुई है।

[1] धा० के छंद-शृंखला-अतिक्रमण पर विचार 'पृथ्वीराज रासो का मूलरूप' शीर्षक के अन्तर्गत आगे किया गया है।

विभिन्न प्रतियों में उपर्युक्त बारह छंद-त्रुटियाँ इस प्रकार आती हैं :—

धा०	:	१
अ० फ०	:	२
मो०	:	६
म०	:	४[1]
ना०	:	७
द०	:	७
शा० उ० स०	:	१०

यह ध्यान देने योग्य है कि विभिन्न प्रतियों के पाठों के बारे में जिस परिणाम पर हम ऊपर उक्ति-शृंखला-त्रुटियों के आधार पर पहुँचे हैं, लगभग उसी परिणाम पर हम ही यहाँ छंद-शृंखला त्रुटियों के आधार पर भी पहुँच रहे हैं। अन्तर केवल मो० के सम्बन्ध में पड़ा है : वहाँ मो० प्रति धा० तथा अ० फ० के साथ दिखाई पड़ी थी, और यहाँ वह म० ना० द० के साथ है।

सब से कम शृंखला त्रुटि वाली प्रतियों में पूर्वापर सम्बन्ध

अब प्रश्न यह उठता है कि जब धा० मो० तथा अ० फ० में उक्ति-शृंखला लगभग समान रूप से कम त्रुटित है, और छन्द-शृंखला धा० अ० फ० में सबसे कम त्रुटित है, फिर भी तीनों की रूपक-संख्या भिन्न भिन्न है, तो इन चारों के पाठों में कोई पूर्वापर सम्बन्ध भी है या नहीं, और यदि है तो वह किस रूप में है।

यदि हम अ० फ० के पाठ को लें, तो देखेंगे कि उसमें निम्न-लिखित उल्लेख-वैषम्य मिलते हैं :—

(१) अ० ८. भुजं० १ में अचलराय, जयसिंह चन्देल, देवराज बारर, बरनराय, बीकम कमधुज्ज, रूपरायदाहिमा, सदाशिव, सारन तथा सेनचन्द्र पृथ्वीराज के साथ कन्नौज जाते हैं, किन्तु तदनन्तर न इनका उल्लेख उन योद्धाओं में होता है जो वहाँ युद्ध में मारे जाते हैं, और न वहाँ से लौटे हुए योद्धाओं की नामावली (अ० १२. पद्ध० ३) में होता है।

(२) अ० ९. भुजं० ३ = धा० १६१ में जिन स्थानों के जयचन्द द्वारा विजित होने का उल्लेख है, उनमें से अधिकतर का उल्लेख, अ० ३. दो० २, ३, तथा नारा० १ में उसके पिता विजयपाल के द्वारा विजित स्थानों में उसके पहले ही मिलता है, यथा कर्णाट, गूर्जर, गुंड और मिथिला।

(३) अ० ६. साट० १ = धा० ४७ में मंडोवर को पृथ्वीराज द्वारा दलित कहा गया है, और अ० ६. साट० २ = धा० ४८ में उसी को जयचन्द द्वारा भी दलित कहा गया है।

(४) अ० १०. कवि० ५ = धा० २५६ में गोविंदराय गुहलौत के मारे जाने का उल्लेख है, जब कि बाद में अ० १४. कवि० २९ में शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध के समय की गोष्ठी में उसके सम्मिलित होने का भी उल्लेख हुआ है।

(५) अ० ११. कवि० २ = धा० २८९ में थट्टा का शासक मान भट्टी (एक राजपूत) बताया गया है, जब कि अ० १४. कवि० १२ में उसके ब्राह्मण शासक का चामंडराय द्वारा पराजित किया जाना कहा गया है।

(६) अ० ११. कवि० ८ में पट्टन का स्वामी प्रतापराय कहा गया है, जो कन्नौज के युद्ध में जयचन्द की ओर से लड़ता है; अ० १८. कवि० ९ में इसका स्वामी सावलिंग सिंह बताया गया है, जो पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से लड़ता है।

[1] किन्तु म० में पूरी कथा का केवल दो-तिहाई आता है, इसलिए संपूर्ण कथा के अनुपात से यह संख्या ६ होगी।

(७) अ० ९. भुजंगी १ में० मारूराय कन्नौज गया है और वहाँ लड़ा भी है (अ० ११. कवि० ४ =धा० ३९२); पीछे वह पुनः पृथीराज की ओर से शहाबुद्दीन के साथ के उसके अन्तिम युद्ध में भी लड़ता है (अ० १५. कवि० १९, १७. कवि० ७, कवि० ९, कवि० १०, दो० २)। फिर भी उन योद्धाओं की सूची (अ० १२. पद्ध० ३) में इसका नाम नहीं है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज-युद्ध के अनन्तर वापस होते हैं।

(८) अ० २. पद्ध० ७ में मोरीराज के दल को सोमेश्वर ने नष्ट किया था, यह कहा गया है, अ० ६. साट० १ में पुनः पृथ्वीराज के सम्बन्ध में यही बात कही गई है, फिर भी अ० १५. कवि० १८ में वह पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से लड़ा है।

(९) अ० १३. कवि० १८ तथा अ० १४. वार्त्ता ४ में शहाबुद्दीन को जलाउद्दीन नन्दन कहा गया है, जबकि अ० १९. कवि० १३ में जलाउद्दीन स्वयं शहाबुद्दीन है।

(१०) अ० १६. दो० ४ तथा पूर्ववर्ती कुण्डलिया में जैत के मारे जाने का उल्लेख है, किन्तु अ० १७. साट० ३ तथा अ० १७. भुजं० ३ में उसे शहाबुद्दीन के विरुद्ध लड़ता हुआ दिखाया गया है।

(११) १८. कवि० १० में 'बदी' (=कृष्णपक्ष) का उल्लेख है, जबकि उसके पूर्व ही अमावास्या का उल्लेख हुआ है (१६. कवि० ७, १७. त्रो० ५)।

(१२) अ० १४. दो० २९ में चामंड राय को मानपुंडीर के कुल का कहा गया है, किन्तु अ० १४. दो० ३१ और दो० ३२ में उसे दाहिमा कहा गया है जब कि दाहिमा तथा पुंडीर दो भिन्न भिन्न राजपूत जातियाँ हैं (अ० १४. दो० २९)।

(१३) अ० खण्ड ४ में जिन योद्धाओं का उल्लेख गोरी-पृथ्वीराज युद्ध में होता है वे हैं:— चामंडराय, प्रसंगराय खीची, देवराय बागरी, महनसिंह परिहार, जाज यादव, जामानी यादव, सलष पँवार, तथा आजानु बाहु लोहाना। किन्तु बाद में (अ० ७. त्रो० २) में जिन सामन्तों को उक्त युद्ध में विजय का श्रेय दिया जाता है वे हैं: नीडुर, पहाड़राय तोमर और अल्ह, जिनका नाम भी खण्ड ४ में कहीं नहीं आता है।

(१४) अ० खण्ड ५ में जिन योद्धाओं का उल्लेख भीम-पृथ्वीराज युद्ध में होता है, वे हैं:— देवराय बागरी, जामानी यादव, जाज यादव, रामराय बड़गूजर, जैत पँवार, गोविन्दराय गुहलौत, गाजी गौड़, असाराव हाड़ा, लंगा लंगरीराय, वलीराय, कहरराय कूरंभ, नियराय, गजू, अजू, अजुन, पहाड़ पारारि, और हमीर: किन्तु बाद में (अ० ७. त्रो० २) में जिन सामन्तों को उक्त युद्ध में विजय का श्रेय दिया जाता है, वे हैं हरसिंह तथा विझराज, जिनका कोई उल्लेख खण्ड ५ में नहीं होता है।

(१५) अ० ११. कवि० २७ (= धा० २६६) में अपने सामन्तों में यह विश्वास दिलाने पर कि वे कन्नौज से दिल्ली के 'पंच षाठि सौ कोस' के मार्ग भर एक-एक करके जूझते हुए जिस प्रकार भी सम्भव होगा पृथ्वीराज और संयोगिता को दिल्ली पहुँचा देंगे, पृथ्वीराज दिल्ली की ओर मुड़ पड़ता है। अ० १२. कवि० २३ (=धा० ३०४) में उन सामन्तों की नामावली मार्ग की उस दूरी के साथ दी गई है जो उन्होंने जूझते हुए पृथ्वीराज और संयोगिता को तै कराई है, और इसका योग पूर्वोक्त छन्द में दी हुई कन्नौज से दिल्ली की दूरी से मिलती है। अ० फ० के विभिन्न अतिरिक्त छन्दों में, जो धा० में नहीं मिलते हैं, अ० १२. कवि २३ (=धा० ३०४) में उल्लिखित सामन्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित के भी लड़ते हुए जूझ जाने का विवरण मिलता है, और वह भी अ० १२. कवि० २३ (= धा० ३०४) के ठीक पूर्व:—

अ० १२. कवि० १६: पट्टन के चालुक कचरा राय का,
अ० १२. कवि० १७, तथा कवि० २०: जंघारा राव भीम का,
अ० १२ भुज० तथा कवि० ११: सिंह (सादूल) बारर का,

९२२५८
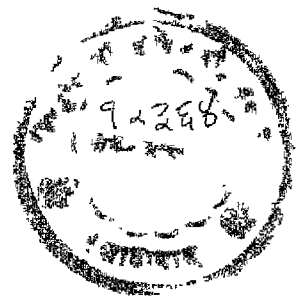
अ० १२. कवि० २० : अजमेर के सागर गौड़ का,
अ० १२. कवि० २० : एक जाँगरा शूर का।

प्रकट है कि यह विस्तार प्रक्षिप्त है।

इस उल्लेख-वैषम्य के अतिरिक्त अ० फ० में तीन ऐसे इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों के उल्लेख भी आते हैं जो पृथ्वीराज के बहुत पीछे हुए हैं :—

(१) अ० ११. कवि० ६ : महाराष्ट्रपति कन्हराय,
(२) अ० १४. कवि० ६—अ० १६. कवि० २ : चित्तौर नरेश रावल समरसी,
(३) अ० १५. कवि० ८ : हम्मीर देव।

कन्नौज के युद्ध में महाराष्ट्रपति कन्हराय जयचन्द की ओर से सम्मिलित हुआ है, जब कि उसका राज्य-काल सं० १२०४ से १२१७ तक था।[1] गोरी और पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से रावल समरसी सम्मिलित हुआ है, जब कि उसके शिलालेखादि सं० १३३० से १३५८ तक के मिलते हैं।[2] वर-प्राप्ति के लिए हम्मीर के द्वारा देवी को अपना सिर काट कर भेंट करने की बात कही गई है,[3] जब कि उसने सं० १३५८ में अलाउद्दीन से लड़ कर वीर गति प्राप्त की थी।

किन्तु इनमें से एक भी धा० या मो० में नहीं है, यह तथ्य भी इसी ओर संकेत करता है कि अ० फ० पाठ धा० तथा मो० पाठों के बाद का है।

यहाँ पर यह शंका उठाई जा सकती है कि यदि अ० फ० पाठ धा० तथा मो० के बाद का है तो अ० फ० पाठ में भी लगभग उतनी ही उक्ति-शृंखला-त्रुटि क्यों मिलती है जितनी धा० अथवा मो० में मिलती है और छन्द-शृंखला त्रुटि भी प्रायः बराबर ही किन्तु मो० से बहुत कम मिलती है। इसका समाधान यही है कि अ० फ० के प्रक्षेपकार ने मुख्यतः नवीन प्रसङ्ग तथा कथा-कल्पना की दिशा में प्रक्षेप किया, प्राप्त प्रसंगों में विवरण-विस्तार का यत्न बहुत कम किया, जिससे कि पूर्व प्राप्त पाठ की उक्ति और छन्द शृंखलाएँ बहुत कुछ सुरक्षित रह सकीं; यह भी असम्भव नहीं है कि उक्ति और छन्द-शृंखलाओं को जान कर पाठवृद्धि करते हुए उसने उन्हें बचाने का यत्न किया हो।

कुछ समय पूर्व[4] 'पृथ्वीराज-रासो का लघुतम रूपान्तर (?)' शीर्षक एक लेख लिखते हुए मैंने धा० तथा मो० में कुछ ऐसी बातें दिखाई थीं कि जिनसे धा० और मो० रचना के पूर्ण पाठ की प्रतियाँ न ज्ञात होकर किसी प्रक्षेपयुक्त छन्द-चयन या संक्षेप मात्र की प्रतियाँ प्रतीत होती हैं। ये बातें तीन प्रकार की थीं। एक तो धा० पाठ के अन्त में मिलने वाले दोहे और उसकी पुष्पिका के सम्बन्ध की थी, जिनमें रचना को 'पृथ्वीराज रासउ रसाल' कहा गया है, दूसरी उन प्रसङ्ग-त्रुटियों के सम्बन्ध की थी जो धा० और मो० के पाठों में ही मिलती हैं, अन्य पाठों में नहीं, और तीसरी उन पाठ और प्रसङ्ग-त्रुटियों के विषय की थीं जो धा० और मो० के अतिरिक्त अ० फ० में भी मिलती है। नीचे उक्त लेख के आवश्यक अंश दिए जा रहे हैं :—

ऊपर उद्धृत [धा० तथा मो० का] पुष्पिकाओं को ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि यद्यपि मो० में रचना का नाम "पृथ्वीराज रासु (रासौ)" दिया गया है, धा० में उसे "राजा श्री प्रिथीराज चहुआण रासु रसाल" कहा गया है। अभी तक जितनी भी अन्य प्रतियाँ रचना की प्राप्त हुई है,

[1] भांडारकर : अर्ली हिस्ट्री ऑव दि डेकन, पृ० १०९।

[2] ,, : इन्सक्रुप्शन्स ऑव नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० ८२-५२।

[3] तुलना० 'हौं रनथंभउर नाँह हमीरू। कलपि माँथ जेइँ दीन्ह सरीरू।' जायसी-ग्रंथावली (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) 'पद्मावत' ४९१.३।

[4] दे० हिन्दी अनुशीलन, जुलाई-सितम्बर, १९५७, पृ० ९-१५।

उनमें से किसी में उसे "रसाल" नहीं कहा गया है। इतना ही नहीं, इस प्रति के पाठ के अन्त में एक दूहा आता है, और इसमें भी रचना का नाम यही है :—

सा... ... ...मइणहु चंद नरिंद।
रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद ॥

और यह दूहा भी अन्य पाठ या प्रति में नहीं मिलता है। अतः उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने से पूर्व इस 'रसाल' शब्द पर विचार कर लेना आवश्यक होगा।

कोशों में इस शब्द के आम, ईख, गेहूँ आदि कुछ अर्थ मिलते हैं, जिनमें से कोई यहां संगत नहीं है। इससे मिलता हुआ एक शब्द 'रसालु' मिलता है, जिसका प्रयोग प्राकृत ग्रंथों में हुआ है, और 'पाइअ सद्द महण्णवो' में इसका अर्थ "मज्जिका या राज-योग्य पाक विशेष" देते हुए बताया गया है कि यह घृत, मधु, दही, मिर्च तथा चीनी से बनता है। इस अर्थ से भी हमें कुछ अधिक सहायता नहीं मिलती है। किन्तु इस शब्द का एक और प्रयोग भी मिलता है—वह है संकलन या चयन-ग्रंथ के अर्थ में। एक अज्ञात लेखक द्वारा संकलित 'उपदेश रसाल' नामक एक ग्रन्थ है, जिसमें जैन धर्मोपदेश को लक्ष्य करके अनेक कथा-कहानियाँ रत्नमन्दिर कृत 'उपदेश तरंगिणी' तथा अन्य ग्रन्थों से उद्धृत की गई हैं। उसकी पुष्पिका में लिखा है :—

"इति श्री उपदेश रसाल नामा ग्रन्थ उपदेश तरंगिणी २४ प्रबन्धादि बहु शास्त्राण्यऽवलोक्यउ [द्] धृतः[1]

यह अवश्य है कि 'रसाल' शब्द का यह प्रयोग पाक-विशेष अर्थ वाले 'रसाल' का ही एक साहित्यिक उपयोग प्रतीत होता है। मुझे ऐसा लगता है कि ऊपर 'पृथ्वीराज रासो' के साथ आए हुए 'रसाल' शब्द का अभिप्राय भी कुछ इसी प्रकार का है : 'पृथ्वीराज रासो' के विविध प्रसंगों से कुछ उत्कृष्ट छंद लेकर उक्त पाठ को तैयार किया गया, इसीलिए उसे 'पृथ्वीराज रासउ रसाल' कहा गया।

'राउल रसाल' के छन्द-संकलन पर दृष्टि डालने पर यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है।

(१) 'रासउ रसाल' में खट्टू में द्रव्य-प्राप्ति प्रकरण[2] का केवल एक छन्द है :—

[खट्टू आखेटक रवन] महिम सुरस्थल थांनु।
नागवरी गवरी गुरन मति निम्मल परधांन ॥ (धा० २६ = स० २४.१)

कथा में इस छन्द की संगति क्या है, यह उक्त प्रकरण के अन्य छन्दों के अभाव में ज्ञात नहीं होता है।

(२) 'रासउ रसाल' में दिल्ली-दान प्रकरण[3] के केवल निम्नलिखित दो छन्द हैं :—

जोगिनिपुर चहुवान लिय पुत्तिय पुत्त नरेस।
अनंगपाल तोंवर तिरण किय तीरथ परवेस ॥ (धा० २८ = स० १८.९६)
पदह सह सामन्त सजि चलै निरघोष सुनिंद।
सोमेसुर नन्दन अटल दिल्ली सुथिर नरिंद ॥ (धा० २९ = स० १८.१०४)

स्वभावतः यहाँ पर प्रश्न उठता है कि योगिनीपुर (दिल्ली) को चहुवान पृथ्वीराज ने किस प्रकार लिया। अतः यह प्रसंग भी उसमें अधूरा रह जाता है।

[1] दे० 'कैटेलॉग आव् टॉड कलेक्शन इन दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी,' जर्नल ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, अप्रैल १९४०, पृ० १३२।

[2] अ० २, साट० ३ से अ० २, कवि० ४ तक; स० खंड २४।

[3] अ० १, दो० १७ से अ० २, दो० २१ तक; स० खंड १८।

(३) 'रासउ रसाल' में जयचन्द तथा संयोगिता के पूर्व-परिचय,[१] भीम चौलुक्य तथा शहाबुद्दीन गोरी से पृथ्वीराज के संघर्ष और इंछिनी विवाह[२] के एक भी छन्द नहीं हैं। उसमें दिल्ली-दान प्रकरण के बाद ही 'कनवज के राजा की बात' प्रारम्भ हो जाती है और हमें संयोगिता प्रथम दर्शन में मुर्गों को अपने हाथों से यवांकुर चुगाती हुई दिखाई पड़ती है।[३] यह संयोगिता कौन है, न इस छंद में कहा जाता है और न इसके पहले कहीं। इसी प्रकार आगे कैंवास-वध प्रकरण[४] में पट्टराज्ञी इंछिनी के ही बुलाने पर आखेट से आकर पृथ्वीराज कैंवास का बध करता है और 'रासउ रसाल' में यहाँ इंछिनी पट्टराज्ञी होते हुये भी[५] एक ऐसे पात्र के रूप में हमारे सामने आती है जिससे पहले से हम बिल्कुल परिचित नहीं हैं। 'रासउ रसाल' की कथा में जयचन्द, संयोगिता और इंछिनी के पूर्व-परिचय का अभाव इसलिए प्रबन्ध-त्रुटि लगता है। कथा में भीम चौलुक्य और शहाबुद्दीन गोरी से संघर्ष की कथायें इंछिनी विवाह की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती हैं।

(४) 'लघु पाठ' (अ० फ०) में जयचन्द ने संयोगिता के पास उसकी कुछ सखियों को इसलिए भेजा है कि वे उसे पृथ्वीराज के अनुराग से विरत करें, और इस प्रकरण में जयचन्द की उन दूतियों तथा संयोगिता का एक अच्छा संवाद है।[६] 'रासउ रसाल' में इस प्रकरण के कुछ स्फुट छन्द ही हैं, जिनमें उक्त संवाद सुशृंखलित और उत्तर-प्रतिउत्तर-पूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए दूतियाँ प्रेम की तुलना में यौवन की जो महत्ता प्रतिपादित करती हैं,[७] उसका कोई उत्तर संयोगिता की ओर से नहीं है, जो प्रसंग में अनिवार्य है।

(५) कैंवास-वध प्रकरण में 'लघु पाठ' (अ० फ०) के वे छन्द 'रासउ रसाल' में नहीं हैं जिनमें इंछिनी ने पृथ्वीराज को कैंवास को कर्नाटी के कक्ष में दिखाया है।[८] उक्त प्रकरण में इस प्रकार के संकेत के अभाव में पृथ्वीराज का कैंवास को बाण का संधान कर मारना, जैसा बाद के छन्दों में आया है, किसी प्रकार संभव नहीं लगता है।

(६) 'रासउ रसाल' में पृथ्वीराज के साथ जाने वाले १०६ योद्धाओं की वह संक्षिप्त परिचय-युक्त सूची नहीं है जो 'लघु पाठ' (अ० फ०) में है।[१०] इन योद्धाओं में से अधिकतर के नाम 'रासउ रसाल' में भी बाद में आने वाले कन्नोज-युद्ध प्रकरण में आते हैं। अतः इस सूची के अभाव में उक्त युद्धाओं का उल्लेख अत्यन्त आकस्मिक लगता है, और कभी-कभी तो यहाँ तक नहीं पता चलता है कि कौन किस ओर से युद्ध कर रहा है।

इन प्रबन्ध-त्रुटियों से 'रासउ रसाल' का एक चयनात्मक संक्षेप मात्र होना प्रमाणित है। यह चयन किस पाठ से हुआ, यह दूसरा प्रश्न है जो विचारणीय है। ऊपर हम यह बता ही चुके हैं कि 'रासउ रसाल' के प्रायः समस्त छन्द 'लघु पाठ' (अ० फ०) में आते हैं। पुनः 'लघु पाठ' (अ० फ०)

[१] अ० खंड ३; स० खंड ४५—४७।

[२] अ० खंड ४—५, स० खंड १२—१३।

[३] धा० ३५; अ० ६, रासा १, स० ४८, ७९।

[४] अ० खंड ७, स० खंड ५७, धा० ४८—१०६।

[५] धा० ६९।

[६] अ० ६, दो० ४—खंड के अन्त तक; स० खंड ५०।

[७] धा० ५२; अ० ६, दो० ८; स० ५०,४४।

[८] अ० ७, दो० ६—दो० १०, स० ५७, ८१—८६।

[९] अ० ७, दो० ११; स० ५७, ८७; धा० ९८।

[१०] अ० ८, भुजं० १; स० ६१, १०९—१३२।

के भी समस्त छन्द, आधे दर्जन के लगभग छन्दों को छोड़कर, उस पाठ में आते हैं जिसे 'मध्यम' (ना०) कहा जाता है, और 'मध्यम' के भी अधिकतर छन्द उस पाठ में आते हैं जिसे 'वृहद्' (शा० उ० स०) कहा जाता है। किन्तु 'रासउ रसाल' में तीन-चार छन्दों को छोड़ कोई छन्द ऐसे नहीं हैं जो 'मध्यम' या 'वृहद्' में हों और 'लघु' में न हों, इसलिए यह प्रकट है कि 'रासउ रसाल' 'लघु' का ही एक संकलित संक्षेप है।

इस तथ्य की पुष्टि एक और प्रकार से भी होती है। 'रासउ रसाल' में जो पाठ-भ्रंश आदि के स्थल हैं, उनमें से कुछ 'लघु पाठ' (अ० फ०) में भी पाए जाते हैं। नीचे इस प्रकार के दो प्रमुख उदाहरण दिये जा रहे हैं :—

(१) 'रासउ रसाल' में नीचे लिखी गद्य-वार्ता आती है[१] :—

"पात्र नाम दर्पंकांगी नेतचंगी कुरंगी कोकाक्षी कोकिला रागीमें भागवलानी अंगाल्ल लोल डोल एक बोल अमोल पुष्पांजली पंग सिर नाइ जयति पिय कामदेव।"

मो० में भी पाठ लगभग यही है, केवल साधारण पाठांतर के अतिरिक्त अन्त में आए हुये 'पिय' के स्थान पर पाठ 'बिअ' है।

प्रकट है कि यह केवल पातरों (नर्तकियों) की नामावली नहीं है, यह किसी छन्द का एक त्रुटित रूप है, जिसमें नर्तकियों के नाम गिनाकर कहा गया है कि उन्होंने पंग (जयचन्द) के सिर पर पुष्पांजलि डालते हुये एक स्वर से कहा, "हे प्रिय (मो० पाठ के अनुसार 'दूसरे') कामदेव, तुम्हारी जय हो !"

'लघु पाठ' (अ० फ०) में भी इस छन्द की स्थिति यही है, केवल इसे उसमें 'वार्ता' नहीं कहा गया है, न 'पात्र नाम' का शीर्षक दिया गया है, और अन्त में आये हुए 'पिय' या 'बिअ' के स्थान पर पाठ 'तुव' है।[२] केवल एक प्रति 'लघु पाठ' की ऐसी है जिसमें यह अंश एक साटक (शार्दूल विक्रीड़ित) के रूप में इस प्रकार आता है[३] :—

दीपांगी चन्द्रनेत्रा नलिन अलि मिली नैनरंगी कुरंगी।
कोकाक्षी दीर्घनासा सुरसति कलिरवा नारिदं सारवंगी।
इंद्रानी लोल डोला चपल मतिधरा एक बोली अबोली।
दूहपा वानी विसाला सुभ गिरवरा जैतरंभा सुबोली॥

मेरा अपना अनुमान कि पाठभ्रंश के पूर्व 'लघु पाठ' में छन्द कुछ इस प्रकार रहा होगा :—

दीपांगी चन्द्रनेत्रा नेत्रचंगी कुरंगी।
कोकाक्षी कोकिलानी राग मे भागवानी।
अंगोके लोल डोलं एक बोलं अमोलं।
पुष्पांजलि पंग सिर नाइ जयति बिअ कामदेव॥

और किसी प्रकार पत्र-क्षति के कारण जब इस छन्द के कुछ अंश त्रुटित हो गए, 'रासउ रसाल' तथा 'लघु पाठ' (अ० फ०) की प्रतियों में इसका त्रुटित पाठ ही उतरा। तदनंतर छन्द का रूप तथा आशय पूरा स्पष्ट न होने के कारण 'रासउ रसाल' में इसे 'वार्ता' कह कर 'पात्र नाम' का शीर्षक दे दिया गया, जब कि 'लघु पाठ' की प्रतियों में इसे यथावत् रहने दिया गया; केवल 'लघु पाठ' की उपर्युक्त

[१] धा० १८४ के पूर्व; स० ६१.८४४।

[२] भा० ९. साट० ३।

[३] म० १०.४०८; यह प्रति पूना के भांडार ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट की संख्या १४५५ [१८८१-९५] (उपर्युक्त म०) है।

अपवाद वाली प्रति (म०) के आदर्श में त्रुटित पाठ को प्रक्षेप करके एक भिन्न छन्द के रूप में पूरा कर लिया गया।

(२) 'रासउ रसाल' में एक—निम्नलिखित में से प्रथम—तथा 'लघु पाठ' की समस्त प्रतियों (अ० फ०) में निम्नलिखित दो छन्द 'मध्यम' (ना०) तथा 'बृहद्' पाठ (शा० उ० स०) में मिलनेवाली 'दिल्ली किल्ली कथा' के ऐसे हैं जो उस कथा के अन्य छन्दों के अभाव में बिलकुल बेतुके लगते हैं।[1] इन छन्दों में जगजोति व्यास ने अनंगपाल से [दिल्ली की] कीली को ढीली कर देने का भावी दुष्परिणाम घोषित किया है :—

अनंगपाल चक्कवै बुद्धि जो इसी उकिल्लिय।
भयौ तुअंर मतिहीन करी किल्लीय तैं ढिल्लिय।
कहै व्यास जगजोति अगम आगम हौं जानौं।
तूंअर तैं चहुआन अंत ह्वै हैं तुरकानौं।
तूंअर सु अवट्टि मंडव धरह इक्क राय बलि विक्कवै।
नवसत्त अन्त मेवात पति इक्क छत्त महि चक्कवै॥ (धा० २७=स० ३.२६)
सोरै से सत्योत्तरै विक्रम साक वदीत।
ढिल्ली धर मेवातपति लैहि षग्ग बल जीत॥

(अ० २. दो० २=स० ३.४४)

यह जगजोति व्यास कौन था, दिल्ली की यह कीली अनंगपाल ने क्यों और कैसे ढीली की—आदि बातों का इनमें कोई उल्लेख नहीं होता है। अतः ऐसा लगता है कि 'लघु पाठ' (अ० फ०) के आदर्श के इस प्रकरण में बुरी तरह से खण्डित हो जाने के कारण 'लघु पाठ' की प्रतियाँ (अ० फ०) में केवल दो छन्द आ पाए और 'रासउ रसाल' में इनमें से भी एक ही लिया गया।

इन दो पाठ-त्रुटियों में से कोई भी 'बृहद् पाठ' (शा० उ० स०) नहीं आती है और 'मध्यम पाठ' (ना०) में केवल प्रथम आती है, दूसरी नहीं; अतः इन पाठ-त्रुटियों से यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'रासउ रसाल' का संकलन 'लघु पाठ' (अ० फ०) से किया गया है, 'मध्यम' (ना०) या 'बृहद्' (शा० उ० स०) से नहीं।

यह 'लघुतम रूपान्तर' (धा० मो०) प्रक्षेपों से भी शून्य नहीं है। इसका एक प्रक्षेप तो अति प्रकट है। 'पृथ्वीराज रासो' के 'षट ऋतु वर्णन' के छन्द[2] संयोगिता के साथ पृथ्वीराज के दिल्ली-आगमन के अनन्तर के नवदंपति के संभोग शृंगार के हैं, यह भली भाँति प्रमाणित है, क्योंकि इनमें से एक छन्द में 'संयोग भोगायते' शब्दावली आती है,[3] और 'संयोगी' ग्रन्थ भर में संयोगिता के लिए आया है। किन्तु धा० और मो० में यह छन्दावली पृथ्वीराज के कन्नौज-प्रयाण के पूर्व आती है, और मो० में यहाँ तक कथा गढ़ ली गई है कि पृथ्वीराज की छः रानियाँ हैं जो कन्नौज-प्रयाण से उसे कम से कम एक वर्ष तक—प्रत्येक अलग-अलग एक-एक ऋतु की रमणीयता की ओर उसका ध्यान दिलाते हुए—रोक लेती हैं। इस प्रसंग में विचारणीय यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' के समस्त पाठों में इस ऋतु-वर्णन के बहुत पूर्व यह कहा जा चुका है कि जयचंद के राजसूय यज्ञ और उसके साथ ही होने वाले संयोगिता के

[1] धा० २७; अ० २. कवि० ६ तथा २. दो० २ आ; स० ३.२६ तथा ३.४४।

[2] धा० १०७-११२, अ० १३. साट० २-साट० ७; स० ६१.९; ६१.१८; ६१.२७; ६१.३९; ६१.४९; ६१.६१।

[3] अ० १३. साट० २; स० ६१.९; धा० १०७ [धा० में यह शब्दावली छूटी हुई है, किन्तु मो० में है]।

स्वयंवर के लिए एक विशिष्ट योग युक्त मुहूर्त निश्चित हो गया और उस मुहूर्त को ध्यान में रखते हुए पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी :—

सैंयंवर संग अरु जग्यु काज ।
विद्वज्जन बुझि दिनधरहु आज ॥[1]
रवि जोग पुष्य ससि तीय धाम ।
दिन धरिग देउ पंचमि प्रमान ॥[2]
पर उछह देखित भयो मलान ।
विग्रहन देस चढ़ि चाहुवान ॥

अतः यह प्रकरण न केवल सर्वथा असंगत है, यह कल्पना भी कि उक्त मुहूर्त के साल भर आगे-पीछे तक पृथ्वीराज जयचन्द के यज्ञ-विध्वंस और संयोगिता के अपहरण के लिए कन्नौज जा सकता था, नितान्त हास्यास्पद है।

यह अवश्य है कि वे गद्य-वार्त्ताएँ जो मो० में विभिन्न रानियों का इस प्रसंग में उल्लेख करती हैं धा० में नहीं हैं, किन्तु गद्य-वार्त्ताओं के विषय में, जैसा ऊपर कहा है, इन प्रतियों के प्रतिलिपिकार बहुत साग्रह नहीं ज्ञात होते हैं, क्योंकि दोनों में ऐसी अनेक गद्य-वार्त्ताएँ आती हैं जो एक में हैं तो दूसरी में नहीं हैं, इसलिए दोनों के इस पाठांतर पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता।

फलतः (१) 'लघुतम रूपान्तर' की दोनों प्राप्त प्रतियाँ (धा० मो०) 'पृथ्वीराज रासो' के एक छन्द-चयन मात्र की प्रतियाँ हैं,

(२) यह छन्द-चयन 'पृथ्वीराज रासो' के 'लघु पाठ' (अ० फ०) से किया गया है, तथा

(३) छन्द-चयन के अनन्तर भी इस पाठ (धा० मो०) में प्रक्षेप किया गया है।

इसलिए इस पाठ (धा० मो०) को 'पृथ्वीराज रासो' का 'लघुतम पाठ' या उन्हीं अर्थों में 'लघुतम रूपान्तर' कहना और यह समझना कि इसे 'पृथ्वीराज रासो' का मूल—या कम से कम प्राचीनतम—पाठ माना जा सकता है, ठीक नहीं है।

किन्तु इधर और अधिक अध्ययन करने पर उक्त लेख में उठाई गई शंकाओं में से कुछ के किंचित् भिन्न समाधान मुझे स्वयं मिले, जिनका उल्लेख यथाक्रम नीचे किया जा रहा है।

धा० पाठ का अंतिम दोहा तथा उसकी पुष्पिका में दिया हुआ रचना का "प्रिथीराज चहुआण रासु (=रासउ) रसाल" नाम किसी भी अन्य प्रति में—मो० तक में—नहीं मिलते हैं। धा० के इस अन्तिम दोहे के स्थान पर जो छन्द समस्त पूर्ण पाठ की प्रतियों में समान रूप से मिलता है, वह [मो० के अनुसार] निम्नलिखित है :—

मरन चंद बरदीआ राजपुनि साह हन्युं (=हण्यउ) सुनि ।
पुष्पांजलि असमांन सीस छोडि (=छोडी) स देवतनि ।
मेछह अवधिवत धरनि धरणि नच श्रीय सूहसिग ।
तिनहि तिही सं योति (=जोति) योति (=जोति) योतिहि (=जोतिह) संपत्तिग ।
रासु (=रासउ) असंभु नवरस सरस चंदु चंदु (छन्दु ?) कीअ अमीअ सम ।
शृंगार वीर करुण बिभछु (विभछु ?) भअ रुद सुत (संत ?) हसंत सम (.सम) ॥

धा० के उक्त अन्तिम दोहे का भाव प्रायः वही है जो इस छन्द का है, दोहे की प्रथम पंक्ति की शब्दावली तक इस छन्द की भी प्रथम पंक्ति में मिलती है : दोहे के 'मरण', 'चंद' तथा 'नरिंद' इस

[1] धा० ११; अ० ६, पद्य० २ : स० ४८, ७१।

[2] धा० १६; अ० ६, पद्य० ४; स० ४८, ९९-१०० तथा ४८, १२७।

छन्द की प्रथम पंक्ति में मिलते ही हैं—केवल दोहे के 'नरिंद' के स्थान पर छन्द में उसका पर्याय 'राज' शब्द आता है; दोहे की दूसरी पंक्ति का पूर्वार्द्ध भी इस छन्द की अन्तिम पंक्ति के पूर्वार्द्ध के रूप में मिलता है, केवल दोहे के 'रसाल' के स्थान पर छन्द में 'असंमु' तथा उसके 'निबंधि' के स्थान पर इसमें 'सरस' शब्द आते हैं। ऐसा लगता है कि धा० के किसी पूर्वज में उसके अन्तिम पत्र के क्षत-विक्षत होने के कारण छन्द इस प्रकार त्रुटित हो गया था कि उसके प्रथम चरण के 'मरन चन्द वरदिआ राज' तथा पंचम चरण के 'रासउ असंमु नवरस' मात्र शेष रह गये थे और इन्हीं से, कुछ घटा-बढ़ा कर, सार्थक पाठ देने की दृष्टि से धा० पाठ का उक्त दोहा बना लिया गया, क्योंकि इतने बड़े और सुनियोजित काव्य का उपसंहार मूल में 'रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इहु फणिंद' मात्र शब्दों के द्वारा हुआ हो, कथा-नायक पृथ्वीराज का मरण एक अति सामान्य घटना के रूप में 'मरणहु चन्द नरिंद' शब्दों से उल्लिखित मात्र हुआ हो, और गोरी के वध पर कवि ने कोई टिप्पणी उसमें न की हो यह भी सम्भव नहीं ज्ञात होते हैं। धा० का पाठ प्रक्षेप मुक्त नहीं है, यह जैसा हमने ऊपर देखा है त्रुटित उक्त-शृंखलाओं से प्रमाणित है, इसलिए इस समाधान के सम्बन्ध में शंका के लिए कोई कारण न होना चाहिए।

पुष्पिका में आए हुए 'रसाल' शब्द का समाधान भी उपर्युक्त ही ज्ञात होता है। धा० के किसी पूर्वज आदर्श में उसके अंतिम पत्रे के क्षत-विक्षत हो जाने के कारण यदि पुष्पिका निकल गई हो और प्रतिलिपि-परम्पराओं में कहीं वह भी उपर्युक्त दोहे की भाँति गढ़ ली गई हो तो कुछ आश्चर्य नहीं।

जहाँ तक 'रसाल' के 'चयन' या 'संग्रह' ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त होने की बात है, वह अपनी जगह पर ठीक लगती है, किन्तु दोहे में 'रसाल' शब्द 'नवरस' के प्रसंग में 'रसपूर्ण' के अर्थ में यदि प्रयुक्त हुआ हो, और उसी से वह उस दोहे के साथ गढ़ी गई पुष्पिका में भी आ गया हो तो असम्भव नहीं है।

धा० की प्रसंग-त्रुटियों के जो उल्लेख किए गए हैं, उनमें से प्रथम और द्वितीय 'द्रव्य प्राप्ति' और 'दिल्ली दान' प्रकरणों की हैं। विवेचन की सुविधा के लिये इन्हीं के साथ धा० की उस प्रसंग-त्रुटि को भी लेना होगा जिसका उल्लेख उक्त लेख में धा० मो० तथा अ० फ० की सामान्य प्रसंग-त्रुटि के रूप में बाद में किया गया है, जो 'ढिल्ली किल्ली' प्रकरण की है और उपर्युक्त दोनों के बीच में पड़ती है। ये छन्द ऐसा लगता है कि पहले धा० परम्परा के पूर्वागत पाठ में नहीं थे, पीछे पाठमिश्रण के द्वारा उसमें आए : उक्त अन्य प्रति में ये छन्द एक ही प्रकरण के रूप में या एक साथ पृथ्वीराज के 'वंशोत्पत्ति प्रकरण' के बाद दिए हुये थे, और उससे मिलान करने पर मिलान करने वाले को जब यह दिखाई पड़ा कि धा० के उसको उपलब्ध पूर्वज में ये नहीं हैं, उसने इन्हें धा० के उक्त पूर्वज में रख लिया। पुन : ऐसा लगता है कि यह अन्य प्रति अथवा इसका कोई पूर्वज किसी ऐसे पाठ के छन्द-चयन के द्वारा तैयार किया गया था जिसमें ये समस्त छन्द एक ही प्रकरण में आते थे। ऊपर हमने देखा है कि म० में उसके दूसरे खण्ड 'अर्बुद खण्ड' के बाद ही बिना किसी अथ-इति के कुछ छन्द आते हैं जो अ० फ० में उपर्युक्त दूसरे खण्ड में पूर्ण रूप से सम्मिलित कर लिये गये हैं: अ० फ० में न केवल म० की निम्नलिखित 'अर्बुद खण्ड' विषयक पुष्पिका नहीं रह गई है :—

"इति श्री कवि चन्द विरचिते श्री पृथीराज रासके अर्बुद खण्ड द्वतीयर[२] ॥

इन अतिरिक्त छन्दों की क्रम संख्या भी उसी क्रम में कर दी गई है जिसमें पर्ववर्ती छन्द आते हैं। धा० २५, २६ इस अंश के प्रारम्भ के हैं, धा० २७ इस अंश के मध्य का है और धा० २८, २९ तथा ३० इस अंश के अन्त के हैं। धा० २६ ऊपर दिया जा चुका है, धा० २५ निम्नलिखित है :—

राजत्रै अजमेर केकि कविलं मितो रता संभरी।
हुआरा धर भार वीर वहनो दहनो दुरमं अरी।

सोमेसो सुर नंद चंद गहिला वहिलावन वालिनं।
निरमानं विबनान जानि कविता दिल्लीपुर भासिनं ॥

धा० २७, २८ तथा २९ भी उद्धृत हैं। धा० ३० निम्नलिखित है :—

एका दस सय पंच दह विक्कम साकु अनन्द।
तिहि पुर रिपु जय हरण भयो प्रिथिराज नरिन्द ॥

अत: उक्त पाठ-चयन की प्रति यदि म० अथवा अ० फ० परम्परा की किसी प्रति से तैयार की गई हो तो आश्चर्य न होगा। यहाँ पर यह शंका अवश्य उठाई जा सकती है कि छन्द-चयन की यह परम्परा विचित्र सी लगती है, किन्तु इस प्रकार की एक परम्परा के प्रमाण 'पृथ्वीराज रासो' के ही पाठों में मिलते हैं। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की दो प्रतियाँ इसी प्रकार की हैं: ये हैं टॉड संग्रह की प्रति संख्या १६० तथा १६१।[1] इन दोनों में छन्द-संकलन मनमाने ढंग से किया गया है।

उक्त संग्रह की १६० संख्यक प्रति के प्रथम खण्ड में, जिसे 'आदि पर्व' कहा गया है, केवल दस रूपक हैं और ये दस रूपक ठीक-ठीक वे ही हैं जो शा० उ० स० के प्रथम दस हैं। प्रथम चार रूपकों तक आदि देव, धर्म, कर्म तथा मुक्ति की स्तुति है, पाँचवें रूपक में पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति है, जिसमें चंद द्वारा अपनी रचना को उनका 'उच्छिष्ट' कहा गया है, रूपक ६ तथा ७ में उसके 'उच्छिष्ट' कहने पर चंद की स्त्री शंका करती है, रूपक ८ में चंद उसका समाधान करता है, रूपक ९ में वह पुनः उसी सम्बन्ध में शंका करती है, और रूपक १० में चंद उसका समाधान करता है; यहीं पर 'आदि पर्व' की 'इति' की जाती है। ग्रन्थ का विषय क्या है और किस प्रकार उसके रचयिता को ग्रन्थ-रचना के लिए प्रेरणा मिली, यह सब कुछ नहीं कहा जाता है। इस प्रकार प्रकट है कि इस पाठ में खण्ड के प्रारम्भ के ही रूपक देकर उसकी इति दे दी गई है।

द्वितीय खण्ड में भी उस पाठ के उस खण्ड के केवल प्रारम्भ के तीन रूपक हैं और वे उसी क्रम में दिए हैं जिस क्रम में वे शा० उ० स० में मिलते हैं, तीसरा रूपक तो पूरा दिया भी नहीं गया है जिससे कृष्ण कथा तक भी पूरी नहीं हो पाई है, और स० २. ५७ पर खण्ड समाप्त कर दिया जाता है यद्यपि पुष्पिका में खण्ड को 'दशावतार वर्णन खण्ड' कहा जाता है। किन्तु इसीलिए नवें तथा दसवें अवतारों का नामोल्लेख तक नहीं हो पाता है।

तृतीय खण्ड में 'दिल्ली कीली' कथा है। इस खण्ड के प्रथम २० रूपक वे ही हैं जो शा० उ० स० के इस खण्ड के हैं और ठीक उसी क्रम में भी हैं। बीसवें रूपक में कीली को दोबारा शुभ मुहूर्त में गाड़ने का उल्लेख होता है और उसके अनन्तर ही खण्ड का ३१वां रूपक (स० ३.४४)—जो बीच का एक रूपक है और जिसमें सं० १६०७ में मेवातपति के द्वारा दिल्ली की धरा को जीते जाने की भविष्यवाणी है—दे दिया जाता है। यह भविष्यवाणी किसने की, क्यों की, आदि के सम्बन्ध का कोई विवरण नहीं है। यहीं पर खण्ड की 'इति' दे दी जाती है।

चौथा खण्ड 'कन्हपट्टी समय' है जो उस पाठ में पाँचवाँ है। इसमें खण्ड के प्रारम्भ के १६ रूपक शा० उ० स० पाठ के अनुसार ही आते हैं, जिनमें प्रताप सी के पृथ्वीराज की सभा में आने तक की कथा आती है; आगे क्यों कन्ह ने उसे मार डाला और इस पर किस प्रकार रुष्ट होकर पृथ्वीराज ने उसकी आँखों पर पट्टी बँधने का दण्ड दिया, जो कथा का सबसे आवश्यक भाग है, नहीं आता है।

इस प्रति का पाँचवाँ खण्ड 'लोहाना आजान बाहु समय' है जो उस पाठ का चौथा खण्ड है। अपवाद-स्वरूप यह खण्ड पूरा है और शा० उ० स० के खण्ड के समान है।

[1] इन प्रतियों के माइक्रोफिल्म प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हैं।

प्रति के शेष खण्डों की दशा वही है जो इन पाँच खण्डों की बताई गई है। कहने को इसमें शा० उ० स० पाठ के प्रायः समस्त खण्ड हैं, किन्तु है यह छन्द-संकलन मात्र, पूर्ण पाठ नहीं है।

टॉड संग्रह की १६१ संख्यक प्रति प्रथम खण्ड में द० के पाठ का अनुसरण करती है और तदनन्तर ना० परिवार की किसी प्रति के पाठ का।

इसके प्रथम खण्ड के रूपक ३५ (स० १. ११२) तक परीक्षित को सर्पदंशन से मृत्यु का शाप मिलने तक की कथा आती है, जो कि पिंगल-कर्त्ता नाग के अवतार प्रसंग में कही गई है।' किन्तु इसी रूपक के अनन्तर 'इति ढुंढा राकस कथा' उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रकट है कि बीच के अनेक छन्द, जिनमें ढुंढा राकस की कथा तक पृथ्वीराज के पूर्वजों की कथा आती थी, छोड़ कर उस कथा की 'इति' मात्र दे दी गई है।

इसके अनन्तर वीसलदेव के छत्र धारण करने से कथा फिर चलती है—यह प्रति के आदर्श का रूपक ९७ (स० १.३४०) है, और बीसल की कथा भी पूरी नहीं हो पाती कि प्रथम खण्ड समाप्त कर दिया जाता है; पृथ्वीराज के शेष पूर्वजों तथा उसके जन्म आदि की कथा छोड़ दी जाती है, यद्यपि इस खण्ड की पुष्पिका है "इति..... अर्बद उतपति चहुआन उतपती ढुंढा उतपती प्रीथीराज जन्म नाम कथा प्रथम खण्ड समाप्तं।"

इसके बाद 'दशावतार वर्णन खण्ड' आता है, किन्तु कथा वाराह अवतार तक (स० २.१५८) ही आकर रुक जाती है; राम तथा कृष्ण अवतारों तक की कथा नहीं आती है। किन्तु तदनन्तर पुनः अनेक छन्द और कोई खण्ड भी छोड़कर इति 'ढोली कीली कथा' की दी जाती है।

इसके अनन्तर 'अथ हुसेन कथा' लिखकर वह कथा दी जाती है जो स० के खण्ड ११ में आती है, किन्तु स० ११.२५ तक के ही छन्द आते हैं, जिनमें किस प्रकार अरब खां से शहाबुद्दीन गोरी को चित्ररेखा मिलती है, वहां तक भी कथा पूरी नहीं कही जाती है और इति 'चित्ररेखा पात्र कथा' की दे दी जाती है।

यही दशा प्रति के अन्य खण्डों के पाठ की भी है, यद्यपि प्रति पूर्ण है और 'बाणवेध खण्ड' तक के छन्द इसमें आते हैं।

इन दो उदाहरणों से यह प्रकट है कि रचना की कुछ ऐसी प्रतियाँ भी तैयार की जाती थीं जिनमें प्रत्येक खण्ड के कुछ छन्द रख लिए जाते थे। किसलिए ऐसा होता था, यह एक भिन्न प्रश्न है, जिस पर विचार करना यहां आवश्यक नहीं है।

धा० सो० की प्रसंग-त्रुटियों में से वे जो लेख में संख्या (३) पर दी गई हैं, अ० फ० के खण्ड ३, ४, ५ से सम्बन्धित हैं। अ० फ० खण्ड ३ में जयचन्द तथा संयोगता का पूर्व-परिचय है; खण्ड ४ में पृथ्वीराज-गोरी युद्ध है, और खण्ड ५ में पृथ्वीराज-भीम चौलुक्य युद्ध है।

जहाँ तक खण्ड ३ की बात है उसमें, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, विजयपाल की दिग्विजय में (अ० ३. नारा० १, दो० २, दो० ३) भी उन में से अनेक देशों का उल्लेख होता है जिनका पीछे जयचन्द की विजयों में (अ० ६. साट० २, ९. भुजं० ३ = क्रमशः धा० ४८, १६१) हुआ है, यथा : तिरहुत, गुंड, तिलिंग, गोवाल-कुंड कर्णाट और गूर्जर।

जहाँ तक खण्ड ४ तथा ५ की बात है, ऊपर हम देख चुके हैं कि जिन सामंतों के उल्लेख इनमें वर्णित युद्धों में होते हैं, उनसे सर्वथा भिन्न सामंतों को पीछे (अ० ७. त्रो० २ = धा० ८०) को इन युद्धों में विजय का श्रेय दिया जाता है। इससे प्रकट है कि अ० के खण्ड ४ तथा ५ की कल्पना अ० ७. त्रोट० २ = धा० ८० की रचना के भी बाद—जो स्वतः एक प्रक्षेप प्रतीत होता है जैसा हम आगे देखेंगे—किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की गई जिसका ध्यान कैंवास-वध प्रकरण के इस छन्द पर नहीं गया था।

धा० मो० की प्रसंग-त्रुटियों में से वे जो लेख में संख्या (४) पर बताई गई हैं, संयोगिता के पृथ्वीराज-प्रेम विषयक उसके और उसकी सखी के बीच हुए संवाद से सम्बन्धित हैं। अन्य प्रतियों में इस प्रसंग में धा० मो० के अतिरिक्त जो छन्द आते हैं, उन पर विचार करना आवश्यक है। धा० ४६ तथा धा० ४७ के बीच धा० मो० के अतिरिक्त समस्त प्रतियों में एक ही छन्द आता है, जो निम्नलिखित है :—

अथवा राजन राजगृह अथवा माइ लुहानि।
विधि बंधिय पट्टल सिरह मुष कहि मंदौ जानि॥ (अ० ६. दो० ६)

अर्थात् संयोगिता ने कहा; "चाहे वह (पृथ्वीराज) राजन्य और राजगृह में [उत्पन्न] हो चाहे, हे सखी, वह लुहान (लघु या हीन) हो, जो कुछ भी विधाता ने सिर (भाग्य) के पटल पर बाँध दिया, [उसके सम्बन्ध में] मुख से कुछ कह कर तुम मानो मंद (बुरा) करती हो।"

इस कथन का भाग्यवाद बाद में आए हुये छन्द धा० ४७ के पृथ्वीराज-स्तवन के विरुद्ध पड़ता है, जिसमें संयोगिता ने पृथ्वीराज को एक पराक्रमी वीर बताया है, जिसने अनेक देशों पर विजय प्राप्त की है।

धा० ४७ तथा धा० ४८ के बीच केवल अ० फ० में तीन छन्द आते हैं, जो अन्य समस्त प्रतियों में इनके बहुत पूर्व आते हैं; ये छन्द पूर्ववर्ती वर्णन के हैं भी, संवाद के नहीं हैं। इनका वही स्थान सम्भव है जो इनका अ० फ० के अतिरिक्त प्रतियों में है। इस प्रकार वास्तव में धा० ४७ तथा धा० ४८ के बीच कोई छन्द किसी भी प्रति में नहीं आते हैं। धा० ४८ तथा धा० ५२ के बीच अ० में भी वे ही छन्द आते हैं जो धा० मो० में हैं। धा० ५२ तथा धा० ५३ के बीच धा० मो० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में निम्नलिखित दो दोहे आते हैं :—

तुव सम मात न तात तन गात सु इंलरियाइं।
जुव्वनु धन अथिर रहै अंभु कि अंजुरियाइं॥ (अ० ६. दो० ९)
ताहि अनुग्रह तुम करहु जौ तुम सषी समान।
हौं लज्जा करि का कहौं तुम मो तात प्रमान॥ (अ० ६. दो० १०)

इनमें से प्रथम ही पूर्णतः सङ्गत और सुनिर्मित है : सखी ने धा० ५२ में यौवन की जिस महत्ता का प्रतिपादन किया है, उसका अच्छा उत्तर इस दोहे में है, और इसकी आवश्यकता है, क्योंकि अन्यथा, जैसा लेख में कहा गया है, संयोगिता सखी के उक्त कथन को सुन कर निरुत्तर रहती है। दूसरा दोहा अवश्य अनावश्यक ही नहीं प्रक्षिप्त भी लगता है: सखी से अनुग्रह न करने का जो अनुरोध संयोगिता करती है, और फिर उसे "तात (पिता ?) समान" कहती है, ये दोनों बातें एक असमर्थ प्रक्षेपकार के प्रयास की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं।

धा० ५३ और ५४ के बीच केवल अ० फ० में दो छन्द आते हैं, जो संवाद के नहीं हो सकते हैं। ये दोनों छन्द अन्य समस्त प्रतियों में संवाद से कुछ पहले आते हैं और वहीं संगत हो सकते हैं।

इस प्रकार (४) संख्यक प्रसंग त्रुटियों में एक मात्र धा० ५२ तथा ५३ के बीच की प्रसंग-त्रुटि मान्य लगती है, किन्तु उनके बीच में आया हुआ केवल अ० ६. दो० ९ प्रसंगसम्मत है, दूसरा स्पष्ट प्रक्षेप लगता है।

(५) संख्यक प्रसंग-त्रुटि योद्धाओं की उस नामावली के अभाव के विषय की है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज जाते हैं और कन्नौज-युद्ध में उसके साथ भाग लेते हैं। किन्तु ऊपर दिखाया जा चुका है कि इस नामावली में ऐसे अनेक नाम आते हैं जिनका तदनन्तर कोई उल्लेख नहीं होता है, न जिनके सम्बन्ध में यही कहा जाता है कि वे कन्नौज-युद्ध में मारे गए अथवा वे पृथ्वीराज के साथ दिल्ली लौटे (अ० १२, पद्य० ३)। अतः यह नामावली भी प्रक्षिप्त लगती है।

इस प्रकार धा० तथा मो० पाठों की जो प्रसंग-त्रुटियाँ लेख में (३), (४), (५), (६)

सख्याओं पर ही दी गई हैं, उनमें से एक ही—जो यौवन की महत्ता विषयक कथोपकथन से संबन्धित है—वास्तव में प्रसंग-त्रुटि है, शेष के स्थान पर जो छन्द धा० मो० के अतिरिक्त प्रतियों से मिलते हैं, वे प्रसंग-सम्मत नहीं हैं और प्रक्षिप्त लगते हैं।

जहाँ तक धा० मो० में पाई जाने वाली नर्तकियों की नामावली विषयक छन्द की उस पाठ-त्रुटि की बात है, जो अ० फ० में भी पाई जाती है, वह संक्षेप-सम्बन्ध के कारण ही नहीं, अन्य प्रकार से भी धा० मो० के अ० फ० संबन्धित होने पर आ सकती थी।

उक्त लेख में धा० मो० के प्रक्षेपों की जो बात कही गई है, वह ठीक है और उनमें पाई जाने वाली उक्ति-शृंखला सम्बन्धी त्रुटियों से और भी पुष्ट हुई है।

अतः उक्त लेख में प्रस्तुत किए गए परिणामों को अब संशोधित रूप में इस प्रकार रखना अधिक उचित होगा :—

(१) 'लघुतम पाठ' की दोनों (प्रतियाँ) प्राप्त धा० तथा मो० मूलतः किसी पूर्ण पाठ की प्रतियाँ थी किन्तु बाद में उस में कुछ छन्द एक ऐसी प्रति से लेकर मिला लिए गए जो ग्रन्थ के छन्द-चयन के किसी पाठ की थी;

(२) इस अन्य प्रति का छन्द-चयन रचना के 'लघु पाठ' की म० या अ० फ० जैसी किसी प्रति से किया गया था।

(३) धा० तथा मो० के पाठों में प्रक्षेपों का भी अभाव नहीं हैं।

(४) फिर भी, धा० तथा मो० के पाठ समस्त प्राप्त पाठों में से मूल के सबसे अधिक निकट पहुँचते हैं।

अब प्रश्न धा० और मो० के पाठों के बीच शेष रहा। दोनों में अन्तर अधिक नहीं है : फिर भी मो० में ऐसे छन्द हैं जो प्रक्षेप-पूर्ण पाठ-वृद्धि के परिणाम हैं और धा० में नहीं हैं। उदाहरणार्थ : आबू-राज सलष कन्नौज के युद्ध में लड़ता हुआ मारा जा चुका है (मो० ३५०=धा० २९९, मो० ३५१=धा० ३०१), उसका पुत्र जैत भी 'आबूपति' होकर गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो चुका है (मो० ४५४=धा० ३६२), फिर भी मो० में सलष को गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में सम्मिलित किया गया है (मो० ४५६, ४५७, ४५८, ४५९)। धा० में यह उल्लेख-वैषम्य नहीं है; इसके अतिरिक्त ऐसे कोई भी उल्लेख-वैषम्य नहीं हैं जो धा० में हों और मो० में न हों। और, यह कहा जा चुका है कि धा० के प्रायः सभी छन्द मो० में आते हैं। अतः यह सुगमता से जाना जा सकता है कि धा० स्थूल रूप से मो० की तुलना में एक पूर्वतर स्थिति का पाठ देती है।

फिर भी हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० का पाठ सर्वथा मूल का नहीं हो सकता है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि आकार-प्रकार में वह मूल के सबसे अधिक निकट है एवं उत्तरोत्तर उससे बड़े पाठ मूल से उत्तरोत्तर दूर और दूरतर होते गए हैं।

—:*:—

३. पृथ्वीराज रासो
का
मूल रूप (आकार)

हम देख चुके हैं कि धा० पाठ भी रचना के मूल आकार में सुरक्षित नहीं है, यद्यपि वह मूल के निकटतम प्रमाणित होता है, अतः रचना का मूल आकार निर्धारित करने की आवश्यकता बनी रही जाती है। प्रश्न यह है कि वह किस प्रकार निर्धारित हो सकता है। किसी लेखक की अपनी प्रति अथवा उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि के अभाव में उसकी रचना का मूल रूप तभी सुगमता से निर्धारित हो सकता है जबकि उसकी दो या अधिक ऐसी प्रतियाँ उपलब्ध हों जो परस्पर विकृति-सम्बन्ध से सम्बन्धित न हों, अर्थात् जो अलग-अलग प्रतिलिपि परम्पराओं की हों। किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' की ऐसी कोई भी दो प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरण के लिये जिन छन्दों के द्वारा ऊपर उल्लिखित निम्नलिखित छन्द-शृंखलायें त्रुटित होती हैं, वे सभी प्रतियों में समान रूप से पाये जाते हैं :—

(१) धा० ६८ तथा ७० के बीच,
(२) धा० १४२ तथा १४६ के बीच,
(३) धा० १९३ तथा १९५ के बीच, और
(४) धा० २९० तथा २९३ के बीच।

प्रश्न यह है कि ऐसी स्थिति में रचना के मूल आकार तक पहुँचना किस प्रकार संभव है : इसकी एक मात्र व्यावहारिक विधि यही प्रतीत होती है कि मूल के निकटतम प्राप्त पाठ धा० से किसी प्रकार से प्रक्षेपों को अलग किया जाये; और इस दृष्टि से हम निम्नलिखित उपायों का अवलंबन कर सकते हैं :—

(१) ऊपर हम देख चुके हैं कि रचना में अनेक स्थलों पर उक्ति-शृंखला मिलती है; धा० के जो छन्द या वार्तायें इन शृंखलाओं को अतिक्रांत करते हों, उन्हें बिना इसके विपरीत प्रमाण के मिले प्रक्षिप्त मान लेना चाहिये।

(२) ऊपर हम यह भी देख चुके हैं कि रचना में अनेक स्थलों पर छन्द-शृंखला मिलती है; धा० के जो छन्द या वार्तायें इन शृंखलाओं का अति क्रमण करती हों, उन्हें भी बिना इसके विपरीत प्रमाण के मिले प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

(३) धा० में जहाँ पर दो छन्द एक ही वृत्त—या लगभग एक ही वृत्त—के हों और उनकी शब्दावली और उनके अर्थों में इतना ही अन्तर हो जितना 'पाठांतर' में हो सकता है, वहाँ पर दो में से एक ही छन्द को स्वीकार करना चाहिए।

(४) धा० के जो छन्द शेष अन्य प्रतियों में न मिलते हों, बिना विपरीत प्रमाण के मिले उन्हें प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

(५) धा० के जो छन्द या छन्दांश किसी भी प्रति में किसी भी छन्द या छन्दांश की पुनरावृत्तियों के बीच में आते हों, उन्हें विपरीत प्रमाण के अभाव में प्रक्षिप्त मान लेना चाहिये। अन्तिम के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से हमें समझ लेना चाहिए।

किसी भी पहले से प्रस्तुत प्रतिलिपि के पाठ में जब पाठ-वृद्धि की जाती है, तब यथास्थान हंस पद बनाकर या तो पाठ-वृद्धि का अंश हाशिए में लिख दिया जाता है और या तो—यदि वह अंश कुछ बड़ा हुआ—अलग कागज पर लिख कर उस प्रति में रख दिया जाता है। हंस पद कभी-कभी भूल से नहीं बनाया जाता है, हाशिए में लेख यों ही लिख दिया जाता है, अथवा उक्त संशोधित प्रति से प्रतिलिपि करने वाले का ध्यान हंस पद पर नहीं जाता है। इसके अतिरिक्त, हाशिया कम ही चौड़ा होता है, जिससे एक छोटे से छन्द का भी लेख उसमें किसी एक ही पंक्ति के सामने समाप्त न होकर कई पंक्तियों के सामने लिखा जाकर पूरा होता है। परिणाम यह होता है कि यदि हंसपद न बनाया गया अथवा उसपर प्रतिलिपिकार का ध्यान न गया, तो हाशिए के उक्त लेख के सामने पड़ने वाला छन्द या छन्दांश प्रतिलिपि में कभी-कभी दो बार लिख उठता है : एक बार तो उक्त बढ़ाये गये लेख के पूर्व और पुनः उक्त लेख के अनन्तर। अतः छन्दों की पुनरावृत्तियों के बीच आने वाले अंशों के बाद में बढ़ाए हुए होने की संभावना बहुत होती है।

(६) धा० के जो छन्द किसी भी प्रति के छन्दों की क्रम-संख्या में व्यवधान उपस्थित करते हों, उन्हें विपरीत प्रमाण के अभाव में प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

आगे इन्हीं उपायों की सहायता से धा० के प्रक्षिप्त छन्दों का निर्धारण किया जा रहा है।

उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण

धा० में निम्नलिखित स्थलों पर उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण मिलता है :—

(१) धा० ६८ तथा ७० के बीच; (२) धा० १२१ तथा १२२ के बीच;
(३) धा० १२९ तथा १३० के बीच; (४) धा० १४२ तथा १४६ के बीच;
(५) धा० १८६ तथा १८७ के बीच; (६) धा० १९२ तथा १९३ के बीच;
(७) धा० १९३ तथा १९५ के बीच; (८) धा० २४२ तथा २४४ के बीच;
(९) धा० २६९ तथा २७० के बीच; (१०) धा० २९० तथा २९३ के बीच;
(११) धा० ३५८ तथा ३६० के बीच; (१२) धा० ३८१ तथा ३८२ के बीच; तथा
(१३) धा० ४२० तथा ४२२ के बीच।

नीचे आवश्यक अंश उद्धृत करते हुए अन्तर्साक्ष्य की दृष्टि से क्रमशः इन पर विचार किया जा रहा है।

(१) धा० ६८ : रतिपति मुच्छिय कच्छि तजु तरनी रवन वय काज।
तकित करिग अंगुल धरइ बान करिग (भरिग-पाठां०) प्रिथीराज ॥

वार्त्ता—एक बाण सो राजा चूक्यो। बांह नै कांख विचि आवात भयो। कइमास परन डारि दियो। कइवालेनोक्तं।

धा० ६९ : अरजुनो नाम नास्ति दुशरथो नैव दृश्यते।
स्वामिनो आखेटकमती बाणो न चतुरो नरो ॥

वार्त्ता—दूसरउ बाण आन दियउ।

धा० ७० : भरिग बान चहुआन जानि हुए देव नाग नर।
मुट्ठि दिट्ठि रस हुलिग मुक्कि निक्करिग इक्क सर।
उभय आनि द्रिय हत्थि पूठि पावारि पचारयो।
बानी वर तरकंत छुट्टि धाइ धर उपारयो।

इय कछु सछु सरसइ सुनित फुनि स कह्यो कविचंद तब ।
इम परयो अवास अयासलें जिम निस......नछत्रपति ॥

यहाँ हम देखते हैं कि धा० ६८ का 'भरिग बान प्रिथिराज' तथा धा० ७० का 'भरिग बान चहुवान' सर्वथा एक हैं, और बीच में आई हुई दो वार्त्ताओं तथा श्लोक में वे ही बातें कही गई हैं जो धा० ७० में आती हैं, और वह भी उपर्युक्त 'भरिग बान चहुवान' के अनन्तर। वार्त्ताएँ तो इस विषय में स्पष्ट हैं, किन्तु श्लोक धा० ६९ का कथन भी पृथ्वीराज के द्वारा छोड़े हुए प्रथम बाण के चूक कर निकल जाने पर ही कहा जा सकता था, इसलिए उसकी स्थिति भी वही है जो ऊपर उद्धृत वार्त्ताओं की है। फलतः यह प्रकट है कि धा० ६९ तथा ७० के बीच आया हुआ सम्पूर्ण अंश प्रक्षिप्त है।

(२) धा० १२१ : नृप भमिग कहंगि (कहिग-शेष में) पहु पुव्व देस ।
अरिय नीर (अरिनयर-शेष में) नीर उत्तर कहेस ।
वर सिंधु विधु कनवज्ज राउ ।
तिहि चढ़िउ स्वर्ग धुरि धर्म चाउ ॥

धा० १२२ : रवि तुम्हह समुद्दउ उहइ इह तुम्ह मग्ग समुज्झ ।
भुल्लि भट्टि दुव्वहि चहयो कहि उत्तर कनवज्ज ॥

उद्धरण की प्रथम दो पंक्तियों तथा अंतिम दो पंक्तियों में उक्ति-शृंखला स्पष्ट है; बीच की दो पंक्तियाँ सर्वथा निरर्थक और असंगत लगती हैं और उक्ति-शृंखला को भंग करती हैं। ये पंक्तियाँ वस्तुतः धा० ३१ के प्रथम दो चरणों से बनी हैं, जो है :—

कलि अथ्थ पथ्थ कनवज्ज राज। सतचित्त सेव धरि धम्म चाउ ॥

(३) धा० १२९ : चख चंचल तन सुद्धि न सिद्धिहु मनु हरिह ।
कंचन करस झकोलति गंगह जलु भरहि ।

वार्त्ता—ते किसी एक पनिहारी है।

धा० १३० : भरंति नीर सुन्दरी ।
ति पानि पत्त अंगुरी ।

धा० १२९ के 'गंगह जलु भरहि' तथा धा० १३० के 'भरंति नीर सुन्दरी' में उक्ति-शृंखला प्रकट है; बीच में आने वाली वार्त्ता उस उक्ति-शृंखला को भंग करती है और साथ ही क्षेपक प्रकृति की तथा अनावश्यक भी है। म० ना० द० उ० स० में बीच में कुछ छन्द आते हैं जो इस उक्ति-शृंखला को और भी अधिक त्रुटित करते हैं।

(४) धा० १४२ : दह दिसि देखि इअगय भार ।
जु दिक्खत (पुच्छत-पाठां०) चंद गयो दरबार ।

धा० १४३ : भाखन भाख सुमिख्खहि सि देह सिसिर बन इंद ।
रथनवै नवि रस्स अरु जोध सुपंग नरिंद ॥

धा० १४४ : निसि नौबति पल प्रात मिलि हय गय दिक्खयो लाज ।
विरंचि सुहट्ट करिवर गह्यो किवहि कह्यो प्रिथिराज ॥

धा० १४५ : कहे चंद इंदु न करहु रे सामन्त कुमार ।
तिन्ह लख्ख निसि दिन रहंहि इह जैचन्द दुआर ॥

वार्त्ता—चांद राजा के दरबार ठाढो रह्यो ।

धा० १४६ : पुच्छन (पुच्छत-शेष में) चंद गयो दरबारह ।
हेजम जह रघुवंस कुमारह ।

यहाँ हम देखते हैं कि धा० १४२ का 'पुच्छत चन्द गयो दरबार' और धा० १४६ का 'पुच्छत

चन्द गयो दरबारह' एक हैं; बीच में आए हुए धा० १४३ की सार्थकता और संगति स्पष्ट नहीं हैं; शेष के सम्बन्ध में यहाँ पर दर्शनीय यह है कि समय प्रभात का नहीं था। सूर्य तो (धा० १२२) उदित हो चुका था, उसके बाद पृथ्वीराज और उसके साथी गंगातट के प्रातः कालीन दृश्यों को देखते हुए (छन्द १२९) नगर-दर्शन करने लगे थे और (छन्द १४२) उन्होंने कन्नोज की हाटों का निरीक्षण कर लिया था। फिर, इसी छन्द के अन्त में आता है कि "पूछता-पूछता चन्द के दरबार को गया।" पृथ्वीराज को 'सामंत कुमार' कहना भी कुछ ठीक नहीं लगता है। वार्त्ता के बाद आए हुए छन्द धा० १४६ में 'पुच्छत चन्द गयो दरबारह' द्वारा चन्द के दरबार की ओर जाने मात्र की बात कही गई है, किन्तु वार्ता में कहा गया है "चन्द राजा (जयचन्द) के दरबार में पहुँचकर खड़ा हो रहा।" इन उल्लेख-विरोधों से भी प्रकट है कि धा० १४२ तथा धा० १४६ के बीच का अंश प्रक्षिप्त है। इनमें से धा० १४३ अ० फ० में नहीं है, शेष में है, और धा० १४४ तथा १४५ सभी में है। वार्ता धा० के अतिरिक्त किसी में नहीं है।

(५) धा० १८६ : जाम एक छनि रास घटि सत्तिहु सत्ति न वारि।
किहु कामिनो सुख (सुष-शेष में) रतिसमर नृप निय निंद विसारि॥

वार्त्ता— राजा कइसी नींद विसारी।

धा० १८७ : सुक्ख सुक्ख म्रिदंग तार जयनै रागं कला कोकिलं।
कंठी कंठ सुवासिनं मनयितं कामंकला पोखनं।
उब्भी रंभ पिता गुना हरिहरी सुर्भ्रीय पवनापवा।
ए सह सुक्ख सुखाइ तार साहिता जैं राय रायं गता॥

दोनों छन्दों में उक्ति-शृंखला प्रकट है : धा० १८६ के 'सुख' को लेकर धा० १८७ में उसका विस्तार दिया गया है। दोनों के बीच धा० में एक वार्त्ता आती है; वार्त्ता-कार को यह ध्यान नहीं था कि धा० १८७ में धा० १८६ के 'सुख' का विस्तार किया गया है, न कि 'नींद' का। इसलिए वार्त्ता स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है। म० ना० उ० स० में धा० १८६, तथा धा० १८७ के बीच कुछ छन्द आते हैं। वे भी इसी प्रकार प्रक्षिप्त हैं।

(६) धा० १९२ : थिर रहै थवाहंस (थवाहत-शेषमें) विज्जुकर छंडि सिकरहि
... ... पान देहि दिढ़ हत्थ गहि॥

मो० का इन पंक्तियों का अत्रुटित पाठ है :—

थिरु रहिहि थवाइत वज्र कर छंडि सीकारह विधु परिहि।
जिहि असी लष्ष पल्लाणिइहि तिन पांन देहि दिढ हथ्य गहि॥

वार्त्ता—राजा आइसुते गीज सोधा चहुवान को भट्ट आयो है ताहि इतनो दज्यो।

धा० १९३ : सुनि तमूल सा पट्ठि करि वर उट्टिय डिठि बंक।
मनो मोहनि सुमन मलिग मनु नव उदित मयंक॥

यहाँ पर धा० १९२ के अन्तिम शब्दों 'पान देहि दिढ हथ्थ गहि' तथा धा० १९३ के 'सुनि तमोल' का उक्ति-सम्बन्ध प्रकट है, और बीच में आई हुई वार्त्ता उस उक्ति-शृंखला को भंग तो करती ही है साथ ही असंगत और निरर्थक भी है। म० ना० द० उ० स० में यहाँ कुछ छन्द आते हैं; वे भी उक्त उक्ति-शृंखला को इसी प्रकार भंग करते हैं।

(७) धा० १९३ : सुनि तमूल सा पट्ठि करि वर उट्टिय डिठि बंक।
मनो मोहनि सु मन मलिग मनु नव उदित मयंक॥

धा० १९४ : तुलसाइ विप्र हस्तेषु विभूतिः वर योगिनां।
चंद्रिय पुत्र तंबोरह त्रीणि देयानि सादरं॥

धा० १९५ : भुव वंकीय करि पंगुलुप अप्पिग हथ तंबोल ।
मनहु वज्जपति वज्ज गहि सह अप्पिया सजोर ॥

यहाँ हम देखते हैं कि धा० १९३ की वर 'ठहिय डिठि वंक' और धा० १९५ की 'भुव वंकिय करि' की शब्दावली एक है, और बीच में जो आर्या आती है वह सर्वथा असंगत है; उसमें कहा गया है : "तुलसी-दल विप्र के हाथ में, विभूति श्रेष्ठ योगी के हाथ में, और तांबूल चंडीपुत्र के हाथ में सादर देना चाहिये।" किन्तु जयचन्द किन अर्थों में 'चंडी पुत्र' है, यह नहीं ज्ञात होता है : 'चण्डी पुत्र' का अर्थ 'चण्डी का भक्त' या 'चण्डी का उपासक' ही हो सकता है, किन्तु जयचन्द एक राजा के रूप में अपने अतिथि चन्द के सामने उपस्थित हुआ है, चण्डी के उपासक के रूप में नहीं और न उसे रचना भर में कहीं भी चण्डी-भक्त कहा गया है। इसके अतिरिक्त इस आर्या के कथन की प्रतिक्रिया पृथ्वीराज में क्या दिखाई पड़ी, धा० १९५ में इसका कोई उल्लेख नहीं किया जाता है। अतः यह प्रकट है कि धा० १९३ तथा धा० १९५ के बीच आई हुई आर्या प्रक्षिप्त है।

(८) धा० २४२ धा० का पाठ प्रथम चरण के पूर्वार्ध के बाद किसी प्रतिलिपिकार की भूल से वही हो गया है जो धा० २०० का है और धा० २४४ का पाठ त्रुटित है; २४२, तथा धा० २४४ का पाठ अतः मो० से दिया जा रहा है :—

धा० २४२ : सुनि थज्जन रज्जन चडिग बहु पष्षर समहाउ।
मत्तुह लंक चिग्रह करन चलु (चलउ) रघुप्पति राय ॥ [१५९]

धा० २४३ : चढिय सूर सामंत सहु नृप धर्मह कुल काज।
सह समूह दिख्खिय नयन त्रिणवर गिन प्रिथिराज ॥

धा० २४४ : राम दल वंनर सयल उहि रष्षण बहु बंधु।
असी लष्प सु(सउ)लम भिरिग सु धनि प्रथिराज नरेंद ॥

धा० २४२ के दूसरे तथा धा० २४४ के प्रथम चरण में उक्ति-शृंखला स्पष्ट है—धा० २४४ में कवि ने धा० २४२ की उक्ति पर भी एक विशेषोक्ति जड़ने की चेष्टा की है; बीच में आया हुआ धा० २४३ उसे त्रुटित करता है और असंगत भी है।

(९) धा० २६९ : सर एक स विज्जत (विध्धत-शेष में) सत्त करी।
दल खिल्लियत नयक लठक (ठठक्क-शेष में) परी।
जहँ जानह सूरन भीर परी।
ठिल्लह चहुआन सु अप्प बरी।

धा० २७० : ठठक्की सेन समि भीर मिल्ले।
बिछुरिय सेन सब्बे नकिल्ले (निकल्ले-पाठां०)।

धा० २६९ से उद्धृत दूसरी 'दल...ठठक्क परी' तथा धा० २७० की प्रथम पंक्ति के 'ठठकी सेन' में उक्ति-शृंखला प्रकट ही है, बीच की दो पंक्तियाँ उस शृंखला को भंग करती हैं और स्पष्ट ही अनावश्यक तथा असंगत हैं : विपक्षी दल का पृथ्वीराज के शौर्य से ठिठक पड़ना उसकी एक निश्चित समय की मनस्थिति की सूचना देता है, जिसके बाद उसका 'बिछरना' एक संलग्न परवर्ती क्रिया के रूप में प्रारम्भ हो जाता है। इन दोनों के बीच में उस दल का पृथ्वीराज के दल पर आक्रमण करते रहना और पृथ्वीराज का उन्हें पिछड़ाते रहना एक भिन्न और अधिक व्यापक समय की अपेक्षा करते हैं।

(१०) धा० २९० : अरि असम रस कोतुक कलह भयो न भयह भिरंत भर।
सामंत निघट तेरह परिग नृपति सुपट्ठिभ पंच सर ॥

धा० २९१ : दुइ सर अस्स सि पक्खरइ दुइ नृप इक संजोगि।
जुरि घर अस्थि नरत्थि करि अग जंगलवै भोगि॥
धा० २९२ : रयन रास (राम) राघत्त रनइ रन रंग रंग रंग रस।
मठल एक भावत्त पंच वाइत्त बीर दस।
वकि चालउ मोहिल्ल मर्यंदु मारुत मुह मंघउ।
अरुन अरि कंधिया पेग पारस दक संघउ।
नारयन नीर बंधउ बरन दिव दिवान गो देवरउ।
ककईत जीव सामंत मुअ रहिउ स्वामि सिर सेहरउ।
धा० २९३ : संझ सपत्तिअ (सुपट्टिअ-पाठा०) नृपति रन दिय पारस परि कोटि।
रहे सूर सामंत जकि दिखिय नृपति तन चोट॥

धा० २९० की अन्तिम शब्दावली 'नृपति सुपट्टिय पंच सर' और धा० २९३ की प्रारम्भ की शब्दावली 'संझ सुपट्टिय नृपतिरन' में साम्य यथेष्ठ है। बीच में धा० २९१ में 'पंचसर' का जो विवरण प्रस्तुत किया गया है, वह सर्वथा अमाह्य है। 'सपट्टिअ' का अर्थ धा० २९० तथा २९३ दोनों में 'अलंकृत' या 'विभूषित' प्रतीत होता है [दे० पाइअ स द् महण्णवो]। धा० २९० में कहा गया है कि 'नृपति (पृथ्वीराज) पाँच बाणों से अलंकृत हुआ।' और धा० २९३ में कहा गया है कि "संध्या को [इस प्रकार] अलंकृत नृपति......" किन्तु धा० २९१ में पाँच बाणों से अलंकृत होने के स्थान पर उसे दो बाणों से अलंकृत कहा गया है, शेष तीन में से दो बाण उसके अश्व के पक्खर में और एक संयोगिता को लगे कहे गए हैं। यहाँ पर कथन-वैषम्य स्पष्ट है। धा० २९२ में धराशायी सामंतों की सूची मात्र खड़ी करने का प्रयास है। इसलिए प्रकट है कि धा० २९० तथा २९३ के बीच आने वाले छन्द उनकी उक्ति-शृंखला को भङ्ग करते हैं और उनके विरुद्ध भी जाते हैं।

(११) धा० ३५८ : दुरस इक वइक विषम राग लाग भकि निसान।
मिले पुब्व पच्छिम हुति चाहुवान सुरताण॥
धा० ३५९ : दुइ दल बोल सुमाल इकि दुहुं दल सिन्धुअराग।
जु रहिति सुभग सुभाग तिन मुरि कायरह अभाग।
धा० ३६० : मिले आइ चहुवान सुरताण खग्गे।
मनो वारुणी छवे वारुणी लग्गे।

धा० ३५८ के दूसरे चरण की शब्दावली धा० ३६० के प्रथम चरण में आई है, इसलिए दोनों में उक्ति-शृंखला प्रकट है। धा० ३५९ इस शृंखला को भंग करता ही है और असंगत भी है: अभी तो युद्ध प्रारम्भ भी नहीं हुआ है, केवल दोनों ओर से सेनाएँ इकठी हुई हैं, अतः सैनिकों के युद्ध में 'जुटने' या युद्ध से 'मुड़ने' का कोई प्रसंग नहीं है।

(१२) धा० ३८१ : बन बहु विभूति अवधूत दीस।
कर अनन्य (अन्यन—मो०) दीधी असीस॥

वार्ता— विरदावली किसी दीन्ही।
साहि झार साहिब सार।
वरिया साहि कंध कुदार।
सबर साहि मान मर्दन।
निबर साहि थापना चार।
दुरी साहि धारी तरक।
नारी साहि मस्तक त्रिसूल।

छोली साहि पूर्व साहि।
पश्चिम साहि दखनी साहि।
च्यारि पाहि बेला वीधालित खलेश्वर।

धा० ३८२ : दइत असीस न सिर नयो वन अच्छयो फुरमान।
दुसह भट्ट पिख्यौ नयन के पूछ्यो सुरतान॥

धा० ३८१ के अन्तिम चरण के 'दीधी असीस' तथा धा० ५८२ के प्रथम चरण के 'दइत असीस' में उक्ति-शृंखला स्पष्ट है, बीच की समस्त पंक्तियां इस उक्ति-शृंखला को भंग करती हैं, और सर्वथा अनावश्यक और बहुत-कुछ निरर्थक हैं। वे स्पष्ट ही बाद में रखी गई लगती हैं, जैसा उनके शीर्षक 'विरदावली किसी दीन्ही' से प्रकट है।

(१३) धा० ४२० : कइ दसण रसण दल रंध्र हुई बहु कपट विधिधन सघण।
सुलताण पर्‌यो खां पुक्कीयो त दिन चंद राजन मरण।

धा० ४२१ : परत भूमि सुलताण खान मिछि पक्क पिट्टि सिर।
भई वरजिउ बहु बार साहि दुसमन असंभ वर।
भोग छंडि करि जोग भट्ट आयो जु संधि करि।
वचन विविध तिहि समय लियो गोरीह नरिंद हरि।
टुक मंझि टुंड टुकरे करहु तवसु साहि गोरी धरउ।
इजि जाण खाण इम उच्चरिय अब कवित्त कोइ कवि करउ।

धा० ४२२ : सो ... ... मरणहु चंद नरिंद।
रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद॥

धा० ४२० के 'चंद राजन मरण' और धा० ४२२ के 'मरणहु चंद नरिंद' में उक्ति-शृंखला अति प्रकट है। धा० ४२१ में केवल धा० ४२० के 'सुलताण पर्‌यो खां पुक्कर्‌यो' का अनावश्यक विस्तार किया गया है, जिसके कारण उक्ति-शृंखला समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन तेरह स्थलों पर पाठवृद्धि के कारण धा० में उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण मिलता है, वह प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के कारण है।

परिणामस्वरूप उक्ति-शृंखलाओं को भंग करने वाले धा० के निम्नलिखित अंश प्रक्षिप्त प्रमाणित होते हैं :—

(१) धा० ६८ के अनन्तर की वार्त्ता, धा० ६९ तथा धा० ६९ के अनन्तर की वार्त्ता,
(२) धा० १२१ के अन्तिम दो चरण,
(३) धा० १२९ के बाद की वार्त्ता,
(४) धा० १४३, धा० १४४, धा० १४५ तथा धा० १४५ के बाद की वार्ता,
(५) धा० १८६ के बाद की वार्त्ता,
(६) धा० १९२ के बाद की वार्त्ता,
(७) धा० १९४,
(८) धा० २४३,
(९) धा० २६९ के अन्तिम दो चरण,
(१०) धा० २९१, धा० २९२,
(११) धा० ३५९,
(१२) धा० ३८१ के बाद की वार्त्ता, तथा
(१३) धा० ४२१।

छंद-शृंखला-अतिक्रमण

धा० में छंद-शृंखला के अतिक्रमण का एक ही स्थल है, जो निम्नलिखित प्रकार से मिलता है :—

धा० ४०२ : छन्द—सुरताण जमन कुरमान दीन। (१)
सब नयर छोरि घरियार कीन। (२)
मुक्किल्लिउ चंद राजनहि पास। (३)
तुम गहहु हम दिल्लियहि तमास। (४)

धा० ४०३ : दस हत्थ रक्खि दीनों असीस। (५)
सिर नयो नयो नहि मात सीस। (६)
राजन है सुरति इक्क। (७)
घरियार लख सर विद्ध सेक्क। (८)

वार्ता : हम तमास चीत हा भाई वे हुज [।]व खा हबसी इसके साहिब कूं दस हत्थ राखि गद्दी कराउ राजा छह दिखाउ किरयो देख्यो।

धा० ४०४ : दूहा—चक्खहीन दुब्बल त्रिपत बंमन रहियो पासि।
रोस अगनि तन त्रिप जरइ अरि विलइ विलास॥

वार्ता : राजा हे समस्या माहि आसीर्वाद दीन्हउ।

धा० ४०५ : भर पंथ राइ आजान बाह।
दुज्जने राइ वर वीर दाह।
चालुक्क राइ पर पैजु पारि।
पंगुरे राइ जग जग्गु हारि।

धा० ४०३ की पुनरुक्ति पर आगे विचार किया गया है : यहाँ हम देखते हैं कि कदाचित् पाठ-मिश्रण के कारण धा० ४०३ में धा० ४०५ की स्फुट पंक्तियाँ आ गई हैं। शेष पाठ में से प्रथम वार्ता धा० ४०३ के चरण ३ और ४ के भाव का अधिकांश में विस्तार करती है, द्वितीय वार्ता धा० ४०५ का शीर्षक मात्र देती है। अन्य अनेक प्रतियों में धा० ४०२ तथा धा० ४०५ एक ही रूपक के दो अंश हैं जो बीच की इन पंक्तियों के द्वारा जुड़े हुए हैं :—

गयउ चंद तब तेहि ठाहि।
नृप मिल्यउ बयट्ठउ जहाँ चाहि।

धा० ४०४ के 'बंमन रहियो पासि' की कोई संगति प्रसंग में नहीं है और किसी ब्राह्मण की समक्षता में पृथीराज और चन्द की गोरी का प्राणांत करने के सम्बन्ध की कोई बात होना असंभव भी थी, अतः धा० ४०४ स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है। धा० पाठ में पृथ्वीराज के पास चन्द के जाने का भी कोई उल्लेख नहीं होता है, जैसा बीच की ऊपर उद्धृत पंक्तियों द्वारा कुछ अन्य पाठों में हुआ है। इन दृष्टियों से विचार करने पर धा० में जो छन्द-शृंखला का अतिक्रमण हुआ है, वह स्पष्ट ही धा० ४०२ तथा धा० ४०५ के बीच प्रक्षिप्त सामग्री को रखने के लिए किया गया है।

पाठांतर-ग्रहण

धा० १५० तथा १५२ :—

धा० १५० : त्रि कवि आइ कवियहि संपत्ते।
नवरस भाख ज पुच्छन लत्ते।
कवि अनेक बहु बुधि गुन रत्ते।
कहि न एक कवि चन्द समत्ते।

धा० १५२ : ते कवि आइ कवियहि संपत्तउ।
गुण व्याकरणइ रहि रस रत्तउ।
थकि प्रवाह गंगा सुख मंती।
सुर नर स्रवण मंडि रहि चंती।

दोनों छन्दों में अन्तर होते हुए भी प्रथम चरण के विषय में पूर्ण साम्य है, और दोनों छन्द एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आते हैं, केवल एक छन्द बीच में पड़ता है, इसलिए दो में से एक धा० में अपने कुल के पाठ के अनुसार तथा दूसरा पाठ-मिश्रण के कारण किसी अन्य कुल के पाठ के अनुसार आया होगा। धा० १५२ सभी प्रतियों में समान रूप से मिलता है, जबकि धा० १५० की स्थिति विभिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न है। मो० में धा० १५० है नहीं, अ० फ० में उसके केवल चरण २, ३, ४ हैं, दोनों पाठों में पहला चरण एक ही होने के कारण उसे फिर नहीं लिखा गया है, और म० ना० द० उ० स० में केवल प्रथम दो चरण हैं, शेष दो चरण नहीं हैं। इसलिए धा० १५० धा० १५२ का 'पाठांतर' मात्र लगता है जो हाशिए की भूल के कारण कुछ पहले लिख उठा।

(२) धा० १५५—५६ इस प्रकार हैं :—

अहो चंद बरदायि कहूं हूँ। (१)
कनवज्जह दिक्खन आय हूँ। (२)
जे सरसइ अवनहुं नृप संचउ। (३)
गजपति गरुव गेह किमि गंजहु। (४)
किनि गुनि पंगु राइ मन रंजहु। (५)
जो सरसइ आनहु वर रंचउ। (६)
तो अद्रिस्ट वरनहि नृिप संचउ। (७)

उपर्युक्त तीसरी तथा छठवीं पंक्तियाँ एक ही हैं, जिनमें पुनरावृत्ति हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ४ थी तथा ५वीं पंक्तियाँ ६ठी-७वीं पंक्तियों के 'पाठांतर' के रूप में हाशिए में लिखी थीं—आशय दोनों पाठों का बहुत-कुछ एक है, किन्तु इन पाठांतर की पंक्तियों को सम्मिलित करते हुए उपर्युक्त तीसरी पंक्ति को प्रतिलिपिकार ने दो बार लिख डाला। विभिन्न प्रतियों में उपर्युक्त ४थी तथा ५वीं पंक्तियों की स्थिति इस प्रकार है : मो० में ये पंक्तियाँ नहीं हैं, अ० फ० में ५वीं पंक्ति नहीं है, म० ना० द० उ० स० में ५वीं का एक और पाठ है : 'श्रीधर बरनि पंग मन रंजहु' और इस पाठ को लेकर पंक्ति ५ म० उ० स० में पंक्ति ४ के साथ दो बार आई है। म० द० उ० स० में पंक्तियाँ ४ और ५ पुनः उपर्युक्त पंक्तियाँ १, २ के स्थान पर भी आई हैं।

(३) धा० २०७ तथा धा० २०८ :—

धा० २०७ : सुनि वर सुन्दर उभय हुव स्वेद कंप सुर भंग।
मनु कमलिनि कउ समहरि अमृत करने तंन रंग॥
धा० २०८ : सुनि रव प्रिय प्रिथीराज कउ उभय रोम तिन अंग।
सेद कंप सुरभंग भयउ सपत भाइ तिहि अंग॥

धा० में इन दो छन्दों के बीच लिखा हुआ है "तथा अउर पाठांतर"। मो० में इनमें से केवल धा० २०७ है, अ० फ० में भी धा० की भाँति दोनों छंद हैं, केवल पाठांतर विषयक उल्लेख नहीं है। म० उ० स० में धा० २०७ के चरण १ का पूर्वार्द्ध तथा धा० २०८ के शेष अंश हैं; ना० में म० उ० स० की भाँति एक दोहा की शब्दावली तो है ही, उसके बाद धा० २०७ का दूसरा चरण भी दे दिया गया है। इसलिए प्रकट है कि धा० २०८ धा० २०७ का 'पाठांतर' मात्र है।

पाठांतर-ग्रहण के कारण परिणामतः धा० के निम्नलिखित छंद पाठ-वृद्धि के हैं :—
धा० १५०, १५६, २०८।

मो० अ० फ० म० ना० द० उ० ना० स० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखित छन्द मो० अ० फ० म० ना० द० उ० ना० स० में नहीं हैं :—

(१) धा० १५७ : यह छंद धा० के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है। यह प्रहेलिका के रूप में दिया गया नारी का नख-शिख है। यह जयचन्द को सम्बोधित किया गया है (चरण ५), किन्तु अभी चन्द जयचन्द के सामने पहुँचा नहीं है, जयचन्द के कविगण उसकी परीक्षा लेने आए हैं, और उन्होंने अदृष्ट जयचन्द का वर्णन करने को चन्द से कहा है। इसमें 'सुजानगिरि' की छाप (चरण ५) आती है, इसलिए यह छन्द चन्द का हो भी नहीं सकता है। यदि कहा जावे कि 'सुजान गिरि' जयचन्द का विशेषण है :

जयचन्द राय सुज्जान गिरि राठौर राय गुन जानिहै।

तो यह कथन ठीक नहीं हो सकता है : 'गिरि' शब्द का इस प्रकार का प्रयोग कहीं नहीं देखा जाता है। अतः धा० १५७ प्रक्षिप्त है।

(२) धा० ४२२: यह छन्द भी धा० के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है। यह निम्नलिखित है:—

दूहा—सा ... ... मरणहु चन्द नरिंद।
रासउ रसाल नव रस निबंधि अचरिज हुंदु फणिंद॥

निम्नलिखित कवित्त इसी विषय का है, जो शेष सभी प्रतियों में मिलता है (मो० पाठ) :—

कवित्त—मरन चंद बरद्दीआ राज सुनि सा हम्मुं (= हम्मउ) सुनि।
पुष्पांजलि असमान सीस छोडि (= छोडी) त देवतनि।
मेछ अवधि त धरणि धरणि नव श्रीय सुहसिग।
तिन हि तिहो सं योति योति योतिहि संपत्तिग।
रासु (=रासउ) असंभु नवरस सरस चंद चंदु (छंदु ?) कीअ अमीअ सम।
शृंगार वीर करुण विभछु (=विभछु) भय रुद सूत (संत ?) हसंत सम॥

दोहे के अधिकतर शब्द इस कवित्त में मिलते हैं, केवल अन्त के कुछ शब्द नहीं मिलते हैं। 'रासउ रसाल' शब्दावली पर विचार करते हुए इसलिए, जैसा पहले भी कहा जा चुका है, ऐसा लगता है कि कवित्त के किसी त्रुटित पाठ से धा० के दोहे की रचना की गई है।

मो० अ० फ० म० द० उ० ना० स० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द मो० अ० फ० म० द० उ० ना० स० में नहीं है :—

(१) धा० ३५९ : ऊपर धा० की उक्ति-शृंखला-त्रुटियाँ दिखाते हुए यह दिखाया जा चुका है कि धा० ३५८ तथा ३६० में स्पष्ट उक्ति-शृंखला है, जिसको धा० ३५९ त्रुटित करता है जो प्रसंग में संगत भी नहीं है। अतः धा० ३५९ प्रक्षिप्त है।

मो० अ० फ० म० ना० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द मो० अ० फ० म० ना० में नहीं है :—

(१) धा० ३६१ : धा० ३६० तथा ३६२ में स्पष्ट छन्द-शृंखला है, धा० ३६१ जिसको त्रुटित करता है। धा० ३६० में केवल निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं:—

मिले जाइ चहुवान सुरताण खग्गे।
मनो वारुणी छके वारुणी लग्गे।

यह छन्द अधूरा है यह प्रकट है। यह भुजंगी है, जिसे धा० में गलत ही 'निबंधु' कहा गया है, और भुजंगी रचना भर में कहीं भी दो चरणों का नहीं आया है, कम से कम चार चरणों का आया है। फिर इस छन्द का कथन भी अधूरा रह जाता है, वह धा० ३६१ के अनन्तर आई हुई भुजंगी धा० ३६२ में चलता रहता है। अतः धा० ३६१ प्रक्षिप्त है।

स० ना० द० उ० ज्ञा० स० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द स० ना० द० उ० ज्ञा० स० में नहीं है:—

(१) धा० १९२ : आगे हम देखेंगे कि यह छन्द ना० की पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रसंग में अनावश्यक भी है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त है।

अ० म० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द अ० म० में नहीं है:

(१) धा० १ : इसकी प्रथम पंक्ति है:

प्रथम मंगल मूल श्रुत बीय।

और धा० २ की प्रथम पंक्ति है:

प्रथम भुजंगी सुधारी ग्रहण्णं।

अतः दोनों छन्दों को प्रामाणिक मानने पर 'प्रथम' विषयक पुनरुक्ति होती है, जिसका मूल रचना में इस प्रकार होना संभव नहीं लगता है। धा० २ सभी प्रतियों में मिलता है और धा० २ मे प्रथम, द्वितीय आदि संख्या-शृंखला भी है, जो धा० १ में नहीं है। धा० १ वंदना का है भी नहीं, उसमें श्रुतियों, पुराणों आदि की उत्पत्ति विषयक उक्ति मात्र है, जो कि ग्रंथारंभ में उपयुक्त नहीं है। अतः धा० १ प्रक्षिप्त लगता है।

मो० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखितछन्द मो० में नहीं है:—

(१) धा० १५० : यह, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० १५२ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० १५२ सभी प्रतियों में है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(२) धा० १५६ : यह जैसा हम ऊपर देख चुके है, धा० १५५ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० १५५ सभी प्रतियों में मिलता है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(३) धा० २०८ : यह, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० २०७ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० २०७ सभी प्रतियों में मिलता है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० २२४ : यह सुभाषित के ढंग का एक श्लोक है, जिसके न होने पर भी प्रसंग को कोई क्षति नहीं पहुँचती है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(५) धा० २४३ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २४२ तथा २४४ में उक्ति-शृंखला है, जो धा० २४३ से त्रुटित होती है, अतः धा० २४३ प्रक्षिप्त है।

(६) धा० ३९६ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० ३९५ तथा ३९७ में उक्ति-शृंखला है जो, धा० ३९६ से त्रुटित होती है, और धा० ३९६ प्रसंग-विरुद्ध भी है, क्योंकि पृथ्वीराज के पूर्व पराक्रम का, जो इस दोहे में आता है, यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, अतः वह प्रक्षिप्त है।

(७) धा० ४२१ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० ४२० तथा ४२२ में उक्ति-शृंखला है, जो धा० ४२१ से त्रुटित होती है, फिर उसमें आया हुआ 'तब सु साहि गोरी धाउ' सर्वथा असंगत भी है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त है।

अ० फ० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखित छन्द अ० फ० में नहीं हैं:—

(१) धा० ११४ : ना० के संख्या-व्यतिक्रम के छन्दों पर विचार करते हुए आगे देखेंगे कि यह छन्द प्रक्षिप्त है।

(२) धा० १२० : यह छन्द प्रसंग में आवश्यक है, क्योंकि पूर्ववर्ती छन्द में दिन का उल्लेख है और परवर्ती में प्रभात का, अतः बीच में रात्रि और उसके अनन्तर प्रभात होने का उल्लेख होना चाहिए जो इसी छन्द में होता है। इसलिए यह छन्द अ० फ० में भूल से छूटा लगता है।

(३) धा० १४३ : हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० १४२ तथा धा० १४६ के बीच स्पष्ट उक्ति-शृंखला है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त है।

(४) धा० १७० : प्रसंग में यह छन्द आवश्यक है। धा० १६९ में जयचन्द ने चन्द को पान अर्पित करने के लिए और उसके बहाने उसके अनुचर (पृथ्वीराज) का रहस्य जानने के लिए आदेश किया है कि कुमारियाँ तांबूल के साथ प्रस्तुत हों; धा० १७० उन्हीं कुमारियों के सम्बन्ध में कहता है कि ऐसी कुमारियाँ जिनके हाथों के लिए राजाओं ने याचना की थी, चन्द को पान अर्पित करने के लिए चल पड़ीं; धा० १७१ में कहा गया है कि उन षोडस वर्षीया सुन्दरियों ने चतुर दासियों को साथ लेकर धवल-गृह छोड़ा। अतः धा० १७० इस प्रसंग में संगत लगता है और प्रक्षिप्त नहीं प्रतीत होता है।

(५) धा० २३२ : धा० २३१ तथा २३२ में स्पष्ट प्रसंग-शृंखला है : धा० २३१ में युद्ध में न प्रवृत्त हुए पृथ्वीराज को आता देखकर संयोगिता ने यह कह कर सिर पीट लिया है कि 'जिस प्रियजन के लिए लोगों उँगलियाँ उठें, उस प्रियजन का क्या प्रयोजन?' धा० २३२ में कहा गया है कि संयोगिता के इस वाक्य को सुनकर पृथ्वीराज के सामंतों ने कहा कि '[पृथ्वीराज यहाँ युद्ध से भयभीत होकर आया है उसे यह न समझना चाहिए, क्योंकि]' इसके साथ जो सामंत-भट हैं, वे हाथियों को भी ठेल देते हैं।' अतः धा० २३२ प्रसंग में आवश्यक है और प्रक्षिप्त नहीं लगता है।

(६) धा० ३०८ : इस छन्द में 'कामाग्नि-भोग' की बात कही गई है, जो युक्ति-औचित्य की दृष्टि से ठीक नहीं है, अग्नि भोग की वस्तु नहीं हो सकती है, 'सरह नि रूख लगत पयिति निप नयनन ति संयोग' के उत्तरार्द्ध का शेष वाक्य से कुछ सम्बन्ध भी नहीं ज्ञात होता है, फिर इस प्रसंग में केवल सामान्य विलास-वैभव का वर्णन किया गया है (धा० ३०६—३१२), उसके बीच संयोगिता और पृथ्वीराज के प्रेम की बातें लाना असंगत लगता है। अतः धा० ३०८ प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

(७) धा० ३५७ : मो० की पुनरावृत्तियों के प्रसंग में हम देखेंगे कि यह छंद उनके बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

म० में छंदाभाव

धा० के निम्नलिखित छंद म० में नहीं हैं :—

(१) धा० १९ : आगे हम देखेंगे कि यह छंद ना० की पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

(२) धा० ५२ : धा० ५१ के साथ इसकी उक्ति-शृंखला है, यह हम ऊपर देख चुके हैं, अतः यह छंद प्रक्षिप्त नहीं है।

(३) धा० ६१ : इसमें कैवाँस-करनाटी केलि के प्रसंग में 'निसि मद्धय' कहा गया है किंतु आगे इसी प्रसंग में धा० ८४ में 'उदित अगस्त' कहा गया है और कन्नौज-प्रयाण इसी घटना के बाद होता है, इसलिए धा० ६१ प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० ८२ : आगे स० की पुनरावृत्तियों पर विचार करते हुए हम देखेंगे कि यह उसकी पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

(५) धा० १३७ : यह छन्द धा० १३८ से प्रसंगतः संबद्ध है; धा० १३७ में कहा गया है :—

यह चरित कब लगि गिनै चलउ संदेह दुवार।

और धा० १३८ की प्रथम पंक्ति है :—

देखियं जाइ संदेह छोहं।

अतः धा० १३७ प्रक्षिप्त नहीं हो सकता है।

(६) धा० २८० : धा० २७९ तथा इस छन्द में उक्ति-शृंखला हम ऊपर देख चुके हैं, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त नहीं लगता है।

ना० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द ना० में नहीं हैं :—

(१) धा० ८ : ना० की पुनरावृत्तियों में, आगे हम देखेंगे, यह उन छन्दों में आता है जो प्रक्षिप्त माने गए हैं।

द० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द द० में नहीं है :—

(१) धा० २१ : यह छन्द ग्रन्थ की छन्द-संख्या विषयक है, जिसमें "सहस पंच (या 'सहस सत्त') नवसिव" इसका आकार बताया गया है, किन्तु यह छन्द-संख्या ग्रन्थ के किसी पाठ में नहीं मिलती है, अतः छन्द प्रक्षिप्त लगता है।

उ० शा० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द उ० शा० में नहीं हैं :—

(१) धा० ८१ : स० की पुनरावृत्तियों पर विचार करते हुए आगे हम देखेंगे कि यह छन्द उनमें आता है और प्रक्षिप्त है।

उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त धा० में अनेक वार्त्ताएँ भी आती हैं, जिनमें से कुछ के सम्बन्ध में हम ऊपर उक्ति-शृंखला-त्रुटियों का विवेचन करते हुए हम विचार कर चुके हैं। शेष भी प्रायः उसी प्रकार की हैं और इनमें से एक भी समान रूप से शेष समस्त प्रतियों में नहीं पाई जाती है, अतः इन पर विचार करना अनावश्यक होगा। इस प्रकार धा० की समस्त वार्त्ताएँ प्रक्षिप्त लगती हैं।

परिणामतः हम देखते हैं कि विभिन्न प्रतियों में न मिलने वाले धा० के छन्दों में से निम्नलिखित प्रक्षिप्त प्रमाणित होते हैं :—

मो० अ० फ० म० ना० द० उ० शा० स०	में अप्राप्य	:	धा० १५७।
मो० अ० फ० म० द० उ० शा० स०	,,	:	धा० ३५९।
मो० अ० फ० म० ना०	,,	:	धा० ३६१।
म० ना० द० उ० शा० स०	,,	:	धा० १२६।
अ० म०	,,	:	धा० १।
मो०	,,	:	धा० १५०, १५६, २०८, २२४ २४३, ३९६, ४२१।
अ० फ०	,,	:	धा० ११४, १४३, ३०८, ५७
म०	,,	:	धा० १५, ६१, ८२।
ना०	,,	:	धा० ८।
द०	,,	:	धा० २१।
उ० शा०	,,	:	धा० ८१।

धा० भ० फ० ना० म० ज्ञा० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) धा० २१९ के चरण २१ तथा ३६ :—

धा० २३९. २१ : निृप जोइ फवज्जनि बट्टि लियं ।

धा० २३९. ३६ : निृप जोइ फवज्जइ वंट लियं ।

ये दोनों चरण एक-दूसरे से इतने अभिन्न और दूर हैं कि कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण न किया गया होगा। मो० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में ये पंक्तियाँ इसी प्रकार दो बार आती हैं, केवल मो० में धा० २३९.३६ के स्थान पर है :—

निृप इक इक योजन बंटि लियं ।

किन्तु यहाँ पर कन्नौज और दिल्ली की दूरी को एक-एक योजन करके बाँट लेने का कोई प्रसंग नहीं है, यह प्रसंग तो काफी बाद में आता है; और 'निृप' (पृथ्वीराज) ने 'एक-एक योजन बाँट लिया' यह वास्तविक भी नहीं है, कन्नौज से दिल्ली की दूरी को उसके सामन्तों ने आपस में बाँटा है (धा० २६१)। इसलिए मो० का पाठ अग्राह्य है, और दूसरे स्थान पर भी धा० का पाठ ही ग्राह्य है, यह प्रकट है। प्रश्न यह है कि ऐसी पुनरावृत्ति क्यों हुई। यह पुनरावृत्ति पाठ-वृद्धि के कारण ही हुई ज्ञात होती है। पुनरावृत्ति के बीच की पंक्तियों में चामंडराय के सेना के मुख पर नियुक्त होने का उल्लेख होता है, किन्तु पूरे कन्नौज-युद्ध में चामंडराय का उल्लेख पुनः कहीं नहीं मिलता है; इसी प्रकार आरम्भ, कूरम्भ, और मोरीराज की भी नियुक्तियाँ इन पंक्तियों में उल्लिखित हुई हैं, किन्तु कहीं भी इनका उल्लेख कन्नौज-युद्ध में अन्यत्र नहीं होता है। इसके विपरीत मोरीराज को सोमेश्वर और पृथ्वीराज दोनों ने अलग-अलग पहले दलित किया है (धा० १७, ४७), इस लिए उसका पृथ्वीराज के पक्ष में लड़ना असम्भव ही है। धा० में पूरे कन्नौज-युद्ध में ४६ योद्धाओं के नाम आए हैं।[१] इन पंक्तियों में कुल छः नाम ही आते हैं, और उनमें भी तीन इस प्रकार गलत हैं यह प्रमाणित करता है कि ये पंक्तियाँ प्रक्षिप्त हैं और पुनरावृत्ति प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के कारण हुई है।

धा० मो० ना० ज्ञा० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) धा० ४०३ : दस हत्थ रक्खि दीनी असीस ।
सिर नयो नयो नहि मान रीस ।
राजन......है सुरति इक्क ।
घरियार लक्ख सर विद्ध नेक्क ।

धा० ४०५ : राजन सुदान है सुरत इक्क ।
घरिआर लक्ख सिर विधन इक्क ।...
पहिचानि चंद वर सुनिग सीस ।
सिर नयो नयो नहि मान रीस ॥

दोनों छन्दों में साम्य इतना अधिक है कि 'पाठांतर' के नाते दोनोंमें से किसी एक को न लिया गया होगा। धा० ४०३ जहाँ पर है, वहाँ पर सर्वथा असंगत है: धा० ४०२ में गोरी ने चंद से कहा है कि वह पृथ्वीराज से घड़ियालों के वेधने की बात कहे और यदि पृथ्वीराज स्वीकार करे तो वह तमाशा देखे, धा० ४०३ के बाद एक वार्ता आती है, जिसमें गोरी हुजाबखाँ हबशी को हुक्म देता है कि वह चंद को पृथ्वीराज से दस हाथ दूर रख कर उससे बातें करावे, धा० ४०४ में आता है कि चंद ने राजा को दुर्बल और

[१] दे० धा० २५३, २५६, २८९, २९०, २९२; ३०४।

उदास पाया, इसके अनन्तर धा० में एक शीर्षक जैसी वार्ता आती है कि चंदने राजा को आशीर्वाद दिया, धा० ४०५ में उसका राजा को आशीर्वाद देना और उसे उस के वचन की स्मृति कराना आता है जिसमें उसने सात घड़ियालों को एक शर से बेधने की बात कही थी। ऐसी दशा में प्रकट है कि धा० ४०३ की पंक्तियाँ अपने स्थान पर सर्वथा असंगत हैं। ये इतनी फुटकल भी हैं कि इनमें कोई एकसूत्रता नहीं है। लगता है कि किसी प्रति के क्षत-विक्षत हो जाने के अनंतर एक पूरे रूपक की येही पंक्तियाँ ठीक-ठीक पढ़ी जा सकती थीं और मिलान करते समय धा० ४०५ से इन्हें भिन्न छंद की पंक्तियाँ समझकर उसी प्रति से ये उतारी गई। इसलिए धा० ४०३ उसमें पाठ-वृद्धि के रूप में आया, यह प्रकट है।

धा० में पुनरावृत्तियाँ

(१) धा० १२० तथा १८० :—

धा० १२० : भइत निसा दिस मुदित जिम उडनिप तेज बिराज।
कथित साथि कथहे कथा सुवस सयन पिथिराज॥

धा० १८० : भयत्त निसा दिसि मुदित बहु उड निप तेज बिराज।
कथिक सत्थ (सत्थ) कथहित कथा सुक्ख सयन प्रिथिराज॥

पाठ की दृष्टि से दोनों छन्द प्रायः परस्पर अभिन्न हैं और स्थान की भी दृष्टि से एक दूसरे से बहुत दूर हैं, इसलिए कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है।

अ० फ० के अतिरिक्त शेष प्रतियों में धा० १२० के स्थान पर (मो० पाठ) है :—

नवल धांम बासर बिसर घटिग हंस तजु शत।
तुकछु इच्छि चच्छु हुति (हुती) से सव दिवस प्रात॥

प्रसंग से यह प्रकट है कि धा० १२० के स्थान पर प्रभात होने का उल्लेख होना चाहिए जैसा मो० आदि हुआ में है, क्यों कि धा० १२१ में प्रभात-कालीन दृश्यों का वर्णन है, और धा० १८० के स्थान पर, जैसा सभी प्रतियों में है, रात्रि होने का उल्लेख होना चाहिए, क्यों कि धा० १८१ में जयचन्द के 'अवसर' (नृत्य-संगीत-समाज) का वर्णन है। इसलिए यह स्पष्ट है कि धा० में छन्द अपने वास्तविक स्थान के अतिरिक्त एक गलत जगह पर भी आ गया है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों हुआ होगा। एक सम्भावना तो यह है धा० में भी यहाँ वही दोहा था जो मो० आदि में है और उसके 'नवल' को 'भइत' पढ़कर—क्यों कि पुरानी राजस्थानी लिपि के न और भ में किंचित साम्य मिलता है—प्रतिलिपिकार ने स्मृति-भ्रम से उस दोहे के स्थान पर भी धा० १८० को लिख डाला। दूसरी संभावना यह है कि धा० के किसी पूर्वज में पत्र त्रुटित होने के कारण इस छन्द का 'नइत' मात्र शेष था, उसको 'भइत' पढ़कर स्मृति-प्रमाद से धा० १८० को यहाँ भी लिख डाला गया। इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं हो सकती है।

(२) धा० २०० तथा २४२ :—

धा० २०० : भय डामक दिसि विदिसि हुइ लोह पयर तिह राज।
मनु अकाल तिडिय सघन चल्या तु छूटि प्रवाह॥

धा० २४२ : सुनिम श्रवण राजन चढ़िय बहु पक्खर भर राहु।
मनु अकाल तेड़िय सघन पवय छूटि परवाहु॥

दोनों छन्दों में पाठ-भेद केवल दोनों के प्रथम चरणों के पूर्वार्द्ध में है, शेष छन्द दोनों में एक ही है। किन्तु दोनों परस्पर इतने कम भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से इतने दूर हैं कि कोई भी एक दूसरे के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। वस्तुस्थिति क्या रही होगी, यह विचारणीय है।

मो० तथा अन्य प्रतियों में धा० २०० तो अपने स्थान पर है, किंतु धा० २४२ के स्थान पर (मो० पाठ) है :—

सुनि दज्जन रज्जन चढ़िय बहु पष्षर समहाउ।
मनुह लंक विग्रह करन चलु (=चलउ) रघुपति राउ ॥

धा० २०० तथा २०१ में उक्ति-शृंखला प्रकट है :—

धा० २०० : मनु अकाल तिडिय सघन चल्या तु छुटि प्रवाह।

धा० २०१ : प्रवाही (प्रवाहे—शेष में) न तज्जी न लज्जी अहारे ॥

इसी प्रकार धा० २४१ तथा २४२ (मो० पाठ) में प्रसंग-शृंखला है। धा० २४१ में रण-बाजों के बजने का वर्णन है, और फिर कहा गया है :—

उप्पमा खंड नव नयन सरगी।
मनो राम रावन्न हत्थे विलग्गी ॥

धा० २४२ (मो० पाठ) में बाजों को सुनकर चढ़ाई करने का उल्लेख है, और कहा गया है कि पृथ्वीराज जयचन्द से विग्रह करने उसी प्रकार चल पड़ा जैसे रावण से विग्रह करने राम चल पड़े थे। इसलिए प्रकट है कि धा० २४२ के स्थान पर भी गलत ढङ्ग पर धा० २०० आया हुआ है।

यह पुनरावृत्ति भी पूर्ववर्त्ती की भाँति स्मृति-भ्रम से हुई लगती है : प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध में दोनों में 'बहुपष्षर' आता था और एक का 'समहाउ' तथा दूसरे का 'भरराहु' (भहराउ—शेष में) भी एक से थे, इसलिए धा० २४२ के लिखते समय प्रतिलिपिकार ने 'बहु पष्षर' तक तो ठीक प्रतिलिपि की किंतु उसके बाद वह बहँक गया और शेष शब्दावली स्मृति-भ्रम से उसने धा० २४२ के स्थान पर भी धा० २०० की लिख डाली। अतः प्रकट है कि यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं हो सकती है।

मो० में पुनरावृत्तियाँ

(१) मो० २५२ तथा मो० २७२ :—

मो० २५२ : आलोक्य नृप नयनं वचनं धर्मस्य कातरं।
स्वामि दोस भई कावे सेमि निंदा स उदये ॥

मो० २७२ : आलोकित नृप नयनं वचनं जिह्वा सु कातरा।
श्रवन सुनत सामंतया सुर।ामि निंदा उदिमं तया ॥

दोनों पाठों में पर्याप्त साम्य है, किन्तु एक दूसरे से दोनों काफी दूर पड़े हैं इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित हो सकती है, और न 'पाठांतर'-ग्रहण जनित। ऐसा लगता है कि पहले छंद मो० में उपर्युक्त दो में से एक ही स्थान पर था, किन्तु किसी अन्य प्रति से मिलान करने पर मिलान करने वाले को यह छंद भिन्न स्थान पर मिला और उसने यह समझा कि उसकी प्रति में वह छंद नहीं है, इस लिए उक्त अन्य प्रति से इस भिन्न स्थान पर भी उसने छंद को उतार लिया।

(२) मो० ३१४ तथा मो० ४४८ :—

दोनों छंद सर्वथा एक ही हैं, पाठ भी दोनों का सर्वथा एक ही है, यहाँ तक कि दोनों में निम्न-लिखित गलत पंक्ति अन्त में रूपान्तर से आती है :—

नृप इक इक योजन बाँटि लियं।

और दोनों एक दूसरे से बहुत दूर भी हैं, एक कन्नौज-युद्ध में और दूसरा गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में; अतः दो में से कोई भी पाठ 'पाठांतर' समझ कर न उतारा गया होगा। इस छंद में निर्वान चन्देल के पृथ्वीराज के द्वारा सेना में एक विशिष्ट स्थान पर नियुक्त किए जाने की बात कही गई है,

और मो० ३१९ (= धा० २८९) में निर्वान वीर के युद्ध में धराशायी होने का भी उल्लेख हुआ है, अतः यह निश्चित है कि छंद का वास्तविक स्थान मो० ३१९ (= धा० २८९) से पूर्व होना चाहिए, और मो० ४५० इसका वास्तविक स्थान नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसके द्वितीय तथा पंचम चरण क्रमशः इस प्रकार हैं :—

दुहु राय महा भर थं मिलियं।
दुहु राय रखत्त ति रत्त उठे।

इस लिए भी यह छंद पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध का होना चाहिए, पृथ्वीराज-गोरी युद्ध का नहीं। अब प्रश्न है कि मो० ४५० के स्थान पर यह पुनः कैसे लिख उठा। धा० में यह मो० ३१४ के स्थान पर ही है, किन्तु मो० के अतिरिक्त शेष प्रतियों में यह मो० ४५० के स्थान पर है। ऐसा लगता है कि पहले मो० में यह पहले स्थान पर ही था किन्तु बाद में किसी अन्य प्रति के अनुसार दूसरे स्थान पर भी रख लिया गया। यह अन्य प्रति भी मो० के ही कुल की लगती है, क्योंकि छन्द के अन्तिम चरण का उपर्युक्त गलत पाठ मो० में दोनों स्थानों पर आता है। फलतः यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(३) मो० ४४६ के चरण ११, १२ तथा उसी के २९, ३० :—

चरण ११, १२ : प्रजरि (= प्रज्जरइ) पंथ पट्टनि ति सिंध।
मिलि चलहि संग आरम्भ गिधि॥

चरण २९, ३० : प्रजलहि पंथ पट्टनि (= पट्टनइ) सिंधु।
मिलि चलिग अ अरंभ गिधु॥

ये चरण दो बार 'पाठांतर'-ग्रहण के परिणाम-स्वरूप आए हुए नहीं हो सकते हैं, क्योंकि दोनों स्थान एक दूसरे से दूर हैं। धा० अ० फ० में ये चरण बाद वाले स्थान पर हैं और ना० शा० स० में पहले स्थान पर हैं; ऐसा लगता है कि मो० में पहले स्थान पर ये चरण अपने पूर्ववर्ती पाठ के कारण बने रहे, और दूसरे स्थान पर किसी अन्य प्रति के पाठ-मिश्रण के परिणाम-स्वरूप आ गए। फलतः यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(४) मो० ४४६ के अन्तिम दो चरण तथा मो० ४५० :—

मो० ४४६ के अन्तिम दो चरण :

उचरहि चंद भर भरन काज।
रापीयु (= रपियउ) आज प्रथीराज राज॥

मो० ४५० : उचरह चंदु भर भरन काज।
रषिउ (= रषिअउ) आज प्रथीराज राज॥

दोनों स्थानों पर इन चरणों का पाठ बहुत-कुछ एक ही है और ये दोनों स्थान एक दूसरे से कुछ दूर हैं, इस लिए यह पुनरावृत्ति 'पाठांतर'-ग्रहण के कारण हुई नहीं लगती है। दूसरे स्थान पर छन्द के केवल दो चरण हैं, चार भी नहीं—पूरा छंद मो० में ४० चरणों का है। इस लिए यह भी सम्भव नहीं है कि छंद को किसी अन्य प्रति में दूसरे स्थान पर देख कर वहाँ भी उतार लिया गया हो। यहाँ स्पष्ट ही पाठ-वृद्धि जनित पुनरावृत्ति दिखाई पड़ती है। मो० ४४६ और ४५० के बीच आए हुए मो० ४४७, ४४८, ४४९ में से मो० ४४८ के विषय में कुछ ऊपर विचार किया जा चुका है। उसके साथ और दो छंद (मो० ४४७, ४४९ = धा० ३५६, ३५७) इस स्थान पर मो० के आदर्श में बढ़ाए गए, इसी कारण मो० में यह पुनरावृत्ति हो गई।

(५) मो० ५२२.४ तथा मो० ५२६.४ :

मो० ५२२.४ : सिर नाइ नहीं तिहि करीय रीस।

मो० ५२६.४ : सिर नाइ नही मन भई रीस।

दोनों का पाठ बहुत-कुछ समान है, और दोनों एक दूसरे से काफी दूर भी हैं, इस लिए दोनों में से कोई भी दूसरे का 'पाठांतर' समझ कर ग्रहण नहीं किया गया होगा। दोनों के बीच जो छंद मो० में आते हैं, वे अन्य प्रतियों में भी आते हैं और प्रसंग में आवश्यक हैं। इस लिए लगता यह है कि मो० में पहले बीच के छंद छूट गए थे, बाद में वे किसी अन्य प्रति के आधार पर बढ़ाए गए, जिससे पुनरावृत्ति हो गई। फलतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(६) मो० ५२६.२ तथा मो० ५२९.३ :—

मो० ५२६.२ : अंषि पांन मनु चित्तह लग।

मो० ५२९.३ : अंषि पांन मनु चित्तह लग।

ये दोनों एक दूसरे से कुछ दूरी पर हैं, इस लिए यह सम्भव नहीं है कि दोनों में से कोई अन्य का 'पाठांतर' समझ कर ग्रहण किया गया हो। दोनों के बीच में जो छंद मो० में आते हैं, वे अन्य प्रतियों में भी आते हैं और प्रसंग में आवश्यक हैं, इस लिए ऊपर की पुनरावृत्ति की भाँति यहाँ भी, ऐसा लगता है, मो० में कुछ छंद छूट गए थे जिन्हें किसी दूसरी प्रति की सहायता से जब उतारा गया, उस अन्य प्रति का 'पाठांतर' भी उतर आया, यद्यपि वह 'पाठांतर' समझ कर नहीं उतारा गया। अतः यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

अ० फ० में पुनरावृत्ति

(१) अ० १. अन्त तथा अ० २. भुजं० १ : अ० फ० में अ० २. भुजं १ के कुछ चरण अ० खण्ड १ के अन्त में भी आ गए हैं। दोनों के बीच में कोई छन्द नहीं है और पाठ भी दोनों का एक ही है, इसलिए लगता है कि अ० फ० के किसी पूर्वज में इस छन्द की पंक्तियाँ भूल से दो बार लिख उठीं थीं।

फ० में पुनरावृत्ति

निम्नलिखित पुनरावृत्ति फ० में ही है, अ० में नहीं है :—

(१) अ० फ० १४. कवि० १० के बाद फ० में आया हुआ दोहा तथा अ० फ० १४. दो० ३५ : अ० फ० १४. कवि० १० के बाद फ० में है :—

तब सावंत स सिह धरीय मुष जंपी इह वैनु।

तुम काहू के नृपति हौ विभीक गोरी सैन॥

अ० फ० १४. दो० ३५ : तब सावंत सु सिर धरी मुष जंपयिहु वैन।

जा सिर पर प्रिथिराजु है कभौ गोरी सैनु॥

दोनों छन्द एक दूसरे से काफी दूर हैं और दोनों के पाठों में भी अधिक अन्तर नहीं है, इसलिए इनमें से किसी के भी 'पाठांतर' के रूप में गृहीत हुए होने की सम्भावना नहीं है। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित ही लगती है।

इस पुनरावृत्ति के बीच में धा० ३४४, तथा ३४५ आते हैं।

म० स० में पुनरावृत्ति

(१) म० १२. ५८६ तथा १२. ६०७ और स० ६१. २४५७ तथा ६१. २४८९ :—
म० १२. ५८६, स० ६१. २४५७ :

एक अंग लिय सकल विकल उच्चरिय राजसुष।

भ्रुकुटि अंक बंकुरिय सुतिहि लिषिय मद्धि रुष।

चिय विमाण उप्पारि देव ढुल्लिय मिलि चल्लिय।

भ्रम अर्मकि आयास भ्रान ति अच्छरि मिलीय।
दस एक चवै कवि कवि कमल असि मुगति ध्रूंम करि करिय नृप।
तन राज काज जाजह भिरिग सुमति सीह भई देव वप॥

म० ११.६०७, स० ६१.२४८९ :

एक अंग तिय सकल विकल विचरीय राज सुष।
भृकुटि अग्र अंकुरिय प्रमान तरु लषित मद्धि रुप।
विय विमान उचरीय देव डुल्लिय मिलि वल्लीय।
आभा भ्रम कीय आय पंति अछ्रीय सु मिलिलय।
दस एक चवक्कवि कवि कमल अस भग तिन भ्रम करिय नूप।
तन राज काज जाजह भिरिग भित्त सीह मिलि देव विय॥

दोनों छन्द एक दूसरे से दूर हैं, और दोनों के पाठ लगभग एक हैं, इसलिए इनमें से कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया गया होगा, इसकी सम्भावना नहीं है। पाठवृद्धि के कारण हुई पुनरावृत्ति की भी सम्भावना नहीं है, क्योंकि दूसरे स्थान पर युद्ध का कोई प्रसंग ही नहीं है; वहाँ तो युद्ध से लौटे हुए पृथ्वीराज और संयोगिता का केलि-विलास वर्णन प्रारम्भ हुआ है। इसलिए प्रकट है कि दूसरे स्थान पर यह छंद किसी प्रकार भूल से पहुँच गया है।

स० में दूसरे स्थान पर अन्तिम दो चरण भिन्न हैं। ऐसा लगता है कि छंद को उस प्रसंग में खपाने के लिए जाज के धराशायी होने की बात ठीक न समझ कर पाठ-परिवर्तन किया गया है। स० में इनका पाठ है :

स० ६१.२४८९ : संजोग जोग रचि ब्याह मन गुरु जन सुत अरु निगम घन।
प्रोहित्त पंग अरु ब्रह्म रिषि प्रसन्न सुष्ष वर दुष्ष मन।

किन्तु व्याह की बात तो बहुत पीछे आती है, और यह शब्दावली कुछ न कुछ वहीं की है :

स० ६१.२५३७ : हेम हयगय अंबरह दासि सहस सत दीन।
प्रोहित पंग सुब्रह्म रिषि ब्याहु बिद्धि बहु कीन॥

म० ना० स० में पुनरावृत्ति

(१) म० ५.१ तथा म० ८.१ (= धा० ५८), ना० २०.४० तथा २८.७२ के बाद का छंद और स० ५०.१, ५५.१२२ तथा ५७.२६ :—

सभी स्थानों पर इस छंद का पाठ प्रायः एक ही है और निम्नलिखित है :

तिहि तप आखेटक भमै थिर न रहै चहुवान।
वर प्रधान जोगिनि पुरह धर रष्षै वर बान॥

सभी स्थल एक दूसरे से बहुत दूर हैं, इसलिये 'पाठांतर'—ग्रहण के कारण पुनरावृत्ति हुई, यह सम्भव नहीं है। म० ८.१, स० ५७.२६, ना० २८.७२ के बाद के छंद के स्थान पर इसकी संगति प्रकट है, वहाँ प्रसंग कैंवास-करनाटी-केलि का है : प्रधान अमात्य (कैंवास) का इसीलिए इस छंद में उल्लेख होता है और जहाँ म० ५.१ है और वहाँ कैंवास का कोई प्रसंग नहीं आता है, केवल पृथ्वीराज के आखेट का प्रसंग आता है, इसलिए छन्द पूरा-पूरा उक्त स्थल पर संगत नहीं है। इसी प्रकार ना० २०.४०, स० ४५.१२२ के पूर्व जयचन्द की दिल्ली पर चढ़ाई वर्णित है, जिसका कैंवास-करनाटी-केलि से कोई सम्बन्ध नहीं है जो परवर्त्ती स्थल पर मिलती है। केवल सामान्य प्रसंग-साम्य के कारण यह छन्द वहाँ भी रख लिया गया होगा, ऐसा लगता है; पाठवृद्धि के कारण यह पुनरावृत्ति हुई नहीं ज्ञात होती है।

म० में पुनरावृत्ति

(१) म० ९.२४ तथा म० १२.६३० (= धा० ३१३):—

म० ९.२४ : अह निसि सुधि न जानिय मानिय प्रौढ रति।
गुर बंधव भ्रत भोय भइय रीति गति॥

म० १२.६३० : अह निसि सुधि न जानिय मानिय प्रौढ रति।
गुर बंधव भ्रत भोइ भई रीति गति॥

दोनों छन्द एक दूसरे से बहुत दूर हैं, और पाठ दोनों का सर्वथा एक है यहाँ तक कि 'लोइ' और 'विपरीत' के स्थान पर दोनों में गलत पाठ 'भोइ' तथा 'रीति' है, इसलिए यह प्रकट है कि दोनों में से कोई दूसरे के 'पाठांतर' के रूप में नहीं ग्रहण किया गया होगा। किंतु यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित भी नहीं हो सकती है, क्यों कि प्रथम स्थान पर छन्द सर्वथा असंगत है : छन्द के प्रथम दो चरणों में कहा गया है :—

इन विधि विलसि आसर (असार) सुसार कीय।
दै सुष जोगि संजोगि भोगि प्रथिराज प्रीय॥

किंतु म० खण्ड ९ में तो पृथ्वीराज ने कन्नौज के लिए प्रयाण तक नहीं किया है, संयोगिता को संयोग-सुख देने की बात तो दूर है। इसलिए किसी प्रकार भूल से यह छन्द म० खण्ड ९ में भी पहुँच गया है।

ना० द० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) ना० १३.५७ तथा १३.३०, द० १५.२८ तथा २६.७७, और स० १४.१६३ तथा ४६.११२ :—

तीनों प्रतियों में दोनों स्थानों पर इस छन्द का पाठ प्रायः एक ही है, और निम्नलिखित है :

सुनत कथा अछि बत्तरी गइ रत्तरी बिहाइ।
दुज्ज कही दुजि संभरइ जिहि सुष स्रवन सुहाइ॥

और दोनों छंद एक-दूसरे से काफी दूरी पर हैं, इसलिए यह प्रकट है कि दो में से कोई भी 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। तीनों प्रतियों में ये 'इंछनी विवाह' तथा 'विनय मंगल' के समयों के अन्त में आते हैं, और दोनों स्थानों पर संगत है। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित लगती है।

ना० में इस पुनरावृत्ति के बीच धा० के कोई छन्द नहीं पड़ते हैं, किंतु द० तथा स० में धा० २८ तथा २९ पड़ते हैं। ये दोनों छन्द क्रमशः अनंगपाल द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली-दान तथा पृथ्वीराज के दिल्ली-सिंहासनारोहण विषयक हैं, और अन्यथा भी प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं। स० में इनके अतिरिक्त धा० २६ भी पड़ता है, जो 'घन कथा' का है, और वह भी प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

ना० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) ना० १३.५७ तथा १६.३४ और स० ४६.२७ तथा ४८.१०१ :—

दोनों स्थानों पर छन्द का पाठ लगभग एक ही है और निम्नलिखित है :

अन्यथा नैव दिष्यंति द्विजस्य वचनं यथा।
प्रामे च जुग्गिनी नाथे संयोगिता तत्र गच्छति॥

दोनों छन्द एक दूसरे से दूर भी हैं, इसलिए कोई छन्द-शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण न किया गया होगा, यह प्रकट है। प्रथम स्थल पर छन्द 'विनय मंगल' खण्ड के अन्तर्गत द्विज-द्विजी संवाद में आता है और संगत लगता है, द्वितीय स्थल पर छन्द ना० में शुकवर्णन प्रसंग में

आता है और संगत नहीं लगता है। स० में भी प्रथम स्थल पर यह संगत है, जहाँ यह 'विनय मंगल खण्ड में द्विज-द्विजी संवाद में आता है; द्वितीय स्थल पर इसके बाद आने वाले छन्दों का प्रथम स्थल पर इसके पूर्व आने वाले छन्दों से कोई सम्बन्ध नहीं है : वे पृथ्वीराज के दूत के द्वारा अपने अपमान की बात सुनकर कन्नौज आक्रमण की तैयारी से सम्बन्धित हैं। इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं है।

ना० में पुनरावृत्तियाँ

(१) ना० १.१६ तथा २.१२४ :—

छन्द का पाठ दोनों स्थलों पर प्रायः एक है और निम्नलिखित है :

छंद प्रबंध कवित्त जुति साटक गाह दुअथ्थ।
लहु गुरु मंडित खंडियह पिंगल अमर भरथ्थ॥

और दोनों छन्द एक-दूसरे से काफी दूर हैं, इसलिए यह प्रकट है कि उपर्युक्त में से कोई भी शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। प्रथम स्थान पर यह ग्रन्थ के मंगलाचरण के अनन्तर उसकी भूमिका के प्रारम्भ में आता है। इन दोनों स्थानों के बीच में ⅞ छन्द आते हैं जिनमें पृथ्वीराज के कुल का इतिहास है, और वे भूमिका के नहीं हो सकते हैं। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित है, यह प्रकट है।

इस पाठवृद्धि के अन्तर्गत धा० के जो छंद आते हैं, वे हैं धा० ३ से धा० १९ तक।

(२) ना० २८.१ तथा ना० ३० के प्रारम्भ का संख्याहीन छंद :—

दोनों स्थानों पर इस लम्बे छंद का पाठ प्रायः एक ही है, केवल बाद वाले स्थान पर प्रथम स्थान के पाठ के चरण ५, ७, तथा ८ नहीं हैं; और दोनों स्थल एक-दूसरे से दूर भी हैं। इसलिए यह सम्भव नहीं लगता है कि दोनों स्थलों में से किसी स्थल का पाठ शेष अन्य के 'पाठांतर' होने के कारण ग्रहण किया गया हो। यह छन्द जयचन्द के राजसूय यज्ञ से सम्बन्धित है और ना० के खण्ड २८ के प्रारम्भ में ही आ सकता है। ना० खंड ३० 'दुर्गा केदार समय' है, जिसमें कहा गया है कि शहाबुद्दीन के दुर्गा केदार भट्ट और पृथ्वीराज के राज कवि चंद में पृथ्वीराज के तत्वावधान में तन्त्र-मंत्रोपचार तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता होती है, जिसमें दोनों तुल्य प्रमाणित होते हैं, और जब दुर्गा केदार लौटकर जाता है, शहाबुद्दीन पृथ्वी पर आक्रमण करता है। प्रकट है कि इस कथा से विवेच्य छंद का कोई सम्बन्ध नहीं है। ना० खंड ३० के प्रारम्भ में यह छंद-संख्या-हीन भी है, इसलिए यह निश्चित है कि यह वहाँ किसी प्रकार बाद में सम्भवतः किसी भूल के कारण पहुँच गया।

(३) ना० २९. १० तथा ३९. १५१ :—

ना० २९. १० :

छे बेरी लोहान गेह चामंड सपत्तौ।
धरि अग्गै चामुंड दिष्षि प्रज्जरि चित चित्तौ।
कहै राइ चामंड सुनौ लोहान तुम्ह घर।
नृप अग्या सिर सज्जुं नलह जानौ तुम्ह हित हर।
नीय स्यामि धर्म छेडु नहीं हीय आरोहीय सहहर।
लिन्नी सु बेरि चामंड विहसि पय आरोहीय अप्प कर॥

ना० ३९. १५१ :

छे बेरी लोहान गेह चामंड सपत्तौ।
धरि अग्गै चामुंड ... ...
... ... सुनौ लोहान तुम्ह घर।
नृप आशा सिर सज्जु नलह जानहु तुम हित हर।

नीय स्वामिधर्म छंडु नहीं हत्थ आरोहीय सद् हर।
लिम्नी सु वेरि चामंड विहसि पथ आरोही अप्प कर ॥

दोनों छन्दों का पाठ एक ही है, और दोनों एक दूसरे बहुत दूर भी हैं, इसलिये यह प्रकट है कि इनमें से कोई किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। ना० खंड २९ कैंवास-वध विषयक है। वहाँ इस छंद की कोई संगति नहीं है। यह ना० खंड २९ का ही हो सकता है, जिसके अन्य कुछ छंदों में भी (ना० २९.१०९—१११) चामंड की बेड़ी का प्रसंग आता है। ना० खंड २९ में यह छद अतः भूल से किसी प्रकार चला गया लगता है और पाठवृद्धि के परिणाम-स्वरूप गया हुआ नहीं प्रतीत होता है।

(४) ना० २९. ८६ के बाद का साटक और ना० ४१.१० :—
दोनों छंदों का पाठ प्रायः एक है और निम्नलिखित है :

सामग्गं कल धूत नूत सिषरे मधुरेहि मधु वेष्टिता।
वाता सीत सुगंद मंद सरसा आलोल सा चेष्टिता।
कंठी कूल कुलाहले मुकलया कामस्य उद्दीपनो।
रत्ते रत्त बसंत पत्त सरसा संजोगि भोगाइते ॥

दोनों छन्द एक दूर से भी हैं इसलिए कोई किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। यह छंद पहले स्थान पर असंगत है, क्यों कि तब तक संयोगिता के 'भोगाइत' होने की कोई बात नहीं है और न तब तक उसकी प्राप्ति के लिए कन्नौज-प्रयाण ही पृथ्वीराज ने किया है। पहले स्थान पर यह संख्या-हीन भी है, जिससे यह वहाँ बाद में रखा गया लगता है, और इस लिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं ज्ञात होती है।

(५) न० ३१.२८ तथा ३१.३७ :—
दोनों छन्दों का पाठ प्रायः एक ही है, और निम्नलिखित है :

हो सावंत सु मंतु कहु सुहरि चिंत तजि वाज।
त्रिपथ लोक प्रिथिराज सुनि नमसकार किय लाज ॥

और ये छन्द एक-दूसरे से दूरी पर भी हैं, इसलिए 'पाठांतर' समझ कर इनमें से कोई भी ग्रहण न किया गया होगा। यह छन्द ना० ३१.२८ के पूर्ववर्ती तथा ना० ३१.३७ के परवर्ती छन्दों के प्रसंग में हैं, इसलिए पुनरावृत्ति पाठ-वृद्धि जनित ज्ञात होती है।

इस पुनरावृत्ति के बीच धा० १२५ और धा० १२६ आते हैं जो धा० १२७ के होते हुए प्रसंग में आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि धा० १२७ में भी गंगा की स्तुति है जैसी इन छन्दों में है। इसलिए ये छन्द प्रक्षिप्त लगते हैं।

(६) ना० ३३.१०७ तथा ३५.५ (= धा० २४०) :—

ना० ३३.१०७ : जद्दिन रोस राठौर चंपि चहुवान गहन कहुं।
सै उप्परि सै सहस विवह अगनिस लप्प दह।
टुटि डूंगर जल सुरिग भजिग जलगंग प्रवाहहि।
सह अच्छरि अच्छहि विवान सुरलोक नाग तिहि।
कहि चंद दंद दुहु दल भयो घन जिम सिर सारह झरिगु।
घर सेस हार हर ब्रह्मतन त्रिहु समाधि तद्दिन टरिगु ॥

ना० ३५.५ : जद्दिस रोस राठौर चंपि चहुवान गहन कहुं।
सैं उप्परि सै सहस विवह अगनिस लष्प दह।

टुटि डूंगर जल भरिग फुट्टि जल थल्लि प्रवाहिग।
सह अच्छरि अच्छहि बिवान सुरलोक बनाइग।
कहि चंद दंद हुहु दल भयौ घन जिम सिर साइह झरिग।
धर सेस हार हर ब्रह्म तन त्रिहुं समाधि तद्दिन टरिग ।।

दोनों पाठों में अन्तर अवश्य है, किन्तु इतना नहीं है कि किसी के 'पाठांतर' के रूप में शेष अन्य ग्रहण किया गया हो। दोनों छन्द एक दूसरे से काफी दूर हैं, यह तथ्य भी इसी बात की पुष्टि करता है। साथ ही, कुछ प्रतियों में यह छन्द पहले स्थान पर है और कुछ में दूसरे। इसलिए यही सम्भावना प्रतीत होती है कि ना० में एक स्थल पर छन्द अपने कुल के पाठ के अनुसार था और दूसरे स्थल पर किसी अन्य कुल के पाठ-मिश्रण के कारण आया। प्रसंग से छन्द की स्थिति पर कोई निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता है।

(७) ना० ३४.६१ तथा ना० ३६.५ :—

ना० ३४.६१ : धुरि निसान गत भान कलाधर मुद्दयउ।
सुनि सामंत नरेस छिनकु धर धुक्कयउ।
पिष्प पंगदल दिट्ठि ब्रिट्ठि निहारयउ।
अंचरि अमा संजोग रेन मझारयो ॥

ना० ३६.५ : धुरि निसान उगि भान कलाकर मुद्दयउ।
स्रम सामंत नरिंद छिनकु धर धुक्कयउ ॥
सपिष पंग दल दिट्ठि सरोस निहारयउ।
अंचर अमी संजोगि रेन मझारयउ ॥

ये छंद एक दूसरे से दूर हैं, और इनके पाठ में अन्तर साधारण है। इस लिए इनमें कोई शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। साथ ही कुछ प्रतियों में यह छंद पहले स्थान पर है और कुछ में दूसरे; इसलिए सम्भावना यही लगती है कि एक स्थान पर छंद अपने कुल की परम्परा के अनुसार है और दूसरे स्थान पर पाठ-मिश्रण के कारण किसी अन्य कुलकी परम्परा के अनुसार आया है। प्रसंग के अनुसार यह छंद पहले स्थान पर ही आना चाहिए, क्यों कि वहाँ दिनांत का वर्णन है, दूसरे स्थान पर दिन उगने का वर्णन आता है। इसलिए छंद वहाँ संगत नहीं है। छंद में दूसरे स्थान पर 'गत भान' के स्थान पर इसीलिए 'उगि भान' किया गया है; किंतु दूसरे चरण में सामंतों और पृथ्वीराज के श्रमित हो कर धरा पर झुकने का उल्लेख होता है, और चतुर्थ चरण में अञ्चल द्वारा संयोगी के पृथ्वीराज की रेणु झाड़ने की बात आती है, जो प्रभात-कालीन परिस्थितियों में असंभव है।

(८) ना० ३५.१५ : तथा ना० ३५.२० :—

ना० ३५.१५ : संझ संपत्तिय नरपति रण फिरि सज्जे दलपंग।
चलिग पंग पहु पंति मिलि सौ भर नि किय अंगु ॥

ना० ३५.२० : संझ संपत्तिय रत्त भर कज्जि सज्जे दल पंग।
चलिग पंग पहुपंति मिलि सौ भर नि किय अंगु ।।

दोनों छन्दों में जो पाठ-सादृश्य है, उससे यह नहीं लगता है कि कोई भी छन्द किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया गया होगा और दोनों के बीच के अंश के निकल जाने पर प्रसंग को कोई क्षति भी नहीं पहुँचती है, इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित लगती है।

इन पुनरावृत्ति के बीच धा० २९१ तथा २९२ आते हैं। धा० २९० तथा धा० २९३ में उक्ति-शृंखला प्रकट है, धा० २९१ में धा० २९० के 'नृपति सपट्टिय पंचसर' का जो विस्तार किया गया है उसमें

दो ही पृथ्वीराज को, शेष दो अश्व के पाखर, में तथा एक संजोगी को लगे बताये गए हैं, जो स्पष्ट ही धा० २९० से भिन्न कल्पना है। अतः धा० २९१ तथा २९२ प्रक्षिप्त हैं।

द० में पुनरावृत्तियाँ

(१) द० १३.१ तथा २६.७८ :—

दोनों स्थानों पर छन्द का पाठ प्रायः एक ही और निम्नलिखित है :

अठताळीसा सुक्रवार पष्वह पंग वारीय।
भोरे राइ भीमंग लोर सिवपुरी प्रजारिय।
आरज साइ सलष्य राज संभरि संभारिय।
चाहुवान सामंत मंति कयमास पुकारिय।
धर जात पवारी पट्टनह बोलै बंक दुराइ दिल्लि।
कै बार कथ्थ नाथह तनी पंगे राज क्रिवान पल।।

यह छन्द द० खण्ड १३ के प्रारम्भ में तो संगत है, द० खण्ड १३ पृथ्वीराज-भीम युद्ध का है, किन्तु खण्ड द० २६ के अन्त में संगत नहीं है, क्योंकि द० खण्ड २६ संयोगिता के 'विनय मंगल' का है। ना० में 'विनय मंगल' खण्ड 'भीम युद्ध' खण्ड के ठीक पहले आता है। द० भी मूलतः उसी परिवार की है, इसलिए यदि इसमें भी वह उसी प्रकार पहले आता रहा हो तो आश्चर्य नहीं होगा। ऐसा लगता है कि पीछे किसी समय 'विनय मंगल' खण्ड को द० परम्परा में बाद में रखने का जब निश्चय हुआ तो हाशिए में जो तत्सम्बन्धी संकेत लिखा गया वह 'विनय मंगल' खण्ड के अन्त और 'भीम युद्ध' खण्ड के प्रथम छन्द—दोनों के सामने पड़ता था, इसीलिए द० में यह पुनरावृत्ति हो गई। फलतः इस पुनरावृत्ति के बीच में जो छन्द पड़ते हैं, पाठवृद्धि के कारण द० में आए नहीं माने जा सकते हैं।

उ० ज्ञा० स० में पुनरावृत्तियाँ

(१) स० ५७.१७१ तथा ५७.२१९ :—

दोनों स्थलों पर छन्द का पाठ प्रायः एक ही है और निम्नलिखित है :।

मद्धि पहर पुच्छै प्रभु पंडिय।
कहि कवि विजै साहि जिहि मंडिय।
सकल सूर बैठयि सभ मंडिय।
आसिष आनि दीय कवि चंदिय।।

दूसरे तथा तीसरे चरणों में 'मंडिय' 'मंडिय' का तुक पुनरुक्तिपूर्ण तो है ही, दूसरे चरण में 'मंडिय' पाठ असम्भव भी है : आशय शाह के विजय मांडने का नहीं है, बल्कि पृथ्वीराज के द्वारा शाह पर मांडी हुई उस विजय का है जिसमें शाह दंडित हुआ था। इसलिए अन्य प्रतियों का 'दंडिय' ही द्वितीय चरण का अन्तिम शब्द हो सकता है। इस प्रकार स० के दोनों पाठ प्रायः सर्वथा एक ही हैं—क्योंकि दोनों में अशुद्धि तक एक ही है। स० ५७.१७१ के पूर्व तथा ५७.२१९ के बाद के छन्द प्रसंग द्वारा सम्बन्धित भी हैं : ५७.२१९ के बाद उस सभा का वर्णन है जिसको ५७.१७१.३ में माँडा गया है। इसलिए बीच के छन्द पाठवृद्धि के हैं और पुनरावृत्ति पाठवृद्धि जनित है।

इस पुनरावृत्ति के बीच धा० ७९, ८०, ८१, तथा ८२ आते हैं।

परिणामतः विभिन्न प्रतियों में मिलने वाली पुनरावृत्तियों से प्रक्षिप्त प्रमाणित होने वाले धा० के छन्द निम्नलिखित हैं :—

धा० अ० फ० ना० म० शा० उ० स० : धा० २३९ चरण २२-३५।

धा० मो० ना० शा० उ० स० : धा० ४०३।

मो० : धा० ३५६, धा० ३५७।
अ० फ० : X
फ० : धा० ३४४, धा० ३४५।
म० उ० स० : X
म० ना० उ० स० : X
म० : X
ना० द० उ० स० : धा० २६, धा० २८, धा० २९।
ना० उ० स० : X
ना० : धा० ३—१९, धा० १२५, धा० १२६, धा० २९१, धा० २९२।
द० : X
उ० स० : धा० ७९—८२।

नीचे विभिन्न प्रतियों में आने वाले छन्द-संख्या-व्यतिक्रम और उनके कारणों का विश्लेषण किया जा रहा है।

अ० फ० में छन्द-संख्या-व्यतिक्रम

धा० तथा मो० में छन्दों की क्रम-संख्याएँ नहीं दी हुई हैं, यह बताया जा चुका है, इसलिए इस दृष्टि से उनके छन्दों पर विचार नहीं किया जा सकता है, शेष प्रतियों के छन्दों पर ही विचार किया जा सकेगा।

अ० फ० में छन्दों की क्रम-संख्या छन्द (वृत्त) भेद के आधार पर दी गई है, यथा किसी खण्ड मे आए हुए कवित्त की क्रम-संख्या एक है, दोहा की दूसरी, गाथा की तीसरी, किन्तु वे छन्द जिनकी मात्राएँ मिलती हैं, अर्थात् जिनके चरणों के सम्बन्ध में यह प्रतिबन्ध नहीं माना गया है कि उनकी संख्या सर्वत्र एक सी हो, यथा भुजंगी, त्रिभंगी, त्रोटक, पद्धडी, वे सभी एक सम्मिलत क्रम-संख्या में डाल दिए गए हैं और उनकी क्रम-संख्या छन्द (वृत्त) भेद के आधार पर नहीं चली है।

इस दृष्टि से देखने पर धा० के निम्नलिखित छन्द जो अ० फ० में उपर्युक्त संख्या-विधान के बाहर पड़ते हैं, विचारणीय हैं :—

(१) धा० २८, २९, ३० : ये छन्द अ० फ० के उन पाँच दोहों में से हैं जो उसके खण्ड २ के अन्त में आते हैं। इनके पूर्व जो दोहा अ० फ० में मिलता है वह ॥ २० ॥ है, किन्तु अ० में धा० २८ को ॥ २ ॥, धा० २९ को ॥ २२ ॥ तथा धा० ३० को ॥ २२ ॥ की क्रम-संख्या दी गई है। ॥ २० ॥ के अनन्तर इसी प्रकार फ० में इन छन्दों की संख्या ॥ १ ॥ से प्रारम्भ कर दी गई है और इस नवीन संख्या-विधान में धा० २८ ॥ १ ॥ है, धा० २९ ॥ ४ ॥ है और धा० ३० ॥ ५ ॥ है। यह ध्यान देने योग्य है कि अ० में केवल ॥ २१ ॥ नहीं हैं और ॥ २२ ॥ को संख्या दो दोहों को समान रूप से की गई है, जब कि फ० में इन सभी की क्रम-संख्या नई कर दी गई है। प्रश्न यह है कि धा० २८ को ॥ २ ॥ क्रम-संख्या अ० में किस प्रकार दी गई है। इसका स्पष्ट समाधान यह है कि जब अ० फ० में पूर्ववर्ती दोहा ५ तथा दोहा ६ के बीच एक दोहा बढ़ाया गया और उसके साथ ही अ० फ० दोहा २० के बाद कुछ दोहे बढ़ाए गए, तो प्रथम स्थान की पाठवृद्धि को ॥ १ ॥ तथा द्वितीय स्थान की पाठवृद्धि को ॥ २ ॥ की संख्याएँ देकर छोड़ दिया गया, और इन्हीं के साथ अ० फ० के ॥ २१ ॥ की क्रम-संख्या भी बदल कर ॥ २ ॥ कर दी गई। इसके बाद किसी समय एक और दोहा जोड़ा गया और ऊपर के तीन दोहों में लगातार ॥ २ ॥ क्रम-संख्या देखकर इस नवीन दोहे को पूर्व-

वर्ती दोहा ॥ २२ ॥ के अनुसरण में ॥ २२ ॥ की क्रम-संख्या दे दी गई। इस दृष्टि से देखने पर धा० २८ तथा धा० ३० अ० फ० में बाद में रक्खे गए लगते हैं।

(२) धा० १९८, धा० १८७, धा० १८८ : अ० फ० खण्ड ९, साटक १ (=धा० १५१) के बाद उसमें ये तीन साटक और आते हैं जिनकी क्रम-संख्या नहीं दी हुई है। किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० १८६ तथा १८७ और इसी प्रकार धा० १८८ तथा १८९ में स्पष्ट उक्ति-शृंखला है, अतः धा० १८७ तथा धा० १८८ प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं। धा० १९८ की स्थिति इतनी स्पष्ट नहीं है।

(३) धा० १९३ : अ० फ० खण्ड ९ में यह दोहा संख्याहीन है, और इसके पूर्व अ० फ० खण्ड ९ दोहा ॥ ४३ ॥ तथा बाद में दोहा ॥ ४४ ॥ आता है, अतः यह प्रकट है यह दोहा अ० फ० की क्रम-संख्या के बाहर पड़ता है। किन्तु हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० १९२ तथा १९३ और इसी प्रकार धा० १९३ तथा १९५ के बीच उक्ति-शृंखला है। अतः यह प्रकट है कि धा० १९३ प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(४) धा० २४८, धा० २५० : अ० फ० खण्ड १० में ये दोनों छन्द एक रूपक के अन्तर्गत हैं और संख्याहीन हैं। ये उस प्रकार की छन्दमाला में आते हैं जिनकी अ० फ० में सम्मिलित क्रम-संख्या दी गई है : इनके पूर्व भुजंगी ॥ २ ॥ है और बाद में रसावला ॥ ४ ॥ है। ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २४७ तथा २४८ में स्पष्ट उक्ति-शृंखला है। और अ० फ० में धा० २५० अलग छन्द नहीं है, वह धा० २४८ के सिलसिले में ही आता है, इसलिए दोनों की सम्मिलित संख्या ॥ ३ ॥ होनी चाहिए थी, जो किसी प्रकार छूट गई है। अतः धा० २४८ तथा धा० २५० प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं।

(५) धा० ३१०-३१३ : ये रासा अ० फ० में १३, दो० ७ के बाद आते हैं और पूर्व या बाद में इस खण्ड में और रासा नहीं आते हैं। इन छन्दों का संख्या-व्यतिक्रम अतः स्पष्ट नहीं है। किन्तु ये छन्द एक वर्णन-शृंखला के हैं और इनमें से अन्तिम का उक्ति-शृंखला सम्बन्ध, जैसा हमने ऊपर देखा है, धा० ३१४ से है, अतः ये प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं।

(६) धा० ३४३ : यह दोहा अ० में १४, कवि० ५ के बाद आता है। इसकी संख्या अ० में ॥ १ ॥ और फ० में ॥ २१ ॥ दी हुई है, यद्यपि पूर्ववर्ती दोहा ॥ १९ ॥ है और अ० फ० का दोहा ॥ २१ ॥ बाद में ही आता है, इसलिए संख्या-व्यतिक्रम स्पष्ट है। किन्तु धा० ३४३ की धा० ३४४-३४५ से प्रसंग-शृंखला है, और धा० ३४४-३४५ फा० की पुनरावृत्तियों के द्वारा प्रक्षिप्त प्रमाणित हो चुके हैं, अतः यह छन्द भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

(७) धा० ३८६ : यह छन्द अ० में संख्याहीन है, फ० यहाँ पर खण्डित है। यह अ० में १९, दो० १९ के बाद आता है और इसके बाद दो दोहे और आते हैं तब १९, दो० ६२ आता है। किन्तु हम ऊपर देख चुके हैं धा० ३८६ धा० ३८५ से उक्ति-शृंखला से सम्बद्ध है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(८) धा० ३९० : यह छन्द भी अ० फ० खंड १९ में क्रम-संख्या के बाहर पड़ता है। यह दोहा है और इसके पूर्व का दोहा ॥ २३ ॥ तथा बाद का ॥ २४ ॥ है। यह तातार खाँ और गोरी के संवाद का है, और इसके पूर्व तथा इसके बाद के दोहों अर्थात् धा० ३८९ तथा ३९१ में परस्पर प्रसंग-शृंखला स्पष्ट है : धा० ३८९ में गोरी का आदेश है, और धा० ३९१ में कहा गया है :

यह सहाब सुप उच्चरिय ... ...

इन दोनों के बीच धा० ३९० के रूप में तातार खाँ का कोई कथन आना असंगत है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का लगता है।

म० में छन्द-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० ५९ : म० में ८.२ और ८.३ के बीच यह छन्द आता है। धा० ५८ के साथ यह प्रसंगतः सम्बद्ध है। धा० ५९ में कहा गया है कि पृथ्वीराज 'अपने श्रेष्ठ प्रधान (प्रधानामात्य) कैंवास को धरा (राज्य) की रक्षा के लिए दिल्ली छोड़ कर आखेट के लिए चला गया था।' इस छंद में कैंवास के सम्बन्ध में कहते हुए कहा गया है, 'राजं जा प्रतिमा' अर्थात् 'जो राजा का प्रतिनिधि था ......।' इस लिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं लगता है।

(२) म० खण्ड १० में छन्द-संख्या १४२ तक चल कर पुनः १२५ से प्रारम्भ होती है, और खण्ड के अन्त तक चलती है। इस व्यतिक्रम का एक कारण तो यह हो सकता है कि दूसरी बार की १२५ से १४२ तक की संख्याओं के छन्द पीछे बढ़ाए गए हों और उनकी क्रम-संख्या भी १२४ के बाद दे दी गई हो, दूसरी सम्भावना यह है कि १४२ को भ्रम से ४ तथा २ को विपर्यय से १२४ समझ कर संख्या १४२ के बाद पुनः १२५ से प्रारम्भ कर दी गई हो। दूसरी सम्भावना अधिक युक्ति-संगत लगती है क्योंकि प्रथम के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि यदि बढ़ाए हुए छन्दों की संख्या १४२ तक ही गई होती तो बाद के छन्दों की क्रम संख्याओं में भी संशोधन किया गया होता। इसलिए इस खण्ड की १२५ से १४२ तक की संख्या-विषयक पुनरावृत्ति इस प्रसंग में विचारणीय नहीं है।

(३) धा० १९६ : म० में १०.४६४ के अनंतर यह छन्द पुनः ।।४६४।। की संख्या देकर आता है। किन्तु प्रसंग में यह आवश्यक है; धा० १९५ में पृथ्वीराज के द्वारा जिस भंगिमा से जयचंद को तांबूल अर्पित करने की बात कही गई है, उसका परिणाम यही होना चाहिए जो इस छन्द में वर्णित है—कि जयचन्द पहिचान गया हो कि पान देने वाला पृथ्वीराज है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(४) धा० २०६ : म० में छन्द का उत्तरार्द्ध मात्र आया है और ११.९० के बाद उसकी कोई संख्या नहीं दी हुई है। ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २०५ तथा धा० २०७ के साथ इसका उक्ति-शृंखला सम्बन्ध है, इसलिए यह छंद प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(५) म० में ११.९८ के अनन्तर छन्द-संख्याएँ ।।९०।। से ।।९७।। तक दुहरा उठी हैं: यह ९८ को विपर्ययभ्रम से ८९ पढ़ने के कारण हुआ ज्ञात होता है, जैसा हमने ऊपर इस प्रति की एक अन्य संख्या-सम्बन्धी पुनरावृत्ति के विषय में भी देखा है। अतः इस पुनरावृत्ति के बीच में आए हुए छन्दों पर पाठवृद्धि की दृष्टि से विचार करना उचित न होगा।

(६) म० में उपर्युक्त पुनः आने वाले ११.९७ के अनन्तर की छन्द-संख्याएँ ।।९२।। से ।।९८।। तक दुहरा उठी हैं, और तदनंतर खण्ड की छंद-संख्याएँ इस संख्या के क्रम में चली हैं। यह भी ९७ के ७ को १ पढ़ने की भूल के कारण हुई प्रतीत होती है—७ की नोक यदि कुछ आगे तक खींच कर न बनाई जावे तो उससे १ का भ्रम हो सकता है। अतः क्रम-संख्या सम्बन्धी इस पुनरावृत्ति के बीच आए छन्दों पर भी प्रक्षिप्त पाठवृद्धि की दृष्टि से विचार करना उचित न होगा।

(७) धा० २४५ : म० में १२.२८ के बाद पुनः ।।२८।। की संख्या के साथ यह छन्द दे दिया गया है। किन्तु धा० २४६ के साथ इसकी उक्ति-शृंखला ऊपर देखी जा चुकी है, इसलिए यह छंद प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(८) धा० २९७ : म० में १२.५३३ के अनन्तर पुनः ।।५३३।। की संख्या के साथ यह छन्द दिया गया है। धा० २९८ में विझ चालुक्य के धराशायी होने पर जयचन्द के दल की प्रतिक्रिया वर्णित है, धा० २९७ में उसका युद्ध करना और धराशायी होना वर्णित है, उसके पूर्व के एक छन्द में जो

धा० २८६ है, जिस का युद्ध में प्रवृत्त होना कहा गया है, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

ना० में छंद-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० १९ : ना० में २. १२२ के अनन्तर यह छन्द भी ॥ १२२ ॥ करके दिया गया है। इसमें चन्द के जन्म ग्रहण करने का उल्लेख है। धा० १८ में पृथ्वीराज के जन्म ग्रहण करने तथा धा० २० में 'रासो' की विविध छन्दों में रचना करने की प्रस्तावना है। धा० १९ दोनों के बीच में अतः खटकता है और प्रक्षेप के रूप में रक्खा गया लगता है।

(२) धा० ६६ : ना० में २०.२३ के अनन्तर यह छन्द भी ॥ २३ ॥ की संख्या के साथ दिया गया है। इसमें पट्टराज्ञी की दूती के साथ कैंवास-वध के लिए पृथ्वीराज के आने का उल्लेख किया गया है। धा० ६५ में केवल उसकी दूती के द्वारा पृथ्वीराज के जगाए जाने का कथन है, और धा० ६७ में कैंवास के ऊपर उसके बाण-संधान का; अतः बीच का धा० ६६ का उल्लेख प्रसंग में आवश्यक है, और प्रक्षिप्त नहीं है।

(३) धा० ६७ अ (छन्द ६७ के बाद वार्त्ता के साथ आया हुआ छन्द का अवशेष): ना० में २९.३२ के बाद यह छन्द भी ॥ ३२ ॥ करके दिया गया है। इसमें पृथ्वीराज का इस विषय में आश्चर्यान्वित होना कहा गया है कि दनुज, देवता या गन्धर्व कौन करनाटी के साथ विलास-लिप्त था। किन्तु यह तो पट्टराज्ञी को ज्ञात ही था कि उक्त व्यक्ति कैंवास था और पृथ्वीराज ने भी यही जान कर उसे मारा था, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त लगता है। धा० में यह छन्द कुछ भिन्न और त्रुटित पाठ के साथ आता है और छन्द के पूर्व एक वार्त्ता भी आती है जिसमें कहा जाता है कि पट्टराज्ञी ने चित्रशाला में काम-रत कैंवास की ओर संकेत किया।

(४) धा० ७६ : ना० में २९.४६ के बाद यह छन्द भी ॥ ४६ ॥ करके दिया गया है। धा० ७५ निम्नलिखित है :—

> मइ परतखि करी मति आइय।
> सकलि कंठ कंठह समझाइय (समुहाइय—पाठां०)।
> वाहन हंस हंस (अंस—पाठां०) सुखदाइय।
> तब सिहि रूप चंद कवि धाइय (गाईयं—पाठां०)।

धा० ७६ में सरस्वती के इसी रूप का ध्यान वर्णित है और उसका शिख-नख निरूपित है। अतः धा० ७६ प्रसंग में आवश्यक लगता है।

(५) धा० ९२ : ना० में यह छन्द २९.६५ के अनन्तर पुनः ॥ ६५ ॥ करके दिया गया है। धा० ९० में चंद ने कैंवास-वध का रहस्योद्घाटन पृथ्वीराज की सभा में किया है। धा० ९१ में उसके अनन्तर रात्रि में सभा के विसर्जन की बात कही गई है। धा० ९३ में प्रातः ही कैंवास की स्त्री का चंद के पास उसकी सहायता से पति का शव प्राप्त करने के लिए आगमन कहा गया है। धा० ९२ में कहा गया है कि चंद के उक्त रहस्योद्घाटन के अनन्तर कैंवास के वध की बात घर-घर फैल गई थी। अतः यह छन्द प्रसंग में आवश्यक लगता है।

(६) धा० ११३ : यह छन्द ना० में ३१. १ के बाद पुनः ॥ १ ॥ की संख्या देकर रक्खा गया है। इसमें पृथ्वीराज के कन्नौज के लिए प्रस्थान करने की तिथि सं० ११५१, चैत्र तृतीया, रविवार दी गई है। यह तिथि असंभव तो है ही—सं० ११५१ में पृथ्वीराज जन्मा भी नहीं था—इस छन्द के न रहने से पूर्वापर के प्रसंग-क्रम में कोई व्याघात नहीं होता है। इसलिए यह छन्द प्रक्षेपपूर्ण पाठवृद्धि का लगता है।

(७) धा० ११४ : यह छन्द ना० में ३२.४ के बाद पुनः ॥ ४ ॥ करके दिया गया है। इसमें कहा गया है कि पृथ्वीराज ने 'एक सौ सुभटों को लेकर कन्नौज के लिए प्रस्थान किया, (फिर भी वे कहाँ जा रहे थे) यह या तो चन्द जानता था या पृथ्वीराज।' किन्तु साथ में सौ योद्धा हों और उन्हें यहाँ तक न बताया गया हो कि उन्हें किधर ले जाया जा रहा है, यह प्रायः असम्भव है; फिर कन्नौज पहुँचने पर इन योद्धाओं ने इस पर कोई आश्चर्य भी नहीं प्रकट किया है कि वे कहाँ ले आए गए हैं। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का लगता है।

(८) धा० १४३ : यह छन्द ना० में ९.४ के अनन्तर पुनः ॥४॥ की संख्या देकर रक्खा गया है, किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० १४२ के साथ इसका उक्ति-शृंखला सम्बन्ध है, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(९) धा० १४७ : यह छन्द ना० में ९.६ के अनन्तर पुनः ॥६॥ की संख्या देकर रक्खा गया है। धा० १४६ में चन्द ने हेजम को अपना परिचय दिया है, धा० १४७ में हेजम जयचन्द को उसके आगमन की सूचना देने जाता है, और धा० १४८ में उसने जयचन्द को उक्त सूचना दी है। अतः धा० १४७ प्रसंगतः पहले तथा पीछे के छन्दों से निकट रूप से संबद्ध है, और प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१०) धा० २०७ : ऊपर दिखाया जा चुका है कि धा० २०५ तथा २०८ एक ही छन्द के दो भिन्न-भिन्न पाठ हैं; ना० में धा० २०८ का पाठ ११.३३ है और धा० २०७ का दूसरा चरण भी उसमें ॥ ३१ ॥ संख्या देकर 'पाठांतर' के रूप में सम्पादित कर लिया गया है।

(११) धा० २८१ : ना० में ६६.२८ के अनन्तर यह छन्द पुनः ॥ २८ ॥ संख्या देकर दिया गया है, किन्तु धा० २८० तथा २८२ से क्रमशः यह घनिष्ठ रूप से संबद्ध है : धा० २८० में कन्ह घोड़े पर युद्ध के लिए चढ़ा है, धा० २८१ में वह लड़ता हुआ मारा गया है, और धा० २८२ में कन्ह के मरने पर जयचन्द के दल की प्रतिक्रिया वर्णित है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१२) धा० ३१३ : ना० में ४३.५१ के अनन्तर यह छन्द पुनः ॥ ५१ ॥ की संख्या देकर दिया हुआ है। किंतु यह पूर्ववर्ती छन्द धा० ३१२ से प्रसंगतः सम्बन्ध है: धा० ३१२ में गोरी ने तातार खाँ तथा रुस्तम खाँ से कुरान की सौगन्ध लेकर पृथ्वीराज का सामना करने और उसे पकड़ कर बन्दी करने के लिए कहा है, और धा० ३१३ में तातार खाँ तथा रुस्तम खाँ ने सौगन्ध लेकर तदनुसार प्रतिज्ञा की है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१३) धा० ४०६ : ना० में ४६.१३७ के अनन्तर यह छन्द पुनः ॥ १३७ ॥ की संख्या देकर दिया गया है। किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि यह छन्द धा० ४०७ के साथ उक्ति-शृंखला द्वारा संबद्ध है, इसलिए यह प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

द० में छंद-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० १६ : द० में १.१३५ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसमें ढुंढा के द्वारा आनल्ल को राज्य मिलता है। ढुंढा की शेष कथा इसके पूर्व आती है, और धा० १७ की प्रथम पंक्ति में ही आता है कि आनल्ल ने राजा होकर अजमेर में निवास किया। अतः यह छन्द प्रसंग में आवश्यक है, और इस प्रति में पाठवृद्धि के परिणाम स्वरूप नहीं आया है, यद्यपि ढुंढा की पूरी कथा के छन्द—जैसा हमने ऊपर ना० स० की पुनरावृत्तियों में देखा है—प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के हैं।

(२) धा० १०९ : द० में २४.९ के अनन्तर 'शुकचरित्र' के छन्द आते हैं, जो स्पष्ट ही बाद में

रक्खे गए हैं, क्योंकि उनकी क्रम-संख्याएँ इस खण्ड के बीच होते हुए भी स्वतन्त्र हैं और उनके बाद पुनः पूर्ववर्त्ती क्रम-संख्या में छन्द दिए जाते हैं। किंतु इस बार का प्रथम छन्द भी ।। ५ ।। ही है, जब कि पिछली बार का अन्तिम छन्द ।। ५ ।। था। फिर भी यह छन्द धा० के षट ऋतु वर्णन के छः छन्दों में से है और इसके अभाव में एक ऋतु का वर्णन ही नहीं रह जाता है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(३) धा० १४० : द० में २३.६१ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छंद दिया गया है। पूर्ववर्त्ती छन्द धा० १३९ में नगर-वर्णन के अन्तर्गत नायिकाओं के गीत-नृत्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनके भाव का वर्णन करना कठिन लगता है। यह कह कर कहा गया है कि 'उस पट्टन के गृह सँवारे हुए दिखाई पड़े।' इससे ज्ञात होता है कि नायिकाओं का वर्णन धा० १३९ में ही समाप्त कर दिया गया। अतः धा० १४० में पुनः उनके गीत-नृत्यादि का वर्णन प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० १४५ : द० में २३.६७ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसके पूर्व धा० १४४ में कहा गया है कि 'पृथ्वीराज ने किसी से कहा कि वह सुभट [दरबार तक पहुँचने के लिए] युक्ति पूर्वक कोई श्रेष्ठ हाथी पकड़ लावे।' इस छन्द में कहा गया है कि यह सुन कर चन्द ने मना किया कि 'यहाँ पर झगड़ा करना ठीक नहीं है, क्योंकि जयचन्द के द्वार पर तीन लाख सैनिक दिन-रात रहते हैं' और इसके अनन्तर हाथी पकड़े जाने का कोई उल्लेख नहीं होता है। प्रकट है कि धा० १४५ धा० १४४ से प्रसंगतः संबद्ध है, अतः यह धा० १४४ के बाद की पाठवृद्धि का नहीं है, यद्यपि दोनों प्रक्षेपपूर्ण पाठवृद्धि के छन्द हैं, यह हम धा० की उक्ति-शृंखला की त्रुटियों पर विचार करते हुए देख चुके हैं।

(५) धा० २६३ : द० में २३.३५५ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। धा० २६३ में धा० २६२ में पृथ्वीराज के इस कथन का उत्तर है कि 'वह अपने सामन्तों का यह बोझ (अहसान) नहीं चाहता कि, वे अपनी जान गँवा कर इसे बचावें और वह युद्ध छोड़ कर दिल्ली जावे।' धा० २६३ के निकल जाने पर उसके इस कथन का कोई उत्तर नहीं रह जाता है यद्यपि वह सामन्तों के द्वारा उपस्थित की गई इसी युक्ति का अनुसरण करता है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(६) धा० २९५ : द० में २३.४१४ के बाद पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसमें कन्नौज के युद्ध में सोलह धराशायी शूरों के नाम देने की बात कही गई है :

परे सूर सोलह तिके नाम आनं।

किन्तु कुल मिला कर केवल बारह ऐसे शूरों के नाम इस छन्द की सूची में आते हैं; ये हैं : मंडलीराय, माल्हन हंस, जावला, जाल्ह, बाघराय बागरी, बलीराय यादव, सारंग गाजी, पाथरी राय परिहार, सांखुला सिंह, सिंहली राव (सिंघ सिंधा—धा०), सातल मोरी, भोज तथा भुआल राय। इसलिए इस छन्द की स्थिति संदिग्ध लगती है। यह अवश्य असम्भव नहीं है कि ऊपर जो बारह नाम दिए गए हैं, उनमें से किन्हीं चार में दो-दो नाम मिल गए हों। पूर्ववर्त्ती छन्द धा० २०४ में भी सोलह सामंतों-शूरों के धराशायी होने की बात कही गई है, और जहाँ-जहाँ धराशायी शूरों-सामंतों की संख्या दी गई है, उनकी नामावली भी दी गई है, इसलिए यह छन्द मूल रचना का भी हो सकता है।

परिणामतः विभिन्न प्रतियों की छन्द-संख्या-व्यतिक्रम से धा० के निम्नलिखित छन्द प्रक्षिप्त ठहरते हैं :—

अ० फ० : धा० २८, ३०, ३४३, ३९०।

ना० : धा० ६७ अ, ११३, ११४।

द० : धा० १४०।

धा० के प्रक्षिप्त छंद

ऊपर विभिन्न उपायों का अवलंबन करके हमने देखा है कि धा० में वार्त्ताओं के अतिरिक्त निम्नलिखित छन्द और छन्दांश प्रक्षिप्त ठहरते हैं :—

धा० १, ३-१९, २१, २६, २८-३०, ६१, ६७ अ, ६९, ७९-८२, ११३, ११४, १२१ के अंतिम दो चरण, १२५, १२६, १४०, १४३, १४४, १४५, १५०, १५६, १५७, १९४, २०८, २२४, २३९ के चरण २२ ३१, २४३, २६९ के अंतिम दो चरण २९१, २९२, ३०८, ३४३-३४५, ३५६, ३५७, ३५९, ३६१, ३९०, ३९६, ४०३, ४०४, ४२१।

उपर्युक्त के अतिरिक्त धा० का केवल निम्न लिखित छंद और प्रक्षिप्त ज्ञात होता है :—

(१) धा० २७ : यह ढीली कीली कथा का एक मात्र छंद है जो धा० में आया हुआ है : इसमें जगजोति व्यास के द्वारा अनंगपाल को [ढीली की] कीली ढीली करने का परिणाम यह बताया गया है कि तोमरों के बाद चहुवान और चहुवानों के बाद तुर्क दिल्ली के अधीश्वर होंगे। किन्तु अनंगपाल तोमर ने कीली किस प्रकार ढीली की, और वह कीली कैसी थी आदि किसी बात का उल्लेख धा० के अन्य किसी छंद में नहीं होता है। अनंगपाल तोमर और दिल्ली-दान के संबंध के धा० के अन्य छंद भी (धा० २६, २८, ३०) ऊपर प्रक्षिप्त प्रमाणित हो चुके हैं। इसलिए धा० २७ भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है। प्रक्षेप-क्रिया के समस्त चिह्न प्राप्त प्रतियों से किसी न किसी में सुरक्षित हैं, यह नहीं माना जा सकता है, इसलिए इस प्रकार के एकाध अपवाद के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

धा० में छूटे हुए छंद

धा० में केवल निम्न लिखित दो छंद छूटे जान पड़ते हैं, जिन्हें प्रसंग की दृष्टि से मूल का मानना आवश्यक जान पड़ता है :—

(१) मो० २४५ : यह छंद धा० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में है। इसमें कन्ह के धराशायी होने पर अल्ह के युद्ध में प्रवृत्त होने का उल्लेख होता है। धा० २८२ में उसके लड़ते हुए धराशायी होने का उल्लेख है। इसलिए उसके युद्ध में उतरने के संबंध का मो० ३४२ भी प्रसंग अनिवार्य है।

(२) अ० ६. दो० ९ : यह छन्द धा० मो० में नहीं है, शेष समस्त प्रतियों में है। इसमें जयचन्द की दूती द्वारा यौवन की महत्ता प्रतिपादित करने वाले कथन का संयोगिता द्वारा दिया गया उत्तर है। यह उत्तर प्रसंग में नितान्त आवश्यक है क्योंकि अन्यथा उक्त दूती का कथन उत्तरहीन रह जाता है, यद्यपि संवाद आगे चलता है, और संयोगिता उसका उत्तर न दे इस बात का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता है। अतः यह छंद भी मूल पाठ का प्रतीत होता है।

एक प्रति में एक छन्द का छूटना साधारण बात है, और दो प्रतियों में भी किसी एक छोटे छन्द का स्वतंत्र रूप से अलग-अलग छूट जाना असंभव नहीं है, इसलिए इन दोनों छंदों को मूल का स्वीकार करना चाहिए।

उपर्युक्त प्रक्षिप्त छन्दों और वार्त्ताओं को निकाल देने तथा इन को छन्दों दो सम्मिलित कर लेने पर धा० का आकार प्रसंग-शृंखला, उक्ति-शृंखला, प्रबंध-शृंखला आदि की समस्त दृष्टियों से इतना सुगठित हो जाता कि वह मूल का प्रतीत होने लगता है।[1] आगे हम देखेंगे कि वह अन्य प्रकारों से भी प्रायः मूल का ही प्रमाणित होता है।

[1] इन छंदों की ग्रंथ की विभिन्न प्रतियों में पाठ स्थिति के लिए दे० आगे 'पृथ्वीराज रासो के निर्धारित मूल रूप की छंद-सारिणी' शीर्षक।

—:※:—

४. पृथ्वीराज रासो

का

मूल रूप (पाठ)

मूल रचना में कौन-कौन से छंद रहे होंगे यह निर्धारित कर लेने के बाद पाठभेद के स्थलों पर कौन-से पाठ स्वीकृत होने चाहिए और कौन-से नहीं, यह निर्धारित करना रह जाता है। इस प्रकार के पाठ-निर्धारण का कार्य संतोषजनक रूप से तभी संभव हो सकता है जब विभिन्न प्रतियों का पाठ संबंध निर्धारित हो जावे। यह अवश्य है कि इस प्रकार का संबंध-निर्धारण हम विभिन्न प्रतियों के उन्हीं अंशों तक सीमित रख सकते हैं जो ऊपर निर्धारित मूल के अन्तर्गत आते हैं, क्यों कि हमारा अभीष्ट इसी मूल का पाठ-निर्धारण है। ये प्रतियाँ अपने अन्तिम रूपों में परस्पर किस प्रकार संबद्ध हैं, यह निश्चय करना प्रस्तुत कार्य के लिए आवश्यक नहीं है।

इस पाठ-संबंध-निर्धारण के लिए हमें विभिन्न प्रतियों में इन्हीं छंदों में आने वाली ऐसी समस्त पाठ-विकृतियों का लेखा लेना होगा जो किन्हीं भी दो या अधिक प्रतियों के पाठ-संबंध पर प्रकाश डाल सकें। केवल सुनिश्चित पाठ-विकृतियों को ही यहाँ लिया जा सकेगा। ये प्रायः संपादित पाठ में निर्दिष्ट स्थलों को देखने पर स्वतः स्पष्ट हो जावेंगी, इसलिए नीचे संपादित पाठ और उसके अनंतर विकृत पाठ देते हुए इनके संबंध में वहीं पर कुछ विस्तार से कहा जावेगा जहाँ इनके संबंध में संकेत करना मात्र पर्याप्त न समझा जाएगा।

धा० मो० स० ना० उ० ज्ञा० स०

(१) धा० ३०३. ३: हर हथ्थहि हरि गहहि बाम रष्षिहि इनि बारहि।
प्रसंग पहाड़ राय तोमर द्वारा किये हुए भयानक युद्ध का है। इन प्रतियों में 'हर हथ्थहि' के स्थान पर धा० मो० में 'हरि हथ्थहि', ना० में 'हरि हत्थह' और शेष स०उ०स० में 'हरि हथ्था' है।

(२) धा० ३२४. २: संजोगि जीवन जंवनं।
सुनि श्रवण दे गुरुराजनं।
प्रसंग संयोगिता के नख-शिख वर्णन का है। इन प्रतियों में 'श्रवण दे' के स्थान पर पाठ 'सर्वदा' है।

(३) धा० ३२४.७: नग हेम हीर जु थप्पनं।
गय हंस रुरा उथप्पनं।
प्रसंग संयोगिता के चरणों के वर्णन का है। इन प्रतियों में 'हीर' के स्थान पर पाठ 'हंस' है।

धा० मो०

(४) धा० १३६.३२: रोहि आ रोहि मंजीर सद्दं।
मन्द मृदु तेज परकीर बद्दं।

प्रसंग संयोगिता के नूपुरों की ध्वनि के वर्णन का है। धा० मो० में परकीर (<प्रकीर) के स्थान पर 'प्राकार' है।

(५) धा० १६९.२ : जे त्रिय पुहप रस परस बिनु छकिग राय सुर साज।
धवल गृह ते धनसरइं भट्टहिं अप्पन थान॥

प्रसंग स्वतः प्रकट है। धा० और मो० में 'भट्टहि अप्पन' के स्थान पर क्रमशः है 'रिपु मंगन सुं' तथा 'रिपु मंगन कहं'।

(६) धा० १८८.१ : कांती भार पुरा पुनर्बिगलिते आख्यान बंड स्थलं।
उच्छं तुच्छ पुरा स सन्निकमत: कवि कुंभ निद्धाडियं।

प्रसंग प्रातः की वेला के वर्णन का है। धा० मो० में 'कांती भार' के स्थान पर पाठ 'कांता भार' है।

(७) धा० १९३.२ : सुनि तंबोल पट्टिय सुकर बर उठि दिढ्ढिय बंक।
मनु रोहनि सु बहुन मिलिम मनु पिक्खि उदित मयंक॥

प्रसंग खवास वेषधारी पृथ्वीराज के द्वारा जयचन्द को पान अर्पित किए जाने का है। धा० और मो० में 'मनु रोहनि सु बहुन मिलिम' के स्थान पर क्रमशः है 'मनों मोहनि सु मन मलिग,' तथा 'मन मोहनि सुं मन मिलिग'।

मो० ना० उ० ग्रा० ५०

(८) धा० २६७-२५० : लद्दहि अंग त्रिय जी जिहि जिन लिय अरहिं हुधार।
लाज धरहि तिनवरि गाजहिं जे दुहु 'पंच हजार'॥
'पंच हजार' ति मद्धि 'दुइ' जे अग्गा वर खामि।
करं बज्जइ बज्जइ सहइ ते 'सै पंच' अलूझामि॥
तिन महि 'सौ' जे भय हरण सीझ सन्त जम जित्त।
तिन महि 'दस' वारुण तुलण उप्पारहि गयदन्त॥
तिन महि 'पंच' प्रपंच मे लक्खिय न गति तिन काज।
देवगति देवानसउं तिन महि पहु प्रथिराज॥

प्रसंग पृथ्वीराज की सेना-वर्णन का है। इन प्रतियों में उपर्युक्त (१) 'पंच हजार', (२) 'दुइ' [हजार], (३) 'सै पंच', (४) 'सौ', (५) 'दस' तथा (६) 'पंच' के स्थान पर क्रमशः (१) 'बीस हजार' (२) 'दस [हजार]', (३) 'पंच [हजार]', (४) 'दोइ [हजार]' मो०, 'बीस से'—ना०, 'पञ्च से'—धा० (५) 'दस' सइं, (६) 'पञ्च सइ' है।

(९) धा० २६२.१७ : परे सहस 'सोरह' सह सेन गोरी।

प्रसंग गोरी-पृथ्वीराज युद्ध में गोरी की सेना के संहार का है। इन प्रतियों में 'सोरह' के स्थान पर 'पंचीस' है।

(१०) धा० ३८६ : भय विहान 'सुरितान' दर बज्जि निसांन निसांन।
तम चूरन जूरण किरणि त प्रगटि दिसांन दिसांन॥

इन प्रतियों में 'सुरितान' के स्थान पर 'सु विहान' है, जब कि पूर्ववर्ती शब्द भी 'विहान' है।

मो० ना०

(११) धा० १४७ : सुनत बोल हेजमइ उठत दिखित चन्द हित ताहि।
त्रिय अग्गइ गुदरन गयउ जहां पंगु त्रिय आहि॥

ना० मो० में इसके पूर्व निम्नलिखित दोहा आता है (ना० पाठ) :—

(१९) धा० १९६.६ : पारस्व मंडि प्रथिराज कउ कोइ भले रजपूत सउ ।

प्रसंग छद्मवेशी पृथ्वीराज को जयचन्द के पहचानने और उसको पकड़ने की आज्ञा देने पर पृथ्वीराज के सामंतों की प्रतिक्रिया का है। इन प्रतियों में पाठ है : धा० म० उ० स० 'सावंत सूर हसि राजसूं (सौं—म०)', अ० फ० 'सावंत सूर हरि परस्पर', ना० 'भर भरणि आउ पुजीय परीय'। 'पारस्व मडि प्रथिराज कउ' (=पृथ्वीराज के पार्श्व में आकर) के एक दुर्बोध पाठ को हटाकर इन प्रतियों में एक सरल पाठ को रक्खा गया है।

(२०) धा० २१०.१ : जउ इन लष्यन सद सहित विचार न तथ्य करि।

प्रसंग संयोगिता के अपनी दासी को मोतियों का थाल लेकर पृथ्वीराज के पास भेजने का है। इन प्रतियों में 'सहित' शब्द नहीं है। 'इन लष्यन' शब्दों से प्रकट है कि 'सहित' होना चाहिए।

(२१) धा० २११.२ : कमलिनि कोमल पानि कलिकुल अंगुलिय।

प्रसंग उपर्युक्त दासी के मोती अर्पित करने का है। इन प्रतियों में 'कलि कुल' (=कलिका-कुल) के स्थान पर 'केलि कुल' है, जो उँगलियों के लिए निरर्थक है।

(२२) धा० २२९.२ : बहुत जतन संजोगी समवै।
सोम अमृत कमल तुम्ह जु छवै।
इह कहि बाल गवख्यिन पत्तिय।
पति देषत अग नहि नहि रत्तिय।

प्रसंग संयोगिता को वरण करके पृथ्वीराज के चले जाने पर उसके विरह का है। इन प्रतियों में दूसरे चरण का पाठ है : धा० अ० फ० 'सोम कमल अमृत दरसाए,' म० ना० उ० स० 'सोम कमल दिनयर दरसाए'। कहा गया है "[उस विरह-दाह को शांत करने के लिए] संयोगिता ने बहुत से उपाय किए, [किन्तु कोई लाभ न होता देखकर] वह कहने लगी, 'हे सोम, अमृत और कमल तुम्हें [कोई] न छूवे।' और यह कह कर वह गवाक्षों तक गई'''।" इन प्रतियों का पाठ चरण तीन के 'इह कहि' को निरर्थक कर देता है। 'दरसाए' तो निरर्थक है ही—कमल और अमृत के दरसाने से कोई शीतलता नहीं प्राप्त होती है।

(२३) धा० २२९.३ : ऊपर के छन्द में तीसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'उझकि झंकि दिष्यउ पन पत्तिय'। यह परिवर्तन पूर्ववर्ती से संबद्ध है।

(२४-२५) धा० २३९.२०, २२ : दरसी इक दादल झल्लरियं। (१९)
समरे बर कायर बल्लरियं। (२०)
जिनके सुप सुच्छ छबि सच्छरियं। (२१)
निरषे तिनके तन अच्छरियं। (२२)

इन प्रतियों में २० तथा २२ वें चरण नहीं है, स्पष्ट है कि वे छूटे हुए हैं।

(२६) धा० २५०.३ : नीच कंधे 'मही' रोम हीसं।

प्रसंग मीर बंदन के वर्णन का है। इन प्रतियों में 'मही' के स्थान पर पाठ 'तुच्छ' है। 'मही' का अर्थ 'सड़े हुए' होता है और वही संगत लगता है। यहाँ अर्थ की दुर्बोधता के कारण सरल पर्याय रख दिया गया है।

(२७) धा० २६२.१ : मति बड्डी सामंत सकल 'हउ' तोहि दिखावहु।

इन प्रतियों में 'हउ' के स्थान पर 'भय' है। 'हउ' 'भय' का अपभ्रंश रूप है, किन्तु 'भय' की अपेक्षा 'हउ' (<हउआ) अधिक उपयुक्त शब्द है। 'हउ' दुर्बोध होने के कारण बदल दिया गया, और कर उसके स्थान पर 'भय' कर दिया गया है।

(२८) धा० २६९.९ : धर पेह मझ्झ त पीत पनी। (९)
दिपि झज्झति रेण सरह तनी। (१०)

चरण ९ का पाठ इन प्रतियों में है : धा० अ० फ० 'हरिपतिथ हिमाउत पीत पनी', ना० उ० स० 'हरिपथ्थ हुमा (इमा-स०, उमा-उ०) उपवीत (उअपीत-स०, पतिपीत-उ०) बनी (पनी-ना० उ०)'। प्रसंग सेना के प्रयाण का है। निर्धारित पाठ का आशय है : 'धरा की धूल [उड़कर] सूर्य की किरणों में [ऐसा] पीलापन ला रही है.........।' इन प्रतियों के पाठ निरर्थक हैं।

(२९) धा० २७०.२ : 'विजे सव सेन' तिक्के नकरे।

इन प्रतियों में 'विजे सव सेन' के स्थान पर पाठ है : धा० अ० फ० ना० 'बिडुरिय सेन', म० उ० स० 'डरं बिड्डुरो सेन'। 'विज्' का अर्थ भागना होता है, उसके स्थान पर उसकी दुर्बोधता के कारण प्रसंग से समझकर 'बिड्डरिय' शब्द दे दिया गया है।

(३०) धा० २७३.१ फुनि प्रथिराज अछ्छि 'देह' बलु रट्ठिवर नरेस।
सिर सरोज चहुआंन कउ अमर सस्त्र सम भेस ॥

इन प्रतियों में 'देह' के स्थान पर 'दल' है। संपादित पाठ के प्रथम चरण का अर्थ है : 'फिर पृथ्वीराज को आँखों से देखकर राठौर नरेश [जयचन्द] घूम पड़ा।' 'देह' का अर्थ देखना है, उसको न समझ कर प्रसंग के सहारे पाठ 'दल' कर दिया गया है।

(३१) धा० २८५.२ : मछ्छ तिहेवर फुरहि कछ्छ गज कुंभ 'विदारहि'।
उअहंस उड़ि चलहि हंसमुख कमल विराजहि ॥

इन प्रतियों में 'विदारति' के स्थान पर भी 'विराजति' है जो उसके तुक में बाद की ही पंक्ति में आता है।

(३२) धा० ३२७ : उहि उहि उभय रस उप्पजउ मिले चन्द गुरुराज।
कइ बन्धव सउं मनसिनउ कइ धन निरिख्खयति राज ॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण का पूर्वार्द्ध है : धा० 'के वयनन अयनन' मिलहि, अ० फ० 'कै पिय बहि अबनिहि मिलै', ना० 'के वयन अपन न मिलनि', शा० स० 'कब बयनन आनन मिलै'। प्रसंग पृथ्वीराज की विलास-मग्नता का है; दूसरे चरण में गुरु राज तथा चंद का यह सम्मिलित अनुमान दिया गया है कि 'या तो राजा बांधवों से मनसिन् (उनका ध्यान रखने वाला) होगा, और या तो वह अपनी स्त्री (संयोगिता) को ही देखेगा (उसी पर ध्यान देगा)।' प्रकट है कि इन प्रतियों का पाठ निरर्थक है, और एक दुर्बोध पाठ के स्थान पर इनमें एक सरल पाठ प्रसग की सहायता से रखने का प्रयास किया गया है।

(३३) धा० ३३१.१ : 'आसन आइस सुध्धि दिय' कच झारिय तह रेनु।
सुभ सिंगार सुंदरिय 'अंगे आभरनेन' ॥

प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है : धा० 'आसन असु दिय चरन की', अ०फ० 'आसन दिय अनु चरन (बरनि) परि', ना० 'आसन असु दिय चरन किय' शा० स० 'आसन असु दिय चरन रज'। किंतु चरण पड़ने की बात तो पूर्ववर्ती छंद में आ चुकी है :

तब कुंडल मोह चप सोह ति मोहन दास दस।
कछु हंसि कछु पय लग्गि पयंपह लीय रसि ॥

(३४) धा० ३३१.२ : पूर्वोल्लिखित दोहे के ही द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध इनमें है : धा० अ०फ० शा० स० 'आदर आभर नैन (आभरनेन-धा०)' ना० 'आभर आभ नैन'।

इन प्रतियों का पाठ निरर्थक है यह प्रकट है।

(३५) धा० ३३८.२ : कहु सु पियह पउमिनिय कंत पहु धरद तउ न धम ।
सुप सुप मार आरोहु 'अमर' संसार मरण गम ॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण के 'अमर' के स्थान पर पाठ 'सार' है। 'अमर' का अर्थ है अ+स्मर =काम विहीन है, और वही सार्थक है। 'सार' प्रसंग में निरर्थक है। 'अमर' का अर्थ न समझ पाने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है।

(३६) धा० ३५४.२ : मेछछ मलूइ ति रत्ति किय बंधि कुलीन कुरम्भ।
'बीर चिक्कु बततिह कियउ' दिमउ विरोध मिलांन ॥

इन प्रतियों में दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ है : 'बीर बिचार ति (त—अ०) रत्त (रत्ति—धा० श्वा० स० हुअ)'। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा 'दर्शन उन बीरों ने बातें थोड़ी कीं।' 'चिक्क (< स्तोक)' को न समझ पाने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है।

(३७) धा० ३६०.५ : बढ़े लो ओलग्गी कहीं भार भारं।
भयी मिंच कुम्मह तुम भार सारं।

उद्धृत प्रथम चरण का पाठ इनमें है : धा० शा० स० 'बढ़ी संग लग्गी (लग्गी-धा०, लागी-शा०)', अ० फ० 'बड़ी अंग लग्गी', ना० 'बड़ो मिग लग्गी'। ये सभी पाठ निरर्थक हैं, और 'ओलग्गि (< अवलग्न) भृत्य' के अर्थ को न समझने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है।

(३८) धा० ३८८.१ : तिहि आयउ हुहि पास तरि तुहिह पास बहु भांन।
सोइ हुरोम दन्वाहूँ समह हडहन कज सु विहान ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण का पाठ है : 'अप्रमान (वा सुनंत शा० स०) करयो (करबो-धा०) हियो दिल न रह्यो (रहे-धा० ना० थिर थान (काम—धा०)'। ये पाठ प्रसंग में निरर्थक हैं, यह स्वतः देखा जा सकता है।

धा० अ० फ० ना०

(३९) धा० ३८३.४ : अमिय कउल आयास लिअउ अच्छरी उछंगह ।
सब सु गहुँ करतकिय 'अरील अरील कहत कह' ॥

उद्धृत दूसरे चरण के उत्तरार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है 'कह जय जय सु कह कह'। 'अरील (< अरिक्त)' का अर्थ न समझने के कारण यह पाठ-परिवर्तन किया गया है : दुर्बोध पाठ को निकाल कर, प्रसंग से अनुमोदित एक सुगमतर पाठ दे दिया गया है।

(४०) धा० ३८०.२ : दडफ साह पेलन चढ़उ सछुहु 'उन्वल अरुणं'।

इन प्रतियों में 'उन्वल अरुणंत' के स्थान पर पाठ है 'उदधि अरसान।' दडफ (=दण्डविध) खेलने के लिए घोड़े पर सवार हुए शाह की कल्पना 'उदित अरुण' के अप्रस्तुत के साथ ही संगत लगती है, 'उदधि अरसान' की उक्ति तो किसी 'सेना' के ही अग्रसर होने के सम्बन्ध में संगत हो सकती थी।

धा० अ० फ०

(४१) धा० ५७.३,.४ : 'जिउ' सूर तेज सुच्छत जउ कीनह ।
'तिउ' पंगह मंच हुज्जम भय दीनह ।

इन प्रतियों में दोनों चरणों में 'जिउ' और 'तिउ', नहीं हैं। इनके न होने से अर्थ दुरूहता से लगता है; केवल छन्द में मात्राधिक्य समझ कर इन शब्दों को निकाल दिया गया है।

(४२) धा० १०३.२ : चढउं मह तेवन होइ लच्छइ ।
जउ बोलउं 'त हच्छु तुह मच्छइ'।

इन प्रतियों में दूसरे चरण का उत्तरार्द्ध है 'अहिथ झुल्लै तुब', जो निरर्थक है। यह 'तुम्हारे मस्तक पर मेरा हाथ है' की सौगंध न समझ पाने के कारण बदल कर किया गया है।

(४३) धा० १९०.१ : मिलि बज्जहि बंगह रवनि 'दान कवि पति सेह' ।
चलिल सुवासव सजुह हुअ सब सामंत समेव ॥

इन प्रतियोंमें प्रथम चरण का उत्तरार्द्ध है : 'धा०... ..मोह, अ० फ० 'कनि पति मृत (मृति-अ०) समूह (मूह—अ०)' । धा० त्रुटित है किन्तु उसके पाठ के अन्तिम अक्षर 'मोह' 'समूह' का ही कोई अंश है—उकार, ऊकार और ओकारमें प्रायः भ्रम किया जाता रहा है।[1] यह पाठ असंगत और अर्थहीन है,यह स्पष्ट है, स्वीकृत पाठ ही सार्थक है।

(४४) धा० २२७.२ बिन उत्तर 'तु मौन' सुष रष्षी ।
जिम चातुकि पावस रति नष्षी ।

उद्धृत प्रथम चरण के 'तु मौन' के स्थान पर धा० अ० में है 'मोहन'; फ० में यह चरण छूटा हुआ है। 'मोहन' प्रसंग में निरर्थक है।

(४५) धा० २४७.१,.२ : गहि गहि कहि सेना तिसह 'चलि हय गय मिलि तब्ब।'
जिम पावस पुब्बह अनिल 'हलि गत बद्दल सब्ब॥'

इन प्रतियों में प्रथम तथा द्वितीय चरणों के उत्तरार्द्ध क्रमशः है 'चलि (हलि—फ०) हय गय मिलि इक्क,' तथा 'हलि बद्दल (बद्दलु—फ०) बहु भिण्ण (भेय—धा०, भरि—फ०)' । 'इक्क' पाठ प्रसंग में सर्वथा निरर्थक है, यह प्रकट है। दूसरे चरण में पाठ-परिवर्तन 'हलिगत = हिलगते हैं — आस-पास आ जाते हैं' को न समझ पाने के कारण किया गया है।

(४६) धा० २६०.१ : यतो नीरं ततो नलिनी यतो नलिनी ततो नीरं ।
त्यजति ग्रहं न बन ग्रहनी यतो नलनी ततो ग्रहं ।

इन प्रतियों में प्रथम चरण का उत्तरार्द्ध भी वही है जो पूर्वार्द्ध है : 'यतो (जेतो—अ० फ०) नीर ततो नलिनी' । अशुद्धि प्रकट है।

(४७) धा० २८७.६ : सामंत पंच पेसह धरिग मिरह संति अप्प 'बिप्पहर।'
इन प्रतियों में 'बिप्पहर' = दो पहर, के स्थान पर 'बिष्पहर' है। अशुद्धि प्रकट है।

(४८) धा० ३०४.२ : 'काम' बान हर नयन निडर नीडर सोइ सुझ्झर।
इन प्रतियों में 'काम' के स्थान पर पाठ 'इक्क' है। प्रसंग विभिन्न सामंतों के पृथ्वीराज को कन्नौज से दिल्ली की दिशा में आगे बढ़ाने की दूरी का है। धा० २७६ में नीडर के सम्बन्ध में कहा गया है :

नीडर निसंक झुझ्झंत रण अट्ठ कोस चहुआंन ग्रयु ।

इस 'अट्ठ' की संख्या के लिए 'काम बाण (५) + हर नयन (३)' पाठ ही ठीक है, 'इक्क बाण हर नयन' स्पष्ट ही अशुद्ध है।

(४९) धा० ३११.१ दादुर 'सादुर' सोर नव धुर नारि बन ।
इन प्रतियों में 'सादुर' शब्द नहीं है। 'दादुर' से वर्ण-साम्य होने के कारण प्रतिलिपि करते समय यह शब्द छूट गया है, यह स्वतः प्रकट है।

(५०) धा० ३१८.२ : 'जिहि' घन त्रिअ मरणु निमि वर जाने ।
सो काम देव त्रिअ बलि करि माने ॥

इन प्रतियों में 'जिहि' शब्द नहीं है। छंद का मात्राधिक्य ठीक करने के लिए यह निकाल दिया गया है, यद्यपि इससे वाक्य अपूर्ण रह जाता है।

[1] देखिए इसी भूमिका में 'प्रयुक्त प्रतियाँ और उनके पाठ' शीर्षक के अन्तर्गत मो० सम्बन्धी विवेचन।

(५१) धा० ३५३.१, २ तब पांन षुरासान ततार षांन रुस्तम कर जोरइ।
आन साहि मरदान आन सुविहान बिछोरहि।

इन दो चरणों के स्थान पर धा० तथा अ० में एक ही चरण है:

धा० तबहि पान षुरसान षान रुस्तम बिच्छोरहि।

अ० फ० षां षुरसान ततार षान सुविहान बिछोरे।

ऐसा लगता है कि प्रथम चरण के 'कर' से लेकर द्वितीय चरण के 'आन' तक का अंश निकला हुआ था, धा० या उसके किसी पूर्वज में दूसरे चरण के 'सुविहान' तथा अ० या उसके किसी पूर्वज में 'रुस्तम' को निकाल कर पंक्ति की मात्राएँ ठीक करली गई। फ० में यह भूल नहीं है, किंतु फ० के परिचय में ऊपर हम चुके हैं कि उसमें ऐसे लगभग ९० छंद हैं जो अ० के छंदों की क्रम-संख्या के बाहर पड़ते हैं और ना० तथा स० में मिलते हैं। इस लिए यदि का फ० का पाठ उक्त पाठ-मिश्रण के अनंतर ठीक कर लिया गया हो तो आश्चर्य न होगा।

(५२) धा० ३६२.१९: परे चाइ चालुक्क ते सादिवूने।
मुरे मोरिआ सब्ब भये जात सूने॥

अ० फ० में उद्धृत प्रथम चरण की 'साठि' तक की शब्दावली नहीं है। धा० में इस छूटी हुई शब्दावली के स्थान पर है: 'निने नूप सा सूप भाखेन' जो कि सर्वथा निरर्थक है, और केवल चरण पूर्ति के लिए गढ़ ली गई है।

(५३) धा० ३९३.२: हमहि मिलइ जि चंद सुनि चरइ दलिही लोभ।
अरु जि दुनी महि संचरइ हम सउं मिलत न सोभ॥

द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध इन प्रतियों में है: धा० 'हय गय गहि न सोभ', अ० फ० 'हय गय महि तन सोभ'। संभवतः पूर्व में पाठ त्रुटित होगया था, उसके स्थान पर प्रसंग के अनुकूल एक नवीन पाठ की कल्पना कर ली गई।

(५४) धा० ३९९.३: कढ्ढन कउ पतिसाहि तुही।
मन मझ्झ रहउ कवि साल जु ही।
गयउ तु आज करि पइज्ज तुही।
बनि जाउं साहि सुरतान सही।

तीसरे चरण का पाठ इनमें है: 'दे अज्ज किधौं करि हे (करिहुं—अ०, करिहों फ०) जु (कि—अ०, के—फ०) नहीं'। प्रथम तथा द्वितीय चरणों के साथ स्वीकृत पाठ ही संगत है। प्रसंग यहाँ पर 'साल'='शल्य' का है। चंद गोरी से कहता है कि "(१) उस शल्य को काढ़ने में तूही समर्थ है [२] यह जो शल्य कवि के मन में [खटकता] रहा है, [३] वह आज गया ही है यदि तू [उसके निकालने की] प्रतिज्ञा कर, [४]और (तदनंतर) हे सुल्तानों के शाह, मैं बन चला जाऊँ [यही मेरे मन में है]।" प्रकट है कि इस प्रसंग में गोरी से 'नहीं' कराने की बात, जो इन प्रतियों के पाठ में आती है चंद मुख पर भी ला नहीं सकता था।

अ० फ० म० ना० उ० ब्रा० स०

(५५) धा० २४२.१: सुनि बज्जन राजन चढिय 'बहु पक्खर समहाउ,'
मनुह लंक विग्रह करन चलउ रघुपतिराउ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध के रूप में है: 'सहस संष धुनि चाव (चाय—म०, चाउ ना०, चाइ—उ० स०)'। इन प्रतियों में आगे शंखध्वनि नाम के योगी-दल का प्रक्षिप्त प्रसंग है। हो सकता है कि इन प्रतियों के इस पाठांतर का संबंध उक्त प्रक्षेप से हो। अन्यथा युद्ध के प्रसंग में शंखध्वनि का उल्लेख ग्रंथ में नहीं हुआ है।

(५६) धा० ३१२.४ : केवर भाष पराक्रति सक्रति देव सुर।
के गुन ग्यान सुजान विराजहि राजवर।

उद्धृत दूसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'कि वरवीन विराजहि वीर वर', फ० 'के वरि वीन प्रवीनु विराजहि वीर वर', म० 'के वर वीन विराजत राज दरबार वर', उ० स० 'के बर बीन विराजित राजहि बार पर'। किंतु वीणा में प्रवीण दासियों का उल्लेख इसके पूर्ववर्ती छंद में ही हो चुका है।
तहं तहं अध्धि सुवीन प्रवीन ति दासि दस।
इस लिए इन प्रतियों की पाठ-विकृति प्रकट है।

(५७) धा० ३२६.१ : किय अचिरज तब राजगुरु ग्यायनु राज रस रत्त।
जस भावी नर भोगवइ तस विधि अप्पइ मत्त।

इन प्रतियों में प्रथम चरण का पाठ है: 'मानि (मन्नि-ना० स०) राजा गुरु राजरस (रसि—फ०) तैं कवि (कविवर-ना० ना० स०) बरनी (चरनी-फ०) सत्ति।' 'ग्यायनु राज रसरत्त' में पृथ्वीराज के भावी पतन की जो व्यंजना है, वही चरण २ के साथ संगत है, इन प्रतियों के पाठ में वह संगति नहीं है।

धा० फ० ना०

(५८) धा० ३०२ : परत बचेल सु मेल किय रन राठउर सु भार।
'जब दसकोस ढिलिय रही' फिरि तोमर पाहार॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर है 'दस योजन ढिल्लीय रहि (ढिल्ली परहू—ना०)'। कुल दूरी कन्नौज और दिल्ली के बीच 'पांच घाट सो कोस' कही गई है (धा० २६६.३), और इस दूरी को ग्यारह सामन्तों ने निपटाया है, जिनमें से अन्तिम पाहाड़ तोमर है (धा० ३०४)। प्रकट है कि यह दूरी जिसे पाहाड़ तोमर ने तै कराया दस कोस की ही हो सकती है, दस योजन की नहीं।

म० ना० उ० ना० स०

(५९) धा० ४५.३-४ : षट छह जिहि सामंत सोइ प्रथीराज कोइ।
दान षग्ग भय मानि न मुक्कइ तास लोइ॥

इन चरणों के स्थान पर इन प्रतियों में है :
सत्त सेन सामंत सूर छह मंडलिय।
बरन इच्छ वर मो हिअ हंति अखंडलिय॥

'षट+दह'=सोलह के स्थान पर सामन्तों की संख्या १०० करने के लिए उद्धृत प्रथम चरण में पाठ-परिवर्तन किया गया लगता है, किन्तु इन प्रतियों का चरण का शेष पाठ अर्थहीन हो गया है; उद्धृत द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध भी इसी प्रकार इन प्रतियों में अर्थहीन हो गया है।

(६०) धा० ६३ : सं साहिस्स 'सहाब' साहि सकलं इच्छामि युद्धाइने।

इन प्रतियों में 'साहिस्स सहाब' के स्थान पर म० 'साहि साहि', द० 'बसाह', उ० स० 'बसाह साह' ना० 'बसाहि बद्ध' पाठ हैं। ऐसा लगता है कि पूर्ववर्ती पाठ 'साहिस्स [सहा] ब साहि' का 'सहा' निकल गया था, इसलिए इन प्रतियों में यह पाठ-विकृति हुई : म० में प्रक्षेप का प्रयास कदाचित् नहीं किया गया, शेष में प्रसंग से 'बसाहि' के बाद 'साहि' जोड़ कर पाठ पूरा कर लिया गया।

(६१) धा० १७८.१ : आयस रावन सथ्थि चलि 'असिअ सहस' तिहि सथ्थ।

इन प्रतियों में 'असिय सहस' के स्थान पर 'अयुत एक' है, जो स्पष्ट प्रक्षेप है और संख्या बढ़ा कर बताने के लिए किया गया है।

(६२) धा० २८४.१ : पुष्पंजलि 'सिरि संडिप्रभु' फिरि लगी गुर पाय।

'सिरि संडि प्रभु' के स्थान पर इन प्रतियों में है 'दिखि वाम कर' जो कि सर्वथा अर्थहीन है। पूर्व के छन्द से इस छन्द की उक्ति-शृंखला है और उसका अन्तिम चरण स्वीकृत पाठ का ही समर्थन करता है :

पुष्पांजलि पंग सिर णाइ जयति विप्र कामदेव।

(६३) धा० १८६.१ : जाम एक छनदा घटिव 'ससि हू सत्ति' निवारि।
कहुं कामिनि सुख रति समर नृपति हु नींद बिसारि॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'ससि हू सत्ति' के स्थान पर पाठ 'सत्तमि मत्त' है। सप्तमी को केवल एक प्रहर रात्रि गत होने से उसके सत्व का निवारण नहीं हो जाता है, सप्तमी को लगभग दो प्रहर रात्रि तक उसका सत्व बना रहता है, उसके अनन्तर उसमें परिवर्तन आता है। इसलिए इन प्रतियों का पाठ विकृत है।

(६४) धा० १९२.३ : 'बहुत किअउ आलाप' आउ कनवज्ज मुकट मनि।
इह ढिल्लिअसुर दुत्त बिअउ नन कहुं तुइस तिनि॥

उद्धृत प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है 'कवि आदर बहु कियौ'। किन्तु इस पाठ में आगे आए हुए कथन के विषय में 'कहा' अर्थ वाची कोई क्रिया नहीं आती; 'बहुत किअउ आलाप' में यह त्रुटि नहीं है। अतः इन प्रतियों का पाठ विकृत लगता है।

(६५) धा० १९७.१ : सुनउ सबे सामंत हो कहइ निपति प्रथीराज।
जउ अछछउ दिन पेत भइ तउ दुक्खिन नयर विराज॥

प्रथम चरण के स्थान पर इन प्रतियों में है :

सकल सूर सामंत सम बर बुल्यौ प्रथीराज।

इस पाठ में एक तो कोई सम्बोधन नहीं है, दूसरे 'सूर' शब्द अनुपयुक्त है : केवल सूर सामन्तों से नहीं, पृथ्वीराज ने सभी सामन्तों से कहा होगा; फिर 'बर' शब्द भी भरती का है। स्वीकृत पाठ में ये त्रुटियाँ नहीं हैं।

(६६) धा० २३३.१ : मदन सराल ति विनहा 'निमिष दइत' प्रांन प्रानेन।
नयन प्रवाह ति विनहा दिवा कथय कथा॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'निमषि दइत' के स्थान पर 'जिह्वा रट्योति' है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है 'मदन के शर रूपी काल से विनष्टा [संयोगिता] के प्राण एक निमिष के लिए दयित (प्रिय पति) के प्राणों से [अभिन्न] हो रहे।' प्रकट है कि 'निमिष दइत' स्थान पर 'जिह्वा-रट्योति' शब्द सर्वथा निरर्थक हैं, और पूरे वाक्य के अर्थ को छिन्न भिन्न करते हैं।

(६७) धा० २३४.४ : मोहि कंप सुरलोक 'कंप तप्पिय तह' नाग नर।

इन प्रतियों 'कंप तप्पिय तह' के स्थान पर पाठ है : 'पन्न (पंति—म० उ० स०) पन्नग अरु (पंग नरु—म० पंनगरु—उ० स०)'। 'नाग' ठीक बाद में आता ही है, इसलिए 'पन्नग' वाले कोई भी पाठ सम्भव नहीं हैं।

(६८) धा० २४६.१९ : 'सिंधु सा बंध' बंधे धुरंगा।
संग संगीत डरि येस संगा।

'सिंधु सा बंध' स्थान पर इन प्रतियों में है। 'विरद (विरुद—ना०) बरदाइ'। प्रसंग युद्ध में लाए गए हाथियों का है। प्रथम चरण का आशय है 'सिंधु देश के धुरंगे (हाथी) बन्धनों से बँधे हुए हैं'। यहाँ पर 'विरद बरदाइ' सर्वथा निरर्थक है।

(६९) धा० २७८.१ : 'चंचल पिच्छोरिय गति' चवइ अपन तन दिष्ष।

तन तुरंग तिलु ति तिलु कर भयउ कन्ह मन भिंदंद ॥

प्रथम चरण पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है : म० उ० स 'चंपत अच्छरि रिंढ (रिंठ–उ०) लगि', ना० 'चंपित अच्छरि डिम लगि' जो सर्वथा अर्थहीन है; अप्सरा का कोई प्रसग यहाँ नहीं है।

(७०) धा० २८२.२ : धरणी कन्ह परत प्रगट उट्ठि पंगु नृिप हंकि।
सनु अकाल 'अवली जरल' गहि लुट्टि धनु रंक॥

इन प्रतियों में 'अवली जरल' के स्थान पर है 'संकरह हसि'। अकाल के समय शंकर का हँसना एक भद्दी कल्पना है, जो कि पूर्ववर्ती पाठ की दुर्बोधता के कारण उसको हटाकर रक्खी गई है; स्वीकृत पाठ का आशय है : मानो अकाल में [रंक-] अवली ने, जो रो–चिल्ला रही थी, अटूट धन प्राप्त किया हो।'

ना० उ० शा० स०

(७१) धा० ३४७ : सहहिं भीर नृिप पीर जिहिं 'जिन सिर झरहिं दुधार।'
लाज धरहिं तिन वरि गजहिं ते दुहु पंच हजार॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'जिन सिर झरहिं दुधार' के स्थान पर है, 'लज्या धर (धरन–शा०) मर मार', तथा दूसरे चरण के 'लाज धरहिं' के स्थान पर है 'धरनि (भिरण–ना०) धरणि।' 'धरनि धरणि' असम्भव है, और 'भिरण धरणि' निरर्थक। स्वीकृत पाठ ही सम्भव है।

(७६) धा० ३५२.५ : तिहि गहन इउं इच्छहुं 'सुमन सच्च' करतार करु।
सग्गहु अराम्भ भृत संगहहु धरहुं लज्ज लज्जहुं न मर॥

इन प्रतियों में 'सुमन सच्च' के स्थान पर है 'साच झूठ'। यहाँ गोरी अपने सामंतों को आक्रमण का उद्देश्य बताता हुआ कह रहा है कि 'उसी पृथ्वीराज को मैं पकड़ना चाहता हूँ, मेरे मन की वह बात कर्त्तार सच्ची (पूरी) करे!' यहाँ पर 'साच' के साथ 'झूठ' असंगत है, 'झूठ' कहने से सामंतों से वह उत्साहपूर्ण सहयोग की अपेक्षा नहीं कर सकता है।

(७३) धा० ३६५.२ : सहउं न बोल संमुह हन्यउ बाल पांन सुरतान।
'दुहु दुज्जन पूजिअ धरी' दिन पकरउ चहुआन॥

इन प्रतियों में दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर है 'इह अपुव्व सजोगि सुनि'। संयोगिता यहाँ पर कहीं नहीं आती है, युद्ध-विषयक विमाई–संयोगिता सम्वाद के प्रक्षेप को रचना में पिरोने के लिए यह प्रक्षेप किया गया है।

म० उ० स० शा०

(७४) धा० ११५.३-४ : चहूआंन राठवर जाति पुंडीर गुहिल्ला।
बड गूजर पांमार कुरंभ जांगरा रोहिल्ला।
इत्ते सहित्त भुम्र पति चलउ उडी रेन किन्नउ सुभउ।
एक एकु लष्ष वह लष्षवहु चले सथ्थ रजपुत्त सउ॥

उद्धृत प्रथम दो पंक्तियों का पाठ इन प्रतियों में है :

चाहुआन कूरंभ गौर गाजी बडगुज्जर।
जादव रा रघुवंस पार पुंडीर ति पव्वर॥

'रा' 'राज' के लिए आता है, किन्तु यहाँ किसी राजा या सामंत का प्रसंग नहीं है, यहाँ तो उन राजपूत जातियों का प्रसंग है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज गई थीं; 'पार पुंडीर ति पव्वर' तो सर्वथा निरर्थक है।

(७५) धा० १८४ अ. ३-४ : अंगोले लोल डोलं एक बोले अमोलं।
पुष्पांजलि पंग सिर-णाइ जयति विअ कामदेव।

इन पंक्तियों के स्थान पर इन प्रतियों में है :

इंद्रानी लोल डोला चपल मतिवरा एक बोली अमोली।

पूहपा (पुहपा-म०) बानी विसाला सुभग (सुभ-म०) गिरवरा जैतरंभा सुबोली।

स्वीकृत पाठ का अर्थ है : 'उन [नर्त्तकियों की] अंगूठियाँ [उनकी घूमती-फिरती उँगलियों के साथ] चपलता पूर्वक डोल रही थीं और [उनके मुखों में] एक ही अमूल्य बोल था, पंग (जयचन्द) के सिर पर पुष्पाञ्जलि डाल कर [वे कह रही थीं] "हे दूसरे कामदेव, तुम्हारी जय हो !" इन प्रतियों के पाठ में 'सुबोली' अन्तिम चरण में पुनः आता है, किन्तु 'एक बोली अमोली' और 'जैत रंभा सुबोली' का कोई अर्थ नहीं है। 'पूहपा बानी बिसाला सुभग गिरवरा' तो निरर्थक है ही।

(७६) धा० १९१ : 'दस हथ्थिय' दुत्तिय सबल 'सत्त तुरंग जिति भाय।'

दच्छ सरस बहु संगि लिय भट्ट समप्पण जाय॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'दस हथ्थिय' के स्थान पर है 'तीस करिय' (करी—म० उ०) और 'सत तुरंग जिति भाय' के स्थान पर है : म० 'द्वै सै चपल तुरंग', उ० स० 'द्वै सै तुरंग बनाय'। इसके अतिरिक्त म० में द्वितीय चरण के 'जाय' के स्थान पर 'अंग' है। प्रक्षेप-क्रिया अति प्रकट है।

(७७) धा० २०४.२ : सुनि सुंदरि वर वज्जने 'चढ़ी अवासह उद्दिठ'।

इन प्रतियों में चरण के उत्तरार्द्ध का पाठ है: 'अई अपुब्ब कोइ (कौ-म०) दिठ्ठ (दुट्ठ-उ०, दुट्ठि-म०)'। प्रसंग में इस पाठ की कोई सार्थकता नहीं है। वाक्यों को सुनकर 'अई (?) अपूर्व कोई दिखाई पड़ा' संगतिहीन भी लगता है।

(७८) धा० २२७.४ : चित उत्तर तु मौनमुख रष्षी।

जिम चातुकि पावस रति नष्षी॥

उद्धृत दूसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'मन वच क्रम प्रीतम रस कष्षिय' (चषीय—म०)। ऐसा लगता है कि अन्तिम चरण किसी प्रकार नष्ट हो गया था, इसलिए उसके स्थान पर प्रसंग के अनुसार एक सर्वथा नवीन चरण की कल्पना कर ली गई।

(७९) धा० २२८.४ : दे अंचल चंचल द्रिग मुदइ।

कुल सुभाउ तुरी जिम कुदइ।

इन प्रतियों में उद्धृत दूसरे चरण का पाठ है 'विरहायन दाहन रवि उदहि'। यह पाठ सर्वथा असंगत है। प्रथम मिलन के अनन्तर पृथ्वीराज के चले जाने पर संयोगिता की जो दशा होती है, उसी का इन पंक्तियों में वर्णन है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है, 'वह अञ्चल देकर अपने चञ्चल नेत्रों को मूंदती [किन्तु वे न मान रहे थे] जैसे अपने कुल-स्वभाव के कारण बाँधने पर भी घोड़ा कूदा-उछला करता है।' विरह का भाव कुछ और तीव्रता के साथ लानेके लिए यह प्रक्षेप किया गया लगता है।

(८०) धा० २६७.८ : मिटयउ न जाइ कहनो वय कवि चंद सार सा मंत।

प्राची हय गय वहनो रहनो गत चिंता नरेंद्र सह॥

इन प्रतियों में दूसरे चरण का पाठ है : 'प्राची क्रम्म विधानं नामानं भावई गत्तं।' किन्तु यहाँ 'कम्म विधान' का कोई प्रसंग नहीं है : 'प्राची' को प्राचीन समझ लिया गया है। स्वीकृत पाठ ही सार्थक और संगत है, जिसका आशय है 'जब कि प्राची (पूर्व—कन्नौज) के हय, गय, वाहन, रथादि तथा नरेन्द्र (जयचन्द) गतचिंता हो रहे हैं'।

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित पाठ सम्बन्ध स्थापित होते हैं :—

१—धा० मो० म० ना० उ० शा० स०

२—धा० मो०

ा० उ० शा० स०
गा०
म० फ० म० ना० उ० शा० स०
अ० फ० ना०
अ० फ०
० म० ना० उ० शा० स०
० ना०
० उ० शा० स०
उ० शा० स०
० शा० स०

न्धों को हम स्थूल रूप से निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा व्यक्त कर सकते हैं :—
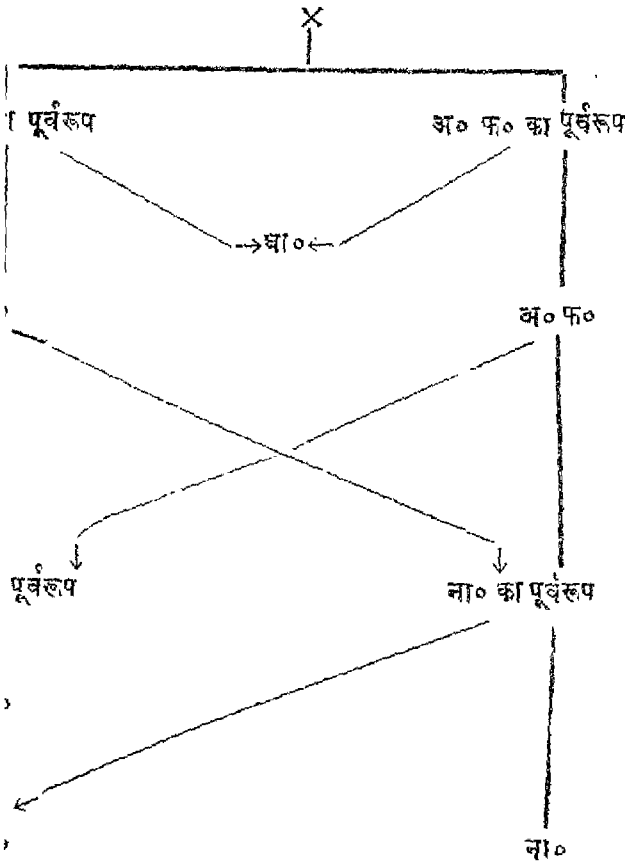
ान रखना आवश्यक है कि यह पाठ-सम्बन्ध-निर्धारण विभिन्न प्रतियों के
र किया गया है जो रचना के मूल रूप के लिए स्वीकृत हुए हैं।

पाठ-निर्धारण के आधार और सिद्धान्त

न्धों को देखने पर ज्ञात होगा कि रचना के समस्त पाठ स्थूल रूप से मो०
ों से विकसित हुए हैं, और पाठ की दृष्टि से स्वतन्त्र शाखाओं का निर्माण

केवल मा० तथा अ० फ० के ये पूर्वरूप ही करते हैं, शेष समस्त पाठ उक्त दोनों के मिश्रण से निर्मित होते हैं। इसलिए पाठ निर्धारण की दृष्टि से मा० तथा अ० फ० सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। घा० पाठ मा० तथा अ० फ० के उक्त पूर्वरूपों के मिश्रण से निर्मित है, उनके प्राप्त पाठों से नहीं, इसलिए उसका भी महत्व है, यद्यपि पाठ-मिश्रण के कारण वह महत्व पाठ-निर्धारण के लिए घट गया है। रचना के प्रारम्भ के जिन अंशों में मो० का पाठ अप्राप्य है, उन अंशों के लिए घा० का महत्व प्रकट है। मो० के अन्यत्र के त्रुटित पाठों के लिए भी घा० की सहायता ली जा सकती है। इसी प्रकार अ० फ० के त्रुटित पाठों के स्थलों पर घा० की सहायता ली जा सकती है। एक बात और घा० के मिश्र पाठ से प्रमाणित होती है, वह यह है कि मो० तथा अ० फ० के वे पूर्वरूप जिनके मिश्रण से घा० तैयार हुआ, घा० से बड़े नहीं थे। ऊपर रचना के मूल रूप का जो आकार निर्धारित हुआ है, वह घा० से भी कुछ छोटा है, यह हम देख चुके हैं।

अतः पाठ-निर्धारण के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त निकलते हैं:—

अपने मूल रूपों में मो० तथा अ० फ० पाठ मात्र स्वतन्त्र हैं, इसलिए जहाँ पर इन दोनों में एक पाठ मिलता है, अन्य कोई पाठ मान्य नहीं होना चाहिए।

जहाँ पर मो० तथा अ० फ० भिन्न-भिन्न पाठ देते हों, और एक दूसरे से विकृत हुआ प्रमाणित होता हो, वहाँ वही पाठ स्वीकृत होना चाहिए जिससे अन्य पाठ विकृत हुआ प्रमाणित होता है।

जहाँ पर मो० तथा अ० फ० एक दूसरे से सर्वथा भिन्न पाठ देते हों, वहाँ पर समस्त प्रकार की सम्भावनाओं पर ध्यान रखते हुए दोनों में से जो पाठ मूल का लगता हो उसे स्वीकार करना चाहिए।

कहना नहीं होगा कि प्रस्तुत कार्य में इन सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से पालन किया गया है। किंतु प्रतिलिपि-परम्परा में भाषा निरन्तर अधिकाधिक आधुनिक होती जाती है, केवल इसी बात को ध्यान में रखते हुए मो० तथा अ० फ० पाठों में जहाँ पर समान किन्तु अपेक्षाकृत बाद का रूप मिलता है, और घा० या किसी अन्य प्रति में प्राचीनतर रूप मिलता है, वहाँ पर अपवाद स्वरूप इस प्राचीनतर रूप को स्वीकार किया गया है।

—:*:—

५. पृथ्वीराज रासो के निर्धारित पाठ की छंद-सारिणी

संपादित	धा०	मो०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
१.१	२३	३०	१. साट० १	१. साट० १	१.१	१.८	१.५४
१.२	२४	२९	१. साट० २	१. साट० २	१.२	१.७	१.५३
१.३	२२	२७	१. विरा० ३	१. विअ०	१.५	१.११	१.७०-७५
१.४	२	खं०	२. भुजं० १	२. भुजं०	१.८	१.३	१.५.१०
१.५	२०	२५	२. दो० १	२. दो० १	१.१६/ २.१२४	१.१६	१.८१
१.६	२५	३१	२. साट०. ३	२. साट०	४.१	३.१	३.१
२.१	३१	३८	६. पद्ध० १	खं०	२८.३	२८.५	४८.१९-३२
२.२	३२	३९	६. गाथा १	खं०	२८.५	२८.७	४८.९
२.३	३३-३४	४०-४१	६. पद्ध० २	खं०	२८.६	२८.८	४८.४९-७४
२.४	३५	४२	६. रासा १	खं०	२८.९	२८.११,	४८.७९
२.५	३६/१	४३	६. पद्ध० ४/१	खं०	२८.११, १३,१५,१७ १९	२८.१३,	४८.८१-८२, ८४-८५,९१-९८
२.६	३६/२	४७	६. पद्ध० ४/२	खं०	२८.२६	२८.२७/ २८.२८	४८.९९-१००/ ४८.१२७
२.७	३७	४८	६. भुजं० ५	खं०	२८.४२	२९.१	४८.२२५.२६७
२.८	३८	४९	६. दो० १	खं०	२८.४३	२९.२	४८.२७१
२.९	३९	५१	६. दो० ३	४.३	२८.४७	२९.६	४९.२२
२.१०	४०,	५० ५२	६. पद्ध० ६	खं०, ४,४	२८.४५, ४८	२९.५, २९.७	४९.१२,२३, २६
२.११	४१	५३	६. दो० ४.	५.२३	२८.४९	२९.८	५०.२७
२.१२	४२	५४	६. दो० ५	५.२५	२८.५०	२९.९	५०.२८
२.१३	४३	५७	६. नारा० ७	५.१६	२८.५३	२९.११	५०.१६-२०
२.१४	४४	५८	६. रासा २	५.१८	२८.५४	२९.१३	५०.२२
२.१५	४५	५९	६. रासा ३	५.२७	२८.५६	२९.१५	५०.३०
२.१६	४६	६०	६. गाथा २	५.३०.	२८.५७	२९.१६.	५०.३३

२.१७	४७	६१	६. साट० १	५.३३	२८.५९	२९.१८	५०.३६
२.१८	४८	६२	६. साट० २	५.३४	२८.६०	२९.१९	५०.३७
२.१९	४९	६३	६. अनु० २	५.३५	२८.६१	२९.२०	५०.३८
२.२०	५०	६४	६. साट० ३	५.४३	२८.६२	२९.२२	५०.४३
२.२१	५१	६५	६. दो० ७	५.३८	२८.६३	२९.२३	५०.४१
२.२२	५२	६६	६. दो० ८	—	२८.६४	२९.२४	५०.४२
२.२३	—	—	६. दो० ९	५.४०	२८.६६	२९.२६	५०.४४
२.२४	५३	६७	६. साट० ४	५.४१	२८.६७	२९.२७	५०.४५
२.२५	५४	६८	६. अनु० ३	५.४५	२८.६८	२९.२८	५०.४९
२.२६	५५	६९	६. दो० १३	५.४८	२८.६९	२९.२९	५०.५२
२.२७	५६	७०	६. दो० १४	५.५२	२८.७१	२९.३०	५०.५६
२.२८	५७	७१	६. अडि०	५.५५	२८.७२	२९.३१	५०.६६
३.१	५८	७२	७. दो० १	५.१/ ८.१	३०.४०/ ३०.७२अ	३०.४०	५०.१/ ५७.१२२,५७.३६
३.२	५९	७४	७. साट० २	८.२आ	२९.३	३१.३	५७.५८
३.३	६०	७५	७. दो० २	८.३	२९.१८	३१.१६	५७.४५
३.४	६२	७७	७. कवि० २	८.५	२९.२३	३१.२४	५७.६२
३.५	६४	७८	७. गाथा १	८.६	२९.२९	३१.२७	५७.७०
३.६	६३	७९	७ साट० ३	८.७	२९.३०	३१.२८	५७.७१
३.७	६५	८०	७. रासा १	८.९	२९.३३	३१.३१	५७.७४
३.८	६६	८१	७. रासा२	८.११	२९.३३अ	३१.३३	५७.७९
३.९	६७	८२	७. दो० ५	८.१२	२९.३४	३१.३४	५७.८०
३.१०	६८	८३	७. दो० ११	८.१८	२९.४०अ	३१.४१	५७.८७
३.११	७०	८५	७.कवि० ३	८.२०	२९.४२	३१.४३	५७.९०
३.१२	७१	८६	७. गाथा२	८.२१	२९.४३	३१.४४	५७.९१
३.१३	७२	८७	७. दो० १२	८.२३	२९.४४अ/१	३१.४५/१	५७.१०२
३.१४	७३	८८	७. दो० १३	८.२५	२९.४४अ/२	३१.४५/२	५७.११४
३.१५	७४	८९	७. दो० १४	८.२६	२९.४५	३१.४७	५७.१०१
३.१६	७५	९०	७.अडि० २	८.२७	२९.४६	३१.४८	५७.११८
३.१७	७६	९१	७. नारा० १	८.२८	२९.४६अ	३१.४९	५७.११९-१३४
३.१८	७७	९२	७.अडि० २	८.२९.१	२९.४७	३१.५०	५७.१३७
३.१९	७८	९३	७.अडि० ३	८.२९.२	२९.४९	३१.५२	५७.१५१
३.२०	८३	९८	७.अडि० ४	८.३०	२९.५४	३१.५९	५७.२११
३.२१	८४	९९	७. दो० १६	८.३४	२९.५५	३१.५८	५७.२२४
३.२२	८५	१००	७. दो० १७	८.३५	२९.५६	३१.५९	५७.२२५
३.२३	८६	१०१	७. दो० १८	८.३६	२९.५९	३१.६०	५७.२२७
३.२४	८७	१०२	७. दो० १९	८.३७	२९.५८	३१.६१	५७.२२८
३.२५	८८	१०३	७. दो० २०	८.३८	२९.५९	३१.६२	५७.२३०
							५७.२३१

७. दो० २१	८.३९	२९.६०	६१.६३	५७.२३३
७. कवि० ४	८.४१	२९.६२	६१.६५	५७.२३६
७. अडि० ५	८.४३	२९.६४	६१'६७	५७.२४०-२४८
७. त्रि० ५	८.४४	२९.६५अ	३१.६८	५७.२४९
७. भुजं० [ ]	८.४५	२९.६७	३१.७०	५७.२५९
७. कवि० ६	८.४७	२९.७३	३१.७६	५७.२६७
७. कवि० ७	८.४८	२९.७४	३१.७७	५७.२६९
७. कवि० ८	८.४९	२९.७५	३१.७८	५७.२७१
७. गाथा० ६	८.५१	२९.७७	३१.८०	५७.२७३
७. दो० २२	८.५२	२९.७८	३१.८१	५७.२७४
७. कवि० ९	८.५३	२९.७९	३१ ८२	५७.२७५
७. दो० २२	८.५५	२१.८१	३१.८४	५७.३०८
७. दो० २३	८.५६	२१.८२	३१.८५	५७.३०९
७. अडि० ६	८.५७	२९.८३	३१.८६/१	५७.३१०
७. दो० २४	८.५४	२९.८०	३१.८३	५७.३०७
७. अडि० ७	८.५८	२९.८४	३१.८६/२	५७.३११
७. दो० २५	८.५९	२९.८५	३१.८७	५७.३१२
७. रासा ४	८.६०	२९.८६	३१.८८	५७.३१३
८. कवि० १	१०.३४	३१.४अ	३३.५	६१.१०५
८. दो० ११	१०.६१	३१.२०	३३.१६	६१.१८१
८. दो० १०	१०.६१	३१.२१	३३.१७	६१.१८२
८. दो० ९	१०.६१	३१अ.१७	३३.१८	६१.१८३
८. दो० १२	१०.१०५	३१अ.२०	३३.२१	६१.२७२
—	—	३१अ.२१ क	३३.२२	६१.२७५
८. पद्ध० २	१०.११९	३१अ.२३	३३.२४	६१.२९०-२९८
८. दो० १३	१०.१२२	३१अ.२५	३३.२६	६१.३०१
८. दो० १४	१०.१२३	३१अ.२६	३३.२७	६१.३०२
८. भुजं० ३	१०.१२६	३१अ.२७	३३.२८	६१.३०५-३१०
८. त्रिभं० ५	१०.१३६	३१अ.३८	३३.३५	६१.३२६-३२९
८. साट० १	१०.१३४	३१अ.४१	३३.३८	६१.३२४
८. रासा १	१०.१३९	३१अ.४२	३३.३९	६१.३३५
८. नारा० [ ]	१०.१४१	३१अ.४४	३३.४०	६१.३३९-३४१
८. दो० १८	१०.१२५अ	३१अ.४६	३३.४२	६१.३४९
८. दो० १९	१०.१२६ अ	३१ अ. ४७	३३.४३	६१.३५०
८. दो० २०	१०.१२८अ	३१अ.४९	३३.४५	६१.३५२
८. दो० २१	१०.१२९अ	३१अ.५०	३३.४६	६१.३५३
८. दो० २२	१०.१३१अ	३१अ.५२	३३.४८	६१.३५५
८. भुजं० १७	१०.१३३अ	३१अ.५५	३३.५०	६१.३५८-३६१
८. दो० २३	—	३१अ.५७	३३.५२	६१.४४६

४.२१	१३८	१५६	८ मुन०८				
४.२३	१३९	१५७	८ [illegible] ज०९	१०.१०२	३१अ ८	३३ ८०	
८.२४	१४१	१६०	८.दो०२५	१०.१६९	३१अ.६५	३३.६०	६१.२८८ ३१४
४.२५	१४२	१६१	८.मोती०[ ]	१०.१७२	३१अ.६८	३३.६२	६१.४२५-४३०
५.१	१४६	१६५	९.मुडि०१	१०.१७३	३१अ.६९	३३.६५	६१.४३५
५.२	१४७	१६८	९.दो०६	१०.१९२	३२.४आ	३३.६८	६१.४३६-४४५
५.३	१४८	१६९	९. रहा १	१०.२०६	३२.६अ	३३.७३	६१.४६४
५.४	१४९	१७२	९. मुडि०२	१०.२०९	३२.९-१०	३३.७४	६१.४७८
५.५	१५२	१७३	९. अडि०१	१०.२१८	३२.१३	३३.७७	६१.४८१
५.६	१५३	१७४	९मुडि०[५]/१	१०.२२१	३२.१५	३३.७९/१	६१.४९०
५.७	१५१	१७५	९. साट०१	१०.२२२	३२.१६	३३.७९/२	६१.४९७
५.८	१५४	१७६	९.मुडि०[५]/२	१०.२२८	३२.२२	३३.८०	६१.४९८
५.९	१५५	१७८	९. मुडि०४	१०.२२९	३२.२४	३३.८१	६१.५०४
				१०.२३४/	३२.२५	३६.८२,८५	६१.५०५
				१०.२३७			६१.५१०,
५.१०	१५८	१८०	९. साट०२	१०.२४१	३२.३०	३३.८८	६१.५१३
५.११	१५९	१८१	९.दो०२८	१०.२४४	३२.३१	३३.८९	६१.५२४
५.१२	१६०	१८२	९. दो०११	१०.२४५	३२.३२	३३.९०	६१.५२७
५.१३	१६१	१८३	९. भुज०३	१०.२६७	३२.३३	३३.९४	६१.५४९
५.१४	१६२	१८४	९. दो०१२	१०.२६८	३२.४२	३३.९५	६१.५७१-७७
५.१५	१६३	१८५	९. दो०१३	१०.२७७	३२.४४	३३.१००	६१.५७८
५.१६	१६४	१८६	९. दो०१४	१०.३१२	३२.७६	३३.१३२	६१.५८८
५.१७	१६५	१८७	९. दो०१५	१०.३१४	३२.७७	३३.१३३	६१.६४८
५.१८	१६६	१८८	९. दो०१६	१०.३१७	३२.७९	३३.१३५	६१.६५०
५.१९	१६७	१८९	९. कवि०२	१०.३१८	३२.८०	३३.१३६	६१.६५३
५.२०	१६८	१९०	९. दो०१७	१०.३२१	३२.८२	३३.१३८	६१.६५४
५.२१	१६९	१९२	९. दो०२३	१०.३३१	३२.८३	३३.१३९	६१.६५७
५.२२	१७०	१९३	—	१०.३३४	३२.८५	३३.१४१	६१.६८७
५.२३	१७१	१९४	९. दो०२४	१०.३३५	३२.८६	३३.१४२	६१.६९०
५.२४	१७२	१९५	९. प्रवा०[ ]	१०.३३६	३२.८७	३३.१४३	६१.६९१
५.२५	१७३	१९६	९. अडि० ३	१०.३३८	३२.८८	३३.१४४	६१.६९२-७१२
५.२६	१७४	१९७	९. दो० २५	१०.३४१	३२.९१	३३.१४६	६१.७१४
५.२७	१७५	१९८	९. दो० २६	१०.३४६	३२.९०	—	६१.७१७
५.२८	१७६	१९९	९. दो० २७	१०.३४७	३२.९२	३३.१४७	६१.७२२
५.२९	१७७	२००	९. दो० २९	१०.३४८	३२.९३	३३.१४८	६१.७२३
५.३०	१७८	२०१	९. दो० ३०	१०.३४९	३२.९४	३३.१४९	६१.७२४
५.३१	१७९	२०२	९. दो० ३१	१०.३८२	३२.११७	३३.१६९	६१.७२५
५.३२	१८०	२०४	९. दो० ३२	१०.३९७	३२.१२७	३३.१७७	६१.७९०
५.३३	१८१	२०६	९. दो० ३६	१०.४०४	३२.१३०	३३.१८०	६१.८२४
							६१.८३२

[९. दो० ३७]*	१०.४०६	३२.१३१	३३.१८१	६१.८३४
[९. दो० ३८]*	१०.४०७	३२.१३२	३३.१८२	६१.८३५
९. [भाट० ३]	१०.४०८	३२.१३३	३३.१८३	६१.८४४
९. दो० ३९	१०.४०९	३२.१३४	३३.१८४	६१.८४५
९. नारा० ६	१०.४१२	३२.१३५	३३.१८५	६१.८४८-८५८
९. दो० ४०	१०.४१३	३२.१३६	३३.१८६	६१.८५९
९. साट० [४]	१०.४१५	३२.१३७	३३.१८७	६१.८६१
९. साट० [५]	१०.४१६	३२.१३८	३३.१८८	६१.८६२
९. दो० ४१	१०.५१९	३२ १३९	३३.१८९	६१.८६५
९. दो० ४२	१०.४३०	३२.१४०	३३.१९०	६१.८८७
९ दो० ४३	१०.४३४	३२ १४१	३३.१९१	६१.९००
९. कवि० ४	१०.४४२	३२.१४२	३३.१९२	६१.९१३
९. दो० [ ]	१० ४४८ १	३२.१४८	३३.१९३	६१.९१९/१
	१०.४४९/२			६१.९१६/२
९. दो० ४५	१०.४५६	३२.१५३	३३.१९९	६१.९२७
९. कवि० ५	१०.४६४ अ	३२.१५९	३३.२००	६१.९७५
९. दो० ४६	११.३३	३३.१०	३३.२०७	६१.१०४७
९. दो० ४७	११.३५	३३.११	३३.२०८	६१.१०५०
९. दो० ४८	११.३६	३३.१२	३३.२०९	६१.१०५१
९. दो० ५०	११.५६	३३.२५	३३.२२२	६१.१०७८
९. भुज० [ ]	११.५७	३३.२६	३३.२२३	६१.१०७९-१०८०
९. दो० ५३	११.८६	३३.२८	३३.२५	६१.११३६
९. रासा [ ]×	११.९०	३३.२९	३३.२६	६१.११४४
९. दो० ५४	११.९३	३३.३१	३३.२७	६१ ११४७
९. दो० ५५	११.९४	३३.३२	३३.२९	६१.११४८
९. दो० ५६	११.९०क	३३.३३	३३.२३०	६१.११५८
९. दो० ५७	११.९१क/१	३३.३९अ	३३.२३७	६१.११५९/१
९. भुड़ि० १२	११.९६क	३३.४३	३३.२४१	६१.११६८
९. रासा० २	११.९८क	३३.४५	३३.२४३	६१.११७१
९. रासा० ३	११.९४ख	३३.४७	३३.२४५	६१.११७४
९. नारा० ८	११.९७ख	३३.५०	३३.२४८	६१.११७७-११८५
९. दो० ५९	११.११३	३३.५६	३३.२५०	६१.१२०६
९. गाथा १	११.११५	३३.५८	३३.२५१	६१.१२०८
९. दो० ६०	११.१४४	३३.६१	३३ २५४	६१.१२४३
९. दो० ६१	११.१४५	३३.६२	३३.२५५	६१.१२४४
९. दो० ६३	११.१४७	३३.६४	३३.२५७	६१.१२४६
९. दो० ६४	११.१४९	३३.६५	३३.२५८	६१.१२४८

ं नहीं है किन्तु उसी कुल की उस प्रति में है जो भागचन्द के लिए लिखी गई थी।
हीं है, किन्तु अ० में बाद वाले दोहे के पूर्व 'रासा' शब्द है; फ० में यह छन्द है।

६.२२	२१९	२५५	९. दो० ६५	११.१५०	३३.६६	३३.२५९	६१.१२४९
६.२३	२२०-२२३	२५६-२५९	९. चौ० १ ३	११.१५३,	३३.७१	३३.२६१	६१.१२५३,
				१५४,१५६	७४.	२६२,२६४	१२५४, १२५६
६.२४	२२५	२६०	९. दो० ६६	११.१६०	३३.७६	३३.२६५	६१.१२६०
६.२५	२२६	२ १	९. मुडि० १३	११.१६२	३३.७८	३३.२६७	६१.१२६२
६.२६	२२७	२६२	९. अडि० १४	११.१६४	३३.८०	३३.२६९	६१.१२६४
६.२७	२२८	२६३	९. मुडि० ४	११.१६३	३३.७९	३३.२६८	६१.१२६३
६.२८	२२९	२६४	९. मुडि० १५	११.१६७	३३.८१	३३.२७०	६१.१२६७
६ २९	२३०	२६५	९. अनु० ४	११.१७२	३३.८७	३३.२७५	६१.१२७२
६.३०	२३१	२६६	९. दो० ७०	११.१७३	३३.८८	३३.२७६	६१.१२७३
६.३१	२३२	२६८	—	११.१७८	३३.९१	३३.२७८	६१.१२७८
६.३२	२३३	२६९	९. गाथा ५	११.१७९	३३.९२	३३.२७९	६१.१२७९
६.३३	२३४	२७३	९. कवि० १७	११.१९५	३३.१०२	३३.२८४	६१.१२९५
६.३४	२३५	२७४	९. रासा ४	११.२२०	३३.१०४	३३.२८६	६१.१३२२
७.१	२३६	२७५	९. दो० ८१	१२.१३	३३.१०६	३३.२९५	६१.१३४०
७.२	२३७	२८१	९. गाथा ७	१२.१८	३४.९	३३.२९९	६१.१३४५
७.३	२३८	२८२	९. दो० ७८	१२.१९	३४.१०	३३.३००	६१.१३४६
७.४	२३९	३१४/४५२	१५ भम० [ ]	—	४३.९५	—	६६.८७६-८८५
७.५	२४०	२८३	१२ कवि० १९	१२.२१८	३३.१०७/	३३.३८८	६१.१७०६
				—	३५.३		
७.६	२४१	२८४	१०. भुजं० १	१२.२०,२६	३४.११,	३३.३०१,	६१.१३४७ १३५६,
					१३	३३.३०३	६१.१३६२-१३६६
७.७	२४२	२८५	९. दो० ७९	१२.२७	३४.१५	३३.३०४	६१.१३६७
७.८	२४४	२८६	९. दो० ८०	१२.२८	३४.१६	३३.३०५	६१.१३६८
७.९	२४५	२८७	१०. दो० २	१२.२८अ	३४.१७	३३.३०६	६१.१३६९
७.१०	२४६	२८८	१०. भुजं० २	१२.३०	३४.१९	३३.३०८	६१.१३७१-७७
७.११	२४७	२८९	१०. दो० ३	१२.३१	३४.२०	३३.३०९	६१.१३७८
७.१२	२४८	२९०	१०. प्रवा० [ ]	१२.३२	३४.२१	३३.३१०	६१.१३७९-१३८५
७.१३	२४९	२९१	१०. दो० ४	१२.४१	३४.२३	३३.३१२	६१.१४०१
७.१४	२५०	२९२	१०. [भुज०]	१२.५३	३४.३२	३३.३२१	६१.१४१३
७.१५	२५१	२९३	१०. रसा० ४	१२.५४	३४.३३	३३.३२२	६१.१४१४-१४१९
७.१६	२५२	२९४	१०. अडि० १	१२.५५/१	३४.३४/१	३३.३२३/१	६१.१४२०
७.१७	२५३	२९५	१०. भुजं० ५	१२.५५/२,	३४.३४/२,	३३.३२३/२	६१.१४२१ १४२२,
				१२.१०६	३४.३६		६१.१५११-१५२१
७.१८	२५४	२९६	१०. गाथा १	१२.११२	३४.५०	३३.३३९	६१.१५३१
७.१९	२५५	२९७	१०. दो० १०	१२.११५	३४.५१	३३.३४०	६१.१५३४
७.२०	२५६	२९८	१०. कवि० ५	१२.११४	३४.५३	३३.३४२	६१.१५३३
७.२१	२५७	२९९	१०. कवि० ७	१२.१२०	३४.५५	३३.३४४	६१.१५४३
७.२२	२५८	३००	१०. रासा १	१२.१२५	३४.५९	३३.३४८	६१.१५४८

१०. राग्रा १	१२.१२६	३४.६०	३३.३४९	६१.१५४९
१०. अनु० १	१२.१२७	३४.६२	३३.३५०	६१.१५५०
१०. कवि० १	१२.२३०	३५.६	३३.३८९	६१.१७३३
१०. गाथा १	१२.२२०	३५.७	३३.३९०	६१.१७०८
११. कवि० २	१२.२२४	३५.८	३३.३९१	६१.१७१८
११. कवि० ३	१२.२२५	३५.९	३३.३९२	६१.१७१९
११. दो० ३	१२.२४१	३५.१४	३३.३९७	६१.१७७०
११. कवि० १२	१२.३१९	३५.२८	३३.४०९	६१.१९२६
११. भुजं० ६	१२.३२०	३५.२४	३३.४१४अ	६१.१९२७ १९
११ कवि० २२	१२.१३७	३४.६६	३३.३५४	६१ १५६१
११. कवि० २३	१२.१४०	३४.६७	३३.३५५	६१.१५६४
११. कवि० २४	१२.१४३	३४.७०	३३.३५५अ	६१.१५६७
११. कवि० २५	१२.१४८	३४.७४	३३.३५९	६१.१५७२
११. कवि० २६	१२.१५०	३४.७५	३३.३६०	६१.१५७४
११. कवि०२७	१२.१५१	३४.७६	३३.३६१	६१.१५७५
११. गाथा २	१२.१६४	३४.७७	३३.३६२	६१.१५८८
११. गाथा ३	१२.१८७	३४.९०	३३.३७१	६१.१६२८
११. त्रोट० ९	१२.१९५	३४.९७	३३.३७८	६१.१६४० —१६४९
१२. छंद १	१२.२१६,	३५.४,	३३.३८७,	६१.१६९५-१७४
	१२.४५३/१	३६.१२/१	३३.४६४	६१.२१४६
१२. कवि० १	१२.४५८	३६.१३	३३.४६५	६१.२१६१
१२. दो० ६	१२.४५९	३६.१५	३३.४६७	६१.२१६२
१२. दो० ७	१२.४६०	३६.१६	३३.४६८	६१.२१६३
१२. कवि० ३	१२.४६० अ	३६.१७	३३.४६९	६१.२१६४
१२. दो० ८	१२.४६५	३६.१८	३३.४७०	६१.२१७८
१२. कवि० ४	१२.४७४	३६.१९	३३.४७१	६१.२२०८
१२. दो० १०	१२.४७३	३६.२२	३३.४७४	६१.२२०७
१२. दो० ११	१२.४७८	३६.२३	३३.४७५	६१.२२१२
१२. कवि० ५	१२.४७९	३६.२४	३३.४७६	६१.२२१३
१२. दो० १२	—	३६.२७	३३.४७७	६१.२२१७
१२. कवि० ६	१२.४९८	३६.२८ अ	३३.४७९	६१.२२४७
१२.दो० [१३]	१२.५१३	३६.२९	३३.४८०	६१.२२८३
१२. दो० १४	१२.५१४	३६.३०	३३.४८१	६१.२२८४
१२. कवि० ७	१२.५१७	३६.३२	३३.४८२	६१.२२९७
१२. दो० १५	१२.५१९	३६.३३	३३.४८३	६१.२२९९
१२. कवि० ८	१२.५२५	३६.३४	३३.४८४	६१.२३१२
१२. दो० १६	१२.५२७	३६.३५	३३ ४८५	६१.२३१४
१२. कवि० ९	१२.५३३ अ	३६.३६	३३.४८६	६१.२३४५

८.२९	२९८	३५१	१२. दो० १७	१२.५३४	३६.३७	३३.४८७
८.३०	२९९	३५२	१२.कवि० १०	१२.५४२	३६.३९	३३.४८९
८.३१	३०१	३५३	१२. दो० १९	१२.५४३	३६.४०	३३.४९०
८.३२	३००	३५४	१२.कवि० ११	१२.५४६	३६.४१	३३.४९१
८.३३	३०२	३५५	१२. दो० २०	१५.५५०	३६.४२	३३.४९२
८.३४	३०३	३५६	१२.कवि० १२	१२.५५७	३६.४३	३३.४९३
८.३५	३०४	३६३	१२.कवि०१३	१२.५६५	३६.४५	३३.४९५
८.३६	२९६	३५७	१२. दो० २८	१२.४१६	३७.२०	३३.४५५
९.१	३०५	३६५	१३.अडि० १	१२ ६०५/२	३८.७	३३.५२५
९.२	३०६	३६६	१३.दो० ५	१२.६१८	३८.१०	३३.५२७
९.३	३०७	३६९	१३.दो० ६	१२.६११	३८.११	३३.५२८
९.४	३०९	३७१	१३.दो० ७	१२.६२५	३८.१३	३३.५३०
९.५	३१०	३७२	१३.[रासा १]	१२.६२७	३८.१४/१	३३.५३१ १
९.६	३११	३७३	१३.[रासा २]	१२.६२८	३८.१४/२	३३.५३१/
९.७	३१२	३७४	१३.[रासा ३]	१२.६२९	३८.१४/३	३३.५३१/३
९.८	३१३	३७५	१३.[रासा ४]	९.२४, १२.६३०	३८.१४/४	३३.५३१/४
९.९	१०७	१२३	१३. साट० २	९.२०	२९.८६ आ/ ४१.१०	३४.१७८
९.१०	१०८	१२४	१३. साट० ३	९.१	३९.२	३४.१
९.११	१०९	१२५	१३. साट० ४	९.५	३९.६	३४.५ अ
९.१२	११०	१२६	१३. साट० ५	९.१०	३९.१३	३४.१६८
९.१३	१११	१२७	१३. साट० ६	९.१३	४१.३	३४.१७१
९.१४	११२	१२८	१३. साट० ७	९.१६*	४१.६	३४.१७४
१०.१	३१४	३८६	१४. मुडि० १		४२.४१	३६.३५
१०.२	३१५	३८७	१४. दो० २		४२.४२	३६.३६
१०.३	३१६	३८८	१४. मुडि० २		४२.४३	३६.३७
१०.४	३१७	३८९	१४. दो० ३		४२.४४	३६.३८
१०.५	३१८	३९०	१४. अडि० १		४२.४५	३६.३९
१०.६	३१९	३९१	१४. मुडि० ३		४२.४६	३६.४०
१०.७	३२०	३९२	१४. अडि० २		४२.४७	३६.४३
१०.८	३२१	३९३	१४. दो० ४		४२.४८	३६.४४
१०.९	३२२	३९४	१४. दो० ५		४२.४९	३६.४५
१०.१०	३२३	३९५	१४. गाथा ३		४२.५०	३६.४६
१०.११	३२४	३९६	१४. गीता० १		४२.५१	—
१०.१२	३२५	३९७	१४. दो० ६		४२.५२	३६.४७
१०.१३	३२६	३९८	१४. दो० ७		४२.५३	३६.४८

* स० प्रति यहीं पर समाप्त हो जाती है।

१०.१४	३२७	३९९	१४.दो०८
१०.१५	३२८	४००	१४.राखा१
१०.१६	३२९	४०१	१४.दो०९
१०.१७	३३०	४०२	१४.राखा २
१०.१८	३३१	४०३	१४.दो०१०
१०.१९	३३२	४०५	१४.दो०११
१०.२०	३३३	४०६	१४.दो०१२
१०.२१	३३४	४०७	१४.दो०१४
१०.२२	३३५	४०८	१४.दो०१५
१०.२३	३३६	४०९	१४.कवि०२
१०.२४	३३७	४१०	१४.दो०१६
१०.२५	३३८	४११	१४.कवि०३
१०.२६	३३९	४१२	१४.दो०१७
१०.२७	३४०	४१४	१४.दो०१९
१०.२८	३४१	४१६	१४.कवि०४
१०.२९	३४२	४१७	१४.कवि०५
११.१	३४६	४३५	१५.दो०१७
११.२	३४७	४३६	१५.दो०१८
११.३	३४८	४३७	१५.दो०१९
११.४	३४९	४३८	१५.दो०२०
११.५	३५०	४३९	१५.दो०२१
११.६	३५१	४४१	१५.दो०२२
११.७	३५२	४४२	१५.कवि०१५
११.८	३५३	४४३	१५.कवि०१६
११.९	३५४	४४५	१५.दो०२५
११.१०	३५५	४४६, ४५०	१५.छंद०[ ]
११.११	३५८	४५२	१५.दो०२५
११.१२	३६२ :३६२	४५४	१६.भुजं०१
११.१३	३६३	४५५	१८.दो०६
११.१४	३६४	४६५	१८.दो०७
११.१५	३६५	४६६	१८.दो०८
११.१६	३६६	४६७	१८.दो०९
११.१७	३६७	४६८	१८.अनु०१
११.१८	३६८	४६९	१८.कवि०२४
१२.१	३६९	४७०	१८.कवि०२७

४२.५४	३६.४९	६६.२१९
४२.५९	३६.५५	६६.२२७
४२.६०	३६.५६	६६.२२८
४२.६१	३६.५७	६६.२३२
४२.६२	३६.५८	६६.२३३
४२.६४	३६.५९	६६.२३६
४२.६५	३६.६०	६६.२३७
४२.६९	३६.६४	६६.२४१
४२.७०	३६.६५	६६.२४२
४२.७१	३६.६६	६६.२४४
४२.७२	३६.६७	६६.२४५
४२.७६	३६.७०	६६.२४९
४२.७३	३६.६८	६६.२४७
४२.७८	३६.७२	६६.२५१
४२.७९	३६.७३	६६.२५२
४२.८०	३६.७५	६६.२५४
४३.४७	३६.२३८	६६.७६८
४३.४८	३६.२३९	६६.७६९
४३.४९	३६.२४०	६६.७७०
४३.५०	३६.२४१	*
४३.५१	३६.२४२	६६.७७१
४३.५२	३६.२४३	६६.७७४
४३.५४	३६.२४४	६६.७७५
४३.५५अ	३६.२४५	६६.२४८
४३.७७	—	६६.८२८
४३.७९	—	६६.८३५
४३.१०४	३६.२९०	६६.९३०
४३.१०६, ४३.१११	३६.२९४	६६.९३२-९३४, ६६.९३८-९४५
४५.७	३६.४१०	६६.१५२४
४५.९	३६.४१३	६६.१५२७
४५.१०	३६.४१४	६६.१५२८
४५.११	३६.४१५	६६.१५२९
४५.१२	३६.४१६	६६.१५३०
४५.४७	३६.४५१	६६.१६१०
४५.५१	३६.४५५X	६६.१६२६

* यह छन्द स में नहीं है किन्तु शा० में ६२.४३० है।

X द० प्रति खंड ३६ पर समाप्त हो जाती है। खंड ३७ के उपल-निर्देश टॉड १० के अनुसार है।

		४७३	१८. दे० १४	४६.९	३७.१५	६७.११
१२.२	३७०	४७४	१९. दो० २	४६.१७	३७.२२	६७.९३
१२.३	३७१	४७५	१९ दो० ३	४६.१६	३७.२३	६७.७६
१२.४	३७२	४७६	१९. दो० ४	४६.२१	३७.३४	६७.८९/९५
१२.५	३७३	४८४	१९. दो० १२	४६.२८	३७.५८	६७.१४१
१२.६	३७४	४८५	१९. दो० १३	४६.३१	३७.५९	६७.१४३
१२.७	३७५	४८६	१९. वथू० १	४६.४१	३७.६६	६७.१७३
१०.८	३७६	४८७	१९. वथू० २	४६.४२	३७.६७	६७.१७४
१२.९	३७७	४८८	१९. दो० १४	४६.४४	३७.७४	६७.१८२
१२.१०	३७८	४८९	१९. दो० १५	४६.४५	३७.७५	६७.१८७
१२.११	३७९	४९०	१३. मुर्ज० ४	४६.४७	३७.७६-७९	६७.१८९-१९६
१२.१२	३८०	४९१	१९. दो० १६	४६.४८	३७.८०	६७.१९८
१२.१३	३८१	४९२	१९. पद्ध० ५	४६.४९	३७.८१ ८८	६७.२०२-२१९
१२.१४	३८२	४९३	१९. दो० १७	४६.५१	३७.९०	६७.२२१
१२.१५	३८३	४९४	१९ पद्ध० [ ]	४६.५३	३७.९१	६७.२२४-३६
१२.१६	३८४	४९६	१९. दो० [१८]	४६.७२	३७.११४	६७.२३९
१२.१७	३८५	५००	१९. दो० १९	४६.७७	३७.१२७	६७.२४१
१२.१८	३८६	५०१	१९. दो० [ ]	४६.७८	३७.१२८	६७.२९५
१२.१९	३८७	५०२	१९. पद्ध० ९	४६.८०	३७.१२९	६७.२९९
१२.२०	३८८	५०३	१९. दो० २२	४६.८३	३७.१३९	६७.३०७
१२.२१	३८९	५०४	१९. दो० ३	४६.८१	३७.१४०	६७.३०८
१२.२२	३९१	५०७	१९. दो० २४	४६.९१	३७.१४२	६७.३१९
१२.२३	३९२	५१०	१९. पद्ध० १०	५६.९७	३७.१५७-१६६	६७.३३२-३४१
१२.२४	३९३	५११	१९. दो० २५	४६.१०५	३७.१६७	६७.३५७
१२.२५	३९४	५१२	१९. दो० २६	४६.१०६	३७.१६८	६७.३६४
१२.२६	३९५	५१३	१९. दो० २७	४६.१०७	३७.१८२	६७.३६५
१२.२७	३९८	५१४	१९. दो० २९	४६.१०९		६७.३६६
१२.२८	३९८	५१५	१९. दो० ३०	४६.११०/	३७.१८४	६७.३६७/
				४६.१११		६७.३६८
१२.२९	३९९	५१६	१९. त्रोट० ११	४६.११२	३७.१८५	६७.३७०
१२.३०	४००	५१७	१९. दो० ३१	४६.११४	३७.१८६	६७.३७१
१२.३१	४०१	५१८	१९. दो० ३२	४६.११५	३७.१८७	६७.३७२
१२.३२	४०२	५१९	१९. पद्ध० १२	४६.११६		६७.३७७
१२.३३	४०३,	५२१,५२३	१९. पद्ध० १४/४	४६.१२७,	३७.१९२-१९४	६७.३९१-३९५,
	४०५	५२६,५२९		४६.१३१	३७.२०६	६७.४०२
१२.३४	४०७	५३२	१९. दो० ३४	४६.१३५	३७.२१०	६७.४०८
१२.३५	४०६	५३३	१९. कवि० १	४६.१३७अ	३७.२५२	६७.४०३
१२.३६	४०८	५२५	१९. दो० ३५	४६.१२८	३७.२०१	६७.३९६

१२.३७	४१०	५२७	१९. दो० २६	४६.१३२	३७.२०७	६७.४०५
१२.३८	४०९	५३४	१९. कवि० ३	४६.१३८	३७.२१९	६७.४११
१२.३९	४११	५२८	१९. [चउ०]१	४६.१३३	३७.२०८	६७.४०६
१२.४०	४१२	५३७	१९. कवि० ४	४६.१४५	३७.२४४	६७.४३५
१२.४१	४१३	५३८	१९. कवि० ५	४६.१४६	३७.२४५	६७.४३६
१२.४२	४१५	५४२	१९. कवि० ६	४६.१५०	३७.२४८	६७.४५५
१२.४३	४१४	५३९	१९. दो० ३८	४६.१४७	३७.२२५	६७.५३८
१२.४४	४१६	५४३	१९. दो० ३९	४६.१६५	—	६७.५१४
१२.४५	४१७	५४४	१९. कवि० ७	४६.१६७	३७.२५०	६७.५१५
१२.४६	४१८	५४८	१९. कवि० ९	४६.१७१	३७.२५३	६७.५२४
१२.४७	४१९	५३५	१९. दो० ४०	४६.१६४	३७.२२२	६७.४८८
१२.४८	४२०	५५१	१९. कवि० १०	४६.१७४	३७.२७९	६७.५४९
१२.४९	४२२	५५२	१९. कवि० १२	४६.१७६	३७.२८३	६७.५५६

—:*:—

६. पृथ्वीराज रासो का कथा-सार

नीचे रचना के प्रस्तुत संस्करण की कथा का सार दिया जा रहा है। यह सार जान-बूझ कर कुछ विस्तारों के साथ दिया जा रहा है, जो कि सामान्यतः छोड़े जा सकते थे। ऐसा इसलिए किया जा रहा है कि रचना की कथा के समस्त तत्व पाठक की दृष्टि में एक-साथ आ सकें और इस सार को देखकर ही वह न केवल प्रबन्ध की दृष्टि से रचना के सम्बन्ध में धारणा बना सके, वरन् उसके ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक और इतर तत्वों के सम्बन्ध में भी पूर्ण रूप से अवगत हो सके। इसलिए आशा है कि यह विस्तार रोचक और उपयोगी सिद्ध होगा। विभिन्न सर्गों का सार देते हुए नीचे कोष्टकों में दी हुई संख्याएँ उनके छन्दों की हैं।

१. *मंगलाचरण और कथा की भूमिका*

गणेश (१) और सरस्वती (२) की वन्दना करने के अनन्तर शिव को नमस्कार करके (३) अपने पूर्व के कवियों को 'पृथ्वीराज रासो' के कवि ने स्मरण किया है, और ये हैं शिव, यम, व्यास, शुकदेव, श्रीहर्ष, कालिदास तथा दण्डी (४); छन्द-प्रबन्ध के प्रसंग में उसने पिंगल[1], [के छन्द-सूत्र] भरत [के नाट्य सूत्र] तथा महाभारत को भी [पीछे ?] छोड़ने का संकल्प किया है (५) और इसके अनन्तर उसने कथारंभ किया है।

पृथ्वीराज का पूर्व-परिचय देते हुए उसने कहा है कि उसकी कपिल (धूल-धूसरित) केलि अजमेर में हुई थी, रक्त (राग पूर्ण) जीवन के वृत्त साँभर में हुए थे, वह सोमेश्वर का पुत्र और बहिला वन का निवासी था और दिल्लीपुर में भासित होने के लिए ही मानो वह विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (६)।

२. *जयचन्द का राजसूय और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान*

इसी समय जयचन्द कन्नौज का शासक था जो धार्मिक था तथा हय-गजादि से सम्पन्न था; उसने कीर्ति-वर्धन के लिए राजसूय यज्ञ करने की ठानी; उसने पृथ्वीतल के अनेक राजाओं को जीत लिया (१)। उसने पृथ्वीराज के पास दूत भेजे कि वह भी उसके राजसूय यज्ञ में सहयोग करे; पृथ्वीराज की सभा में उसके इन दूतों ने जयचन्द का सन्देश सुनाया; पृथ्वीराज चुप रहा किन्तु उसके एक गुरुजन गोविन्दराज ने जयचन्द के इस प्रस्ताव का विरोध किया; यह गोविन्दराज यमुना तटवर्ती [कुरु] जांगल का निवासी था, उसने कहा कि वह तो जरासंध के वंश के उस पृथ्वीराज को ही

[1] यह सम्भव नहीं है कि कवि का 'पिंगल' से तात्पर्य 'प्राकृत पैंगल' से हो, भरत के भी पूर्व पिंगल का नाम लेने से उसका तात्पर्य उन छन्द-सूत्रों के रचयिता से ही ज्ञात होता है जो पिंगल के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं।

राजा मानता था जिसने तीन बार शहाबुद्दीन को बन्दी किया था और जिसने भीमसेन (भीम चौलुक्य) [की शक्ति] को नष्ट किया था; उसने कहा कि जब तक उस (पृथ्वीराज) के कन्धे पर सिर था, राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता था; उसके इन वचनों को सुनकर कन्नौज के दूत लौट गए; कन्नौज-राज ने इस समय पृथ्वीराज से झगड़ा न करके यज्ञ सम्पन्न करने का निश्चय किया; उसने द्वारपाल के रूप में पृथ्वीराज की एक सोने की प्रतिमा स्थापित की और उसने यज्ञ और उसके साथ ही अपनी कन्या संयोगिता के स्वयंवर की तिथि निश्चित करदी (३)। सूर्य के पुष्य नक्षत्र में तथा चन्द्रमा के तीसरे स्थान पर होने का देव पंचमी का दिन निर्धारित हुआ; [यह सुनकर] पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढ़ाई करने का निश्चय किया (६)।

पृथ्वीराज ने खोखन्द (कोहकन्द) और बलख के राजाओं को परास्त किया था, गजनी में विक्षोभ उपस्थित कर दिया था (८) और उसने मरुधरा को दण्डित किया था (९), [इस पृष्ठभूमि में] पृथ्वीराज के वैमनस्य की बात सुनकर जयचन्द के उक्त आयोजन का रंग फीका पड़ गया था, और जयचन्द की पुत्री संयोगिता ने पृथ्वीराज के वरण के लिए व्रत लिया था, यह समाचार पृथ्वीराज को मिला (१०)। उसने सुना कि संयोगिता ने पिता के वचन और उक्त आयोजन की उपेक्षा कर यह निश्चय किया है कि वह या तो पृथ्वीराज का पाणिग्रहण करेगी, अन्यथा गंगा में कूद कर प्राण दे देगी (११)। यह सुनकर पृथ्वीराज को उसके अनुराग का विश्वास हो गया (१२)। उधर जयचन्द ने संयोगिता को उसके इस संकल्प से विचलित करने के लिए कुछ दासियाँ उसके साथ रख दीं (१३)। उन्होंने उससे प्रश्न किया कि वह अपने पति के रूप में किसे चाहती थी (१४)। संयोगिता ने बताया कि वह पृथ्वीराज को चाहती थी, जिसके साठ (?) सामन्त थे (१५)। उन दासियों ने कहा कि वह तो लघु (हीन) कुल का था (१६)। इस पर संयोगिता ने कहा कि पृथ्वीराज की ही कृपाण ने अजमेर में धूम मचा रक्खी थी, मण्डोवर को तहस-नहस कर डाला था, मरुस्थल के मोरी राजा को दण्डित किया था, रणस्तम्भपुर (रंथभौर) को आग की लपटों के समान दग्ध किया था, कालिंजर को जलमग्न कर दिया था, और गोरी-धरा पर वह घन बनकर घहराई थी; क्या फिर भी उसे लघु (हीन) कहा जा सकता था (१७)? इस पर उन दासियों ने कहा कि उसे स्मरण रखना चाहिए कि वह ऐसे महाराज (जयचन्द) की पुत्री है जिसने महाराष्ट्र, थट्टा, नीमच, और वैरागर को भ्रष्ट किया, कर्णाट, करवीर, गुण्ड और गुर्जर की कांति को राहु के समान ग्रस लिया और मालव, मेवाड़ और मण्डोवर को निर्माल्य के समान हस्तगत किया; उसकी सेवा में रहने वाले देव-तुल्य राजाओं में से वह किसी को क्यों नहीं वरण करती थी (१८)। संयोगिता ने उत्तर दिया कि वह किन्हीं भी बातों में नहीं आ सकती थी, और उसने संकल्प कर लिया था कि चाहे सौ जन्म ग्रहण करने पड़ें, वह पृथ्वीराज को ही वरण करने वाली थी (१९)। जब अनेक प्रकार से संयोगिता को समझाने पर भी वे दूतियाँ कृतकार्य नहीं हुईं तो जयचन्द ने रुष्ट होकर उसको गंगातटवर्ती एक आवास में भिजवा दिया (२७)।

३. कैंवास-वध

[संयोगिता के इस विरह-] ताप में पृथ्वीराज का मन स्थिर नहीं रहता था, इसलिए वह राजधानी में प्रधान अमात्य कैंवास को छोड़कर आखेट में फिरने लगा था (१)। इधर कैंवास पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में उसकी कर्नाटी दासी पर अनुरक्त होकर एक रात्रि उसके कक्ष में पहुँच गया (३)। पटरानी की तांबूल वाहिका सखी ने यह देख लिया और उसने पटरानी को इसकी सूचना कर दी; यह सुनते ही पटरानी ने भूर्जपत्र पर पत्र लिखकर एक दासी को पृथ्वीराज के पास भेजा और पृथ्वीराज को दो घड़ियों के भीतर आने के लिए लिखा (५)। जिसने जयचन्द की विशाल सेना से भय नहीं माना था, शहाबुद्दीन से साहस और इच्छापूर्वक युद्ध किए थे, और जो जिस समय चौलुक्य भीम को मन्त्री कैंवास ने बन्दी किया था, स्वतः दूर विश्वासर में रहा था, खेद कि ऐसे पृथ्वीराज

को भी वह कैंवास नहीं जान पाया था (६)। पत्र पाते ही पृथ्वीराज दो घड़ियों में आ गया (८)। कैंवास और कर्नाटी को लक्ष्य करके उसने रात्रि के अन्धकार में ही एक बाण छोड़ा; किन्तु वह बाण क्रोध के कारण उसकी मुट्ठी के हिल जाने से चूक गया; तदनन्तर [पटरानी] परमारिनी ने उसे दो बाण और दिए; उन बाणों के लगते ही कैंवास धराशायी हो गया (११)। दासी के साथ कैंवास को रातो-रात पृथ्वीराज ने गड्ढा खनवा कर गड़वा दिया (१३), और वह आखेट के लिए वन फिर चला गया (१४)। यह घटना और किसी को ज्ञात नहीं होने पाई, केवल चन्द को इसे सरस्वती ने स्वप्न में बताया (१४)। पृथ्वीराज सवेरा होने पर राजधानी को लौट आया (१८)। मध्य के प्रहर में उसने पण्डित [जयानक] को बुलाकर उससे शहाबुद्दीन पर प्राप्त अपनी विजय-गाथा के कहने [लिखने] के लिए कहा, और तदनन्तर उसने सभा बुलाई, जिसमें चन्द ने आकर उसे आशीर्वाद दिया (१९)। उस सभा में पृथ्वीराज ने पहले शूरों [सामन्तों] से कैंवास के बारे में पूछा, किन्तु कोई बता नहीं सका कि वह कहाँ था (२०)। तदनन्तर उसने चन्द से यही प्रश्न किया (२१)। चन्द ने पहले उत्तर न देना ही ठीक समझा, किन्तु पृथ्वीराज के हठ करने (२५) पर उसने उत्तर दिया (२६)। उसने उस रात्रि की सारी घटना सुना दी (२७)। सभा विसर्जित हुई (२८)। कैंवास की स्त्री को जब यह ज्ञात हुआ, उसने चन्द से मृत पति का शव दिलाने के लिए कहा; चन्द के बहुत कहने पर पृथ्वीराज ने कैंवास का शव दिलाना इस शर्त पर स्वीकार किया कि चन्द उसे जयचन्द का दर्शन करावेगा (३७)। पृथ्वीराज अनुचर के रूप में चन्द के साथ जाने को प्रस्तुत हुआ (३९); दोनों कसकर गले मिले और रोए और पृथ्वीराज ने कहा कि उस अपमानपूर्ण जीवन से मरण अच्छा था (४०)। कवि ने उसके इस विचार का समर्थन किया (४२) और कैंवास का शव उसकी विधवा स्त्री को दिया गया (४३)।

४. पृथ्वीराज का कन्नौज-गमन

पृथ्वीराज ने चंद के साथ कन्नौज के लिए प्रयाण किया, साथ में अनेक शूर सामन्त भी थे, कुछ सौ राजपूत थे (१)। तीन दिन, तीन रात और एक पल कम तीन प्रहर में वे इक्कीस योजन पहुँच गए (५)। रात्रि के अनंतर प्रभात होने पर वे कन्नौज पहुँच गए (८)। उन्होंने गंगा का दर्शन किया और उसकी स्तुति की (११)। घाटों पर उन्हें जल भरती हुई सुन्दरियाँ दिखाई पड़ीं (१३)। उन्होंने जाकर संदेह देवी के दर्शन किए; पृथ्वीराज को देख कर उसने आशीर्वाद दिया कि विजय उसके पक्ष में हो (२२)। वे लोग तदनंतर नगर-दर्शन करते हुए आगे बढ़े (२३-२५)।

५. पृथ्वीराज का कन्नौज में प्राकट्य

दरबार को पूछता-पूछता चंद कन्नौज के कोटपाल के पास पहुँचा (१)। उसने जयचंद को चंद के आने की सूचना दी (३)। जयचन्द ने अपने गुणीजन को चन्द की परीक्षा ले [कर उसे ला] ने को भेजा (४)। चन्द से मिल कर उन्होंने उसके बिना देखे ही जयचन्द का वर्णन करने के लिए कहा (९)। जयचन्द (१०) तथा उसकी सभा (१२) का वर्णन करते हुए चन्द ने उसकी विजय-गाथा कही: उसने कहा कि जयचन्द ने सिंधु [नदी] का अवगाहन कर तिमिर (म्लेच्छ-दल) को भगाया, उसने हिमालय में स्थित राज्यों को ढहाया और एक दिन में आठ सुलतानों को वश में किया, तिरहुत में जाकर उसने सेना स्थापित की, उसने डाहल के कर्ण को दो बार बंदी किया, [गूर्जर के] सोलंकी (चौलुक्य) सिद्ध (जैन) राजा को कई बार खदेड़ा; उसने तिलंग और गोवल्लकुण्ड को तोड़ा, गुण्ड के जीरा शासक को बंदी करके छोड़ा, वैरागर के सब हीरे लिए, गजनी के शाह शहाबुद्दीन के सेवक निसुरत्त खाँ को बंदी किया, भूल कर लंका जा पहुँचा और विभीषण से कलह कर बैठा, और खुरासान के अमीर को बंदी किया; ऐसा विजयपाल का पुत्र जयचन्द

था (१३)। इसके अनन्तर वे गुणीजन चन्द को जयचन्द की सभा में लिवा ले गए (१४)। जयचन्द ने कवि का आदर करने के अनन्तर उससे पृथ्वीराज के शौर्य तथा रण-कौशल के बारे में पूछ कर (१५-१७) उसकी उनहार पूछी (१८)। चन्द ने बताया कि पृथ्वीराज उस समय ३६ वर्ष तथा ६ मास का था, दुर्जनों के लिए राहु के समान था, और चारों दिशाओं के हिन्दू उसकी मुट्ठी में थे (१९)। इस समय जयचन्द ने चन्द के अनुचर (अनुचर-वेशी पृथ्वीराज) को स्थिर दृष्टि से देखा तो नेत्रों-नेत्रों में बल पड़ गया (२०)। जयचन्द ने चन्द को पान अर्पित करने के लिए राज-भवन की कुमारी दासियों को बुलवाया (२१) और वे सुंदरियाँ एक साथ भट्ट (चन्द) को पान अर्पित करने के लिए चल पड़ीं (२२)। इनमें एक पहले पृथ्वीराज की दासी रह चुकी थी, और वहाँ से लुप्त होकर जयचन्द की सेवा में आ गई थी; वह बाल खोले रहा करती थी; किन्तु [अनुचर-वेशी] पृथ्वीराज को देखते ही उसने सिर ढँक लिया (२५)। दासी का यह कृत्य देखकर जयचन्द को शंका हुई कि वह पुरुष जो चन्द के साथ उसके अनुचर के रूप में था, कदाचित् पृथ्वीराज था (२६), किन्तु किसी ने कहा कि चन्द पृथ्वीराज का अभिन्न सखा था इसलिए दासी ने चन्द को देखकर इस प्रकार लज्जा की (२७)। तदनन्तर एक सुवासित आवास में चन्द को ठहराया गया (२८)। उस आवास में पृथ्वीराज की सभा लगी (३१) और तदनन्तर उसने शयन किया (३२)। इसी समय जयचन्द का अवसर (संगीत-समारोह) नियोजित हुआ (३३)। सबेरा होने पर जयचन्द चन्द के लिए उपहारादि लेकर उसके समक्ष उपस्थित हुआ (४४), किन्तु जब वहाँ पहुँच कर उसने सिंहासन और उस पर अनुचर वेशी पृथ्वीराज को बैठा देखा, वह ठमक गया; चन्द ने उसका स्वागत करते हुए उसे बताया कि वह सिंहासन पृथ्वीराज से उसको मिला था और इसके अनन्तर उसने अपने अनुचर (पृथ्वीराज) से जयचन्द को पान अर्पित करने के लिए कहा (४५)। अनुचर ने उसको पान देने के लिए हाथ आगे बढ़ाया और वक्र दृष्टि से उसे देखा (४६)। जयचन्द ने पहचान लिया कि यह पृथ्वीराज है और उसने आदेश किया कि संगठित रूप में पृथ्वीराज पर आघात (आक्रमण) किया जावे, ताकि वह भाग न सके (४८)।

६ संयोगिता-परिणय

इधर पृथ्वीराज अपने साथी सामंतों से युद्ध-क्षेत्र में होने (जाने) के लिए कह कर नगर की प्रदक्षिणा के लिए निकल पड़ा (१)। वह गङ्गा-तट पर पहुँच कर मछलियों की क्रीड़ा में लीन हो रहा और उन्हें मोती चुगाने लगा (७)। उधर सैनिक वाद्यों को सुनकर संयोगिता जब अपने आवास [की छत] के ऊपर चढ़ी, वह गंगा-तट पर इस नवागंतुक को देखकर विस्मय में पड़ गई कि यह कौन था (८-९)। तदनंतर उसने एक अनुचरी को थाल भर मोतियाँ देकर उस नवागंतुक के पास भेजा, और कहा कि यदि वह इन मोतियों के सम्बन्ध में कुछ न पूछे, तो वह दासी समझ ले कि वह नवागंतुक पृथ्वीराज था और तब वह (संयोगिता) उसे इस शरीर से ही वरण कर ले (१३)। दासी ने वैसा ही किया, और जब थाल के मोती समाप्त हो गए, उसे वह अपनी कण्ठ-माला तोड़ कर उसकी पोतें अर्पित करने लगी; पृथ्वीराज ने जब मोतियों के स्थान पर हाथ में पोतें देखीं, उसने दृष्टि फेरी और उस सुन्दरी दासी को देखा; प्रश्न करने पर उस दासी ने बताया कि वह जयचन्द के घर की दासी थी, और उसकी पुत्री (संयोगिता) के द्वारा भेजी हुई थी जो कि जीवन का मोह छोड़ कर उस पर अनुरक्त थी; यह सुनकर पृथ्वीराज ने घोड़ा मोड़ दिया और संयोगिता से जा मिला; दोनों का पाणिग्रहण हुआ, और तदनतंर संयोगिता को वहीं छोड़कर युद्ध के लिए पृथ्वीराज लौट पड़ा। रात्रि हो गई थी, उसके सामंत उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे (१९)। कन्ह नामक सामंत ने जब उसके हाथ में पाणिग्रहण का कंकण बँधा हुआ देखा, तो वह समझ गया कि पृथ्वीराज संयोगिता का परिणय करके आया है (२१)। उसके सामंतों ने उसकी धीरता की

प्रशंसा की (२२), किन्तु उन्होंने उससे कहा कि परिणय करके वह सुन्दरी को छोड़ कर आ सकता था, ऐसा वे नहीं समझते थे (२३)। तदनंतर वे सब उसके साथ संयोगिता के आवास पर पहुँचे (२४)। संयोगिता पृथ्वीराज के विरह में व्यथित हो रही थी (२५-२७), किन्तु जब उसने पृथ्वीराज को लौटते देखा तो [युद्ध छोड़ कर अपने पास आते हुए देख कर] वह [वीर क्षत्राणी] उस पर प्रसन्न नहीं हुई (२८) और सिर पीट कर सखियों से कहने लगी कि जिस प्रियजन की ओर लोगों की उँगलियाँ उठें, उस प्रियजन से क्या प्रयोजन (३०)? यह सुनकर सामंतों ने उसे समझाने का यत्न किया (३१)। किन्तु उस विनष्टा के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहे (३२)। यह देख कर नरनाह कन्ह ने कहा कि यद्यपि कोटि कादर भृत्य अपने स्वामी जयचन्द के साथ चढ़ाई कर चुके हैं, वह अकेला अपनी भुजाओं के बल से कन्नौज को दिल्ली कर सकता था, और पृथ्वीराज को दिल्ली का सिंहासन दिला सकता था (३३)। [युद्ध के इस उन्माद को देखकर] संयोगिता हर्ष से पूरित हो गई; इसी समय पृथ्वीराज ने उसकी बाँह पकड़ कर उसे अपने साथ घोड़े की पीठ पर बिठा लिया (३४)।

७. पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध (पूर्वार्द्ध)

संयोगिता का परिणय करके पृथ्वीराज ने दिल्ली की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा दी; इसी समय चन्द ने जयचन्द को ललकार कर बताया कि उसका शत्रु पृथ्वीराज यज्ञ-ध्वंस करने आया था, और उसकी पुत्री का परिणय करके उसके आभूषणों के रूप में जयचन्द से युद्ध माँग रहा था (१-२)। यह सुन कर जयचन्द के धौंसों पर चोट पड़ी (३)। पृथ्वीराज के सौ राजपूतों के ऊपर जयचन्द के सौ हजार सैनिक टूट पड़े; उसकी इस सेना की अगणित पंक्तियों में तो दस लाख सैनिक थे (५)। जयचंद की इस विशाल वाहिनी के विरुद्ध पृथ्वीराज के सौ योद्धाओं का चल पड़ना वैसा ही था जैसे रावण की विशाल सेना के विरुद्ध राम की वानरी सेना का प्रयाण करना (७)। किन्तु राम के दल में भी वानरों की एक विशाल संख्या थी, यहां तो अस्सी लाख सेना से केवल सौ योद्धा भिड़ रहे थे (८)।

जयचन्द ने मीर बंदन को पृथ्वीराज को पकड़ने का आदेश किया (१३)। पृथ्वीराज की ओर से कन्ह ने मोर्चा लिया और उसके प्रहार से मीर कट कर गिरने लगे (१७)। दो हजार घोड़े-हाथियों और सात हजार मीरों को मार कर चहुवान (कन्ह) ने रण-स्थल को ढक दिया (१९)। प्रथम दिन के इस युद्ध में गोविन्दराज गहलोत, नागौर निवासी नरसिंह दाहिमा, चन्द्र पुंडीर, सारंग सोलंकी तथा पाल्हन देव कूरंभ अपने दो बांधवों के साथ गिरे : इस प्रकार सौ में से सात योद्धा घट गए (२०)। भरणी के भोग में अष्टमी, शुक्रवार को यह युद्ध हुआ (२१)।

शनिवार के युद्ध में पृथ्वीराज के सामन्तों ने धावा किया (२५) और दोपहर तक में उनमें से पाँच खेत रहे (२५)। ये थे : गुर्जर धरा का माल चंदेल, थट्टा का भूपाल मान भट्टी, सामला शूर अच्छ पमार तथा धार का निरवान वीर (२७)। दोपहर से पृथ्वीराज-पक्ष में जंगलीराय ने युद्ध किया, किन्तु वह भी खेत रहा; इस प्रकार अब तक पृथ्वीराज के तेरह सामंत खेत रहे थे और पृथ्वीराज को भी पाँच बाण लग चुके थे (२८)। संध्या तक पृथ्वीराज के सोलह और सामंत खेत रहे (३०)। इनके नाम इस प्रकार थे : मंडलीराय मालन हंस, जावला, जाल्ह, बाघ बागरी, बलीराय यादव, सारंग, गाजी, पावरी राय, परिहार राणा, सांखुला, सिंह [राय], सिंहली राय, सातल मोरी, भोज, मल्ल तथा भोआल राय (३१)।

८. पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध (उत्तरार्द्ध)

पृथ्वीराज के सामंतों ने अब उससे अनुरोध किया कि वह दिल्ली की ओर बढ़े और उसके मार्ग की रक्षा उनमें से एक-एक भट करे; इस प्रकार वे उसे युद्ध से बचाते हुए दिल्ली पहुँचा देते, अन्यथा अस्सी लाख शत्रु-सेना को कौन झेल सकता था (१)? पृथ्वीराज ने सामंतों के इस प्रस्ताव का

विरोध करते हुए कहा कि मरण से उसे भयभीत नहीं किया जा सकता था, क्योंकि बिना काल के किसी का मरण नहीं होता है; वे भीम [चौलुक्य] को नष्ट करने के गर्व से मदमत्त होकर ऐसा कह रहे थे, किन्तु उसने भी तो सरवर में शहाबुद्दीन गोरी को वश में किया था; जिसकी शरण में हिन्दू और तुर्क दोनों हो चुके थे, उसे वे शरणागत करना चाहते थे (२) ! किन्तु सामंतों ने कहा कि राजा और रावत अन्योन्याश्रित हैं : वह उनकी रक्षा करता है, तो वे भी उसकी रक्षा करते हैं (३)। उन्होंने कहा, "तुमने शहाबुद्दीन गोरी को बन्दी कर हिन्दुओं की रक्षा की, विजयाकांक्षी [भीम] चौलुक्य का दमन कर जालोर की रक्षा की, भीम भट्टी को हार देकर पंगुर (?) की रक्षा की, यादव-राज से रणथम्भ (रंथभौर) की रक्षा की, यह युद्ध जयचन्द की मरण-कीर्त्ति और तुम्हारी जीवन-कीर्ति का है, [हमारी कामना है कि] प्रभु संयोगिता का परिणय करके दिल्ली पहुँचें और घर-घर मंगल हो (४)।" पंचानवे कोस दूर दिल्ली तक स्वामी को पहुँचाने के लिए क्रमशः एक-एक वीर जयचन्द की सेना से मोर्चा लेकर कट मरे—यह कहते हुए चन्द ने भी इस योजना का समर्थन किया (६)। फलतः पृथ्वीराज ने इसे स्वीकार किया (७) और नवमी को उसने दिल्ली की दिशा में अपने घोड़े की बाग मोड़ी (१०)।

पृथ्वीराज-पक्ष का पहला योद्धा जो [इस योजना में] आगे आया हरसिंह चहुआन था; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज चार-कोस आगे निकल गया (११)। इसके अनन्तर कनक बड़गूजर आगे आया; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज छः कोस और आगे निकल गया (१४)। इसके अनन्तर निडर राठौर आगे आया, जो वर सिंह का पुत्र था; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज आठ कोस और आगे निकल गया (१६)। तदनन्तर कन्ह आगे आया (१८), और वह मारा गया (२२)। तदनन्तर अल्हन आगे बढ़ा (२३), और वह मारा गया (२४)। तदनन्तर अचलेस आगे आया (२५), जो बाहर [राय] का पुत्र था (२६), और वह मारा गया। तदनन्तर पट्टनपति और पट्ट प्रभु को छलने वाला विंझ आगे आया (२७), और यह भगुल पति विंझ चालुक्य भी मारा गया (२८-२९)। तदनन्तर आबूपति सलष पमार आगे बढ़ा (३०), और वह भी मारा गया; तदनन्तर लषन बघेल आगे बढ़ा (३१), और वह भी मारा गया (३२)। इस समय तक दिल्ली दस कोस रह गई थी जब पाहार तोमर आगे आया (३३) [और वह भी मारा गया]। इस प्रकार हरसिंह ने ४ कोस, कनक बड़गूजर ने ६ कोस, निडर ने ८ कोस, कन्ह ने १० कोस, अल्हन ने १२ कोस, अचलेस ने १४ कोस, विंझ ने १६ कोस, सलख ने ५ (?) कोस, लषन ने १० (?) कोस, तथा पाहार ने १० कोस पृथ्वीराज को आगे बढ़ाया; और इतने शूरों के जूझते-जूझते पृथ्वीराज दिल्ली पहुँच गया (३५)।

९. पृथ्वीराज-संयोगिता का केलि-विलास

पृथ्वीराज दिल्ली पहुँचा, तो जयचन्द कन्नौज लौट गया (१)। इसके अनन्तर पृथ्वीराज विलास में पड़ गया और अपनी शक्ति को उसने नष्ट कर दिया : निरन्तर उसके मन में [एक मात्र] संयोगिता को सुख देने की कामना रहती थी और उसकी प्रौढ़ रति में पड़ कर उसे दिन-रात की सुधि नहीं रहती थी; परिणाम-स्वरूप उसके गुरु, बांधवों, भृत्यों और प्रजा में असन्तोष उत्पन्न हो गया था (८)। ऋतुएँ आती थीं और चली जाती थीं किंतु संयोगिता ने पृथ्वीराज को इस प्रकार अपने वश में कर लिया था कि उसको छोड़ कर कहीं जाना उसके लिए असम्भव हो गया था—[यहाँ छः छन्दों में कवि ने सुन्दर ढङ्ग से षड् ऋतु-वर्णन करते हुए नायिका के प्रेमानुरोधों का उल्लेख किया है (९-१४)]।

१०. पृथ्वीराज का उद्बोधन

सारी प्रजा राजगुरु से पूछती कि राजा छः महीने से नहीं दिखाई पड़ा था, इसका क्या कारण था; अतः गुरु इस प्रश्न को लेकर चन्द के पास आए (१) और उससे उन्होंने यही प्रश्न

किया (३)। चन्द ने बताया कि जिस कामिनी के लिए पृथ्वीराज ने कलह किया था, अब उसी कामिनी का वह भोग बह रहा था (४)। गुरु को इस पर विश्वास नहीं हो रहा था; उन्होंने कहा "जिसने [सदैव] धन, स्त्री और जीवन को तृण के समान गिना था, उसने काम की वश्यता किस प्रकार स्वीकार की ?" (५)। चन्द ने संयोगिता के नख-शिख का वर्णन कर उसकी इस शंका का समाधान किया (११)। गुरु ने समझ लिया कि जैसी मनुष्य की भावी होती है, वैसी ही विधाता उसे मति भी अर्पित करता है (१३)। इस वार्तालाप के अनन्तर गुरु और चन्द ने पृथ्वीराज के उद्बोधन का संकल्प किया—उन्होंने कहा या तो वह बांधवों से मनसिन् (उनका ध्यान रखने वाला) होगा, और या तो अब वह उस संयोगिता को ही देखेगा (१४)।

गुरु और चन्द राजद्वार पर पहुँचे, जहाँ संयोगिता का आदेश चलता था (१५)। दासियों के द्वारा उन्होंने राजा को एक पत्रिका भेजी और उन्हें मौखिक रूप से यह कहने के लिए कहा, "गोरी तेरी धरा पर अनुरक्त है और तू गोरी (संयोगिता) पर अनुरक्त हो रहा है (२०) !" उस पत्र की पहली पंक्ति पढ़ते ही राजा लज्जित होकर भूमि पर आ पड़ा (२२)। पत्र में लिखा था, "शहाबुद्दीन की आज्ञा से उसकी अपूर्व सेना [पुनः] एकत्रित हुई है और वह उससे आदर प्राप्त कर दिल्ली की दिशा में बढ़ रही है; उसमें दस हजार हाथी तथा दस लाख घोड़े हैं, इसी प्रकार उसके अनेक सुभट तथा योद्धा अमीर भी हैं जो गम्भीर और अविचलित रहने वाले हैं; हे चहुवान, सुन; प्राण तो अपने अधीन है, अतः उद्योग करके प्राणों की रक्षा कर और सामन्तों से वह मन्त्र कर कि तेरे कारण दिल्ली की धरा डूब न जावे (२३)।" इस पत्र को सुनते ही [वह विलास-निद्रा से जग गया और] उसने तरकस सँभाला (२४)।

यह देख कर संयोगिता ने जीवन में काम-सुख का महत्व प्रतिपादित करते हुए उसे उसके संकल्प से विरत करना चाहा (२५), किन्तु पृथ्वीराज ने प्रिया का मुख देखा और जी को निर्भय (कठोर) बना कर कहा, "तुमने हे श्रेष्ठ स्त्री, मेरे बाहुओं की पूजा की है, और वही तुम मुग्धा इस समय काम की बातें कर रही हो (२६) ?" इसके अनन्तर पृथ्वीराज ने उसे अपने स्वप्न की कथा सुनाई (२७)। उसने कहा, स्वप्न में एक सुन्दरी उससे आरम्भ-परिरम्भ करने लगी; उस समय उसका पति भी उसके साथ था, जिसका तेज ग्रीष्म के रवि का था; उस पुरुष ने मुझसे झगड़ा किया और वह मेरा हाथ पकड़कर बड़बड़ाने लगा; इस प्रकार वहाँ पर एक संकट उपस्थित हो गया और मैं ने देखा कि वह पुरुष [रोष में] दाँतों को दाब रहा है। किन्तु तदनन्तर न मैं था, और न वह सुन्दरी थी; 'हर-हर' का स्वर उत्पन्न हुआ; पता नहीं देवगण का क्या अभिमत है, और वे किस उद्देश्य से क्या करना चाहते हैं (२८)।" संयोगिता ने यह सुन कर गुरु और कवि को बुलाया; उन्होंने स्वप्न के अनिष्टकारी प्रभाव के शमन के लिए उपचार किए; तदनन्तर उसी दिन संध्या समय पृथ्वीराज ने सुभटों की सभा की।

११. शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध

पृथ्वीराज की सब सेना सत्तर हजार थी, जिनमें से बत्तीस हजार आगे बढ़ रहे थे (१)। इनमें पाँच हजार ऐसे थे जो राजा के लिए समस्त संकट सहने को तैयार थे (२)। इनमें भी दो हजार स्वामी की आज्ञा से सब कुछ कर सकते थे, और इन दो हजार में भी पाँच सौ ऐसे थे जो वज्र सहन कर सकते थे (३)। इनमें भी सौ शील और सत्य में यम को जीतने वाले थे और इनमें भी दस हाथियों के दाँत उखाड़ने वाले थे (४)। इनमें भी पाँच ऐसे थे कि उनके कार्यों की गति अगम्य थी; पृथ्वीराज इन्हीं में (इन्हीं से परिवेष्टित) था (५)। पावस के आगमन पर जब धरा अगम्य हो रही थी, तुर्क और हिन्दू सेनाएँ सुसज्जित हुईं (६)।

सिन्धु पार कर शहाबुद्दीन ने खुरासान खाँ, तातार खाँ और रुस्तम खाँ से कहा कि वह उस पृथ्वीराज पर आक्रमण कर रहा था जिसने उसे बन्दी बना कर छोड़ दिया था, और जिसे उसे सात बार कर दिया था : उसने उनसे मार्ग में और भी भृत्यों को संग्रह करने के लिए कहा (७)। उन्होंने उसे पूर्ण आश्वासन दिया (८)।

दोनों दलों में युद्ध आरम्भ हुआ (११)। दोपहर तक में चामण्ड (?) वीर ढाई सौ खेत रहे, चालुक्य योद्धा एक सौ बीस गिरे, कूरंभ शूर छः हजार गिरे, खीची गिरे, आबूराज जैत पमार गिरा, पच्चीस सौ चहुवान गिरे और अन्त में केवल चौदह सौ योद्धा पृथ्वीराज के साथ शेष रहे; शहाबुद्दीन के सोलह हजार सैनिक गिरे; पृथ्वीराज की सेना रण-क्षेत्र से लौट पड़ी और शहाबुद्दीन विजयी हुआ (१२)। पृथ्वीराज को शत्रुओं ने घेर लिया (१३), उन्होंने उसे खुरासान खाँ की बाहों में सिंगिनी अर्पित करने को कहा (१४)। इस बात को पृथ्वीराज सहन न कर सका और उसने खुरासान खाँ को एक बाण से समाप्त कर दिया, किन्तु पृथ्वीराज के दिन अब दिन दूसरे आ गये थे (१५)। अन्त में एक म्लेच्छ सरदार के द्वारा वह बन्दी हुआ (१७)।

१२. शहाबुद्दीन तथा पृथ्वीराज का अन्त

पृथ्वीराज को बन्दी कर शहाबुद्दीन गजनी गया; उसने दिल्ली का राज्य उसके पुत्र को दिया और छः महीने बाद ही शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज को नेत्रहीन कर दिया, यह बात जब चन्द ने सुनी, उसने गजनी की राह पकड़ी (१)। उसने एक अवधूत की वेष-भूषा बनाई और इस प्रकार [चल कर] वह गजनी पहुँचा (३)। तीसरे पहर शहाबुद्दीन हदफ़ (लक्ष्य वेध) खेलने के लिए निकल रहा था (१२)। आगे-आगे निसुरत खाँ चल रहा था; शहाबुद्दीन की कटि में तूणीर था और हाथ में सिंगिनी थी; कवि ने दौड़ कर उसका मार्ग रोका, और उसे बाएँ हाथ से आशीर्वाद दिया (१३)। चन्द को अवधूत के उस वेष में देख कर शाह ने उससे पूछा (१४) तो चन्द ने अपना परिचय दिया; उसने बताया कि उसने पृथ्वीराज के साथ अवतार (जन्म) लिया था; उसके बन्दी हो जाने से वह अनाथ हो गया था और जब उसने सुना कि वह बिना आँख का कर दिया गया था, उसने बदरिकाश्रम में जाकर तप करने का निश्चय किया था; शाह ने कहा कि पृथ्वीराज अंधा होने पर भी अपनी बक्र दृष्टि नहीं छोड़ रहा था, इसलिए उसे थाने में रख दिया गया था; इस समय वह (शहाबुद्दीन) हदफ़ (लक्ष्य वेध) खेलने जा रहा था, दूसरे दिन वह उससे बातें कर सकता था (१५)।

दूसरे दिन शाह ने चन्द को निसुरत खाँ के द्वारा बुलवाया (१९)। तातार खाँ ने कहा कि चन्द बड़ा चतुर व्यक्ति था, उसका विश्वास न करना चाहिए था (२०)। किन्तु शाह ने कहा कि वह (चन्द) तपस्या करने जा रहा था तो अतः यदि वह चाहता था तो उससे दो बातें कर सकता था या कुछ दान ले सकता था (२१)। तदनुसार चन्द शाह के समक्ष बुलाया गया (२२)। सुल्तान ने पूछा कि योगी-विरागी को उससे मिलने की क्या आवश्यकता हो सकती थी (२३)? चन्द ने कहा कि योग-भोग की बातें वह दूसरे दिन उसे बतावेगा (२५)। इस समय उसे एक अन्य बात कहनी थी—बचपन में पृथ्वीराज उसकी सब साधें पूरी करता था (२६) और उसी समय उसने कहा था कि बिना फल के बाण से ही वह सात घड़ियालों को सिंगिनी लेकर बेध सकता था (२७); उसी को देखने की इच्छा शेष थी, इसलिए उसके पास वह आया था; वह (शहाबुद्दीन) चाहता तो उसकी यह साध पूरी हो सकती थी (२८), और फिर इस साध के पूरी होते ही वह (चन्द) वन चला जाता (२९)। शाह को इस पर विश्वास नहीं हुआ कि इस अवस्था में भी पृथ्वीराज यह कर सकता था (३०), फिर भी उसने चन्द को इसकी स्वीकृति दे दी (३१)। चन्द अब पृथ्वीराज के पास गया और आशीर्वाद देते हुए उसने उससे कहा, "तुमने चौलुक्य राज (भीम) पर अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, जयचन्द के यज्ञ का विध्वंस किया, ""तुम साँभर नरेश, और सोमेश्वर के

पुत्र हो; क्या तुम्हें स्मरण है कि तुमने सात घड़ियालों को [एक] वाण से बेधने का मुझे वचन दिया था ?" चन्द का यह कथन सुनकर एक बार उसका व्यग्र देह मानो नवीन हो गया, किन्तु फिर [निराशा से] उसका सिर झुक गया (३३)। चन्द ने पुनः उसे उत्तेजना दी, और कहा कि शाह निकट ही बाईं ओर पर सौ हाथ ऊपर सुन रहा था; इस समय मानो सौ अवसर एक साथ नाच उठे थे और उसे निर्भय होकर अर्थ-साधन करना चाहिए था (३५)। बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार राजा को तैयार कर चन्द शाह के पास गया, और उसने कहा कि राजा को कठिनाई से उसने तैयार किया था किन्तु केवल शाह का फ़र्मान पाने पर वह वाण-पकड़ने पर तैयार हुआ था (४०)। तातार खाँ ने कहा कि राजा से कुछ हो नहीं सकता था इसलिए यह उसका बहाना मात्र था, शाह तो तीन फ़र्मान देने को तैयार था (४१)। चन्द प्रसन्न होकर राजा के पास लौट गया (४२)। राजा ने कहा इस कार्य के लिए उसे दो वाण चाहिए थे (४४)। चन्द ने समझा-बुझा कर उसे एक वाण से ही यह कार्य करने को तैयार किया (४५)। उसने कहा कि जो कुछ उसने कैंवास के साथ किया था अब उसका फल उसे मिलने वाला था (४६)। राजा प्रस्तुत हुआ (४७)। शाह ने फ़र्मान दिए; तीसरा फ़र्मान होते ही शाह वाण से विद्ध हुआ भूमि पर पड़ा था; राजा का भी अन्त हुआ (४८)। देवताओं ने इस घटना पर आकाश से पुष्प-वर्षा की (४९)। इस प्रकार नव रस से सरस और अपूर्व इस 'रासो' की चन्द ने रचना की (४९)।

---

७. पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता पर विचार करने की दृष्टि से नीचे उसके प्रस्तुत संस्करण में आए हुए ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं से सम्बन्धित उल्लेखों का विवेचन किया जा रहा है।

(१) कर्ण : डाहल के कर्ण के विषय में कहा गया है कि जयचन्द ने उसे दो बार बन्दी किया था :

करण डाहलल दु बार बंध्यउ। (५.१२)

डाहल का सब से अधिक प्रतापी शासक लक्ष्मी कर्ण कर्ण नाम से प्रसिद्ध था। इसका समय सं० १०९७-११२७ के बीच पड़ता है।[1] सं० ११३० से इसके उत्तराधिकारी और पुत्र यशः कर्ण देव के अभिलेख मिलने लगते हैं।[2] प्रकट है कि लक्ष्मी कर्ण जयचन्द का समकालीन नहीं था। किन्तु उसके दो उत्तराधिकारियों—यशः कर्ण और गय कर्ण—के नामों में भी 'कर्ण' लगा रहा है, इसलिए असम्भव नहीं कि कवि का आशय यहाँ डाहल के जयचन्द के समकालीन कलचुरि शासक से हो; वैसे जयचन्द के समकालीन डाहल के कलचुरि शासक क्रमशः नरसिंह (सं० १२१२-१२२७), जयसिंह (सं० १२३२), तथा विजयसिंह (सं० १२३७-१२५२) थे।[3]

(२) कैंवास : प्रस्तुत संस्करण का एक पूरा सर्ग तृतीय कैंवास की कथा से सम्बंधित है। कहा गया है कि वह पृथ्वीराज का प्रधान अमात्य था, और और पृथ्वीराज की एक करनाटी दासी पर अनुरक्त था और पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में यह उस दासी के कक्ष में पहुँच गया था; पृथ्वीराज को ज्यों ही इस बात की सूचना मिली, उसने आकर कैंवास और दासी का वध किया। रचना के अन्त में भी एक प्रसंग में (१२.४६) इस वध के संबन्ध में संकेत हुआ है।

जयानक रचित 'पृथ्वीराज विजय' में मन्त्री कदम्ब वास का उल्लेख है, और कहा गया है कि उसी के संरक्षण में पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ था।[4] 'विजय' की प्राप्त प्रति इसके कुछ ही आगे खण्डित है, इसलिए उससे इसके आगे का वृत्त नहीं प्राप्त होता है। जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा लिखित 'खरतर गच्छ पट्टावली' में मंडलेश्वर कैंवास का उल्लेख है, और कहा गया है कि जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ में पृथ्वीराज के विश्राम काल में इसने मध्यस्थता का कार्य

[1] हेमचन्द्र रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् नॉर्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ८१८।

[2] वही, पृ० ७८९।

[3] वही, पृ० ८१८।

[4] पृथ्वीराज विजय, संपा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, सर्ग ९, श्लो० ४४।

किया था।[1] कैंवास के पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य होने और पृथ्वीराज के द्वारा उसके निकाले जाने की एक कथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध में है, यद्यपि उसके निष्कासन का कारण भिन्न बताया गया है, और यह कहा गया है कि वह इसी कारण शहाबुद्दीन से मिल गया था, और पृथ्वीराज की पराजय का वह कारण बना।[2] इस प्रबन्ध के सम्बन्ध में अन्यत्र विस्तार से विचार किया गया है।[3] फलतः कैंवास का पृथ्वीराज का अमात्य होना ऐतिहासिक प्रतीत होता है। किन्तु 'रासो' में उसके वध की जो कथा आती है, वह भी ऐतिहासिक है या नहीं, यह कहना कठिन है।

(३) गोविंदराज : यह पृथ्वीराज के मुख्य सामंतों में से है और जयचन्द के राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण लेकर जब उसके दूत पृथ्वीराज के पास आते हैं, यह उसके निमन्त्रण का उत्तर देता है : वहाँ यह अपने को [कुरु] जाङ्गल का निवासी बताता है (२.३)। यह पृथ्वीराज-जयचन्द के युद्ध में मारा जाता है (७.२०)। मिनहाजुस्सिराज की 'तबकात-ए-नासिरी' के अनुसार, जिसकी रचना सं० १३०६ में हुई थी, गोविंदराय—जो कि दिल्ली का था—शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में मारा गया था।[4] यदि 'रासो' का गोविंदराय वही हो जो 'तबकात-ए-नासिरी' का है, तो दोनों उल्लेखों में अन्तर स्पष्ट है, यद्यपि उसका पृथ्वीराज का सामंत होना ऐतिहासिक प्रमाणित होगा।

(४) जयचन्द : रचना के सर्ग २ और ४ से ८ पृथ्वीराज तथा जयचन्द के संघर्ष के हैं, जो कि जयचन्द के राजसूय यज्ञ तथा उसकी पुत्री संयोगिता के कारण हुआ है। एक छन्द (५.१२) में जयचन्द के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने सिंधु नद पार कर म्लेच्छों को भगा दिया था, हिमालय के राज्यों को तहस-नहस किया था और आठ सुलतानों को वश में किया था, तिरहुत में थाना स्थापित किया था, दक्षिण में सेतुबन्ध तक गया था, डाहल के कर्ण को दो बार बन्दी किया था, सोलंकी (चौलुक्य) सिद्धराज को कई बार खदेड़ा था, तिलिंग और गोवाल कुण्ड को तोड़ा था, गुण्ड के जीरा को बाँध कर छोड़ा था, बैरागर के हीरे लिए थे, गज़नी के शहाब शाह के सेवक निसुरतखाँ को बन्दी किया था [लङ्का जाकर] विभीषण से भिड़ गया था, खुरासान के अमीर को बन्दी किया था, विजयपाल का पुत्र जयचन्द इस प्रकार का था। इतिहास जयचन्द्र को विजयपाल का नहीं, विजयचन्द्र का पुत्र बताता है।[5] इस प्रकार दोनों नामों में कुछ अन्तर है। जयचन्द्र पृथ्वीराज का समकालीन था, यह इतिहास से प्रमाणित है। अपने पिता विजयचन्द्र के साथ वह दिग्विजय में सम्मिलित था, यह सं० १२२४ के कमौली के दान-पत्र से प्रमाणित है जो वाराणसी से विजयचन्द्र तथा युवराज जयचन्द्र के द्वारा प्रदत्त है और जिसमें 'भुवन दलन हेला' शब्दावली आती है।[6] किंतु ऊपर उल्लिखित समस्त राजाओं को उसने परास्त किया था, इसके प्रमाण नहीं मिलते हैं; लगता है कि कुछ नाम केवल सूची-वृद्धि के लिए सम्मिलित किए गए हैं; लङ्का के विभीषण से जा भिड़ना तो एक अनर्गल

[1] अगर चन्द नाहटा : पृथ्वीराज की सभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ, हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ७१।

[2] पुरातन प्रबन्ध संग्रह, संपा० मुनि जिनविजय, पृ०८६-८७।

[3] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[4] इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९६-२९७।

[5] भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया, अभिलेख सं० ३३३, ३३६, ३३७, ३४०, ३४५।

[6] इपिग्राफिया इंडिका, भाग ४, पृ० ११७।

कल्पना मात्र है। जिन राजाओं के सम्बन्ध के ऐतिहासिक उल्लेख प्राप्त हैं, उनके साथ हुए उसके संघर्ष पर उन राजाओं के नामों से अलग विचार किया गया है।

'रासो' में आए हुए पृथ्वीराज-जयचन्द संघर्ष तथा पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह के सम्बन्ध में इतिहास मौन है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का कथन है कि जयचन्द एक बहुत दानी राजा था, जो उसके दिए हुए अनेक दान-पत्रों से प्रकट है, किंतु किसी दान-पत्र में भी राजसूय यज्ञ का उल्लेख नहीं है; नयचन्द्र सूरि ने सं० १४६० के लगभग लिखते हुए 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 'रंभा मंजरी नाटिका' में, पृथ्वीराज-जयचन्द के संघर्ष अथवा जयचन्द के राजसूय यज्ञ और संयोगिता-स्वयंवर का कोई उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि 'हम्मीर महाकाव्य' में उसने पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के संघर्ष की कथा विस्तार से दी है, और 'रंभा मंजरी' में, जिसका नायक जयचन्द है, जयचन्द की प्रशंसा में पन्ने रँगते हुए भी उसके द्वारा किए हुए किसी राजसूय यज्ञ अथवा संयोगिता-स्वयंवर का उल्लेख नहीं किया है, इसलिए 'रासो' के ये विवरण अनैतिहासिक हैं। किंतु जहाँ तक दानपत्रों की बात है, 'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज ने आरम्भ में ही उक्त राजसूय यज्ञ का विध्वंस किया था, इसलिए तत्सम्बन्धी दानपत्रों का न मिलना आश्चर्यजनक नहीं है। 'हम्मीर महाकाव्य' और 'रंभा मंजरी' को, जो सं० १४६० के लगभग लिखे गए, और काव्य की दृष्टि से लिखे गए, ऐतिहासिक महत्व प्रदान करना उचित नहीं है। 'हम्मीर महाकाव्य' के पृथ्वीराज-चरित्र में पृथ्वीराज और परमर्दिदेव के भी युद्ध का भी उल्लेख नहीं है, जो उस युग की एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, जिसके स्मारक में सं० १२३९ का मदनपुर का शिलालेख है।[२] 'रंभा मंजरी' में तो जयचन्द को मल्लदेव का पुत्र कहा गया है, और कहा गया है कि वह लाट के मदन वर्मा की पुत्री रंभा से विवाह करता है।[३] जयचन्द्र का पिता विजयचन्द्र था, न कि कोई मल्लदेव, यह इतिहास प्रसिद्ध है; मदनवर्मा एक ही ज्ञात है जो चेदि का चंदेल शासक था। लाट से, जो गूर्जर देश का एक प्रान्त रहा है, इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। इस मदन वर्मा का अन्तिम अभिलेख सं० १२१९ का एक दानपत्र है,, और इसके उत्तराधिकारी परमर्दिदेव का प्रथम अभिलेख सं० १२२३ का प्राप्त है।[४] इसलिए यह जयचन्द का समकालीन अवश्य था। फलतः जयचन्द्र के उक्त दोनों काव्यों के आधार पर उपर्युक्त प्रकार का कोई परिणाम निकालना उचित नहीं माना जा सकता है।

दूसरी ओर, डॉ० दशरथ शर्मा का कथन है कि पृथ्वीराज से जयचन्द की कन्या के विवाह की की घटना इतिहास-सम्मत ज्ञात होती है, क्योंकि 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के तिलोत्तमा के चित्र पर मुग्ध होने और उसके विरह में व्यथित होने की जो कथा है, वह बाद में किसी राजकुमारी से होने वाले उसके विवाह की भूमिका मात्र है, और यह राजकुमारी गङ्गा-तटवर्ती किसी स्थान की थी, यह उक्त काव्य के अंतिम प्राप्त सर्ग के ७८ वें त्रुटित श्लोक के 'नाक नदी तट स्थितः' शब्दावली से ज्ञात होता है, इसलिए यदि 'विजय' में इस कथा के अनन्तर 'रासो' में वर्णित पृथ्वीराज-संयोगिता अथवा 'सुर्जन चरित' में वर्णित पृथ्वीराज-कांतिमती के विवाह की बात आई हो तो आश्चर्य न होगा।[१] जैसा अन्यत्र दिखाया गया है, 'सुर्जन चरित महाकाव्य' में वर्णित पृथ्वीराज का समस्त चरित्र 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण का अनुसरण करता है, इसलिए उसमें आई हुई कांतिमती

[१] पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० १९८६, पृ० ५८।

[२] भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ५८।

[३] ए० एन० उपाध्ये : नयचन्द्र ऐंड हिज रंभा मंजरी, जर्नल ऑव् यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, भाग १९, पृ० ९०।

[४] भांडारकर : इंस्क्रिप्शंस ऑव् नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ४७, ४९।

के साथ पृथ्वीराज के विवाह की कथा 'रासो' में वर्णित पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह के सम्बन्ध में स्वतंत्र साक्ष्य के रूप में नहीं रक्खी जा सकती है। 'पृथ्वीराज विजय' में आई हुई 'नाक नदी तट स्थितः' शब्दावली ही उसके पक्ष में रक्खी जा सकती है, किंतु वह जयचन्द की कन्या के सम्बन्ध की ही रही होगी, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

समसामयिक मुसलमान इतिहास-लेखकों मिनहाज उस्सिराज तथा हसन निज़ामी के अनुसार[1] शहाबुद्दीन के दोनों आक्रमणों के समय—मुसलमान इतिहास लेखक पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में दो ही युद्ध हुए मानते हैं—पृथ्वीराज अजमेर का शासक था; दिल्ली का शासक गोविंदराय या खांडेराय था जो उसकी ओर से दोनों युद्धों में लड़ा था। जयचन्द और पृथ्वीराज के संघर्ष की कथा 'रासो' के अनुसार शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के इन दोनों संघर्षों के बीच में पड़ती है; जयचन्द के विरुद्ध अतः पृथ्वीराज ने दिल्ली से प्रस्थान किया था और जयचन्द-पुत्री संयोगिता को लेकर दिल्ली लौटा था, यह काल्पनिक लगता है।

(५) पृथ्वीराज : दिल्ली के शासक होने के पूर्व का पृथ्वीराज का चरित्र 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में अति संक्षेप में है। उसे एक ही छन्द में देते हुए कहा गया है कि उसका शैशव अजमेर में व्यतीत हुआ था, उसके जीवन के अनुरागपूर्ण वृत्त साँभर में हुए थे, वह बहिला वन का निवासी था, और वह सोमेश्वर का पुत्र दिल्ली में भाषित होने के लिए विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (१.६)। बहिला वन के सम्बन्ध में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, किन्तु शेष उल्लेख इतिहास-सम्मत ही हैं।

कहा गया है कि उसने बलख के शासक को हराया था और गजनी के शाह शहाबुद्दीन को हराया था (२.७)। बलख के शासक को हराने की बात इतिहास-सम्मत नहीं प्रतीत होती है। गोरी को पराजित करने के सम्बन्ध में अलग विचार किया गया है। कहा गया है कि मुर (मरु) धरा को उसने विजित किया था (२.९), मंडोवर को तहस-नहस किया था (२.१७), मरुमंड [मरु स्थल] के मोरी राजा को दंडित किया था (२.१७), रणथंभौर को आग की लपटों के समान जलाया था (२.१७) और कालिंजर को जलमग्न किया था (२.१७)। अन्यत्र कहा गया है कि उसने भीमभट्टी से पंगुर और यादवराज से रणथंभौर की रक्षा की (८.४) थी। पृथ्वीराज अपने युग का एक अति पराक्रमी शासक था, और उसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं, कालिंजर के चन्देल शासक परमर्दि पर उसकी विजय-गाथा मदनपुर के सं० १२३९ के शिलालेख में अंकित है। असम्भव नहीं कि ये अन्य विजयें भी जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है, उसको प्राप्त हुई हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि कुछ नाम कल्पना से रख दिए गए हों; इस प्रकार के काव्यों में सूची-वृद्धि एक सामान्य बात रही है।

(६) भीम चौलुक्य : 'रासो' में कहा गया है कि पृथ्वीराज ने युद्ध करके भीम की शक्ति को नष्ट किया (२.३;१२.३३); वह दूर के विश्वासर में था, जब उसने मन्त्री (कैंवास) को भीम को बन्दी करने भेजा था (३.६); उसके सामन्तों ने ही भीमसेन को पराजित किया था (८.२) और भीमसेन से पृथ्वीराज ने जालौर की रक्षा की थी (८.४)।

गूर्जराधिपति भीम (सं० १२३५-१२९८)[2] पृथ्वीराज का समकालीन था, यह प्रमाणित है। 'पृथ्वीराज विजय' में शहाबुद्दीन के भीम पर किए गए आक्रमण की ओर संकेत करते हुए कदम्ब वास

[1] दे० इलियट और डाउसन : भाग २, पृ० २९५-२९७; तथा हेमचन्द रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव नॉर्दर्न इंडिया, पृ० १०८७-१०९२।

[2] हेमचन्द रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् नॉर्दर्न इंडिया', पृ० १०४८।

द्वारा कहलाया गया है कि "जैसे तिलोत्तमा के लिए सुंद और उपसुंद नष्ट हुये थे, वैसे ही मनोज्ञा लक्ष्मी के उद्देश्य से आपके शत्रु स्वयं नष्ट हो जायेंगे।[१]" प्राह्लादन के 'पार्थ पराक्रम व्यायोग' में भीम के सामन्त आबू के परमार धारावर्ष पर जांगल-नरेश पृथ्वीराज के किए हुए एक असफल सौसिक प्रस्ताव (रात्रि कालीन आक्रमण) का उल्लेख हुआ है।[२] जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा रचित 'खरतर गच्छ पट्टावली' में पृथ्वीराज और भीम चौलुक्य के सेनापति जगद्देव प्रतिहार के बीच कठिनाई से हो पाई एक संधि का उल्लेख हुआ है।[३] इस प्रकार भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज में पारस्परिक वैमनस्य और छेड़-छाड़ के प्रमाण मिलते हैं। जालोर की रक्षा के लिए भी दोनों में कोई युद्ध हुआ था यह ज्ञात नहीं है।

(७) शहाबुद्दीन गोरी : शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बीच हुए केवल एक ही—अंतिम युद्ध—का वर्णन 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में मिलता है, इसके पूर्व के युद्धों के सम्बन्ध में कहा गया है कि पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को तीन बार बाँधा था (२.३), अन्यत्र यह कि उसने शहाबुद्दीन को सरवर में परास्त किया था (८.४)। एक स्थान पर आता है कि भीम को जब मन्त्री (कैंवास) ने बन्दी किया था, पृथ्वीराज दूर विरवासर में था (३.६); असम्भव नहीं कि 'सरवर' से तात्पर्य इसी विरवासर से हो अन्यत्र यह कि उसने गजनी को नष्ट किया (२.१७)। एक स्थान पर शहाबुद्दीन से कहलाया गया है :

जिहि हउं गहि छंडियउ वार सत हउं अप्पउ कर। (११.७)

जिसके कम से कम दो अर्थ सम्भव हैं : एक तो यह कि 'जिसने मुझे सात बार पकड़ा और छोड़ा और जिसे मैंने कर अर्पित किया', दूसरा यह कि 'जिसने मुझे पकड़ कर छोड़ा और जिसे मैंने सात बार कर अर्पित किया।' मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार शहाबुद्दीन के दो ही युद्ध पृथ्वीराज से हुए थे : एक जिसमें शहाबुद्दीन पराजित हुआ था, और दूसरा जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ और और मारा गया था।[४] 'रासो' में सरवर और विरवासर का उल्लेख हुआ है। मुसलमान इतिहासकारों ने स्थान का नाम 'तबर हिन्द' : या 'सर हिन्द' दिया है। सरवर (सर हिंद ?) के युद्ध के अतिरिक्त अन्तिम युद्ध से पूर्व के युद्धों का कोई विवरण 'रासो' में नहीं मिलता है, और न तत्कालीन इतिहास में मिलता है; वे काल्पनिक ही प्रतीत होते हैं।

'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के बीच हुए केवल अन्तिम युद्ध का वर्णन हुआ है। कहा गया है कि शहाबुद्दीन ने पावस में आक्रमण किया था (११.६), युद्ध में पृथ्वीराज पराजित और बन्दी हुआ (११.१७), तदनंतर शहाबुद्दीन इसे गजनी ले गया (१२.१), दिल्ली का हय-गज-भांडार उसके पुत्र को सौंप दिया (१२.१) और कुछ समय बाद उसने पृथ्वीराज की आँखें निकलवा लीं (१२.१); यह सुनकर चन्द ने गजनी की राह पकड़ी (१२.१), उसने वहाँ जाकर शहाबुद्दीन से कहा कि पृथ्वीराज बिना फल के बाण से घड़ियालों को बेध सकता था, यह उसने उससे किसी समय कहा था, और अब चन्द तप के लिए जाना चाहता था, इसलिए इसके पूर्व उस साध को पूरी कर लेना चाहता था, जो कि केवल शाह की अनुमति से ही संभव था (१८.२७-२८); शाह को भी इस कौतुक को देखने की उत्सुकता हुई अतः उसने इसके आयोजन की अनुमति दे दी (१२.३१); चन्द ने पृथ्वीराज को भी इस योजना के लिए तैयार कर लिया, और शाह से उसने

[१] 'पृथ्वीराज विजय', सर्ग ११, आरम्भ।

[२] 'पार्थ पराक्रम व्यायोग', गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, प० ३।

[३] अगरचन्द नाहटा : जगद्देव और पृथ्वीराज की संधि, हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ९८।

[४] मिनहाजुस्सिराज : 'तबकात-ए-नासिरी', इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० ११५-११७ तथा हेमचन्द्र रे, डाइनेस्टिक हिस्ट्री आव नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० १०८८-१०९३।

कहा कि उसके तीन मौखिक फरमान प्राप्त करके ही पृथ्वीराज लक्ष्य वेध करने के लिए तैयार हुआ था (१२.४०), अतः शाह ने इसे भी स्वीकार कर लिया, और जब उसने तीसरा फरमान सुनाया, पृथ्वीराज का बाण उसको वेधता हुआ निकल गया (१२.४८); तदनन्तर राजा का भी मरण हुआ (१२.४८)। प्रायः समसामयिक मुसलमान इतिहासकारों मिनहाजुस्सिराज तथा हसन निजामी के अनुसार[1] पृथ्वीराज अजमेर में शासन करता था, दिल्ली का शासक गोविन्द राय या खांडे राय था जो पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से दोनों युद्धों में लड़ा था; हसन निजामी के अनुसार शहाबुद्दीन ने दूसरे आक्रमण के पूर्व अजमेर एक दूत भेजा था और कहलाया था कि वह इस्लाम और उसकी अधीनता स्वीकार करे। चौहान के रोषपूर्ण उत्तर के अनन्तर उसने उस पर आक्रमण किया था। हसन निजामी ने यह भी कहा है इस आक्रमण के समय पृथ्वीराज ने कहला भेजा था कि यदि सुल्तान अपने राज्य की सीमाओं में चला जावे तो वह उसका पीछा नहीं करेगा; इस पर सुल्तान ने उत्तर भेजा कि वह अपने बड़े भाई के आदेश से कठिनाइयाँ झेलता यहाँ आया था, और उससे आदेश लेकर ही लौट सकता था जिसके लिए समय अपेक्षित था; पृथ्वीराज ने यह मान लिया तो रात में सारी तैयारी करके दूसरे दिन प्रातः काल ही जब राजपूत अपने नित्य कर्म में लगे हुए थे सुल्तान ने आक्रमण कर दिया; पृथ्वीराज की सेना इसके लिए तैयार नहीं थी और शीघ्र ही वह पराजित हुआ इसके अनन्तर अजमेर का शासक पृथ्वीराज का पुत्र बनाया गया। दोनों के अनुसार पराजित होने पर पृथ्वीराज भागता हुआ सरस्वती के निकट पकड़ा गया और मार डाला गया। प्रकट है कि 'रासो' की उपर्युक्त कथा काल्पनिक ही है।

(८) सलख और जैत पमार : 'रासो' के अनुसार सलख आबू-नरेश था और जयचन्द से हुए पृथ्वीराज के युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ता हुआ मारा गया (८.३०)। इसी प्रकार उसमें कहा गया है कि उसका पुत्र जैत [जो उसके अनन्तर आबू-नरेश था], शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से युद्ध करता हुआ मारा गया (११.१२)।

किन्तु पृथ्वीराज के समय में धारावर्ष परमार आबू-नरेश था[2], जो कि भीम का सामन्त था, जैसा उसके अभिलेख[3] तथा प्राह्लादन के 'पार्थ पराक्रम व्यायोग'[4] से प्रमाणित है। सलख और जैत के आबू-नरेश होने का उल्लेख इतिहास-विरुद्ध है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध के प्रसंगों में पृथ्वीराज पक्ष के अनेक योद्धाओं के नाम आते हैं; ये हैं : कन्ह (८.१८-२२), नागोर-निवासी नरसिंह दाहिमा (७.२०), चन्द्र पुण्डीर (७.२०), सारंग सोलंकी (७.२०, ७.३१), पाल्हनदेव कूरंभ (७.२०), गुर्जर का माल चन्देल (७.२७), पट्टा का भूपाल भान भट्टी (७.२७), सामला सूर (७.२७), अच्छ परमार (७.२७), धार का निरवान बीर (७.२७), जंगली राय (७.२८), मंडली-राय माल्हन हंस (७.३१), जावला (७.३१), जाल्ह (७.३१), बाघ बागरी (७.३१), बलीराम यादव (७.३१), गाजी (७.३१), पावरी राय (७.३१), परिहार राणा (७.३१), साँखुला (७.३१), सींह (७.३१), सिंहली राय (७.३१), भोज (७.३१), मल्ल (७.३१), भोआल राय (७.३१), हरसिंह चहुआन (८.११), कनक बड़ गूजर (८.१४), निडर राठौर (८.१६), अल्हन (८.२३-२४),

[1] इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-२९७ तथा हेमचन्द्र रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग २, पृ० १०८८-१०९३।

[2] हेमचन्द्र रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् इण्डिया, भाग २, पृ० ९१९।

[3] भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑव नार्दर्न इंडिया, अभिलेख संख्या ४५४ तथा ४८८।

[4] 'पार्थ पराक्रम व्यायोग', गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, पृ० १।

बाहर सुत अचलेस (८.२५), भग्गुल पति बिंझ चालुक्क (८.२७-२९), लखन बघेल (८.३१) और पाहार तोमर (८.३३)।

इसी प्रकार शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के युद्ध में शहाबुद्दीन के तीन योद्धाओं के नाम आते हैं: खुरासानखाँ (११.७; ११.१४), तातारखाँ (११.७) तथा रुस्तमखाँ (११.७); शहाबुद्दीन-वध के प्रसंग में भी दो नाम आते हैं: तातारखाँ (१२.२०,१२.४१) तथा निसुरतखाँ (१२.१३, १२१९)।

इन नामों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक साक्ष्य अप्राप्य है। युद्ध-विषयक ऐतिहासिक काव्यों में इस प्रकार की नामावली प्रायः कल्पित होती और वैसी ही कदाचित् यह भी है।

परिणामतः हम देखते हैं कि 'रासो' संपूर्ण रूप से ऐतिहासिक रचना नहीं है, उसके अनेक उल्लेख या विस्तार अवश्य ही कल्पना-प्रसूत हैं, और इतिहास से समर्थित नहीं हैं। फिर भी अपने व्यापक रूप में वह एक ऐसे जिम्मेदार कवि की रचना प्रतीत है जिसने हिंदू सूत्रों से प्राप्त सामग्री का यथेष्ट सावधानी के साथ उपयोग किया, और कथा-नायक के समय के बाद की किसी घटना अथवा किसी व्यक्ति का घाल-मेल कथा में नहीं किया। 'रासो' के कवि की इन दोनों विशेषताओं पर विचार करने पर ज्ञात यह होता है कि निस्सदेह वह पृथ्वीराज का समकालीन तो नहीं था, किन्तु बहुत बाद का भी नहीं था, और उसने रचना यद्यपि काव्य की दृष्टि से अधिक और इतिहास की दृष्टि से कम की, फिर भी सुलभ सामग्री का उपयोग जिम्मेदारी और कुशलता के साथ किया है।

यह कहना अनावश्यक होगा कि इसें सम्पूर्ण रचना को प्रायः उसी दृष्टि से देखना चाहिए जिस दृष्टि से हम मध्य युग में लिखे गए एक अच्छे से अच्छे ऐतिहासिक कथा-काव्य को देख सकते हैं, और इस दृष्टि से देखने पर 'पृथ्वीराज रासो' प्रस्तुत रूप में, मेरी अपनी राय में, एक सफल रचना मानी जा सकती है।

—:*:—

८. 'पृथ्वीराज विजय' और 'पृथ्वीराज रासो'

सन् १८७५ ई० में प्रसिद्ध विद्वान् डा० बूह्लर को संस्कृत ग्रन्थों की खोज में काश्मीर में 'पृथ्वीराज विजय' की एक अति खंडित प्रति प्राप्त हुई थी,[१] जिसने चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को एकदम समाप्त कर दिया। तब से उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के प्रयास होते आ रहे हैं, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि वे असफल ही रहे हैं। और, 'रासो' के प्राप्त रूपों में से किसी के आधार पर भी उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना कभी भी सम्भव होगा, यह आशा नहीं करनी चाहिए क्योंकि 'रासो' के प्राप्त सभी रूपों में विपुल अनैतिहासिक तत्व मिलते हैं। कुछ विद्वानों ने उसकी इस त्रुटि का समाधान यह बता कर करना चाहा है कि वह काव्य है, इतिहास नहीं है। किन्तु 'विजय' भी तो काव्य है, फिर भी उसमें 'रासो' जैसे अनैतिहासिक तत्व नहीं मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'पृथ्वीराज विजय'[२] के प्रथम छः सर्गों में पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की कथा देते हुए उसके पूर्व-पुरुषों की जो वंशावली दी गई है वह इस प्रकार ठहरती है:—
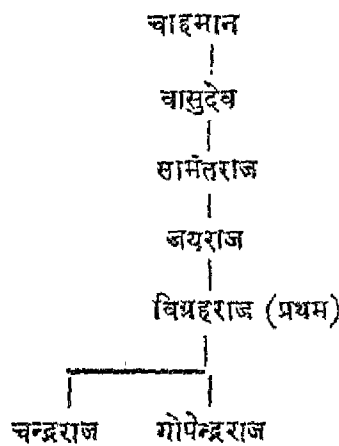
[१] 'डिटेल्ड रिपोर्ट आव् ए टूवर इन सर्च, आव् संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स मेड इन काश्मीर, राजपूताना ऐंड सैन्ट्रल इंडिया'—लेखक डॉ० बूह्लर, पृ० ६३।

[२] 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य'—संपा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, सं० १९९७।

दुर्लभराज
|
गोविंदराज
|
गुवाक
|
चंदनराज
|
वाक्पति
|
सिंहराज

विग्रहराज (द्वितीय) — दुर्लभराज
|
गोविन्दराज
|
वाक्पति राज (द्वितीय)

वीर्यराम — चामुण्ड

(वीर्यराम) — दुर्लभ — विग्रहराज (तृतीय)
|
पृथ्वीराज
|
अजयराज
|
अर्णोराज

० — विग्रहराज (चतुर्थ) — सोमेश्वर

पृथ्वीभट — अपरगाङ्गेय — पृथ्वीराज
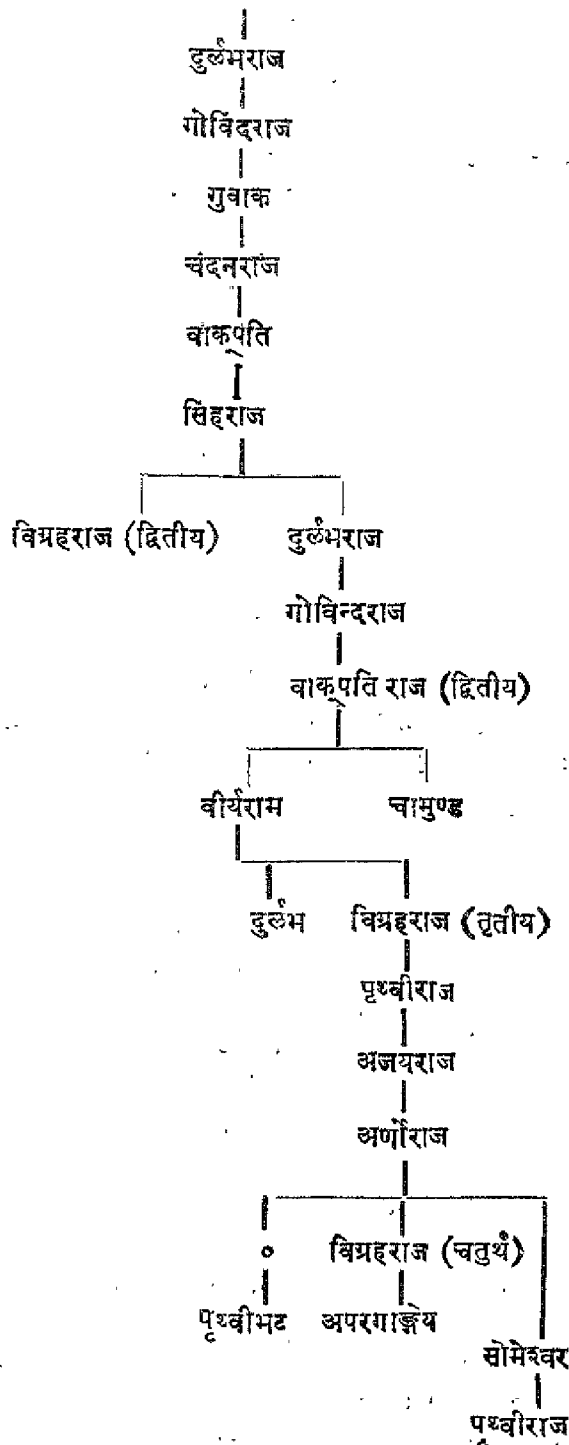
'रासो' के इतिहास-प्रेमी आलोचकों को दिखाई पड़ा कि 'रासो' (नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण) में प्राप्त पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली इससे बहुत भिन्न और अनैतिहासिक है। अब 'पृथ्वीराज रासो' के बड़े-छोटे कई रूप मिलते हैं और उनमें तद्नुसार वंशावली भी बड़ी-छोटी

मिलती है। कहा गया है कि 'रासो' के इन विभिन्न रूपों में से जो सबसे छोटा है, वही उसका मूल रूप होगा, और उत्तरोत्तर जो बड़े रूप हैं वे अधिकाधिक प्रक्षिप्त होंगे। इसलिए इस सबसे छोटे रूप को जिसे 'लघुतम रूपान्तर' कहा गया है सम्पादित करके प्रकाशित भी किया जा रहा है।[1] उसके अनुसार पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली निम्नलिखित है:—

मानिक्कराय
|
वीसल
|
सारंग
|
आनल्ल
|
जयसिंहदेव
|
आनन्द
|
सोमेश्वर
|
पृथ्वीराज

चहुवान वंश की पृथ्वीराज तक की वंशावली के लिए सबसे प्रामाणिक साक्ष्य तीन शिला-लेखों से प्राप्त है: एक है सं० १०३० वि० का हरस का,[2] दूसरा है सं० १२२६ का बीजोलयाँ का[3] और तीसरा है सं० १२३९ का मदनपुर का[4]। 'पृथ्वीराज विजय' में जो वंशावली आती है, वह लगभग वही है जो इन शिलालेखों में आई है, किन्तु 'पृथ्वीराजरासो' में आई हुई वंशावली इस वंशावली से बहुत भिन्न है। 'रासो' के सबसे छोटे रूप की वंशावली के सात नामों में से तीन ही 'पृथ्वीराज विजय' और इन शिला-लेखों की वंशावली में आते हैं— वीसल, आनल्ल और सोमेश्वर; शेष उसमें नहीं मिलते हैं। कहना नहीं होगा कि 'रासो' के बड़े पाठों में जो अतिरिक्त नाम आते हैं, वे भी इसी प्रकार भिन्न ठहरते हैं।

यह सब होते हुए भी जो बात आश्चर्य में डालने वाली है—फिर भी जो अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के पारखियों की दृष्टि में नहीं आई है—वह यह है कि 'रासो' के लेखक को 'पृथ्वीराज विजय' का यथेष्ट ज्ञान था, और उसने 'विजय' की रचना का अपने काव्य में उल्लेख भी किया है। उसका यह उल्लेख कैंवास-वध-प्रकरण में हुआ है।[5] पूरा प्रसंग 'रासो' में इस प्रकार है।

कैंवास पृथ्वीराज का मन्त्री है—जैसा वह (कदंबवास) 'पृथ्वीराज विजय' में भी है। वह पृथ्वीराज की कर्नाट देश की एक दासी पर आसक्त हो जाता है, और एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए बाहर जाता है, वह अवसर पा कर रात्रि के प्रारंभिक प्रहर में उस दासी के कक्ष में

[1] 'पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर'—संपा० नरोत्तमदास स्वामी, 'राजस्थान भारती' भाग ४, अंक १, पृ० १२-३५ तथा परवर्ती कुछ अंक।

[2] देखिए भांडारकर: 'इंस्क्रिप्शन्स ऑव् नार्दर्न इंडिया', अभिलेख संख्या ८२।

[3] वही ,, संख्या ३४४।

[4] वही ,, संख्या ३९८।

[5] दे० प्रस्तुत संस्करण का सर्ग ३।

घुस जाता है। यह रानी को जब इस बात की सूचना मिलती है, वह पृथ्वीराज को बुलवा भेजती है। पृथ्वीराज रात्रि में ही आकर कैंवास का वध करता है, और उसको भूमि में गड़वा कर पुनः आखेट पर वह चला जाता है। सबेरा होने पर वह राजधानी लौटता है। यहीं पर 'विजय' के सम्बन्ध का निम्नलिखित कथन आता है[1] :—

मझ्झ पहर पुच्छइ तिहि पंडिय।
कहि कवि 'विजय' साह जिह दंडिय।
सकल सूर बोलवि सभ मंडिय।
आसिष जाय दीघ तब चंडिय॥

अर्थात्—प्रहर के मध्य में पंडित से वह (पृथ्वीराज) पूछता (कहता) है, "हे कवि, तुम [मेरी] विजय (का काव्य) कहो, जिस प्रकार मैंने [युद्ध में] शाह (शहाबुद्दीन) को दण्डित किया है।" [तदनन्तर] समस्त शूरों को बुलवा कर उसने सभा माँडी (की) [जिसमें] आकर तब चण्डी-भक्त [चन्द] ने आशीर्वाद दिया।

इस उल्लेख में 'विजय' के सम्बन्ध की कुछ बातें अत्यन्त प्रकट हैं :—

१. 'विजय' की रचना पृथ्वीराज के आदेश से हुई।

२. 'विजय' का कर्त्ता कोई 'पण्डित' कवि था।

३. 'विजय' में शाह (शहाबुद्दीन) पर प्राप्त पृथ्वीराज की विजय की कथा कही गई।

४. यह 'पण्डित' कवि चन्द नहीं था, चन्द तो इस प्रसंग के बाद आता है। और 'रासो' भर में चन्द 'भट्ट' है, 'पण्डित' नहीं है।

'पृथ्वीराज विजय' की जो प्रति प्राप्त हुई है, वह पृथ्वीराज के राज्य-ग्रहण-प्रकरण के कुछ ही पीछे खण्डित हो जाती है। उसके प्राप्त अन्तिम अंशों में पृथ्वीराज की सभा में काश्मीर के कवि पण्डित जयानक का आगमन होता है[2] और इसकी शैली काश्मीरी काव्यों की शैली का अनुसरण करती है, इसलिए विद्वानों ने अनुमान किया है कि 'विजय' का कवि यही पण्डित जयानक है।[3] इस काव्य के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि पृथ्वीराज ने ['विजय' के] कवि का आदर किया था, और उसी ने यह काव्य लिखने के लिए उसे प्रेरित किया था,[4] इसलिए और इसलिए भी कि इस ग्रन्थ से कुछ उदाहरण सं० १२०० ई० के लगभग होने वाले जयार्थ के द्वारा लिखित राजानक रुय्यक के 'अलंकार सर्वस्व' की 'अलंकार विमर्षिणी' नाम की टीका तथा उसी के द्वारा लिखित 'अलंकारोदाहरण' में दिए गए हैं अनुमान किया गया है कि इसकी रचना पृथ्वीराज के जीवन-काल में (सन् ११९२ में उसका देहान्त हुआ) हुई होगी।[5] इसमें ११९१ ई० में प्राप्त शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की कथा कही गई थी, यह भी अनुमान किया गया है।[6] उपर्युक्त प्रथम तथा तृतीय अनुमानों की पुष्टि 'रासो' की ऊपर उद्धृत पंक्तियों से भली भाँति हो जाती है। द्वितीय अनुमान बहुत युक्त-संगत नहीं लगता है, और 'रासो' से उसकी पुष्टि भी पूर्ण रूप से नहीं होती है। 'रासो' के प्राप्त समस्त रूपों के अनुसार शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की घटना कैंवास-वध के पूर्व

[1] प्रस्तुत संस्करण, सर्ग ३, छन्द १९।

[2] 'पृथ्वीराज विजय', सर्ग १२, छन्द ६३ तथा ६८।

[3] वही, प्रस्तावना, पृ० २।

[4] वही, सर्ग १, छन्द ३१-३५।

[5] 'पृथ्वीराज विजय', प्रस्तावना, पृ० २।

[6] वही, पृ० २।

आती है, तदनन्तर कैंवास-वध आता है, फिर संयोगिता के लिए पृथ्वीराज और जयचन्द का संघर्ष आता है, जिसमें सफलता पृथ्वीराज को प्राप्त होती है, और अन्त में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का वह युद्ध आता है जिसमें पृथ्वीराज पराजित और बन्दी होता है। 'रासो' के अनुसार 'विजय' 'पण्डित' को काव्य कहने का आदेश कैंवास-वध प्रकरण में होता है, और यह असम्भव नहीं है कि उसने 'विजय' काव्य पृथ्वीराज के जीवन-काल में अर्थात् पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध के पूर्व समाप्त कर लिया हो। किन्तु 'रासो' में पुनः किसी प्रसंग में पण्डित से 'विजय' काव्य सुनने की या उसकी रचना के लिए उसे पुरस्कृत किए जाने का उल्लेख नहीं होता है, इसलिए 'रासो' के आधार पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि उसके कवि 'पण्डित' ने उसे उक्त अन्तिम युद्ध के पूर्व पूर्ण भी कर लिया था।

'पृथ्वीराज रासो' से 'पृथ्वीराज विजय' के सम्बन्ध में जो यह निश्चित प्रकाश पड़ता है, वह अत्यन्त महत्व का है, और इस प्रकाश के लिए हमें 'रासो' के कवि का अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए। प्रकट है कि जब 'रासो' के कवि को 'विजय' का ऐसा निकट का परिचय था, तो 'रासो' के मूल रूप में हमें—अन्य अनैतिहासिक उल्लेखों को यदि छोड़ दिया जाय—ऐसे उल्लेख न मिलने चाहिए 'विजय' के विरुद्ध जाते हैं। और यह बतलाना अनावश्यक होगा कि 'रासो' के प्रस्तुत पाठ-निर्धारण के अनंतर इस परिणाम की पुष्टि पूर्ण रूप से हुई है।

'विजय' के उपर्युक्त उल्लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि 'रासो' अपने मूल रूप में निरा 'भट्ट भणंत' नहीं था, जैसा प्रायः समझा जाता है; वह एक ऐसे जिम्मेदार कवि की कृति था, जो भले ही कथा-नायक का समसामयिक न रहा हो, पर जिसने उसकी जीवन-गाथा से परिचित होने का यत्न किया था, और जो उसकी सबसे अधिक पूर्ण और प्रामाणिक जीवन-कथा 'पृथ्वीराज-विजय' से भली भाँति परिचित था।

—:*:—

९. 'हम्मीर महाकाव्य' और 'पृथ्वीराज रासो'

हम्मीर महाकाव्य', जैसा रचना के अन्त में कहा गया है,[१] जयसिंह सूरि के शिष्य नयचन्द्र सूरि द्वारा तोमर नरेश वीरम के समय में रचा गया था। तोमर वीरम की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है, किन्तु सं० १६८८ का रोहतास (जिला—झेलम, पंजाब) का एक शिलालेख तोमर मित्रसेन के समय का है, जिसमें उसके पूर्व-पुरुषों की नवीं पीढ़ी में गोपाचल (ग्वालियर) नरेश तोमर वीरम आते हैं।[२] यह वंशावली इस प्रकार है :—
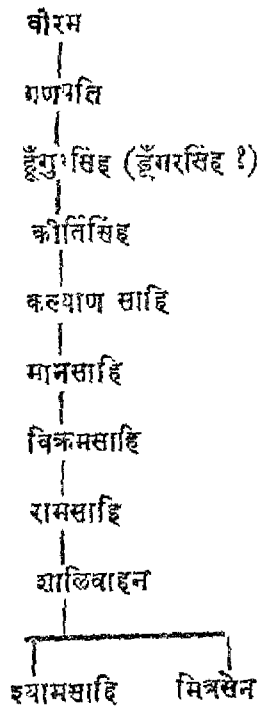
[१] 'हम्मीर महाकाव्य', संपा० नीलकंठ जनार्दन कीर्तने, मुद्रक एजुकेशन सोसाइटी प्रेस, बम्बई, पृ० १३३-१३५।

[२] देखिए भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स आव् नार्दर्न इंडिया', अभिलेख संख्या ९८८ तथा 'जर्नल ऑव् एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल' भाग ८, पृ० ६९५।

इन नौ पीढ़ियों के लिए, यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिए २५ वर्ष के हिसाब से, २२५ वर्ष मान लिये जावें तो तोमर वीरम का समय सं० १४६३ के लगभग होना चाहिये। इसका समर्थन गोपाचल नरेश डूँगर सिंह के समय के एक अभिलेख से भी होता है जो सं० १५१० का है और अलवर (राजपूताना) की एक मूर्ति पर अङ्कित है।[1] अतः प्रकट है कि 'हम्मीर महाकाव्य' का रचना-काल सं० १४६० के आस-पास होना चाहिए।

इस रचना में हम्मीर के पूर्व पुरुष होने के नाते पृथ्वीराज तथा उनके भी पूर्व-पुरुषों का चरित अङ्कित हुआ है। पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली इसमें इस प्रकार मिलती है[2] :—

१ भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स ऑव् नॉर्दर्न इंडिया', अभिलेख सं० ८१२।

२ 'हम्मीर महाकाव्य', उपर्युक्त, संपादकीय वक्तव्य, पृ० १४-१५।

पृथ्वीराज के इन पूर्व-पुरुषों के वृत्त अति संक्षेप में देकर कवि ने पृथ्वीराज का वृत्त कुछ विस्तार पूर्वक कि है, जो सक्षेप में इस प्रकार है :—

गङ्गदेव के देहान्त के अनन्तर सोमेश्वर राजा हुआ। उसका विवाह कर्पूर देवी से हुआ, जिसने एक पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम पृथ्वीराज रखा गया। दिन-दिन शिशु बढ़ता रहा और एक पुष्ट तथा स्वस्थ बालक हो गया। जब उसने पढ़ने और शस्त्रास्त्र के प्रयोग में क्षमता प्राप्त कर ली, सोमेश्वर ने उसे सिंहासिनासीन कर दिया और स्वयं वन में जाकर योग द्वारा शरीर त्याग कर दिया। जिस प्रकार पूर्वाचल दिनकर की किरणों से प्रकाश पा कर चमक उठता है, उसी प्रकार पृथ्वीराज अपने पिता से राज्य प्राप्त कर चमका।

इसी समय शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को वश में करने का यत्न कर रहा था। पश्चिम के राजागण ने उसके द्वारा त्रस्त होकर गोविंदराज के पुत्र चन्द्रराज को अपना प्रमुख बनाया और मिलकर वे पृथ्वीराज के पास आए। पृथ्वीराज ने उनके मुखों पर विषाद की रेखायें देख कर उनके विषाद का कारण पूछा। चन्द्रराज ने कहा कि एक मुसलमान, जिसका नाम शहाबुद्दीन था, राजागण के विनाश के लिए उदित हो गया था, जिसने उनके अधिकतर नगरों को लूट लिया और जला दिया था, उनकी स्त्रियों को भ्रष्ट कर दिया था, और उन्हें सर्वथा एक दयनीय दशा को पहुँचा दिया था। उसने मुलतान में अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी। वे उसी नृशंस शत्रु और उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर पृथ्वीराज की शरण में आए थे।

पृथ्वीराज ने जब शहाबुद्दीन के इन दुष्कृत्यों को सुना, वह रोष से भर गया; भावावेश के कारण उसका हाथ स्वतः उसकी मूछों पर पहुँच गया और उसने आगत राजागण से कहा कि वह इस शहाबुद्दीन को घुटने टेके, हाथ जोड़े और पैरों में बेड़ियाँ पहने हुए उनसे क्षमा-याचना के लिये विवश कर देगा, नहीं तो वह सच्चा चौहान नहीं।

कुछ दिनों बाद एक अच्छी सेना लेकर पृथ्वीराज मुल्तान पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा और कई पड़ावों के बाद शत्रु के देश में प्रविष्ट हो गया। जब शहाबुद्दीन को राजा के पहुँचने का समाचार मिला, वह भी उसका सामना करने के लिए बढ़ा। उस युद्ध में जो इस समय हुआ, पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बंदी किया, और इस प्रकार उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की; उसने इस अभिमानी मुसल्मान को विवश किया कि वह इन राजागण से, जिन्हें उसने बरबाद कर दिया था, घुटने टेककर क्षमा-याचना करे। प्रतिज्ञा पूरी हो जाने पर, पृथ्वीराज ने शरणागत राजाओं को बहु-मूल्य उपहार देकर विदा किया और शहाबुद्दीन को भी उसी प्रकार उपहार देकर उसने मुल्तान जाने की अनुमति दी।

शहाबुद्दीन इस प्रकार सद्व्यवहार प्राप्त करके भी प्राप्त पराजय के कारण अत्यधिक लज्जित हुआ। इसके बाद सात बार वह अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज पर चढ़ आया, और प्रत्येक बार पूर्ववर्ती बार की अपेक्षा अधिक तैयारी करके आया, किन्तु वह उस हिन्दू राजा के द्वारा हर बार पूर्ण रूप से पराजित हुआ।

जब शहाबुद्दीन ने देखा कि वह पृथ्वीराज को शस्त्रास्त्र के बल अथवा नीति-बल से परास्त नहीं कर सकता था, उसने घटेक देश के शासक को अपनी बार-बार की पराजय का विवरण लिख भेजा और उससे सहायता की याचना की। यह उसको उस राजा के घोड़ों तथा सैनिकों के रूप में प्राप्त हुई। इस प्रकार से शक्ति-संवर्द्धन करके शहाबुद्दीन ने द्रुत गति से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और उसे शीघ्र ही ले लिया। वहाँ के निवासी इससे भयभीत हो उठे और वे चारों दिशाओं में भागने लगे। पृथ्वीराज को यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ और उसने कहा कि यह शहाबुद्दीन एक नटखट बालक के समान आचरण कर रहा था, क्योंकि वैसे ही कई बार उसके द्वारा पराजित हो चुका था और हर बार अपनी राजधानी को जाने के लिए सर्वथा निरापद छोड़ दिया जाता था। पृथ्वीराज शत्रु पर प्राप्त अपनी पूर्ववर्ती विजयों के कारण भूला हुआ केवल उस छोटी-सी सेना को इकट्ठी कर जो उसके आस-पास थी आक्रमण-कर्ता का सामना करने के लिए आगे बढ़ा।

राजा की सेना यद्यपि छोटी ही थी, उसके आगमन का समाचार पाकर शहाबुद्दीन अत्यधिक भयग्रस्त हुआ, क्योंकि उसे अपनी पूर्ववर्ती पराजयों और दुर्गतियों का स्मरण अत्यन्त स्पष्ट था। रात में, इसलिए, उसने अपने कुछ विश्वस्त भृत्यों को राजा के शिविर में भेजा, और उनके द्वारा प्रचुर धन देने का प्रलोभन देकर उसने राजा के अश्वाधानिक और वादकों को मिला लिया। उसने तब बहुत से मुसलमानों को गुप्त रूप से शत्रु के शिविर में भेज दिया, जो इसमें बहुत तड़के, जबकि चन्द्रमा पश्चिम के क्षितिज पर पहुँच ही पाया था, और सूर्य ने पूर्व को ज्योतिर्मय करना प्रारम्भ ही किया था प्रविष्ट हो गए।

यह देखकर राजा के शिविर में बड़ा हल्ला हुआ और गड़बड़ी मच गई। जब कि राजा के भृत्य आक्रान्ताओं का सामना करने को सन्नद्ध हो रहे थे, राजा का विश्वासघाती अश्वाधानिक, जैसा कि उससे उसके मिलाने वालों ने कह रखा था, राजा के उस घोड़े को जीन कस कर लाया जो नाट्यारंभ कहलाता था; वादक भी जो अपना अवसर देख रहे थे, जब राजा घोड़े पर सवार हो गया, अपने वाद्यों पर वे वे राग बजाने लगे जो राजा को प्रिय थे। इस पर राजा का घोड़ा

गायकों के संगीत पर ताल देता हुआ गर्वोन्मत्त होकर नाचने लगा। राजा का चित्त कुछ देर के लिए इस खेल में लगा रहा, और उस क्षण के सर्वाधिक महत्व के कार्य को वह भूल गया।

मुसलमानों ने राजा की असावधानी का लाभ उठाया और जोरों का आक्रमण किया। इस दशा में राजपूत कुछ न कर सके। पृथ्वीराज यह देखकर घोड़े से उतर पड़ा। हाथ में तलवार लेकर उसने अनेक मुसलमानों को काट डाला। इसी बीच एक मुसलमान ने धोखे से पीछे की ओर से उसके गले में धनुष डाल कर राजा को गिरा दिया, जब कि अन्य मुसलमानों ने उसे बन्दी कर लिया। इसी समय से बन्दी राजा ने भोजन और विश्राम छोड़ दिया।

शहाबुद्दीन का सामना करने के लिए निकलने के पूर्व पृथ्वीराज ने उदयराज को आदेश दे रक्खा था कि वह उसके पीछे आकर शत्रु पर आक्रमण करे। उदयराज रणक्षेत्र में लगभग उस समय पहुँचा जब मुसलमान राजा को बन्दी करने में सफल हो चुके थे। शहाबुद्दीन उस समय उदयराज से युद्ध करने में हार की आशंका करके बन्दी राजा को साथ लिए नगर के भीतर चला गया।

जब उदयराज ने पृथ्वीराज के बन्दी होने का समाचार सुना, उसका हृदय अत्यधिक पीड़ित हो उठा। राजा को अपने भाग्य के सहारे छोड़ कर वह लौटना नहीं चाहता था, क्योंकि यह करना उसके निर्मल यश के लिए उसके गौड़ देश में कलंक माना जाता। इसलिए उसने शत्रु के नगर (योगिनीपुर—दिल्ली) के चारों ओर घेरा डाल कर उसके फाटक पर युद्ध करता एक मास तक डटा रहा।

इस घेरे के बीच एक दिन शहाबुद्दीन का एक भृत्य उसके पास गया और उससे कहने लगा कि उसे एक बार उस पृथ्वीराज को मुक्त करना चाहिए था जिसने उसे अनेक बार बन्दी किया था और आदरपूर्वक मुक्त किया था। शहाबुद्दीन इस भले मानस की बात से प्रसन्न नहीं हुआ और उससे बोला कि उसके जैसे परामर्शदाता ही राज्यों के पतन के कारण होते हैं। तब क्रुद्ध शहाबुद्दीन ने आज्ञा दी कि पृथ्वीराज को दुर्ग के भीतर ले जाया जावे। जब यह आदेश दिया गया, वीरों ने लज्जा से अपनी गर्दनें नीची कर लीं, और धर्मनिष्ठों ने आँखों में आते हुए आँसुओं को रोकने में अपने को असमर्थ पाकर नेत्रों को आकाश को ऊपर उठा लिया। पृथ्वीराज इसके कुछ दिनों बाद देह त्याग कर स्वर्ग-वासी हुआ।

जब उदयराज ने अपने मित्र के देहान्त की बात सुनी, उसने सोचा कि अब उसके लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान वही था जहाँ उसका मित्र जा चुका था। उसने इसलिए अपने समस्त अनुचरों को एकत्र किया और उनको लेकर घमासान युद्ध करते हुए अपनी समस्त सेना के साथ वहाँ गिरा और अपने तथा उनके लिए स्वर्ग का शाश्वत सुख प्राप्त किया।

'हम्मीर महाकाव्य' की इस समस्त कथा का आधार क्या है, यह उसके लेखक ने नहीं कहा है। यह तो प्रकट ही है कि 'पृथ्वीराज रासो' का कोई भी रूप इसका आधार नहीं है, क्योंकि न इसमें दी हुई उपर्युक्त वंशावली उसमें मिलती है और न इसमें दी हुई पृथ्वीराज की उपर्युक्त कथा ही। इसकी वंशावली प्रायः 'पृथ्वीराज विजय' तथा शिला-लेखों में आई हुई वंशावली का अनुसरण करती है, केवल कुछ नाम इसमें अधिक हैं।[1] इसकी कथा पूर्णतः किसी ज्ञात ग्रन्थ की कथा से नहीं मिलती है, केवल पृथ्वीराज के अन्त की जो कथा 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध[2] में दी हुई है वह इस ग्रन्थ की तत्संबंधी कथा से कुछ मिलती है। दोनों में शहाबुद्दीन पराजित होने के

[1] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[2] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

अनन्तर बन्दी हुआ और पृथ्वीराज के द्वारा मुक्त किया गया है—मुसलमान इतिहास-लेखक मिनहाजुस्सिराज के अनुसार उसकी सेना युद्ध-स्थल छोड़कर भाग गई थी और वह भी अपने एक गुलाम के द्वारा युद्ध-स्थल से दूर हटा लिया गया था, बन्दी नहीं हुआ था;[१] दोनों में शहाबुद्दीन के सात बार असफल आक्रमण करने की बात आती है—मिनहाजुस्सिराज के अनुसार शहाबुद्दीन ने केवल एक असफल आक्रमण किया था।[२] दोनों में नाट्यारंभादव पर सवार होने के कारण राजा का पराभव हुआ है, यद्यपि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध में उस पर सवार कराने का षड्‌यन्त्र कदम्बवास के द्वारा किया गया लगता है और इस ग्रन्थ में वह शहाबुद्दीन के भृत्यों द्वारा पृथ्वीराज के अस्वाधानिक और वाद्यकों को मिलाकर किया गया है। इसी प्रकार पृथ्वीराज को मुक्त किए जाने के विषय में शहाबुद्दीन से दोनों रचनाओं में कहा गया है, यद्यपि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज प्रबन्ध में यह स्वयं पृथ्वीराज से कहलाया गया है जब कि इस रचना में किसी अन्य के द्वारा। फलतः आंशिक रूप में दोनों रचनाओं में साम्य प्रकट है।

अन्यत्र हम देखते हैं कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' का पृथ्वीराज-प्रबन्ध निस्संदेह 'पृथ्वीराज रासो' के बाद की रचना है—उसमें 'रासो' के दो छन्द उद्धृत हैं जो कि किसी सुनियोजित प्रबन्ध-काव्य के अंश हैं और उसमें आई हुई कथा भी अंशतः इस ग्रन्थ की कथा का भी अनुसरण करती है।[३] यहाँ हम देखते हैं कि वह अंशतः इस ग्रन्थ की कथा का भी अनुसरण करती है। और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध का इन दोनों की अपेक्षा निकटतर साम्य किसी प्राचीन रचना से ज्ञात नहीं है। इसलिए यह प्रतीत होता है कि उसकी रचना 'रासो' तथा 'हम्मीर महाकाव्य' अथवा उसके आधार-सूत्रों की सहायता से, जो अब उपलब्ध नहीं हैं, हुई। 'रासो' के विभिन्न पाठों में समान रूप से मिलने वाली कथा सादी है और लगभग उतनी ही सादी कथा 'हम्मीर महाकाव्य' की भी है जो हमें ऊपर मिली है, जब कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज प्रबन्ध की कथा काफी पेचोली बनावट-बिनावट की है।[४] इसलिए यह किसी प्रकार संभव नहीं लगता है कि 'हम्मीर महाकाव्य' की कथा 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध की कथा के आधार पर लिखी गई हो। उसको लेकर निर्मित किए जाने पर उसके कैंवास और चन्द का भी इसमें किसी न किसी मात्रा में आना प्रायः अवश्यंभावी होता।

—:*:—

[१] दे० इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-९७।

[२] दे० वही।

[३] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[४] दे० वही।

१०. 'पुरातन प्रबंधसंग्रह'
और
'पृथ्वीराज रासो'

इक्कीस वर्ष हुए प्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री मुनि जिनविजय ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' नाम से कुछ जैन लेखकों द्वारा लिखे हुए कथा-प्रबन्धों का एक संग्रह प्रकाशित किया था,[1] जिन में अन्य प्रबन्धों के साथ 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचन्द प्रबन्ध' भी थे। इन प्रबन्धों के अन्तर्गत क्रमशः पृथ्वीराज तथा जयचन्द की कथाएँ दी हुई हैं, और साथ ही दो-दो छप्पय भी उद्धृत किए गए हैं जो चन्द बलिद्दिक (बरदाई) के रचे हुए कहे गए हैं। इन प्रबन्धों से चन्द बरदाई और एक अन्य कवि जल्ह के समय पर नया प्रकाश पड़ा है।[3] यहाँ हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि उसमें दिए हुए पृथ्वीराज-प्रबन्ध से चन्द की पृथ्वीराज सम्बंधिनी रचना के स्वरूप पर क्या प्रकाश पड़ता है। यह प्रबन्ध-संग्रह संस्कृत में है, इसलिए नीचे इसके पृथ्वीराज-प्रबन्ध का एक हिन्दी भाषांतर दिया जा रहा है और साथ ही इसमें उद्धृत चन्द के छप्पयों का अर्थ भी पाद-टिप्पणी में यथास्थान प्रस्तुत किया जा रहा है। कोष्ठकों में आई हुई शब्दावली आशय के स्पष्टीकरण के लिये प्रस्तुत लेखक द्वारा दी जा रही है।

"शाकंभरी नगरी में चाहमान वंश में श्री सोमेश्वर नामक राजा था। उसका पुत्र पृथ्वीराज था और उस (पृथ्वीराज) का भाई यशोराज था। उस (पृथ्वीराज) का शल्यहस्त श्रीमाल जाति का प्रताप सिंह था और मन्त्री कैंवास था। इन दोनों में परस्पर विरोध था। वह राजा पृथ्वीराज योगिनीपुर (दिल्ली) में राज्य करता था। उसके धवलगृह के द्वार पर न्याय का घंटा था। वह महा बलवान और धनुर्धरों का धुरीण राजा था। यशोराज आशी (हाँसी) नगर में कुमारभुक्त (गुजारेदार) था। उस (पृथ्वीराज) का वाराणसी-अधिपति जयचन्द से वैर था।

एक बार गर्जनक (गजनी) के तुर्काधिपति (शहाबुद्दीन) ने पृथ्वीराज से वैर रखते हुए योगिनीपुर (दिल्ली) पर चढ़ाई की। पृथ्वीराज का अमात्य दाहिमा जाति का कैंवास नाम का मन्त्रीश्वर था। उसकी अनुमति (मन्त्रणा) से राजा (पृथ्वीराज) दो लाख घोड़े तथा पाँच सौ हाथी लेकर (तुर्क सेना के) सामने चल पड़ा। तुर्क सेना से युद्ध हुआ। शक (तुर्क) सेना छिन्न-भिन्न हो गई। सुल्तान (शहाबुद्दीन) जीवित पकड़ा गया। सोने की बेड़ियों में डाला जाकर वह योगिनीपुर (दिल्ली) लाया गया और [पृथ्वीराज की ?] माता के कहने पर छोड़ दिया गया। इसी प्रकार वह सात बार बँध-बँध कर मुक्त हुआ और करद बना लिया गया।

[1] पुरातन प्रबंध संग्रह, प्रकाशक सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३६ ई०।

[2] वही; पृ० ८६-८७ तथा ८८-९०।

[3] देखिए अन्यत्र 'पृथ्वीराज रासो का रचना काल' शीर्षक।

[शल्यहस्त] प्रतापसिंह कर वसूल करने गर्जनक (गजनी) जाया करता था। एक बार वह एक मसजिद देखने गया और वहाँ दरवेश आदि को उसने एक लक्ष स्वर्ण टंकक (सिक्के) दिए। [इस पर] मन्त्री (कैंवास) ने राजा से कहा, 'देव, गर्जनक (गजनी) के [कर के] धन से [राजकार्य का] निर्वाह होता है [और उसे] वह (प्रतापसिंह) इस प्रकार बर्बाद कर रहा है।' राजा ने [प्रतापसिंह से] पूछा, तो उसने कहा 'देव की ग्रहविषमता जान कर ही उस समय मैंने [यह धन] धर्म में व्यय किया था। ज्योतिषियों से मैंने पूछा था, उन्होंने आप को कष्ट बताया था।'

इधर शल्यहस्त (प्रताप सिंह) ने राजा के कानों में लगकर कहा, 'मन्त्री कैंवास ही बार बार तुर्कों को लाता (बुलाता) है।' राजा [यह सुनकर] रुष्ट हुआ, और इसलिए उसने मन्त्री (कैंवास) को मारने की ठानी। इसके बाद रात्रि में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) के उठने पर मन्त्रीव(कैंवास) जब प्रतोली (मुख्यद्वार) से निकल रहा था, राजा ने दीपक के अभिज्ञान से बाण छोड़ा। वह (बाण) मन्त्री (कैंवास) की कक्ष (काँख) के नीचे से होता हुआ दीपधर के हाथ में जा लगा और [उसके] हाथ से दीपक गिर गया। कोलाहल होने पर राजा ने पूछा, 'अरे, यह (कोलाहल) क्या (क्यों) है ?' [लोगों ने कहा,] 'देव, घातक के द्वारा मन्त्री (कैंवास) पर बाण छोड़ा गया था।' [पृथ्वीराज ने पूछा,] 'अरे ! क्या मन्त्री [कैंवास] जीवित है ?' [लोगों ने कहा,] 'देव, वे कुशल पूर्वक हैं।' इसके बाद रात्रि के पिछले भाग में द्वारभट्ट चन्द बलिद्दिक (बरदाई) ने राजा [पृथ्वीराज] से कहा—

(१)
इक्कु बाण पहुवीसु जु पइं कैंवासह मुक्कओ।
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरि वणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
न जाणउं चंद बलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह॥[१]

(२)
अगहु म गहि दाहिमओ [राय ?] रिपु राय खयंकरु।
कूडु मंत्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गरु।
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खिवउं बुज्झई।
जंपइ चंद बलिद्द मज्झ परमक्खर सुज्झइ।
पहु पहुविराय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि।
कइंबास बिआस विसट्ठ विणु मच्छि बंधि बद्धओ मरिसि॥[२]

१. अर्थात् 'हे पृथ्वीश (पृथ्वीराज), तुमने जो एक (पहला) बाण कइंबास को [लक्ष्य करके] छोड़ा, उस बाण ने [उसके] हृदय के भीतर खलबली कर दी और धीर (कइंबास) की काँख के नीचे से वह चूक [कर निकल] गया। हे सोमेश्वरनन्दन, तुमने दूसरा बाण हाथ में साँधा तो [उसके लगने से] वह भ्रमित हो गया। इस प्रकार वह दाहिमा (कइंबास) [पृथ्वी में] गड़कर साँभर के बन को खन खोद रहा है। इस लोभी और पलक्क (लंपट) से इस बार (समय) [पृथ्वी का] यह खल गुड (कवच) स्फुट रूप में नहीं छोड़ा जा रहा है। बलिद्दिक चन्द कहता है, न जाने क्यों यह (कइंबास) [अपने कर्मों के] इस फल से नहीं छूट पा रहा है।'

२ अर्थात् '[हे राजा,] रिपुराज (शहाबुद्दीन) को क्षय (नष्ट) करने [की सामर्थ्य रखने] वाला दाहिमा (कइंबास) अगह (अग्राह्य अथवा अगाध) मार्ग में [जा चुका] है [जिससे वह वापस नहीं बुलाया जा सकता है]। [तुम] कूट मन्त्र मत स्थित करो [क्योंकि] इस प्रकार [तुम्हारा शत्रु] जम्बू [-पति] से

राजा (पृथ्वीराज) ने भेद के भय से अन्धकार करा दिया। पहले प्रहरिक काल में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) में [जब] मंत्री (कैंवास) आया, तो वह विसूत्रित (अलग) कर दिया गया। भट्ट (चंद बलिद्दिक) निष्कासित कर दिया गया। उस (चंद) ने कहा, 'पुनः तुम्हारे कल्याणमत के परे मैं [कुछ] नहीं कर रहा हूँ। मैं सिद्ध सारस्वत (सरस्वती-पुत्र) हूँ। तुम म्लेच्छ के द्वारा बँधकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होगे।' [ऐसा कहता हुआ] वह निकल कर वाराणसी चला गया। [वहाँ पर] राजा जयचन्द ने [उससे] कहा, 'मैंने तुम्हें बुलाया, किंतु तुम नहीं आए।' [चंद ने उत्तर दिया,] 'देव, तुम भी मृत्यु के निकट हो, इसलिए मैं यहाँ भी नहीं ठहरूँगा।'

इधर कैंवास के हटने पर नया मन्त्री हुआ। राजा ने [शल्यहस्त] प्रताप सिंह के भतीजे को अत्यधिक शक्तिसपन्न समझकर कारागार में डाल दिया। मन्त्री (कैंवास) अलग होने पर भी [राजा को] छोड़ नहीं (चैन लेने नहीं दे) रहा था। वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) से मिला। उसने शकों (तुर्कों) का कटक बुलाया। [तुर्कों को] आया सुनकर पृथ्वीराज सामने निकल आया। तीन लाख घोड़े, दस सहस्र हाथी, पंद्रह लाख मनुष्य, इस प्रकार·····। आशी (हाँसी) का अतिक्रमण करके [तुर्क] कटक आगे चला गया। इसके अनन्तर सुल्तान (शहाबुद्दीन) की मन्त्री (कैंवास) से बातें हुई। उसने कहा, 'समय आने पर बुलाऊँगा।'

अब पृथ्वीराज दस दिन तक सोया रहा, परन्तु कोई उसे जगाता नहीं था, [क्योंकि] जो उसे जगाता था, उसी को वह मार डालता था। इसी समय प्रधान (कैंवास) के द्वारा सुल्तान बुलाया गया। राजा जागता नहीं था। धीरे धीरे कितने ही सामंत युद्ध करके मारे गए। कुछ भाग भी गए। सहस्र अश्वों······के शेष रहने पर बहिन ने कहा, 'तुम अपने ही लोगों को मारते हो। तुम्हारे सोते सोते [तुम्हारा] सारा कटक मारा गया।' राजा [पृथ्वीराज] ने कहा, 'मैं मंत्री (कैंवास)···।' उसके विनष्ट होने पर राजा (पृथ्वीराज) शाकंभरी [देवी] को स्मरण करके नाटारंभाश्व पर चढ़कर भागा। भाई (यशोराज) सहित वह पीछा करने वाले तुर्कों के हाथ में नहीं आया।

इधर आशी (हाँसी)······देश में दो पर्वतिकाओं के बीच में भट्ट [चन्द] था। [वहाँ] राजा (पृथ्वीराज) को भेजकर जसराज (यशोराज) खड़ा हो गया। वह [सुल्तान के] कुछ कटक को [काट कर] खलिहान कर चुका था [जब] वह वहाँ मारा गया। सुल्तान साहबदीन (शहाबुद्दीन) ने उस मन्त्री (कैंवास) को······। '[राजा] पूँछ रहित सर्प के समान कर दिया गया है, [अपने] स्थान पर पहुँच जाने पर यह किस प्रकार पकड़ा जा सकेगा?' उस [मन्त्री] ने कहा, 'छल से।' जैसे ही घोड़ा [नाटारंभाश्व] नाचने लगा, बाजा बजाया जाने लगा, ऐसा करने से घोड़ा [नाटारंभाश्व] नाचता ही रह गया, चला नहीं [और] राजा के गले में सिंगिनी डाल दी गई। सुल्तान ने राजा को पकड़ लिया। स्वर्ण की बेड़ियों में [उसे] डाल कर और योगिनीपुर (दिल्ली) लाकर [सुल्तान ने उससे] कहा, 'राजा, यदि तुम्हें जीवित छोड़ दूँ तो तुम क्या करोगे?' राजा (पृथ्वीराज) ने कहा, 'मैंने तुम्हें सात बार मुक्त किया है; क्या तुम मुझे एक बार भी नहीं छोड़ रहे हो?'

मिलकर झगड़ रहा है। मैं तुम्हें सब परिणाम सिखा रहा हूँ कि तुम सीख कर भी जान सको। बलिद्द चन्द कहता है, मुझे परम अक्षर (ज्ञान) सूझ रहा है। हे प्रभु पृथ्वीराज, साँभरपति, साँभर के शकुन को सँभालो (स्मरण करो)। व्यास (बुद्धिमान) और वशिष्ठ (श्रेष्ठ) कइंवास के बिना तुम [शत्रु द्वारा] मत्स्यबंध (मछली की भाँति जाल) में बँधकर मृत्यु को प्राप्त होगे।'

अब जिसकी [आँखों की] पुतलियाँ निकाल ली गई थीं, ऐसे राजा (पृथ्वीराज) के सम्मुख सुल्तान (शहाबुद्दीन) सभा में बैठा। राजा (पृथ्वीराज) खेद कर रहा था। उससे प्रधान (कैंवास) ने कहा, 'देव, क्या किया जाए? दैव से ही यह [संकट] उत्पन्न हुआ है।' राजा ने कहा, 'यदि मुझे सिंगिनी और वाण दे दो, तो इस (सुल्तान) को मार डालूँ।' उसने कहा, 'ऐसा ही करिए।' फिर उसने जाकर सुल्तान (शहाबुद्दीन) से, निवेदन किया, 'यहाँ पर तुमको नहीं बैठना चाहिए।' [अतः] वहाँ अपने स्थान पर सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने लोहे का एक पुतला बिठा दिया। राजा (पृथ्वीराज) को सिंगिनी दी गई। राजा (पृथ्वीराज) ने वाण छोड़ा [और] लोहे के पुतले के दो टुकड़े कर दिए। राजा (पृथ्वीराज) ने [तदनंतर] सिंगिनी त्याग दी। [उसने अपने मन में कहा,] मेरा काम तो हो नहीं पाया, [इसलिए अब] कोई और [मुझे ही] मारेगा।' इसके बाद वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) के द्वारा गढ़े में डाला जाकर ढेलों से मारा गया। सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने कहा, 'इसके रुधिर का भूमि पर गिरना ही शुभ है।' तदनुसार वह मारा गया। सम्वत् १२४६ में वह स्वर्ग सिधारा। योगिनीपुर (दिल्ली) लौट कर सुल्तान वहीं रह गया।"

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में उपर्युक्त प्रबन्ध के अतिरिक्त नीचे लिखा हुआ वृत्त भी दिया हुआ है--

"योगिनीपुर (दिल्ली) में श्री प्रथिमराज (पृथ्वीराज) के ऊपर अठारह लाख घोड़ों (घुड़सवार सेना) के साथ बादशाह (शहाबुद्दीन) चढ़ आया। तब एकादशी का पारण करके राजा निद्राभिभूत हो सो गया था। तब महायुद्ध के [उपस्थित] होने पर (गढ़ का) प्राकार टूटकर गिर पड़ा। डर के मारे राजा को कोई जगाता नहीं था। कुब्जिका ने (उसका) अँगूठा दबाकर जगाया। तब उसको मारकर वह फिर सो गया। दूसरे दिन चार वीरों के द्वारा वह जगाया गया। स्वरूप (परिस्थिति) को जानने पर वह प्राकार के वातायन में बैठा। शत्रुओं ने खूब युद्ध किया। [वह पकड़ा गया] तब अत्यधिक व्याकुलता के साथ राजा (पृथ्वीराज) ने तारा देवी का स्मरण किया। वह प्रकट हुई। उसी के द्वारा बादशाह के समीप वह रात्रि में मुक्त किया गया। जब उसे मारने के लिए प्रहार किया गया, विष्णु के दर्शन हुए और वह छोड़ दिया गया, दूसरी बार [इसी प्रकार] जटाधारी (शिव) दिखाई पड़े वह छोड़ दिया गया, तीसरी बार ब्रह्मा दिखाई पड़े और [तारा] देवी ने कहा भी, इसलिए [वह] मारा नहीं गया। [अपने] वस्त्र, हथियार आदि लेकर वह चला आया। सबेरे बादशाह ने वह सब देखा और कहा, '[तुम] जैसे वस्त्र लाये हो, वैसे मारे [भी] जाओगे।' बादशाह ने सारे वस्त्र माँगे। राजा ने कहा, 'जाने पर इसका सतगुना भेजूँगा।' ऐसा होने पर सेना वापस चली गई। तदनन्तर राजा जीवग्राह के द्वारा पकड़ा गया। [उसके] बन्दी हो जाने पर उसको दिया गया भोजन कुत्ता खा गया, यह देखकर वह विषण्ण हुआ। [उसने मनमें कहा] 'अरे, यह क्या? मेरी रसोई सात सौ सांड़नियों के द्वारा लाई जाती थी [और अब यह अवस्था हो गई!] तब तो हम लोग युद्ध के द्वारा मारे गए।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अन्तिम वृत्त कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से नहीं, तारा देवी और देवताओं के स्मरण का महत्व प्रतिपादित करने के लिए लिखा गया है। कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से केवल पृथ्वीराज-प्रबन्ध ही विचारणीय है।

पृथ्वीराज-प्रबन्ध के लेखक ने यह नहीं बताया है कि उसकी कथा उसे किस रचना से प्राप्त हुई है। अतः इस प्रसंग में पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त पृथ्वीराज-प्रबन्ध की कथा का आधार क्या है। ऊपर दिए हुए 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' में तीन कथायें आती हैं—एक तो पृथ्वीराज पर किए हुए शहाबुद्दीन के असफल आक्रमण की है, दूसरी कैंवास के मन्त्रिपद से हटाए जाने और द्वारभट्ट चन्द के निष्कासित किये जाने की है, और तीसरी पृथ्वीराज पर किए हुए शहाबुद्दीन के

अन्तिम आक्रमण और पृथ्वीराज के अन्त की है। अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के जितने पाठ प्राप्त हुए हैं उनमें भी ये तीन कथाएँ आती हैं—केवल एक पाठ में जो 'लघुतम' कहा जाता है शहाबुद्दीन के उक्त असफल आक्रमण की कथा नहीं आती है, फिर भी उसमें शहाबुद्दीन के एक असफल आक्रमण का उल्लेख स्पष्ट रूप से होता है। किन्तु दोनों का मिलान करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराज रासो' में इन कथाओं की कल्पना, कुछ अति प्रचलित सामान्य तत्वों को छोड़कर, भिन्न भिन्न प्रकार से हुई है।

'पृथ्वीराज रासो' में उपर्युक्त तीनों कथाएँ इस प्रकार विवृत हैं:—

१—उसके तीन पाठों बृहत्, मध्यम तथा लघु में पहली कथा इस प्रकार कही गई है: गुर्जर का चौलुक्य नरेश भीम आबू के सलष पँवार की कन्या इच्छिनी से विवाह करना चाहता था। उसने सलष के पास इस आशय का संदेश भेजा। सलष के अस्वीकार करने पर उसने उक्त आबूपति पर आक्रमण कर दिया। सलष ने जो पृथ्वीराज का सामन्त था, जब इस आक्रमण की सूचना पृथ्वीराज को भेजी, पृथ्वीराज सेना लेकर भीम का सामना करने के लिए चल पड़ा। तब तक दूसरी ओर से शहाबुद्दीन ने भी आक्रमण कर दिया था, इसलिए उसने उक्त सेना के दो भाग कर एक को कँवास के नायकत्व में भीम का सामना करने के लिए भेज दिया और दूसरे को लेकर शहाबुद्दीन का सामना करने के लिये स्वयं बढ़ा। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की सेनाओं की मुठभेड़ सरवर में हुई, और भीम से कँवास का युद्ध सोझत्ती में हुआ। दोनों युद्धों में पृथ्वीराज को एक साथ विजय प्राप्त हुई, इससे पृथ्वीराज की आन बहुत बढ़ गई। 'लघुतम पाठ' में इन दो युद्धों के विवरण नहीं आते हैं, किंतु उसमें भी ऐसे छन्द आते हैं जिनमें इन दोनों युद्धों में पृथ्वीराज को विजय प्राप्त होने का उल्लेख होता है।[1]

२—'पृथ्वीराज रासो' के समस्त पाठों में दूसरी कथा इस प्रकार कही गई है: पृथ्वीराज की एक दासी थी जो कर्नाट देश की थी। उस पर पृथ्वीराज का मन्त्री कँवास अनुरक्त हो गया था। अवसर पाकर एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए गया हुआ था, रात्रि में कँवास उस दासी के कक्ष में गया। पटरानी को एक दासी ने यह सूचना दी, तो उसने पृथ्वीराज को अविलम्ब आने के लिए सन्देश भेजा। संदेश पाकर पृथ्वीराज आ गया। उसने बाण का संधान किया। पहला बाण तो कँवास की काँख के नीचे से होता हुआ निकल गया, किन्तु दूसरा बाण उसके प्राण लेकर निकला। पृथ्वीराज ने मृत कँवास को गड्ढा खुदवा कर गड़वा दिया। यह घटना रातोंरात इस प्रकार घटित हुई कि किसी को पता तक नहीं लगा। पृथ्वीराज पुनः आखेट के लिए लौट गया। दूसरे दिन आखेट से आकर उसने दरबार किया। उसमें उसने कँवास के सम्बन्ध में प्रश्न किया कि वह कहाँ था किन्तु किसी को भी यह ज्ञात नहीं था कि कँवास कहाँ था। पृथ्वीराज ने चन्द से भी यही प्रश्न किया। रात्रि में चन्द से सारी घटना सरस्वती ने बता दी थी, इसलिये चन्द ने कँवास के वध की समस्त घटना विवृत्त कर दी। दरबार समाप्त हुआ। इधर कँवास की स्त्री को जब यह ज्ञात हुआ, उसने चन्द से कँवास का शव दिलाने के लिये अनुरोध किया। चन्द ने पृथ्वीराज से कँवास का शव उसकी स्त्री को प्रदान किए जाने के लिये प्रार्थना की, तो पृथ्वीराज ने उसकी प्रार्थना इस शर्त पर स्वीकार की कि वह उसे अपने साथ ले जाकर कन्नौज दिखावेगा। चन्द के इसे स्वीकार करने पर कँवास का शव उसकी विधवा को दिया गया, जिसको लेकर वह सती हुई।

३—तीसरी कथा पृथ्वीराज के तीन पाठों बृहत्, मध्यम तथा लघु में इस प्रकार कही गई है: कन्नौज से संयोगिता को लाने के अनन्तर पृथ्वीराज विलास में लिप्त हो गया। वह महल के

[1] दे० प्रस्तुत संस्करण के २.३, ३.६; ८.२ तथा ८.४।

भीतर ही पड़ा रहता था, और इस विलासाधिक्य के कारण उसका पौरुष भी घट गया था। उसके सामंत उसके इस आचरण से बहुत असन्तुष्ट हो गए थे। उधर शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर आक्रमण करने की घात में निरन्तर रहता था। अतः उपयुक्त अवसर समझकर उसने पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया। राजगुरु तथा चन्द के प्रयत्नों से पृथ्वीराज की विलास-निद्रा भंग हुई। किन्तु विलम्ब हो चुका था। संयोगिता के लिए किए हुए कन्नौज के युद्ध में उसके अधिकतर वीर सामन्त कट चुके थे, रहे सहे जो थे, वे भी रूठ गए थे, और एक प्रमुख सामन्त हाहुलीराय जो जम्बू (जम्मू) का अधिपति था शहाबुद्दीन से मिल भी गया था। इसलिए पृथ्वीराज इस बार शहाबुद्दीन का सामना सफलता पूर्वक नहीं कर सका। युद्ध में सम्मिलित सामन्तों में से अधिकतर के कट जाने के बाद वह स्वयं युद्ध करने लगा। इसी समय एक तुर्क सरदार के द्वारा वह बन्दी हुआ। तदनन्तर शहाबुद्दीन उसे गजनी ले गया जहाँ उसने कुछ समय पीछे उसकी आँखें निकलवा लीं। इस बीच चन्द जम्बूपति हाहुलीराय को मनाकर पृथ्वीराज के पक्ष में करने के लिए उसके पास गया हुआ था, तो हाहुलीराय ने उसे जालन्धर की देवी के मंदिर में देवी का आदेश प्राप्त करने के बहाने ले जाकर बन्द कर दिया था। किसी प्रकार वहाँ से मुक्त होकर जब चन्द दिल्ली लौटा, तो उसने पृथ्वीराज के बन्दी बनाए जाने और नेत्रविहीन किए जाने की सारी घटना सुनी। उसने अविलम्ब गजनी की राह ली और अपने स्वामी पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन से उद्धार कराने का संकल्प किया। गजनी पहुँचकर शहाबुद्दीन को उसने पृथ्वीराज का शर-सन्धान कौशल देखने के लिये राजी कर लिया। पृथ्वीराज शब्दवेध में अत्यन्त कुशल था। कौशल-प्रदर्शन का आयोजन हुआ। चन्द ने शहाबुद्दीन से कहा कि जब तक शहाबुद्दीन स्वयं तीन बार पृथ्वीराज को बाण चलाने का आदेश न देगा, वह बाण न चलाएगा। अतः शहाबुद्दीन ने उसे तीन बार आदेश देना भी स्वीकार कर लिया। शहाबुद्दीन का तीसरा आदेश होते ही पृथ्वीराज ने जो बाण छोड़ा, उसने शहाबुद्दीन का प्राणांत कर दिया। इसके अनन्तर पृथ्वीराज का भी प्राणांत हो गया। 'पृथ्वीराज रासो' के लघुतम पाठ में भी यह समस्त कथा है, केवल हाहुलीराय के सम्बन्ध के विस्तार उसमें नहीं हैं।

ऊपर दी हुई 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराज रासो' की इन कथाओं में जो साम्य तथा अन्तर है वह इस प्रकार है :—

पहली कथा में साम्य इतना ही है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में एक युद्ध हुआ जिसमें शहाबुद्दीन को पराजय मिली। अन्तर दोनों में यह है कि उसी समय 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज ने भीम चौलुक्य जैसे एक अन्य प्रबल शत्रु का भी सफलता पूर्वक सामना किया, जिससे उसकी शक्ति की आन बहुत बढ़ गई।

दूसरी तथा तीसरी कथाओं के सम्बन्ध में दोनों में जहाँ पर साम्य इस बात में है कि पृथ्वीराज ने कैंवास और शहाबुद्दीन पर बाण छोड़े, अन्तर यह है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में दोनों अवसरों पर वह अकृतकार्य हुआ है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में वह दोनों अवसरों पर पूर्ण रूप से कृतकार्य हुआ है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में कैंवास पर बाण-प्रहार पृथ्वीराज यह समझकर करता है कि वही शहाबुद्दीन को बार बार बुलाता है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में उसकी लंपटता के कारण वह उसे मारता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पृथ्वीराज कैंवास पर एक ही बाण छोड़ता है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में उसके चूक जाने पर वह दूसरा बाण भी छोड़ता है, जो कैंवास का प्राणांत कर देता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में कैंवास और चन्द दोनों को पृथ्वीराज उनके पदों से अलग कर देता है, किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' में वह कैंवास का प्राणांत कर देता है और चन्द को पूर्ववत् अपना कृपापात्र और सहचर बनाए रखता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में अलग किए जाने पर कैंवास अपने स्वामी के शत्रु से मिलकर स्वामी का पराभव और अन्त कराता है, और चन्द भी अपने स्वामी के एक शत्रु के पास जाता है,

यद्यपि वह वहाँ रुकता नहीं है, किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' में दो में से एक बात भी नहीं घटती है; 'पृथ्वीराज रासो' में शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर स्वयं यह जानकर आक्रमण करता है कि उसकी शक्ति कन्नौज के युद्ध में क्षीण हो चुकी है, और उसके सामन्त उससे रूठे हुए हैं। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पृथ्वीराज इस युद्ध में नाटारंभाश्व पर चढ़ कर भाग निकलता है, यद्यपि मन्त्री कैंवास के छल से पकड़ा जाता है; 'पृथ्वीराज रासो' में वह उठ कर युद्ध करता है और युद्ध करते हुए छल से पकड़ा जाता है। दूसरी ओर, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उस जम्बूपति हाहुली राय का कोई उल्लेख नहीं होता है जिसने 'पृथ्वीराज रासो' में शत्रु पक्ष से मिल कर अपने राजा पृथ्वीराज का पराभव कराया है। अतः यह नितान्त प्रकट है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' की कथा सर्वथा 'पृथ्वीराज रासो' के किसी भी ज्ञात रूप का अनुसरण नहीं करती है। अन्यत्र हम देखते हैं कि वह सर्वथा 'हम्मीर महाकाव्य' की कथा का भी अनुसरण नहीं करती है। फिर भी वह अंशतः इसका और अंशतः उसका अनुसरण करती है,[1] इसलिए ऐसा लगता है कि वह 'रासो' तथा 'हम्मीर महाकाव्य'—दोनों की कथाओं को सामने रखते हुए कुछ नई कल्पना का भी पुट देते हुए बिनी-बनाई गई है।

कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सम्मुख 'पृथ्वीराज रासो' का कोई अन्य पाठ रहा होगा जो अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुआ है, और बहुत सम्भव है कि 'रासो' का वही मूल अथवा कम से कम प्राचीनतर पाठ रहा हो। किन्तु यदि उद्धृत छन्दों को ध्यान पूर्वक देखा जाए तो यह कल्पना निराधार प्रमाणित होती है।

उद्धृत प्रथम छन्द में कहा गया है कि प्रथम बाण-प्रहार से अकृतकार्य होने पर कैंवास पर 'पृथ्वीराज ने दूसरा बाण छोड़ा : 'बीअं कर संधीउ भंभइ सूमेसरनंदण।' यह विवरण स्पष्ट ही 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के विवरण के विरुद्ध है। फिर छन्द में कहा गया है कि 'इस प्रकार दाहिमा (कैंवास) [पृथ्वी में] गड़ कर साँभर के वन को खन-खोद रहा है' : 'एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुदइ सइंभरि वणु' और 'स्फुट रूप से इस लोभी और लंपट (कंवास) से [पृथ्वी का] वह खल (कठिन) गुड (कवच) नहीं छोड़ा जा रहा है' : 'फुड छंडि न जाइ इह लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह', जिससे यह प्रमाणित है कि कैंवास मारा जाकर भूमि में गाड़ दिया गया था। यह विवरण तो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के कैंवास सम्बन्धी समस्त विवरणों के विरुद्ध जाता है। इतना ही नहीं, छन्द में जो 'पलकडु' (पलक्क=लंपट) शब्द आता है, वह भी कैंवास-वध की उस कथा को प्रमाणित करता है जो 'रासो' के समस्त पाठों में आती है।

दूसरे छन्द में भी इसी प्रकार कहा गया है कि 'यह (शत्रु) [इस बार] जम्बू [पति] से मिल कर तुम से झगड़ रहा (युद्ध कर रहा) है' : 'कूड मंत्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गरु', और जम्बू पति (हाहुलीराय) से मिल कर शहाबुद्दीन के पृथ्वीराज से युद्ध करने की कथा 'रासो' के ही पाठों में आती है, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में नहीं।

साथ ही ऊपर उद्धृत दोनों छन्द 'पृथ्वीराज रासो' में मिल जाते हैं। पहला तो सभी प्राप्त पाठों में मिलता है, दूसरा उसके मध्यम तथा बृहत् पाठों में मिलता है। इसलिए यह प्रकट है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धरण के लिए छन्दों को 'रासो' से लेते हुए भी कथा-योजना में पूरी स्वतंत्रता बरती गई है और इसलिए 'पृथ्वीराज प्रबंध' के आधार पर हम यह नहीं मान सकते हैं कि 'रासो' का कोई ऐसा रूप भी था जिसमें कथा लगभग वह आती थी जो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में आती है।

अन्यत्र हम देखते हैं कि 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के 'जयचन्द-प्रबन्ध' में जो छन्द चन्द के कहे गए बताए गए हैं, वे चन्द के नहीं हैं जल्ह कवि के हैं—'जल्ह कवि' की छाप स्पष्ट रूप से उक्त

[1]. दे० इसी भूमिका में आया हुआ 'हम्मीर महाकाव्य और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

दोनों छन्दों में आई हुई है।[1] अतः इन जैन प्रबन्धों की कथा के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' या चंद द्वारा रचित पृथ्वीराज विषयक काव्य की कथा की कल्पना करना उचित न होगा।

किंतु क्या, इसी प्रकार, हम यह भी कह सकते हैं कि 'पृथ्वीराज प्रबंध' में उद्धृत चन्द के छन्दों से 'पृथ्वीराज रासो' के स्वरूप के सम्बन्ध में भी हम कोई कल्पना नहीं कर सकते हैं? कुछ विद्वानों का यही मत है। एक विद्वान ने लिखा है, "मुनि जिन विजय जी को मिले चार फुटकर छप्पयों से 'पृथ्वीराज रासो' का रचा जाना सिद्ध नहीं होता है। हो सकता है कि चन्द नामक किसी कवि ने 'पृथ्वीराज' की जीवन-घटनाओं पर कुछ फुटकर छन्द ही लिखे हों, इस चन्द का अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो से सम्बन्ध जोड़ना अनुचित है।"[2] किंतु इन छन्दों से यह स्वतः प्रकट है, जैसा हमने ऊपर देखा है, कि ये स्वतन्त्र या फुटकर ढंग पर लिखे हुए छन्द नहीं हैं: ये तो कुछ विस्तृत प्रकरणों के छन्द हैं, और उनके अभाव में इनकी रचना की कल्पना नहीं की जा सकती है। अतः यह मानना पड़ेगा कि ये छन्द चन्द की किसी प्रबंध कृति से लिए गए हैं, भले ही उसका नाम 'पृथ्वीराज रासो' रहा हो या कुछ और। और हम ऊपर यह भी देख चुके हैं कि 'पृथ्वीराज प्रबंध' में उद्धृत उपर्युक्त छन्द 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' के कथाप्रबंध में पूर्ण रूप से ठीक बैठते हैं, उसमें वे मिलते तो हैं ही। अतः 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' से इन छन्दों के रचयिता चंद का सम्बन्ध जोड़ना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं माना जा सकता है। यह प्रश्न भिन्न है कि 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' में इन छन्दों के रचयिता चन्द की रचना कितनी है, और कितनी दूसरों की है।

अब दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सामने 'रासो' का कौन सा पाठ था। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के ऊपर उद्धृत दो छन्दों में से द्वितीय इस सम्बन्ध में एक निश्चयात्मक प्रकाश डालता है। नीचे बहिरंग तथा अन्तरंग संभावनाओं की दृष्टि से इस पर विचार किया जा रहा है।

'रासो' के विभिन्न पाठों में से यह केवल मध्यम तथा बृहत् पाठों की प्रतियों में मिलता है, शेष में नहीं मिलता है; और मध्यम तथा बृहत् की प्रतियों में भी एक स्थान पर नहीं मिलता है, भिन्न-भिन्न स्थानों पर और भिन्न-भिन्न प्रसंगों में मिलता है; मध्यम की ना० प्रति में यह छन्द धीर पुंडीर के द्वारा शहाबुद्दीन के पराजित और बन्दी होने के अनन्तर पृथ्वीराज के द्वारा उसके मुक्त किए जाने के प्रसंग में आता है (खंड ३९, छन्द १४९); टॉड संग्रह की प्रति सं० ६० में यह छन्द वाण-वेध-प्रकरण में आता है, जिसमें शब्द-वेध कौशल से पृथ्वीराज शहाबुद्दीन का प्राणांत करता है (बानवेधखंड, छन्द २१६); शा० उ० तथा स० में यह छन्द शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व हुई पृथ्वीराज के सामन्तों की विचार-गोष्ठी के प्रसंग में आता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में हम ऊपर देख ही चुके हैं कि यह छन्द कैंवास वध-प्रकरण में आता है। अतः जब हम यह देखते हैं कि यह छन्द रचना के लघुतम तथा लघु पाठों की किसी भी प्रति में नहीं आता है और उसके मध्यम तथा बृहत् पाठों में और 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में भिन्न-भिन्न स्थानों और प्रसंगों में मिलता है, इसकी प्रामाणिकता नितान्त संदिग्ध लगने लगती है।

यदि हम प्रसंग की दृष्टि से देखें तो प्रकट है कि यह छन्द कैंवास-वध प्रकरण का नहीं हो सकता है, क्योंकि उस समय तक जम्बूपति और शहाबुद्दीन की कूट संधि का प्रसंग 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं आता है और इस छन्द में जम्बूपति और शहाबुद्दीन की कूट संधि का स्पष्ट उल्लेख होता है;

[1] दे० 'हिन्दी रासो परंपरा का एक विस्तृत कवि जल्ह', हिन्दी अनुशीलन, भाग १०, अंक १, पृ० १।

[2] श्री मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थान का पिंगल साहित्य', क्रमशः पृ० ४९ तथा ३८।

धीर पुंडीर द्वारा शहाबुद्दीन के पराजित और बन्दी होने तथा पृथ्वीराज के द्वारा उसके मुक्त किए जाने के प्रसंग का भी यह नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तो शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के एक सामन्त द्वारा पराजित और बन्दी था ही; बाण-वेध प्रसंग का भी यह नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तो सारा युद्ध समाप्त था, पृथ्वीराज स्वयं शहाबुद्दीन का बन्दी था : ऐसे समय में जब कि चन्द पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन के वध के लिए तैयार करने गया था वह और भी पृथ्वीराज को निरुत्साह करने वाले ऐसे वाक्य नहीं कह सकता था कि वह शत्रु द्वारा मत्स्य वेध में वेधकर मृत्यु को प्राप्त होगा। यदि यह छन्द किसी हद तक प्रसंग-सम्मत कहा जा सकता था तो केवल शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व हुई पृथ्वीराज के सामन्तों की विचार-गोष्ठी के प्रसंग में, जिसमें यह 'रासो' के वृहत् पाठ की प्रतियों में आता है। उक्त अन्तिम युद्ध में लघु, मध्यम तथा वृहत् पाठों की समस्त प्रतियों के अनुसार जम्बूपति हाहुलीराय शहाबुद्दीन से मिल गया था। किन्तु यहाँ पर भी प्रश्न यह उठता है कि चन्द को अपने स्वामी पृथ्वीराज को इस प्रकार उसके मरण की विभीषिका दिखाकर निरुत्साह करने की कौन सी आवश्यकता थी जब कि उसके सभी सामन्त उक्त विचार-गोष्ठी में शहाबुद्दीन का वीरतापूर्वक सामना करने के लिए उसे परामर्श दे रहे थे। चन्द के इस कथन पर पृथ्वीराज की प्रतिक्रिया क्या हुई, यह भी इस प्रसंग में 'रासो' के उपर्युक्त किसी पाठ में नहीं बताया गया है। इसलिए यह प्रकट है कि 'रासो' के जिन दो पाठों की प्रतियों में यह छन्द आता है, उनमें भी यह छन्द पहले से नहीं था, बाद में मिलाया गया और असंगत है।

इस प्रसंग में एक और बात भी विचारणीय है : 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धृत प्रथम छन्द में चन्द ने ही कैंवास को लोभी और पलक (लंपट) कहा है :—

फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भउ वारइ पलकउ खल गुलह।

जबकि इस दूसरे छन्द में उसे चन्द ही ने व्यास (बुद्धिमान) और वसिष्ठ (श्रेष्ठ) कहा है :—

कैंवास विआस विसट्ठ विनु मच्छि बन्धि बद्धओं मरिसि।

चन्द के ही कहे जाने वाले इन दोनों कथनों में विरोध प्रत्यक्ष है। और कैंवास को लोभी-लंपट कहने वाला चन्द का उक्त छन्द रचना की समस्त प्रतियों में उसी स्थान पर पाया जाता है जिस पर वह 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पाया जाता है, इसलिए यह प्रकट है कि 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' का उपर्युक्त दूसरा छन्द मूल रचना का नहीं है, प्रक्षिप्त है, और 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सामने 'रासो' का प्रामाणिक रूप नहीं, कोई प्रक्षिप्त रूप ही था।

—:*:—

११. 'सुर्जन चरित महाकाव्य'
और
'पृथ्वीराज रासो'

चंद्रशेखर कृत 'सुर्जनचरित महाकाव्य'[१] की रचना अकबर के समकालीन और उसके अधीनस्थ हाड़ा राय सुर्जन की प्रेरणा से प्रारम्भ हुई थी,[२] किंतु उसकी समाप्ति उसके उत्तराधिकारी राय भोज के समय में हुई थी।[३] कवि ने ग्रन्थ का रचना-काल नहीं दिया है, किन्तु इसमें उसने राय सुर्जन के देहान्तोपरान्त राय भोज के राज्यारोहण का वर्णन मात्र किया है, उसके शासन-काल की घटनाओं का कोई विवरण नहीं दिया गया है, इसलिए समझना चाहिए कि ग्रन्थ उसके राज्यारोहण के कुछ ही बाद समाप्त हुआ था। 'आईन-ए-अकबरी' में अकबर के शासन से सम्बन्धित व्यक्तियों की नामावली देते हुए राय सुर्जन (संख्या ९६) तथा राजा भोज (संख्या १७५) दोनों के नाम दिए गए हैं, और राय सुर्जन के सम्बन्ध में 'आईन-ए अकबरी' के योग्य संपादक ने टिप्पणी देते हुए लिखा है कि 'तबकात-ए-अकबरी' (रचना-काल १००१ हि० = १६४९ वि०) से स्पष्ट है कि राय सुर्जन सं० १६४९ वि० के कुछ पूर्व ही दिवंगत हो चुका था।[४]

राय सुर्जन के एक पूर्वज होने के नाते इसमें चौहान पृथ्वीराज का भी वृत्त आया है। यह रचना के दसवें सर्ग में है। नीचे इस सर्ग के श्लोकों का उल्लेख करते हुए उस वृत्त का सार दिया जा रहा है :—

श्लोक १-१० : भंगदेव का पुत्र सोमेश्वर हुआ, जिसने कुल परम्परागत राज्य का शासन किया। सोमेश्वर ने कुन्तलेश्वर की पुत्री कर्पूर देवी से विवाह किया और कर्पूर देवी से उसके दो पुत्र पृथ्वीराज तथा माणिक्यराज हुए। पिता के दिए हुए राज्य को आपस में बाँट कर श्रेष्ठ बाहुबल से दोनों भाइयों ने शासन किया। पृथ्वीराज ने अपने पराक्रम से राज्य का विस्तार किया।

११-५२ : एक दिन जब पृथ्वीराज नगर के बाहर एक उद्यान में था, कान्यकुब्ज से कोई महिला आकर पृथ्वीराज से मिली और कान्यकुब्जेश्वर की पुत्री कांतिमती के सौन्दर्य की प्रशंसा करने के अनन्तर उससे कहने लगी की कांतिमती पिता के चारणों से उसका हाल सुन कर उस पर अनुरक्त हो चुकी थी और उसने एक रात स्वप्न में एक सुन्दर पुरुष को देखा था, तब से वह सर्वथा

[१] 'सुर्जनचरित महाकाव्य', हिन्दी अनुवाद सहित : सम्पादक और प्रकाशक डॉ० चन्द्रधर शर्मा, प्राध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९५२।

[२] वही १.७, तथा २०.३४।

[३] वही, २०.६३।

[४] 'आइने-ए-अकबरी', सम्पादक एच० ब्लॉचमैन, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, पृ० ४५०।

काम के वश में हो रही थी; उन्हीं दिनों उसने यह भी सुना था कि कान्यकुब्जेश्वर उसे और किसी से ब्याहना चाहते थे, इससे वह बहुत व्यथित थी और इसी लिए उसने पृथ्वीराज के पास सन्देश लेकर उसे भेजा था। यह सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि वह उसके गुणों को बार-बार सुन चुका था, और उसके इस सन्ताप को दूर करने का उपाय अवश्य करेगा। दूती यह आश्वासन लेकर चली गई।

९३-११२ : इसके अनन्तर अपने बन्दी को आगे कर पृथ्वीराज कान्यकुब्ज गया। वेश बदल कर और १५० सामन्तों को साथ लेकर उसने उस वैतालिक का अनुसरण किया। जयचन्द की सभा में वह उस वैतालिक का पार्श्वचर बन कर रहता। वह प्रति दिन घोड़े पर चढ़ कर गंगा तट पर चक्कर लगाता। एक दिन चाँदनी रात में वह घोड़े को नदी में पानी पिला रहा था। घोड़े के मुख से निकलते हुए फेन की गन्ध से मछलियाँ जब ऊपर आईं, वह उन्हें अपने कंठहार के मोती निकाल-निकाल कर चुगाने लगा। कान्यकुब्जेश्वर की कन्या ने उसका यह कृत्य देखा, तो उसे उसके सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता हुई। उस दासी ने, जिसने उसका सन्देश पृथ्वीराज को पहुँचाया था, उसे पहचान कर बताया कि वह तो पृथ्वीराज ही था और यदि उसे इस विषय में सन्देह था तो वह उसकी परीक्षा कर सकती थी। यह सुनकर राजकुमारी ने मुक्तामाल देते हुए एक दासी को वहाँ भेजा। वह जाकर पृथ्वीराज के पीछे खड़ी हो गई। कंठहार के मोतियों के समाप्त होते ही राजा ने पीछे हाथ बढ़ाया तो दासी ने वह मुक्तामाल उसके हाथों पर रख दिया। जब वे बिना गूँथे हुए मोती भी समाप्त हो गए, तब उस दासी ने अपना कंठहार उतार कर राजा के हाथों पर रक्खा। स्त्रियों के उस कंठभूषण को देखकर राजा विस्मित हुआ और पीछे मुड़कर देखा तो वह दासी वहाँ मिली। पूछने पर उसने बताया कि कान्यकुब्जेश्वर की कन्या की वह परिचारिका थी। राजा ने उससे कहा कि वह अपनी स्वामिनी से कुछ प्रहर और धैर्य रखने के लिए कहे, दूसरे दिन रात्रि में उसके हृदय को निश्चय हो जावेगा। दूसरे दिन रात्रि में वह राजकुमारी से मिला और उसने कहा कि वह अपने सामंतों को बिना बताए यहाँ आया था, इसलिए उसे लौटना ही था, और उनसे मिलकर वह पुनः आ सकता था। किन्तु राजकुमारी को भावी विरह से व्यथित देखकर उसने उसे साथ ले लिया, और घोड़े पर उसके साथ सवार होकर अपने शिविर को चला गया।

११३-१२८ : इस समय एक सामंत आकर कहने लगा कि पृथ्वीराज को नव वधू के साथ दिल्ली के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए; जब तक वह चार योजन आगे जावेगा, वह शत्रु सेना को रोकेगा। एक दूसरे सामंत ने उसे छः गव्यूति (तीन योजन) आगे बढ़ाने की प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार इन्द्रप्रस्थ तक का सारा मार्ग सामंतों ने परस्पर बाँट लिया। तब तक शत्रु-सेना आ पहुँची थी। उसने पीछा किया, किंतु संघर्ष होते-होते पृथ्वीराज इन्द्रप्रस्थ पहुँच गया। जब पृथ्वीराज इन्द्रप्रस्थ पहुँचा, उसके पराक्रमी वीरगण इने-गिने ही बच रहे थे। पृथ्वीराज से हार कर कान्यकुब्जेश्वर यमुना के जल में डूब मरा।

१२९-१३२ : दिग्विजय करके पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बाँधा। इक्कीस बार उसे बन्दी करके छोड़ा। किंतु उसने उपकार नहीं माना और छल-बल से एक युद्ध में पृथ्वीराज को बन्दी करके उसे अपने देश ले गया और वहाँ उसे नेत्र-हीन कर दिया।

१३३-१६८ : घूमता-फिरता पृथ्वीराज का मित्र चन्द नामक बन्दी भी वहाँ पहुँच गया और उसने पृथ्वीराज को प्रतिशोध के लिए प्रोत्साहित किया। राजा ने कहा उसके पास न सेना थी, और न नेत्र थे; प्रतिशोध लेना किस प्रकार सम्भव था? किंतु बन्दी ने जब उसे उसके शब्द-वेध कौशल का स्मरण कराया, पृथ्वीराज ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया। तदनंतर वह बन्दी यवनराज की सभा में गया और कुछ ही दिनों में उसके मंत्रियों का तथा उसका विश्वास उसने अपने विद्या-कौशल

से प्राप्त कर लिया। किसी प्रसंग में एक दिन उसने कहा कि नेत्रहीन होते हुए भी पृथ्वीराज वाण-द्वारा लोहे के कड़ाहों को वेध सकता था, और उसका यह कौशल दर्शनीय था। यवनराज उसकी बातों में आ गया। एक स्वर्ण-स्तंभ पर लोहे के कड़ाह रखे गए और पृथ्वीराज को वाण चलाने की आज्ञा हुई। तब बन्दी ने कहा कि यवनराज के तीन बार स्वयं कहने पर वह लक्ष्यवेध करेगा। इस पर शहाबुद्दीन के मुख से वाण चलाने की आज्ञा के निकलते ही पृथ्वीराज का वाण छूटकर उसके तालुमूल से जा लगा और यवनराज का प्राणांत हुआ। वहाँ हलचल देखकर बन्दी ने राजा को घोड़े पर बिठाया और कुरु जांगल देश ले गया, जहाँ पृथ्वी को यशःपूर्ण करके राजा परलोक सिधारा।

'महाकाव्य' के लेखक ने यह नहीं बताया है कि पृथ्वीराज की उपर्युक्त कथा उसे कहाँ से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग में पहली विचारणीय बात यह है कि इस कथा का आधार क्या हो सकता है? इस कथा में प्रतिशोध-प्रकरण में बन्दी चन्द का नाम आता है, जिसके बारे में यह भी कहा गया है कि वह उसका मित्र था। चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' में जो कथा आती है, उससे उपर्युक्त कथा का पर्याप्त साम्य भी है यह सुगमता से देखा जा सकता है, और 'पृथ्वीराज रासो' 'सुर्जनचरित महाकाव्य' से काफी पहले की रचना है, यह इस बात से प्रमाणित हो चुका है कि उसके छन्द पुराने जैन प्रबंधों में मिलते हैं, जिनमें से एक की प्रति सं० १५२८ की है।[१] अतः प्रश्न वास्तव में इतना ही रह जाता है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में यह कथा सीधे 'पृथ्वीराज रासो' से ली गई है, अथवा 'रासो' पर आधारित किसी रचना से।

नीचे उदाहरण के लिए 'पृथ्वीराजरासो' से कुछ ऐसे छन्द दिए जा रहे हैं जिनमें वे ही कथा-विस्तार मिलते हैं जो 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा में आए हैं[२] :—

(१) तिहि पुत्तिय सुनि गुन इलउ तात वचन तजि काज।
कइ बढि गंगहि संचरउं कइ पानि गहउं प्रथीराज॥

(प्रस्तुत संस्करण, २.११)

(२) सुनत राइ अचरिज भयउ हियइ मन्यउ अनुराउ।
नृप वर अनि उर अंगमइ देवहि अवर स भाउ॥

(वही, २.१२)

(३) चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्थह।
जउ बोलउं त हत्थु तुह मथ्थह।
जबइ राइ जानइ संमुह हुअ।
सब अंगमउं समर दुहुनि भुअ॥

(वही, ३.३९)

(४) कनवजिय जयचन्द चलउ ढिल्लियपुर पेषन।
चन्द बिरद्दिआ साथि बहुत सामन्त सुर घन।
चहूआन राठवर जाति पुंडीर गुहिल्ला।
बडगूजर राठवर कुरंभ जांगरा रोहिल्ला।

[१] दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखित : (१) 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह, चंद वरदाई और जल्ह का समय' नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१२, अंक ३-४, पृ० २३४ तथा (२) 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह और पृथ्वीराजरासो', शीर्षक इसी भूमिका में अन्यत्र।

[२] स्थल-निर्देश की प्रथम संख्या सर्ग तथा द्वितीय संख्या छन्द की है।

दूते सहिस भुअपति चलउ वडी रैन गिअउ सुभउ।
एकु एकु लष्ष वर लषावइ चले सथ्थ रजपुत्त सउ॥

(वही, ४.१

कलिग देस दक्खिन नयर गंग तरंगह कुल्ल।
जल छंडइ अछूलइ करह मीन चरित्तु सुल्ल॥

(वही, ६.६

भूलउ नृप तिहि रंग तहि जुध्ध विरुद्ध लहु।
मृगति मीननु ध्रुति लहंति जु लष्प बहु।
होइ तुछ्छ तु तंमोर सरंस जु कंठ लहु।
वंक प्रवेस हसंत तु झरंत जु गंग महु॥

(वही, ६.७

पंगुराइ सा पुत्तिय तुत्तिर थार भरि।
यो त्रिय जउ प्रथीराज न पुछ्छइ तोहि फिरि।
जउ इन लष्षन सब सहित बिचार न सोइ करि।
इइ मत मोहि नृ जीव सु लेउं सजीव धरि॥

(वही, ६.१३

सुन्दरि आइ स धाइ विचार न बोलइय।
जउ जल गंगह लोल प्रतीत प्रसंगु लिय।
कमल ति कोमल पांनि कलिकुल अंगुलिय।
मनहु अध्ध दुजदान सु अप्पति अंगुलिय॥

(वही, ६.१४

अपंति अंगुलीय दान जान सोभ लग्गए।
मनउ अनंग रंग चस्य रंभ इंद पुज्जए।
जु पानि बाहु वार थक्कि थार मुत्ति विलए।
पुनेपि हथ्थ कंठ तोरि पोति पुंज अप्पए।
निरष्षि नयन देरि वयन ता निरत्ति चाहियं।
तरप्पि दासि पासि पंक (चक्क) संकियं न वाहियं।
अनेक (अनिक्क ?) संग रंग रूप जूप आनि सुंदरी।
बहंत गंग मझ्झिस धुक्कि सगंपत्ति अछूछरी।
हउं अछूलरी नरिंदु नाहि दासि गेह राय पंगुरे।
तास पुत्ति जंम छाडि दिल्लि नाथ आदुरे।
सा जंम सूर चाहुवांन मान इंम जानए।
करेस केहरीन पीन इंदु मीन थानए।
प्रतष्षि हीर जुध्ध धीर यो सु वीर संचही।
परन्तु मान मानिनी चलंति देत गंठही।
सुनंत सूर अस्व फेरि तेजि ताम हंकियं।
मनउ दलिद्दइ रिध्धि पाय आय कंठ लग्गियं।
कनक्क कोटि अंग घात रास वास माल ची।
रहंत भउंर झौंर झौंर साह छत्र कांम ची।

सुधा सरोज मोज भंग अलक्क रंग हल्लए।
मनउ मयन्न फंद पासि काम केलि घल्लए।
करिस्थ कांम कंकनं सुपानि बंध बंधए।
सु भावरी सषी सलज्ज रंक्ष तुरंयं षज्जए।
आचारु चारु देव सब्ब दोइ पब्ब जंपही।
गंठि दिढ्ढ इक्क चित्त लोक लोक चंपही।
अनेक सुष्ष मुष्ष सीस जुध्ध साध लग्गियं।
सु कंत कंत अंत ला तमोरि मोरि अप्पियं॥

(१०) मिले सब्ब सामंत बोल मग्गहि त नरेसर।
अप्प मग्ग लग्गिअइ मग्ग रष्षिइ ति इक्क भर।
एक एक झुझंति दंति दंती ढंढोरइ।
जिके पंग राय मिच्छ मारि मारिक्कइ मोरइ।
इम बोल रहइ कलि अंतरि देहि स्वामि पारिथ्थिअइ।
अरि असीइ लष्ष को अंगमइ परणि राय सारथ्थिअइ॥

(११) वेद कोस हरसिघ अभय त्रियत वड गुज्जर।
काम वान हर नयन निडर नीडर सोइ सुझ्झर।
छगन पवन पव्वानि कन्ह पंची दिग्गपालह।
अल्हन द्वादस सकल अचल विद्या गनि कालह।
सिंगार विप्र सलपह सुकथ लषन पाहार आहार सुउ।
इत्तनइ सूर झुझंति ही ढिल्लियपति प्रथीराज भउ॥

(१२) गहि चहुआंन नरिंद गयउ गज्जने साहि धरि।
सा ढिल्ली हय गय भंडार तेहि तनय अप्पि घर।
वरस एक तिहि अध्ध मुध्ध किन्हउ नयन्न विनु।
जंम जंम जुग अवरुध्ध जाइ प्रथिराज इक्क पिनु।
सुनत श्रवन्नहु धरि परउ हरि हरि हरि हरि देव सु कह।
तजि पुत्त मित्त माया सकल गहिग चंद गज्जनेव रह॥

(१३) अंधहीन दोउ भयउं तुं चहु अंषिन चूक।
असुर वध्धु किम विन सुरइ मइ सुर बंधउ अलूक॥

(१४) भयउ एक फुरमान एक वानह गुन संधउ।
सोइ सबद्द अरु वांन अग्ग अग्गइ पढ बंधउ।
भयउ बीय फुरमान पंचि रष्पिअउ श्रवन धर।
तीअउ सबद सुनंत सुनउ सुरतान परउ धर।
लगि दसन रसन दस रंधिअउ विहु कपाट बंधे सवन।
धरि परउ साहि पाँ पुक्करउ भयउ चंद राजहि मरन॥

यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के विवरण और 'रासो' से ऊपर उद्धृत पंक्तियों को मिलावें तो देखेंगे कि साम्य प्रायः छोटे से छोटे विस्तारों तक में है। यथा :—

(१) दोनों में पृथ्वीराज को यह समाचार मिलता है कि जयचन्द की पुत्री उस पर अनुरक्त है और जयचन्द उसे किसी अन्य से ब्याहना चाहता है, इसलिए वह बहुत व्यथित है।

(२) दोनों में पृथ्वीराज अपने वन्दी के साथ उसके अनुचर के वेश में कन्नौज जाता है और उसके साथ १०० या कुछ अधिक शूर-सामन्त हैं।

(३) दोनों में ठीक एक ही प्रकार से जयचन्द-पुत्री उसे गंगातट पर रात्रि में मछलियों को मोती चुगाते हुए देखती है और एक ही उपाय से इस बात का निश्चय करती है कि वह व्यक्ति पृथ्वीराज ही है।

(४) जयचन्द-पुत्री का अपहरण वह दोनों में एक ही प्रकार से करता है।

(५) दोनों में एक ही समान यह योजना स्थिर होती है कि वह जयचन्द-पुत्री को लेकर दिल्ली की ओर बढ़े और उसके सामन्तगण एक-एक करके जयचन्द की पीछा करने वाली सेना को रोकें; इस योजना का निर्वाह भी दोनों में एक ही सा होता है।

(६) दोनों में वह शहाबुद्दीन के साथ के अंतिम युद्ध में बन्दी होता है और गजनी ले जाया जाकर नेत्रविहीन किया जाता है।

(७) दोनों में एक ही प्रकार से चन्द की युक्ति से पृथ्वीराज शहाबुद्दीन से प्रतिशोध लेने में कृतकार्य होता है।

अन्तर दोनों में बहुत साधारण है और मुख्यतः इतना ही है कि :—

(१) 'रासो' में पृथ्वीराज के जयचन्द-पुत्री के अनुरक्त होने का समाचार मात्र मिलता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसकी एक दूती पृथ्वीराज से उसका संदेश लेकर मिलती है।

(२) 'रासो' में उस जयचन्द-पुत्री का नाम संयोगिता है, और 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में कान्तिमती।

(३) 'रासो' में पृथ्वीराज जयचन्द-पुत्री से पहचाने जाने पर ही जा मिलता है, यद्यपि उसे लिवा जाता है बाद में; 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वह उसे मिलता है दूसरे दिन और उसी समय उसे लिवा जाता है।

(४) 'रासो' में पीछा करता हुआ जयचन्द पृथ्वीराज के दिल्ली पहुँच जाने पर कन्नौज लौट जाता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वह यमुना में डूब मरता है।

(५) 'रासो' में पृथ्वीराज गजनी में ही शाह-वध के अनन्तर मृत्यु को प्राप्त होता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसे चन्द कुरु जांगल प्रदेश भगा ले आता है, जहाँ वह पीछे मृत्यु को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि में जब हम इस अन्तर पर विचार करते हैं तो लगता है कि ये अन्तर 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के रचयिता की कल्पना अथवा किन्हीं जनश्रुतियों के परिणाम हैं— जयचन्द का यमुना में डूब मरना अथवा पृथ्वीराज का गजनी से सकुशल कुरु जांगल लौट आना 'रासो' की पूर्वकल्पित दिशा में एक कदम आगे बढ़े हुए विस्तार मात्र प्रतीत होते हैं; यह किसी भी अन्य प्राप्त प्राचीन रचना में नहीं मिलते हैं, यह भी इस अनुमान की पुष्टि करता है। फलतः यह प्रकट है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार सीधा 'पृथ्वीराज रासो' है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार 'रासो' का कौन-सा पाठ है : 'रासो' के जो चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं, उनमें से कौन सा 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार हो सकता है ?

इस प्रसंग में द्रष्टव्य यह है कि—

(१) 'रासो' के जो छन्द ऊपर उद्धृत हुए हैं, वे लघुतम से लेकर बृहत् तक 'रासो' के

समस्त प्राप्त पाठों में समान रूप से पाए जाते हैं।

(२) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' का एक भी मुख्य विस्तार उपर्युक्त को छोड़कर ऐसा नहीं है जो 'रासो' के समस्त पाठों में न पाया जाता हो, और अन्तर वाले उपर्युक्त विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं मिलते हैं।

(३) ऐसे कोई भी प्रसंग या विस्तार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं हैं जो 'रासो' के लघुतम पाठ में न मिलते हों और उसके अन्य किसी पाठ में मिलते हों।

अंतिम विशेषता के उदाहरण में निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया जा सकता है, जो कि लघुतम पाठ को छोड़कर 'रासो' के समस्त पाठों में पाए जाते हैं—

(१) गुर्जराधिपति भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज का युद्ध।

(२) उसी के साथ-साथ हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का युद्ध।

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामंत वीर पुंडीर और शहाबुद्दीन का युद्ध।

(४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़ के रावल समरसी का सम्मिलित होना।

(५) उसी युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामंत जंबूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन से जा मिलना।

(६) हाहुलीराय हम्मीर के पास जाकर उसे पृथ्वीराज के पक्ष में लाने के लिए चन्द का प्रयत्न करना।

और ये प्रायः ऐसे प्रसंग या विस्तार हैं जो यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के लेखक के सामने होते तो उसके द्वारा सबके सब कदाचित् छोड़े न गए होते। अतः यह स्पष्ट है कि उसकी उपर्युक्त कथा का आधार 'रासो' का लघुतम या उससे मिलता जुलता ही कोई पाठ हो सकता है।

अब विचारणीय यह है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के उपर्युक्त विवरण का आधारभूत 'रासो' का पाठ उसके प्राप्त लघुतम पाठ से भी किन्हीं बातों में तो लघुतर नहीं था।

'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा की 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ से तुलना करने पर निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य ज्ञात होती हैं :—

(१) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में कथा जयचन्द-पुत्री कांतिमती के प्रेम-प्रसंग से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का उसमें कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है, जैसा कि 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में आता है।

(२) उसमें पृथ्वीराज के पूर्व पुरुषों की जो नामावली आती है वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में मिलती है।

(३) अनंगपाल तोंवर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में आती है, वह भी 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं आती है।

(४) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कैंवास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं है, जो कि 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पाया जाता है।

(५) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वे तिथियाँ भी नहीं आती हैं जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पाई जाती हैं।

असम्भव नहीं है कि इनमें से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षेप-क्रिया के कारण 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में छोड़ दिए गए हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उसकी कथा के आधारभूत

'रासो' के पाठ में उपर्युक्त में से कुछ न भी रहे हों। यह बात ठीक इसी प्रकार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की समकालीन रचना 'आईन-ए-अकबरी' में भी दिखाई पड़ती है।[1]

इस सम्बन्ध में यह जान लेना कदाचित् उपयोगी होगा कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की रचना सं० १६४९ के लगभग हुई थी, और 'रासो' के प्राप्त सभी पाठों की प्रतियाँ उसके बाद की हैं: लघुतम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो धारणोज (गुजरात) की है, सं० १६६४ की है; लघु की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो बीकानेर की है, जहाँगीर के समकालीन किसी भागचन्द के लिए लिखी गई थी; मध्यम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की है और सं० १६९२ की लिखी है; बृहत् की प्राचीनतम प्राप्त प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की है और सं० १७४७ की है।

प्राप्त लघुतम पाठ की तुलना में 'पृथ्वीराज रासो' का प्रस्तुत संस्करण तो निश्चित रूप से उसके उस पाठ के निकटतर होना चाहिए जिसका आधार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में ग्रहण किया गया होगा, यह निम्नलिखित बातों से प्रकट है :—

(१) प्रस्तुत संस्करण में भी कथा 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की भाँति संयोगिता के प्रेम-प्रसंग से प्रारम्भ होती है, केवल जयचन्द के राजसूय का प्रसंग और प्रस्तुत संस्करण में साथ-साथ चलता है।

(२) प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों की नामावली आती ही नहीं है, केवल उसे सोमेश्वर का पुत्र कहा गया है, इसलिए इस बात में दोनों में कोई विरोध नहीं है।

(३) प्रस्तुत संस्करण में अनंगपाल तोंवर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की बात भी नहीं आती है, जिस प्रकार वह 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं आती है।

(४) प्रस्तुत संस्करण में भी कोई तिथियाँ नहीं आती हैं, जिस प्रकार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वे नहीं आती हैं।

प्रस्तुत संस्करण में कैंवास-वध की कथा अवश्य आती है जो 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं है, किन्तु मुख्य कथा से उसका कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है, इसीलिए यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसे न दिया गया हो तो आश्चर्य नहीं।

—:※:—

[1] दे० 'आईन-ए-अकबरी और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक अन्यत्र इसी भूमिका में।

१२. 'आईन-ए-अकबरी' और 'पृथ्वीराज रासो'

'आईन-ए-अकबरी' में दिल्ली के शासन का इतिहास देते हुए पृथ्वीराज के विषय में निम्नलिखित प्रकार से कहा गया है :—

"विक्रमीय वर्ष सं० ४२९ (३७२ ई०) में तोंवर कुल का अनंगपाल न्यायपूर्वक राज करता था और उसने दिल्ली की स्थापना की। उसी चांद्रसौर वर्ष के सं० ८४८ (७९१ ई०) में उस प्रसिद्ध नगर के निकट पृथ्वीराज तोंवर और और बीलदेव (बीसलदेव) चौहान में घमासान युद्ध हुआ और शासन बाद वाले कुल के हाथों में चला गया। राजा पिथौरा (पृथ्वीराज) के राज्य-काल में सुल्तान मुईज़ुद्दीन साम ने हिन्दुस्तान पर अनेक आक्रमण किए, जिनमें उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। हिन्दू इतिहासों का कथन है कि राजा (पृथ्वीराज) ने सुल्तान से सात बार युद्ध किए और उसे पराजित किया। ५८८ हि० (११९२ ई०) में थानेसर के पास आठवाँ युद्ध हुआ और राजा बन्दी हुआ। एक सौ प्रसिद्ध योद्धा (कहा जाता है) उसके विशिष्ट अनुयायी थे। वे अलग-अलग 'सामंत' कहलाते थे और उनके असाधारण शौर्य का न वर्णन हो सकता है और न अनुभव या तर्क से उसका समाधान किया जा सकता है कि इस युद्ध में इनमें से कोई नहीं था; राजा भोग-विलास में अपने महल में ही पड़ा काम-केलि में समय नष्ट करता रहा और उसने न राज्य के शासन पर ध्यान दिया और न अपनी सेना के कुशल पर।

कथा इस प्रकार कही जाती है कि राजा जयचन्द राठौर, जो हिन्दुस्तान का सर्वोच्च शासक था, कन्नौज में राज्य कर रहा था। दूसरे राजा किसी न किसी मात्रा में उसकी वश्यता मानते थे, और वह स्वयं इतना उदार था कि ईरान और तूरान के अनेक निवासी उसके भृत्य थे। उसने राजसूय यज्ञ करने की घोषणा की और उसकी तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। इस यज्ञ का एक नियम यह है कि निम्न कोटि की सेवाएँ भी राजागण के द्वारा ही प्रतिपादित होती हैं, यहाँ तक कि राजकीय भोजनालय के बर्तन माँजने-धोने और आग सुलगाने तक के जैसे कार्य भी उनके कर्त्तव्यों के अंग होते हैं। इसी प्रकार उसने वचन दिया कि वह आगत राजाओं में सर्वोच्च शूर राजा को अपनी सुन्दरी कन्या भी देगा।

राजा पिथौरा ने यज्ञ में उपस्थित होने का निश्चय किया था, किन्तु उसकी सभा के किसी सभ्य के इस आकस्मिक कथन ने कि जब तक चौहान कुल का साम्राज्य था, राजसूय किसी राठौर राजा के द्वारा किया जाना विहित नहीं था, पृथ्वीराज के वंशाभिमान को जाग्रत कर दिया और वह रुक गया। राजा जयचन्द ने उसके विरुद्ध सेना भेजने की सोची, किन्तु उसके मन्त्रियों ने युद्ध में समय अधिक लगने की संभावना और (राजसूय) सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान से उसे इस विचार

से विरत कर दिया। यज्ञ को विधि-पूर्वक संपन्न करने के उद्देश्य से राजा पिथौरा की एक स्वर्ण-प्रतिमा बनाई गई और वह दरबान के रूप में राजद्वार पर रख दी गई।

इस समाचार से क्रुद्ध होकर राजा पिथौरा छद्मवेश में ५०० चुने हुए योद्धाओं के साथ (कन्नौज के लिए) निकल पड़ा और (राजसूय) सभा में अकस्मात पहुँच कर अनेक को अपनी तलवार से मारते हुए वह उस प्रतिमा को शीघ्रता के साथ उठा ले गया। जयचन्द की कन्या जिसका वाग्दान एक अन्य राजा से हो चुका था, पृथ्वीराज के इस शौर्य-प्रदर्शन का समाचार सुन कर उस पर अनुरक्त हो गई और उसने वाग्दत्त राजा से विवाह करना अस्वीकार कर दिया। उसके पिता ने इस आचरण पर क्रुद्ध होकर उसे राज भवन से निकाल दिया और एक अन्य भवन में भेज दिया।

इस समाचार से व्यग्र होकर पिथौरा उस (राज-कन्या) से विवाह करने का निश्चय करके लौट पड़ा और योजना यह बनाई गई कि चाँदा, एक भाट जो कि चारण कला में पटु था, जयचन्द की सभा में उसके गुण-गान के बहाने पहुँचे और राजा (पृथ्वीराज) स्वयं अपने कुछ चुने हुए अनुयायियों के साथ उसके अनुचर के वेष में उसके साथ जावे। प्रेम ने उसकी आकांक्षा को क्रियात्मिक रूप प्रदान किया और इस कौशलपूर्ण उपाय तथा वीरता के द्वारा उसने अपने हृदय की उस कामना (राजकन्या) का अपहरण किया और बल-वीर्य तथा शौर्य के अद्भुत प्रदर्शन के अनन्तर अपने राज्य में वापस पहुँच गया।

[इस प्रत्यावर्तन में] उसके (उपर्युक्त) सौ सामन्त विभिन्न छद्म वेषों में उसके साथ थे। एक के बाद दूसरे ने उसके भागने में उसकी रक्षा की और पीछा करने वालों से वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए उन्होंने प्राण दिए। गोविन्दराय गहलोत ने सर्वप्रथम [शत्रु का] सामना किया और वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग किया। शत्रु के सात हजार सैनिक उसके समक्ष धराशायी हुए। तदनन्तर नरसिंह देव, चाँदा, पुंडीर, सार्दूल सोलंकी तथा अपने दो भाइयों के साथ पाल्हनदेव कछवाहा ने प्रथम दिन के युद्ध में अद्भुत शौर्य-प्रदर्शन करते हुए महँगे मूल्यों में प्राण दिए, और ये सभी योद्धा उस प्रत्यावर्तन में समाप्त हुए। चाँदा तथा अपने दो भाइयों के साथ राजा अपनी नव-वधू को लेकर जगत् को आश्चर्य-मग्न करता हुआ दिल्ली पहुँच गया।

दुर्भाग्य से राजा अपनी इस सुन्दरी स्त्री के प्रेम में ऐसा लिप्त हो गया कि और सब काम-काज छोड़ बैठा। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर, ऊपर वर्णित घटनाओं के कारण सुल्तान शहाबुद्दीन ने राजा जयचन्द से मैत्री स्थापित करली, और एक सेना इकठी कर इस देश पर आक्रमण कर दिया और बहुत से स्थानों को हस्तगत कर लिया। किन्तु किसी को कुछ बोलने तक का साहस न हुआ, उसका प्रतिकार करना तो दूर की बात थी। अन्त में मुख्य सामन्तों ने सभा करके राजभवन के सप्त द्वार से चाँदा को भेजा, जिसने रनिवास में पहुँच कर अपने कथनों से राजा के मन में कुछ क्षोभ उत्पन्न किया। किन्तु राजा अपनी पूर्ववर्ती विजयों के अभिमान में युद्ध में एक छोटी ही सेना लेकर गया। उसके वीर योद्धा अब नहीं थे, [जिसके कारण] उसके राज्य की पुरानी धाक जाती रही थी, और जयचन्द जो उसका पहले का सहयोगी था अपनी पुरानी नीति बदल कर शत्रु के पक्ष में था, फलतः राजा उस युद्ध में बन्दी हुआ और सुल्तान के द्वारा गजनी ले जाया गया।

चाँदा अपनी स्वामिभक्ति के कारण तुरन्त गजनी गया, सुल्तान की सेवा में नियुक्त हो गया और उसका विश्वास-भाजन बन गया। प्रयत्नों से उसने राजा का पता लगा लिया और बन्दीगृह में पहुँच कर उसे सान्त्वना प्रदान की। उसने सुझाया कि वह सुल्तान से उसके धनुर्विद्या के कौशल की प्रशंसा करेगा और जब वह उसके इस कौशल को देखने के लिए तैयार होगा, राजा को उस अवसर से लाभ उठाने का सुयोग प्राप्त हो जावेगा। यह प्रस्ताव मान लिया गया और राजा ने सुल्तान को

एक बाण से बिद्ध कर दिया। सुल्तान के भृत्य राजा और चाँदा पर टूट पड़े और उन्होंने उन्हें टुकड़े-टुकड़े काट डाला।

फारसी इतिहासकार एक भिन्न विवरण देते हैं और कहते हैं कि राजा युद्ध में मारा गया।[1]

'आईन-ए-अकबरी' के लेखक ने यह नहीं बताया है कि उपर्युक्त कथा उसे किस 'हिन्दू इतिहास' से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग में पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि 'आईन-ए-अकबरी' में दी हुई उपर्युक्त कथा का आधार क्या हो सकता है। इस विवरण में 'चाँदा' नामक एक भाट का उल्लेख हुआ है। प्रकट है कि यह 'चन्द' है। चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' में जो कथा आती है उससे उपर्युक्त विवरण में पर्याप्त साम्य भी है, यह सुगमता से देखा जा सकता है; और 'पृथ्वीराज रासो' 'आईन-ए-अकबरी' से काफी पहले की रचना है यह इस बात से प्रमाणित हो चुकी है कि उसके कुछ छन्द पुराने जैन प्रबन्ध-संग्रहों में मिले हैं जिनमें से एक की प्रति सं० १५२८ की है।[2] अतः प्रश्न वास्तव में इतना ही रह जाता है कि 'आईन-ए-अकबरी' में यह कथा सीधे 'पृथ्वीराज रासो' से ली गई है, अथवा 'रासो' पर आधारित किसी रचना से ली गई है।

नीचे उदाहरण के लिए 'रासो' से कुछ ऐसी पंक्तियाँ दी जा रही हैं जिनमें वे ही कथा-विस्तार मिलते हैं जो 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण में आए हैं[3]—

(१)

वद्दु पंग राउ राजसू जग्गु।
आरंभ रंभ कीनउ सुरंग।
जित्तिआ राउ सब सिन्धु आर।
मेल्लिया कंठ जिम मुत्तिहार।
जोगिनी पुरेस सुनि भयउ पेहु।
आवइ न भाल मज्झ इह अभेदु।
मोकले दूत तब ही रिसाइ।
असमथ्थ सेव किम भूमि खाइ।
बंधू समेत सामंत सथ्थ।
उत्तरे आनि दरबार तथ्थ।
बोलउ न वयण प्रथिराज ताहि।
संकरिउ सिघ गुरजनन चाहि।
उब्बरउ गुरुअ गोयंदु राज।
कलि मज्झि जग्गु को करइ आज।...
कलि मज्झि जग्गु को करण जोग।
बिग्गरइ तु बहु विधि हसइ लोग।
दल दव्व गव्व तुम अप्रमोण।

[1] 'आईन-ए-अकबरी' (एच० एस० जैरेट द्वारा अनूदित) संशोधित संस्करण, द्वितीय भाग, पृ० ३०५-३०७ का यह हिन्दी रूपान्तर है।

[2] दे० प्रस्तुत लेखक का 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह, चन्द बरदाई और जयचंद का समय', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१२ अंक ३-४, पृ० २३४।

[3] छन्दों का यह 'पृथ्वीराज रासो' के प्रस्तुत संस्करण का है, स्थल-निर्देश की प्रथम संख्या उसके सर्ग की तथा दूसरी संख्या उसके छन्द की है।

बोल्हु त बोल देवन समान ।
तुम जानउ त्रिग्री इह न कोइ ।
निव्वीर पुहवि कबहूं न होइ ॥...
लइंभरि सकोप सोमेस पुत्त ।
दानव ति रूव अवतार धुत्त ।
तिहि कंधि सीस किम जरय होइ ।
जु प्रिथिमी नहीं चहुआन कोइ ।...
बोल्यउ सु मंत परधान तव्व ।
कनवज्ज नाथ किरि जग्गु अव्व ।
जब लगि गहिहि चहुआन चाहि ।
तब लगि ताहि टलि काल जाहि ।
जे आसमुद्द नृप करहिं सेव ।
सब्बरहु काम सो करहु देव ।
सोवन्न प्रतिमा प्रथीराज चौन ।
थापउ जु पोलि जिम दुरब्बान ।
सइंबरह संग अरु जग्गु काज ।
विहु जन बोलि दिन धरहु आज ।...

(प्रस्तुत संस्करण, सर्ग २. छन्द २)

संवादेव विनोदेव देव देवेन रक्ष्यते ।
अन्य प्राणेथवा प्राणे प्राणेश दिल्लीश्वरः ॥

(वही, २. २५)

तब झुकिल राइ गंगह तट त रचिपचि उच्च अवास ।
चाहि गहउं चहुआन तऊ जु मिटइ बाला आस ॥

(वही, २. २७)

चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्थइं ।
जउ बोलउं त हथ्थु तुइ मथ्थइं ।
जबइ राइ जानइ संमुह हुअ ।
तब अंगमउं समर तुह भुअ ॥

(वही, ३. ३९)

कनवज्जिय जयचन्द चलउ ढिल्लियपुर पेषन ।
चन्द विरदिआ साथि बहुत सामंत सूर घन ।
चहुआन राठवर जाति पुंडीर गुहिल्ला ।
बडगूजर राठवर कुरंभ जांगरा रोहिल्ला ।
सहित्त भुअपति चलउ उडी रेन किन्नउ सुभउ ।
एकु लष्ष वर लष्षवइ चले सथ्थ रजपुत्त सउ ॥

(वही, ४. १)

उभय सहस हय गय परिल निसि निग्गह गत भांन ।
सात सहस असि मीर हणि थक विदउ चहुआंन ॥

(वही, ७. १९)

(७) परउ गंजि गहिलुत्त नाम गोविंदराज वर।
दाहिम्मउ नरसिंघ परउ नागवर जास घर।
परउ चंद पुंडीर चंद पेक्खो सारंतउ।
सोलंकी सारंग परउ असिवर झारंतउ।
कूरंभराय पाल्हनदेउ बंधव तीन निवट्टिय
कनवज्ज राडि पहिलइ दिवसि सउ भइ सत्त निवट्टिय।

(८) मिले सब्ब सामंत बोलु सग्गहि ल नरेसर।
अप्प मग्ग लग्गिअइ सग्ग रक्खिइ ति इक्क भर।
एक एक झूझंति दंति दंती उंडोरइ।
जिके पंग राय भिच्च मारि सरिक्कइ मोरइ।
इम बोल रहइ कलि अंतरि देहि स्वामि पारथ्थिअइ।
अरि असीह कव्य को अंगमइ परणि राय सारथ्थिअइ॥

(९) इह विधि विलसि विलास असार सुसार किअ।
दइ जुप जोगि संजोगि सोइ प्रथिराज जिय।
अह निसि सुध्धि न जानहि मानति प्रौढ रति।
गुरु बंधव भ्रत्त कोइ भईं विपरीत गति॥

(१०) कग्गरु अप्पिअ राजकर जुव जंपइ आ बत्त।
गोरी रत्तउ तुव धरा तुं गोरी अनुरत्त॥

(११) इह कहि दासी अप्पि कर लिखि जु दिन्नउ कवि चंदु।
पहलो आवलि वंचि करि हिरि घर जाय नरिंदु॥

(१२) भयउ एक फुरमान एक आनइ गुन संधउ।
सोइ सबद अरु बान अग्ग अग्गइ पल बंधउ।
भयउ बीअ फुरमान पंचि रक्खिअउ श्रवन पर।
तीअउ सबद सुनंत सुनउ सुरतान परउ धर।
लगि दसन रसन वस रुंधिअउ चिहु कपाट बंधे सघन।
धरि परउ साहि पो पुक्करउ भयउ चंद राजहि मरन॥

यदि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण और 'रासो' की उपर्युक्त पंक्तियों को
य प्रायः छोटे-से-छोटे विस्तारों तक में है :—

(१) जयचन्द के राजसूय के साथ ही उसकी कन्या के स्वयंवर का उ
ईन-ए-अकबरी' में हुआ है उसी प्रकार वह 'रासो' में भी हुआ है।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' में कहा गया है कि एक समय के आकस्मि
ीराज उस राजसूय में सहयोग देने से रुक जाता है : 'रासो' में इस समू
है—गोविंदराज।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' में कहा गया है कि जयचन्द पृथ्वीराज के विरुद्ध सेना भेजने की बात सोच रहा था, किन्तु उसके मंत्रियों ने पृथ्वीराज के साथ युद्ध में समय अधिक लगने की संभावना तथा [राजसूय] सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान के उसे इस विचार से विरत किया; ठीक यही बात 'रासो' में कही भी गई है।

(४) दरबान के रूप में पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा की स्थापना की बात दोनों में कही गई है।

(५) जयचन्द की कन्या ने पृथ्वीराज पर अनुरक्त होकर दोनों में किसी अन्य से विवाह करना अस्वीकार किया है और इसलिए दोनों में उसे राजभवन से निकाल कर एक अन्य भवन में रख दिया गया है।

(६) चन्द के साथ पृथ्वीराज के उसके अनुचर के वेष में कन्नौज जाने की योजना दोनों में हुई है।

(७) कन्नौज से पृथ्वीराज के प्रत्यावर्त्तन की योजना दोनों में एक ही है।

(८) प्रथम दिन के युद्ध में गिरे हुए सामंतों की सूची दोनों में सर्वथा एक है, और समस्त नाम एक ही क्रम से भी दोनों में आते हैं ['आईन अकबरी' के अनुवाद में 'चाँदा' और 'पुंडीर' दो नाम भ्रम से कर दिए गए हैं, वास्तव में दोनों मिला कर एक नाम है] 'सारंग' का 'सादुंल' अरबी-फ़ारसी लिपि के 'गाफ़' और 'लाम' के साम्य के कारण हुआ प्रतीत होता है।

(९) पृथ्वीराज का जयचन्द-पुत्री (संयोगिता) के प्रेम में लिप्त होकर राजकीय कार्यों की उपेक्षा करना और चन्द का उसको उद्बुद्ध करना भी दोनों में लगभग समान हैं।

(१०) चन्द का गजनी जाना और युक्ति से पृथ्वीराज के द्वारा शहाबुद्दीन का वध कराना भी दोनों में एक ही सा है।

(११) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन के वध के अनंतर राजा तथा चन्द दोनों को मार डाला गया है; 'रासो' में शब्दावली है :—

भयउ चंद राजहि मरन।

जिसका अर्थ यह है कि 'चन्द कहता है कि राजा का मरण हुआ,' जो अधिक समीचीन है, किंतु कदाचित् दूसरा अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि 'चन्द और राजा का मरण हुआ', जैसा कि 'आईन-ए-अकबरी' में लिया गया है।

अन्तर दोनों में बहुत साधारण है और मुख्यतः इतना ही है कि :—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार जयचन्द की कन्या पृथ्वीराज पर अनुरक्त होने के पूर्व किसी अन्य को वाग्दत्ता होती है, जो 'रासो' में नहीं है।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार पृथ्वीराज कन्नौज दो बार जाता है : एक बार तो वह अपने ५०० चुने योद्धाओं के साथ जाकर अपनी स्वर्ण-प्रतिमा उठा लाता है, और दूसरी बार जाकर जयचन्द की कन्या का अपहरण करता है, 'रासो' में वह एक ही बार कन्नौज जाता है और केवल जयचन्द पुत्री का अपहरण करता है।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर किए गए अन्तिम आक्रमण के पूर्व जयचन्द से मैत्री स्थापित करता है। 'रासो' में यह नहीं है।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि में जब इस अन्तर पर हम विचार करते हैं तो लगता है कि ये अतिरिक्त विस्तार या तो कल्पित हैं अथवा जनश्रुति के आधार पर 'आईन-ए-अकबरी' में रख लिए गए हैं। किसी प्राप्त प्राचीन रचना में इनमें से कोई भी नहीं मिलता है, यह भी इस अनुमान की पुष्टि करता है।

फलतः यह प्रकट है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण का आधार 'पृथ्वीराज रासो' है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरणों का आधार 'रासो' का कौन-सा पाठ है। 'रासो' के जो चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं, उनमें से कौन-सा पाठ 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण का आधार हो सकता है?

इस प्रसंग में द्रष्टव्य यह है कि—

(१) ऊपर 'रासो' के जो छन्द उद्धृत किए गए हैं, वे 'रासो' के लघुतम से लेकर के बृहत् पाठ तक समस्त पाठों में समान रूप से पाए जाते हैं।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' का एक भी विस्तार उपर्युक्त तीन को छोड़ कर ऐसा नहीं है जो 'रासो' के समस्त पाठों में न पाया जाता हो, और ये तीन विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं मिलते हैं।

(३) ऐसे कोई भी प्रसंग या विस्तार जो लघुतम के अतिरिक्त रचना के शेष किसी भी पाठ में मिलते हैं 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं हैं।

अन्तिम विशेषता के उदाहरण में निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया जा सकता है जो कि लघुतम को छोड़ कर 'रासो' के शेष समस्त पाठों में पाए जाते हैं :—

(१) गूर्जराधिपति भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज का युद्ध;

(२) जयचन्द के युद्ध से पूर्व हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का एक युद्ध;

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज के एक सामन्त धीर पुंडीर और शहाबुद्दीन के बीच हुआ युद्ध;

(४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़ के रावल समरसी का भाग लेना;

(५) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामन्त जम्बूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन पक्ष में जा मिलना; और

(६) चंद का उस हाहुलीराय हम्मीर के पास जाकर उसे पृथ्वीराज के पक्ष में लाने का प्रयत्न करना।

ये प्रायः ऐसे प्रसंग या विस्तार हैं जो यदि 'आईन-ए-अकबरी' के लेखक के सामने होते तो उसके द्वारा कदाचित् छोड़े न गए होते। अतः यह स्पष्ट है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरणों का आधारभूत 'रासो' का पाठ उसका लघुतम या उससे मिलता-जुलता ही कोई पाठ था।

अब विचारणीय यह है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण का आधारभूत यह पाठ 'रासो' के वर्त्तमान लघुतम पाठ से भी किन्हीं बातों में तो लघुतर नहीं था।

'आईन-ए-अकबरी' के विवरणों से 'रासो' के लघुतम पाठ की विवरणों की तुलना करने पर निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य ज्ञात होती हैं:—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' में कथा जयचन्द के राजसूय से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है। उसमें पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों के विषय में कोई उल्लेख तक नहीं होता है, और उसमें अन्यत्र चहुवान कुल के शासकों की जो नामावली आती है, वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में मिलती है।[१]

(२) अनंगपाल से पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में आती है, वह भी आईन-ए-अकबरी' में नहीं आती है।

[१] 'आईन-ए-अकबरी', उपर्युक्त, पृ० ३०२।

(३) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कैंवास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं होता है, जो कि 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में पाया जाता है।

(४) 'आईन-ए-अकबरी' में वे तिथियाँ भी नहीं आती हैं जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में पाई जाती हैं।

असम्भव नहीं है कि इनमें से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षेप की दृष्टि से 'आईन-ए-अकबरी' में छोड़ दिए गए हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उसके विवरण के आधारभूत 'रासो' के पाठ में उपर्युक्त में से कुछ न भी रहे हों। इस लिए यह विषय गम्भीरता पूर्वक विचारणीय है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना उपयोगी होगा कि 'आईन-ए-अकबरी' की रचना अकबर के राज्य के बयालीसवें वर्ष (सं० १६५४-५५) में समाप्त हुई थी और 'रासो' के विभिन्न पाठों की प्राप्त प्रतियाँ सभी उसके बाद की हैं : लघुतम की सबसे प्राचीन प्रति धारणोज (गुजरात) की है जो सं० १६६४ की है; लघु की सब से प्राचीन प्रति बीकानेर की है, जो जहाँगीर के समकालीन किन्हीं भागचन्द के लिए लिखी गई थी; मध्यम की सब से प्राचीन प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की है, जो सं० १६९२ की है; और बृहत् की सब से प्राचीन प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की है जो सं० १७४७ की है।

प्रस्तुत संस्करण 'आईन-ए-अकबरी' के आधारभूत 'रासो' के पाठ के सर्वथा निकट पहुँचता है, क्योंकि 'आईन' में 'रासो' के विशिष्ट प्रसंगों और विवरणों की जो स्थिति ऊपर बताई गई है उनकी लगभग वही स्थिति प्रस्तुत संस्करण में भी मिलती है :—

(१) प्रस्तुत संस्करण[1] की कथा जयचन्द के राजसूय यज्ञ से प्रारम्भ होती है और इसके पूर्व पृथ्वीराज का कोई वृत्त नहीं आता है, इसके अतिरिक्त इसमें भी पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों के विषय में कोई उल्लेख नहीं होता है।

(२) प्रस्तुत संस्करण में भी अनंगपाल से पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की बात नहीं आती है।

(३) प्रस्तुत संस्करण में भी कोई तिथियाँ नहीं आती हैं।

कैंवास-वध की कथा अवश्य प्रस्तुत संस्करण में ऐसी है जो 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं आती है, किन्तु इस कथा का मुख्य कथा से कोई अनिवार्य संबंध न होने के कारण ही यदि इसे 'आईन' में छोड़ दिया गया हो तो आश्चर्य न होगा।

—:*:—

[1] 'आईन-ए-अकबरी', उपर्युक्त, तृतीय भाग, पृ० ५२६।

१३. 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा

डॉ० नामवर सिंह ने 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक अपने डॉक्टरेट के निबन्ध में धा० पाठ के कन्नौज प्रकरण—प्रस्तुत संस्करण के सर्ग ४-८ तथा ९ के पूर्वार्ध—के छन्दों को लेकर रचना की भाषा पर विस्तृत विचार किया है और उसकी भूमिका में तत्संबंधी परिणामों का सारांश दिया है।[1] भाषाशास्त्रीय विश्लेषण के अनंतर निकाले गए ये परिणाम महत्व के हैं, इसलिए नीचे इन्हें उन्हीं के शब्दों में दिया जा रहा है।

अ. ध्वनि-विचार

(१) छन्द के अनुरोध से प्रायः लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए शब्दान्तर्गत (क) ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण, (ख) व्यंजन-द्वित्व, (ग) स्वर का अनुस्वार-रंजन, तथा (घ) समास में द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत गुरु को लघु बनाने के लिए (क) दीर्घ का ह्रस्वीकरण, (ख) व्यंजन-द्वित्व या क्षतिपूर्ति-रहित सरलीकरण, तथा (ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण की विधि प्रयोग में लाई गई है।

(२) छन्दोनुरोध के अतिरिक्त भी स्वर-व्यंजन में परिवर्तन हुए हैं। उत्तराधिकार में प्राप्त प्राकृत के अर्ध-तत्सम शब्दों का प्रयोग करने के साथ ही आधुनिक आर्य भाषाओं की प्रवृत्ति के अनुसार नये तद्भव रूपों की ओर भी झुकाव लक्षित होता है। अन्त्य स्वर के ह्रस्वीकरण की जो प्रवृत्ति प्राकृत-अपभ्रंश काल से ही शुरू हो गई थी, वह 'रासो' में पर्याप्त प्रबल दिखाई पड़ती है; जैसे जोध (=योद्धा), सेन (=सेना) इत्यादि।

(३) शब्द के अन्तर्गत आद्य अक्षर में प्रायः स्वर की मात्रा में परिवर्तन हो गया है और मात्रा-संबंधी यह परिवर्तन प्रायः दीर्घ से ह्रस्व की ओर दिखाई पड़ता है; जैसे अनंद (=आनंद) अहार (=आहार), जियण (=जीवन) इत्यादि।

(४) शब्द के अन्तर्गत अनादि अक्षर में स्वर के गुण-संबंधी परिवर्तन की प्रवृत्ति है, जैसे—अ > इ : तुरङ्ग > तुरिय; अ > उ : अञ्जलि > अंजुलिय; ई > अ : निरीक्ष्य > निरख; उ > अ : मुकुट > मुकट; उ > इ : कौतुक > कोतिग; ऊ > ओ : ताम्बूल > तंबोल; ए > इ : नरेन्द्र > नरिन्द, इत्यादि।

[1] 'पृथ्वीराज रासो की भाषा', सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ३३-४१।

(५) प्राकृत-अपभ्रंश में जहां स्वरान्तर्गत अथवा मध्यग क, ग, च, ज, त, द, प, य, व के लोप से उद्वृत्त स्वर अवशिष्ट रह जाता था, उसके स्थान पर धीरे-धीरे य, व श्रुति के आगम अथवा पूर्ववर्ती स्वर के साथ उन्हें संयुक्त करने की प्रवृत्ति अवहट्ठ अवस्था से प्रारम्भ हो गई थी, जिसकी प्रबलता 'रासो' में भी दिखाई पड़ती है। 'रासो' में उद्वृत्त स्वर की (क) स्वतन्त्र रूप से सुरक्षित, (ख) य, व श्रुति के रूप में उच्चरित और (ग) पूर्ववर्ती स्वरों के साथ संयुक्त, तीनों स्थितियाँ मिलती हैं, किन्तु प्रधानता द्वितीय स्थिति की है और तृतीय स्थिति विकास की अवस्था में दिखाई पड़ती है। तीनों स्थितियों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(क) चउसट्ठि < चतुष्षष्ठि; (ख) नयर < नगर; (ग) रावत < राउत < रावउत < *राअवुत < राजपुत < राजपुत्र।

(६) उद्वृत्त स्वर को पूर्ववर्ती स्वर के साथ संयुक्त करने की प्रवृत्ति पदान्त में विशेष दिखाई पड़ती है, जिसका व्याकरण की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। इस प्रवृत्ति के कारण 'रासो' के क्रियापद अपभ्रंश से विशिष्ट हो गए हैं और संज्ञा तथा सर्वनाम पदों में विकारी रूपों के निर्माण की अवस्था दिखाई पड़ती है। है, कहै, जानिहै, आयो, सो आदि क्रियापद तथा हत्थैं, तैं आदि संज्ञा-सर्वनाम के विकारी रूप इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं।

(७) उद्वृत्त स्वर के अतिरिक्त मूल स्वरों में भी स्वर-संकोचन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। मोर (=मयूर), समै (=समय), स्रोन (=श्रवण) इत्यादि शब्द इसी प्रकार के स्वर-संकोचन के परिणाम कहे जा सकते हैं।

(८) प्राचीन व्यंजन ध्वनियों में से य और व 'रासो' में अधिकांशतः केवल श्रुति के रूप में सुरक्षित प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त य ज में तथा व ब में परिवर्तित हो गया था। प्रतिलिपिकार ने यद्यपि ब के लिए भी व का ही प्रयोग किया है, तथापि उच्चारण में वह ब ही प्रतीत होता है।

(९) श, ष, स तीन ऊष्म ध्वनियों में से केवल स का अस्तित्व प्रमाणित होता है। श और ष भी प्रायः स में परिवर्तित हो गए थे। ष के अन्य परिवर्तित रूप ख और ह मिलते हैं। ख के लिए ष का प्रयोग मध्य युगीन नागरी लिपि शैली की सामान्य विशेषता है, जिससे सभी लोग परिचित हैं।

(१०) वर्गीय अनुनासिक व्यंजनों में से केवल न, म का अस्तित्व प्रमाणित होता है। क्वचित्-कदाचित् ण भी दिखाई पड़ जाता है किन्तु इसका प्रयोग या तो तत्सम शब्दों में परंपरा-निर्वाह के लिए दिखाई पड़ता है या राजस्थानी प्रभाव के अन्तर्गत हुआ है।

(११) लिपि-शैली से ड़, ढ़, न्ह, ल्ह, म्ह पाँच नवीन व्यंजन ध्वनियों के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन ड, ढ क्रमशः ड़, ढ़ में परिवर्तित हो गए थे।

(१२) असंयुक्त व्यंजनों में क > ह, ज > ग, ट > र, र > ल परिवर्तन महत्वपूर्ण हैं, जिनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

क > ह : चिकुर > चिहुर; ज > ग : कनवज > कनवग ; ट > र : भट > भर; र > ल : सरिता > सलिता।

(१३) असंयुक्त महाप्राण घोष और अघोष व्यंजनों का केवल महाप्राणत्व ही अवशिष्ट रह गया था। यह परिवर्तन प्रायः स्वरान्तर्गत अथवा मध्यग स्थिति में हुआ है। कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं :—

ख : दुह, सुह; घ : सुहर; थ : पहिल, पुहली; ध : कोह, विहि; भ : लहै, हुअ।

(१४) असंयुक्त अल्पप्राण व्यंजनों को आदि और अनादि दोनों ही स्थितियों में कहीं-कहीं महाप्राण कर देने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, जैसे : कंधार>खंधार; अंकुर>अंखुली।

(१५) अघोष व्यंजनों का घोषीकरण : जैसे अनेक>अनेग; कौतुक>कौतिग; चातक>चातग।

(१६) मूर्धन्यीकरण : जैसे ग्रन्थि>गंठि, गर्त>गड्ढा; दिल्ली>ढिल्ली।

(१७) संयुक्त व्यजनों के परिवर्तन में सबसे महत्वपूर्ण अन्य व्यंजन+र तथा र+अन्य व्यंजन हैं। ऐसे स्थलों पर 'रासो' में या तो सम्प्रसारण अथवा स्वरभक्ति की प्रवृत्ति है या फिर परवर्ती-व्यंजन-द्वित्व की। कहीं-कहीं व्यंजन-द्वित्व के साथ ही रेफ-विपर्यय भी हो गया है। फलतः 'रासो' में धर्म के धरम, धरम्म, ध्रम्म तीन प्रकार के रूप मिलते हैं। इसी प्रकार गर्व>गरव, गव्व, ग्रव्व रूप भी।

(१८) अन्य संयुक्त व्यंजनों में प्राकृत-अपभ्रंश की भाँति यथास्थान पूर्वसावर्ण्य तथा पर-सावर्ण्य की प्रवृत्ति प्रचलित दिखाई पड़ती है। फलस्वरूप इस रचना में भी प्राकृत-अपभ्रंश की तरह व्यंजन-द्वित्व की बहुलता मिलती है। 'रासो' के मुक्क, अग्ग, बद्ध, कज्ज, दुद्ध, नित्त, सद्द, अप्प, सव्व, जम्म जैसे शब्द इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं।

(१९) परन्तु आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की व्यंजनद्वित्व को सरलीकृत करने की मुख्य प्रवृत्ति 'रासो' में भी मिलती है। व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण दो प्रकार से किया गया है—(क) क्षतिपूरक दीर्घीकरण-सहित और (ख) क्षतिपूरक दीर्घीकरण-रहित। दोनों के उदाहरण निम्न-लिखित है :—

(क) अट्ठ > आठ; किज्जइ > कीजइ; लक्ख > लाख।

(ख) अलक्ख > अलख; उच्छंग > उछंग; चड्ढिहउ > चढिउ।

दीर्घाक्षरिक शब्द में भी क्षतिपूरक दीर्घीकरण के बिना ही व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण हो जाता है; जैसे : चैत्र > चैत्त > चैत।

(२०) संयुक्त व्यंजन तथा व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण क्षतिपूरक अनुस्वार के साथ भी होता है; जैसे : दर्शन > दंशन; प्रजल्प्य > पयंपि; पक्षी > पंखी।

आ. रूप-विचार

(१) रूप-रचना की दृष्टि से 'रासो' की भाषा अपभ्रंशोत्तर और उदयकालीन नव्य भारतीय आर्य भाषा की विशेषताओं से युक्त दिखाई पड़ती है। इनमें से पहली विशेषता है निर्विभक्तिक संज्ञा शब्दों का सभी कारकों में प्रयोग। अपभ्रंश में इस प्रवृति का प्रारम्भ ही हुआ था और नव्य भारतीय आर्यभाषा में प्रत्येक कारक के लिए परसर्ग का विकास होने से पूर्व बहुत दिनों तक ऐसे निर्विभक्तिक संज्ञा शब्दों के प्रयोग की बहुलता थी।

(२) उकार बहुला अपभ्रंश में कर्त्ता-कर्म एक वचन में जिस -उ विभक्ति का प्रचलन था, वह 'रासो' की प्राचीन प्रतियों में प्रचुर मात्रा में मिलती है। सभा के मुद्रित संस्करण में इसका अभाव दिखाई पड़ता है।

(३) अपभ्रंश की–ह परक विभक्तियों के अवशेष 'रासो' में काफी मिलते हैं। कनवज्जह, कनवज्जहे, कनवज्जहि जैसे रूप विरल नहीं हैं। परवर्ती हिंदी में धीरे-धीरे यह विभक्ति घिस कर विकारी रूप बन गई।

(४) करण-कारण एकवचन की–इ,–ए,–एँ अपभ्रंश विभक्तियाँ भी 'रासो' में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं; जैसे कारणइ, कवज्जइ, हत्थे, हत्थैं इत्यादि।

(५) कर्त्ता-करण तथा कर्म-सम्प्रदान के बहुवचन में -न, -नि, –नु विभक्ति का प्रयोग 'रासो' की ऐसी विशेषता है जो अपभ्रंश में नहीं मिलती लेकिन 'वर्ण रत्नाकर', 'कीर्तिलता' इत्यादि अवहट्ट रचनाओं से –ह से युक्त अर्थात् –न्ह, –न्हि रूप मिलने लगते हैं। यही –न आगे चलकर विकारी रूप ओ तथा आँ में विकसित हुआ। रासो में-ओं, –आँ वाले विकारी रूप नहीं मिलते।

(६) परसर्गों की दृष्टि से 'रासो' अपभ्रंश तथा अवहट्ठ दोनों की अपेक्षा समृद्ध है। कर्तृ-करण परसर्ग नैं अथवा ने को छोड़कर प्रायः शेष सभी परसर्ग किसी न किसी रूप में यहाँ मिलते हैं। कर्म-परसर्ग कहुँ, कहुं, कूं रूप में; करण-अपादान-परसर्ग तैं, ते तथा सहु, सौं, सूँ; अपादान-परसर्ग हुंति, सम्बन्ध-परसर्ग को, का, की, के तथा कउ, कै; अधिकरण-परसर्ग मज्झहि, मज्झे, मज्झि, मंझ, मधि, महि, मह आदि विविध रूपों में प्राप्त होता है, किंतु लघुतम रूपान्तर के कनवज्ज समय में अधिकरण-परसर्ग मैं अथवा में कहीं नहीं मिलता।

(७) सर्वनामों के विषय में 'रासो' की भाषा अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है। उत्तम पुरुष सर्वनाम के मैं, हूँ, हम तथा विकारी रूप मो, मोहि मिलते हैं। मध्यम पुरुष के तुम, तुम्ह, तुम्मह, तथा तैं, तुज्झ, तोहि रूप; अन्य पुरुष के सो तथा तासु जैसे प्राचीन रूपों के अतिरिक्त वह, उह, तथा उस रूपों का भी प्रयोग मिलता है।

(८) प्रश्नवाचक सर्वनाम के को, कौन, तथा किस, किन रूप; निज वाचक अप्पु, अप्प, अपन, सर्वनाम-मूलक विशेषण अस, इसो, तस, तैसे आदि प्रकार-वाचक और इत्तनहि, इत्तनउ, इत्तने तथा कितकु आदि परिमाणवाचक रूप 'रासो' को अपभ्रंश अवस्था से बाद की रचना प्रमाणित करते हैं।

(९) संख्यावाचक विशेषण— १ से १० की संख्याएँ एक, दुइ, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस नाम से मिलती हैं। १०० के लिए सै, सौ दोनों रूप आते हैं। १००० के लिए सहस के अतिरिक्त हज्जार (फारसी) का भी प्रयोग है। क्रमवाचक पहिलइ, बीय, तिअ, अपूर्ण संख्यावाचक अड्ढ; आवृत्तिवाचक दुहु इत्यादि।

(१०) क्रियापदों में यदि √भू के सभी काल के रूपों पर दृष्टिपात किया जाय तो अपभ्रंश से विकसित अवस्था के स्पष्ट लक्षण मिलते हैं। वर्तमान काल में है, भविष्यत् में होइहै तथा भूतकाल में कृदन्त रूप भो, भयो, भयी, भये तथा हुअ, हुवो इत्यादि।

(११) कहीं-कहीं पूर्वी हिंदी का आहि वाला क्रिया रूप भी 'रासो' में मिलता है, परन्तु इसका प्रयोग अधिक नहीं है।

(१२) भविष्यत् काल में अपभ्रंश का-स्स मूलक रूप, जो पीछे राजस्थानी में विशेष प्रचलित हुआ तथा पश्चिमी और पूर्वी हिंदी में नहीं आया, 'रासो' में कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है।

(१३) सामान्य वर्त्तमान काल के लिए 'रासो' में अपभ्रंश के तिङन्त-तद्भव-अइ वाले रूप के साथ ही स्वरसंकोच युक्त -ऐ वाले रूप भी मिलते हैं और गणना करने पर पता चलता है कि अनुपात की दृष्टि से दोनों का प्रयोग लगभग समान है।

(१४) -इग अन्तवाला भूतकालिक क्रियापद जैसे चलिग, कहिग, करिग इत्यादि 'रासो' की अपनी विशेषता है। इस प्रकार के क्रियापद अपभ्रंश में नहीं थे और पश्चिमी हिंदी में भी इस प्रकार के जो क्रियारूप मिलते हैं, उनका प्रयोग भूतकाल में न होकर केवल भविष्यत् काल तक ही सीमित है।

(१५) -अत कृदन्तयुक्त क्रियापदों से वर्तमान काल-रचना का सूत्रपात 'रासो' में हो चुका था किंतु इसके साथ अस्तिवाचक सहायक क्रिया के रूप जोड़कर आधुनिक हिन्दी की भाँति संयुक्त काल-रचना की प्रवृत्ति उसमें नहीं मिलती। यह अवस्था स्पष्टतः अपभ्रंश के पश्चात् और ब्रजभाषा के उदय के आस-पास की है।

(१६) संयुक्त क्रियाएँ 'रासो' में अपभ्रंश से अधिक किंतु ब्रजभाषा से बहुत कम मिलती हैं: साथ ही अर्थ की दृष्टि से भी वे काफी सरल हैं। धरि राख्यो, लेहि बइठो, उड़ चलहि, हुइ जाइ जैसी सरल संयुक्त क्रियाएँ ही 'रासो' में प्रयुक्त हुई हैं।

इ. शब्द-समूह

(१) कनवज समय (लघुतम रूपान्तर) में कुल मिलाकर लगभग साढ़े तीन हजार शब्द हैं और यदि रूप-विविधता को ध्यान में रखते हुए किसी शब्द के विविध रूपों में से केवल एक रूप की गणना की जाय तो शब्द-संख्या लगभग ३००० होती है। इनमें से लगभग ५०० शब्द संस्कृत तत्सम हैं और २० शब्द फारसी के हैं, शेष शब्द मुख्यतः तद्भव हैं। केवल थोड़े से शब्द अर्धतत्सम अर्थात् प्राकृत-अपभ्रंश के अवशेष हैं और उनसे भी कम देशी अथवा स्थानीय हैं। इस प्रकार 'रासो' में तत्सम शब्दों का अनुपात १६ प्रतिशत से अधिक नहीं है। अपभ्रंश को देखते हुए तत्सम शब्दों का यह अनुपात बहुत अधिक कहा जायगा, किन्तु नव्य आर्य भाषा की प्राचीन रचनाओं को देखते हुये 'रासो' में तत्सम शब्दों का यह अनुपात कम कहा जायगा। इससे साबित होता है कि भक्ति कालीन रचनाओं की अपेक्षा 'पृथ्वीराज रासो' कुछ प्राचीन रचना है और सोलहवीं शताब्दी के व्यापक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रभाव उस पर कम पड़ा है। इसी तरह मुसलमान बादशाहों के प्रभाव से इस रचना में जिन फारसी शब्दों की बहुलता की बात कही जाती है, वह केवल बृहत् रूपान्तर के लिए सही हो सकती है। लघुतम रूपान्तर में फारसी शब्द बहुत कम हैं।

यह कहना अनावश्यक होगा कि धा० पाठ के आधार पर ऊपर 'रासो' की भाषा के सम्बन्ध में जो परिणाम डॉ० सिंह ने निकाले हैं वे सर्वथा तथ्यपूर्ण हैं। किन्तु प्रस्तुत संस्करण में निर्धारित पाठ अनेक विषयों में धा० पाठ की तुलना में प्राचीनतर—अर्थात् अपेक्षा कृत अपभ्रंश के निकटतर प्रमाणित होता है। नीचे इस विशेषता के कुछ प्रमाण दिए जा रहे हैं।

अ. ध्वनि-विचार

डॉ० सिंह ने ध्वनि-विचार की प्रथम प्रवृत्ति जो बताई है, उसका सम्बन्ध मूलतः रचना के कवि की शैली से है, उसकी भाषा से नहीं; छठीं प्रवृत्ति के रूप में उद्वृत्त स्वर को पूर्ववर्ती स्वर के साथ संयुक्त करने की जो प्रवृत्ति उन्होंने बताई है, वह प्रस्तुत संस्करण में अपवाद स्वरूप ही कहीं-कहीं मिलेगी, सामान्य प्रवृत्ति उद्वृत्त स्वरों को स्वतन्त्र रूप से सुरक्षित रखने की है, यथा धा० के 'है' 'कहै', 'जानिहै' के स्थान पर प्रस्तुत संस्करण में प्रायः 'हइ', 'कहइ', 'जानिहइ' रूप मिलेंगे और इसी प्रकार 'आयो' तथा 'भो' के स्थान पर प्रायः 'आयउ' तथा 'भउ' मिलेंगे।

ध्वनि-विचार की आठवीं प्रवृत्ति के रूप में 'य' के 'ज' तथा 'व' के 'ब' में परिवर्तित होने की जो बात उन्होंने कही है, वह भी अंशतः ही प्रस्तुत संस्करण में मिलेगी : 'य' अवश्य ही अधिकतर 'ज' हो गया है किन्तु वह अपने 'य' रूप में भी अनेक स्थलों पर सुरक्षित है, और सामान्य रूप से 'व' के 'ब' हुए होने के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं; केवल 'व' और 'ब' के एक-से लिखे जाने के कारण यह अनुमान करना बहुत उचित न होगा; प्रस्तुत संस्करण में 'व' अधिकतर सुरक्षित मिलेगा, केवल कहीं-कहीं पर 'व' का 'ब' हुआ दिखाई पड़ेगा।

ध्वनि-विचार की ग्यारहवीं प्रवृत्ति के रूप में 'ड़', 'ढ़', 'न्ह', 'ल्ह', 'म्ह' की पाँच नवीन व्यंजन-ध्वनियों के प्रचलन की बात कही गई है। प्रस्तुत संस्करण में 'ड़' 'ढ़' एक स्थान पर भी नहीं आते हैं—वे धा० की मूल प्रति में भी होंगे इस विषय में मुझे पूरा संदेह है और असंभव नहीं कि वे उसमें आधुनिक प्रतिलिपि-क्रिया द्वारा आए हों; 'न्ह', 'ल्ह' और 'म्ह' भी प्रस्तुत संस्करण में नवीन व्यंजन-ध्वनियों के रूप में नहीं मिलते हैं, वे अपनी संयुक्त व्यंजन-ध्वनियों के रूप में ही इसमें मिलते हैं।

ध्वनि-विचार की चौदहवीं प्रवृत्ति के रूप में अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण करने की जो बात कही गई है, वह भी प्रस्तुत संस्करण में प्रायः नहीं मिलती है : दिए हुए उदाहरणों में से 'खंधार' 'कंधार' से कदाचित् नहीं व्युत्पन्न होता है, वह 'स्कंधार' से व्युत्पन्न है और इसलिए 'खंधार' के 'ख'

का महाप्राणत्व 'स्कंधार' के स् > ह् के क के साथ मिल जाने के कारण हुआ लगता है : 'अंखुली' भी 'अंकुर' से व्युत्पन्न नहीं है, वह कदाचित् 'उक्खलिय' है जो 'उत्खण्डित' से व्युत्पन्न है।

ध्वनि-विचार की सत्रहवीं प्रवृत्ति के अन्तर्गत व्यंजन-द्वित्व के साथ रेफ-विपर्यय की जो बात कही गई है, वह भी प्रस्तुत संस्करण में न मिलेगी : 'ध्रम्म' और 'ग्रब्व' के स्थान पर 'धर्म' और 'गर्व' के दिए हुए अन्य रूप तथा 'धम्म', 'गब्ब' ही मिलेंगे।

आ. रूप-विचार

रूप-विचार के अन्तर्गत सातवीं प्रवृत्ति के रूप में सर्वनामों के जिन रूपों का उल्लेख किया गया है, उनमें से अनेक नहीं हैं; 'उस' के प्रयोग की जो बात कही गई है, वह तो धा० पाठ के संबंध में भी ठीक नहीं है। डॉ० सिंह द्वारा दी हुई शब्दानुक्रमणिका में—जो उनके ग्रन्थ के अन्त में दी हुई है—'उस' उनके संस्करण के छन्द ५४ मात्र में आया हुआ बताया गया है, किन्तु यह 'उस' नहीं है 'उसनेह' का एक खंड मात्र है, पूरी पंक्ति है :—

सीत उसनेह रितु दोख हंभं।

'उसनेह' < 'उष्ण' से व्युत्पन्न है, अर्थ से यह भली भाँति प्रमाणित है।

रूप-विचार के अन्तर्गत नवीं प्रवृत्ति के रूप में चार, पाँच, छह, सात तथा आठ के मिलने का जो उल्लेख किया गया है, वह भी अंशतः ही ठीक है : चार, पाँच, छः, सात, तथा आठ प्रस्तुत संस्करण में 'च्यारि', 'पंच', 'सत्त' तथा 'अट्ठ' के रूप में ही सामान्यतः मिलते हैं, अन्य रूपों में अपवाद स्वरूप ही में मिलेंगे।

रूप-विचार के अन्तर्गत तेरहवीं प्रवृत्ति के रूप में '—अइ' के साथ '-ए' वाले रूपों का लगभग बराबर-बराबर पाया जाना बताया गया है। प्रस्तुत संस्करण में '-ए' वाले रूप बहुत ही कम हैं, अधिकता '-अइ' वाले रूपों की ही मिलेगी।

इ. शब्द-समूह

तत्सम और अर्धतत्सम शब्दों की जो संख्या डॉ० सिंह द्वारा ऊपर शब्द-समूह के अन्तर्गत बताई गई है, प्रस्तुत संस्करण में उसमें कदाचित् कमी दिखाई पड़ेगी, और तद्भव शब्दों की संख्या में कदाचित् कुछ आधिक्य दिखाई पड़ेगा। फ़ारसी शब्दों का अनुपात लगभग वही होगा जो डॉ० सिंह के परिणामों में दिया हुआ है।

डॉ० सिंह ने कहा है कि 'रासो' की भाषा पर सोलहवीं शताब्दी के व्यापक पुनर्जागरण का प्रभाव कम पड़ा है, किंतु प्रस्तुत संस्करण के पाठ में वह कदाचित् बिलकुल नहीं पड़ा दिखाई देगा। फारसी शब्दों की बहुत-कुछ बहुलता मुसलमानी शासन के प्रभाव के कारण अवश्य है, किन्तु कुछ न कुछ शहाबुद्दीन के प्रसंगों के वर्णन की अनिवार्य आवश्यकता के कारण भी है, जैसा हम अन्यत्र[१] देखेंगे। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण में रचना की भाषा का स्वरूप धा० पाठ के भाषा-रूप की तुलना में प्राचीनतर प्रमाणित होगा।

दोनों में कितना और किस प्रकार का अंतर है, यह स्पष्ट करने के लिए एक छोटे प्रसंग की पंक्तियाँ नीचे पहले धा० तथा फिर संपादित पाठ से दी जा रही हैं।[२]

धा० पाठ: दूहा—उदय अगस्त ... उज्जल जल ससि कास।
मोहि चंद इह विजय मनु कहहु कहाँ कइमास॥
नागपुर नरपुर सयल कथिसु देवपुर साज।
दाहिमो दुल्लह भयो कहि न जाय प्रिथिराज॥

१ दे० इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।
२ धा० छंद ८४-९० ; संपादित पाठ ३.२१—२७।

का भुजंग का देवनर निकमु कव्व कवि खंडि ।
कै भ्रताउ कैवास मोहि हर लिद्धि वर छंडि ॥
जो छंडइ ... ... ।
...... तप ताप करि बरु छंडै कवि चन्द ॥
हठ लग्गयो चहुवान नृप अंगुली मुखहि फनिंद ।
जिह पुरि तुअ मति संचरइ सु कहि बिनइ कवि चन्द ॥
सेस सिरप्परि सूरतर जइ पुच्छइ नृप देसु ।
दुहु बोली मंडन मरणु कहहु त कव्व करेसु ॥

कवितु—इक्कु बान पुहमी नरेस कैवासह मुक्कयो ।
उर उप्परि खरहरयउ बीर कक्खंतरु चुक्कयो ।
बीअ बान संधानि हन्यो सोमेसुर नंदन ।
गाढ़ो के निग्गहयो खन्यौ गड्डो संभरि धन ।
थर छंडि न जाइ न सम्भलो गारे गहूयो गुन खले ।
इम जंपइ चन्द बरद्दिया कह न घटे इह प्रब्भले ॥

॥ पठ: दोहरा—उदय अगस्त नयन दिठि उज्जल जल सरि कास ।
मोहि चंद इह विजय मन कहहुं कहां कयमास ॥
नागपुर सुरपुर सदल कथित कहउं सब साज ।
दाहिम्मउ दुल्लइ भयउ कहउ न जाइ प्रथिराज ॥
कहा भुजंग कहा उदे सुर निकमु कव्व कवि षंडि ।
कइ कयमास बताहि मो कइ हर सिद्धी वर छंडि ॥
अउ छंडइ सेसह धरणि हर छंडइ विष केलु ।
रवि छंडइ तप ताप कर तउ वर छंडइ कवि चंदु ॥
हठि लग्गउ चहूआन नृप अंगुलि मुपह फणिंदु ।
तिहु पुरि तुव मति संचरइ सु कहे बनइ कवि चंदु ।
सेस सिरप्परि सूरतर जइ पुच्छइ नृप एस ।
दोहुं बोलि मंडन मरणु कहइ तउ कव्वु कहेस ॥

कवित्त—एकु बान पुहवी नरेस कयमासह मुक्कउ ।
उर उप्परि खरहरिउ बीर कप्पह तर चुक्कउ ।
बीउ बान संधानि हनउ सोमेसुर नंदन ।
गाडउ करि निग्गहउ पनिब पोदउ संभरिधनि ।
थर छंडि न जाइ अभागरउ गारइ गहउ सु गुन परउ ।
इम जंपइ चंद विरद्दिया सु कहा निमद्दिहि इह प्रलउ ॥

इसी प्रसंग में 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में आए हुए 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में :
को भी लिया जा सकता है, जो कि ऊपर धा० तथा संपादित पाठों का उद्धृ:
इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइं कईबासह मुक्कओ ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ ।

[1] 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह', संपा० मुनि जिन विजय, पृ० ८६ ।

बीअं करि संधीउं भमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुदइ सइंभरिवणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खलगुलइ।
नं जाणउं चंद बलद्दिउ कि न वि छुट्टइ इह फलह॥

'पृथ्वीराज-प्रबंध' का यह पाठ जिन दो प्रतियों पर आधारित है, उनमें से एक सं० १५२८ की है,[1] और संग्रह के योग्य संपादक ने कोई पाठभेद इस छंद के नहीं दिए हैं, इसलिए समझना चाहिए कि दोनों प्रतियों में छंद का पाठ एक ही या प्रायः एक ही है। 'रासो' की भाषा के प्राचीन रूप के परिज्ञान के लिए सं० १५२८ के इस पाठ का महत्व प्रकट है, और यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है कि पाठ-विषयक अन्य प्रकार का अंतर होते हुए भी प्रस्तुत संस्करण के संपादित पाठ और सं० १५२८ के 'पृथ्वीराज-प्रबंध' के उपर्युक्त पाठ में भाषा-विषयक कोई अंतर नहीं है, जब कि धा० के पाठ तथा पृथ्वीराज-प्रबंध के इस पाठ में भाषा-विषयक अन्तर है। यह अंतर किस प्रकार का है, यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है: धा० का पाठ सं० १५२८ के उपर्युक्त पाठ तथा प्रस्तुत संस्करण के संपादित पाठ के कुछ बाद की भाषा-स्थिति को हमारे सामने रखता है। फलतः डॉ० नामवर सिंह ने रचना की भाषा के विषय में जो परिणाम निकाले हैं, वे अधिकांश में ग्राह्य होते हुए भी प्रायः उपर्युक्त प्रकार से संशोधन की अपेक्षा रखते हैं।

अब रही रचना की भाषा के देश-काल की बात। डॉ० नामवरसिंह ने अपने उपर्युक्त शोध-निबन्ध में 'रासो' की भाषा के इस पहलू पर भी विस्तार से विचार किया है, और युक्तिपूर्वक यह दिखाया है कि न वह अपभ्रंश है, न डिंगल या पुरानी पश्चिमी राजस्थानी, और वह पुरानी ब्रज-भाषा भी नहीं है, वह पुरानी पूर्वीय राजस्थानी है जिसे पिंगल कहा जाता रहा है, और इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि ग्रन्थ की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति पर 'तारीख पिथूराज बज़बान पिंगल तसनीफ़ कर्दा कवि चन्द बरद्दाई' लेख मिलता है।[2] इसके अनन्तर उन्होंने दिखाया है कि 'रासो' की यह भाषा परम्परा के अनुसार पिंगल होते हुए भी 'प्राकृत पैंगल' (रचना १४वीं शती ईस्वी) से अधिक विकसित है; इसमें प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अपेक्षाकृत कम हैं और नव्य भारतीय आर्यभाषा के रूप अधिक हैं।[3]

जहाँ तक रचना की भाषा के देश-पक्ष की बात है, मैं डॉ० सिंह से प्रायः सहमत हूँ, यद्यपि हो सकता है कि पिंगल किसी क्षेत्र-विशेष की बोल-चाल की भाषा के सामान्य रूप का नहीं वरन् उसके साहित्यिक रूप का नाम रहा हो और वहाँ की बोल-चाल की सामान्य भाषा और पिंगल में लगभग उतना ही अन्तर रहा हो जितना आज की मेरठ की खड़ी बोली और साहित्यिक हिन्दी में है। वह शौरसेनी अपभ्रंश से निकली हुई उस युग की काव्य-भाषा थी जिस युग में 'रासो' की रचना हुई।[4] किन्तु जहाँ तक रचना की भाषा के काल-पक्ष की बात है, मैं डॉ० सिंह से आंशिक रूप में ही सहमत हूँ। उसमें प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अधिक हैं और नव्य भारतीय आर्य-भाषा के रूप कम हैं, और यह बात ऊपर दी हुई मेरी युक्तियों तथा रचना के उदाहरणों से भली भाँति देखी जा सकती है। प्रस्तुत लेखक का अपना विचार है कि 'रासो' में पिंगल भाषा का वह

[1] 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह', उपर्युक्त, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ३।

[2] 'पृथ्वीराजरासो की भाषा', सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ४१—४६।

[3] वही, पृ० ४६—५३।

[4] पिंगल भाषा के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेखक के विचारों के लिए दे० 'हिंदी साहित्य कोश' (ज्ञान मंडल, वाराणसी) में 'पिंगल काव्य' शीर्षक।

मे मिलता है जो 'प्राकृत पैंगल' के कुछ ही पीछे विकसित हुआ था, ...
त पैंगल' के सबसे पीछे रचे हुए छंदों की भाषा में अन्तर बहुत कम ...
ाने के लिए 'प्राकृत पैंगल' से वे छन्द दिए जा रहे हैं जो हम्मीर (सं...
के हैं[1] :—

गाहिणी—मुंचहि सुन्दरि पाअं अप्पहि हसिऊण सुमुहि खग्गं मे
कप्पिअ मेच्छ सरीरं पेच्छइ बअणइ तुमह धुअ हम्मी...

रोला— पअभरु दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झंपिअ।
कमठ पिट्ठ टरपरिअ मेरु मंदर सिर कंपिअ।
कोह चलिअ हमीर बीर गअजूह संजुत्ते।
किअउ कट्ठ हाकंद मुच्छि मेच्छह के पुत्ते॥

छप्पअ— पिंधउ दिढ सण्णाह बाह उप्पर पक्खर दइ।
बन्धु समदि रण धसउ समि हम्मीर बअण लइ।
उड्डुल णहपह भमउ खग्ग रिउ सीसह डारउ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पब्बअ अप्फालउ।
हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ कोहाणल मुहमह जलउ
सुलताण सीस करबाल दइ तेज्जि कलेवर दिअ चलउ

कुंडलिआ— ढोल्ला मारिअ ढिल्लि मह मुच्छिअ मेच्छ सरीर।
पुर जज्जल्ला मंतिवर चलिअ बीर हम्मीर।
चलिअ बीर हम्मीर पाअ भर मेइणि कंपइ।
दिगमग णह अंधार धूलि सूरह रह झंपइ।
दिगमग णह अंधार आणु खुरसाणक ओल्ला।
दरमरि दमसि बिपक्ख मारु ढिल्लि मह ढोल्ला॥

गअणंग— भंजिअ मलअ चोलवइ णिवलिअ गंजिअ गुज्जरा।
मालव राअ मलअगिरि लुक्किअ परिहरि कुंजरा।
खुरासाण खुहिअ रण मह मुहिअ लंघिअ साअरा।
हम्मीर चलिअ हा रव पलिअ रिउ गणह काअरा॥

लीलावती— घर लगगइ अग्गि जलइ धह धह
कइ दिग मग णह पह अणल भरे।
सब दीस पसरि पाइक्क लुलइ
धणि थण हर जहण दिआब करे।
भअ लुक्किअ थक्किअ बइरि तरुणि जण
भइरव भेरिअ सद्द पले।
महि लोटइ पिट्टइ रिउ सिर टुट्टइ
जक्खण बीर हमीर चले॥

जलहरण— खुरि खुरि खुदि खुदि महि घघर रव कलइ
ण ण ण ण गिदि करि तुरअ चले।
ट ट ट गिदि पलइ टपु धसइ धरणि धर

[1] 'प्राकृत पैंगलम्', संपा० चन्द्रमोहन घोष, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, कल...

चकमक करि बहु दिसि चमले ।
चलु दमकि दमकि बलु चलइ पइक बलु
घुलकि घुलकि करि करि चलिआ ।
वर मणु सअल कमल विपख हिअअ सल
हमिर बीर जब रण चलिआ ॥ (पृ० ३२७)

क्रीडाचक्र—जहा भूत बेताल णच्चंत गाबंत खाए कबंधा।
सिआ फार फेक्कार हक्का रबंता फुले कण्ण रंधा।
कआ टुट्ट फुट्टेइ मंथा कबंधा णचंता हसंता।
तहा बीर हम्मीर संगाम मज्झे तुलंता जुअंता ॥ (पृ० ५२०)

इन छन्दों को भाषा पर विचार करते समय गाहिणी के—जो कि गाथा का एक प्रकार है—उदाहरण को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि गाथाओं को प्राकृत या प्राकृताभास में ही लिखने की उस युग में परम्परा रही है, और 'पृथ्वीराज रासो' में भी इस परम्परा का सम्यक् निर्वाह हुआ है। शेष छन्दों की भाषा और 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों की भाषा में अन्तर साधारण है।

उल्लेखनीय अन्तर एक तो यह है कि हम्मीर-विषयक इन छन्दों में ड तथा र के स्थान पर कहीं-कहीं ल का प्रयोग हुआ है :—

ड > ल : पडिअ > पलिअ (पृ० २५५), पडे > पले (पृ० ३०४), पडइ > पलइ (पृ० ३२७), फुडे ? > फुले (पृ० ५२०)।

र > ल : तुरइ > तुलइ (पृ० ३०४), करइ > कलइ (पृ० ३२७), चमरे > चमले (पृ० ३२७), तुरंता > तुलंता (पृ० ५२०)।

'पृथ्वीराजरासो' में भी इस वृत्ति के उदाहरण मिलते हैं, यथा : सरिता > सलिता (७.४.१) (९.११.३); आरूढ > आलुइझ (४.२०.२२), (१२.३६.२), (८.२४.५); प्रसरण > प्रसलन्न (७.१२.२०); रट > रल (८.२२.२); सरिग > सलिग (८.३२.३); मुकुर > मुकल (९.४.२); आर्द्र > आल (९.११.१); दर्दुर > दादुल्ल (९.११.२); सारिका > सालि (१०.११.२६); मुहडा > मुहुल्ल (१२.१३.११)। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि 'रासो' में यह प्रवृत्ति कम है।

उल्लेखनीय दूसरा अन्तर यह है कि हम्मीर-विषयक छन्दों में सर्वत्र 'व' के स्थान पर 'ब' मिलता है। डॉ० सिंह ने 'रासो' के ध्वनि-विचार के सम्बन्ध की आठवीं प्रवृत्ति में, जो ऊपर दी जा चुकी है, लिखा है कि श्रुति रूप में प्रयोग के अतिरिक्त 'व' 'रासो' 'ब' में परिवर्तित हो गया था। किंतु हम्मीर-विषयक इन छन्दों में तो 'व' रह ही नहीं गया है; जिन शब्दों में हिन्दी में 'ब' कभी सुना भी न गया होगा, उनमें भी 'व' के स्थान पर 'ब' कर दिया गया है, यथा : करबाल (पृ० १८०), कलेबर (पृ० १८०), चोलबइ (पृ० २५५), मालब (पृ० २५५), रब (पृ० २५५), भइरब (पृ० ३०४), रब (पृ० ३२७), गाबंत (पृ० ५२०), रबंता (पृ० ५२०)। हिन्दी की किसी बोली में इन शब्दों में 'ब' नहीं आता है, 'व' ही आता है, ऐसी दशा में इस 'ब' का क्या कारण है ? स्पष्ट ही कारण यह है कि 'प्राकृत पैंगल' के सम्पादक को जहाँ भी 'व' मिला, उसने कदाचित् अपनी भाषा की प्रवृत्ति से प्रभावित होकर सर्वत्र उसे 'ब' कर दिया, यहाँ तक कि 'व' इन छन्दों में देखने को भी नहीं रह गया ! असम्भव नहीं कि इसी प्रकार के प्रयासों के फलस्वरूप यह धारणा बन गई हो कि हमारी बोलियों में श्रुति के रूप में प्रयोग के अतिरिक्त 'व' का अस्तित्व ही किसी समय समाप्त हो गया था, और 'रासो' में भाषा की यह बाद में आई हुई स्थिति व्यापक रूप से पाई जाती है। 'व' और 'ब' अधिकतर एक प्रकार से लिखे जाने लगे थे, यह अवश्य हुआ था।

किंतु समस्त 'व' 'ब' में बदल गए, अथवा यह भी कि श्रुति के रूप में उस
'व' रह ही नहीं गया था, मेरी समझ में ठीक मत नहीं है। उदाहरण के लि
की शेष अन्य प्रति मो० (सं० १६९७) में ही अनेक स्थलों पर 'ब' स्पष्ट बना

इन दोनों के बाद हम्मीर-सम्बन्धी छन्दावली तथा 'पृथ्वीराज रासो'
उल्लेखनीय अन्तर उद्वृत्त स्वर तथा श्रुति-प्रयोग मात्र का रह जाता है।
सर्वथा अभाव 'रासो' में नहीं है, यह सुगमता से देखा जा सकता है,
लगभग समान हैं। इसलिए मेरी राय में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा हम्मीर वि
की भाषा से थोड़े ही बाद की है, यही मानना अधिक युक्ति-संगत होगा।

इस प्रसंग में जिस प्रकार हमने ऊपर हम्मीर-विषयक छन्दों को देख
संभवतः हम्मीर के जीवन-काल में सं० १२९५ तथा १३५८ के बीच हुई होगी,
'रण मल्ल छन्द'[1] के छन्दों को भी देख सकते हैं, जिनकी रचना सं० १४५४

चुप्पई—'हल ऐयार हकारवि बुल्लइ।
भुजबलि सबल मुद्धि दल घल्लइ।
गयु खान खुद लगतलि चल्लिअ।
शकदल दहु दिसि दिट्ठ डहल्लिअ॥ २६॥
मलिक मंत्र मज्झिम निशि किद्धउ।
तब हेजब फुरमाण स दिद्धउ।
ईडर गढि अरसइय जडि चल्लिउ।
जइ रणमल्ल पासि इम बुल्लिउ॥ २७॥
सिरि फुरमाण धरवि सुरताणी।
धर दय हाल माल दीवाणी।
अगर गरास दास सवि छोडिअ।
करि चाकरी खान कर जोडिअ॥ २८॥
रा असि सरिसु बाहु उठभारिअ।
बुल्लइ हठि हेजब हक्कारिअ।
मुझ सिर कमल मेच्छ पय लग्गइ।
तु गयणङ्गणि भाण न उग्गइ॥ २९॥

सिंह विलोकित—जां अम्बर पुडतलि तरणि रमइ।
तां कमधज कंध न धगड नमइ।
वरि वडवानल तण झाल शमइ।
पुण मेच्छ न आपूं चाच किमइ॥ ३०॥
पुण रण रस जाण जरह जडी।
गुण सींगणि खञ्चो खग्गि चडी।
छत्तीस कुलह बक करिसु घणूं।
पय मग्गिसु रा हम्मीर तणूं॥ ३१॥

[1] 'प्राचीन गुर्जर काव्य', संपा० केशवलाल हर्षद राय ध्रुव, गुजरात वर्नाक्युलर सं० १९८३, पृ० ५-७।

[2] वही, प्रस्तावना, पृ० ११।

हुल दारुण दुफकरखान जयौ।
मिहू अग्गड अग्गहू लग्गरयि।
हिव पट्टण पट्टरि थरिसु पर्म।
नइ विनडिसु लसिरि सहस्स कर्म॥ ३२॥
मिहूं पहरि समसुद्दीन रही।
पडि अग्गल अज्झो अड्डि भिडी।
जव मण्डिसि सुथ रणमल्ल समं।
तव देखिसि लसकरि खरिसु जमं॥ ३३॥
मम मोडि म मण्डि मलिक्क घणूं।
हूं समरि विडारण मेच्छ तणु।
जव कठिसि हठि हक्कन्त रणि।
तव न गणूं अण सुरताण तणि॥ ३४॥
खल खुल्लि म बल्लि मलिक्क कहि।
म म बरणि खिसुणस्सि दूत सुहि।
जव चम्पिसि ईडर सिहर तलं।
तव पेक्खिसि सुहु रणमल्ल बलं॥ ३५॥

इन पंक्तियों में यह सुगमता से देखा जा सकता है कि:—

(१) उद्वृत्त स्वर के स्थान पर सर्वत्र य, व, श्रुति आ गई है।

(२) व्यंजन-द्वित्वों की बहुलता है, जिनमें से कुछ तो प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा में हैं, और कुछ छंदोनुरोध-अथवा ओजपूर्ण शैली की आवश्यकताओं के कारण आए हुए हैं। किंतु कहीं-कहीं पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ करके व्यंजन द्वित्व को सरलीकृत करने की भी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

(३) प्रायः सभी कारकों में निर्विभक्तक संज्ञा शब्द प्रयुक्त हुए हैं, और परसर्गों का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ है।

(४) शब्द-समूह की दृष्टि से यह रचना काफी विकसित है; फारसी के शब्द बहुतायत से आ गए हैं।

फलतः 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा 'प्राकृत पैंगल' के हम्मीर-संबन्धी छंदों तथा 'रणमल्ल छंद' की भाषाओं के बीच की लगती है।

—:*:—

१४. 'पृथ्वीराज रासो' में प्रयुक्त विदेशी शब्द

नीचे 'रासो' के प्रस्तुत पाठ में व्यवहृत विदेशी शब्दों की सूची दी जा रही है। इस सूची में व्यक्तिगत नाम नहीं रक्खे गए हैं, फिर भी देखा जा सकता है कि विदेशी शब्दों की यह सूची छोटी नहीं है। पुनः ये विदेशी शब्द शहाबुद्दीन के प्रसंगों में ही नहीं, प्रायः सभी प्रसंगों में आते है, यद्यपि शहाबुद्दीन के प्रसंगों में इनका व्यवहार अन्यत्र हुए इनके व्यवहार की तुलना में लगभग ६-७ गुना अधिक हुआ है, जो कि कदाचित् स्वाभाविक भी है। एक बात और इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य है : शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त विदेशी शब्द अधिकतर ऐसे हैं जिनके भारतीय पर्याय प्रचलित रहे हैं और इस ग्रंथ में भी प्रयुक्त हैं। अतः ऐसा लगता है कि जिस समय इस ग्रन्थ की रचना हुई, शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त विदेशी शब्द उत्तर भारत की बोलचाल की भाषा में आ चुके थे, और वे उसके अंग बन गए थे।

शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं:—

रिंद (१.३.२०), दरब्बान (२. ३.५२), बग्ग (< बाग २. ५.२५), दरबार(४.२५.१६), दरबार(.५.१.१), दरबार (५.३.७), सुरतान (५.१३.८), दरिआइ (५.१३.२२), बंदा (५.१३.२३), मीर (५.१३.२३), दरबार (५.४२.२), जोर(५.४८.२), तेग (६.२३.१०), तषत (६.२३.१२), रुष (७.१.१), निसान (७.३.१), दरिआइ (७.४.८), सहनाइ (७.४.९), नफेरिय (७.४.९), समसेर (७.४.१५), फत्ता (७.४.२३), फोज (७.६.१६), फोज (७.६.१७), जिरह (७.६.३१), जंगी (७.६.३१), तबल (७.६.४१), तंदूर (७.६.४१), जंगी (७.६.४१), सहनाइ (७.६.४७), नफेरी (७.६.४९), नवरंग (७.६.४९), मंगूल (= मंगोल ७.१०.९), बाजू (७.१०.१०), सोर (७.१०.१७), निसान (७.१२.३), दुम्मी (= दुमवाले ७.१४.२), फोज (७.१४.४), हजार (७.१५.१७), हजार (७.१६.२), मनार (< मीनार ७.१६.४), जंग (७.१७.१२), मीर (७.१७.२१), कम्मान (७.१७.२३), मीर (७.१९.२), गाजी (७.३१.११), हींदू (८.२.५), तुरक (८.२.५), कमान (८.९.२१), कसीस (< कशिश ८.९.२२), मीर (८.१०.१), महिल (९.२.२), महिल (९.३.१), हरम्म (९.४.१), सोर (९.६.१), सोर (९.११.२), दर (१०.१५.१), गूदरना (= गुजारना १०.१६.२), कग्गर (< कागज १०.२०.१), महिल (१०.२१.१), रुष (१०.२१.२), कग्गर (<कागज १०.२४.१)।

शहाबुद्दीन के प्रसंगों में प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं:—

हजार (११.१.२), हजार (११.२.२), हजार (११.३.१), देवान (<दीवान ११.५.२), दीन (११.६.१), सुलतान (११.७.६), आलम आलम (११.७.३), मरदान (११.८.२),

हमीर (< अमीर ११.८.३), हिन्दू (११.८.३), दीन (११.८.३), रमजान (११.८.३), निवाज (< नमाज ११.८.४), निकाज (< बेकाज ११.८.४), गुम्मान (११.८.४), दुरोग (११.८.६), दोजक (११.८.६), मसूरति (<मसवरत ११.९.१), कुरान (११.९.१), साहि आलम (११ १०.१), तेग (११.१०.६), कमांन (११.१०.६), पातिसाह (११.११.२), निसान (११.११.१), सुरताण (११.१२.१), जंग (११.१२.७), तेग (११.१२.७), बाज (११.१२.१०), हमीर (<अमीर ११.१२.१७), कुफार (< कुफ्फार ११.१४.१), फरजंद (११.१४.१), साहि (१२.१.१) रह (<राह १२.१.६), रह (राह १२.२.१), पीर (१२.४.२), दरबार (१२.६.२), दरबान (१२.७.१), परदार (पहरादार १२.८.१), दर (१२.९.२), दर (१२.१०.२), लगभग ढाई दर्जन विदेशी मुसलमान जातियों के नाम (१२ : ११.१-८), सेषजादा (१२.११.९), पठाण (१२.११.९), साहि (१२.११.१०), हदफ (१२.१२.२), सलाम (१२.१३.१), मीर (१२.१३.१), फोज (१२.१३.८), मसंद (१२.१३.३), नजरिंद (नजरमंदी ? १२.१३.४), जीन (१२.१३.१०) ,अदब्ब (१२.१३.११), ताज (१२.१३.१२), साहि (१२.१३.१३), फरमान (१२.१४.१), सुरतान (१२.१४.२), बे (१२.१४.२), साहि (१२.१५.५), सुरतान (१२.१५.८), अदब्ब (१२.१५.११), हदप्प (१२.१५.१३), फुरमान (१२.१५.१५), महिमान (१२.१५.१६), महिमान (१२.१६.१), हदफ (१२.१७.१), सुरतांन (१२.१७.१), सुरतांन (१२.१८.१), दर (१२.१८.१), निसान (१२.१८.१), दुनिआ (१२.१९.४), अरदास (< अर्जदाश्त १२.२०.१), आदमी (१२.२०.१), सुरतांन (१२.२०.२), फकीर (१२.२१.१), करामाति (१२.२१.१), मियाँ (१२.२२.१) मल्लिक (१२.२२.१), षांन (१२.२२.१), हज्जूर (१२.२३.१), पातसाहि (१२.२३.२), दुरोग (१२.२८.२), पतिसाहि (१२.२९.१), सुरतान (१२.२९.४), मुहाल (१२.३४.२), बकस (< बख्श १२.३९.४), साहि (१२.४०.२), फुरमान (१२.४०.६), पातसाहि (१२.४१.२), मरद (१२.४१.४), फुरमान (१२.४१.५), पातिसाहि (१२.४२.२), फुरमांन (१२.४२.६), फुरमान (१२.४३.२), साहि (१२.४४.२), कमान (१२.४६.१), फुरमान (१२.४८.१), फुरमान (१२.४८.१), फुरमान (१२.४८.३), साहि (१२.४८.६), षां (१२.४८.६), साह (१२.४९.१), असमान (<आसमान १२.४९.२) ।

यहाँ पर यह जान लेना उपयोगी होगा मुसलमान शासकों से हुए युद्ध-विषयक प्राचीन हिंदी ग्रंथों में विदेशी शब्दों के प्रयोग की स्थिति पूर्ण रूप से वही है जो 'रासो' के उन अंशों में है जो शहाबुद्दीन से संबंधित हैं। श्रीधर रचित 'रणमल्ल छन्द', जिसकी रचना सं० १४५४ में मानी गई है[1], तथा पद्मनाभ रचित 'कान्हड दे प्रबन्ध' में, जिसकी रचना सं० १५१२ में हुई थी[2], 'रासो' के प्रायः उपर्युक्त सभी शब्द और लगभग इसी अनुपात में आते हैं।

—:*:—

[1] दे० 'प्राचीन गुर्जर काव्य,' संपा० केशवलाल हर्षदराय ध्रुव, गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी, अहमदाबाद, प्रस्तावना, पृ० ११। रचना का पाठ भी इस काव्य संग्रह में पृ० १ से १४ तक दिया हुआ है।

[2] 'कान्हड दे प्रबन्ध', संपा० कान्तिलाल बलदेवराम व्यास, राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर, खंड ४, छन्द ३४३।

१९. 'पृथ्वीराज रासो' का रचना-काल

मुनि जिनविजय द्वारा संपादित 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में दो प्रबन्ध ऐसे हैं जो पृथ्वीराज तथा जयचन्द्र से सम्बन्धित हैं। इन दो प्रबन्धों में चार ऐसे छन्द उद्धृत हुए हैं जिनमें से तीन नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में भी पाए जाते हैं। इसलिए इन प्रबन्धों से चन्द तथा 'पृथ्वीराज रासो' के समय पर एक नया और महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है।

मुनि जी ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य में 'संग्रह के कुछ महत्व के प्रबन्ध' शीर्षक देते हुए इन दो प्रबन्धों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से विचार भी किया है। उनका कथन है कि "इस संग्रह के उक्त प्रकरणों में जो ३—४ प्राकृतभाषा-पद्य उद्धृत किए हुए मिलते हैं, उनका पता हमने उक्त 'रासो' में लगाया है, और इन चार पद्यों में तीन पद्य, यद्यपि विकृत रूप में लेकिन अविकल, उसमें हमें मिल गए हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसीने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो 'पृथ्वीराज रासो' के नाम से प्रसिद्ध हुई।"[1] मुनि जी के इस निष्कर्ष के आधार क्या हैं, यह उन्होंने स्पष्ट रूप से नहीं कहा है, किंतु इतना कहने के बाद ही उन्होंने उक्त तीन छन्दों के पाठ प्राप्त संग्रहों तथा नागरीप्रचारिणी सभा के 'पृथ्वीराज रासो' के संस्करण से तुलना के लिए देते हुए प्रबन्धों के पाठ की भाषा-विषयक प्राचीनता पर जो बल दिया है[2], उससे अनुमान यही होता है कि उनके कथन का मुख्य आधार कदाचित् यही है।

यहीं पर प्रश्न यह हो सकता है कि भाषा के स्वरूप का साक्ष्य क्या इतना निश्चयात्मक है? भाषा का जो स्वरूप प्रबन्धों के इस पाठ में मिलता है, वह विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' तक अनेकानेक अन्य रचनाओं में भी मिलता है, इसलिए यदि उसी के आधार पर निष्कर्ष निकालना हो तो कदाचित् हम इतना ही कह सकते हैं कि भाषा की दृष्टि से इन छन्दों की रचना १४०० ई० के पूर्व की होनी चाहिए। केवल इतने साक्ष्य के आधार पर यह परिणाम निकालना कि चन्द "दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था" तर्क-सम्मत नहीं लगता है। इन प्रबन्धों में यदि रचना का कम से कम इतना अंश उद्धरण के रूप में उपलब्ध होता कि हम ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसकी परीक्षा कर सकते, तो हम भाषा की सहायता लेते हुए

[1] पुरातन प्रबंध-संग्रह, सिंघी जैन ग्रंथमाला, भारतीय विद्याभवन, बंबई, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ८, ९।

[2] वही।

इस सम्बन्ध में किसी अंश तक निश्चयात्मक रूप से कुछ कह सकते थे। केवल उद्धृत तीन-चार छन्दों के बल पर इस प्रकार का परिणाम हम नहीं निकाल सकते।

यदि ध्यान से देखा जावे तो ज्ञात होगा कि जो चार छन्द उक्त प्रबन्धों में चन्द के कहकर उद्धृत किए गए हैं, उनमें से दो, जो जयचन्द प्रबन्ध में आते हैं, चन्द के नहीं जल्ह के हैं। ये दो छन्द निम्नांकित हैं:—

(१) त्रिण्हि लक्ष तुषार सबल पाखरीअइं जसुहय।
चऊदसइं मयमत्त दंति गज्जंति महामय॥
वीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर।
हूलसडु अरु बलुयान संख कु जाणइ तांहं पर॥
छत्तीस लक्ष नराहिवइ विहि विनडिओ हो किम भयउ।
जइचंद न जाणउ जल्हु कइ गयउ कि मुउ कि धरि गयउ॥

(२) जइतचंदु चक्कवइ देव तुह दुसह पयाणउ।
धरणि धसवि उद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ॥
सेसु मणिहिं संकियउ मुक्कु हयखरि सिरि खंडिओ।
तुट्टओ सो हरधवलु धूलि जसु चिय तणि मंडिओ॥
उच्छलीउ रेणु जसगिग गय सुकवि ब (ज) ल्हु सच्चउं चवइ।
वग्ग इंदु बिंदु भुय जुअलि सहस नयण किण परि मिलइ॥

इनमें से ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में अवश्य मिलता है,[1] किंतु यह दर्शनीय है कि इस छन्द को 'रासो' में स्थान देने के लिए प्रक्षेपकर्ता को छन्द की अन्तिम पंक्ति से 'जल्हु' का नाम निकाल कर उसमें 'चन्द' का नाम रखना पड़ा और तभी यह सम्भव हो सका। वहाँ 'रासो' में उसका पाठ है:—

जैचंद राइ कवि चंद कहि उदधि बुडि कै धर लियौ।

इस प्रसंग में इतना और जान लेने योग्य है कि सभाद्वारा प्रकाशित रचना के वृहत् पाठ के अतिरिक्त उसके अन्य किसी पाठ की प्रतियों में ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द नहीं मिलता है, और ऊपर उद्धृत द्वितीय छन्द तो उसके किसी भी पाठ की प्रतियों में नहीं मिलता है। फलतः ये दो छन्द निश्चित रूप से जल्ह के हैं, चन्द के नहीं है, और चन्द की रचना का स्वरूप अथवा उसका समय निर्धारित करते समय इनका आधार नहीं ग्रहण करना चाहिए।

किंतु प्रबन्ध-लेखक इन दो छन्दों को 'जयचन्द प्रबन्ध' में उद्धृत करके ही संतोष नहीं करता है। वह ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द के पूर्व कहता है, 'तदनु चन्द बलिद्दं मद्देन श्री जैत्रचन्द्र प्रत्युक्तम्'; और इसी प्रकार वह ऊपर उद्धृत द्वितीय छन्द के पूर्व करता है, 'पतनागतं चंदबद्देनोक्तम्। तेनैव पूर्वमुक्तम्।' इससे यह ज्ञात होगा कि प्रबन्ध-लेखक विश्वसनीय नहीं है, और ऐसे प्रबन्धों के अंतर्साक्ष्य के आधार पर पृथ्वीराज और चन्द के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रकार के परिणाम निकालना किसी प्रकार भी युक्ति-संगत न होगा।

फिर भी इन प्रबन्धों का बहिर्साक्ष्य महत्वपूर्ण है, और उसके आधार पर चन्द तथा जल्ह के समय पर कुछ विचार किया जा सकता है। नीचे हम उसी के आधार पर चन्द तथा जल्ह के समय के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचन्द प्रबन्ध' नाम के ऐसे दो प्रबन्ध हैं जिनमें उल्लिखित छन्द मिलते हैं। इनमें से 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तो दो प्रबन्ध-संग्रहों में

[1] 'पृथ्वी राज रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० २५०१।

मिलता है, जिन्हें मुनि जी ने 'पी' तथा 'बी' कहा है, और 'जयचन्द प्रबन्ध' केवल 'पी' में मिलता है। और इन दोनों प्रबन्ध संग्रहों की एक-एक प्रतियाँ ही मिली हैं, अतः उन्हीं को लेकर हमें आगे बढ़ना होगा। नीचे दी हुई सूचनाएँ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य से हैं।

'पी' संग्रह में ४० प्रबंध हैं और 'बी' संग्रह में ७१। किंतु 'बी' प्रारम्भ में तथा बीच-बीच में भी खण्डित है, इसलिए उसके १७ प्रबन्ध अनुपलब्ध हैं, केवल ५४ प्रबन्ध प्राप्त हैं। 'पी' इस प्रकार खण्डित नहीं है, इसलिए उसके समस्त प्रबन्ध प्राप्त हैं। 'पी' के उपर्युक्त ४० तथा 'बी' के उपर्युक्त ५४ प्राप्त प्रबन्धों में से, जिनकी सूची विद्वान् संपादक ने ग्रंथ के प्रास्ताविक वक्तव्य में दी है, अनेक प्रबन्धों के शीर्षक ऐसे हैं जो समान हैं। उन समस्त प्रबन्धों का पाठ भी दोनों में समान है, यह कहना उपर्युक्त प्रतियों को देखे बिना सम्भव नहीं है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में केवल निम्नलिखित आठ प्रबन्ध ऐसे हैं जो दोनों से समान रूप से संकलित किए गए हैं, कारण यह है कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में केवल वे ही प्रबन्ध संकलित हुए हैं जिनका सम्बन्ध मेरुतुङ्ग के 'प्रबन्ध चिंतामणि' के प्रबन्धों से है:—

१. विक्रम सम्बन्धे रामराज्य कथा प्रबन्ध
२. वसाह आमड प्रबन्ध
३. कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध
४. वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध
५. पृथ्वीराज प्रबन्ध
६. लाखण राउल प्रबन्ध
७. न्याये यशोवर्म्म प्रबन्ध
८. अम्बुचीच नृप प्रबन्ध

और यह संख्या 'पी' और 'बी' के पाठों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए पर्याप्त है।

इन आठ प्रबन्धों का जो पाठ 'पी' तथा 'बी' में मिलता है, उससे निम्नलिखित बातें नितांत स्पष्ट रूप से ज्ञात होती हैं:—

१. दोनों संग्रहों में इन आठ प्रबन्धों का जो पाठ मिलता है, उसका पूर्वज एक ही है, कारण यह है कि दोनों संग्रहों में इनका पाठ समान है।

२. दोनों संग्रहों में इन आठ प्रबन्धों के पाठ उस सामान्य पूर्वज की दो स्वतन्त्र शाखाओं की प्रतियों से लिए गए हैं, अर्थात् दोनों संग्रहों के आदर्श भिन्न-भिन्न और स्वतन्त्र शाखाओं के हैं; क्योंकि दोनों में समान पाठ-प्रमाद, समान-पाठभ्रंश अथवा समान-प्रतिलिपि-प्रमाद एक भी स्थल पर नहीं पाए जाते हैं।

३. 'बी' में पाठ-वृद्धि के रूप में प्रक्षेप-क्रिया दर्शित होती है। कुछ स्थानों पर उसमें अतिरिक्त छन्द और अतिरिक्त वाक्य मिलते हैं (यथा: वसाह आमड प्रबन्ध, कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध, वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध, तथा न्याये यशोवर्म्म नृप प्रबंध में); कहीं-कहीं पर पूरा अनुच्छेद या प्रसंग ही बढ़ा हुआ है (यथा: वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध में); और कहीं-कहीं पर जो बात 'पी' में संक्षेप में कही गई है, 'बी' में कुछ बढ़ाकर कही गई है (यथा: वसाह आमड प्रबंध तथा वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध में)। 'पी' में भी उपर्युक्त तीनों प्रकार की प्रक्षेप-क्रिया दिखाई पड़ती है, यद्यपि मात्रा में 'बी' से कुछ कम (यथा: वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध में)। हो सकता है कि इनमें से दो-एक उदाहरण प्रक्षेप के न हों, सामान्य लेखन-प्रमाद के कारण उत्पन्न हों, किंतु इससे निष्कर्ष में कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

४. यह पाठ-वृद्धि वर्त्तमान 'पी' तथा 'बी' की किसी पूर्ववर्ती पीढ़ी में हुई, क्योंकि वर्तमान 'पी' तथा 'बी' की प्रतियों में पाठ-वृद्धि के रूप में लिखे हुए कोई वाक्य या छन्द नहीं मिलते हैं।

इन तथ्यों को हम निम्नलिखित रूप में व्यक्त कर सकते हैं—

'पी' संकलन — 'बी' संकलन

वर्त्तमान 'पी' प्रति (सं० १५२८) — वर्त्तमान 'बी' प्रति (तिथि अज्ञात)

यहाँ हम देखते हैं कि आधार कृति (यथा चंद की कृति) और 'पी' अथवा 'बी' के बीच चार पीढ़ियों का अन्तर है।

यहाँ तक तो आधार कृति के उस रूप की बात रही जो प्रबंध-लेखक को प्राप्त था। किंतु अन्यत्र हम देखते हैं कि वह रूप प्रक्षिप्त था और हमें ऐसे रूप प्राप्त हैं जिनमें वह प्रक्षेप नहीं आता है: 'रासो' के लघुतम पाठ की दो प्रतियाँ, जैसा हम देख चुके हैं, प्राप्त हैं किंतु दोनों में से किसी में भी 'पृथ्वीराजप्रबंध' का 'अगहु मगहु दाहिमउ' वाला छन्द नहीं मिलता है; 'रासो' लघुपाठ की भी किसी प्रति में वह छन्द नहीं मिलता है; केवल उसके मध्यम तथा बृहत् पाठों की प्रतियों में वह छन्द मिलता है और वह भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न-भिन्न स्थानों पर।[१] और प्रस्तुत संस्करण 'रासो' के लघुतम पाठ से भी लघुतर है—जिसमें लघुतम पाठ के भी कुछ अंश प्रक्षिप्त प्रमाणित होने के कारण नहीं रक्खे गए हैं।[२] इसलिए अप्रक्षिप्त 'रासो' का पाठ प्रबंध-लेखक की उपर्युक्त आधार-कृति के पाठ से कम से कम एक पीढ़ी ऊपर अवश्य पड़ता है और इस प्रकार मूल 'रासो' के पाठ और वर्त्तमान 'पी' प्रति में कम से कम चार पीढ़ियों का अन्तर होता है। यदि 'रासो' के मूल पाठ और प्रबन्ध-लेखक के आधारभूत पाठ के बीच ५० वर्षों का समय तथा शेष प्रत्येक पीढ़ी के लिए पच्चीस वर्षों का[३] समय रक्खें तो प्रस्तुत संस्करण का पाठ सं० १४०० के लगभग जा पहुँचता है।

रचना कथा-नायक की समकालीन नहीं हो सकती है, क्योंकि जैसा हमने अन्यत्र देखा है उसके प्रस्तुत संस्करण के पाठ में भी कुछ न कुछ इतिहास-असम्मत विवरण है,[४] उस में भी अनेक ऐसे शब्द

[१] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पुरातन प्रबंध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[२] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'रचना का मूल रूप' शीर्षक।

[३] पहले (नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६०, अंक ३-४, पृष्ठ २३९) मैंने प्रत्येक पीढ़ी के लिए पचास वर्षों का समय मानकर रचना-काल का अनुमान किया था, किन्तु जैन महात्माओं में ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करना एक पवित्र कार्य माना जाता रहा है, इसलिए प्रति पीढ़ी के लिए पचीस वर्षों का समय पर्याप्त होना चाहिए।

[४] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

आदि [illegible] लगता है कि उत्तरी भारत की बोलचाल की भाषा में सम्मिलित हो गए थे[1] और उसकी भाषा भी 'प्राकृत पैंगल' में संकलित हम्मीर के सम्बन्ध के छन्दों (रचना-काल सं० १३५८—अर्थात् हम्मीर की देहांततिथि) और 'रणमल्ल छन्द' (रचना-काल सं० १४५४) के बीच की प्रतीत होती है।[2] इसलिए सभी दृष्टियों से 'पृथ्वीराज रासो' की रचना सं० १४०० के लगभग हुई हो मानी जा सकती है, इससे पूर्व नहीं।

—:※:—

१ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।

२ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो की भाषा' शीर्षक।

१६. 'पृथ्वीराज रासो' का रचयिता

कवि चंद रचना में दो रूपों में आता है, एक तो कथा-नायक के कवि-मित्र के रूप में और दूसरे रचना के कवि रूप में। केवल रचना के कवि के रूप में वह प्रस्तुत संस्करण में इने-गिने स्थलों पर ही दिखाई पड़ता है, और इन स्थलों पर 'चंद' या 'चंद विरद्दिआ' नाम से वह आता है :—

चंद या कवि चंद : १.४.१६, ७.५.५, ८.१४.५, ९.१.४, १२.४८.१ तथा १२.४९.६।

चंद विरद्दिया : ८.११.६ तथा ८.१४.६।

कथा-नायक के कवि-मित्र के रूप में ही वह रचना में प्रायः दिखाई पड़ता है, और इन स्थलों पर वह प्रस्तुत संस्करण में निम्नलिखित भिन्न भिन्न नामों से आता है :—

चंद या कविचंद : २.१३.२, २.१४.२, २.१६.४, २.२१.१, २.२४.२, २.२५.२, २.३५.२, २.४२.१, ४.४.१, ४.१४.१२, ४.१६.१, ४.२५.३६, ५.१.१, ५.२.१, ५.३.७, ५.१५.१, ५.१६.२, ५.३१.१, ५.४८.१, ६.५.२७, ७.१.२, ७.५.५, ७.२०.३, ७.३१.२१, ८.७.१, १०.१.४, १०.२.१, १०.४.१, १०.५.१, १०.१४.१, १०.१५.१, १०.१३.२, १०.२२.१, १२.१३.२२, १२.१.६, १२.२.१, १२.६.१, १२.१५.९, १२.१५.१३, १२.१५.१६, १२.१६.१, १२.१७.२, १२.११.३, १२.२२.२, १२.२३.१, १२.२३.३, १२.२४.१, १२.२५.१, १२.३२.३, १२.३३.१, १२.३३.१९, १२.३४.२, १२.४२.१, १२.४८.१, १२.४७.२।

केवल 'कवि' या 'राजकवि' शब्द का भी प्रयोग स्थान-स्थान पर हुआ है, जिसका स्थल-निर्देश करना अनावश्यक होगा।

चंद विरद्दिआ : ३.२७.६, ३.२९.३, ४.१.२, ५.११.६, ५.४५.१, १२.४०.१, १२.४९.१।

चंद वरदाइ या वरदाइ : ३.३०.४, ५.९.१, १०.३.२, १२.४२.३।

भट्ट चंद या भट्ट : २.२८.१, २.२९, ४.८.२, ५.२१.२, १०.२४.१, १२.७.७, १२.१४.२, १२.१५.२, १२.१९.२, १२.२०.१, १२.४१.१।

चंद्दिय : २.१९.४।

चंड चंद : ५.१३.१९।

कवियन : ४.१३.१, १२.१०.१।

उपर्युक्त प्रयोगों से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

(१) 'रासो' का कवि तथा कथा-नायक का कवि-मित्र रचना में एक ही व्यक्ति के रूप में आते हैं।

(२) 'रासो' के कवि के लिए 'चंद', 'कवि चंद' या 'चंद विरद्दिया' नाम आते हैं और कथा-नायक के कवि-मित्र के लिए भी उसी प्रकार 'चंद', 'कवि चंद' या 'चंद विरद्दिआ' नाम आते हैं।

(३) कथा-नायक के कवि-मित्र के कुछ और नाम भी आते हैं जो 'रासो' के कवि के नामों मे नहीं मिलते हैं: ये हैं 'चंद वरदाइ' या 'वरदाइ' मात्र, 'भट्ट चंद' या 'भट्ट' मात्र, 'चंडिय', 'चंड चंद' और 'कवियन'।

अतः 'विरद्दिआ', 'वरदाइ', 'भट्ट', 'चंडिय', 'चंड', तथा 'कवियन' उपाधियाँ विचारणीय हो जाती हैं।

'विरदिआ', या 'विरुदिया', जैसा वह प्रायः ना० प्रति में पाया जाता है, विरुद (प्रशस्ति) गान करने वाले के अर्थ में आता है।

'वरदाइ' या 'वरदाई' शब्द का अर्थ भाषा के सामान्य नियमों के अनुसार 'वर देने वाला' होना चाहिए किन्तु चंद के सम्बन्ध में इस उपाधि का प्रयोग 'वर प्राप्त' के अर्थ में हुआ लगता है। एक स्थान पर कथा-नायक और उसके कवि-मित्र की कहा-सुनी में कवि का 'हर' से 'सिद्धि' का 'वर' प्राप्त हुए होने का उल्लेख भी आता है :—

कहा भुजंग कहा उदे सुर निकसु कव्व कवि षंडि।
कइ कयमास बताहि मो कइ हर सिद्धीवर छंडि॥ (३.२३)
जउ छंडइ सेसह धरणि हर छंडइ विष कंदु।
रवि छंडइ तप ताप कर तउ वर छंडइ कवि चंदु॥ (३.२४)

किन्तु निम्नलिखित कथन से ध्वनित होता है उसे सरस्वती का वर प्राप्त था :—

अहो चंद वरदाइ कहावहु।
कनवज्जह दिष्षन नृप आवहु।
जउ सरसइ वरु जानहु रंचउ।
तउ अदिट्ठ बरनउ नृप संचउ॥ (५.९.१)

यह असम्भव नहीं है कि अन्तिम उद्धरण के तृतीय चरण का 'वरु' 'बल' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो, इसलिए उपर्युक्त अन्तर अथवा वैषम्य निश्चित अन्तर या वैषम्य नहीं कहा जा सकता है।

'भट्ट' शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध स्तुति-पाठक जाति 'भाट' के अर्थ में हुआ है।

'चंडिअ' नाम का प्रयोग केवल एक स्थल पर निम्नलिखित प्रकार से हुआ है :—

सकल सूर बोलिव सभ मंडिय।
आसिष जाइ दीध कवि चंडिय। (३.१९.३-४)

'चंडिअ' का अर्थ 'कृत्त', 'छिन्न' अथवा 'काटा हुआ' होता है, जो यहाँ असंगत लगता है। प्रसंग के अनुसार यहाँ पर 'चंडिय' से आशय 'चंद' का होना चाहिए क्योंकि आगे ही चंद से पृथ्वीराज ने प्रश्न किया है (३.२१) और 'चंड' 'चन्द्र' से भी व्युत्पन्न माना गया है[१], अतः असम्भव नहीं है कि इससे चंद्र<चंद का आशय सिद्ध होता हो।

इसी प्रकार 'चंड' उपाधि का प्रयोग भी केवल एक स्थल पर निम्नलिखित प्रकार से हुआ है :—

जंपिअं सच्च सो चंद चंडं।
थप्पियं जाइ तिरहुति पिंडं। (५.१३.८-९)

'चंड' का अर्थ 'उग्र' होता है, और वही कदाचित् यहाँ भी अभिप्रेत है। 'कवियन'=

[१] दे० 'पाइअ सद्द महण्णवो' पृ० ३९२।

'कविजन', सत्कवि के लिए प्रयुक्त होता रहा है—यथा नारायणदास रचित छिताई वार्त्ता[2] में—और उसी अर्थ में यहाँ भी प्रयुक्त लगता है :—

रतनरंग कवियन बुधिलई।
समौ विचारि कथा वर्नई ॥५०४॥
कवियन कहै नरायनदास ॥१२८, १४३, ५४२, ६६०, ७४६॥
कविअण तुच्छ कहइ समझाइ ॥७३२॥

फलतः कथा-नायक का कवि-मित्र चन्द 'विरुदिआ' या 'भाट' था, और उसे हर से सिद्धि का वर प्राप्त हुए होने के कारण 'वरदाई' भी कहा जाता था; स्वभाव से वह कदाचित् किंचित् उग्र था, इसी कारण 'चंड चंद' भी वह कहा गया है।

यह हम अन्यत्र देख चुके हैं कि 'रासो' पृथ्वीराज के समकालीन किसी कवि की रचना नहीं हो सकती है।[3] इसलिए यह प्रकट है कि यह रचना चन्द के नाम पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की हुई है। वह अन्य व्यक्ति कौन था, यह जानने के लिए हमारे पास कोई साधन इस समय नहीं है।

—:✱:—

२ 'छिताई वार्ता' संपादक प्रस्तुत लेखक, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस, सं० २०१५।

3 दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो का रचना-काल' शीर्षक।

१७. रासो काव्य-परंपरा
और
'पृथ्वीराज रासो'

'रास' और 'रासो' नाम किस वस्तु के परिचायक हैं, ये एक ही काव्यरूप का निर्देश करते हैं अथवा दो काव्यरूपों का, इनके आकार विषय, रस, शैली छन्द आदि क्या होने चाहिए और इनका सूत्रपात किस प्रकार हुआ—आदि बातों के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियों का सर्व-प्रमुख कारण यह है कि प्रायः आलोचक-गण रास और रासो नामों से अभिहित शब्द-समूह पर बिना किसी पूर्वग्रह के दृष्टि नहीं डाल पाते हैं। प्रस्तुत लेखक के विचार से नाम-साम्य होते हुए भी दो भिन्न-भिन्न काव्यरूप इन नामों से अभिहित हुए हैं जिनमें से एक गीत-नृत्य-परक है और दूसरा छन्द-वैविध्य-परक।

ये दोनों काव्यरूप अपभ्रंश-काल से इसी प्रकार अलग-अलग मिलने लगते हैं। इन दोनों का साहित्य भी अलग-अलग अत्यन्त समृद्ध रहा है। सामान्यतः यह कहा जाता है कि गीत-नृत्य-परकरूप ही रास-रासो का प्रारम्भ में एक मात्र या कम से कम प्रमुख रूप रहा है, किन्तु यह एक भ्रामक कथन है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि इसका सूत्रपात जैन महात्माओं और कवियों द्वारा हुआ; यह कथन भी उतना ही भ्रामक है, जितना प्रथम। पुनः इसी प्रकार, यह कहा जाता है कि इस काव्य-रूप का प्रारम्भ पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में हुआ और इसका विकास भी बहुत समय तक उसी भूभाग तक सीमित रहा; किन्तु यह कथन भी उसी प्रकार भ्रामक है जिस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय हैं। आगे आने वाले परिचयात्मक विवेचन से इन कथनों का निराकरण हो जावेगा।

प्रथम अर्थात् गीत-नृत्य-परक रास परंपरा में सैकड़ों रचनायें बताई जाती हैं। अभी तक उनके जो नाम मिले हैं, उनकी संख्या भी सौ से ऊपर ही होगी। और ये समस्त रचनाएँ प्रायः एक ही ढंग की हैं। ऐसी दशा में संक्षेप में और परंपरा की आरम्भिक दो शतियों—सं० १२०० से १४०० वि० तक—की ही प्रमुख रचनाओं का उल्लेख करना यथेष्ट होगा; उसी से उसका पर्याप्त परिचय मिल जावेगा। शुद्ध साहित्यिक परंपरा वास्तव में दूसरी है। उसका विवरण अपेक्षाकृत अधिक पूर्णता के साथ दिया जावेगा और सं० ११०० से १९०० वि० तक की उसकी प्रायः सभी महत्वपूर्ण कृतियों को उस विवरण में सम्मिलित किया जावेगा।

गीत-नृत्य-परक रास-परम्परा

(१) **उपदेश रसायन**—इस परंपरा की सबसे प्राचीन प्राप्त रचना 'उपदेश रसायन' है, जिसके रचयिता श्री जिनदत्त सूरि हैं। इसमें रचना-काल नहीं दिया हुआ है। किन्तु ग्रन्थकार की एक अन्य रचना 'कालस्वरूप कुलक' है, जिसकी रचना-तिथि सं० १२०० वि० के कुछ ही बाद

होगी, जैसा कि इसके एक छन्द से प्रकट है[1], इसलिए इस रचना का भी समय सं० १२०० के लगभग माना जा सकता है। यह रचना अपभ्रंश में है। इसका विषय धर्मोपदेश है। प्रयुक्त छन्द चउपई है। रचना ३२ छन्दों में समाप्त हुई है। यद्यपि इसमें रास या रासो नाम नहीं आया है, किन्तु इसके टीकाकार जिनपाल उपाध्याय ने टीका के प्रारम्भ में ही इसे रासक माना है और लिखा है कि यह पद्धटिका-बंध काव्य सभी रागों में गाया जाता है।[2] रचना में इसे रसायन कहा गया है। संभवतः इसे प्रस्तुत करने के लिए ही इसके अन्त में ताला और लउड़ा (लकुटा) रासों का उल्लेख हुआ है, ताला रास से रात्रि में और लउड़ा रास से दिन में।[3]

(२) भरतेश्वर बाहुबलीरास—इसके रचयिता शालिभद्र सूरि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १२४१ में की।[4] इसमें भगवान ऋषभदेव के दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबली के बीच राज्य के लिए हुए संघर्ष की कथा है। यह रचना २०३ छन्दों में समाप्त हुई है। इसमें कुछ छन्द-वैविध्य है किन्तु फिर भी यह रचना गेय परंपरा की प्रतीत होती है। वीर रस का परिपाक इसमें अच्छा हुआ है।

(३) बुद्धिरास—यह रचना भी उन्हीं शालिभद्र सूरि की है जिनकी उपर्युक्त भरतेश्वर बाहुबली रास है। इसमें रचना-सम्वत नहीं दिया हुआ है। किन्तु यह अनुमान सुगमता से किया जा सकता है कि रचना 'भरतेश्वर बाहुबली रास' के रचना-काल सं० १२४१ के लगभग होगी। इसका विषय 'उपदेश रसायन' की भाँति धर्मोपदेश है। यह रचना ६३ छन्दों में समाप्त हुई है। यह रचना भी 'उपदेश रसायन' की भाँति गाई जाती रही होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

(४) जीवदया रास—इसकी रचना आसगु ने सं० १२५७ में की थी[5]। इसका विषय नाम से ही स्पष्ट है : वह है दया-धर्मोपदेश। इसकी भाषा-शैली में काव्यात्मक दृष्टिकोण का अभाव प्रतीत होता है।

(५) चंदन बाला रास—इसके रचयिता भी वही आसगु है।[6] रचना-काल इस कृति में नहीं दिया हुआ है, किंतु यह सुगमता से अनुमान किया जा सकता है कि यह रचना भी ग्रंथकार की उक्त अन्य रचना 'जीवदया रास' के आसपास अर्थात् सं० १२५० के लगभग रची गई होगी। यह जालौर में रची गई थी। इसमें लेखक उद्देश्य चंदनबाला की धार्मिक कथा कहना है[7] इसमें प्रयुक्त छन्द चउपई तथा दोहा हैं। यह रचना ३५ छंदों में समाप्त हुई है।

(६) जंबूस्वामी रासा—यह रचना श्री धर्म सूरि ने सं० १२६६ में की थी।[8] इसका विषय है जंबू स्वामी का चरित्र तथा गुण-वर्णन।[9]

(७) रेवंत गिरि रासु—यह कृति भी विजय सेन सूरि की है। रचना-काल सं० १२८८

[1] छन्द ३, अपभ्रंश काव्य त्रयी संस्करण, गायकवाड, ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा।

[2] वही, टीका, छन्द २—४।

[3] वही, छन्द ३६।

[4] भरतेश्वर बाहुबली रास, छन्द २०३, अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा।

[5] 'गुजराती साहित्यना स्वरूपो' : प्रो० मंजूलाल मजमुदार लिखित, पृ० ८१९।

[6] 'राजस्थान भारती' भाग ३, अंक ३-४, पृ० १०६-११२, श्री अगरचंद नाहटा द्वारा संपादित पाठ।

[7] 'सम्मेलन-पत्रिका', भाग ३५, संख्या ७-९, पृ० २३१।

[8] देखिए 'हिन्दी जैन साहित्य-नाथूराम प्रेमी, पृ० २५।

[9] वही।

के लगभग माना गया है।[1] इसकी रचना सौराष्ट्र में हुई।[2] इसमें गिरनार के जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार की कथा है। यह रचना ७२ छंदों में समाप्त हुई है।

(८) नेमि जिणंद रासो (आबू रास)—यह पाल्हण द्वारा सं० १२८९ में रची गई थी।[3] इसका उद्देश्य भी धार्मिक है। यह ५४ छंदों में समाप्त हुई है।

(९). गय सुकुमाल रास—यह कृति देल्हण की है। इसका रचना-काल सं० १३०० के लगभग अनुमान किया गया है।[4] इसका उद्देश्य गयसुकुमाल का धार्मिक चरित्र-वर्णन है। यह कुल ३४ छंदों की है।

(१०) सप्त क्षेत्रिरासु—इसके लेखक का नाम अज्ञात है। यह रचना सं० १३२७ वि० में हुई थी।[5] इसमें सप्त क्षेत्रों—जिन मंदिर, जिन प्रतिमा, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की उपासना का वर्णन है। यह रचना ११९ छंदों में समाप्त हुई है।

(११) पेथड रास—इसके लेखक मंडलिक हैं। इसका रचना-काल सं० १३६० के लगभग माना गया है।[6] इसमें संघपति पेथड़ का चरित्र वर्णित हुआ है। नृत्य के साथ गाए जाने के लिए इसकी रचना की गई है :—

रास रमेउजिण भुवणि ताल मेलि ठवि पाउ ॥१॥[7]

यह रचना ६९ छंदों में समाप्त हुई है।

(१२) कच्छूलि रास—लेखक का नाम अज्ञात है। इसका समय सं० १३६३ वि० है।[8] इसका उद्देश्य भी धार्मिक है। इसमें एक जैन तीर्थ कच्छूलि ग्राम का वर्णन है। इस रचना में कुल ३५ छंद हैं।

(१३) समरा रासु—इसके रचयिता श्री अंबदेव सूरि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १३७१ के बाद की होगी, क्योंकि इसमें वर्णित घटना की तिथि इस प्रकार दी हुई है :

संवच्छरि इक्कहत्तरए थापिउ रिसह जिणिंदो ॥[9]

इसमें संघपति समरा का धार्मिक चरित्र वर्णित हुआ है। यह रचना कुल ११० छंदों में समाप्त हुई है।

(१४) बीसलदेव रास—इसकी रचना नरपति नाल्ह ने की थी। इसका रचना-काल विवाद का विषय रहा है। राजस्थान के कुछ विद्वानों का मत है कि 'बीसलदेव रास' की भाषा सोलहवीं शताब्दी की है, और उन्होंने यह भी सुझाव दिया है कि इसका रचयिता नरपति नाम का गुजरात

[1] 'जैन साहित्य का इतिहास'—नाथूराम प्रेमी, पृ० २६।

[2] 'रेवंत गिरि रासु' प्राचीन गुर्जर-काव्य संग्रह भाग १ (गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज) में संपादित संस्करण, पृ० १।

[3] राजस्थानी, भाग ३, अंक १ पृ० ८३-८८।

[4] श्री अगर चंद नाहटा, राजस्थान भारती, भाग ३, अंक २, पृ० ८७।

[5] 'सप्त क्षेत्रि रासु', छंद ११८, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भाग १, गायकवाड़ ओरएंटल सीरीज।

[6] 'इतिहास नी केडी', श्री भोगीलाल सांडेसरा, पृ० १९९।

[7] 'पेथडरास', छंद १, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह भाग १, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज, बड़ौदा।

[8] वही, पृ० ६२।

[9] 'समरासु', प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भाग १, उपर्युक्त, पृ० ३७।

का एक कवि है, जिसने सं० १५४५ तथा १५६० में दो अन्य ग्रंथों की रचना की है।[1] इस प्रसंग में श्री मोतीलाल मनेरिया ने नरपति की एक रचना से सात स्थलों पर की कुछ पंक्तियाँ देते हुए उनकी समानांतर पंक्तियाँ 'बीसलदेव रास' से उद्धृत की हैं।[2]

जहाँ तक भाषा के स्वरूप का प्रश्न है, इन विद्वानों ने रचना के नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के संस्करण वाले पाठ को लेकर ऐसा कहा है। सभा का पाठ सबसे अधिक प्रक्षिप्त है—उसमें मूल के निर्धारित १२८ छन्दों के स्थान पर ३१४ छन्द हैं, और मूल के १२८ छन्दों का पाठ भी उसमें बहुत बदला हुआ है। उसका जो पाठ अब निर्धारित हुआ है[3], उसको ध्यान में रखते हुए यदि देखा जावे, तो भाषा इतनी आधुनिक नहीं लगती है। सं० १४०० के लगभग की प्रमाणित राजस्थानी की अन्य रचनाओं से यदि इस संस्करण की भाषा का मिलान किया जावे[4], तो यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि 'बीसलदेव रास' की भाषा सं० १४०० के आस-पास की ही है।

जहाँ तक गुजरात के नरपति और 'बीसलदेव रास' के रचयिता नरपति नाल्ह के एक होने का प्रश्न है, यह नहीं कहा गया है कि गुजरात के नरपति ने भी अपने को कहीं नाल्ह कहा है, 'बीसलदेव रास' के रचयिता ने तो अपने को अनेक स्थलों पर नाल्ह कहा है। जो पंक्तियाँ तुलना के लिए दोनों कवियों से दी गई हैं, उनमें से चार तो निश्चित रूप से 'बीसलदेव रास' के प्रक्षिप्त छन्दों की हैं।[5] शेष तीन में जो साम्य है वह साधारण है, उस प्रकार और उतना साम्य देखा जावे तो मध्य युग के किन्हीं भी दो कवियों में मिल सकता है। इसके अतिरिक्त रचना काल के ७५ या १०० वर्षों के भीतर ही किसी भी रचना की इतनी विभिन्न पाठों की प्रतियाँ नहीं मिलतीं जितनी कि सं० १६३३ और सं० १६६९ को रचना की दो तिथियुक्त प्रतियाँ तथा प्रायः उसी समय की अन्य तिथि-हीन प्रतियाँ हैं।[6] अतः सं० १६०० के लगभग की रचना-तिथि 'बीसलदेव रास' के लिए मान्य नहीं हो सकती है।

इस रचना का विषय बीसलदेव की प्रवास-कथा है। अजमेर के चहुवान बीसलदेव का विवाह भोज परमार की कन्या राजमती से होता है। इस विवाह में उसे अनेक प्रान्त दायज में तथा अतुल संपत्ति विदाई में मिलती है। इस नव प्राप्त वैभव के पृष्ठभूमि में जब वह अपनी संपदा पर विचार करता है, तो उसे अभिमान होता है, और वह गर्वपूर्वक अपनी नवविवाहिता राजमती से कहता है कि उसके समान दूसरा राजा नहीं है। राजमती कहती है कि उसे गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसके समान अनेक राजा हैं: एक तो उड़ीसा का ही राजा है, जिसके राज्य में खानों से उसी प्रकार हीरा निकलता है जिस प्रकार बीसलदेव के राज्य में साँभर की झील में से नमक निकलता है। यह बात बीसलदेव को लग जाती है, और बीसलदेव उड़ीसा चला जाता है और वहाँ के राजा की सेवा में लग जाता है। बारह वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, राजमती अपने पुरोहित को उसे लौटा लाने के लिए उड़ीसा भेजती है। उड़ीसा पहुँच कर पुरोहित बीसलदेव से मिलता है, और

[1] श्री अगरचन्द नाहटा, राजस्थानी, जनवरी १९४०, पृ० २१ तथा श्री मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृ० ८७-८८।

[2] श्री मोतीलाल मेनारिया, 'राजस्थानी भाषा और साहित्य,' पृ० ८८-८९।

[3] दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित और हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पाठ।

[4] दे० 'पुरानी राजस्थानी' एल० पी० टेसिटरी द्वारा लिखित और श्री नामवरसिंह द्वारा अनूदित ना० प्र० सभा, काशी द्वारा प्रकाशित।

[5] दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित और हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पाठ।

[6] दे० वही, भूमिका।

उसे राजमती का संदेश देता है। उड़ीसा के राजा को जब यह ज्ञात होता है कि वह अजमेर का चौहान शासक है, उसको प्रचुर रत्न-राशि देकर विदा करता है। बीसलदेव अजमेर लौट कर राजमती से मिलता है। इस रचना में शृंगार के अतिरिक्त कोई अन्य रस नहीं है। इसमें विप्रलंभ और संयोग दोनों प्रकारों के शृंगार का अच्छा परिपाक हुआ है। नायिका ने अनेक स्थलों पर पति को 'मूरख नाह' और 'निगुणा नाह' कहा है। इसे देखकर कुछ लोगों को इस रचना में अशिष्टता का आभास मिला है। किन्तु इन सम्बोधनों के पीछे जो आत्मीयता की प्रेरणा है, जो सहज प्रेम का आग्रह है, वह तो इस काव्य की विशेषता है। ठीक इसी प्रकार के सम्बोधन 'संदेश रासक' में उसकी प्रोषित पतिका ने भी किए हैं।

इस रचना में आदि से अन्त तक एक ही छन्द का निर्वाह हुआ है। सम्पूर्ण रचना गेय है, यह स्वतः प्रकट है। रचना के प्रारम्भ में ही केदारा राग के अन्तर्गत इसके गीतिबद्ध होने का निर्देश किया गया है। यह रचना नृत्य-गीत के साथ प्रस्तुत भी की जाती रही है, इसका प्रमाण हमें इसके एक प्रक्षिप्त छन्द में मिलता है।[1]

यद्यपि इसमें एक राजा की कथा है, यह रचना किसी राजा के आश्रय में रची गई नहीं हो सकती है। राजाओं के आश्रय में रची गई रचनाओं में उनकी तथा उनके पूर्व-पुरुषों की विजय-गाथायें अनिवार्य रूप से होती हैं, जो इसमें एकदम नहीं हैं।

यह कहना अनावश्यक होगा कि गीत-नृत्य-परक रासो-परंपरा का यह जैनेतर अपवाद अत्यन्त मूल्यवान है, इसीलिए इसका परिचय कुछ विस्तार से दिया गया है। इस परंपरा में हमें अभी अन्य जैनेतर रचनाएँ नहीं मिली हैं, किन्तु यह रचना उनके निश्चित अस्तित्व की सूचना देती है। ऐसा लगता है कि जैन कृतियों की भाँति वे सुरक्षित नहीं रह पाईं, इसलिए वे धीरे-धीरे काल-कवलित हो गईं।

छन्द-वैविध्य-परक रासो-परम्परा

(१) मुंज रास—आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण 'सिद्ध हैम' (रचना सं० ११९० वि०) में मुंज-विषयक दो दोहे उदाहरण में उद्धृत किए हैं। मेरुतुंग ने अपने 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (रचना सं० १३६१ वि०) में 'मुंजराजप्रबन्ध' शीर्षक देते हुए मुंज की कथा दी है, और उसके विभिन्न प्रसंगों में दोहे, सोरठे, गाथाएँ, तथा अन्य प्रकार के अनेक छन्द उद्धृत किए हैं[2]। 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में एक प्राचीन जैन-प्रबन्ध-संग्रह में संकलित 'मुंजराज-प्रबन्ध' दिया गया है जिसका वृत्त प्रायः 'प्रबन्ध-चिंतामणि' वाले वृत्त जैसा ही है। इसके उद्धृत छन्द भी दो एक को छोड़कर उन्हीं में से हैं जो 'प्रबन्ध-चिंतामणि' में उद्धृत हैं।[3] इससे यह प्रमाणित होता है कि सं० ११९७—'सिद्धहैम' के रचना-काल—के पूर्व ही मुंजराज के चरित्र को लेकर अपभ्रंश में लिखा गया कोई काव्य था। असम्भव नहीं कि यह छन्द-वैविध्य-परक रासक-परम्परा की रचना रही हो और इसका नाम 'मुंजरास' या 'मुंजरासक' रहा हो। इसके रचयिता के सम्बन्ध में हमें कोई ज्ञान नहीं है; न इसका निश्चित रचना-काल ही हमें ज्ञात है। वाक्पति मुंजराज का समय सं० १०३१–१०५२ वि० माना गया है।[4] और 'सिद्धहैम' की तिथि सं० ११९७ वि० है। 'मुंजरास' का समय दोनों के बीच में कहीं होना चाहिए।

मुंजराज विषयक उपर्युक्त जैन प्रबंधों में आई हुई कथा संक्षेप में इस प्रकार है। मुंज का कर्ना-

[1] नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संस्करण, छन्द ११।
[2] देखिए 'प्रबन्ध चिंतामणि', सिंघी जैन ग्रन्थ माला, पृ० ११-२५।
[3] देखिए 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह', सिंघी जैन ग्रन्थमाला, पृ० १३-१५।
[4] हेमचन्द्रराय : 'डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् इंडिया,' पृ० ९२७।

टक के राजा तैलप से घोर वैमनस्य था। यद्यपि मुंज का महामात्य रुद्रादित्य उसे रोकता रहा, फिर भी मुंज ने तैलप के बल की पूरी जानकारी किए बिना ही उस पर आक्रमण कर दिया। मुंज हार गया और बंदी हुआ। बंदीगृह में तैलप की विधवा बहिन मृणालवती से उसका प्रेम हो गया। मुंज के शुभेच्छुओं ने उसे बंदीगृह से निकाल भगाने की एक योजना बनाई। मुंज ने उस योजना की बात बताते हुए मृणालवती से भी भाग निकलने के लिए कहा। मृणालवती उसके साथ नहीं जाना चाहती थी, और यह भी नहीं चाहती थी कि मुंज से उसको अलग होना पड़े। इसलिए उसने इस षड्यन्त्र की सूचना अपने भाई तैलप को दे दी। तैलप ने षड्यन्त्र समाप्त कर मुंज का बड़ा अपमान किया—उससे घर घर भीख मँगवाई—और तदनंतर उसे हाथी से कुचलवा कर मरवा डाला।

यह स्पष्ट है कि यह रचना मुंज ही नहीं मुंज के किसी वंशज की प्रेरणा से भी न की गई होगी, क्योंकि अपने एक अत्यन्त सम्माननीय पूर्वज का इस प्रकार पराजय और अपमान पूर्वक विनाश कोई भी वंशज प्रबन्धबद्ध नहीं करा सकता था। यह सम्पूर्ण रचना लोकरंजन तथा लोकशिक्षण के लिए निर्मित की गई प्रतीत होती है।

(२) संदेश रासक—इसका रचयिता अब्दुल रहमान है, जिसने अपना परिचय ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही देते हुए बताया है कि पश्चिम के पूर्व-प्रसिद्ध म्लेच्छ देश में तंतवायु मीरसेन हुआ; यह उसी का तनय था जो प्राकृत काव्य तथा गीत विषय में प्रसिद्ध था।[१] 'संदेश रासक' ऐसे ही सुकवि की रचना है।

इसकी रचना तिथि-ज्ञात नहीं है। किन्तु इसके सम्पादक मुनि जिनविजय जी के अनुसार इसका रचना काल शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के आक्रमण के कुछ ही पूर्व होना चाहिए, कारण यह है कि मूलस्थान-मुलतान-का इस रचना में एक समृद्ध हिन्दू तीर्थ रूप में उल्लेख हुआ है। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के अनंतर मुल्तान की वह समृद्धि सदैव के लिए मिट गई होगी। भाषा की दृष्टि से भी वह उनके अनुसार उसी समय की प्रतीत होती है।[२]

इसका विषय विप्रलम्भ शृंगार है जिसका अन्त मिलन में होता है। विजय नगर (जैसलमेर) की एक विरहणी अपने पति के पास सन्देश भेजना चाहती है। उसे एक पथिक आता हुआ दिखाई पड़ता है। उस पथिक को रोककर वह अपने पति के लिए सन्देश देती है। ज्योंही पथिक चलने को होता है वह कुछ और भी कहने लगती है। इसी प्रकार कई बार होता है, यहाँ तक कि अन्त में जब पथिक चलने को उद्यत होता है, और पूछता है कि उसे और तो कुछ नहीं कहना है, वह रो पड़ती है। पथिक सान्त्वना देते हुए उसे पूछता है कि उसका पति किस ऋतु में प्रवास के लिए गया था; वह कहती है, ग्रीष्म ऋतु में, और तदनंतर वह छः ऋतुओं के अपने विरह-जनित कष्टों का वर्णन करती है। यह सब समाप्त होने पर जब पथिक चल पड़ता है, विरहिणी का पति लौटता हुआ दिखाई पड़ता है, और दोनों मिल जाते हैं।

रचना केवल २२३ छन्दों में समाप्त हुई है, किन्तु इतने में ही २२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसी बहुरूप-निबद्ध रासकत्व के बारे में कवि ने रचना में एक स्थान पर संकेत किया है :—

कइव ठाइ चउवेइहिं वेउ पयासियइ।
कह बहुरूवि णिबद्धउ रासउ भासियइ॥ ४३॥

[१] 'सन्देश रासक', सम्पादक मुनि जिनविजय, भारतीय विद्या भवन, बंबई, छंद ३-४।

[२] 'सन्देश रासक', उपर्युक्त, प्रस्तावना, पृष्ठ ११-१५।

(३) हम्मीर रासो—इस नाम की कोई रचना अभी तक नहीं मिली है, किन्तु 'प्राकृत पैंगल' के आठ छन्दों में हम्मीर का स्पष्ट नामोल्लेख होता है।[1] असम्भव नहीं कि उसमें और भी कुछ छन्द ऐसे हों जो हम्मीर के चरित्र से सम्बन्धित हों यद्यपि उनमें हम्मीर का नाम न आया हो। ये छन्द भी कम से कम आठ विभिन्न वृत्तों (छन्दों) के उदाहरण में आते हैं। अतः यह प्रकट है कि विविध छन्दों से विभूषित हम्मीर के जीवन से सम्बन्धित कोई समादृत कृति उस समय थी जब 'प्राकृत पैंगल' की रचना हुई, और असम्भव नहीं कि यह कृति छन्द-वैविध्य-परक रासो-परंपरा की ही रही हो।

इस कृति का रचना-काल क्या होगा, यह विचारणीय है। हम्मीर का समय सं० १२९५ से सं० १३५८ है, और 'प्राकृत पैंगल' के ये छन्द प्रायः हम्मीर की प्रशस्तियुक्त हैं, इसलिए ये उसके जीवन-काल में ही रचे गए होंगे ऐसा सामान्यतः समझा जाता है, किंतु यह असंभव नहीं है कि इनकी रचना हम्मीर के कुछ बाद हुई हो।

इन छन्दों का अथवा इनके स्रोत 'हम्मीर रासो' का रचयिता कौन रहा होगा, यह छन्दों से ज्ञात नहीं होता है। हमारे साहित्य के इतिहासों में शार्ङ्गधर द्वारा रचित एक 'हम्मीर रासो' माना जाता रहा है। शार्ङ्गधर के पितामह राघव, जो पीछे 'छिताई वार्त्ता' तथा 'पद्मावत' आदि अनेक अलाउद्दीन से संबन्धित काव्यों में विविध प्रकार से आए हैं, हम्मीर देव के आश्रय में रहते थे, और उनका एकाध पद्य 'शार्ङ्गधर पद्धति' में संकलित है इसलिए यद्यपि यह असंभव नहीं कि शार्ङ्गधर ने 'हम्मीर रासो' नामक किसी कृति की रचना की हो किन्तु इसके कोई निश्चित प्रमाण नहीं हैं।

इसके दो छन्दों में एक जज्जल आता है।[2] उसी के आधार पर श्री राहुल सांकृत्यायन ने जज्जल को इन छन्दों का रचयिता माना है।[3] किन्तु इन छन्दों के अर्थ पर विचार किया जावे तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि जज्जल इनमें हम्मीर-पक्ष के वीर योद्धा के रूप में आया है, कवि के रूप में नहीं। अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी जज्जल के हम्मीर के एक सामंत होने का समर्थन होता है।[4] अतः जज्जल इन छन्दों का रचयिता नहीं है।

हम्मीर सम्बन्धी ये समस्त छन्द वीर रस के हैं, और काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

(४) बुद्धि रासो—इसका रचयिता जल्ह नामक कवि है। रचना अप्रकाशित है। श्री मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है कि रचना-शैली से कवि जैन प्रतीत होता है, और उन्होंने रचना से कुछ पंक्तियाँ भी उद्धृत की हैं। किन्तु इन पंक्तियों में कोई बात भाषा-शैली की दृष्टि से ऐसी नहीं मिलती जिससे रचयिता को जैन कवि माना जा सके। एक जल्ह के दो छन्द 'पुरातन प्रबंध-संग्रह' में 'जयचन्द-प्रबन्ध' में उद्धृत हुए हैं। इस 'प्रबंध-संग्रह' के प्रबन्धों का समय १५ वीं शती वि० माना जाता है, इसलिए यदि दोनों जल्ह एक ही हों तो असम्भव नहीं कि यह जल्ह १५ वीं शती वि० के प्रारम्भ में हुआ हो। मेनारिया जी ने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में लिखा है कि जल्ह का आविर्भाव-काल सं० १६२५ है।[5] पता नहीं किस आधार पर उन्होंने ऐसा लिखा है।

इसका विषय एक प्रेम-कथा है, जो इस प्रकार है :—चंपावती नगरी का राजकुमार अपनी

---

[1] श्री चन्द्रमोहन घोष द्वारा संपादित तथा एशियाटिक सोसायटी बंगाल द्वारा १९०२ ई० में प्रकाशित संस्करण, मात्रा वृत्त के छन्द ७१, ९२, १०६, १४७, १५१, १९०, २०४, तथा वर्ण वृत्त का छन्द १८३।

[2] वही, मात्रा वृत्त, छन्द १०६, १४७।

[3] दे० 'हिन्दी काव्य धारा', पृ० ४५२।

[4] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : जाज या जज्जल, हिन्दी अनुशीलन, पौष-चैत्र, सं० २०११, पृ० १।

[5] 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १२१।

राजधानी से आकर कुछ दिनों के लिए जलधितरंगिनी के साथ समुद्र के किसी स्थान में रहता है और तदनंतर एक मास में लौटने का वचन देकर कहीं चला जाता है। अवधि के बाद भी कई मास बीत जाते हैं, किन्तु वह लौटता नहीं, तब विरहिणी जलधितरंगिनी जीवन से विरक्त हो जाती है, और अपने आभूषणादि उतार फेंकती है। इस पर उसकी माँ उसके समक्ष संसार के विलास-वैभव तथा शारीरिक सुखों की महत्ता प्रतिपादन करने लगती है। इतने ही में राजकुमार वापस आ पहुँचता है, और दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है, जिसके अनंतर दोनों आनन्द और उत्साह के साथ जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

इस कथा को पढ़कर एक ओर 'सन्देश रासक' तथा दूसरी ओर हिंदी की प्रेम-कथाओं का स्मरण आप से आप हो जाता है। यदि यह रचना १५वीं शती वि० के प्रारम्भ की प्रमाणित हो, तो निस्संदेह इसका स्थान हमारे साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्व का होगा।

इसमें दोहा, छप्पय, गाहा, पाधड़ी, मोतीदाम, मुडिल्ल आदि छन्द हैं, और रचना कुल १४० छन्दों में समाप्त हुई है।[1]

(५) परमाल रासो–सं० १९७६ में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से यह रचना प्रकाशित हुई है। इसके संपादक डॉ० श्याम सुन्दरदास ने भूमिका में लिखा है कि "जिन प्रतियों के आधार पर यह संस्करण संपादित हुआ है, उनमें यह नाम नहीं है; उनमें इसको चंद कृत 'पृथ्वीराज रासो' का महोबा खण्ड लिखा हुआ है; किंतु वास्तव में यह 'पृथ्वीराज रासो' का महोबा खण्ड नहीं है, वरन् उसमें वर्णित घटनाओं को लेकर मुख्यतः 'पृथ्वीराज रासो' में दिए हुए एक वर्णन के आधार पर लिखा हुआ एक स्वतन्त्र ग्रंथ है। यद्यपि इस ग्रंथ का नाम मूल प्रतियों में 'पृथ्वीराज रासो' दिया हुआ है, पर इस नाम से इसे प्रकाशित करना लोगों को भ्रम में डालना होता, अतएव मैंने इसे 'परमाल रासो' यह नाम देने का साहस किया है।"[2]

किन्तु वास्तविकता यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' के नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण में दिए हुए महोबा खण्ड का यह एक परिवर्धित रूपान्तर मात्र है, स्वतन्त्र रचना नहीं। 'पृथ्वीराज रासो' में सम्मिलित महोबा खण्ड भी प्रामाणिक रचना नहीं है, क्योंकि वह अलग से ही मिलता है, और 'पृथ्वीराज रासो' की किसी पूर्ण प्रति में नहीं मिलता है। यह सिद्ध करने के लिए कि 'रासो' के अन्त में प्रकाशित महोबा खण्ड का यह परिवर्धित रूपान्तर मात्र है, यही देखना पर्याप्त है होगा कि पूर्ववर्ती की लगभग समस्त पंक्तियाँ कुछ मिलाई हुई पंक्तियों के बीच इसमें भी मिल जाती हैं। इसका रचना-काल क्या होगा, यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसकी जो प्रतियाँ मिली हैं, वे १९वीं शताब्दी वि० की हैं। आश्चर्य नहीं कि महोबा खण्ड का प्रस्तुत रूप १६वीं १७वीं शताब्दी विक्रमीय का हो। इससे अधिक इस प्रक्षेप के प्रक्षेप पर विचार करना अनावश्यक होगा।

(६) राउ जेतसी रो रासो—यह रचना कुछ ही दिन हुए प्रकाशित हुई है। इसका रचयिता अज्ञात है।[3] रचना में रचना-काल भी नहीं दिया हुआ है। वर्णित घटना सं० १६०० के लगभग की है, और वर्णन सजीव है, इसलिए अनुमान किया जाता है कि रचना बहुत कुछ समसामयिक होगी। इसमें बीकानेर के महाराजा राव जैतसी (सं० १५८३-१५९८ वि०) तथा हुमाऊँ के भाई कामराँ के उस युद्ध का वर्णन हुआ है जिसमें कामराँ को पराजित होकर लौटना पड़ा था।

[1] 'राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग १, पृ० ७६।

[2] 'परमाल रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भूमिका, पृ० ३-४।

[3] 'राजस्थान भारती', सं० नरोत्तमदास स्वामी, भाग २, अंक २, पृ० ७०।

संपूर्ण रचना में वीर रस का परिपाक हुआ है। छन्द दोहा, मोतीदाम तथा छप्पय हैं। कुल ९० छन्दों में ही रचना समाप्त हुई है। भाषा डिंगल है।

(७) विजय पाल रासो—इसका रचयिता नल्हसिंह भाट है। लेखक का प्रामाणिक इतिवृत्त प्राप्त नहीं है। रचना में कहा गया है कि लेखक विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी शासक विजयपाल का आश्रित था,[१] इसलिए वह सं० ११०० के आसपास की होनी चाहिए। किन्तु यह रचना सं० १६०० के बाद की ही हो सकती है क्योंकि इसमें तोपों तक का उल्लेख हुआ है। इसका विषय विजयपाल की दिग्विजय की कथा है। इसका मुख्य रस वीर है। रचना पूरी प्राप्त नहीं हुई है। इसके केवल ४२ छन्द प्राप्त हुए हैं।[२]

(८) राम रासो—इसके रचयिता माधवदास चारण हैं। इसका रचना-काल सं० १६७५ है।[३] इसका विषय राम का चरित्र तथा गुण वर्णन है। इसमें विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। बीच-बीच में गीत भी हैं। ग्रन्थ में कुल लगभग १६०० छन्द हैं।

(९) राणा रासो—यह दयाल कवि की रचना है, जिनका पूरा नाम दयाराम कहा जाता है। रचना में समय नहीं दिया हुआ है। किन्तु उसकी एक प्रति सं० १९४४ की मिली है, जो कवि की सं० १६७५ की हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि बताई गई है।[४] इसलिए इस ग्रंथ की रचना सं० १६७५ में या उसके कुछ ही पूर्व हुई होगी। सं० १९४४ की प्रति में महाराजा जयसिंह (सं० १७३७-१७५५) तक का वर्णन है। संभव है कि ये वर्णन बाद में सं० १६७५ की प्रति में हाशिए में लिखकर किसी के द्वारा बढ़ाए गए हों और प्रतिलिपि में उतार लिए गए हों। इसमें अन्त में एक छन्द है जो इस प्रकार है :—

सेवे सबे करंन को रान मान के पाइ।
चिंता उर उपजे नहीं दारसन ही दुख जाय ॥[५]

जिससे यह प्रमाणित है कि कवि कर्णसिंह का आश्रित था।

इस रासो में सीसौदिया वंश का इतिहास दिया गया है और उस वंश के मुख्य राजाओं तथा कुंभा, उदय सिंह, प्रतापसिंह तथा अमर सिंह के युद्धादि का वर्णन विस्तार से किया गया है। इसमें रसावला, विराज, साटक–शार्दूल विक्रीड़ित–आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसकी कुल छन्द-संख्या ८७५ है।

(१०) रतन रासो—इसके रचयिता कुंभकर्ण हैं। इसका रचना-काल सं० १६७५ तथा १६८१ के बीच अनुमान किया जाता है।[६] इसमें रतलाम के महाराजा रतनसिंह का चरित्र वर्णित है। रचना साधारण प्रतीत होती है। इसमें विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(११) कायम रासो—इसके रचयिता न्यामत खाँ जान कवि हैं[७], जो स्वरचित कथा साहित्य के लिए हमारे साहित्य के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। यह रचना उन्होंने सं० १६९१ में की थी :—

१ 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', मोती लाल मेनारिया', पृ० ८३।

२ दे० मुंशी देवीप्रसाद द्वारा मुंसिफ संपादित : 'कविरत्न माला' भाग १।

३ 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का खोज विवरण', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०१, संख्या ८०

४ 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग १, पृ० ११९।

५ वही, पृ० ११९।

६ दे० 'राजस्थान भारती', भाग ३, अङ्क ३-४, पृ० ८३ तथा 'राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज', भाग ४, पृ० २२३।

७ 'कायम रासो', राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर।

सोरह से पुक्यानवे ग्रंथ कियो हुहु जान।

किन्तु इस तिथि के बाद की सं० १७१० तक की कुछ घटनाओं का उल्लेख इसमें हुआ है। इसके बाद भी वे बहुत दिनों तक जीवित रहे थे। ऐसा लगता है कि अपने जीवन-काल में ही बाद की घटनाओं का भी उन्होंने इसमें समावेश कर दिया।

इसका विषय कायम खानी वंश का इतिहास है, जिसमें अलफ खाँ का चरित्र विस्तृत रूप से दिया हुआ है। कायम खाँ उनके वह पूर्वपुरुष जिनके नाम पर उनका वंश कायम खानी कहाने लगा। ऐतिहासिक दृष्टि से यह रचना महत्व की है। इसमें इतिवृत्त की प्रधानता है।

(१२) शत्रुसाल रासो—इसके रचयिता बूँदी के राव डूँगरसी हैं, जिन्होंने इसे सं० १७१० के लगभग रचा होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसमें बूँदी के राव शत्रुसाल का इतिवृत्त है जो वीर रस प्रधान है। इसकी कुल छन्द-संख्या ५०० के लगभग है। कहा गया है कि इसकी भाषा-शैली 'पृथ्वीराज रासो' का अनुकरण करती है।[1]

(१३) मांकण रासो—यह रचना कान्ह कीर्तिसुन्दर की है और सं० १७५७ की रची हुई है।[2] यह विनोदात्मक है, और अपने विषय-वैशिष्ट्य के कारण उल्लेखनीय है। कुल केवल ३९ छंद इस रचना में हैं, किन्तु यह पाँच विविध छन्दों में रची गई है।

(१४) सगत सिंह रासो—इसके रचयिता गिरधर चारण हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है। श्री मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इसका रचना-काल सं० १७२० के लगभग है।[3] किन्तु श्री अगर चन्द नाहटा के अनुसार यह सं० १७५५ के बाद की रचना है।[4] इसमें राणा प्रताप सिंह के भाई शक्तसिंह तथा उनके वंशजों का चरित्र है। इसका मुख्य रस वीर है। यह रचना भी विविध छन्दों में की गई है। इसकी कुल छंद-संख्या ९४३ है।

(१५) हम्मीर रासो—यह रचना जोधराज की है, और सं० १७९५ की है।[5] इसमें हम्मीर का वीर चरित्र विशदता के साथ वर्णित हुआ है। हम्मीर पर एक संस्कृत रचना सं० १४६० के लगभग रचित नयचन्द्र सूरि कृत 'हम्मीर महाकाव्य' है, जो प्रायः ऐतिहासिक मानी गई है। प्रस्तुत रचना में अधिकतर उसका आधार ग्रहण किया गया है, किन्तु अनैतिहासिक बातें भी मिला दी गई हैं। इसमें हम्मीर का जन्म सं० ११४१ में होना बताया है, और हम्मीर के आत्मघात करने के अनन्तर अलाउद्दीन के द्वारा समुद्र में कूद कर प्राण देने का उल्लेख है, जो इतिहास-सम्मत नहीं है। इसका मुख्य रस वीर है, और यह विविध छन्दों में प्रस्तुत किया गया है। इसकी छन्द-संख्या लगभग १००० है।

(१६) खुमाण रासो—इसके रचयिता दलपत विजय हैं, जो दौलत विजय भी कहे जाते हैं। यह एक प्राचीन रचना मानी जाती रही है। अनुमान किया जाता रहा है कि यह खुमाण (सं० ८००-८९० वि०) के समकालीन उनके किसी आश्रित कवि की रचना रही होगी।[6] किंतु इधर इसकी जो प्रतियाँ मिली हैं, उनमें राणा संग्रामसिंह द्वितीय (सं० १७६७-९०) तक का उल्लेख है, इसलिए यह

[1] श्री मोतीलाल मेनारियाः 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १५८।

[2] 'राजस्थान भारती', भाग ३, अंक ३-४, पृ० १००।

[3] श्री मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १६०।

[4] 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज', भाग ३, पृ० १०७।

[5] 'हम्मीर रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छन्द ९६८।

[6] डॉ० श्याम सुन्दर दास : 'हिन्दी भाषा का इतिहास', पृष्ठ २२३।

रचना अपने इस समय के रूप में अठारहवीं शताब्दी वि० के अन्त की प्रतीत होती है।[1] अन्य साक्ष्यों की सहायता से भी दलपति विजय का समय अठारहवीं शताब्दी निश्चित किया गया है।[2]

इसका विषय मेवाड़ के सूर्य वंश का इतिवृत्त है :—

कवि दीजे कमला कला जो डण कवित्त जुगत्ति।
सूरजि वंस तणो सुजस वरणन करूं विगत्ति[3] ॥४॥

इस प्रकार वंश के नाम से लिखे गए रासो के उदाहरण हमें ऊपर भी मिल चुके हैं—यथा: 'कायम रासा', इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं कि 'खुमाण रासो' केवल खुमाण के चरित को लेकर नहीं, वरन् उनके वंश के इतिहास को लेकर लिखा गया हो।

यह ग्रन्थ विविध छन्दों में प्रस्तुत किया गया है, और कविता की दृष्टि से भी सरस है।

(१७) रासा भगवंत सिंह का—इसके लेखक सदानन्द हैं।[4] कृति में रचना-काल नहीं दिया हुआ है, किंतु इसमें सं० १७९७ के एक युद्ध का वर्णन है :—

संवत सत्रह सत्तानवें कार्तिक मंगलवारा।
सित नौमी संग्राम भो विदित सकल संसारा॥

इसलिए इसकी रचना इस तिथि के कुछ बाद की होनी चाहिए। इसमें भगवंत सिंह खीची का चरित्र वर्णित हुआ है। इसका मुख्य रस वीर है। यद्यपि रचना केवल १०४ छन्दों की है, किंतु इसमें छन्द-वैविध्य है।

(१८) करहिया को रायसो—इसके रचयिता गुलाब कवि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १८३४ वि० में की थी।[5] इसमें करहिया के परमारों तथा भरतपुर के जवाहरसिंह के बीच सं० १८२४ में हुए युद्ध का वर्णन है। इसका रस वीर है। यह रचना भी विविध छन्दों में प्रस्तुत की गई है।

(१९) रासा भैया बहादुर सिंह का—इसके रचयिता शिवनाथ हैं। इसका रचना-काल सं० १८५३ के कुछ ही बाद ज्ञात होता है, क्यों कि इसमें सं० १८५३ की एक घटना का उल्लेख है।[6] इसमें बलरामपुर के शासक भैया बहादुर सिंह का चरित्र वर्णित हुआ है। मुख्य रस वीर है। इसमें भी विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(२०) रायसो—यह उपर्युक्त शिवनाथ की एक अन्य रचना है।[7] इसमें रचना-काल नहीं दिया हुआ है। किन्तु उपर्युक्त रचना सं० १८५३ कुछ ही बाद की है, इसलिए यह भी उसी समय के लगभग की होगी। इसमें धारा के महाराजा जसवंत सिंह तथा रीवां के महाराजा अजीतसिंह का युद्ध वर्णित है। इसका मुख्य रस वीर है। इसमें भी विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(२१) हम्मीर रासो—इसके रचयिता महेश कवि हैं।[8] रचना-काल अज्ञात है। इसकी प्राप्त प्रतिलिपि सं० १८६१ की है। इसका विषय भी वही है जो जोधराज की इसी नाम की रचना का है। प्रधान रस वीर है। यह रचना विविध प्रकार के लगभग ९०० छन्दों में समाप्त हुई है।

[1] श्री मोतीलाल मेनारिया : 'खुमाण रासो', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २००९, पृ० ३५४।
[2] वही।
[3] 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग ३, पृ० ८२।
[4] दे० नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, पृ० ११४-१३१।
[5] दे० वही, भाग, १०, पृ० २०८।
[6] 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का खोज विवरण', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९२०-२२, संख्या १८१
[7] वही।
[8] वही, १९०१, संख्या ६३।

(२१) कलियुग रासो—यह रचना अलि रसिक गोविन्द की है।[१] इसका रचना-काल सं० १८६५ है। इसमें कलियुग का प्रभाव वर्णित है। यह रचना लगभग ७० छन्दों में समाप्त हुई है। उद्धृत अंशों में केवल मनहरण कवित्त छन्द मिलता है। असम्भव नहीं कि पूरी रचना मनहरण कवित्त छन्द में हो। यदि ऐसा ही हो तो यह रासो की छन्द-वैविध्य-परक परम्परा की एक अन्तिम रचना प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें छन्द-वैविध्य का आग्रह नहीं है। हो सकता है कि इस समय रासो-परम्परा की छन्द-वैविध्य सम्बन्धी आवश्यकता विस्मृत हो चुकी हो, और 'रासो' शब्द एक उत्कृष्ट काव्य मात्र का पर्याय समझा जाने लगा हो।

परिणाम

अब हम रासो काव्यधारा के विषय में कुछ परिणाम सुगमता से निकाल सकते हैं :—

(१) रास तथा रासो नामों में प्रायः कोई भेद नहीं है, दोनों नाम एक ही अर्थ में और कभी-कभी साथ-साथ एक ही रचना में प्रयुक्त हुए हैं। यह धारणा निराधार है कि रास कोमल भावनाओं का परिचायक रहा है और रासो युद्धादि सम्बन्धी कठोर भावों का। यदि देखा जाय तो अनेक प्रकार के विषय रास और रासो द्वारा अभिहित काव्यों के वर्ण्य बने हैं।

(२) रासो के अन्तर्गत प्रबन्ध की दो विभिन्न परंपराएँ आती हैं: एक तो गीत-नृत्य-परक है और दूसरी छन्द-वैविध्य-परक। दोनों परंपराओं को मिलाया नहीं जा सकता है।

(३) गीत-नृत्य-परक परंपरा की रचनाएँ प्रायः आकार में छोटी हैं, क्योंकि उन्हें गाकर सुनाने के लिए स्मरण रखना पड़ता था, जबकि छन्द-वैविध्य-परक परंपरा में रचनाएँ छोटे-बड़े सभी आकारों की हैं।

(४) गीत-नृत्य-परक परंपरा का प्रचार जैन धर्मावलंबियों में अधिक रहा है। उनके रचे हुए प्रायः समस्त रासो इसी परंपरा में हैं। दूसरी परंपरा का प्रचार जैनेतर समाज में अधिक रहा है।

(५) गीत-नृत्य-परक रासो रचनाएँ प्रायः पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में लिखी गईं, जबकि छन्द-वैविध्य-परक रासो की रचना प्रायः पूर्वीय राजस्थान तथा शेष हिंदी प्रदेश में हुई।

(६) काव्य का दृष्टिकोण दूसरी ही परंपरा में प्रधान रहा, प्रथम में नहीं और इसीलिए शुद्ध साहित्य की दृष्टि से दूसरी परंपरा प्रथम की अपेक्षा अधिक महत्व की है।

उद्भव

इन दोनों परंपराओं का उद्भव किस प्रकार हुआ होगा, इस पर भी हमें संक्षेप में विचार कर लेना चाहिए।

रासक एक अति प्राचीन भारतीय नृत्य रहा है। इसको लास्य का एक भेद मानते रहे हैं। शारदातनय (सं० १२२५-१३०० वि० के लगभग) ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाव प्रकाशन' में लिखा है कि लास्य के चार भेद होते हैं: (१) शृंखला, (२) लता, (३) पिंडी तथा (४) भेद्यक, और इनमें से लता के पुनः तीन भेद होते हैं: (१) दण्ड रासक, (२) मण्डल रासक तथा (३) नाट्य रासक।[२] संभवतः इसी 'नाट्य रासक' से उस नाम के उप रूपक की उत्पत्ति हुई होगी, क्योंकि शारदातनय ने 'नाट्य रासक' उप रूपक में रासों के साथ उपर्युक्त शृंखला, लता, पिंडी तथा भेद्यक नृत्यों का प्रयोग भी बतलाया है।[३]

[१] 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का खोज विवरण', १९०९-११, संख्या २६३।

[२] भावप्रकाशन, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा, पृ० २९०।

[३] वही।

ऐसा प्रतीत होता है कि यही नाट्य-रासक उप रूपक नाटकीय संकेतों और उसके कुछ अन्य तत्वों से विरहित होकर गीत-नृत्य-परक रास काव्यरूप में ढल गया। इस परंपरा की रचनाओं में उनके गाए जाने और कभी कभी नृत्य-समन्वित होने का जो उल्लेख मिलता है, यथा 'उपदेश रसायन' में ऊपर हमने देखा है, वह इस उद्भव की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

दूसरी परंपरा का उद्भव किंचित् भिन्न है। उसकी कल्पना छन्द-मूलक प्रतीत होती है। अपभ्रंश के प्रायः सभी छन्द-निरूपकों ने रासा नाम के छन्द के लक्षण बताए हैं और दो ने रासक तथा रासाबन्ध नाम से एक काव्यरूप का भी लक्षण बताया है। ये दो छन्द-निरूपक हैं विरहांक तथा स्वयंभू।

विरहांक ने लिखा है[1] :—

अडिलाहिं दुवहएहिं व मत्तारड्डाहि तहअ ढोसाहिं।
बहुएहिं जो रइज्जइ सो भण्णइ रासओ णाम॥

अर्थात् जिसमें बहुत से अडिल्ला, दोहा, मात्रारड्डा और ढोसा छन्द पाये जाते हैं, ऐसी रचना रासक कहलाती है।

स्वयंभू ने लिखा है[2] :—

घत्ता छड्डणिआहिं पद्धडिआ सु अण्ण रूएहिं।
रासा बंधो कव्वे जणमण अहिरामो होइ॥

अर्थात् काव्य में रासाबन्ध अपने घत्ता, छप्पय, पद्धडी तथा अन्य रूपकों के कारण जनमन-अभिराम होता है।

छन्द-वैविध्य-परक रास-परंपरा अन्य काव्योचित गुणों के साथ अपने इसी छन्द-वैविध्य को लेकर आई और उपर्युक्त गीत-नृत्य-परक परंपरा से अलग विकसित हुई। अपनी इसी रासकता का उल्लेख 'संदेश रासक' करता है जब वह कहता है[3] :—

कह बहु रूवि णिबद्धउ रासउ भासियउ।

और 'पृथ्वीराज रासो' इसी छन्द-वैविध्य वाली परंपरा का काव्य है।

—:※:—

[1] 'वृत्त जाति समुच्चय', ४.३८।

[2] 'स्वयंभूच्छंदस्', ८.४९।

[3] 'संदेश रासक', छन्द ४३, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

१८. 'पृथ्वीराज रासो' की वस्तु-कल्पना

'रासो' का कवि पृथ्वीराज के संपूर्ण जीवन की कथा को नहीं कहना चाहता है, वह एक प्रकार से कथा-नायक के जीवन के अन्तिम वर्षों की कथा को ही अपनी रचना का विषय बनाना चाहता है। उसके शेष जीवन का परिचय वह रचना के प्रारम्भ में केवल एक छन्द में देता है, जिसका आशय है कि पृथ्वीराज की कपिल (धूल-धूसरित) केलि अजमेर में हुई थी, उसके रक्त (अनुरागपूर्ण) जीवन के वृत्त साँभर में हुए थे, वह सोमेश्वर का पुत्र बहिलावन (?) का निवासी था और दिल्लीपुर में भासित होने के लिए ही मानो विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (१.६)। प्रश्न होता है कि ऐसा उसने क्यों किया। क्या कथा-नायक के पूर्ववर्ती जीवन में कवि को ऐसी कोई घटनाएँ नहीं मिलीं जो महाकाव्य के उपयुक्त होतीं, या कथा-नायक के चरित्र में ऐसे कोई विशेष तत्व नहीं विकसित हुए थे जो महाकाव्य के नायक के लिए आवश्यक होते अथवा नायक के जीवन के उस अंश में रस के वे विशेष तत्व कवि को नहीं मिले जो एक महाकाव्य के लिए आवश्यक होते ?

वस्तुतः ऐसी कोई बात नहीं दिखाई पड़ती है। नायक के पूर्ववर्ती जीवन का चित्रण न करते हुए भी कवि ने उसके सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर संकेत किए हैं। एक स्थान पर कथा-नायक के द्वारा कवि ने कालिंजर के जलमग्न किए जाने की बात कही है (२.१७)। कालिंजर के पराक्रमी चंदेल शासक परमर्दि पर उसकी विजय उस युग की एक असाधारण घटना थी—सं० १२३९ के मदनपुर के शिलालेख में उसकी वह विजय-गाथा अंकित हुई है[1], और जगनिक के नाम से प्रसिद्ध आल्ह खण्ड उसी घटना को अपना वर्ण्य बनाता है। उस युग के अति पराक्रमी शासक गुर्जर-नरेश भीम चौलुक्य पर भी उसने विजय प्राप्त की थी, 'रासो' में यह बार-बार कहा गया है (२.३, ८.४, १२.३३)। इतना ही नहीं, यहाँ तक कहा गया है कि उसने स्वयं भीम के साथ युद्ध करना आवश्यक नहीं समझा था, उस समय वह दूर विश्वासर में था जब उसके मंत्री (कैंबास) ने भीमसेन को परास्त करके बन्दी बनाया था (३.६)। इतिहास से यह घटना कहाँ तक अनुमोदित है, यह एक भिन्न प्रश्न है।[2] किंतु यह तो निश्चित ही है कि कवि के मानस पर पृथ्वीराज की ये असाधारण विजयें भी अंकित थीं। शहाबुद्दीन पर भी उसे जीवन के उस अंश में एक महान् विजय प्राप्त हुई थी, यह कवि ने बार-बार कहा है, और इतिहास से भी यह भली भाँति अनुमोदित है। और ये घटनाएँ ऐसी हैं जो अलग-अलग महाकाव्यों का विषय बन सकती थीं—कदाचित् इसी बात

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

[2] दे० वही।

को देखकर पीछे महोबा खंड, भीम युद्ध खंड तथा शहाबुद्दीन खंड की कल्पना की गई, जो रचना के कुछ पाठों में पाए भी जाते हैं। किन्तु पाठ-निर्धारण के प्रसंग में ऊपर हम देख चुके हैं रचना के मूल रूप में ये खंड नहीं हो सकते हैं। इसलिए ऊपर जो प्रश्न उठाया गया है वह बना रहता है।

प्रस्तुत लेखक के विचार से इस प्रश्न का समाधान इस तथ्य में निहित है कि कवि उन घटनाओं को अपने काव्य का वर्ण्य नहीं बनाना चाहता था जो जयानक (?) के 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य में वर्णित हो चुकी थीं। परमर्दि पर पृथ्वीराज के विजय की कथा उसमें आती थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है; भीम के साथ पृथ्वीराज के संघर्ष की कथा उसमें आती थी यह निश्चित तो नहीं है किन्तु दोनों में वैमनस्य था, इस विषय के संकेत उसमें मिलते हैं।[1] शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज को जो विजय प्राप्त हुई थी, वह तो उस काव्य का लक्षित विषय ही था, यह 'रासो' के कवि के तत्सम्बन्धी कथन से प्रमाणित है। उसने कहा है कि पण्डित [जयानक] को पृथ्वीराज का यह आदेश हुआ कि वह शाह शहाबुद्दीन पर उसको प्राप्त हुई विजय का काव्य लिखे।[2] और यह उल्लेख उसने रचना के एक प्रारम्भिक प्रसंग में किया है, जिसके पूर्व काव्य की कोई प्रमुख घटना नहीं आती है। इससे यह प्रकट है कि 'रासो' का कवि उन घटनाओं को अपने काव्य का विषय नहीं बनाना चाहता था जो 'पृथ्वीराज विजय' का विषय बन चुकी थीं; और परिणामतः यह भी प्रकट है कि वह एक सर्वथा मौलिक काव्य की रचना करना चाहता था। वह अपनी प्रतिभा का चमत्कार कथा-नायक के जीवन की उन्हीं घटनाओं को अपने महाकाव्य का विषय बनाकर प्रदर्शित करना चाहता था जो पृथ्वीराज के जीवन में शहाबुद्दीन पर प्राप्त विजय के अनन्तर घटित हुई थीं, और यही कारण है कि पूर्ववर्ती घटनाओं का उल्लेख करते हुए भी उसने अपने काव्य को कथा-नायक के जीवन के अन्तिम वर्षों की घटनाओं तक सीमित रक्खा।

इस रचना में चार ही घटनाएँ आती हैं : (१) कैंवास-वध, (२) पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध, (३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध तथा (४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज अंत। तीसरी और चौथी घटनाएँ सन्निकट रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। कवि कथा-नायक को पराजित नहीं छोड़ना चाहता था, इसलिए उसने अन्तिम घटना की कल्पना की, यह बहुत सम्भव है; उक्त घटना इतिहास अनुमोदित नहीं है, यह तथ्य इसी ओर संकेत करता है। शेष तीन घटनाओं में ऊपर से देखने पर परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता है। एक सामान्य धारणा प्रचलित रही है कि जयचन्द ने पृथ्वीराज के वैर के कारण शहाबुद्दीन को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था, या कम से कम उस युद्ध में जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ था उसने शहाबुद्दीन की सहायता की थी, किंतु 'रासो' में इस प्रकार का एक भी उल्लेख नहीं हुआ है। ऐसा उसका कवि बड़ी सुगमता से कर सकता था, किंतु फिर भी उसने नहीं किया है और कदाचित् इसलिए नहीं किया है कि वह प्राप्त इतिहास की उपेक्षा नहीं करना चाहता था। कैंवास-वध की घटना को भी किसी प्रकार उसने पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध अथवा शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध से सम्बन्धित नहीं किया है, यद्यपि यह भी असम्भव नहीं था : 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में संकलित पृथ्वीराज-प्रबन्ध में दिखाया गया है कि कैंवास के वध का जो प्रयत्न पृथ्वीराज ने किया था उसमें वह अकृतकार्य रहा : तदनन्तर वध के इसी प्रयत्न से रुष्ट होकर कैंवास ने शहाबुद्दीन से वह आक्रमण कराया, और प्रच्छन्न रूप से उस युद्ध में उसकी सहायता की जिसमें पृथ्वीराज का पराभव हुआ, और अन्त तक उसने विश्वासघात करके

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

[2] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

पृथ्वीराज का वध भी कराया।[१] किंतु 'रासो' के कवि ने इस प्रकार की कोई कल्पना नहीं की है। कदाचित् प्राप्त इतिहास में इस प्रकार की कोई बात न पाकर ही उसने उपर्युक्त प्रकार की कोई कल्पना नहीं की। फिर भी यह न समझना चाहिए कि 'रासो' के कवि का ध्यान इस विषय पर नहीं था, अथवा वह केवल एक चरित लिख रहा था, जिसमें एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र घटनाओं को भी स्थान मिल सकता था। उसने इन तीनों घटनाओं को अपनी सरस कल्पना से जिस प्रकार सूत्रित करने का प्रयत्न किया है, वह दर्शनीय है।

कैंवास-वध और पृथ्वीराज जयचन्द युद्ध में जो सम्बन्ध-हीनता रहती है, वह उसका परिहार एक कथा-सूत्र का विकास कर करता है। कवि कहता है कि कैंवास-वध की घटना का समाचार जब उसकी विधवा स्त्री को मिलता है, वह चन्द से मृत पति का शव दिलाने का अनुरोध करती है, और चन्द जब पृथ्वीराज से इस विषय का अनुरोध करता है, वह बड़े आग्रह के अनंतर इस शर्त पर शव के दिए जाने की स्वीकृति देता है कि चन्द उसे छद्म वेश में कन्नौज ले जावेगा (३.३७-३९)। इस प्रकार कवि कैंवास-वध की प्रासंगिक कथा को भी मुख्य या आधिकारिक कथा का एक उपयोगी अंग बना देता है।

पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध और शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में जो सम्बन्ध-हीनता रहती है, उसका परिहार भी वह एक कथा-सूत्र का विकास कर करता है। किन्तु यह विस्तार अत्यन्त स्वाभाविक और सरस है। प्रस्तुत संस्करण के सर्ग ९ में कवि कहता है कि जयचन्द से युद्ध के अनंतर पृथ्वीराज संयोगिता को दिल्ली लाकर केलि-विलास में पड़ गया और अपनी शक्ति को उसने नष्ट कर दिया; उसे इस प्रौढ़ रति के समक्ष दिन और रात की सुधि नहीं रहती थी; परिणाम-स्वरूप उसके गुरुजन, बांधव, भृत्य और प्रजा में असन्तोष फैल गया। संयोगिता ने पृथ्वीराज को इस प्रकार वश में कर रक्खा था कि उसके लिए संयोगिता को छोड़ कर कहीं भी जाना असम्भव हो गया था: ऋतुएँ आती थीं और चली जाती थीं और संयोगिता के प्रणयानुरोधों के कारण पृथ्वीराज उसे छोड़ कर राजभवन से निकल तक नहीं पाता था। प्रस्तुत संस्करण के सर्ग १० में वह इस अवस्था से चन्द तथा गुरुराज के उद्बोधनों से मुक्त होता है; किन्तु उसकी मोह-निद्रा जब खुलती है, शहाबुद्दीन उसके सिर पर पहुँचा हुआ होता है (१०.२०—२४)। संयोगिता अंतिम बार विलास-मय जीवन की रमणीयता की ओर उसका ध्यान आकृष्ट कर उसे रोकना चाहती है, किन्तु पृथ्वीराज फिर नहीं रुकता है (१०.२५-२६)। फिर भी, इस मोह-निद्रा का जो अनिष्टकारी परिणाम हो सकता था, वह हुए बिना नहीं रहता है, और शहाबुद्दीन के साथ अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज पराजित होता है (सर्ग ११)।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी कथा के अन्त में कथा-नायक के अन्त के साथ कवि कैंवास-वध तथा संयोगिता के केलि-विलास का एक ऐसा सामंजस्य प्रस्तुत करता है जो अत्यन्त सार-गर्भित है। यह चन्द के मुख से कहलाए गए एक कथन के रूप में है:—

> अथमि राज कमान बांन दिढ मुट्ठि गहहि कर।
> जिन बिलसउ नर करहि करहि सुअर्पत्ति अप्पु वर॥
> जि कछु किअउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पायउ।
> सोइ संभरी नरेसु तुहि ज अम्मर पुर आयउ।
> विधिना विधान मेटइ कवन दीन मान दिन पाइयइ।
> सर एक कोरि संभरि धनी सत्तहि सइुद गमाइयइ॥ (१२.४६)

[१] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

चंद यहाँ यह कहना चाहता है "जिस विलासिता के गर्त में गिरने के कारण कैंवास की दुर्गति हुई—और तुम्हारे द्वारा हुई—उसी विलासता-गर्त में तुम स्वयं जानते-बूझते गिरे, तो अब उसके परिणाम से कैसे बच सकते हो ? वह गति तो तुम्हारी होनी ही है जो कैंवास की हुई; इस अवस्था में तुम शत्रु के भी प्राण ले सको यही बहुत है।" जैसा हम आगे देखेंगे यह चंद ही जैसा पात्र था जिसके द्वारा इस प्रकार की उक्ति कवि प्रस्तुत करा सकता था। सम्पूर्ण कथा चन्द की उपर्युक्त उक्ति की पृष्ठभूमि में कितनी संगतिपूर्ण और सुसंबद्ध लगने लगती है, यहाँ दर्शनीय इतना ही है। एक अकुशल कवि जिस प्रभाव को प्रचुर प्रयासों के बाद भी कदाचित् ही संपादित कर सकता था, 'रासो' का कुशल कवि एक सहज उक्ति मात्र से संपादित कर देता है, यह उसके सच्चे कलाकार होने का एक ज्वलंत प्रमाण है।

विभिन्न कथाओं के विकास में भी उसकी यह प्रबन्ध-कुशलता देखी जा सकती है। समस्त रचना में एक भी प्रसंग ऐसा नहीं मिलता है जो विषयान्तर उपस्थित करता हो, न कोई अनावश्यक वर्णन-विस्तार मिलता है, यहाँ तक कि एक-एक छंद और एक-एक उक्ति अपने-अपने स्थान पर अनिवार्य लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे सम्पूर्ण रचना एक सुनिश्चित योजना के सहारे खड़ी की गई हो, जिसमें उसके हर एक अंग और हर एक अंश का स्थान और कार्य निर्धारित हो। इतना सुगठित प्रबन्ध, कहना नहीं होगा, समूचे प्राचीन और मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है।

'रासो' की सम्पूर्ण कथा इस प्रकार सम्यक् रूप से सर्गों में विभाजित है कि वह भी उसके कवि का प्रबन्ध-कौशल सूचित करती है, लघुतम पाठ में सर्ग-विभाजन नहीं है; किन्तु उसमें छंदों की क्रम-संख्या तक नहीं है, इसलिए 'रासो' के मूल रूप में भी स्थिति यही रही होगी यह कल्पना करना उचित न होगा। प्रस्तुत संस्करण का सर्ग-विभाजन 'रासो' के समस्त शेष पाठों के अनुसार किया गया है—केवल कथा की भूमिका का छंद मंगलाचरण के साथ रक्खा गया है, जो शेष पाठों में किसी स्वतन्त्र सर्ग में है, और पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध उसकी प्रबन्ध-कल्पना के अनुसार पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में विभक्त किया जाकर दो सर्गों में रक्खा गया है, जो लघु में तीन सर्गों में तथा शेष पाठों में प्रायः एक ही सर्ग में आता है। इन सर्गों की कथाएँ परस्पर इतनी अलग-अलग हो जाती हैं, कि यह मानना असम्भव हो जाता है कि 'रासो' के कवि के मन में कोई सर्ग-कल्पना नहीं थी। सर्गों के नामों के सम्बन्ध में अवश्य लघु, मध्यम तथा बृहत् पाठों में प्रायः कोई साम्य नहीं है, और सर्गों के बीच-बीच में प्रक्षिप्त कथाओं के आने के कारण नाम-परिवर्तन होता रहा होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। अतः प्रस्तुत संस्करण के लिए सर्गों के नामों या शीर्षकों की कल्पना वर्णित कथा को ध्यान में रखते हुए एक प्रकार से नए सिरे से करनी पड़ी है।

—:*:—

१९. 'पृथ्वीराज रासो'
की
चरित्र कल्पना

'रासो' की चरित्र-कल्पना ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है—जैसा कि वह प्रत्येक महाकाव्य की हुआ करती है। एक प्रकार से उसके सभी पात्र असामान्य वीर हैं, किन्तु प्रायः उनके अपने-अपने व्यक्तित्व हैं, जिन्हें नीचे स्पष्ट करने का यत्न किया जा रहा है।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज इस महाकाव्य का नायक है। उसके समस्त कार्य धर्म-बुद्धि से होते हैं। कथा के आरम्भ में ही हम देखते हैं कि वह वीर और विनयशील है और गुरुजनों के समक्ष संकोच करता है। जब जयचन्द के दूत उसकी सभा में राजसूय में सम्मिलित होने का जयचन्द का निमन्त्रण लेकर आते हैं, गुरुजनों को देख कर वह वीर सकुच जाता है और उत्तर नहीं देता है; उत्तर उसका एक गुरुजन गोविंद राज देता है:—

> बोलइ न वयण प्रथिराज तांहि।
> संकरिउ सिंघ गुरजनन चाहि॥ (२. ३. ११. २२)

इसी प्रकार चन्द जब उसे 'अयान' कहते हुए एक स्थान पर संबोधित करता है, वह इससे तनिक भी बुरा नहीं मानता है:—

> बोलउ चन्द अयान त्रिप मति मंडन समरथ्थ।
> जउ मुक्कइ सथ सथ्थिअलु तउ कल लिग्ने सथ्थ॥ (६.२)

चन्द को तो जैसे उसने पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी है कि वह जब चाहे जो कुछ कहे, यह हम चंद के चरित्र का निरीक्षण करते हुए देखेंगे।

जयचन्द से उसका संघर्ष उसकी सौन्दर्य-लिप्सा के कारण नहीं हुआ है, जैसा सामान्यतः समझा जाता है। ऐसा नहीं है कि उसने संयोगिता के रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनी हो और वह कन्नौज पर चढ़ दौड़ा हो; एक दीर्घ मानसिक संघर्ष के बाद अपना कर्त्तव्य समझकर ही उसने यह किया है। और यह समझ लेना उसके संपूर्ण चरित्र को समझने के लिए नितान्त आवश्यक है: कर्त्तव्य के सामने प्राणों की चिन्ता उसने कभी नहीं की है।

'रासो' का कवि कहता है कि जयचन्द की पुत्री संयोगिता ने पृथ्वीराज को वरण करने के लिए व्रत लिया था, यह उससे किसी ने, संभवतः उसके चर ने, कन्नौज के समाचार देते हुए कहा:—

> संयोगि जोग वर तुम्ह आज।
> व्रत लिअउ वरण प्रथीराज राज॥ (२.१०)

तिहि पुच्छिय सुनि गम इतउ तात वचन तजि काज।
कह बहि गंगहि संचरउं कइ पानि गहउं प्रथीराज ॥ (२.११)

चर की बातें सुनकर उसे आश्चर्य होता है, किन्तु उसे विश्वास हो जाता है कि संयोगिता हृदय से उसपर अनुरक्त है और राजा (जयचन्द) उसे अन्य से ब्याहना चाहता है, यद्यपि दैव को कुछ और ही मंजूर है :—

सुनत राइ अचरिज भयउ हियह सम्भउ अनुराउ।
नृप वर अलि उर अंगमइ दैवहि अवर सु भाउ ॥ (२.१२)

जब से उसने यह सुना है, और फिर यह सुना है कि उसकी स्वर्ण-प्रतिमा दरबान के स्थान पर जयचन्द ने स्थापित की है, उसका चित्त अशान्त रहने लगता है। कैंवास-कर्नाटी प्रणय और उनके वध की घटना उसकी इसी मानसिक अशांति के बीच पड़ती है। कवि ने कहा है कि इस मानसिक ताप से जी को बहलाने के लिए वह आखेट में रहने लगा था, राज-काज उसने अपने प्रधान 'अमात्य' कैंवास को सौंप रक्खा था :—

तिहि तप आखेटक भमइ थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुगिनिपुरह घर रष्षइ परवान ॥ (३.१)

जब कैंवास उसकी इस मानसिक स्थिति में राजभवन के नियमों का उल्लंघन कर उसकी दासी के कक्ष में प्रवेश करता है, तो उसका प्राण गँवाना अवश्यंभावी हो जाता है। असंभव नहीं कि भिन्न मानसिक स्थिति में वह अपने प्रधान 'अमात्य' को, जिसने किसी समय भीम चौलुक्य जैसे उसके प्रचंड शत्रु को पराजित किया था (३.६), इतना कठोर दण्ड न देता।

किन्तु तब तक उसके मानसिक संघर्ष की स्थिति समाप्त हो जाती है; कैंवास-वध के अनन्तर अपने बाल-सहचर चन्द से गले मिलकर वह रोता है, क्योंकि अपने उपहासपूर्ण जीवन का अन्त करने के लिए उसने प्राणोत्सर्ग का संकल्प कर लिया है :—

दोइ कंठ लग्गिय गहन नयनइ जल गल म्हाँतु।
अब जीवन वंछिहि अधिक कहि कवि कोन सयालु ॥ (३.४०)

इस संकल्प पर उसके वीर सहचर चन्द का आनन्दित होना स्वाभाविक ही है, जब वह जान लेता है कि पृथ्वीराज का संकल्प उसके सिर से गुरुतर तथा उसका जीवन हल्का और सिर [कंधों पर] भारी हो रहा है :—

आनन्दउ कवि चन्दु जिय न्रिप किय संच विचार।
मन गरुअर सिर हरुअ हइ जीवन हरउ सिर भार ॥

और इस संकल्प का समर्थन करते हुए वह कहता है :—

धरि वरु पंगु प्रगाह अरु यह विहंडिहइं।
इत उपहास विलास न प्रान पमूकिहइं ॥ (३.४१.३-४)

उसकी वीरता के सम्बन्ध में तो अधिक कुछ कहना ही व्यर्थ होगा : उसकी सारी जीवन-गाथा वीरता की अनुपम कथा है। संयोगिता का वरण करके वह चुपचाप कन्नौज से चल नहीं देता है, अपने सहचर चन्द के द्वारा वह घोषित करा देता है कि जयचन्द-पुत्री का परिणय करके जयचन्द से दायज के रूप में वह उससे युद्ध चाहता है :—

सज रिपु दिल्लियनाथ सो ध्वंसनं जग्गियं आये।
परणेयं तव पुत्री युध्धं मंगति भूपनं सोइ ॥ (७.२)

उसके सामंत जब देखते हैं कि युद्ध विषम है और यह सम्भव नहीं है कि कन्नौज में रुक कर युद्ध किया जावे, वे पृथ्वीराज से अनुरोध करते हैं कि वह दिल्ली की दिशा में प्रस्थान करे और

वे सब एक-एक करके जयचन्द की विशाल वाहिनी को रोकें और जिस प्रकार भी सम्भव हो उसे दिल्ली तक सुरक्षित पहुँचा दें। किन्तु पृथ्वीराज इस प्रस्ताव से सहमत नहीं होता है, और कहता है :—

सति घटी सामंत मरण हुउ ओहि दिषावहु।
जम चीठी विणु कदन होइ जउ तुमउ बतावहु।
तुम गंजउ भर भीम ताल गव्वहु मयमत्ता।
मइ गोरी साहव्वदीन सव्वर साहंता।
मुह सरणहि हींदु तुरक तिह सरणागत तुम करहु।
बूझिअइ न सूर सामंत हो इतउ बोझ अप्पन घरहु॥ (८.२)

उनके अनेक प्रकार से समझाने पर भी वह उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता है, जब तक कि उसका बाल-सहचर चन्द इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं करता है (८.५-६)। चन्द के कथन को सुनकर पृथ्वीराज कहता है कि उसका कथन उसके लिए अमिट है :—

मिट्यउ ण जाइ कहणो वय कवि चंद सार सा मंत।

और तब वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है।

उसके इस वीर और कर्त्तव्य-सजग जीवन में केवल एक बार शिथिलता आती है—और यह शिथिलता उसकी समस्त जीवन-साधना पर पानी फेर देती है। 'रासो' की यह शृंगार-कथा वास्तव में उसकी सबसे करुण गाथा है। सकुशल दिल्ली पहुँचकर पृथ्वीराज संयोगिता के साथ केलि-विलास में इस प्रकार लिप्त हो जाता है कि अपनी शक्ति को वह नष्ट कर देता है, और उसके मन में केवल एक बात रहती है—वह किस प्रकार संयोगिता को सुख प्रदान करे। परिणाम यह होता है कि उस मानिनी की प्रौढ़ रति में उसे दिनों और रातों का होना-जाना नहीं ज्ञात होता है, और उसके गुरुजन, बांधव, भृत्य तथा प्रजागण उससे खिन्न हो जाते हैं :—

इह विधि विलसि विलास अपार सुसार किअ।
दइ सुष जोग संजोगि सोइ पृथ्वीराज जिय।
अहनिसि सुध्धि न जानहि माननि प्रौढ रति।
गुरु बंधव भृत लोइ भई विपरीत गति॥ (९.८)

उसकी यह मोह-निद्रा तब भंग होती है जब उसका बाल-सहचर चन्द राजगुरु के साथ उसे शहाबुद्दीन के होने वाले आक्रमण की सूचना देता है (१०.२२)। और फिर कर्त्तव्य की पुकार के सामने उसे सुन्दरी का मोह रोक नहीं सकता। वह उसी प्रकार अपने कर्त्तव्य में पुनः स्थित हो जाता है जिस प्रकार कोई नट वेष बदल कर आ जाता हो:—

सुणि कग्गल दिट्ठउ सुकर धर रुप्पइ गुरु भट्ट।
तरकि सोन सजियउ सकिरि जिम वेष छंडि सु नट्ट॥ (१०.२४)

इसके बाद संयोगिता काम-सुख में उसे पुनः प्रवृत्त होने को आमन्त्रित करती है, किन्तु पृथ्वीराज उसके सम्मोहन में नहीं पड़ता और कहता है कि जिस वीर-पत्नी ने उसके बाहुओं की पूजा की थी वह मुग्धा काम की बातें किस प्रकार कर रही है?

सुणि प्रिय प्रिय दिष्यौ वदन किय जिय निर्भय पाथ।
बाहू पुज्जउ वरह तुह कहि स मुध्ध रतिनाथ॥ (१०.२६)

यह संयोगिता से उसकी अन्तिम भेंट है।

शहाबुद्दीन की सेना उसकी सेना से कई गुना बड़ी है, उसके सामंत जयचन्द से हुए उसके

युद्ध में प्रायः कट चुके हैं—इसलिए पराजय तो निश्चित है, फिर भी वह वश्यता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता, और अन्त तक लड़ता है, जब तक कि वह बन्दी नहीं कर लिया जाता है।

बन्दी ही नहीं, अन्धा किए जाने के बाद भी उसकी वीरवृत्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता है : चन्द जब शहाबुद्दीन से मिलता है, तो शहाबुद्दीन कहता है कि अन्धा होने पर भी अपनी वक्रदृष्टि नहीं छोड़ रहा था, इसलिए उसे थाने में रख दिया गया था:—

वै चंद अन्ध मइ रिख अ कीन।
वर वंक दीठ छंडइ न भीन॥
विहान थान रष्षि ज भद्‌ब्बु।
किरतारि हथ्थ करिअ न गब्बु॥ (१२.१५.९-१२)

किन्तु जीवन के अन्त में वह निराश हो चलता है। चन्द के संजीवन मंत्र को सुनकर एक बार उसकी नसों में नवजीवन का संचार अवश्य होता है, किन्तु फिर वह निराशा से सिर झुका लेता है:—

विप्र देह नव तनह सुभग्ग।
अंषि पांनि मत्तु चितइ लग्ग।
पहिचानि चन्दु वर धुनिग सीस।
सिर नयो नही मन भई रीस॥ (१२. ३३. १७-२०)

यह चन्द ही है कि उसने उसको शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए तैयार कर लिया है।

पृथ्वीराज की अंतिम झाँकी वाण-सन्धान के पूर्व मिलती है; 'रासो' का कवि कहता है कि इस समय चन्द का मुख चन्द्र का सा हो रहा था और राजा के मन की संधि (शंका) मलिन हो चुकी थी:—

इलि घसि पांनि पविरट किय तिगिनि सर गुन बंधि।
चरचि चंद मुष चंद भयु मलिय राज मन संधि॥ (१२. ४७)

इसके बाद तो 'रासो' का कवि इतना ही कहता है शहाबुद्दीन के धरती पर गिरते ही राजा का भी मरण हुआ। किन्तु यहीं पर 'रासो' का अन्त करते हुए वह कहता है कि "देवताओं ने उसके सिर पर पुष्पांजलि छोड़ी, जो धरणी म्लेच्छों से आबद्ध हो गई थी वह अब नव स्त्री के समान हँस पड़ी, तृण (शरीर के भौतिक तत्व) तृणों (भौतिक तत्वों) को तथा ज्योति (जीव) ज्योति (परमात्मा) को संप्राप्त हुए":—

मरन चन्द वरदिआ राज पुनि साह हन्यउ सुनि।
पुह पंजलि असमान सीस छोडी त देवतनि।
मेछ अवध्धित धरणि धरणि नवत्रीय सुहस्सिग।
तिनहि तिनहि सं जोति जोति जोतिहि संपत्तिग।

कहना नहीं होगा कि पृथ्वीराज के इस अमर-चरित्र की कल्पना समूचे हिन्दी साहित्य में अनुपम है, और इसके लिए हमें 'रासो' के कवि का चिरकृतज्ञ होना चाहिए।

संयोगिता

संयोगिता की पहली झाँकी काव्य में एक मनोरम रूप में प्राप्त होती है : वह यवांकुरों को हाथ में लिए मृग-वत्सों को चरा रही है, और ऐसी लग रही है मानो उस मानिनी के मिस इंदु ही [मृग-शावकों को] नेत्रों से देख कर आनंदित हो रहा हो; उसकी सखियाँ और सहचरियाँ परस्पर बातें कर रही हैं कि शुभा संयोगिता के संयोग (विवाह) के लिए विधाता ने मानो मन्मथ को ही निर्मित किया होगा:—

जब अंकुर करि पानि चरावति चच्छ स्तु।
मनु मानिनि मिल इंदु आनंदइ देखि इतु।
सहि सहचरि ति चरच परसपर बत् किअ।
सुभ संजोगि संजोग आतुर मनमथ्थ किअ॥ (२.४)

संयोगिता के इस प्रथम दर्शन में कवि उसे जो 'मानिनी' कहता है, वह प्रसंग-सापेक्ष्य नहीं है, बल्कि चरित्र-सापेक्ष्य है—प्रारम्भ में कवि ने संयोगिता का चरित्र ही एक मानिनी के रूप में चित्रित किया है। उसने एक बार पृथ्वीराज को वरण करने का निश्चय कर लिया है (२-१०) तो फिर उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता है। जयचन्द उसको इस निश्चय से विरत करने के लिए दासियाँ नियुक्त करता है (२-१३)। अनेक प्रकार के तर्कों से दासियाँ उसे इस निश्चय से डिगाना चाहती हैं, किन्तु संयोगिता स्पष्ट कहती है कि वह उनकी बातों में नहीं आ सकती है, और उसने संकल्प कर लिया है कि चाहे उसे सौ जन्म ग्रहण करने पड़ें, वह पृथ्वीराज को ही वरण करेगी :—

न मो राजन लंकाई न मो गुरुजनागरे।
वरमेकं सर्व देह अन्यथा पृथिराजए॥ (२.१९)

जयचन्द ने उसके इस हठ पर रुष्ट होकर उसे गंगा तट के एक अन्य आवास में भेज दिया है। वह इसी आवास में रहती है। जब कन्नौज की प्रदक्षिणा के प्रसङ्ग में गंगा-तट पर मछलियों को मोती चुगाते हुए पृथ्वीराज का दूर से उसे प्रथम दर्शन प्राप्त होता है, तत्काल उसे इस नवागंतुक के सम्बन्ध में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता है; किन्तु किसी के मुख से पृथ्वीराज का इस समय नाम सुनते ही उसके शरीर में प्रेम के सात्विक अनुभाव प्रकट हो जाते हैं:—

सुनि स्त्र सुंदरि जम्भ तन स्वेद कंप सुर भंग।
मनु कमलिनि कल संभरी अमित किरन तम रंग॥ (६.११)

यह उसका प्रेमिका का रूप है। उसको इस प्रकार प्रेम-कातर देख कर उसकी एक सखी जब उसे सतर्क करती है कि वह इस सम्बन्ध में आगे कदम तभी बढ़ाए जब उसे निश्चय हो जावे कि यह पृथ्वीराज है (६.१२), तब वह रुकती है। पृथ्वीराज का निश्चय कर इसके अनंतर संयोगिता की भेजी हुई एक सखी उसे संयोगिता से मिलाती है, और दोनों का पाणिग्रहण होता है। उसका वरण कर पृथ्वीराज जब जाने लगता है, उसको विदाई का पान देते हुए वह कह उठती है, "संयोगिता की रक्षा करो! हे योगिनीपुरेश, तुम्हारी जय हो, जय हो! सभी प्रकार से [तुम्हारे जाने के] निषेध का जो तांबूल है, उसे ग्रहण करो!"

पायात् पंग पुत्रीय जयति जयति योगिनि पुरेसं।
सर्वं विधि निषेधस्य यः तंबोलस्य समादार्थं॥ (६.१७)

किन्तु वही प्रेमिका, जिसकी कामाग्नि प्रेमी के पाणि-स्पर्श तथा दर्शन से संदीप्त हो चुकी थी, जिसने प्रेमी के चले जाने पर मन छोटा कर लिया था, जिस प्रकार जल के न रहने पर मछली का हो जाता है (६.२५), बार-बार जिसकी आँखें जाते हुए प्रेमी को देखने के लिए गवाक्षों में जा लगती थीं, जो सखियों के समझाने पर भी चुपचाप उसी प्रकार व्यथित हो रही थी जैसे चातकी पावस को बिताती है, (६.२६) जो अपने विरह-दाह को शीतल करने के लिए शरीर में चन्दन का लेप कर रही थी, जो लज्जापूर्वक अपने नेत्रों को बार-बार अंचल से ढँक रही थी, कि उसकी प्रेमातुरता प्रकट न हो (६.२७), जिसके विरह ताप का निवारण करने में सोम, अमृत और कमल भी व्यर्थ हो रहे थे (६.२८), जब पृथ्वीराज को पुनः आते देखकर यह समझती है कि वह युद्ध से

विमुख होकर अपनी प्रेमिका के पास आ रहा है, सिर पीट लेती है और कह उठती है, "जिस प्रिय जन की ओर लोक की उँगलियाँ उठें, उस प्रियजन से क्या काम !"

जिहि प्रिय तन अंगलि फिरइ तिहिं प्रियजन कहा कज्ज । (६.३०)

यह संयोगिता का वीराङ्गना का रूप है। सामन्तगण उसे बहुतेरा समझा रहे हैं, और उस मदन-शर से विनष्टा के प्राण एक क्षण के लिए दयित (प्रिय पति) के प्राणों से अभिन्न भी हो रहे हैं, किन्तु उस के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहते हैं :—

मदन सरालति विनष्ठा निमिषि इहत प्रांन प्रांनेन ।
नयन प्रवाहति विनष्ठा दिवा कथय कथा ॥ (६.३२)

और जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि पृथ्वीराज युद्ध में जा रहा है, केवल उसे लेने के लिए आया हुआ है, हर्ष से पूरित होने के कारण उसका गला भर जाता है और वह पृथ्वीराज के साथ घोड़े की पीठ पर जा बैठती है :—

सुन्दरि सोचि समच्छिम गह गह कंठ भरि ।
तबहि प्रान प्रथिराज त षंचिय बाहु करि ।
दिय हय पुट्ठिय भार सुसब्ब सुलष्पिनछ ।
करति तुरंग सुरंग स पुच्छिछत बछ्छनछ ॥ (६.३४)

युद्ध के अन्तर्गत हमें उसका पत्नी का स्निग्ध मधुर रूप दिखाई पड़ता है जब प्रथम दिन के युद्ध के अनन्तर रात्रि के आगमन पर तारिकाओं के [हर्ष के] लिए इन्दु का उदय होता है, और नील कमल खिलता है, और नव विरही मिलकर नव स्नेह के नव जल (अश्रु) का रुदन करते दिखाई पड़ते हैं। वे आभूषणों को समीप ही पड़ा रहने देते हैं, उन्हें धारण नहीं करते हैं; फिर भी वे परस्पर मिलकर मृदु मंगल मनाते हुए मन में सभी प्रकार के मनोर्थ करते हैं :—

पेषाइ कउ उयउ इंदु इंदीवर बहुयउ ।
नव बिरही नव नेह नव जल नय रुदुययउ ।
भूषन सोभ समीपनि मंडित मंडि तन ।
मिलि मृदु मंगल कीन मनोरथ सब्ब मन ॥ (६.११)

किन्तु दिल्ली पहुँच कर यही संयोगिता एकदम परिवर्तित हो जाती है और उसका विलासिनी का यह रूप हमारे सामने आता है (९.१-८), जो पृथ्वीराज के सर्वनाश का कारण होता है : वह संयोगिता जो किसी समय पृथ्वीराज का वरण करने के लिए सौ जन्म ग्रहण करने को उद्यत थी (२.११), जीवन की सार्थकता काम-केलि में मानने लगती है; और उस मानिनी की प्रौढ़ रति में पृथ्वीराज भी इस प्रकार दीन और दुनिया को भुला देता है कि उसे दिन-रात की सुधि नहीं रहती है, जिसके परिणाम-स्वरूप उसके गुरु, बांधव, भृत्यादि की गति विपरीत हो जाती है :—

इह बिधि बिलसि बिलास असार सुसार किअ ।
बहु सुष भोग संजोगि सोइ प्रथिराज जिअ ।
अह निसि सुध्धि न जानहि मानति प्रौढ़ रति ।
गुरु बंधव भृत्त लोइ भई विपरीत गति ॥ (९.८)

ऋतुएँ आती हैं और चली जाती हैं, संयोगिता उनमें पृथ्वीराज द्वारा भोगाश्रित होती रहती है (९.९), उसका प्रिय (पति) कहीं जाने को होता है तो वह ऋतु की रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए उसे रोक लेती है (९.१३), वह कह उठती है कि जो तरुणी बाला है, वह निष्पत्रपत्र नलिनी के सदृश ऐसी दीन हो रही है कि क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकती है; कान्त के जाते ही वह विरह-वारण से अपनी शरीर-वाटिका को ध्वस्त होने देना नहीं गवारा कर सकती है :—

रोमाली वन भीर जिध्य वरगे गिरि रंग नारायते।
पल्लव पीन कुचानि जानि लयला फुंकार झुंकारये।
शिशिरे सर्वरि बारुणे च विरहा सम हृदय विहारये।
माकांत मृगवध्य छिव गमने किं देव उच्चारये॥ (९.२४)

इसी समय पृथ्वीराज पर शहाबुद्दीन आक्रमण कर देता है। चन्द तथा गुरुराज पृथ्वीराज को उस विलास-निद्रा से जगाते हैं, तब इस संयोगिता का कामिनी रूप प्रकट होता है। जो संयोगिता पृथ्वीराज को कन्नौज के युद्ध में अपनी ओर वापस आता देखकर क्षुब्ध हुई थी, और जिसने कहा था:—

जिहि प्रिय तन अंगलि फिरइ तिहि प्रियजन कहा कज्ज। (६.३०)

वही इस भयानक स्थिति में जीवन की सार्थकता काम को तुष्ट करने में बताती है। पृथ्वीराज से वह कहती है कि वही धन धन है जिसका भोग किया जा सके, वही सुख सुख है जिसमें काम का आरोह हो, काम-विहीन जीवन में संसार मरण-तुल्य है; प्रतिदिन दिनकर आता है, चन्द्र आता है, दिन होता है, रात होती है, किन्तु मनुष्य का जीवन तो एक दिन समाप्त हो जाता है; धरा यदि पृथ्वीराज की अर्द्धाङ्गिनी है, तो संयोगिता भी तो है, उसका अर्द्धाङ्ग होना भी उसे सार्थक करना चाहिए; हंस और हंसिनी अन्त तक साथ रहते हैं, इतना ही नहीं, सर और पंकज जैसे जड़ पदार्थ भी अन्त तक साथ निभाते हैं:—

कहु सु प्रियह पउमिनिय कंत धनु धरउ तउ न धनु।
सुष सुषमार आरोहु असर संसार मरन मन।
दिन दिनियर दिन चन्दु रयनि दिन दिन ही आवहि।
जंतु जंतु इह रमनि सवन लग्गवि समझावहि।
अरधंग धरा अरधंग इम अरधंगी अरधंग भरि।
जस हंस हंस तह हंसिनी [सर सुक्कइ] पंकज न परि॥ (१०.२५)

पृथ्वीराज इस पर जी कड़ाकर ठीक ही कहता है कि उसे आश्चर्य है कि जिसने उसके बाहुओं की पूजा की थी, वह मुग्धा आज रतिनाथ की बातें कर रही है:—

सुनि प्रिय प्रिय विहस्यौ वदन किय जिय निर्भय पाथ।
बाहू पुजउ वरह तुह कहिस मुग्ध रतिनाथ॥ (१०.२६)

और 'रासो' का कवि उचित ही इस प्रसंग के बाद एक बार भी इस नारी का स्मरण नहीं करता है।

चन्द

चन्द का प्रथम आगमन कथा में कैंवास-वध के अनन्तर होता है। आखेट से लौटकर जब पृथ्वीराज सभा बुलाता है, चन्द उसमें उपस्थित होकर राजा को आशीर्वाद देता है (३.१९)। इसके पूर्व केवल यह कथन आता है कि कैंवास-वध की सारी घटना सरस्वती ने उसको स्वप्न में सुना दी थी (३.१४)। इस प्रथम दर्शन में ही चन्द एक निर्भीक व्यक्ति ज्ञात होता है; कवि कहता कि कैंवास-वध के बारे में चन्द से पृथ्वीराज का प्रश्न करना और उससे उत्तर के लिए हठ करना फणीन्द्र के मुख में उँगली देने के सदृश था:—

हठि लग्गउ चहुआन त्रिय अंगुलि मुषह फनिंदु।
तिहु पुरि तुअ मति संचरइ सु कहे बनइ कवि चंदु॥ (३.२५)

और चन्द अपने प्राणों की बाजी लगा कर उसी प्रकार उत्तर भी देता है:—

सेस सिरप्परि सूर तर जइ पुच्छइ त्रिय एस।
दोहूं बांकि मंडन मरनु कहइ तउ कव्वु कहेस॥ (३.२६)

इस दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि उसे काव्य में जो 'चन्ड चन्द' (५.१३) या 'कविचंडिय' (३.१९) कहा गया है, वह सर्वथा तथ्यपूर्ण है। वह उसी का साहस था और पृथ्वीराज ने उसी को जैसे इसका अधिकार भी दे रखा था कि पृथ्वीराज जैसे उग्र स्वभाव के शासक को जिस प्रकार वह चाहे मार्ग पर ला सकता था और कथा भर में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं; यथा :

पृथ्वीराज को दिल्ली की ओर मोड़ने में सामन्तों के अकृतकार्य होने पर इस कार्य में वही कृतकार्य होता है, और पृथ्वीराज ठीक ही कहता है :—

मिटयउ न आइ कहणों वय कवि चन्द सार सामंत। (८.७)

विलास-मग्न पृथ्वीराज को वही कहला भेजता है :—

गोरी रत्तउ तुअ धरा तुं गोरी अनुरत्त। (१०.२०)

और उसको लिख भेजता है कि प्राण तो अपने अधीन है, यदि और कुछ उससे नहीं हो सकता तो उसके द्वारा ही उद्योग करके वह प्राणों की रक्षा करे और सामन्तों से वह मन्त्र करे कि दिल्ली की धरा उसके कारण न डूब जावे :—

अप्पज्ज प्राण चहुआन सुनि प्रान रषिक' प्रारंभ करि।
सामंत नहीं सामंत करि जिनि बोरहु डिल्लिय सु धरि॥ (१०.२२)

गजनी पहुँच कर पृथ्वीराज को प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित करने पर उसको जब आगा-पीछा करते देखता है, वह कह उठता है :—

अरे नरिंद दा बंध दिल कढ्ढउ सुर सढउ।
अप्पु तेज संमीर धरा लायासु न पंचउ।
जरा जाल बंधियउ काल आनन महि पिल्लइ।
हंसुह हंसुह अजय जपि स्वर वर कर मिल्लइ।
जिम चलइ हंन हंसी सबिल छंडि मोह तन पंजरहि।
प्रथीराज आज लिहिं मत्ति करि करि नरिंद जिनि उच्चरहि॥ (१२.३८)

और राजा के मन में अन्त तक दुविधा शेष देखकर कह उठता है कि कैंवास के साथ उसने जो कुछ किया था, वही तो उसके साथ भी हो रहा था, जिस विलासिता के कारण कैंवास के प्राण उसने लिए थे, उसी विलासिता का परिणाम अब उसे स्वयं भोगना पड़ रहा था, फिर क्यों वह आगा-पीछा वह कर रहा था :—

प्रथमिराज कंमास बीन दिठ सुहि गहहि कर।
जिन विसमउ मन करहि करहि सुअपथि अप्पु बर।
जि कछु दिअउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पावउ।
सोइ संमरी नरेसु दुहि न अम्मरपुर आयउ।
विधना विधान मेटइ कवन हीनमान दिन पाइयइ।
सर एक कोरि संभरि धनी सत्तहि सत्रुह गमाइयइ॥ (१२.४६)

ऐसे निर्भीक किन्तु प्रबुद्ध सहचर दुर्लभ होते हैं; यह पृथ्वीराज का सौभाग्य था कि उसे ऐसा कवि-मित्र प्राप्त हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वीराज इस रचना में जो कुछ है, उसका अधिकांश वह चन्द के कारण है।

सुख में, दुःख में, हर्ष में और विषाद में वह हर जगह पृथ्वीराज के साथ है, यथा :

जयचन्द के किए अपमान का प्रतीकार करने के लिए जब पृथ्वीराज प्राणोत्सर्ग का संकल्प करता है, तो दोनों गले मिलकर खूब रोते हैं और चन्द हर्षपूर्वक उसका समर्थन करता है :—

दोइ कंठ लग्गिय गहन नयनह जल गल म्हांसु।
अब जीवन बंछिहि अधिक कहि कवि कोन सवासु॥

मानवइ कवि चंदु जिय निप किय संच बिचार।
मन गरुअर सिर इरुअ इह जीवन इरुअ सिर भार ॥ (३.४२)

और कह उठता है :—

धरि बरु पंगु अगाह अरु यह निहंडिहई।
इत उपहास विलास न मान यसुकिहई ॥ (३.४३)

वस्तुतः चन्द से अलग करके पृथ्वीराज को देखा नहीं जा सकता है।

अन्य पात्र

कथा के शेष पात्र विकसित नहीं किए गए हैं। जयचन्द और शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के अच्छे और समर्थ प्रतिद्वन्द्वी हैं, किन्तु उनमें उस प्रकार की जान-तोड़ वीरता का विकास कवि नहीं करता है जैसी कथा-नायक में करता है, किन्तु वे कापुरुष भी नहीं हैं।

जयचन्द और पृथ्वीराज की तुलना करते हुए कवि ने एक स्थान पर ठीक ही कहा है कि पृथ्वीराज वास्तविक शूर है, जब कि जयचन्द अपनी पारसीक सेना से शूर बना हुआ है :—

सत भट किरवा समूरड सुरंगो अरेन जां न आयेस।
जोगिनिपुर पति सूरो पारस मिलि पंगु रायेस ॥ (८.८)

शहाबुद्दीन में कवि ने वीरता का वैसा विकास नहीं किया है जैसा नृशंसता का। वह पृथ्वीराज को पराजित करने के बाद न केवल उसे बंदी करता है, उसकी आँखें तक निकलवा लेता है—उस पृथ्वीराज की जिसने उसे बन्दी करके भी अनेक बार छोड़ दिया था (११.७)। और काव्य में जब पाठक देखता है कि इस कृतघ्न और नृशंस शत्रु का चन्द युक्तियों से कथा-नायक द्वारा वध कराता है, यद्यपि वह स्वयं भी मारा जाता है, उसे वह सन्तोषपूर्ण आनन्द प्राप्त होता है जो भारतीय साहित्य में काव्य का लक्ष्य माना गया है।

पृथ्वीराज के समस्त सामंत उसी के अनुरूप वीर हैं। उनके वीर कृत्यों के वर्णन में अतिशयोक्ति देखी जा सकती है, किन्तु वह अतिशयोक्ति भी औचित्यपूर्ण लगती है : हरसिंह, कनकबड़ गूजर, निडर राठौर, कन्ह, अल्हन, अचलेस, विझ, सलष, लषन और पाहार तोमर के प्राणोत्सर्ग, जो अपने राजा की रक्षा में उन्होंने जयचन्द की विशाल सेना को रोकते हुए किए हैं (८.११-३५), अद्भुत हैं।

इस वीर काव्य में एकमात्र कैंवास ऐसा अभागा पात्र है, जिसका केवल कालिमापूर्ण चरित्र विकसित किया गया है (सर्ग ३)।

—:*:—

२०. 'पृथ्वीराज रासो' की रस-कल्पना

सम्पूर्ण काव्य का अंगी रस वीर है, ऊपर आये हुए 'पृथ्वीराज रासो की प्रबन्ध-कल्पना' तथा 'पृथ्वीराज रासो की चरित्र-कल्पना' शीर्षकों से यह बात स्वतः प्रकट हुई होगी। किन्तु अन्य रस भी इसमें यथास्थान अंग बन कर आते हैं। सारी रचना में पृथ्वीराज, उसके सामन्तों और चन्द के कथन पाठक के मन को उत्साह की उमड़ती हुई नदी में डाल देते हैं, जिसमें वह डूबता-उतराता आगे बढ़ता जाता है, उनके अतिमानवीय कृत्य उसे आश्चर्य-चकित करते रहते हैं, संयोगिता के चरित्र में उसे पूर्वानुराग, मिलन, विरह और संभोगरति के अति मनोरम चित्र मिलते हैं, आदर्श के लिए जीवन की उपेक्षा पूर्वक बलिदान की भावना रचना भर में स्थान-स्थान पर निर्वेद की सृष्टि करती है, रचना के अंतिम अंशों में शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए कथा-नायक से की गई चन्द की सारी प्रेरणा निर्वेद का सहारा लिए चलती है, कैंवास के शव के लिए उसकी विधवा पत्नी की याचना और उसके साथ उसका चितारोहण करुणा जाग्रत करते हैं, युद्ध की विभीषिका का कहीं-कहीं पर जो वर्णन होता है, वह भयानक की अच्छी सृष्टि करता है, युद्ध में संहार के वर्णन कहीं-कहीं बीभत्स की झलक दिखाते हैं, कैंवास-वध में पृथ्वीराज की क्रोध युक्त मुद्रा किंचित् रौद्र का दृश्य उपस्थित करती है। केवल हास्य चंड (उग्र) चन्द द्वारा कदाचित् स्वभावतः उपेक्षित हुआ है, अन्यथा काव्य के नव रस इस रचना में अपने प्रकृत रूप में अनायास आए हुए मिलते हैं।

रचना की ठुर अन्तिम पंक्तियों में उसके कवि का किया हुआ यह कथन कि यह अपूर्व रासो नवरसों से सरस है, इसके छन्दों को चन्द ने अमृत के समान किया है, और यह शृंगार, वीर, करुणा, बीभत्स, भय, अद्भुत और शांत रसों से संयुक्त है :—

> रासउ असंभु नवरस सरस छंदु चंदु किअ अमिअ सम।
> शृंगार वीर करुणा बिभछ भय अद्भुत्तह संत सम॥

अक्षरशः सत्य है। अनेक उतार-चढ़ाव के साथ, जो कवि का अन्य रसों का समावेश करने का कवि को पर्याप्त अवसर देते हैं, वीर का इतना अद्भुत परिपाक समूचे हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता है।

—:#:—

२१. 'पृथ्वीराज रासो' के वर्णन

'रासो' एक वर्णन-सम्पन्न काव्य है, और ये वर्णन प्रायः सुन्दर हैं। कवि के वर्णन-कौशल और तत्सम्बन्धी उसकी मुख्य प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए इन्हें निम्नलिखित वर्गों में रक्खा जा सकता है:—

(१) युद्ध-सज्जा तथा युद्ध-वर्णन
(२) नख-शिख-वर्णन
(३) सामान्य प्रकृति-वर्णन
(४) षड् ऋतु-वर्णन
(५) अन्य वर्णन

नीचे यथाक्रम इन पर विचार किया जाएगा।

(१) युद्ध-वर्णन

रचना में दो युद्ध आते हैं, प्रथम है पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध, और द्वितीय है शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध।

जयचन्द की युद्ध-सज्जा का वर्णन करते हुए प्रथम के प्रसंग में सब से पहले हमें अश्व-सेना का वर्णन मिलता है (६. ५)। इसमें कई जातियों के अश्वों का वर्णन किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं लाहोर के लोहित वर्ण के तुर्की, सिन्धु के पश्चिम के देशों के सिंधी, अरबी, कच्छी, ताज़ी और पंडुवे। कहीं-कहीं पर इस वर्णन में अच्छी उक्तियाँ मिलती हैं: यथा उनकी चलाा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह ऐसी लगती है मानो आउज्ज (ढोल की जाति के एक प्रकार के वाद्य) पर [दोनों] हाथों से ताल बजाए जा रहे हों:—

साहियं बग्ग कहइ जि तारा।
मनउ आवझाइ हथ्थ बज्जंति तारा॥ (६.५. ५-६)

सुसज्जित होकर उनके बढ़ने का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वे ऐसे लगते हैं मानो उच्च (श्रेष्ठ) उपमा हो जो [कवि के मानस में] आगे बढ़ती चली आ रही हो:—

राग मग्गे नहीं सुधि उरक्की।
मनउ उप्पमा उच्च आवइ तुरक्की॥ (६.५.१९-२०)

शेष वर्णन सामान्य है।

इसी प्रकार अन्यत्र हाथियों की सेना का वर्णन किया गया है (७. १०)। वर्णित जातियाँ हैं: सिंहली तथा सिंधी। वर्णन सामान्य है।

चना के सर्ग ७ का पूर्वार्द्ध युद्ध की तैयारी के वर्णन से भरा है। इस वर्णन प्रायः अतिशयोक्ति का आश्रय लिया गया है, यथा निम्नलिखित छन्द में :-

य दिन होल रद्दिवर चंपि चहुआन गहन रह।
सउ उप्परि सउ सहस बीह अगनित्त छत्र हर।
छुटि गिर जस थल भरित भग्गि जल गंग प्रवाहह।
सह अच्छरि अच्छहि बिमान सुरलोक नाग सह।
कहि चंद दंद दुहु दलि भयउ धन जिमि सिर सारद भरिग।
भर सेस हरी हर ब्रह्म तन तिहि समाधि तिहि दिन टरिग॥

इसी प्रकार की कल्पना निम्नलिखित पंक्तियों में भी मिलती है:—

सज्जं तं धूम धूमे सुनतं।
कंपियं तीनपुर बेलि पत्तं।
डमरु डर डह किय गवरि कत्तं।
जानियं जोन जोगादि अंतं।
किम किमे सेस सिर भार रहियं।
किमे उच्चासु रवि रथ्थ गहियं।
कमल सुत कमल नहिं अंत लहियं।
संकियं ब्रह्म ब्रह्मांड गहियं।
राम रावन्न कपि जिन बहिता।
सकति सुर मद्दिप बलिदान कहिता।
कंस सिसुपाल दुरजवन प्रभुता।
भामिया जैन भय लंपि सुरता।

किन्तु इसी वर्णन में सादृश्य-प्रधान उक्तियाँ सुन्दर हैं, यथा :—

सेन सनाह नव रूप रंगा।
मनउ झिल्लइवह ति त्रिनेत्र गंगा।
टोप टंकार दीसे उतंगा।
मनउ बद्दले पंति बंधी बिहंगा।
जिरह जंगीन गहि अंगि काई।
मनउ कंठ कंथीन गोरष्ष पाई।
दुष्षरे हथ्थ करगे सुहाई।
भाय करगइ न थक्कइ थकाई।
राग जरजीन बानइत अट्ठे।
देषिकइ जानु जोगिंद कट्ठे।

इस प्रसंग में युद्ध-वाद्यों का जो वर्णन है, वह भी सुन्दर है; 'रासो'-का
श डालने के कारण वह उपयोगी भी है :—

नीसान सादं सि बाजे सुचंगा।
दिसा देस दुक्किल्ल कच्ची कपंगा।
तबल्ल तंदूर अंगी मृदंगा।
मनउ नृत्य नारद कट्ठे प्रसंगा।
बजहि घंस खिसतार बद्दू रंग रंगा।

जिने माटि कर सथ्थि लग्गे कुरंगा ।
वीर रुद्दीर सा साम श्रृंगा ।
नचइ ईस सीसं धरो जासु गंगा ।
लिधु सहनाइ श्रवने उतंगा ।
सुने अच्छरिन अच्छ सज्जइ सुअंगा ।
नफेरी नवरंग सारंग भेरी ।
मनउ नृत्य नइ ईंद्र आरंभ केरी ।
लिधु सावइअलं गेन भेरी ।
झले आवइअ हथ्थ करेरी ।
उच्छरहि धाउ घन घंट घेरी ।
भिलिता अधिक वध्धे कुवेरी ।
उप्पमा चंद भव नैन अग्गी ।
मनउ राम रावन्न हथ्थेव लग्गी । (७. ६. ३९–५६)

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में युद्धारंभ से उठी हुई धूल का जो अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है, वह मनोरम है :—

हयग्गयं नरम्भरं ।
उलंत्रियं जलध्धरं ।
दिसा निसान वज्जये ।
समुद्द सद्द लज्जये ।
रजोद मद्द उप्पड़ो ।
व्योम पंक संकुड़ो ।
सद्दाक बाल रंगिनी ।
चकी चक वियोगिनी ।
पयाल पाल पल्लये ।
दिगंत मंत हल्लये ।
अनंद ते निसाचरे ।
कुकपि तुंड साचरे ।
अगंत गंग कुब्बये ।
समुद्द सूल फुल्लये ।
प्रवत्ति छत्त छत्तये ।
सरोज मोज हल्लये ।
अपंड रेन मंडने ।
हरष्फि इंदु छंडने ॥ (७. १२. १–१८)

यद्यपि इसी प्रसंग में सरोवर के रूपक का आश्रय लेते हुए युद्ध-स्थल का जो वर्णन किया गया है, वह प्रायः रूढ़ि-मुक्त है:—

सरं ओणि रंग पलं पारि पंकं ।
वजइ मंस पंचि गंधि धारि करंकं ।
हुअं ढाल कोलंति हालं ति देसं ।
गये हंस नंसीय गेहे सुवेसं ।

परे पानि अंबं धरंगं निवारे।
ममउ मछूछ कछूछं तरे नीर मारे।
सिर सा सरोजं कचे सा सिवाली।
गहे अंत अध्धी सु सोहै मराली।
तहं रंभ रत्तं भरतं विचीरं।
बलं स्याम स्वेतं कत नीर पीरं। (७. १७.२७-३६)

द्वितीय युद्ध अपेक्षाकृत बहुत कम विस्तृत है, और इसी प्रकार उसका वर्णन भी संक्षिप्त है। सेना के प्रमाण से उठी रेणु के आडम्बर का वर्णन इसमें बहुत सुन्दर वर्णन हुआ है : दिन में रात्रि का आगमन समझकर चकवी-चकवे और सारस-युग्म को जो भ्रम होता बताया गया है, वह प्रभावपूर्ण है, और सरोवर के जल में तारागण के प्रतिबिम्ब का जो वर्णन किया गया है, वह संश्लिष्ट चित्रण प्रणाली के कारण अत्यन्त सरस हुआ है :—

चक्कोय चक्क सुविकिय चलंति।
रस सरस दरस सारस मिलंति।
प्रतिबिंब अंभ अंबरन तार।
सुगलइ न सुगति मंजरि सिवार।
चकित सुचित्त मन मित्त मित्त।
सर उभय भमिय आनंद चित्त।
दुष्प आदष्प आलोल नयन।
चिलरीय कोक सुरमग्ग वयन।
हसि चक्क चक्कि सम कहिग छंदु।
माननिय मान यामिनिय चंदु। (११.१०.११-२०)

शेष युद्ध-वर्णन साधारण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रासो' के युद्ध-वर्णन अतिशयोक्तियों और परंपरा-मुक्त कल्पनाओं से युक्त होते हुए भी सुंदर हैं और कहीं-कहीं पर उनमें कवि ने कल्पना का आश्रय लेते हुए संश्लिष्ट चित्रण का भी यत्न किया है। तथ्य-प्रधानता की नहीं, उक्ति-प्रधानता की प्रवृत्ति प्रमुख है।

(२) नख-शिख वर्णन

'रासो' के वर्णनों में नख-शिख-वर्णन अपनी विशेषता रखते हैं : वे परंपरा-मुक्त कम हैं, कल्पना की सरसता के साथ-साथ वर्ण्य पात्र के व्यक्तित्व का ध्यान उनमें कवि को सदैव रहा है।

नायिका संयोगिता का नख-शिख कथा के पूर्वार्द्ध में नहीं आता है, कारण यह है कि 'रासो' के कवि ने कथा-नायक पृथ्वीराज को उसके रूप अथवा गुणों के कारण उस पर अनुरक्त नहीं किया है, वह तो केवल संयोगिता के प्रेमानुष्ठान के कारण उससे परिणय करता है। किंतु बाद में पृथ्वीराज के केलि विलास के प्रसंग में वह उसका वर्णन करता है। इस वर्णन में कुछ कल्पनाएँ सरस हैं, यथा:

नितंब पर पड़ी हुए शृंखला को कवि कामदेव के धनुष की प्रत्यंचा कहता है :—

रसनेव रंज नितंबिनी।
कुसुमेष एष विलंबिनी। (१०.११.११-१२)

उसके हृदय को वह मदन का भवन कहता है, जहाँ वह निरस्त होकर (निकाला जाकर) छिपने के लिए आगया है :—

हिय भवन मयन ति संधयऊ।
भज गहन गहन निरंधयऊ। (१०.११.१७-१८)

उसके अधरों को वह पक्व बिंब कहता है, जिनके शुक-सारिकादि से खंडित होने का भय बना रहता है :—

अधर पक्क सु बिंबन।
सुक सारि आलिन षंडनं। (१०.११.२५-२६)

उसके नेत्रों के अपांगों को वह सित-असित उररि (बकरे) अथवा उड़ने का अभ्यास करते हुए खंजन-वत्स कहता है:—

सित असित उररि अपंगयो।
अभ्भिसहिं षंजन बछ्छयो।

उसके देदीप्यमान ललाट पर लगे हुए मृगमद के तिलक की उपमा वह सिंधु से निकले हुए नवीन चंद्रमा की गोद में बैठे हुए इन्दुपुत्र (मृग) से करता है:—

तस मध्य मृगमद विंदु जा।
जस इंदु नंद ति सिंधुजा। (१०.११.४१-४२)

'रासो' के कवि ने कथा के प्रारम्भ में ही संयोगिता की वयस्का सहचरियों का जो वर्णन किया है, वह भी सुन्दर है, और उनकी जो कल्पना वसंत-प्रियाओं के रूप में की है, वह दर्शनीय है :—

अधररत्त पत्त पल्लव सुवास।
मंजरिय तिलक षंजरिय पास।
अलि अलक कंठ कलयंठ मंत।
संजोगि भोग बहु मधु वसंत। (२.५.१-२०)

आगे चलकर उसने कन्नौज-वर्णन के प्रसंग में जल भरती हुई सुन्दरियों का वर्णन किया है। इस वर्णन में कुछ कल्पनाएँ चमत्कारपूर्ण हैं, यथा:

कवि कहता है कि उनकी कटि में जो श्रृंखला पड़ी हुई है, उसके कारण ऐसा लगता है मानो वे वनिताएँ सिंहिनियाँ हों:—

कटित्त सोभ सेहरी।
वनित्त जानि केहरी। (४.१४.९-१०)

उनकी नासिका की वह बँधे हुए क्रीड़ा-कीर से तुलना करते हुए वह कहता है कि वे उनके [बिंब-तुल्य] रक्त अधरों को खण्डित नहीं कर रहे हैं—इसलिए वे क्रीडा-कीर और वह भी बँधे हुए क्रीडा-कीर उचित ही कहे गए हैं:—

अधर आरत्त रत्तये।
सुकील कीर बंधये। (४.१४.२१-२२)

पृथ्वीराज के इस कथन पर कि ये सुन्दरियाँ तो दासियाँ थीं, चन्द ने उन नागरियों के रूप का वर्णन नहीं किया है जो असूर्यम्पश्या हैं, वह स्वकीयाओं के रूप में कन्नौज की अन्य नागरी नारियों का वर्णन करता है। इस वर्णन में तुलनात्मक तथ्यपूर्णता दर्शनीय है; यथा:

जहाँ उसने जल भरने वाली सुन्दरियों के कटाक्षों का वर्णन किया है, उसने कहा:—

दुराय कोय लोचने।
प्रतष्य काम मोचने।
अवष्यि ओट भौंहये।
चकंति सोह सौंहये। (४.१४.२१-२२)

किंतु इन स्वकीयाओं के नेत्रों को उसने निर्वात दीप के समान अचंचल कहा है:—

पंगुरे अयन ने नयन दीसं ।
बिचि जोव सारंग निवांत रीसं । (४.२०.९-१०)

कवि ने कहा है कि ये दिव्य-दर्शना हैं और धीमे स्वर में बोलती हैं:—

दिव्य दरसी लिहां ढिल्ल बोलं ।

उनके चरण-नखों की निर्मलता का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि उनमें उनके स्वकीय पतियों का जो प्रतिबिंब पड़ रहा है, वह ऐसा लगता है मानो उन्होंने मानकर रक्खा हो और उनके पति उनके चरणों में पड़े हों:—

नषं निर्मलं दर्पनं भाव दीसं ।
समीपं सुकीयं कियं मानरीसं । (४.२०.३५-३६)

यहाँ तक मानवीय नख-शिख वर्णन की बात रही; सरस्वती के नख-शिख-वर्णन में 'रासो' के कवि के देव-विषयक नख-शिख वर्णन का भी एक उदाहरण मिल जाता है। यह नख-शिख नहीं, शिख-नख है, अर्थात् वर्णन शिखा से नख की ओर बढ़ता है। यह वर्णन भी सुन्दर है; यथा:

कपोलों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे प्रातःकाल में उदित उस चन्द्रमा के समान हैं जो राहु के कलंक से बचने के लिए [अपने मृगरथ के] जुए को बहुत खींच रहा हो—संश्लिष्ट कल्पना दर्शनीय है:—

कपोल रेख गातयो ।
उवंत इंदु प्रातयो ।
बभूव जुव पंचये ।
कलंक राह बंचये । (३.१७.७-१०)

नेत्रों की उपमा दो छोटे वारि-खंजनों से दी गई है, जो रूप जल में तैर रहे हों:—

उलंमि वारि खंजयो ।
तिरंति रूप रंजयो । (३.१७.१३-१४)

ग्रीवा पर पड़ी हुई मुक्ता माल की तुलना सुमेरु पर गिरती हुई गङ्गा की धारा से की गई है:—

सुग्रीव कंठ मुत्तयो ।
सुमेर गंग पत्तयो । (७.१४.१९-२०)

उसके नखों को आर्द्र और रक्षित कहा गया है—वीणा-वादन के लिए रक्षित नखों की आवश्यकता को कवि ने ध्यान में रखा है:—

नषाहि अद्द रछियं ।
धरंति लच्छ कच्छयं । (७.१४.२३-२४)

इन नख-शिख-वर्णनों से ज्ञात होता है कि 'रासो' के कवि ने सर्वत्र सुरुचि और कल्पना से काम लिया है; उसके नख-शिख केवल परंपरा-भुक्त और निर्जीव नहीं हैं, उनमें सजीवता है और वे वर्ण्य पात्र को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किए गए हैं।

(३) सामान्य प्रकृति-वर्णन

सामान्य प्रकृति वर्णन 'रासो' में अधिक नहीं है, किन्तु जितना है, सुन्दर है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

एक स्थान पर प्रातः काल की मद गज से तुलना करते हुए 'रासो' के कवि ने सुन्दर कल्पना की है—वह कहता है कि यह मद बिन्दु चुवाता हुआ मद गज का गण्डस्थल नहीं है वरन् [पुष्प चुवाती हुए] तरु शाखा है, यह नीचा जाने वाला शशि है न कि हाथी का निर्घाटित कुंभ है, उसी

प्रकार यह [पुष्पों पर गुञ्जार करने वाला] मधुकर-वृंद है न कि गज के मद से आकृष्ट अलिकुल है, [ऐसी उन्मत्तता कारिणी प्रातः काल की वेला में] तरुण प्राणों वाला राजा जयचन्द [रात्रि में जागने के कारण] लटपट पैर रखता हुआ आ पहुँचा :—

कांती भार दुरा सुरमंद गजं शाखा न गंडस्थलं।
उच्छं तुच्छ दुरा स सशि कमनं करि कुंभ सिद्धाद्दलं।
मधुरे स्याइ सकाइता अलिकुलं गुंजार गुंजा तहा।
तरुणे प्राण लटापटा पगपगं जयराज संप्रापता॥ (५.४१)

प्रभात और मद गज की तुलना की इस पृष्ठभूमि में रात्रि में किसी कामिनी के सुख-रति-समर में नींद को विस्मृत कर जगे हुए होने (५.३९-४०) के कारण लटपट पैर रखते हुए जयचन्द का जो चित्र कवि ने उपस्थित किया है, वह अपनी सरस व्यंजना के कारण अवश्य ही रमणीय बन गया है।

संध्या का वर्णन, इसी प्रकार, एक अन्य स्थान पर भावपूर्ण हुआ है; उसमें कवि ने संयोगिता की मनोस्थिति की जो व्यंजना संध्या के उपादानों को लेकर की है, वह कोमल हुई है। वह कहता है, 'मित्र (सूर्य) महोदधि में जा चुके थे, दिशाओं को तम ने ग्रस लिया था, पथिक-वधू की दृष्टि [उसके प्रियतम के] पथ में उसी प्रकार अविस्थित हो चुकी थी जैसी [खिंची हुई] चंग होती है, युवाओं और युवतियों की सुमति उसी प्रकार नष्ट हो चुकी थी जिस प्रकार रस-लुब्ध सारस अथवा [मधु-] मुग्ध मधुप की होती है :—

मित्त महोदधि मझ्झ दिसंत ग्रसंत तम।
पथिक वधू पथि दिट्ठ अट्ठिय चंग जिम।
जुव जन जुवती गंजि सुमत्ति अनंगमय।
जिमि सारसरसलुब्ध त मुग्ध मधुप्प लय॥ (७.२२)

बाद में रणक्षेत्र में गए पृथ्वीराज के आगमन की संध्या काल में प्रतीक्षा करती हुई संयोगिता के भावों की (७.२३) जो व्यंजना इस पृष्ठभूमि के योग से हुई, है वह अवश्य ही ललित हो उठी है।

जो ऋतु-वर्णन षड्ऋतु-वर्णन के रूप में मिलता है, उसके अतिरिक्त उल्लेखनीय ऋतु-वर्णन केवल एक स्थान पर आता है और वह वसंतागम का है। कल्पना शिशर पर वसंत के आक्रमण के रूप में की गई है, जिसमें शिशर पराजित होता है और वसंत विजयी :—

चलि चरा मग्ग इलि अंब मउर।
सिर ढरहि मनहुं मनमथ्थ चउंर।
चलि सीत मंद सुगंध बात।
पातक्क मनहुं बिरहिनि निपात।
कुहु कुहु करंति कलयंठि कोटि।
दक मिलइ मनहु अनबेग कोटि।
करि पल्लव पत्त लि रत्त नीक।
इलि चलहि मनहु मनमथ्थ पीक।
कुसुमेष कुसुम तेन धनुष साजि।
भृंगी सुपंति गुन गरुष गाजि।
संजर सुवास सुमनाह नेह।
बिहारबे बीर जुवजननि देह।

उपफ्लिअ कलिअ चंपक सरीप ।
प्रज्जलिअ अगद कंदर्प दीप ।
करवत्त केत केतकि सुकरि ।
विहरंति रत्त विवरंति छत्ति ।
परिरंभ अनिल कदली कपान ।
सिर धुनहि सरस सुनि जासु तान ।
अंकुलिय छाम अभिराम रम्य ।
नहु करइ पीय परदेस गम्य ।
फुल्लिग पलास तजि पत्त रत्त ।
रण रंग सिसिर जित्तउ वसंत । (२.५.२५-४६)

इस वर्णन में कवि ने प्रस्तुत विषय के साथ अप्रस्तुत का निर्वाह किस प्रकार सफलता पूर्वक किया है, यह स्वतः देखा जा सकता है।

फलतः सामान्य प्रकृति-वर्णन में भी 'रासो' का कवि सफल रहा है; उसने पृष्ठभूमि के रूप में जो प्रकृति-वर्णन किया है, वह अपनी अनुकूल व्यंजना के द्वारा रमणीय बन गया है, और इस वर्णन में उसने अप्रस्तुत की जो योजना की है वह भी सरस हुई है।

(४) षड्ऋतु-वर्णन

'रासो' का षड्ऋतु-वर्णन कथा-नायक और उसकी नव विवाहिता पत्नी के सम्भोग शृंगार का है। कथा-नायक उस नव विवाहिता को भोगायित कर रहा है, किंतु उसका जीवन युद्धों में बीता है, इसलिए वह उसके प्रेम-पाश से बार-बार निकल कर जाने का प्रयत्न करता है। नायिका ऋतुओं की रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए अपने प्रणयानुरोधों से उसे रोकती है, यही इस षड्ऋतु-वर्णन का वर्ण्य है। ऋतुओं का क्रम वसंत से प्रारम्भ होता है :—

सामग्गं कलधूत नूत शिखरा मधुलेहि मधुवेष्टिता ।
वाता सीत सुगंध मंद सरसा आलोल साचेष्टिता ।
कंठी कंठ कुलाहले मुकलया कामस्य उद्दीपनी ।
रत्ते रत्त वसंत पत्त सरसा संजोगि भोगाइते ॥ (९.९)

[जिस वसंत में तरु-] शिखरों पर [रंग-बिरंगे पुष्पों के कारण मानो] नूतन कलधूत (चाँदी-सोने) की समग्रता हो गई है और मधुकर मधु से आवेष्टित [हो रहे] हैं, वात शीतल, मंद, सुगंधित और सरस होकर चेष्टाओं में विशेष लोल हो रही है, कंठी (कोयलों) के कंठ के कोलाहल से मुकुलों (कलियों) में कामोद्दीपन हो रहा है और जो वसंत सरस [नवीन] पत्तों के कारण लाल हो रही है, ऐसे वसंत में संयोगिता [पृथ्वीराज के द्वारा] भोगायित हो रही है।

दीहा दिव्व सरंग कोप अनिला आवर्त्त मित्ताकरं ।
रेने सेन दिसान थान मलिना गोमग्ग आडंबरं ।
नीरे नीर अपीन छीन छपया तपया तरुण्या तनं ।
मत्ता चंदन चंद मंद किरणा सु ग्रीष्म आलेचनं ॥ (९.१०)

"[जिस ग्रीष्म में] दिन दिव्य (तप्त लौहादि) [के समान] हो रहे हैं, अनिल (वायु) कुपित हो रही है, मित्र (सूर्य) के करों से उत्पन्न आवर्त्त (बवंडर) उठने लगे हैं, रेणु की सेनाओं से दिशाएँ और स्थान मलिन हो रहे हैं, [यथा] गोमार्ग [की धूल] के आडंबर से हों, जहाँ जो भी नीर था, वह अपीन (क्षीण) हो गया है, रात्रि क्षीण हो गई है और तप (गर्मी) का तनु तरुण

हो गया है, मलय [समीर], चंदन और चन्द्रमा की मंद किरणें ही [ऐसे] ग्रीष्म में [मुरझाते हुए प्राणों का] सिंचन करने वाले हो रहे हैं।"

आले बद्दल मत्त मत्त विषया दामिन्नि दामायते।
दादुल्ले इल सोर सोर सरसा पप्पीहान् चीहायते।
श्रृंगाराय वसुन्धरा ललितया सलिता समुद्रायते।
यामिन्या सम वासरे विसरता प्रावृट् पश्यामिते॥ (९.११)

"[जल से] आर्द्र बादल विषय में मत्त हो रहे हैं, और [उनकी प्रिया] दामिनी दमक रही है; दादुरदल मोरों के साथ शोर कर रहा है, और पपीहा चीत्कार कर रहा है; वसुन्धरा ने लालित्यपूर्वक श्रृंगार कर लिया है, और सरिता [उमड़ कर] समुद्र बन रही है; वासर (दिन) भी [अपर्याप्त प्रकाश के कारण] यामिनी के समान [अन्धकार पूर्ण] हो रहे हैं, वर्षा में ऐसा दिखाई पड़ रहा है।"

पित्ते पुत्त सनेह गेह भुगता युक्तानि दिव्या दिने।
राजा छत्रनि साजि राजि छितया संप्रानन्दभासने।
कुसुमे कातिग चंद निर्मल कला दीपानि बर दायते।
मा मुक्के पिय बाल नाल समया सरदाय दर दायते॥ (९.१२)

"जो पिता-पुत्रादि के स्नेह और गृह का भोग कर रही हैं, अथवा जो संयोगिनी हैं, उनके लिए [शरद के] दिन दिव्य हैं; राजा-गण छत्रों को साज कर और क्षिति पर शोभित होकर आनन्द-युक्त आननों से भासित हो रहे हैं। कार्तिक में कुसुमों की और चन्द्रमा की कलाएँ निर्मल हो रही हैं, और दीपक वरदायी हो रहे हैं (दीपदान करके लोग मनोरथ की प्राप्ति कर रहे हैं), हे प्रिय, बाला को इस नाल (कमल-नाल के निकलने) के समय न छोड़ो, [क्योंकि] शरद का दल दिखाई पड़ रहा है।"

क्षीनं वासर स्वास दीघ निसया शीत जनेतं बने।
सज्जं संज्वरबान यौवन तया भानंग आनंगने।
यउ बाला तरुणी निवृत्त पत्त नलिनी दीना न जीवा खिणे।
मा कंत हिमवंत मत्त गमने प्रमदा ने आलंबने॥ (९.१३)

"वासर (दिन) क्षीण होकर श्वास [मात्र] हो गए हैं, और निशाएँ दीर्घ हो गई हैं; जनेत (बस्तियों) और वन में [सर्वत्र] शीत व्याप्त हो रहा है; यौवन के कारण शय्या संज्वर-कारिणी हो गई है और अनंग ही अनंग का अधिकार हो गया है; जो बाला तरुणी है वह निवृत्त-पत्र नलिनी के समान हो रही है, वह दीना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकेगी; [इसलिए] हे कान्त इस मत्त हेमंत में गमन न करो, अन्यथा प्रमदा निरवलंब हो जायगी।"

रोमाली घन और निद्ध वरये गिरि श्रृंग नारायते।
पच्चय पीन कुचानि जानि सयला फुंकार झुंकारये।
सिसिरे सर्वरि वारुणे च बिरहा मम हृदय विद्दारये।
मा कांत मृग बद्ध सिंघ गमने किं देव उच्चारये॥ (९.१४)

"[स्त्री की] रोमावली ही घन (वन) है, श्रेष्ठ स्नेह-नीर ही गिरि और श्रृंग [के पास बहती हुई] जल की धारा है; उसके पीन कुच ही मानो समस्त पर्वत हैं; वह जो फुंकार (सीत्कार) छोड़ती है, वही मानो [पवन का] झकोर है; शिशिर की रात्रि में विरह ही वह वारण (हाथी) है जो उसकी हृदय रूपी वाटिका का विदारता (तहस-नहस करता) है; उस विरह रूपी मृग (वन-

चारी वारण) का वध करने वाले सिंह, हे कान्त, तुम मत गमन करो; हे देव ! क्या तुम नारी के हृदय को विरह-वारण से उबारोगे ?"

इस षड्ऋतु-वर्णन की सरसता स्वतः प्रकट है। शिशिर-सम्बन्धी छन्द में जो रूपक का चमत्कार है, वह भी दर्शनीय है।

(५) अन्य वर्णन

'रासो' में कुछ अन्य वर्णन भी हैं, किन्तु वे काव्य की दृष्टि से प्रायः इतने सरस नहीं हैं जितने उपर्युक्त हैं, यद्यपि वे अन्य दृष्टियों से कभी-कभी बहुत उपयोगी हैं। उदाहरणार्थ, कन्नौज का जो नगर-वर्णन कवि ने चौथे सर्ग के प्रारम्भ में किया है, और पीछे जयचन्द के नृत्य-गीत समारोह का जो वर्णन पाँचवें सर्ग में किया है, 'रासो' कालीन नागरिक जीवन तथा नृत्य-संगीत की परम्पराओं पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। फिर भी कल्पना से चमत्कृत सरस वर्णनों का सर्वथा अभाव नहीं है। नीचे दिया हुआ गङ्गा का वर्णन देखिए; किस प्रकार कवि ने गङ्गा को एक कामिनी का रूप दे दिया है:—

उभय कनक छिभं भ्रिगं कंठीव क्रीला।
पुनरपि पुहप पूजा बहति रति विप्पराज।
उरसि मुत्तिहारं मध्धि घंटीव सब्दं।
सुगति सुकल बल्ली नंग रंग त्रिबल्ली॥ (४.१२)

"[इसके दोनों तटों पर जो दो कनक शंभु हैं [वे ही इसके दोनों कुच हैं], भृंगों की कंठध्वनि [ही इसकी कंठ-ध्वनि] है, पुनः इसे पुष्प-पूजा [अर्पित] करके विप्रराज (श्रेष्ठ विप्र) इससे अपनी रति (भक्ति) निवेदित करते हैं, इसके उर में [जल-कणों का] मुक्ताहार है, और मध्य में [पूजकों द्वारा किया जाने वाला] घंटी [कटिकी घंटी] का शब्द है, इस प्रकार यह सुन्दर मुक्ति की वल्ली अनंग-रंग (काम-क्रीड़ा) की त्रिवल्ली है।"

दूसरी ओर काम-कला को कवि ने संगीत कला और कामिनी-पूजा को देव-पूजा में किस प्रकार ढाल दिया है, यह दर्शनीय है:—

सुक्खं सुक्ख मृदंग तार जघनो रागं कला कोकनं।
कंठी कंठ सुभाखनं सम इतं कामं कला पोषनं।
उर भी रंभकिता गुणं हरि हरो सुरभीव पवनापिता।
पुव्वं सुष्ष स काम कुंभ गहिता जयराज रात्रिंगता॥ (५.४०)

अर्थात् [रति-]सुख में [संगीत-]सुख का, [कामिनी के] जघनों में मृदंग के ताल का, कोक-कला में राग-कला का, [कामिनी के] कंठ में [गायिकाओं के] कंठ का, यहाँ (कामिनी के) सुभाषण में उनके सुभाषण का, इस प्रकार [काम-कला] में [संगीत-कला] का [जयचन्द ने] पोषण किया; उसने [कामिनी के] उर से [परि-] रंभण करते हुए [रात्रि के अंतिम प्रहर में मानो] हरि और हर के गुणों से [रंभण] किया; इस प्रकार सुख-पूर्वक काम-कुंभों (कुचों) को ग्रहण किए हुए राजा जयचन्द की रात्रि व्यतीत हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रासो' में वर्णन विविध हैं, और विविध प्रकार से वे कवि के द्वारा सरस बनाए गए हैं। रचना की वर्णन-संपत्ति अतः असाधारण है, यह भली भाँति प्रकट है।

—:*:—

२२. 'पृथ्वीराज रासो' के छंद

जैसा ऊपर कहा जा चुका है [१] 'पृथ्वीराज रासो' रासो-परंपरा की छंद-वैविध्य-परक शाखा की रचना है। इसलिए इसके छंदों के संबंध में कुछ जान लेना आवश्यक होगा। इसमें कुल दो दर्जन से अधिक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है, जिनमें से आधे से कम प्रकार के छंद मात्रिक और शेष आधे से अधिक प्रकार के वर्णिक हैं। किंतु इससे यह समझना उचित न होगा कि रचना भी इसी अनुपात से इन छंदों में हुई है। स्थिति यह है कि वर्णिक छंद केवल रचना का लगभग $\frac{1}{6}$ निर्मित करते हैं और उसका शेष $\frac{5}{6}$ मात्रिक छंद निर्मित करते हैं।

इन छंदों का अध्ययन एक और दृष्टि से भी करने की आवश्यकता है: वह यह कि इनका कोई विशेष संबंध वर्ण्य विषय से भी है या नहीं।

वर्णिक छंदों में सबसे अधिक प्रयुक्त साटिका तथा भुजंग प्रयात (भुजंगी) हैं। भुजंग प्रयात (भुजंगी) तो प्रायः सभी प्रकार के प्रकरणों में आए हैं, किंतु साटिका केवल कोमल प्रसंगों में प्रयुक्त हुआ है, परुष प्रसंगों में नहीं हुआ है। शेष वर्णिक छंद इतने कम बार प्रयुक्त हुए हैं कि उस के आधार पर उनके प्रयोगों की प्रवृत्तियों का कोई अनुमान लगाना उचित न होगा।

मात्रिक छंदों में से सब से अधिक प्रयुक्त छंद दोहरा (दूहा) है, जो रचना का भी सर्वाधिक प्रयुक्त छंद है। यह रचना के सभी प्रकरणों में समान रूप से आया है। किंतु परुष प्रसंगों में यह उतना अधिक नहीं प्रयुक्त हुआ है जितना शेष प्रकार के प्रसंगों में हुआ है। इसके बाद सर्वाधिक प्रयुक्त छंद कवित्त (छप्पय) है: वह कोमल प्रसंगों में रचना में कहीं भी नहीं प्रयुक्त हुआ है, परुष प्रकार के प्रसंगों में ही प्रयुक्त हुआ। इनके बाद सर्वाधिक प्रयुक्त मात्रिक छंद रासा, पद्धडी, गाथा, मुडिल्ल तथा अडिल्ल हैं। रासा तथा पद्धडी क्रमशः कोमल और परुष प्रसंगों में प्रयुक्त हुए हैं; मुडिल्ल तथा अडिल्ल परुष प्रसंगों को छोड़ कर प्रायः सभी प्रकार के प्रसंगों में प्रयुक्त हुए हैं। गाथा विविध प्रसंगों में प्रयुक्त हुआ है, फिर भी परुष प्रसंगों में कम आया है। शेष मात्रिक छंद इतनी कम बार आए हैं कि उसके आधार या उनकी प्रयोग संबंधी प्रवृत्तियों के विषय में कोई अनुमान करना उचित न होगा। विभिन्न मात्रिक और वर्णिक छंद रचना में जहाँ-जहाँ पर आते हैं, नीचे उसकी तालिका दी जा रही है।

[१] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'रासो काव्य-परंपरा और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

मात्रिक छंद

(१) दोहरा (दूहा) : १.५; २.८, २.९, २.२१, २.२२, २.२३, २.२६, २.२७, २.२८; ३.१, ३.३, ३.९, ३.१०, ३.१३, ३.१४, ३.१५, ३.२१, ३.२२, ३.२३, ३.२४, ३.२५, ३.२६, ३.३५, ३.३७, ३.३८, ३.४०, ३.४२; ४.२, ४.३, ४.४, ४.५, ४.६, ४.८, ४.१५, ४.१६, ४.१७, ४.१८, ४.१९, ४.२१, ५.२, ५.११, ५.१२, ५.१४, ५.१५, ५.१६, ५.१७, ५.१८, ५.२०, ५.२१, ५.२२, ५.२३, ५.२६, ५.२७, ५.२८, ५.२९, ५.३०, ५.३१, ५.३२, ५.३३, ५.३४, ५.३५, ५.३७, ५.३९, ५.४२, ५.४३, ५.४४, ५.४६, ५.४७; ६.१, ६.२, ६.३, ६.४, ६.६, ६.८, ६.९, ६.१०, ६.११, ६.१६, ६.१८, ६.१९, ६.२०, ६.२१, ६.२२, ६.२४, ६.३०, ६.३१; ७.१ ७.३, ७.७, ७.८, ७.९, ७.११, ७.१३, ७.१९, ७.२९; ८.१२, ८.१३, ८.१५, ८.१७, ८.१८, ८.२०, ८.२१, ८.२२, ८.२३, ८.२५, ८.२७, ८.२९, ८.३१, ८.३३, ८.३६; ९.२, ९.३, ९.४, ९.५; १०.२, १०.४, १०.८, १०.९, १०.१२, १०.१३, १०.१४, १०.१६, १०.१८, १०.१९, १०.२०, १०.२१, १०.२२, १०.२४, १०.२६, १०.२७; ११.१, ११.२, ११.३, ११.४, ११.५, ११.६, ११.९, १२.२, १२.३, १२.४, १२.५, १२.६, १२.९. १२.१०, १२.१२, १२.१४, १२.१६, १२.१७, १२.१८, १२.२०, १२.२१, १२.२२, १२.२४, १२.२५, १२.२६, १२.२७, १२.२८, १२.३०, १२.३१, १२.३४, १२.३६, १२.३७, १२.४३, १२.४४, १२.४७ = १६५

(२) कवित्त (छप्पय) : ३.४, ३.११, ३.२७, ३.२९, ३.३१, ३.३२, ३.३३, ३.३६; ४.१; ५.१९, ५.४५, ५.४८; ६.३३; ७.५, ७.२०, ७.२१, ७.२५, ७.२७, ७.२८. ७.३०; ८.१ ८.२, ८.३, ८.४, ८.५, ८.६, ८.११, ८.१४, ८.१६, ८.१९, ८.२४, ८.२६, ८.२८, ८.३०, ८.३२, ८.३४, ८.३५; १०.२३, १०.२५, १०.२८, १०.२९; ११.७, ११.८, ११.११, ११.१३, ११.१४, ११.१५, ११.१६, ११.१८; १२.१, १२.३५, १२.३८, १२.४०, १२.४१, १२.४२, १२.४५, १२.४६, १२.४८, १२.४९ = ५१

(३) रासा : २.४, २.१४; ३.७, ३.८, ३.४३; ४.१३; ६.७, ६.१३, ६.१४, ६.३४; ७.२२, ७.२३; ९.६, ९.७, ९.८; १०.१५, १०.१७ = १७

(४) मुडिल्ल : ३.२०, ३.३९; ५.१, ५.४, ५.५, ५.६, ५.८, ५.९; ६.१२, ६.२३, ६.२७, ६.२८; १०.१, १०.३, १०.६, १०.७ = १६

(५) पद्धडी : २.१, २.३, २.५, २.६, २.१०, २.११, २.१२; ४.७; ११.१०; १२.१३, १२.१५, १२.२३, १२.३२, १२.३३ = १४

(६) गाथा : २.२, २.१६; ३.५, ३.१२, ३.३४; ६.१७, ६.३२; ७.२, ७.१८, ७.२६; ८.७, ८.८; १०.१० = १३

(७) अडिल्ल : ३.१६, ३.१८, ३.१९, ३.२८, ३.४१; ५.२५; ६.२६; ९.१; १०.५ = ९

(८) वस्तु : ५.३; १२.७, १२.८ = ३

(९) चउपई : १२.१९, १२.३९ = २

(१०) गाथा मुडिल्ल : ६.२५ = १

(११) त्रिभंगी ४.११ = १

वर्णिक छंद

(१) साटिका : १.१, १.२, १.६; २.१७, २.१८, २.२०, २.२४; ३.२, ३.६; ५.७, ५.१०, ५.४०, ५.४१; ९.९, ९.१०, ९.११, ९.१२. ९.१३, ९.१४ = २०

(२) भुजंग (भुजंगी) १.४; २.७; ४.१०, ४.२०, ४.२२, ४.२३; ५.१३; ६.५; ७.६, ७.१०, ७.१६, ७.१७, ७.३१; ८.१०; ११.१२; १२.११ = १६

(३) श्लोक : २.१९, २.२५; ६.२९; ७.२४; ११.१७ = ५

(४) अर्धनाराच : ३.१७, ४.१४; ५.२४; ७.१२ = ४

(५) नाराच : २.१३; ५.३८; ६.१५ = ३

(६) त्रोटक : ८.९; १२.२९ = २

(७) साटक : ५.३६ = १

(८) डंडमाल : १०.११ = १

(९) आर्या : ३.३० = १

(१०) मोतीदाम : ४.२५ = १

(११) रूपया : ७.१४ = १

(१२) वसंत तिलक : ४.१८ = १

(१३) भमरावलि : ७.४ = १

(१४) रसावला : ७.१५ = १

(१५) विराज : १.३ = १

---:*:---

२३. 'पृथ्वीराज रासो' की शैली

किसी भी प्राचीन रचना की शैली पर विचार करते समय यह आवश्यक होता है कि उसकी भाषा के प्रकृत तत्वों को अलग कर लिया जावे, और इनको सुलझा लेने के अनन्तर[1] उसकी शैली के तत्वों को समझना सुगम हो जाता है। शैली के भी दो रूप होते हैं, एक तो उसका सामान्य रूप होता है, जो रचना में व्यापक रूप से मिलता है, और दूसरा उसका विशिष्ट रूप होता है, जो वर्ण्य विषय अथवा छन्द सापेक्ष्य होता है। प्रस्तुत रचना की शैली पर विचार करते समय दोनों रूपों पर अलग-अलग विचार करना सुविधाजनक होगा।

सामान्य शैली

रचना की सामान्य शैली पर विचार करने के लिए उदाहरण के लिए संपादित पाठ का कैंवास-वध का वह उद्धरण (३.२१–२७) लिया जा सकता है जो ऊपर रचना की भाषा के सम्बन्ध में विचार करते हुए दिया गया है। डॉ० नामवर सिंह ने रचना की ध्वनि-विषयक प्रवृत्तियों का निर्देश करते हुए कहा है, "छन्द के अनुरोध से प्रायः लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए शब्दान्तर्गत—

(क) ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण,

(ख) व्यंजन-द्वित्व,

(ग) स्वर का अनुस्वार-रंजन, तथा

(घ) समास में द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत गुरु को लघु बनाने के लिए—

(क) दीर्घ का ह्रस्वीकरण,

(ख). व्यंजन-द्वित्व का क्षतिपूर्ति रहित सरलीकरण, तथा

(ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण

की विधि प्रयोग में लाई गई है।"[2] उन्होंने इस प्रवृत्ति के उदाहरण भी दिए हैं,[3] जो कि प्रायः ठीक हैं और इस संस्करण में भी मिलेंगे। केवल यह कहना आवश्यक होगा कि यह प्रवृत्ति उतनी

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराजरासो की भाषा' शीर्षक।

[2] डॉ० नामवर सिंह: 'पृथ्वीराजरासो की भाषा', सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ११।

[3] वही, पृ० ५९-६३।

व्यापक नहीं है जितनी सामान्यतः समझी जाती या समझी जा सकती है। इसके प्रमाण में संपादित पाठ के ऊपर उल्लिखित उद्धरण को लिया जा सकता है। उसमें छन्दोनुरोध के कारण हुए (क) ह्रस्व स्वर के दीर्घीकरण का कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है, वह है सिद्धि > सिद्धी (३.२३.२); (ख) व्यंजन द्वित्व के कदाचित् केवल चार प्रयोग मिलते हैं : नागपुर > नागप्पुर (३.२२.१), दाहिमउ > दाहिम्मउ (३.२२.२), विरदिया > विरद्दिया (३.२७.६) तथा निमटिहि > निमट्टिहि (३.२७.६)। स्वर के अनुस्वार-रंजन का कोई प्रयोग नहीं मिलता है, और न समास के द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन के द्वित्व करने का कोई प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार संपादित पाठ के उपर्युक्त उद्धरण में (क) दीर्घ के ह्रस्वीकरण का कोई प्रयोग नहीं मिलता है, (ख) व्यंजन-द्वित्व के क्षतिपूर्ति रहित सरलीकरण का कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है : दिट्ठि > दिठि (३.२१); और (ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण का भी कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है : भुजंग > भुजंग (=भुजँग)।[1]

विशिष्ट रूप

इस प्रसंग में यह बताना आवश्यक होगा कि शैली में अन्तर छन्द-भेद के आधार पर बहुत अधिक हो जाता है। कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें संस्कृताभास लाना 'रासो' के कवि को आवश्यक प्रतीत हुआ है, यथा श्लोक, साटिका या वसंत तिलक में; कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें प्राकृताभास लाना उसे आवश्यक प्रतीत हुआ है, यथा गाथा में; शेष में सामान्यतः भाषा का प्रकृत रूप रखना उसके लिए स्वाभाविक था, केवल जैसा हम नीचे देखेंगे, वर्ण्य विषय-भेद से शैली में भी यत्किंचित अन्तर उसने अवश्य ही प्रस्तुत किया है। छन्द भेद के आधार पर रचना की शैली का अध्ययन कवि की भाषा के प्रकृत रूप को समझने के लिए आवश्यक है, यह बात कुछ प्रस्तुत रचना के ही सम्बन्ध में नहीं, छन्द-वविध्य-प्रधान हिन्दी की समस्त प्राचीन रचनाओं के सम्बन्ध में लागू होती है : अन्तर केवल परिणाम का हो सकता है। और यदि रचना के मात्रिक और वर्णिक छन्दों पर हम ध्यान दें[2], तो डॉ० नामवर सिंह द्वारा उल्लिखित प्रवृत्ति पर ही नहीं, शब्द-योजना और शैली पर भी एक निश्चयात्मक प्रकाश पड़ेगा। हम देखेंगे कि—

(१) जहाँ तक मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है, प्रायः सर्वत्र भाषा का प्रकृत रूप मिलेगा, अनुस्वार-रंजन न मिलेगा, समास और तत्सम के प्रयोग कम ही मिलेंगे, सामान्य व्यंजन-द्वित्व अधिक मिलेंगे; इस प्रकार के छंद हैं : दोहरा (दूहा), कवित्त (छप्पय), रासा, पद्धडी, मुडिल्ल, अडिल्ल, वस्तु, चउपई तथा गाथा मुडिल्ल। त्रिभंगी ही इस परम्परा का एक मात्र अपवाद है, जिसमें निम्नलिखित (२) के वर्णवृत्तों की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं; गाथा में भी एकाध उदाहरण (यथा ६.१७) इस प्रकार के मिलते हैं, किन्तु वे अपवाद-स्वरूप ही हैं।

(२) जहाँ तक वर्णिक छंदों का प्रश्न है, कुछ प्रकार के वृत्तों में संस्कृताभास लाने का प्रयत्न मिलेगा, और इसलिए अनुस्वार-रंजन बहुत होगा, समास और तत्सम शब्दों का प्रयोग भी अपेक्षाकृत अधिक होगा, सामान्य व्यंजन-द्वित्व कम मिलेंगे। इस प्रकार के छन्द हैं : श्लोक (अनुष्टुप), साटिका, वसंततिलक तथा झंडमाल।

(३) वर्णिक छंदों में ही कुछ ऐसे मिलेंगे जिनमें संस्कृताभास लाने का प्रयत्न अधिक नहीं मिलेगा, केवल अनुस्वार-रंजन लाने का प्रयत्न विशेष मिलेगा, शेष बातें यथा उपर्युक्त (१) में

[1] ये विशेषताएँ प्रायः इसी प्रकार अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' शीर्षक में उद्धृत 'प्राकृत पैंगल' के हम्मीर-विषयक छन्दों तथा श्रीधर के 'रणमल्ल छन्द' के छन्दों में भी मिलेंगी।

[2] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराजरासो के छन्द' शीर्षक।

होंगी। ऐसे छन्द हैं : विराज, आर्या, रूपया, भमरावली और रसावला। यह अवश्य है कि इन छन्दों का प्रयोग रचना में बहुत ही कम हुआ है।

(४) वर्णवृत्तों में ही कुछ ऐसे भी मिलेंगे जो कभी तो उपर्युक्त (३) की भाँति प्रयुक्त होंगे[१] और कभी (१) की भाँति प्रयुक्त होंगे—अर्थात् उनकी शैली सर्वथा मात्रिक छन्दों के समान होगी।[२] ऐसा भी देखा जाता है कि कभी-कभी इन छन्दों में कुछ अंश (३) के समान और कुछ अंश (१) के समान होंगे।[३] ऐसे छन्द हैं : भुजंगी (भुजंग प्रयात), नाराच (वृद्ध नाराच), अर्द्धनाराच, और त्रोटक।

और हम अन्यत्र देख चुके हैं[४] कि संपूर्ण रचना का लगभग ⅘ मात्रिक छन्दों द्वारा निर्मित है, केवल ⅕ वर्णिक वृत्तों द्वारा बना है, अतः प्रकट है कि संस्कृताभास, अनुस्वार-रंजन, तत्सम-बाहुल्य और समास की ओर झुकाव रचना में बहुत सीमित अंश में मिलेंगे। फिर, ऊपर बताया जा चुका है कि ये तत्व वर्णिक वृत्तों में ही प्रायः मिलते हैं, जिनका प्रयोग संस्कृत साहित्य से अपभ्रंश तथा भाषा-साहित्य में आया है। इनके सम्बन्ध में 'रासो' की रचना के पूर्व भी कवियों की सामान्य धारणा रही है कि इनमें रचना तभी सरस हो सकती है जब कि संस्कृताभास अथवा उसका कोई न कोई उपकरण, यथा अनुस्वार-रंजन, इनमें लाया जा सके।[५] अतः यह प्रकट है कि 'रासो' के कवि की सामान्य शैली पर विचार करते समय ऐसे वृत्तों को छोड़ देना चाहिए जिनकी ऐसी विशिष्ट शैली रही है जो आयासपूर्वक एक परम्परा का पालन करने के लिए प्रयोग में लाई जाती रही है। 'रासो' के कवि की प्रकृत शैली वह है जो रचना के शेष वृत्तों में मिलती है, अतः संपादित पाठ से ऊपर कैंवास-वध की जो पंक्तियाँ (३.२१-२७) उद्धृत की गई हैं, वे उसकी प्रकृत शैली का वास्तविक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

वर्ण्य विषय के अनुसार रचना में शैली-भेद बहुत कम मिलता है। ऊपर रचना के विविध प्रकार के वर्णनों की समीक्षा करते हुए[६] प्रायः समस्त प्रकार के उदाहरण दिए गए हैं। उनका विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि पद्य, विशेष रूप से युद्ध-वर्णन सम्बन्धी, प्रसंगों में ही शैली-भेद कुछ दिखाई पड़ता है, शेष प्रसंगों के छन्दों में वह प्रायः नहीं है। युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में भी कृत्रिम रूप से ध्वनि-प्रभाव उत्पन्न करने का यत्न, जैसा कि परवर्ती रचनाओं में प्रायः मिलता है, 'रासो' में बहुत ही कम मिलता है। यहाँ भी शैली-भेद छन्द-भेद से बहुत कुछ संबद्ध मिलेगा। शहाबुद्दीन सम्बन्धी प्रसंगों में स्वभावतः विदेशी शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, यह बताया ही जा चुका है।[७]

कवि की सामान्य शैली की विशेषताएँ स्वतः प्रकट हैं। वह एक सुकवि की अत्यन्त समर्थ शैली है, भावों की अभिव्यक्ति करने में वह सर्वत्र भली भाँति सफल हुई है, उसकी शब्द-योजना

[१] यथा : १.४, ४.२०, ४.२१, ७.१७, ८.१०, ११.१२, ५.३८, ६.१५, ३.१७, ५.२४, ७.१२, ८.९।

[२] यथा : ४.२३, ७.१६, १२.२९, ४.१४।

[३] यथा : २.७, ४.१०, ५.१३, ३.५, ७.१०, ७.३१, २.१३।

[४] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के छन्द' शीर्षक।

[५] दे० 'प्राकृत पैंगल' (संपादक चन्द्रमोहन घोष) में सादूलसट्ठ, वसंततिलका, इंद्रवज्जा, रूपमाला तथा अन्य अनेक वर्णवृत्तों के उदाहरण।

[६] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के वर्णन' शीर्षक।

[७] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।

रमणीय है, कहीं भरती के शब्द रखने की आवश्यकता कवि को नहीं पड़ी है, न व्यर्थ के अलंकारों से वह दबी हुई है, और न रीति और गुणों से संबन्धित रूढ़ियों का वह अनावश्यक अनुसरण करती है। यह शैली कभी-कभी संक्षेप-प्रवण अवश्य प्रतीत होती है, ऐसे स्थलों पर संगति लगाने में पाठक को अपनी ओर से प्रायः कुछ न कुछ शब्दावली लानी पड़ती है। वस्तुतः जैसा उसे होना चाहिए था, अपने विषय-प्रधान महाकाव्य के लिए वह संपूर्ण रूप से उपयुक्त एक गरिमा पूर्ण, संतुलित और सुव्यवस्थित साधन बन सकी है।

—:*:—

२४. 'पृथ्वीराज रासो' का महाकाव्यत्व

महाकाव्य के लक्षणों के सम्बन्ध में भामह (५वीं शती ईस्वी) से विश्वनाथ कविराज (१६वीं शती ईस्वी) तक प्रायः समस्त काव्य-शास्त्रियों ने विचार किया है, जिसे देखने पर महाकाव्य के रूप के विकास के साथ साथ उनके द्वारा निरूपित लक्षणों में भी विकास दिखाई पड़ता है। 'रासो' की रचना तक संस्कृत और प्राकृत में ही नहीं अपभ्रंश में भी अनेकानेक महाकाव्य रचे जा चुके थे। असंभव नहीं है कि नव्य भारतीय भाषाओं में भी कोई महाकाव्य रचे गए हों, किन्तु वे प्राप्त नहीं हैं। महाकाव्य विषयक मान्यताओं में भी परिणामतः परिवर्तन होता रहा होगा। इसलिए 'रासो' के पूर्ववर्ती काव्य-शास्त्रियों द्वारा निरूपित लक्षणों की अपेक्षा उसके परवर्ती काव्याचार्यों के मतों पर विचार करना अधिक उचित और उपयोगी होगा।

'रासो' की रचना के बाद के आचार्यों में सर्वप्रमुख विश्वनाथ कविराज हैं, जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समाहार करते हुए और उनके परवर्ती महाकाव्यों पर भी दृष्टि रखते हुए महाकाव्य की सबसे व्यापक परिभाषा दी है, इसलिए केवल उन्हीं के मत को दृष्टि में रखते हुए 'रासो' के महाकाव्य पर विचार करना पर्याप्त होगा। उनके मत[1] का विश्लेषण करने पर महाकाव्य की आवश्यकताएँ निम्नलिखिति ज्ञात होती हैं :—

(१) प्रबन्ध की दृष्टि से उसको सर्गबद्ध होना चाहिए। सर्गों की संख्या [सामान्यतः] आठ से अधिक होनी चाहिए। उनका आकार न अति स्वल्प और न अति दीर्घ होना चाहिए। महाकाव्य का आरम्भ नमस्कार, आशीर्वाद तथा वस्तु-निर्देश के साथ होना चाहिए और प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर आने वाले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।

(२) छन्द की दृष्टि से उसका प्रत्येक सर्ग एक एक वृत्त का होना चाहिए, किन्तु सर्ग के अन्त में उससे भिन्न वृत्त आना चाहिए। उसका कोई सर्ग ऐसा भी होना चाहिए जो नाना वृत्त युक्त हो।

(३) वस्तु की दृष्टि से उसका निर्माण किसी इतिहास-प्रसिद्ध अन्यथा सुजन-समाज में प्रचलित कथानक को लेकर होना चाहिए और उसका विकास विभिन्न संधियों की सहायता से प्रायः उसी प्रकार किया जाना चाहिए जिस प्रकार नाटक में किया जाता है।

(४) उसका नायक या तो कोई देवता, या धीरोदात्त गुणान्वित कोई क्षत्रिय होना चाहिए।

[1] 'साहित्य-दर्पण', श्लोक ६१३-६११।

(५) उसमें शृङ्गार, वीर और शान्त रसों में किसी एक को अंगी तथा अन्य रसों को अंग के रूप में आना चाहिए।

(६) उसका लक्ष्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति होना चाहिए।

(७) उसमें, जहाँ पर अवसर हो, विविध वर्णनीय विषयों का सांगोपांग वर्णन होना चाहिए: यथा संध्या, सूर्य, इन्दु आदि का। कहीं-कहीं पर खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण-वर्णन भी होना चाहिए।

(८) उसका नामकरण कथानक, नायक के नाम अथवा अन्य किसी आधार पर किया जाना चाहिए।

इन आवश्यकताओं की दृष्टि से विचार करने पर पृथ्वीराज 'रासो' पूर्णरूप से एक महाकाव्य ठहरता है। उसमें उपर्युक्त समस्त तत्व पाए जाते हैं:—

वह सर्गबद्ध है: न केवल प्रबन्ध की आवश्यकताओं का उसमें सम्यक् निर्वाह हुआ है, सर्गों में रचना सम्यक् विभाजन भी हुआ है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, यद्यपि उसके लघुतम पाठ की प्रतियों में सर्ग-विभाजन नहीं मिलता है, शेष समस्त पाठों में वह मिलता है, और एक मिलता है, इसके अतिरिक्त संपूर्ण रचना में कथाएँ इस प्रकार बँटी हैं कि सर्ग-विभाजन 'रासो' के कवि की दृष्टि में था, यह प्रस्तुत संस्करण के सर्गों को देखकर सुगमता से समझा जा सकता है; अतः 'रासो' का सर्गबद्ध होना भली भांति प्रमाणित है।[1] ये सर्ग संख्या और आकार में भी 'साहित्य-दर्पण' में प्रतिपादित मत का अनुसरण करते हैं: ये आठ से अधिक हैं और प्रायः न अति स्वल्प हैं और न अति दीर्घ हैं। रचना का आरम्भ नमस्कार और संक्षिप्त वस्तु-निर्देश के साथ हुआ ही है।[2] विभिन्न सर्गों के अन्त में आने वाले सर्ग के कथानक की सूचना अवश्य नहीं है, किन्तु यह प्रबन्ध-विषयक कोई अनिवार्य आवश्यकता भी नहीं है।

छन्द की दृष्टि से 'रासो' 'साहित्य-दर्पण' के लक्षणों के अनुरूप अवश्य नहीं पड़ता है और उसका कारण यह है कि महाकाव्य होने के साथ-साथ यह छन्द-वैविध्य-परक रासो-परंपरा की रचना है। यह रासो-परंपरा संस्कृत और प्राकृत में नहीं थी, अपभ्रंश में प्रारम्भ हुई और वह भी कदाचित् बहुत पीछे।[3] इसमें महाकाव्यों की रचना 'पृथ्वीराज रासो' के पूर्व भी हुई थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। इसलिए 'साहित्य-दर्पण' कार की महाकाव्य की छन्द-योजना विषयक मान्यता यदि बदली न हो तो आश्चर्य न होगा। और छन्द की एक रूपता एक सर्ग के अन्तर्गत सामान्यतः उपयोगी भी होती है, क्योंकि उसके द्वारा कथा-प्रवाह और वर्णन-प्रवाह अधिक सुरक्षित रह सकते हैं। किन्तु विश्वनाथ कविराज ने ही महाकाव्य के अन्तर्गत कोई सर्ग ऐसा भी रखने की अर्थात् आवश्यकता मानी है जिसमें विविध वृत्त हों। इसलिए विविध छन्दों में यदि समूचे महाकाव्य की अर्थात् उसके समस्त सर्गों की रचना की जावे, तो उसमें कोई मौलिक आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

वस्तु की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' का कथानक इतिहास-प्रसिद्ध तो रहा ही है, सुजन-समाज में प्रचलित भी रहा है: देश के विदेशी जातियों के हाथों में जाने की यह दुःखपूर्ण कथा सदियों तक कही-सुनी जाती रही होगी और 'हम्मीर महाकाव्य' और जैन प्रबन्धों में इस कथा के दो अन्य रूप

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की प्रबन्ध-कल्पना' शीर्षक।

[2] वही।

[3] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'रासो काव्य-परंपरा और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

भी मिलते हैं,[1] यह इस अनुमान का समर्थन करते हैं।

इसका नायक धीरोदात्त क्षत्रिय है, यह भी सुगमता से देखा जा सकता है। किसी महान आदर्श के लिए जीवन के सुखों का त्याग ही चरित्र में उदात्तता लाता है। पृथ्वीराज के चरित्र में यह बात प्रचुर परिमाण में पाई जाती है : जयचन्द के आमन्त्रण पर उसकी वश्यता स्वीकार कर वह उसके राजसूय में सम्मिलित हो सकता था, और असम्भव नहीं कि ऐसी दशा में उसकी प्रेमिका संयोगिता भी उसको अनायास मिल जाती, किन्तु राजसूय में उसके सम्मिलित न होने पर दरबान के रूप में उसकी स्वर्ण-प्रतिमा के प्रतिष्ठापित किए जाने को वह कैसे सहन कर सकता था? इसीलिए तो उसने चन्द के गले लग कर रोते हुए कहा, 'इस जीवन की और अधिक वाञ्छा करे—ऐसा कौन सयाना होगा (३.४९)!' और उसके अभिन्न-हृदय चन्द ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा, 'उपहास-विलासों में यहीं पड़े रह कर हम प्राण न छोड़ेंगे; हम तो जयचन्द की धरा पर उसकी सेना से टक्कर लेंगे (३.४३)।' अपने शत्रु शहाबुद्दीन को परास्त कर उसने एक से अधिक बार अपनी उदारतावश मुक्त कर दिया था (२.३)। शहाबुद्दीन के अन्तिम आक्रमण के पूर्व ही उसके प्रायः सभी वीर सामन्त जयचन्द के साथ हुए उसके युद्ध में कट चुके थे, और शहाबुद्दीन एक विशाल सेना लेकर इस बार आया था, पृथ्वीराज चाहता तो संधि असंभव नहीं थी, किन्तु जैसा चन्द ने कहा, 'और कुछ नहीं है तो सिंगिनी और बाण तो अपने हैं; सामन्त नहीं हैं तो भी कम से कम वह मंत्र कर कि दिल्ली की धरा को डुबो न दे (१०.२२)।' इस भावना से प्रेरित होकर वह अपने पवित्र उत्तरदायित्व को कैसे छोड़ सकता था? स्वभावतः उसने फिर भी शहाबुद्दीन का सामना किया, यद्यपि वह पराजित और बन्दी हुआ। अतः महाकाव्य के उपयुक्त ही उसका यह धीरोदात्त नायक है, यह भी प्रकट है।[2]

'पृथ्वीराज रासो' का अंगी रस वीर है, जो कि अन्य रसों से परिपुष्ट हुआ है—विशेष रूप से शृंगार से, और उत्साह का जैसा पूर्ण और परिष्कृत चित्र इस रचना में उपस्थित किया गया है वह स्वतः एक महान् कल्पना है।[3] इसलिए महाकाव्य का रस-संबंधी लक्षण भी पूर्ण रूप से इस काव्य में मिलता है।

इसका लक्ष्य धर्म की प्राप्ति है : धर्म के लिए ही जीवनोत्सर्ग के लिए नायक युद्धों में कूद पड़ता है। इस काव्य में वर्णित पहला युद्ध, जैसा अन्यत्र बताया जा चुका, सौन्दर्य-लिप्सा के कारण नहीं वरन् संयोगिता के प्रेमानुष्ठान की पूर्ति तथा अपने मान की रक्षा के लिए नायक ने किया है; दूसरा युद्ध उसने देश की रक्षा के लिए किया ही है।[4] बीच में संयोगिता के साथ उसका केलि-विलास काव्य में अवश्य वर्णित हुआ है, किन्तु स्वतः वह रचना का वर्ण्य नहीं है, वह तो काव्य में यह दिखाता है कि काम-लिप्सा नायक के लिए कितनी घातक सिद्ध हुई; वह पाठक के मन पर यह प्रभाव डालता है कि असंभव नहीं कि यदि नायक काम-लिप्सा में इस प्रकार न पड़कर अपने गुरु-बांधव-भृत्य-लोक को अपने से उदासीन न कर देता, और अपनी सैनिक शक्ति का ह्रास न होने देता, तो शहाबुद्दीन को कदाचित् वह फिर पराजय देता। अन्त में चन्द की युक्तियों से अधर्मी शत्रु का संहार कर वह 'धरती को नव-वधू के समान उत्फुल्ल' करने में भी सफल होता है (१२.४९)। इसलिए स्पष्ट है कि रचना उद्देश्य धर्म की प्राप्ति है, और 'रासो' का कवि उसको भली भाँति प्रतिपन्न करता है।

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'हम्मीर महाकाव्य और पृथ्वीराज रासो' तथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[2] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की चरित्र-कल्पना' शीर्षक।

[3] वही।

[4] वही।

विविध वर्णनीय विषयों का सांगोपांग वर्णन भी यथावसर रचना में मिलता है और यह वर्णन संपूर्ण रचना में केवल आवश्यक मात्रा में आता है, यह रचना की एक बड़ी विशेषता है; केवल वर्णन के लिए वर्णन एक स्थान पर भी नहीं हुआ है।[1] इसलिए महाकाव्य का यह लक्षण भी रचना में पूर्ण रूप से मिलता है।

रचना का नामकरण नायक के नाम पर हुआ ही है।

अतः विश्वनाथ कविराज की बताई हुई महाकाव्य की सारी आवश्यकतायें इस रचना में यथेष्ट रूप में मिलती हैं और यह निस्संदेह एक महाकाव्य है।

आधुनिक पाश्चात्य आलोचकों ने महाकाव्य के लक्षण किंचित् भिन्न बताए हैं। एक प्रसिद्ध आलोचक का कहना है, "महाकाव्य एक ऐसे नायक का चित्रण करता है जो किसी देश अथवा किसी आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है, और जो उसकी विजय के साथ विजयी होता है। वह कोई महान् अथवा महत्वपूर्ण व्यापार हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है और उसी प्रकार उसके पात्र भी महान् अथवा महत्वपूर्ण होते हैं। सारी रचना में एक गरिमा होती है। नाटक की तुलना में महाकाव्य के व्यापार की गति मंद होती है: उसमें घटना-बाहुल्य होता है और उसका वस्तु-संकलन शिथिल होता है। मानव जीवन की जितनी ही विस्तृत भूमिका उसमें ग्रहण की जाती है, उतनी ही अधिक सफलता महाकाव्य को मिलती है। वह कल्पना को अतीत के उस देश में ले जाता है जो स्वप्नों और आदर्शों का होता है, जिसमें दुःखान्त नाटकों का प्रवेश निषिद्ध है।"[2]

महाकाव्य ये लक्षण भी 'पृथ्वीराज रासो' में पूर्ण रूप से मिलते हैं, बल्कि यदि देखा जावे तो इन लक्षणों के अनुसार वह और भी अधिक महाकाव्य है: सारी रचना एक महान् आदर्श को लेकर नायक के जीवन के एक विस्तृत क्षेत्र में प्रस्तुत की गई है, और अन्त में पराजय के बाद भी रचना में नायक के उस आदर्श की—अधर्मी से मातृभूमि को मुक्त कर उसको पुनः हँसने का एक अवसर देने की—प्राप्ति दिखाई गई है, अतः इस दृष्टि से यह रचना अवश्य ही एक अमर महाकाव्य कृति के रूप में बनी रहेगी।

—:*:—

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के वर्णन' शीर्षक।

[2] डब्ल्यू० एम० डिक्सन: 'इंग्लिश इपिक ऐंड हीरोइक पोइट्री', १९१२, पृ० ११।

वीन्द्र
ांजलि
कैलाश कलि

पृथ्वीराज रासउ

१. मङ्गलाचरण और भूमिका

[१]

सार्टिका— [१]छत्रं या[२] मद गंध आण÷ लुब्धा[३] अलि भूरि[४] आच्छादिता[५] । (१)

गुंजाहार अधार[१] सार गुन या[२] रुंजा पया[३] भासिता । (२)

अग्रे या[१] स्रुति कुंडला[२] करि नवं[३] तुंडीर[४]× उद्दारया[५]× । (३)

सोयं पातु गणेस सेस सफलं[१] प्रिथिराज काव्ये हितं[२] । (४)

अर्थ—(१) जिनका छत्र मद-गंध के घ्राण-लुब्ध भूरि अलियों से आच्छादित है, (२) जो गुंजा का हार धारण करने वाले, सार गुणों के आधार हैं, और जिनके पदों (चरणों) में रुंझा (रुनझुन करने वाला पैरों का आभूषण—घुंघुरू) भासित होता है, (३) जिनके कानों के अग्र [भाग] में कुंडल हैं, जो नव हाथी की तुंड वाले हैं और उदार हैं, (४) ऐसे वे गणेश रक्षा करें और 'पृथ्वीराज काव्य' के हित में जो शेष हो उसको सफल करें ।

पाठान्तर— × चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

÷ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. मो. में यहाँ 'पुन' है, जो अन्य किसी प्रति में नहीं है । २. धा. या, मो. जां, शेष में 'जा' । ३. मो. रागुरु वार्श, धा० गंधरसिका, स. राग रुचर्थं, म. अ. घ्राण (घ्रान—म.) लुब्धा, ना.—लुब्धा । ४. मो. भार, ना. अ. मोर, स. भूर, म. भौंर । ५. म. आच्छादितं ।

(२) १. मो. आधार, स. अधार, ना. म. अ. विहार । (तुल० अगले छन्द का चरण १) । २. मो. गुनोजा, धा. गुनिजा, म. गुनधा, ना. अ. गुणजा । ३. मो. झं·ा पया, धा. रुंजा पिया, अ. रुंजा पया, ना. रंजा पया, स. झंझा पया ।

(३) १. धा. म. या; शेष में 'जा' । २. मो. स्रुत कुंडलं । ३. मो. नवुं; धा. नवं, ना. णवः, अ. फ.करा, म. करि; स. कर । ४. मो. थुंडीर, अ. तुद्दीर, म. जुदी·, ना. थुंदीर । ५. मो. उदारवं ।

(४) १. मो. स. सेस सफलं (शेश सफलं—मो.) धा. सतत फलं, अ. ना. सेवित फलं । २. मो. काव्यहितं, म. स. काव्यं कृतं ।

टिप्पणी— (१) छत्त < छत्र । (२) पय < पद ।

[२]

सार्टिका— मुक्ता[१] हार विहार सार[२] सबुधा[३] अबुधा[४] बुधा गोपिनी[५] । (१)

सेतं[१] चीर[२] सरीर नीर गहिरा[३] गौरी[४] गिरं[५] योगिनी । (२)

वीना[१] पानि सुवानि[२] जानि× दधिजा[३] हंसा रसा आसनी[४] । (३)

लंबी[१] या[२] चिहुरार[३] भार जघना[४] विघना घना[५] नासिनी ॥ (४)

अर्थ—(१) जो मुक्ता का हार धारण करने वाली है, जो बुद्धिमानों के [कल्पना] विहार का सार है, और जो बुद्धिमानों की अज्ञता का शोषण करने वाली है, (२) जो श्वेत चीर धारण करने वाली है, जो गहरी कांति वाले शरीर की है, जो गोरा–गौर वर्ण वाली है, जो गिरा (वाणी) का योग करने वाली है, (३) जो वीणा पाणि (हाथों में वीणा धारण करने वाली) है, जो सुवर्णी (अच्छे वर्ण वाली) है, मानो उदधि-पुत्री (लक्ष्मी) है, जो हंसिनी रूपी रथ (पृथ्वी) पर बैठने वाली है, (४) जिसकी चिकुरावली लंबी है, और जो भारी जघनों की है, वह [सरस्वती] घने विघ्नों का नाश करने वाली है—या होवे।

पाठान्तर—× धा. में चिह्नित शब्द नहीं है।

(१) १. धा. ना. म. मुआ। २. ना. हार हार। ३. मो. सबधा, म. स. सुबुधा; ना. विबुधा, अ. बबुधा। ४. मो. अबूधा (< अबुधा), म. अबधा। ५. धा. गोपनी।

(२) १. अ. श्वेतं। २. मो. ना. चीर, म. चीरं। ३. मो. गिहिरा; म. गहिरी, ना. अ. गहरी। ४. म. गवरी। ५. धा. गुनं, ना. अ. फ. गुणं, स. गिरा।

(३) १. मो. वाना (< वीना), धा. अ. वीणा। २. धा. अ. सुवाणि। ३. म. दधिती। ४. ना. आसिनी।

(४) १. मो. लंबा, धा. लंबी; ना. लंब, अ. लंबं, स. लंबो, म. लंबि। २. धा. मो. 'धा', शेष में 'गा'। ३. ना. चिहुरार। ४. मो. जघनी। ५. मो. विघना घना, धा. विना घनं। ६. धा. नासनी, मो. सनी।

टिप्पणी— (२) सेत < श्वेत। (४) चिहुरार < चिकुरावली।

[३]

विराज— जटा जूट[1] बंधं[1]। (१)
ललाटीय[1] चंदं। (२)
विराजादि छंदं[1]। (३)
भुजंगी गलिंदं[1]। (४)
सिरोमाल[1] लदं[2]।[3] (५)
गिरिज्जा अनंदं[1]। (६)
सुरे[1] सिग[2] नदं। (७)
उगो[1] गंग हदं। (८)
रणे[1] वीर[2] मदं।× (९)
करी चम्म[1] छदं[2]।× (१०)
करे[1] काल पदं[2]।× (११)
चपे अग्गि दहं[1]। (१२)
पुलै[1]* यहि[2] जहं। (१३)
जयो जोग[1] सदं। (१४)
घटा[1] जाणि भदं। (१५)
छुरे[1] काम तदं।× (१६)
हरे गाहि वहं[1]। (१७)

रचे मोह[१] कदं ।+(१८)
बचे[१] दूरि[२] दंदं[३] । (१९)
नटे भेष रिंद[१] । (२०)
नमो ईस इंदं[१] ।[२](२१)

अर्थ—(१) जो जटा-जूट बाँधे हुए हैं, (२) और जिनके ललाट पर चन्द्रमा है (३) आदि के विराज [छन्द] में उनको वन्दन करता हूँ। (४) भुजंगी (सर्पिणी) जिनके गले में हैं, (५) और सिरों की माला [जिनके गले में] लटी हुई है, (६) जो गिरिजा को आनन्द देने वाले हैं, (७) जो शृंग (सींग) को निनादित करते हैं, (८) जो गंगा के ह्रद को पवित्र करने वाले हैं, (९) जो रण में वीरता के मद वाले हैं, (१०) जो गज-चर्म के आच्छादन वाले हैं, (११) जो काल को खाद्य करते (खाते) हैं, (१२) जिनके नेत्रों में अग्नि की उष्णता (ज्वाला) होती है (१३) जब जब प्रलय होता है, (१४) योग के शब्द (अनाहत नाद) के जो विजेता हैं, (१५) जो [शब्द] मानो भाद्रपद की घटा का होता है,(१६) जिन्होंने काम को तत्काल जलाया था, (१७) ऐसे तुम्हें हे हर, मैं 'त्राहि' कहता हूँ। (१८) जो मोह का कदन (नाश) करने वालों पर अनुराग करते हैं, (१९) द्वन्द्व जिनसे दूर बचता है (२०) और जो नट के वेष में रिंद (मस्तमौला) हैं, (२१) उन ईशेन्द्र (महेश) को नमस्कार करता हूँ।

पाठान्तर—÷ फ. में पूरे छन्द के स्थान पर केवल 'जटा जूटयौ' लिखा हुआ है।
*चिह्नित शब्द संशोधित पाठके है।
× म. में चिह्नित चरण नहीं है।
+ अ. में चिह्नित चरण नहीं है।
(१) मो. धा. बंध, इनके अतिरिक्त सभी में 'बंद' (वंदं—म.) है।
(२) १. मो. ललाटीय, धा. अ. ललाटेय, ना. लिलाटीय, स. लिलाटंत।
(३) १. धा. ना. अ. सिरोजाइ (सिरोजाय—धा.) छंदं, म. उ. स. विराजंत।
(४) १. धा. गलंदं, मो. गलिदं, ना. गलद्दं, म. उ. स. गलिद्दं, अ. गलेतं।
(५) १. मो. सिरोमल, म. सिरोसाल। २. धा. लंदं, उ. स. इंदं। ३. ना. स. में यहाँ और भी है :

हरयौ डोल नद्दं। हस्यौ (हन्या—ना.) पुत्र वद्दं।
खिजी मात भारी। सारापं विचारी।
करी जाकु ईसं। धरयौ पुत्र सीसं।
सबे किन्न अग्गे। तुही नाम लग्गे।
कलानंत छपं। गनेसं सरपं।
इकं दंत दंती। विराजंत कंती।
सु दीपन्ति अंसे। कोविद्दा प्रसंसे।
मनुं भूमि धारी। वराहं उधारी।
हसौ दंति तेजं। कला सोम केजं।
नमो देव कंदं। प्रजा ईस मंदं।
भर्ष भूत प्रेतं। तिजारी न हेतं।
इकं दीह पदं। दुनी देह मेकं।
भगत्तं सुचक्री। दीउ लछि वक्री।
इकं चोष अङ्कं। करे नाग नङ्कं।
सुरं जक्कि सुत्ती। जलं माहि पत्ती (मात्ती—ना.)।
धरं आक सीसं। त्रिलोकी स ईसं।

रत रस भारी। करुन्ना विचारी।
कीउ माल चर्म्यं। कीउ साध्यि कर्म्यं।
मिले पंध दांई। रम काम सौंईं।
इकें जालि्य आयौ। दायौ काम पायौ।
[पिजी रिष्यि मारी—केवल स. में]। कीयौ काम डारी।
भयौ पुत्र सर्व्वं। भुजा मोर सर्व्वं।
सिरो माल धारी । गनेसं विचारी।
[खिजे तक्ष ईसं। भयौ रोम बीसं।
अबला इकली। वियौ पुर्ष मिली—केवल स. में]

(६) १. अ. गिरीजाय नंदं।

(७) १. अ. उरो, म. सुरे, उ. अरं, स. सिरं। २. मो. सिंध, धा. सिंघ, म. सिंगि, उ. स. सिंधि।

(८) १. धा. उरे, अ. शिरो, मो. उणे, म. स. उनें।

(९) १. उ. रिनौ। २. धा. धीर।

(१०) १. धा. चम्म, मो. अ. चर्म। २. मो. सद्दं।

(११) १. मो. कले, अ. जरे। २. अ. कद्दं।

(१२) १. मो. चपिप (=चपे) अंग दंदं, धा. चखे अग्गि तद्दं, म. चंपे अंगि तदं, अ. चले अग्गि छद्दं, स. चषो अग्गि दद्दं।

(१३) १. मो. पुलि (=पुलैं), अ. प्रले, धा. म. स. प्रलैं। २. म. जादि।

(१४) १. धा. जये योगि, अ. जयं योगि।

(१५) १. धा. धरा।

(१६) १. मो. जुरे, शेष में 'जरे'।

(१७) १. अ. तद्द भद्दं, धा. ताहि भद्दं।

(१८) १. मो. धा. मोहि।

(१९) १. मो. बचि (=बचे), म. चबे, शेष में 'बचे'। २. म. रारि। ३. मो. ददं

(२०) १. मो. रदं।

(२१) १. धा. सिद्ध। २. म. में यह चरण इसी स्थान पर दुहराया हुआ है।

टिप्पणी—(३) छन्द < वन्द्=वंदन करना, प्रणाम करना। (७) सिंग < शृङ्ग=सींग। (८) उण < पुण < पू= पवित्र करना। (१०) छद्दं < छद=आच्छादन, आवरण। (११) षद्दं < खाद्य=भोजन। (१२) दंदं < द्वन्द्व=शीत उष्ण, किंतु यहाँ पर ताप। (१३) पुलैं < प्रलय=सृष्टि का अन्त। (१५) भद्द < भाद्र=भादों। (१७) वद<वद्=कहना (१८) रच < रच्=रचना, अनुराग करना। (२१) रिंद (फा०)=मस्तमौला।

[४]

भुजंगी:—

प्रथम्मं भुजंगी सुधारी[१] ग्रहंमं[२]। (१)
जिनै[१] नाम× एकं× अनेकं कहंमं॥ (२)
दुती लम्भयं[१] देवता[२] जीवतेसं। (३)
जिनै विस्व राष्यौ[१] बलं[२] मंत[३] सेसं[४*]॥[५] (४)
त्रिती[१] भारथी व्यास भारथ्थ भाष्यौ[२]। (५)
जिनै उत्त[१] पारथ्थ सारथ्थ साष्यौ[२]॥ (६)
चवं सुक्क देवं[१] परिष्यत्त*[२] पायं[३]। (७)
जिनै[१] उद्धरे[२] सव्व[३] कुरु वंस[४] रायं॥ (८)

नलै रूव[1] पंचम्म[2] श्रीहर्ष सारं[3] ।[4] (९)
नलै राय कंठं दिय नैषध्ध हारं[1] ॥ (१०)
छठं कालिदासं[1] छ भासा समुद्द[2] । (११)
नियं[1] सेतु बंधं[2] सु भोज[3] प्रबंधं ॥× (१२)
सतं[1] दंड माली सु लालिय[2] कवित्तं । (१३)
जिनै बुद्धि तारंग[1] सु गंगा सरित्तं[2] ॥[3] (१४)
गिरा सेष[1] बानी कवी कव्व[2] बंधं[3] ।[4] (१५)
जिनै सेस[1] उच्चिष्ट[2] कवि चंद[3] छंदं[4] ॥[5] (१६)

अर्थ— (१) [अपने वंदनीय कवियों के रूप में] मैं पहले उन भुजंगिनी को धारण करने वाले (शिव) को ग्रहण करता हूँ (२) जिनका नाम एक है [किन्तु] अनेक कहा जाता है। (३) दूसरे मैं उन जीवितेश (जीवन के स्वामी—यम) को पाता हूँ, (४) जिन्होंने विश्व को मन्त्र-बल से शेप (बचा) रक्खा है—अथवा जिन्होंने विश्व में मंत्र-बल को शेष (बचा) रक्खा है। (५) तीसरे मैं महाभारत के [कवि] व्यास को पाता हूँ जिन्होंने महाभारत कहा, (६) जिन्होंने [उसमें] पार्थ सारथी द्वारा उक्त गीता की साक्षी दी। (७) चौथे मैं शुकदेव और परीक्षित को पाता हूँ, (८) जिन्होंने कुरुवंश के समस्त राजाओं का उद्धार किया। (९) पाँचवे नल के रूप (अवतार) श्रीहर्ष को मैं प्रसिद्ध करता हूँ, (१०) जिन्होंने नैषध (नल) के कंठ में 'नैपधीय' का हार दिया (डाला)। (११) छठे मैं कालिदास को पाता हूँ, जिन्होंने षट्भाषा समुद्र पर (१२) भोज के प्रबन्ध (आयोजन) से ['सेतु बंध' काव्य के रूप में] निज (अपना) सेतु बाँध दिया। (१३) सातवें मैं कविता का लालन करने वाले दंडमाली (दंडी) को पाता हूँ, (१४) जिनकी बुद्धि की तरंगें सरिता गंगा [की तरंगों के समान] थीं। (१५) गिरा (सरस्वती) की शेष वाणी को लेकर अन्य कवियों ने काव्य-प्रबन्ध किए, (१६) जिनके भी [अनन्तर] शेष उच्छिष्ट को कवि चंद छंद-निबद्ध कर रहा है।

पाठान्तर— ÷ फ. में यह पूरा छन्द दो बार आता है : एक तो प्रथम खंड की समाप्ति पर और दूसरे दूसरे खंड केप्रारम्भ में; अ. में चरण १३ का उत्तरार्द्ध, १४ तथा १५ पहले एक बार आ लेते हैं तब पूरा छन्द भी इसीके बाद आता है। नीचे अ. फ. का पाठान्तर परवर्ती स्थान पर आए हुए पाठ के अनुसार दिया गया है जो अ. फ. दोनों में पूरा मिलता है।

* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

× चिह्नित चरण अ. में नहीं है।

(१) १. ना. सधारी। २. धा. ग्रहण्णं, अ. गृहनं, फ. म. गहनं (=गाहन्नं)।

(२) १. अ. जिनै, ना. जि—।

(३) १. अ. फ. लभ्यतं, म. लभ्यते। २. अ. फ. देता, ना. उ. स. देवतं।

(४) १. म. जनै असव संच्यौ। २. अ. म. उ. स. ना. बली, फ. बले। ३. धा. मित्र, अ. ना. मत्त (< मंत), फ. मंति। ४. म. जेसं। ५. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—
चवं वेद बंभं हरि किति भामी। जिनै ध्रम्म सा ध्रम्म संसार साषी।

(५) १. ना. बिनो। २. म. भष्या।

(६) १. अ. उत्ति, फ. उत्ते (< उत्ति)। २. म. पारथ सारथ सिष्यौ।

(७) १. अ. चवै सुकदेव, फ. परी सुक देव, म. चवे सुषदेवं। २. धा. परिष्षत्थ, ना. अ. म. परीछत्त, फ.

परीक्षत, स. परीयत्त। ३. अ. फ. राय।

(८) १. म. जिन। २. उ. स. उद्धर्यौ। ३. धा. सव्व। ४. धा. कुरुवंस, ना. अब्ब कुरू (कुरु) वंस, म. सब कुर वंस, उ. अब्ब कुर वंस, स. अब्ब कुव्वंस।

(९) १. फ. नले रूप, उ. स. नरं रूव (रूप-स.), म. नले रूव। २. धा. पंचमा। ३. फ. पंचम नैषधि हारं। ४. ना. में अगला चरण इस चरण के स्थान पर भी है।

(१०) १. म. उ. नले राइ कंठे दि नेषद्ध हार, स. नले राइ कंठं दिन्ने षद्ध हारं, अ. नले राय कंठं नेषद हारं, फ. श्री हर्ष सिंगार अनिलार सारं।

(११) १. ना. म. अ. फ. छठे कालिदासं (कालदासं—म. ना.)। २. म. सभा सुष पदं, ना. सुभाषा सबुद्दं, उ. स. सुभाषा सुबद्धं। ३. उ. स. में यहाँ और है :—

जिनै बाग बानी सुबानी सबद्दं। किधौं कालिका सुक्ख वासं सुमुद्धं।

(१२) १. फ. निरे, म. उ. स. ना. जिन। २. म. बंध्या। ३. ना. ज भोज प्रबंधं, फ. ह भोजस्य बंदं, अ. सुभो यं प्रबंदं, उ. स. ति भोज प्रगं।

(१३) १. म. सुतं। २. ना. दंडमा माल लालिय, फ दंडायं लाल माली, म. अ. डंड (दंड—अ.) माली सुलाली, ना. उ. स. दंड (डंड—ना.) माली उमाली।

(१४) १. धा. म. अ. जिगौ सुद्ध (सुध—म.) सारंग, फ. जिने उद्धरी पुव्व (तुउ०चरण८)। २. अ. फ. ना. गंगा पवित्तं, ना. गुण सरित्तं, म. गंगा सुरीतं। ३. ना. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—जयदेव अट्ठं कवी कविराय। जिनै केवलं कित्ति गोविंद गायं। उ. स. में यहाँ पुनः और है :—

गुरं सव्व कव्वी लहु चंद कव्वी। जिनं दर्सियं देवि सा अंग अव्वी।

(१५) १. ना. गिरी सेव, म. गिरो शेष। २. ना. काव, म. कवि। ३. अ. फ. ना. म वदे। ४. उ. स. में पूरे चरण का पाठ है : कवी कित्ति कित्ति उकत्ती सुदिक्खी। फ. में परवर्ती स्थान पर के पाठ में चरण छूटा हुआ है, किंतु पूर्ववर्ती स्थान पर के पाठ में यह चरण भी है।

(१६) १. धा. जिण सेस, अ. फ. तिनहि पुच्छि, ना. तिनें शेष, म. नवूतास। २. अ. में शब्द छूटा हुआ है फ. उच्छिष्ट। ३. धा. कवि छन्द, फ. कवि कवि। ४. ना. म. अ. फ. छंदे। ५ उ. स. में चरण का पाठ है : तिन की उच्छिष्टी कवि चंद भष्षी।

टिप्पणी—(२) यम ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं, एक विष्णु-स्तोत्र तथा एक स्मृति के रचयिता माने जाते हैं। (४) मत < मंत्र। सेस < शेष। (९) रूव < रूप। सार < सारय् = प्रख्यात करना, प्रसिद्ध करना। (११) षटभाषा : प्राकृत, संस्कृत, मागधी, शौरसेनी, पैशाचिका और अपभ्रंश (१२) नयं = निज। (१५) कव्व < काव्य।

[५]

दोहा— छंद[१] प्रबंध कवित्त जति[२] साटक[३] गाह दुहत्थ[४]। (१)
लहु गुरु मंडि त छंडिहउं[१]* पिंगल[२] भरह[३] भरत्थ[४]॥ (२)

अर्थ—(१) कविता के जितने [प्रकार के] छंद-प्रबंध होते हैं, साटक [-बंध], गाहा [बंध,], दूहा [-बंध] [आदि], (२) उनमें लघु-गुरु का मंडन करके पिंगल [के छंद-सूत्र], भरत [के नाट्य शास्त्र] और महाभारत को [पीछे ?] छोड़ दूँगा—उनसे बढ़ कर रचना करूँगा।

पाठान्तर— * चिह्नित संशोधित पाठ वा है। (१) १. ध. बंध। २. धा. अ. फ. रस, ना. स. जुति, म. चित। ३. म. साटकि। ४. मो. अ. दूहथ, अ. फ. दुअथ्य, ना. दुअर्थ, म. दुरथ्य।

(२) १. मो. पंडित छंडिहु (=छंडिहउ), धा. मंडित पंडियहु, अ. मंडित पंडिया, ना. मंडित पंडइहि फ. मंडित पंया, म. मंजिमंडी इहै, उ. स. मंडित खंडयहि। २. म. प्यंगल। ३. ना. म. उ. स. अमर। ४. मो. भरथ।

टिप्पणी—(१) जति < जत्तिय < यावत्=जितने। (२) भरह < भरत।

[६]

साटिका— राजं जा अजमेरि[१] केलि कविरं[२] वृत्ता* रता[३] संभरि[४] । (१)
दुद्धारा भर×[१] भार[२] नीर×[३] वहनो दहनो दुरग्गो[४] अरि । (२)
सोमेसुर नर×[१] नंद दंग[२] गहिला[३] वहिला वनं वासिनं[४] । (३)
निर्मनिं[१] विधिना त* जान[२] कविना ढिल्ली[३] पुरं भासिनं[४] ॥ (४)

अर्थ—(१) जिस राजा की कपिल (धूलि-धूसरित) केलि अजमेर में हुई, जिसके अनुराग-पूर्ण वृत्त साँभर में हुए, (२) जिसका दुधारा (दो धारों का खड्ग) उस भारी भट के नीर (उसकी कांति) को वहन करता था, और शत्रुओं के दुर्गों को दग्ध करने वाला था, (३) वह नर (पौरुष युक्त) सोमेश्वर का पुत्र, जो दंग गहिल (युद्ध के लिए पागल) रहा करता था, जो बहिलावन का निवासी था, (४) वह विधाता के द्वारा, मानो कवि के द्वारा, दिल्लीपुर में भासित (द्योतित) होने के लिए बनाया गया था।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द म. में नहीं हैं।

(१) १. धा. मो. स. ना. अजमेर, फ. अजमेरु । २ धा. कविलं, म. कवीला, ना. अ. फ. कलयं। ३. धा. त्रितां (=त्रित्ता) रता, मो. वृता नता, अ. फ. ना. वृंदं नृतं, म. वृंत्तानिता, स. व्रदं व्रतं । ४. अ. फ. ना. सुंदरी।

(२) १. ना. दुधारा धर, अ. दुद्धारा धर, फ. दुद्धारध् धरि, म. दुदार भार । २. ना. धीर, अ. म. स. भीर, फ. भीरु । ३. मो. ना. स. भीर । ४. धा. दहनो दुरग्गं, ना. दहनोपि दुर्ग, मो. म. स. दहनो दुरंगो (दहनौ दुरंगो–म. स.), अ. फ. दहनोपि दुर्ग्गं।

(३) १. धा. सोमेसो सुर, अ. सोमेसुर वर, फ. सोमेस्वर वरु, ना. स. सो सोमेसर, म. सोमेसुर। २. धा. नंद वंद, अ. दं–, फ. में दूसरा शब्द नहीं है, ना. म. नंद नंद, स. नद दंद। ३. म. गवहला। ४. मो. म. स. वासनं, फ. वासनी।

(४) १. म. निवर्ण । २. धा. विधनान जानि, मो. विधिना न जान, अ. फ. विविना सुजानि, म. वि ना निजानि, ना. चहुवान जान। ३. धा. अ. फ. दिल्ली। ४. मो. म. वासनं, धा. भासिनं, अ. वासिनं, . वासनी।

टिप्पणी—(१) कविर < कपिल=भूरा, मटमैला । रत्त < रक्त=अनुरागपूर्ण । (२) दुरग्ग < दुर्ग। (३) गहिल < ग्रहिल [दे०]=भूतग्रस्त, पागल, उद्भ्रान्त। (४) भासिन्=द्युतिमान्।

—:०:—

२. जयचंद राजसूय यज्ञ और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान

[१]

पद्धडी— [1]कल[2] अथ्थ[3] पथ्थ[4] कनवज्ज राउ[5] । (१)
सत खित्त सेव*[1] धरि* धम्म चाउ[2] ॥[3] (२)
वारयण*×[1] भूमि× हय गय[2]× अनग्गु[3] । (३)
पराठिआ पूनि[1] राजसू जग्गु[2] ॥ (४)
सुद्धिग*[1] पुराण बलि[2] वंस वीर । (५)
भुवगोल[1] लिषित[2] दिष्षित[3] सहीर ॥ (६)
छिति[1] छत्रबंध राजनि[2] समान । (७)
जितिआ[1] सयल[2] हय बल[3] प्रमान ॥ (८)
पुच्छइ[1] सुमंत[2] परधान तव्व[3] । (९)
अब[1] करहि[2] जग्गु जे[3] लेहि*[4] कव्व*[5] ॥ (१०)
उतरु त दीअ[1] मंत्रिय[2] सुजान[3] । (११)
कलिजुग्ग नहीं[1] अर* जुग[2] प्रमान[3] ॥ (१२)
करि धम्म[1] देव देवर[2] अनेय[3] । (१३)
षोडसा[1] दान दिनु[2] देहु देव[3] ॥ (१४)
सुंहु सिष्ष मानि[1] नृप पंग[2] जीव[3] । (१५)
कलि थप्पिय[1] नही अर्जुन सु भीव[2] ॥ (१६)
सुकि पंगु राय[1] मंत्रिय[2] समान । (१७)
लहु लोह[1] अब्ब जो लहुं* थयान[2] ॥ (१८)

अर्थ—(१) कल (मनोहर) अर्थ के पथ में कन्नौजराज था, (२) जो सप्त क्षेत्र (जैन धर्म के अनुसार जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक, और श्राविका) । का सेवन करता था और धरा पर धर्म में रुचि रखता था । (३) [उसके] भूमि के वारण (शत्रुओं से बचाव या सुरक्षा के साधन) अनग्र (शूलों से परिवेष्ठित) हय और गज थे । (४) [ऐसे कन्नौजराज ने] पवित्र राजसूय यज्ञ की परिस्थापना की । (५) उसने पुराणों के बलशाली और वीर वंशों का शोध किया (६) और जो कुछ लिखित भूगोल (भू-वृत्त) था, उसको हेला-पूर्वक देखा । (७) क्षिति के छत्रबन्ध [छत्र धारण करने वाले] राजाओं से (८) [उसने] सब कुछ अपने हय-बल (अश्व-सेना) के द्वारा जीता । (९) [तदनंतर] अपने प्रधान (अमात्य) से वह यह मन्त्र (विचार) पूछने लगा—इस मन्त्र (विचार) के सम्बन्ध में परामर्श करने लगा—कि

(१०) वह अब यज्ञ करे [जिससे] कि काव्य (यश) का लाभ करे। (११) ज्ञानी मन्त्री ने तो उत्तर दिया, (१२) "कलियुग इतर युगों का सा नहीं है—अथवा कलियुग में इतर युग प्रमाण (प्रामाण्य) नहीं हैं। (१३) हे देव, अनेक देवालय [निर्मित करा] कर (१४) षोडस [प्रकार के] दान [प्रति] दिन दें। (१५) हे नृप पंग जीव, मेरी सीख मानें, (१६) यह कलियुग है, [इस युग में] अर्जुन और भीम नहीं हैं [जिनके पराक्रम के बल पर युधिष्ठिर ने राजसूय किया था]।" (१७) [इस उत्तर को सुनकर] पंगराज मंत्री से क्षुब्ध (क्रुद्ध हुआ) (१८) और उसने कहा, 'यदि मैं अब लघु लोभ-लाभ करता हूँ [और उसके लिए यज्ञ नहीं करता हूँ] तो यह [मेरा] अज्ञान होगा।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द धा में नहीं है।

(१) १. धा. में इसके पूर्व है : वारता—हिव कनवज का राजा की वात कहइ छइ।
ना. में इसके पूर्व है : वचनिका। कनवज्ज को राजा जैचंद दलं पांगुरो ताकौ स्थान कौन है तहां की
वात प्रबंध अब राजसुजग्य की बात मंडो है। २. उ. स. में इसके पूर्व और है :—

थप्पैं सुभट्ट राजसु पंग। पर हरें पाप कर वत्त गंग।
धुनि धुनि सु बिप्र बोलें सिवेद। तन करें बिमल अघ करें छेद।
ग्रह ग्रहन हेम कसि कसि सुनारि। मानों कि सूर ससि किन्न तार।
जगमगे हेम बिधि बिधि बनाइ। जिम निगम अंत बसि बरुन आइ।
ग्रह ग्रहन कलस तोरन समान। कैलास सिषर प्रतपै सु भान।
ग्रह ग्रहन गौण रज्जत बनाइ। कैलास हरह ससि अद्ध धाइ।
ग्रह ग्रह किपाट जगमग जराइ। कैलास लग्गि नवग्रह रिसाइ।

(तुल० स. ४८. ७२-७४ जो सभी प्रतियों में है।)
३. धा. कल अथ्य, मो. कल यथ, फ. कलि अंथ, ना. कल हंत, द. उ. स. कलि अंत। ४. धा. पव। ५. मो. राअ, अ. फ. राव, उ. स. राइ।

(२) १. मो. उं सत्त षित सिव (=औ सतषित सेव), धा० सत षेत सीव, अ. सत सील रत्त, फ. सब सील रत्त, ना. द. सत पत्ति (सतिपत्त—ना.) सील, उ. स. सतपती सील। २. धा. धुरि धम्म चाउ, मो. ना. धर धर्म वाउ (चाउ—ना.), अ. धर धर्म चाव, फ. धर धर्म पाउ, उ. स. धर ध्रम्म चाव।
३. उ. स. में यहाँ और है :—

सुनि रोस कियो पहु पंग राव। मागधह सूत बंदनि बुलाव।
पुच्छयौ सुवंस कमधज्ज ग्रब्ब। तुम बंस जग्य किहि कियौ पुब्ब।
जिहि बंस जग्य नन होइ राज। भुगतौ न भूप सुप सर समाज।
तुम बंस भए कमधुज्ज सूर। दीनौ सुराज राज रस भूर।
तव बंस भयौ वाहन नरिंद। अंतरिष रथ्थ चलि सग्ग कंद।
तुम बंस भयौ पूरूर क्रूर। रथ च्यारि चक्क जिहि जीति सूर।
सत सिंधु सूर जिह रथ्थ चील्ह। तुम बंस भयौ नृप राज नील।
तुम बंस भयौ नलराइ अंद। नैषद्ध हार ह्वौ धर्यौ बंध।
षट चक्र भए कमधज्ज आदि। किन्नौ नरिंद जिह बरुन बाद।
जीमूत धर्यौ जिहि चक्र सीस। संसार कित्ति कीनी जगीस।
को कर पंग सौं दुष्ट आय। मंडै सुजग्य निहचै स राय।

(३) १. मो. वर निसांण, धा. त्रुटित है, अ. फ. वर अश्व, ना. वारुणाय, द. वारुनि, उ. स. बारुन।
२. मो. भूमिह उधम। ३. मो. अंनंगु, धा. अनग्गू।

(४) १. धा. परठिया पुन्य, मो. परठिउ (=परट्ठिअउ) पूनि, ना. परठीय पुन्य, अ. पठया पंग, फ. परठ्या पंग, उ. स. परठ्यं पुन्न। २. मो. राजसूअ जग्गु, धा. राजसु जग्गु, अ. राजसूजग्ग, फ. राज सुयंग जग्ग।

(५) १. धा. सुद्धिय, मो. सोधी, अ. फ. उ. स. सोधिग (< सुधिग)। २. फ. वल।

(६) १. मो. ना. द. उ. स. भूगोल, अ. फ. भुवलोक। २. फ. लिप्पति। ३. मो. दिपित, ना. दिप्पत, उ. स. दिप्पित।

(७) १. मो. छति। २. मो. राजा, अ. फ. ना. उ. स. राजन।

(८) १. मो. जित्तीआ, धा. ना. जित्तिया, उ. स. जित्तेति। २. मो. उ. स. ना. सकल, फ. सवल। ३. ना. द. उ. स. गय।

(९) १. ना. पुच्छि (=पुच्छइ), धा. पुच्छई, अ. पुच्छयं, उ. स. पुच्छे, ना. पुच्छे। २. अ. समंति, फ. समंत। ३. धा. परित सत्य, अ. फ. परवान तच्छ (< तत्व)।

(१०) १. धा. इम। २. मो. करु (=कउ) धग, ना. उ. स. करउ जग्ग। ३. धा. इह, मो. जे, अ. फ. जिहि, ना. द. उ. स. जिम। ४. धा. लहौ (< लहि=लहइ), मो. लिहि (< लेहि), ना. चले, द. उ. स. चलहि। ५. धा. कत्थ।

(११) १. धा. उत्तर सु देइ, मो. ऊत्तर त दीअ, फ. उत्तर सौ दीय, उ. स. उत्तर सु दीन। २. मो. मंत्री। ३. उ. स. सुजानि।

(१२) १. उ. स. नाहि। २. धा. अरजनु, मो. अर्जुन, अ. अरजुन, फ. अरजन, ना. द. उ. स. विय जुग। ३. अ. फ. समान।

(१३) १. मो. ना. अ. फ धर्म, धा. धम्म, द. उ. स. अम्म। २. मो. द. ना उ. स. देवल, फ. देवर। ३. अ. फ. ना. उ. स. अनेव।

(१४) १. धा. षोडंस (=षोडश) २. मो. दिनु (< दिनु), धा. नित। ३. धा. देव देय, मो. देहु देय।

(१५) १. धा. मो सिक्ख सुणवि, मो. सुंहु सीष मांनि, अ. फ. ना. द. उ. स. मो सीख मानि। २. धा. ब्रध पंग, मो. नृपंग, अ. फ. प्रसु पंग। ३ ना. तैय।

(१६) १. मो. अनु, फ. अच्छि, ना. द. उ. स. जुग्ग। २. धा. राजा सुग्रीव, मो. अर्जुन सुसीव, ना. अर्जुन सयेव।

(१७) १. ना. द. उ. स. राव। २. मो. मंत्रीअ, ना. मंत्रिनि।

(१८) १. धा. मो. ना. लोभ। २. धा. कुल्यौ नियान [पाठां० कहिन आन], अ. कुल्यौ नियाम, फ. कुह्यो कही आन, मो. जो कुहुं (=कुहउं) अयान, ना. द. उ. स. बोल्यु अयान।

टिप्पणी—(१) अथ्थ < अर्थ। (२) खित्त < क्षेत्र। धम्म < धर्म्म। (३) वारण्ण > वारण = बचाव या सुरक्षा के साधन। अनग्ग < अनग्न=जलादि से परिवेष्ठित। (४) परिठ्ठवण < परिस्थापना। (६) हील > हेला=अनादर, तिरस्कार। (७) समान=साथ (दे० बाद का चरण १७)। (८) सयल < सकल। (९) मंत < मंत्र। (१०) जेम=यथा, जैसे, जिस तरह से। कव्व < काव्य=यश। (११) त < तुम्हें। (१२) अउर < अपर=अन्य। (१३) धम्म < धर्म। देवर < देवालय। अनेव < अनेक। (१४) षोडसा < षोडस। [षोडस दानों की सूची के लिए दे० मोनियर विलियम्स की 'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी']। (१६) अथ्थि < अस्ति=है। सीष < सीख। (१७) समान=से [दे० ऊपर का चरण ७]। (१८) लोह < लोभ। अयान < अज्ञान।

[२]

गाथा— के के न गया महि मंडलंमि[२] धर ढिल्लाय[३] दीह दीहाइ[४]। (१)
विप्फुरइ[१] जासु[२] कित्ती ते गया[३] नहु[४] गया[५] हुंति[६]॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचन्द ने कहा,] "इस महि मण्डल से धरा को दीर्घ (बहुत) दिवसों तक ढीला करके (भोग करके ?) [भी] कौन कौन नहीं गए ? (२) जिसकी कीर्ति विस्फुरित होती है, वही गत गत नहीं होता है।

पाठान्तर—(१) १. ना. को को। २. धा. न गया मह मंडलानि, मो. ना. न गया महि मंडलंमि, अ. फ. न गय महि मद्द द. ना. उ. स. न गया महि मंडलाइ (मंडलाय–ना. उ. स.)। ३. धा. धर ढिल्लिय, मो. धर धत्तलिक्कण, अ. फ. ढिली ढिलाय, ना. वज्जए, द. उ. स. वज्जाए। ४ धा. दीह दोहाइ, मो. दह डीहा, अ. दीह होहाय, फ. दीह होरहौ, ना. द. दीह द्विवहाइ, उ. स. दीह दसहाइ।

(२) १. धा. द. उ. स. विप्फुरे, अ. बिहुरंति, फ. विहुरंत। २. धा. तातु, ना. जास। ३. अ. तं गय, फ. तं गया। ४. धा. नहि, अ. फ. नही, ना. नह, द. स. नवि। ५. अ. फ. गये। ६. उ. स. हूंती।

टिप्पणी—(१) गय < गता: । दीह < दीर्घ । दीह। < दिवस। (२) विप्फुर- < विस्फुर-। गया < गता:।

[३]

पद्धडी— पहु[१] पंगु राउ[२] राजसू[३] जग्गु[४]। (१)
आरंभ रंभ[१] कीतउ*[२] सुरग्ग[३]॥ (२)
जित्तिआ[१] राउ[२] सब सिंधु आर[३]। (३)
मेलिया[१] कंठ[२] जिम[३] मुत्ति हार[४]॥ (४)
जोगिनी पुरेस[१] सुनि भयउ*[२] षेद। (५)
आवइ[१] न माल मझ इह[२] अभेद॥ (६)
मोकले[१] दूत तब ही[२] रिसाइ। (७)
असमथ्थ सेव[१]× किम[२]× भूमि× खाइ ×॥ (८)
बंधु[१]× समेत[२]× सामंत सथ्थ[३]×। (९)
उत्तरे[१] आनि[२] दरवार तथ्थ[३]॥[४] (१०)
बोलउ*[१] न वयण[२] प्रथिराज तांहि[३]। (११)
संकुरिउ*[१] सिंघ[२] गुरजनन चाहि[३]॥ (१२)
उच्चरउ*[१] गुरुअ[२] गोयंद[३] राज। (१३)
कलि मझ्झि[१] जग्गु[२] को करइ[३] आज॥ (१४)
सत जुग्ग[१] कहइ[२] बलिराइ[३] किन[४]। (१५)
तिनि[१] कित्ति काज त्रैलोक[२] दिन[३]॥ (१६)
त्रेता[१] ज*[२] कीन्ह[३] रघुनंद साइ[४]। (१७)
कुव्वेर कोट[१] वरिषउ*[२] सुभाइ[३]॥ (१८)
धनि[१] धम्म पुत्त[२] द्वापर[३] सुणाइ[४]। (१९)
तिहि पथ्थ[१] वीर अरु[२] हरि सहाइ[४]॥ (२०)
कलि मझ्झि[१] जग्गु[२] को करण[३] जोग। (२१)
विग्गरइ* तु बहु विधि[१] हसइ*[२] लोग॥ (२२)
दल दव्व[१] गव्व[२] तुम[३] अप्रमांन[४]। (२३)
बोलहु[१] त बोल देवन[२] समांन॥ (२४)
तुम जानउ*[१] षित्री हइ न[२] कोइ। (२५)

निव्वीर[१] पुहवि[२] कबहू न होइ ॥ (२६)
हम जंगलि[१] वास कालिंदि[२] कूल[३] । (२७)
जानहिं[१] न राइ[२] जयचंद मूल ॥ (२८)
जानहिं[१] त देसु[२] जोगिनि[३] पुरेसु । (२९)
जरासिंध वंसि[१] पुहमी[२] नरेसु ॥ (३०)
तिहु वारि[१] साहि बंधिआ[२] जेनि[३] । (३१)
भंजिआ[१] भूप भड़ि[२] भीमसेन[३] ॥ (३२)
सइंभरि*[१] सकोप[२] सोमेस पुत्त[३] । (३३)
दानव ति[१] रूव[२] अवतार धुत्त[३] ॥ (३४)
तिह कंधि[१] सीस किम[२] जग्ग[३] होइ । (३५)
सु प्रिथिमी[१] नही[२] चहुआन कोइ ॥ (३६)
देषई सभ्भ तेहि[१] सिंघ[२] रूप । (३७)
मानहिं न जग्गु[१] मनि अन्न[२] भूप ॥ (३८)
आदरह मंद उठि गयु*[१] वसिट्ठ[२] । (३९)
जिम गामिनी सभा[१] बुध जन[२] उविट्ठ[३] ॥ (४०)
फिरि चलिग तब्ब[१] कनवज्ज मंझ[२] । (४१)
भयु मलिन[१] मुरव्ख[२] जांनु कमल[३] संझ[४] ॥ (४२)
तिनि दूर दूत[१] जइ* कहिग[२] वयन । (४३)
अति रोस किए[१] रत्ते[२] नयन्न ॥ (४४)
बोलयउ[१] सुमंत परधान तब्ब । (४५)
कनवज्ज नाथ[१] करि जग्गु[२] अब्ब ॥[३] (४६)
जब[१] लग्गि[२] गहिहि[३] चहुआन चाहि । (४७)
तब लग्गि तांह[१] टलि[२] काल जाहि[३] ॥ (४८)
ये*×[१] आसमुद्द[२] नृप करहिं[३] सेव । (४९)
उच्चरहु[१] कामु सो करहुं[२] देव ॥ (५०)
सोवन्न[१] प्रतिमा[२] प्रथीराज वांन[३] । (५१)
थापउ* सु[१] पोलि जिम दरव्वान[२] ॥ (५२)
सइंवरह* संग[१] अरु जग्गु[२] काज । (५३)
विहु जन[१] वोलि*[२] दिन घरहु[३] आज ॥ (५४)
मंत्रीनु राउ[१] परबोधिआ[२] जांम । (५५)
घुम्मिआ[१] वार[२] नीसान तांम ॥ (५६)
सुनि सहनि[१] बंधिअ[२] बंदनवार[३] । (५७)

कट्टहिं त[1] हेम महि महि[2] सोनार[3] ॥ (५८)
भूपन सुदान[1] सुर समि आचार । (५९)
आनंद इंद[1] सम किय[2] विचार ॥ (६०)*
धवलेह[1] धाम[2] देवर[3] सुचीय[4] । (६१)
तमु[1] हरहिं×[2] कलस कल बिंब[3] लीय[4] ॥ (६२)
धज बंधन[1] सोम[2] जनु[3] मधु वद्धीय[4] । (६३)*
मनु सज्जिआ[1] बंभ केलास बीय ॥[3] (६४)

अर्थ—(१) प्रभु पंगराज (कन्नौजराज) ने राजसूय यज्ञ का (२) समारंभ राग (अनुराग) पूर्वक किया। (३) सिंधु (समुद्र) के आस-पास [तक] सब राजाओं को उसने जीता (४) [और उन्हें इस प्रकार अपने अधीन कर लिया] जैसे उसने कंठ में मोतियों का हार डाल लिया हो। (५) [किन्तु] योगिनीपुर (दिल्ली) के राजा (पृथ्वीराज) के सम्बन्ध में यह सुन कर उसको खेद हुआ (६) कि वह इस माला में अभिन्न रूप से नहीं आ रहा था। (७) तब [उसने] हृदय में रुष्ट हो कर दूत भेजे, (८) [यह सोचते हुए कि] यदि वह (पृथ्वीराज) उसकी सेवा करने में असमर्थ था तो वह किस प्रकार भूमि को खा (भोग ?) रहा था। (९) तब [वे दूत कन्नौजराज के] बन्धुओं के समेत और सामन्तों के साथ (१०) [पृथ्वराज के] दरबार में आ उतरे। (११) उनसे पृथ्वीराज वचन नहीं बोला, (१२) वह सिंह गुरुजनों को देख कर सिकुड़ गया (सकोच में पड़ गया)। (१३) [यह देखकर] उसके एक गुरु (पूज्य) गोविन्द राज ने कहा, (१४) "कलियुग में आज कौन यज्ञ कर रहा है ? (१५) कहते हैं कि सतयुग में राजा बलि ने [यज्ञ] किया था (१६) और उन्होंने कीर्त्ति के लिए [वामन को] तीनों लोक दे दिए थे; (१७) त्रेता [युग] में रघुनन्दन (राम) ने जो विशेषता पूर्वक किया था (१८) [उसका कारण यह था कि उनके] कोट (नगर) पर कुबेर ने भावपूर्वक [कोष को] बर्षा की थी; (१९) सुना जाता है कि द्वापर युग में धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) [यज्ञ करके] धन्य हुए, (२०) [किन्तु] उनके सहायक वीर पार्थ (अर्जुन) तथा हरि (कृष्ण) थे। (२१) कलि में [राजसूय] यज्ञ करने के योग्य कौन है ? (२२) [यदि वह] बिगड़ गया (विधिपूर्वक समाप्त न हो सका) तो लोग बहुत प्रकार से हँसेंगे। (२३) तुम्हें दल (सेना) और द्रव्य का झूठा गर्व है, (२४) तभी तुम देवताओं के समान बोल बोल रहे हो ! (२५) तुम जानते (समझते) हो कि क्षत्रिय कोई नहीं [रह गया] है, (२६) [किन्तु] पृथ्वी निर्वीर कभी नहीं होती है। (२७) कालिन्दी-कूल पर [कुरु] जांगल में हमारा निवास है,' (२८) जयचन्द राज को हम मूल (प्रमुख) नहीं मानते हैं, (२९) हम तो आदेश योगिनीपुरेश्वर (दिल्ली नरेश) का जानते (मानते) हैं—(३०) उस पृथ्वी, नरेश (पृथ्वीराज) का जो जरासंध के [पुराण-प्रसिद्ध] वंश का है, (३१) जिसने तीन बार शाह [शहाबुद्दीन] को बन्दी किया और (३२) जिसने राजा (गूर्जराधिपति) भीमसेन [चौलुक्य] को गिरा कर [उसकी शक्ति को] नष्ट किया, (३३) जो शाकंभरी (साँभर) के कोप युक्त सोमेश्वर का पुत्र है (३४) और जो रूप में दानव है और धूर्तावतार है। (३५) [जब तक] उसके कन्धे पर सिर है, [राजसूय] यज्ञ किस प्रकार हो सकता है ? (३६) क्या पृथ्वी पर कोई चहुआन [शेष] नहीं रहा ?' (३७) सब उसको सिंह के रूप में देखते हैं, (३८) और मन में अन्य [किसी को] जगत् का भूप नहीं मानते हैं। (३९) मन्द आदर (निरादर) के कारण बसीठ उठ कर चले गए, (४०) जैसे ग्रामीण (ग्राम-प्रमुख की) सभा से बुधजन उद्वेष्टित (बंधन-मुक्त) हुए हों। (४१) [दूत] तब लौटकर कन्नौज में गए। (४२) उनका मुख इस प्रकार मलिन हो गया था मानो सन्ध्या-काल में कमल हो

(४३) उससे (जयचन्द से) दूर (अन्यत्र) जब उन दूतों ने [वे] वचन (वाक्य) कहे, (४४) तो [जयचन्द ने] अत्यन्त रोषयुक्त होकर नेत्र लाल कर लिए। (४५) तब उसके प्रधान (अमात्य) ने यह मन्त्र कहा, (४६) "हे कन्नौजनाथ, अब आप यज्ञ करें, (४७) [क्यों कि] जब तक आप चहुआन को पकड़ने की प्रतीक्षा करते रहेंगे, (४८) तब तक उसका (यज्ञ का) समय टल जायगा। (४९) समुद्रपर्यन्त के ये राजा आपकी सेवा कर रहे हैं, जो काम आप वह कहें, हे देव, ये करें। (५१) पृथ्वीराज के वर्ण (आकार-प्रकार) की सुवर्ण की प्रतिमा (५२) प्रतोली द्वार पर स्थापित कर दें— जैसे वह दरबान (द्वारपाल) हो। (५३) साथ-साथ स्वयंवर भी हो और यज्ञ-कार्य भी, (५४) [इसके लिए] विद्वानों को बुला कर आज दिन निर्धारित करें।" (५५) जब मंत्रियों ने राजा (कन्नौजराज) को [इस प्रकार] समझाया, (५६) तब राजद्वार पर निशान (धौंसा) घूमा (बजा)। (५७) [इस निशान के शब्द को] सुनकर बंदनवार बाँधे गए, (५८) और घर घर सुनार हेम (सुवर्ण) काटने [और आभूषणादि बनाने] लगे। (५९) राजा आभूषणों का दान और देव-तुल्य आचरण करने लगा, (६०) और आनन्दित होकर उसने इन्द्र के समान विचार किया (अपने को इन्द्र के समान समझा)।

(६१) धाम (गृह) धवले (सफेदी से पोते) गए, और देवालयों की सफाई की गई, (६२) उनके सुंदर कलश [सूर्य तथा चन्द्र का] बिम्ब धारण करके अन्धकार का हरण करने लगे। (६३) नगरी ध्वजाओं [और बन्दनवारादि] के बन्धनों से ऐसी लगने लगी मानो मधु बसित (मधु दैत्य का निवास—मधुपुरी) हो, (६४) अथवा मानो ब्रह्मा ने दूसरे कैलास का साज किया हो।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाकठ है।
× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
× चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।
÷ चिह्नित चरण उ. स. में नहीं है।

(१) १. फ. पौहु। २. धा. द. राय, ना. स. राव, ना. अ. फ. राइ। ३. धा. मो. राजसुअ। ४. मो. जंगु (=जग्गु), अ. जग्गि, फ. जग्ग, ना. जग्य।

(२) १. अ. अग्ग, धा. मो. द. फ. रंग। २. मो. मूकउ, अ. फ. कीनौ (<कीनउ)। ३. मो. तुरंगु, धा. सुरंग (=सुरग्ग), फ. सुरंगु, ना. सुअग्ग, द. सुचंग, उ. स. अचग्ग।

(३) १. धा. अ. फ. ना. जिसिया, मो. जीतीआ, उ. स. जित्तिए। २. धा. राय, अ. फ. राइ, स. राज।

(३) मो. आर, अ. फ. शह।

(४) १. धा. महिया, उ. स. मिलए, द. मेलिहया। २. धा. कंध। ३. उ. स. जनु। ४. धा. मो. पोतिहार, फ. मुत्तियहार।

(५) १. फ. सुनिन पुरुस, अ. जुम्मिनि पुरेस, ना. द उ. स. जुग्गिनिय (जुग्गिनी,-ना.) पुरइ। २. मो. मयु—धा उ. स. मयौ।

(६) १. मो. आवि (=आवइ), अ. ना. आवै, द. उ. स. आवहि। २. मो. मानल मोह मुशि, फ. माल माझहि, द. माल मझहिं, ना. माल मुझइ, उ. स. माल मझ अह।

(७) १. मो. मोकले, शेष में 'मुक्कले'। २. मो. ही, ना. तह, उ. स. तिन।

(८) १. उ. स. सेस। २. मो. किमि।

(९) १. ना. बंधौ, उ. स. बंधो। २. ना. सुमंत। ३. मो. तथ्य।

(१०) १. मो. किउंसवारि, ना. उत्तइ, धा. उ. स. द. उत्तरहि। २. मो. आइ, फ. अम्र। ३. मो. तिथ्थ, उ. स. अथ्थ। ४. ना. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

सुनि दूत चलीय दिल्लीय थान। आजानु बाहु जहं चाहुवान।
पहुच्यौ स जाइ दिल्लीय ठाम। सुदरीय बत्त जैचन्द्र नाम।
हुजूर बोलि पट्टाइ राज। किहि आप दत्त सो जंपि काम।
तब दूत कही दिल्ली नरेस। आदरस जंपि जैचंद पेसु।

राजसू अश्य आरंभ कीन । दस दिसिन भूप फुरमान दीन ।
छिति छत्र बंध आए सु सब्ब । तुम चलहु बेगि नहीं बिरसु अब्ब ।
फुरमान दीन चहुवान तोहि । कर छडीय दब्बि दरबान तोहि ।

(११) १. धा. बोल्यो, मो. बोलु (=बोलउ), अ. फ. बुल्यौ, ना. द. बुल्यौ, उ. स. बुल्हौ । २. ना. बंत । ३. धा. अ. फ. ना. प्रिथिराज साहि, उ. स. प्रथिराज ताह ।

(१२) १. मो. संकुरि, धा. संकरिउ, अ. फ. संकल्यो, ना. द. संकर्यौ, उ. स. संकरै । २. धा. सिध । ३. धा. गुरजन बिवाहि, मो. अ. फ. ना. गुरजननि वाहि (=वाँहि)। अ. गुरजननि व्याहि, फ. गुरजनल वाहि

(१३) १. मो. उचरौ (=उचरउ), धा. उच्चरइ, अ. फ. उच्चरिय, द. उच्चरै, ना. उच्चर्यौ, उ. स. उच्चरे । २. मो. गुरुअ, धा. गुरु । ना. गरुव धा. ३. । अ. फ. ना. गोविंद, मो. गौव्यंद ।

(१४) १. धा. माहि, अ. फ. मध्य, ना. मद्धि । २. फ. जाय, ना. जाय । ३. अ. फ. ना.उ. स. करैं, द. करहि ।

(१५) १. धा. अ. फ. सत्ति जुग्ग, मो. सत (=सत्त) जगु । २. धा. कहइ, मो. काहां, ना. अ. कहिहिं, फ. उ. स, कहहि । ३. अ. फ. राज, ना. उ. स. राव । ४. ध . अ. ना. द. उ. स. कौन, फ. कौनु ।

(१६) १. मो. तिनि, धा. अ. फ. ना. द. उ. स. तिहि । २. धा. त्रलोक्य ना अ. फ. त्रयलोक, उ. स. त्रिहुंलोक । ३. धा. अ. फ. ना. द. दीन ।

(१७) १. मो. त्रता । २. मो. य (=ज), धा. द. उ. स. जु, अ. फ. तु, ना. जु । ३. मो. कीहन, अ. फ. किन्ह । ४. मो. रघुमंद साइ, धा. अ. फ. रघुनंद राइ, उ. स. रघु वंस राइ ।

(१८) १. धा. कोप, अ. फ. कोपि, ना. द. उ. स. कनक । २. मो. वरिषु [=वरिषउ], धा. अ. वरष्यो, ना. उ. स. वरष्यौ, फ. वरष्यौ । ३. अ. सभाइ, ना. उ. स. सुभाइ ।

(१९) १. मो. धन, ना. उ. स. धर, फ. धन्य । २. मो. ध्रर्म पुत्र, ना. धर्म पुत्त, अ. फ. धम्म पुत्त, द. उ. स. ध्रम पुत्र । ३. फ. द्वापरि, ना. द्वापुर । ४ मो. सुगाय, धा. सुभाइ, ना. द. अ. फ. उ. स. सुभाइ ।

(२०) १. फ. पुब्ब । २. धा. अरि । ३. ना. हति, अ. अरि, फ. हर । ४. मो. सहाय, फ. सहाइ ।

(२१) १. धा. माहि, मो. मझि, ना. मध्य । २ फ. जग्यौ, ना. जग्य । ३. फ. करनु ।

(२२) १. धा. बिग्गरे जग्यु बहु, मो. विगरि (=बिगरइ) तु बहु बिधि, अ. बिग्गरइ बहुत बिधि, फ. बिग्गरइ बौह बिधि, ना. बिग्गरहि बहुत बिधि । २. धा. ना. हंसहि, मो. हसि (=हसइ)।

(२३) १. मो. मंद, उ. स. दर्ब, द. ना. द्रब्ब । २. ना ग्रब्ब, उ. स. गर्ब । ३. मो. तुम्ह, धा. अ. फ. उ. स. द. तुम । ४. मो. वय प्रमान ।

(२४) १. मो. बोलह, फ. बोलहि, ना. बुल्लहु । २. मो. त बोल देव, धा. त बोल देवन, फ. ति बोल देउन, ना. त बुल्ल देउन ।

(२५) १. धा. तुम जाणहु, मो. तुम्ह जानुं (= जानउ), अ. तुम जानुं (= जानउ), फ. तुम जानुह, उ. स. जानौव तुम्ह, द. ना. तुम्ह (तुम-ना.) जानहु । २. धा. छत्रिय है न, अ. तहीं क्षत्रिय है न, फ. क्षत्रिय है तु, ना. छित छत्री न, उ. स. षत्री न ।

(२६) १. अ. फ. निब्बीर, ना. नृब्बीर, शेष में 'निरवीर' । २. धा. पुहवि, मो. पुहमि, फ. पुहुवि, अ. ना. उ. स. पुहमि । ३. फ. कव हौं ।

(२७) १. मो. हम जंगली, धा. हम जंगलिह, ना. उ. स. अ. फ. जंगलह, द. जंगलहि । २. द. कालिंद्रि, ना. उ. स. कालिंद्र । ३. मो. कुल ।

(२८) १. ना. उ. स. जानैं । २. धा. अ. फ. ना. उ. स. राज, द. राय ।

(२९) १. मो. जानह, धा. ना. उ. स. जानहि । २. मो. ना. उ. स. त देस, अ. त एक, फ. तु एक । ३. धा. योगिन, अ. फ. जुग्गिनि, ना. जुग्गनि, उ. स. जोगिन ।

(३०) १. मो. जुरि इंदु वंशि, धा. सुर इंदु वंसु, अ. फ. जरासिंध वंस, द. जुरा इंद्र वंस, ना. सब मुकट रा, उ. स. आनहु वंस । २. धा. प्रिथिवी, अ. प्रिथी, फ. प्रथी, ना. पिथ्था, उ. स. प्रथ्विय ।

(३१) १. मो. तिहु वारि, धा. तिहु वारि, अ. फ. तिहुं वार (वार—फ.), ना. त्रय वार, द. उ. स. कै वार । २. धा. ना. बंधिवो, उ. स. बंधयौ । ३. मो. जेन, अ. फ. जेनि ।

(३२) १ धा भजियो ~ स भजिय सु २ मा छडि धा भडि द ना उ स भिरि, अ ति फ नहीं। ३. धा. मो. भीमसेन, अ. फ. भीमसेनि।

(३३) १. धा अ. फ. द. ना. उ. स. संभरि, मो. सिभरि (=सइंभरि)। २. अ. फ. सुदेस, ना. नरेस। ३. मो. द. उ. स. पूत।

(३४) १. म. दामीति, धा. दानव्रत, अ. फ. दानवति, ना. उ. स. दामित्त, द. दामंत। २. धा. मो. अ. फ. द. उ. स. रूप। ३. मो. धूत, उ. स. भूत।

(३५) १. मो. तिह कंध, धा. तिहि कंधु, अ. तिहि कंधि, फ. ना. स. द. तिहि कंध। २. अ. फ. केमि, ना. क्युं। ३. मो. जम्प, धा. जम्म, ना. जपे।

(३६) १. मो. जु प्रथमी, धा. पिरथी, अ. प्रिथिमी, फ. प्रथी, उ. स. जो प्रथिय, द. जौ प्रथी, ना. ज्युं पृथिमीव। २. ना. नहि।

(३७) १. मो. देखइ सभा तेह, धा. दिष्षियंति सब्ब नर, अ. दिष्षयहि सब्ब तहं, ना. दिष्षीय सभा तिहि, द. दिष्षय सु सब्भ तिहिं, उ. स. देखी सु सभा तिन, फ. दिष्षीयहि सब्भि भर। २. मो. संधि।

(३८) १. धा. मो जग्गु, अ. फ. जग्गि, ना. उ. स. जग्य। २. धा. ते आन, द. मन अन्य, अ. मनि आन, ना. फ. मन आन, उ. स. मन अन्य।

(३९) १. मो. उठि गुरु [=गुरुय], धा. ना. उट्ठिग, अ. फ. उठि गयौ, उ. स. उठि चलि। २ मो. वशिठि (=वसिठि)।

(४०) १. धा. गामिनीय भरि, मो जिमि गंमिनि सभा, ना. जिमि ग्रामीन सभा, अ. फ. गामिनी सभा, उ. स. ग्रामिनी सभा, द. ग्रामिन सभा। २. मो. बुधीजन, अ. फ. बुधिजन। ३. मो. उठि, धा. कविठ्ठ, ना. वसीठ, द. उ. स. बइंठ।

(४१) १. धा. दूत, अ. फ. सब्ब, उ. स. सबे। २. धा. मांझ।

(४२) १. धा. भयो मिलिन, ना. भौ मलिन, अ. ए मलिन, फ. भए मलिन, द. उ. स. भय मलिन। २. धा अ. फ. कमल। ३. धा. जिमि सुकल, अ. फ. जिमि सकिलि, ना. उ. स. जनु कमल। ४. धा. सांझ।

(४३) १. धा. द. तिन दूत जाहि, मो. तिनि दूर दूत जि (=जइ), अ. फ. तिहि दुरित दूत, उ. स. तिन दूत पंग, ना. दिखि दूत दूरि। २. धा. पे कहिय, अ. फ. पकहि, द. तहं कहिय, ना. कहि गय, उ. स. अग कहिय।

(४४) १. धा. कियो, अ. फ. कियै, उ. स. कीन, ना. रंत। २. धा. रकतोत, अ. फ. रकते, ना. रंगति, उ. स. रंग तेत।

(४५) १. धा. बोलइ, अ. फ. बुल्यो, ना. द. उ. स. बुल्यौ।

(४६) १. धा. माथ। २. ना. द. उ स. जग्य। ३. ना. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

बोलै सुमंत्र मंत्री प्रधान। उद्धरन जग्य कलिजुग्ग पान।
बालुका राइ बोल्यो हकारि। साधन सुजग्य बहु जुद्ध सार।
पुरसान षान बंदेति मीर। सो भाग दसम अप्पै सरीर।
ऐसं जु सज्जि चौसठि हजार। अप्पें ति मेछ पहु पंग बार।
नीशान बार बज्जेति अंग। बद्दी अवाज दिसि दिसि अनंग।
पोषंद बाद बालुका राज। रष्षिये जग्य को रहै साज॥

(४७) १. मो. नवि। २. फ. लग्ग, अ. जग्गि। ३. मो. गिहहि, धा. अ. फ. गहहि, ना. गहै, द. उ स. गहौ।

(४८) १. धा. अ. फ. तहां, ना. उ. स. द. ताहि। २. धा. अ. फ. ना. उ. स. द. टरि। ३. मो. जाय

(४९) १. मो. जे, धा. ना. उ. स. द. ए। २. धा. आसमुद्द, मो. द. उ. स. आसमंद (आसमद—मो. फ. आसुमद, ना. आसमुद्र। ३. धा. करति।

(५०) १. धा. उच्चरहि, मो. अ. फ. उच्चरहु, । उ. उच्चरेंहि। २. मो. करहुं, ना. द. उ. स. होइ।

(५१) १. धा. ना. सोवन्न, मो. सोवृन, अ. फ. सोवन्नी, द. सोवर्ण। २. मो. अ. फ. प्रमिमा, धा. ना उ. स. प्रतिम। ३. धा. फ. ना. बानि, उ. स. जान।

(५२) १. धा. थापहि त, अ. थप्पहुति, फ. थप्पंहति, ना. रच्चहित । २. धा. पौर जिम दारवानि, अ. फ. पौरि करि दारवान, ना. पौरि जनु दारवान, द. दरबान वान, उ. स. दरबार बानि ।

(५३) १. मो. संवरइ (< सिंवरह=सईवरह) संग, धा. सैंयंवर संग, अ. फ. स्वयंवर संग (सम्-फ.), ना. संबरु संग, उ. स. सवर संजोग, द. सवर संजोगि । २. मो. आ. जग्य, धा. अरु जग्गु ।

(५४) १. धा. अ. फ. विद्वज्जन, द. उ. स. बुध जनन, ना. बुध जननि । २. मो. बोले (< बोलि), धा. बुलि । ३. फ.धरीइ ।

(५५) मो. ना. उ. स. मंत्रीन राउ, धा. मंत्रीनु राय, अ. फ. मंत्रीनि राज, उ. स. मंत्रीन राव । २. ना. पर मोधि ।

(५६) १. धा. धूनिआ, मो. धूमिआ, अ. धुम्मिया, उ. स. धुम्मेस । २. ना. अ. वीर, फ. वारु ।

(५७) १. मो. सुनिसद्द, अ. फ. सुनि सद्दन । २. मो. बंदीअ, धा. बंधी । ३. धा. बंदवार, ना. द. बंदन निवार, उ. स. बंदरनिवार ।

(५८) १. मो. कटिहित, अ. फ. कट्टहिंसु, द. कट्टियहि, ना. कट्टइ ते, उ. स. काटंत । २. ना. गृहि गृहि, अ. फ. गृह गृह, उ. स. ग्रह ग्रह । ३. धा. अ. फ. उ. सुनार, स. सुतार ।

(५९) १. धा. भूषम सुदाम, अ. भूषनह दान, फ. भूषनहि दान ।

(६०) १. धा. अ. ना. इंद्र, मो. इद, फ. यंद । २. धा. सम किउ, मो. ना. सम कीय, अ. फ. सम किय, उ. स. सुर सम ।

(६१) १. धा. धवलेहि । २. धा. अ. धम्म । ३. ना. उ. स. देवल । ४. मो. सवायं [सवीय], धा. सुचीय, अ. फ. सुवीय [सुचीय], ना. द. सुचीव ।

(६२) १. धा. तुम्ह, मो. तासु, ना. तुम । २. उ. स. हरन । ३. मो. कलब्यंव लीयं, धा. अ. फ. कलबिंब लीय, ना. रविंव वीव, द. रवि बिंव वीय, उ. स. रवि ब्यंव वीय ।

(६३) १. धा. गमतु, अ. मगनि फ. मगनु, मो. बधन [< बंधन] । २. धा. रापि, ना. द. रोर, फ. सोभित, मो. जतु, । ३. धा. अ. फ. मनु, फ. तम । ४. धा. अ. मध वछीय, फ. मब्बछीय, मो. मधु, वछाय [वछीय], ना. द. उ.स . मधु अछीय, फ. ब्बवछीय ।

(६४) धा. अ. फ. सज्जिया, ना. जनु रच्यौ, उ. स. जनु रच्चिय । २. ना. ब्रह्म । ३. ना. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

एक वार संजोगीय सजिन पत्ति । मुसकाइ मंद पर कंहीय बत्ति ।
आच्छिज्ज एक सषि उरह अत्ति । बदलीय विवधि सुहि मन कि गत्ति ।

टिप्पणी—(१) पहु < प्रभु । (२) रग्ग < राग । (३) आर < आरओ < आरतस्=समीप में, पास में । (६) मज्झ < मध्य । (७) मोकल [दे०]=भेजना, प्रेषित करना । (१०) तथ्थ < तत्र=वहाँ, तब । (११) वयण < वचन । (१२) संकुर < संकुड < संकुट=सिकुड़ना । (१६) कित्ति < कीर्ति । (१७) साइ < स+अति=विशेषता के साथ । (२०) पथ्थ < पार्थ । (२३) दव्व < द्रव्य । गव्व < गर्व । (२५) खित्री < क्षत्रिय । (२६) निब्बीर < निर्वीर । पुहवि < पृथ्वी । (३०) पुहुमी < पृथ्वी । (३२) झड < शद्=गिराना । (३३)सइंभरि < शाकंभरी । (३४) धुत्त < धूर्त । (३८) अन्न < अन्य । (३९) वसिट्ठ < वशिष्ठ=दूत । (४०) गामिनी < ग्रामणी=गाँव का मुखिया । उविट्ठ < उद्वेष्ठित=बंधन से मुक्त । (४३) जइ < यदा=जब । (४४) रत्ते < रक्त=लाल । (४५)चाह < वाञ्छ् ?=अपेक्षा करना । (५१) सोन्न < स्वर्ण । वान < वर्ण । (५२) पोलि < प्रतोली=मुख्य द्वार । (५३) सैंवर < स्वयंवर । (५४) विद्‌जन < विद्वज्जन । (५६) वार < द्वार । (५७) सद्द < शब्द । (६१) देवर < देवालय । (६२) ब्यंव < बिंब । (६३) धज < ध्वजा । मगन < मग्न । मधुवछीय < मधुवसित=मधु दैत्य की बस्ती (मधुपुरी) । (६४) बंभ < ब्रह्मन् । बीय < द्विवतीय ।

[४]

रासा— जव[१] अंकुर[२] करि[३] पानि[४] चरावंति[५] वच्छ मृगु ।× (१)
मनु मानिनि[१] मिस[२] इंदु×[३] आनंदइ[४] देषि दृगु[५] । (२)*

सहि * सहचरिति[१]* चरत्त*×[२] परसपर* वत्तु, किअ । (३)
सुभ[१] संजोगि[२] संजोग+[३] जानुह[४] मनमथ्थ किअ[५] ॥[६] (४)

अर्थ—(१) [संयोगिता] यवाङ्करों को हाथ में [ले] कर मृग-वत्सों (शावकों) को चरा रही थी। (२) [वह ऐसी लग रही थी] मानों उस मानिनी के मिस इंदु ही [मृगों को] नेत्रों से देखकर आनंदित हो रहा हो। (३) उसकी सखियाँ और सहचरियाँ [उसके साथ] चलते हुए परस्पर बातें कर रहीं थीं कि (४) शुभा संयोगिता के संयोग [विवाह] के लिए [विधाता ने] मानो मन्मथ (कामदेव) को ही [निर्मित] किया है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द द. में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) फ. खोट जव। २ मो. अंगुलीय, ना. अंकुरि। ३. मो. कर। ४. मो. ना. द. फ. पान। ५. मो. चरावत, धा. चरावति, अ. चराव, फ. चरावैइ।

(२) १. मो. फ. ना. स. मानिनि। २. फ. ना. मिसि। ३. ना. इंद। ४. मो. आनदी (<आनंदि=आनंदइ), धा. आनंदहि, ना. अनंदिय, द. अनुंद, अ. अनंदे, फ. अनंदै। ५. धा. खगु, मो. द्रग।

(३) १. मो. सिहसिह वरती (<चरती), धा. अ. फ. द. उ. सहचरी चरित, ना. सहचरि चरिय। २. मो. वरतु (<चरतु), धा. ना. अ. फ. द. उ. चरित।

(४) १. धा. मो. मनु, द. मनुह। २. धा. मो. संजोग, द. संजोइ। ३. ना. फ. संजोगि। ४. मो. जानुह। धा. द. मनहु, अ. मनौ, फ. मुनौ, ना. मनुं। ५. मो. मनुमथ कीअ, ना. मनमत्थ कीय, द. मनमथ लिय,

६. स. में इस छंद का पाठ है :
अरिल—अंकुर पान चरावत वच्छं। मनो मानिनि मिस दिषि अनुच्छं।
सहचरि चरित परसपर वत्तय। मनों सजोइ संजोग मनमथ्थय ॥
टिप्पणी—(१) वच्छ < वत्स। (३) सही < सखी। चरत=चलते (गमन करते) हुए।

[५]

पद्धड़ी—राजनि अनेअ[१] पुत्तिय ति[२] संगि[३]। (१)
षट वीअ[१] बरिस[२] नव सत्त अंगि[३] ॥ (२)
केवि*[१] जुवती जुवजन संगह[२] सुरंग। (३)
मिलि षिलहिं[१] भूप भामिनि[२] अनंग ॥ (४)
संजोगि[१] संग जुवती प्रवीन। (५)
आनंद गान तिन[१] कंठ कीन ॥ (६)
भुव बंक[१] संकु* अति सम[२] सपीन[३] ।× (७)
अध चषन[१] लिपन छिति नषन[२] कीन ॥× (८)
कोमल कुरंगि[१] किंचित[२] किसोर[३]। (९)
अधरनु[१] अदिठ्ठ अच्छइ[३] तमोर[४] ॥ (१०)

सुभ सरल बाल[1] बलिश्र[2] स[3] थोर[4] । (११)
अंकुरहि[1] मनहु[2] मनमथ्थ जोर[3] ॥ (१२)
जुवजन[1] जुवत्ति[2] रचि कहइ*[3] बात[4] । (१३)
स्रवननु[1] सिराति*[2] नयननु अघात[3] ॥ (१४)
सुकइ[1]* न लीह[2] लज्जा सु रत्त । (१५)
निध्धनिय[1] धनु हु जांनु गहइ*[2] हथ्थ[3] ॥ (१६)
अधरत्त पत्त[1] पल्लव सुवास । (१७)
मंजरिय तिलक पंजरिअ[1] पास ॥ (१८)
अलि अलक[1] कंठ कलयंठ मत्त[2] । (१९)
संजोगि[1] भोग[2] वरु भयु[3] वसंत ॥[4] (२०)
मधुलेहिहि*[1] मत्त[2] रितुराजवंत[3] ।+ (२१)
परसप्पर पीवत पियनि[1] कंत[2] ॥ (२२)
लुट्टहि त भमर[1] सुग्गंध[2] वास । (२३)
मिलि चंद कुंद फुल्लिय[1] अयास[2] ॥ (२४)
वनि बग्ग[1] मग्ग हलि[2]÷ अंब मउर[3] । (२५)
सिर ढरहि मनहुं[1] मनमथ्थ चउंर[2] ॥ (२६)
चलि सीत[1] मंद सुग्गंध[2] वात ।+ (२७)
पावक मनहुं[1] विरहिनि निपात[2] ॥+ (२८)
कुहु कुहु करंति[1] कलयंठि[2] जोटि[3] । (२९)
दल मिलइ* मनहु[2] अन अंग[3] कोटि[4] ॥ (३०)
करि पल्लव[1] पत्त ति रत्त नील[2] । (३१)
हलि चलहि मनहु[1] मनमथ्थ पील ॥ (३२)
कुसुमेष[1] कुसुम[2] तेन[3] धनुष साजि[4] । (३३)
भृंगी[1] सुपंति[2] गुन गरुय[3] गाजि[4] ॥ (३४)
संजर*[1] सुबान सुमनाह[2] नेह[3] । (३५)
बिद्दारये[1] वीर[2] जुवजननि देह[3] ॥ (३६)
उप्पल्लिअ[1] कलिअ[2] चंपक सरीप[3] । (३७)
प्रज्जलिय[1] प्रगट[2] कंदर्प दीप[3] ॥ (३८)
करवत्त केत÷[1] कैतकि सुकत्ति[2] । (३९)
विहरंति[1] रत्त[2] वितरंति[3] छत्ति ॥ (४०)
परिरंभ[1] अनिल कदली[2] क पान[3] । (४१)
सिर धुनहि सरस[1] सुनि[2] जातु[3] तान ॥ (४२)

झंकुलिय[१] झास[२] अभिराम रम्म[३] । (४३)
नहु[१] करइ[२]* पीय[३] परदेस गम्म[४] ॥ (४४)
फुल्लिग[१] पलास तजि पत्त रत्त[२] । (४५)
रए रंग सिसिर[१] जित्तउ[२] वसंत ॥ (४६)
देषहिं त[१] पंथ जिन कंत[२] दूरि । (४७)
तिन[१] थकित[२] बोल लोल[३] जल रहिय[४] पूरि ॥ (४८)
संजोगि[१] भोग[२] जुवती प्रवीन ।+ (४९)
प्रिय[१] कंठ नहि[२] दुहु[३] भइ ति[४] लीन ॥+ (५०)

अर्थ—(१) अनेक राजाओं की पुत्रियाँ उसके संग में थीं। (२) वे बारह वर्ष की थीं, और अङ्ग (शरीर) में षोडश शृंगार किए हुए थीं। (३) सुरंग (सुन्दर) युवतियाँ तो कितनी ही थीं। (४) वे भूप-भामिनियाँ अनंग (काम) [के खेल] [परस्पर] मिल कर खेल रही थीं। (५) संयोगिता के साथ प्रवीण युवतियाँ [भी] थीं। (६) वे कंठ से आनन्द पूर्वक गान कर रही थीं। (७) [उनकी] भौंहें वक्र शंकु (कील) [के समान] अत्यंत सम (वैषम्य रहित) और क्षीण (पतली) थी। (८) अर्ध [निमीलित] नेत्रों से [देखती हुई] वे नखों से क्षिति (भूमि) पर लिख रही थीं। (९) कोमल कुरंगियों के समान [वे युवतियाँ] किंचित् किशोर थीं। (१०) उनके अधरों पर अदृष्ट (न दिखाई पड़ने वाला) तांबूल विराजमान (रंजित) था। (११) वे शुभा (कल्याण मयी), सरल बालाएँ [यौवनागमन कारण] थोड़ी पीन [लगने लगी] थीं, (१२) मानो [उनके शरीर में] मन्मथ जोर से अंकुरित हो रहा था। (१३) वे युवतियाँ [परस्पर ऐसी] बातें रच-रच कर कहती थीं (१४) कि [उनको श्रवण कर] कान शीतल होते और [उन्हें देखकर] नेत्र अघाते थे। (१५) वे लज्जा की रक्त (लाल) लेखा इस प्रकार नहीं छोड़ती थीं (१६) मानो निर्धना ने हाथ से धन पकड़ रक्खा हो। (१७) उनके अधर-पत्र सुवासित पल्लव थे, (१८) उनके तिलक [आम की] मंजरी थे, और [उनके नेत्र] उनके पास ही खंजरीट थे, (१९) उनकी अलकें अलि (भ्रमर) थे, और उनका [कल] कंठ मत्त कलकंठ (कोकिल) था, (२०) [इस प्रकार] संयोगिता के गुरु स्थान की उन युवतियों का वर वसन्त हो रहा था।

(२१) मधुलेही (भ्रमर) रितुराजवंत होकर—वसन्तागम से प्रमुदित होकर—मत्त हो रहे हैं, (२२) प्रियाएँ और कान्त परस्पर [मधु-] पान कर रहे हैं। (२३) भ्रमर सुगन्ध की सुवास लूट रहे हैं। (२४) आकाश में फूले (उदित) चन्द्रमा के साथ कुन्द भी फूल रहा है। (२५) वनों, बागों, और मार्गों में आम के बौर हिल रहे हैं, (२६) मानो मन्मथ के ऊपर चामर ढल रहे हों। (२७) शीतल, मंद और सुगंध वातचल रही है, (२८) वह विरहियों को इस प्रकार दुःख दे रही है मानो अग्नि उनको नष्टकर रही हो। (२९) कलकंठ (कोयल) का जोड़ा कुहू कुहू कर रहा है, (३०) [जो ऐसा लगता है] मानो अनंग (कामदेव) के कोट में सेना मिल रही हो। (३१) [उसमें वृक्षों के रक्त और नील पत्रों के मिस] रक्त और नील (गहरे हरित) वर्ण के पत्र (पत्रावली) की रचना करके (३२) मानो मन्मथ का हाथी हिलता (झूमता) हुआ चल रहा है। (३३) मन्मथ ने कुसुमों का जो धनुष [-सा] सजा रक्खा है वही मानो उसका का कुसुमेषु (धनुष) है। (३४) भृंगियों की पंक्ति ही उस धनुष का गुण (प्रत्यंचा) है जो गुरु (गम्भीर) गर्जना कर रही है। (३५) सुमनों के (से बने हुए) स्नेह संज्वर के बाणों के द्वारा (३६) वह वीर (मन्मथ) युवाजनों के देह को विदीर्ण कर रहा है। (३७) चंपक और शरीफे (?) की कलिकाएँ खिल गई हैं (३८) [जो ऐसी

लगती हैं मानो] कंदर्प का दीपक प्रकट होकर प्रज्वलित हुआ हो। (३९) सुकेत करपत्र (आरा) और केतकी काती हैं (४०) जो [विरहिणियों की] छाती को विदीर्ण कर रहे हैं, इस लिए रक्त बिहर (निकलकर फैल) रहा है। (४१) कदली का पर्ण (पत्ता) अनिल (वायु) से परिरंभन करता [हुआ ऐसा लग रहा] है (४२) मानो वह सरस तान सुन कर सिर धुन (पीट) रहा हो। (४३) दग्ध झंखाड़ भी अभिराम और रम्य हो गए हैं और (४४) प्रिय (पति) परदेश गमन नहीं कर रहे हैं। (४५) पलाश पत्तों का त्याग करके रक्त वर्ण का फूल उठा है, (४६) [जो ऐसा लगता है] मानो उस रण [में प्रवाहित रुधिर] का रंग हो जिसमें शिशिर पर वसन्त को विजय प्राप्त हुई है। (४७) जिनके कांत दूर देशों में हैं, वे उनके आने का मार्ग देख रही हैं, (४८) उनके बोल थकित (शिथिल) हैं और उनके चंचल नेत्र जल (अश्रु) से पूरित हो रहे हैं। (४९) संयोगिता की गुरु स्थानीय प्रवीण युवतियाँ (५०) अपने दुःखों को नष्ट करके [अपने] पतियों के कंठ लग रही हैं।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
(÷) चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।
× चिह्नित चरण उ. स. में नहीं है।
+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. राजनियनेअ, धा. ना. राजन अनेय, अ. फ. स. राजन अनेक। २. मो. पूतीय ति, अ. फ. पुत्तिय सु, ना. द. उ. स. पुत्रीति। ३. मो. संगि, धा. अ. द. ना. उ. स. संग, फ. संगु।

(२) १. धा. खर वीय, ना. षटदीय। २. धा. बरिस, मो. ना. द. उ. स. अ. फ. बरस। ३. मो. नसतस ज्यगि, धा. नवमास अंग, ना. नव मसिति, उ. स. नन लसति अंग, अ. नवसत्त अंग, फ, बसत्त अंगु।

(३) १. धा. किवि (=केवि), मो अ. फ. कवि, ना. किक (=केक) द. उ. स. कै। २. धा. जुवति जुवनि संगह, मो. युवति युवजन संगह, ना. जुवति द्वादश संगह, द. उ. स. जुवति द्वादस (द्वासद–स.) संग, अ. फ. जन जुवति संगह (संगहि–फ.)

(४) १. मो. षिलिह, फ. षिलह, स. लिषहि। २. धा. इसहि भामिनि, फ. भूप भामिन, मो. लय (ःभूप) भामिनि, ना. भूप भामिन, उ. स. भामन वलव।

(५) १. धा. संजोग, मो. संयोग, फ. संजोगु।

(६) १. अ. फ. तिनि।

(७) १. अ. फ. नंक, ना. द. लंक। २. ना. सुम। ३. अ. सुषील।

(८) १. फ. चषनि। २. मो. तिषनख मछति, ना. नषन लिपि छित्त, अ. फ. लिषन (लिषिन–फ.) छितिनषह (नषहि–फ.)।

(९) १. धा. कुरंगि, मो. अ. फ. ना. उ. कुरंग। २. फ. किंचिति। ३. पूरे चरण का स. में पाठ है : कोमल किसोर किंचित सुरंग।

(१०) १. मो. अधरनु, धा. अधरन, ना. अधरणि, अ. अधरनि, फ. अधरानु। २. धा. अद्रिष्ट, ना. अच्छिठ्ठ। ३. मो. अच्छि (=अच्छइ), ना. अच्छित। ४. फ. तुमोर।

(११) १. ना. सुरभ सारल बाल, फ. सुत सरल वार। २. धा. वलिया, मो. उ. स. बली, ना. बलीअ, द. वुलीय, अ. फ. बल्या। ३. द. अ. सु। ४. ना. घोर।

(१२) १. मो. अंकुरिहि, अ. अंकुरे, फ. अंकुरेह। २. ना. जानु, फ. मनौ। ३. धा. कोर।

(१३) १. ना. जुवनि, स. जुब्बन, उ. जुवनन। २. मो. जुवती। ३. मा. किहि (=किहइ), ना. कहै, धा. अ. फ, कहहि। ४. धा. वत्त।

(१४) १. धा. सुवननतु, अ. स्रवननि, फ. स्रवनन, मो. श्रवननु, ना. श्रवनह। २. धा. अ. फरी, स. मो. सिरति, ना. सार। ३. धा. निकु नयन रत्त, मो. नयननु आघात, अ. फ. ना. नकु नैन (नयन–ना.) रत्त।

(१५) १. मो. मुंकि (=मुकइ), धा. मुक्कै, अ. फ. मुक्के, ना. मुक्कहि। २. धा. लवसु, अ. फ. लीव, स. लोह।

(१६) १. धा. निरधनी, मो. निरधर्नाव, द. अ. फ. निध्धनीय । २. धा. मनो धनु गहहि, मो. धनुह जानु गिहि (=गहइ), अ. फ. मनहुं धनु गहयौ, ना. मनहु धनु गहै, द. उ. स. मनहु धन गहिय । ३. धा. हत्त ।

(१७) १. फ. धरत्त रत्त, अ. धरधर रत्त ।

(१८) १. अ. फ. पंजरिय ।

(१९) १. ना. अलि अलिक । २. धा. कलमंति मंतु, मो. कलयठ मत, ना. कलयंठि मंत ।

(२०) १. मो. द. ना. संजोग, फ. संजोगु । २ धा. जोग, अ. फ. संग । ३. धा. अ. भो, ना. भुव, उ. स. भुअ, फ. भौ । ४. मो. ना. में इसके बाद 'बसंत वर्णन' लिखा हुआ है ।

(२१) १. मो. ना. मधुलिहिहि (=मधुकेहिंहि), धा. मधुलिहहि, उ. स. मधुरेहि । २. मो. मयंत, धा. मत्त । ३. धा. अंत, ट. स. मंत ।

(२२) १. धा. पिम्म ति पियंति, मो. पियत पियहि, अ. पीवंति पियंति, धा. पीथति पिय, उ. स. प्रेम से पियत, ना. पम्मु सोइ पीअगि । २. मो. कंन्ह ।

(२३) १. धा. छुट्टति भमर, अ. छुट्टहि तिभंवर, फ. छुट्टहि जौ भंवर, ना. छुट्टहि ति भमर, उ. स. छुट्टहि त भोर । २. धा. सुभ गंध, मो० भंगत, ना. भमर ।

(२४) १. मो. फूलीय, धा. फुल्लयउ, उ. स. फूले, अ. ना. फुल्यो, फ. फुल्यौ । २. धा. अगास, ना. अ. फ. अकास ।

(२५) १. धा. वणि वग्ग, उ. स. बन बाग, ना. बन बग्ग । २. धा. वद्दु, अ. फ. अलि । ३. मो. मुर (=मउर), उ. स. मोर ।

(२६) १. धा. दरर मनुह, ना. दुरहि जानु, अ. स. दरत जानि दरहि मानौ । २. मो. चुंर (=चउंर), अ. फ. उ. स. चोर, ना. चोर ।

(२७) १. ना. सीतल, मो. ना. सो (<सु) । २. मो. ना. सोगंध (<सुगंध) ।

(२८) १. ना. मनु (=मनउ), उ. स. मनो । २. मो. बिरहुनि निघात, ना. बिरहनि निघात ।

(२९) १. अ. फ. करंत । २. धा. कलयंति, अ. कलपंत, फ कलपइ, ना. कुलयंति । ३. द. उ. स. जा ।

(३०) १. मो. निलय, धा. अ. फ. ना. स. मिलहि । २. ना. स. जानु, उ. द. जानि, फ. मानौहु । ३. धा. अ. ना. अनंग, फ. अनंगु । ४ फ. स. कोट ।

(३१) १. धा. तरुपल्लिय, ना. तरु पत्त, उ. स. तरु पल्लव, अ. फ. तर पल्लहि । २. धा. फुल्लहि रत्त नील, ना. पल्लवहि रत्तनील, स. पीत अरु रत्त नील, अ. रत्तहि रत्त नील, फ. रत्त तह रत्त तह रत्तु नील ।

(३२) १. फ. हल चलहि मनो, ना. हलि चलहि जानु, उ. हलि चलिहि जानि, स. हरि चलहि जानि ।

(३३) ३. धा. कुसुयेलि, मो. कुसुमेव, ह. कुसुमेण मो. कुसमन, फ. कुसमु । ३. मो. तेन, धा. थरि, ना. उ. स. अ. फ. नव । ४. धा. धनकि सज्जि, ना. धनक साजि, उ. स. धनुक साज, फ. धनित सज्ज ।

(३४) १. मो. धा. भंगी, ना. भृंगीन, स. भंगी । २. धा पवत्ति, फ. सपंति । ३. धा. अ. ना. गरुव, स. गरुअ, फ. गनव । ४. धा. अ. फ. गज्जि, उ. स. गाज ।

(३५) १. मो. सर, धा. अ. फ. सज्जर (< संजर), ना. साजर । २. मो. सुअनंग, ना. द. उ. स. सोमनहु, अ. फ. सुवनाह । ३. मो. तेह ।

(३६) १. धा. विद्दवइ, ना. बिहरैं, अ. फ. बिहरे, उ. विहारि, स. बिहारि । २ ना. उ. स. जानि, द. जानु । ३. मो. जुवतीनु नेह ।

(३७) १. मो उथलीअ, अ. फ. उथलीय, ना. उलथीय, धा. उथिलीय । २. उ. स. चलिय । ३. धा. स. द. उ. सरूप, अ. फ. ना. समीप ।

(३८) १. मो. प्रजलीय, ना. प्रगटहि । २. अ. मनहु, फ. मनौह । ३. अ. फ. रूप, उ. रूप, स. कूप ।

(३९) १. मो. कंत, ना. कत्त (< कंत), उ. स. द. पत्त, फ. वत्त । २. धा. केतकिय सत्त, मो. केतकी सुकंति (< सुकत्ति), फ. किंससु सुगात, स. केतुकि सुकंति (< सुकत्ति), ३. केतुकि सुकंति, ना. केतकि सुकत्ति, अ. फ. केतुकि सुकत्ति ।

(४०) १. मो. बिहिरंति, धा. उ. स. द. बिहरंत, फ. बहुरंत, ना. बिरहंत । २. मो. रंति (< रत्ति), द. रत्ति । ३. धा. बिच्छुरत, अ. फ. बिछुरंत, ना. बिछुरंति । ४. धा. पत्त, मो. छंत्ति (< छत्ति), अ. फ. छाति ।

(४१) १. धा. परंभ, अ. परिअंत, फ. परिअंत । २. मो. कलि, उ. स. कदलि । ३. अ. फ. सपान, द. उ. स. क्रिपान ।

(४२) १. ना. सर, अ. सरिस । २. स. धुनि । ३. मो. ना. उ. स. जान, धा. अ. जानि ।

(४३) १. धा. झकगिय झाम, ना. द. झंकलि झमूरि, स. झंकुरि झमूर, अ. फ. झुंकुल्यि झलि । २. मो. अ. फ. रम्य, ना. रझि (< रम्थ) ।

(४४) १. मो. नह, ना. मन, द. स. नन । २. मो. करि (=करइ), धा. करिहि, अ. ना. करहि, फ. करँ, स. करहि । ३. ना. पाय । मो. अ. फ. सम्य, ना. सम्मि ।

(४५) १. धा. फूलिग, मो. हूलिग, अ. फ. ना. फुल्लिग । २. फ. पंत पंत (< पत पत) ।

(४६) ना. ससिर । २ मो. जीवतु, धा. जित्तउ, उ. स. जीतौं, अ. फ. जीत्यो ।

(४७) १. मो. दिषेत, धा. देषहिति, अ. फ. दिष्यिहि, ना. दिखियहित । २. अ. जिनि, ना. उ. स. जिहि । ३. मो. कंथ ।

(४८) १. मो० के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है । २. मो. थकित, धा. ना. द. उ. स. अ. फ. थकि । ३. ना. उ. स. बोलि बोलि । ४. अ. फ. रहे ।

(४९) १. धा. मो. ना. संजोग । २. धा. संगि ।

(५०) १. धा. पिय ना. पय । २. मो. लाथ; धा. जट्ठि ना. नट्ठ । ३. धा. दुहना, दुइ । ४. मो. मयी, ना उ. स. मगिअ ।

टिप्पणी—(१) अनेअ < अनेक । (२) बीय < द्वितीय । सत्त < सप्त । (३) केवि < कतिपय । (४) विल < वेल् । (१०) अदिट्ठ < अदृष्ट । अच्छ < आस्=बठना । तमोर < ताम्बूल । (११) वलिय [दे०]=पीन, मांसल, स्थूल, मोटा (पाइअ सद्द महण्णवो) (१३) वत्त < वार्त्ता=बात । (१४) सीर < शीतल (पाइअ सद्द महण्णवो) । (१५) मुक्क < मुच्=छोड़ना । लीह < लेखा । (१८) षंजरिअ < खंजरीट । (१९) कलयंठ < कलकंठ =कोकिल । (२१) मधुलिहि < मधुलेहिन्=भ्रमर । (२२) पिव < प्रिय । (२३) लुट्ट < लुण्ट्=लूटना । (२४) अयास < आकाश । (२५) मउर < मुकुल=बौर । मग्ग < मार्ग । (२९) कलयंठि < कलकंठ=कोकिल । (३२) पील < पीलु=हाथी (तुल० फारसी 'फील') । (३४) गरुय < गुरु । (३५) संजर < संज्वर । (३७) उष्षिलिय < उत्खण्डित=खिली । (३२) करवत्त < करपत्र=आरा । (४१) पान < पर्ण । (४३) झंकुलिय=झंखाड़ । झाम [दे०] =दग्ध । (५०) नट्ठ < नष्ट । दुहु=दुःख ।

[६]

पद्धरी—रवि जोग पुष्य[१] ससि[२] तीय थान[३] । (१)
दिन[१] धरिग[२] देउ[३] पंचमि[४] प्रमान+ ॥ (२)
पर उच्छह[१] देषन[२] भयु[३] मिलान[४] । (३)
विग्रहन देस चढि चहूआन[१] ॥× (४)

अर्थ—(१) रवि (सूर्य) जब पुष्य [नक्षत्र] के योग में हो, और शशि (चन्द्रमा) तीसरे स्थान पर हो, (२) ऐसी देव पंचमी का दिन [राजसूय के लिए] प्रमाण (प्रामाणिक रूप) कैसे निर्धारित हुआ । (३) [इधर] पर (शत्रु) का उत्साह (उत्सव) देखने के लिए [पृथ्वीराज सामन्तों का] मिलान (सम्मिलन) हुआ [जिसमें निश्चय हुआ कि] (४) विग्रह करने के लिए चहुआन (पृथ्वीराज) [शत्रु के] देश पर चढ़ाई करे ।

पाठान्तर—+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

× उ. स. में यह छंद दो स्थानों पर आया है: स. ४८.९९-१००, तथा स. ४८.१२७ । नीचे का पाठान्तर द्वितीय स्थान का है; प्रथम स्थान पर पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

रवि जोग भोग ससि तीय थान। दिन धर्यौ देव पंचमि प्रयान।
सोध जय्य ऊदीपन बाल काज। विलसन विलास मंड्यौ ज साज।
पर उछव दषिन दीनौ मिलान। विग्रहन देस चढ़ि चाहुआन।

सामान्य रूप से एक पाठ धा. तथा दूसरा मो. के निकट प्रतीत होता है।

(१) १. मो. भोग, फ. पुष्फ। २. मो. सत्य ससि (इनमें से एक मो. का अपना पाठ तथा दूसरा पाठान्तर लगता है), फ. सिस। ३. धा. वाम।

(२) १. ना. दिनु। २. मो. धरयु, ना. उ. स. धर्यौ। ३. ना. देवि। ४. ना. पंचम। ५. मो. प्रयांन।

(३) १. फ. उच्छिह। २. धा. देषित, अ. दिषन, फदक्षन, ना. दिष, उ. स. दिषन। ३. धा. अ, मो. मयु (=मयउ), अ. फ. कौ भय, ना. भूतयो, स. कीनौ। ४. धा. मल्लान।

(४) १. मो. अतिरिक्त सभी में 'चाहुवान' है।

टिप्पणी—(१) तीय < तृतीय। थान < स्थान। (३) उच्छइ < उत्साह। मिलान < मिलन।

[७]

भुजंग—चंपि रिपु सीस बिट्ठउ*[1] नरिंद[2] ।[3] (१)
प्रथम अरिराज[1] षंडे षुअंद[2] ॥[3] (२)
बालिकाराय[1] राजन[2] समान[3] । (३)
गंजिया[1] एक घटि[2] चहूवान[3] ॥[4] (४)
गज्जने देसि[1] बिच्छोहि जोरी[2] । (५)
तबहि पिय[1] कंठ जिम पत्त[2] गोरी ॥ (६)
नीर नीच्चालि[1] उच्चालि झंपइ*[2] । (७)
करहि मनि मुत्ति[1] गच्छंति लप्पइ*[2] ॥ (८)
चीर[1] सम्मीर उड्डंति[2] तुट्टइ*[3] । (९)
मनहु[1] रितुराज द्रुमपत्त[2] छुट्टइ*[3] ॥ (१०)
ग्रीव[1] नग जोति रहि फुट परगइ*[2] । (११)
त चाहि[1] गिरि× सिषिर[2] द्रुम दाह लग्गइ*[3] ॥[4] (१२)
धूम परजालि[1] मिटि मग्ग गजनी*[2] । (१३)
चलहि मुष[1] तेज जनु[2] चंद रयनी[3] ॥ (१४)
बिंब[1] फल जानि घन कीर धावइ[2] । (१५)
दसन भय[1] बाल बसननि छुपावइ[2] ॥ (१६)
सबद सहरोस[1] साहीय* संकी[2] । (१७)
थरहरित थकि रही[1] झीन[2] लंकी ॥ (१८)
केवि[1] रटि रटि ति[2]× प्रिय प्रिय ति[3] जंपइ[4] । (१९)
ऐस[1] रिपु रवनि प्रथीराज[2] कंपइ[3] ॥ (२०)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के चरों (?) ने उससे कहा,] "हे नरेन्द्र, [अब] तुम शत्रुओं के सिर दबा उनका गर्व मिटा बैठे हो; (२) पहले [तुमने] खोखंद के शत्रु राजा को खंडित किया।

(३) बलख का राजा (शासक) तो [तुम्हारे] समान ही [बल शाली] था, (४) [किन्तु] उसे, हे चहुवान (पृथ्वीराज), [तुमने] एक आघात में नष्ट कर दिया। (५) तुमने गज़नी के देश में इस प्रकार विक्षोभ जुटा (कर) दिया कि (६) गौराङ्गनाएँ अपने प्रियों (पतियों) के कंठ छोड़ रही हैं, जैसे [वृक्ष के] पत्तों को छोड़ देते हैं। (७) नीर (आँसू) टपका (गिरा) कर वे तीव्र चाल (गति) में घूम (चल-फिर) रही हैं। (८) उनके जाते समय मणि-मुक्ता झड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। (९) उनके चीर समीर (हवा) से टूट (फट) कर इस प्रकार उड़ रहे हैं, (१०) मानो ऋतुराज (वसन्त) में द्रुमों के पत्ते गिर रहे हों। (११) उनकी ग्रीवा के नगों की ज्योति प्रकृत रूप से इस प्रकार फूट रही है, (१२) जैसे गिरि-शिखरों पर द्रुमदाह (दावानल) लगी दिखाई पड़ रही हो (१३) और उसकी प्रज्वाला के धूम से गज़नी के मार्ग मिट गए हों। (१४) और वे अपने मुख के तेज [की सहायता] से चल रही हैं, जैसे चन्द्र रजनी में चलता है। (१५) [उनके ओठों को] बिंबफल जान कर घने (बहुत से) शुक दौड़ पड़ते हैं (१६) जिनके दंशन के भय से बालाएँ उन्हें वस्त्रों से छिपा लेती हैं। (१७) वे रोषपूर्ण शब्द करती हुई साधिक—सविशेष—शंकित हैं, (१८) वे क्षीण कटि वाली स्त्रियाँ [भय से] थर्राती हुई थक गई हैं। (१९) कोई-कोई तो रटती-रटती 'प्रिय' 'प्रिय' कह रही हैं। (२०) इस प्रकार रिपु-रमणियाँ, हे पृथ्वीराज, [तुम्हारे भय से] काँप रही हैं।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. मो. विठु (=विष्ठुत), धा. बैठो, अ. फ. बैठ्यो। ना. बैठौ। २. धा, ना. द. अ. फ. नरिंद मो. नरेंद। (< नरिंद) ३. उ. स. में चरण का पाठ है : जिनें साजतें धूम धूमें नरिंदं।

(२) १. धा. ना. उ. स. द. अ. फ. जूह। २. धा. अ. फ. थिपंदं, ना. द. पुपंद। ३. उ. स. में चरण का पाठ है : लगी धूम आयास सोभं जिचंदं। और अतिरिक्त है :

तुरी वारजं राय षोपंद बद्दं। तहाँ बालुका राय संग्राम सद्दं।

(३) १ धा. बालुकाराज, ना. चालुकाराइ, उ. स. तहाँ बालुकाय, फ. चालुकराइ, द. अ. बालुकाराइ। २. धा. दाने, द. उ. स. दाले, ना. दानव, अ. फ. दानौ। ३. धा. प्रमानं, फ. समानु, उ. स. सुमाने।

(४) १. धा. गज्जिया (<गंजिया), फ. गंजवा; उ. स. तिने भंजिया, ना. भंजिया। २. धा. एक घर, ना. केक घट, उ. स. भूप घटि, फ. इक घटि, अ. इक घट। ३. धा द. ना. अ. चाहुवानु, फ. चाहुवान, उ. स. चहुवाने। ४. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

षगं षग्ग पट्टे सुथक्का हलाई। तहाँ पारसांराव सूरंगु राई।
छतेरी छनेरी भंडेरी बरारी। तिनं चंद चदेरि नैरी निहारी।
जिने तारिया कालपी कन्हराय। जिने मंडिया जुद्ध प्रथिराज सायं।
जिने आल पिंडाइ रा चक्क चक्के। बरं रोरिया दाइ संग्राम सक्के।
जिने जव्व जारे धरे गंग पारे। जिने संभरी थाट तंडे निवारे।
जिने भंजियं भीमपुर भीम भंजे। जिने भंजिया जाय गोधंम छंजे।
जिने भंजियं जाय प्रथमं सुकासी। भए न्रूर सामंत उन्तं उदासी।
जिने भंजियं जाय मेवात ग्रमं। जिने बर सों सेन सज्जे समानं।
जिने भंजियं भीम सोमेसभारी। जिने राजधानी सबे पाय पारी।
जिने आलगी जोग षंडे षपेलो। जिने माथुरी मोह मोहंत लेली।
जिसोरी पुरं रोरियारा जवायं। . . . .।
किमं दीन बंबारि प्रथिराज सोरी। षगं षीत्र षंगार बलोच मोरी।
तहां ग्रीव बंबारि अग्रीव फूटी। तहां गोधनं धेन चौहान लूटी।

(५) १. मो. गाजने देसि, धा. गज्जले देस, ना. जिने गज्जनै देस, उ. स. जिने देस पट्ठर, द. संजमी देस,

अ. फ. गज्जनै नैसरि। २. धा अ. फ. द. विच्छाइ जोरी, ना. विच्छोहि जोरी, उ. स. जोरी विछोरी।

(६) १. धा. तिसह पिय, ना. जिन पाय, द. जजि पिय, स. ते तजे पी। २. धा. कंठ फलहित, ना कंठ फ्लेनि, द. कंठ फलेति, उ. स. पीय कंठ सु, अ. फ. कंठ एकंत।

(७) १. धा. नीर उच्चाल, उ. स. तिनं नीर नह चाल, फ. नारचा चाल, अ. नारवा चाल। २ मो. उच्चालि जंपि (= जंपइ), धा. उच्चालु जंखे, ना. उच्चाल झंप, अ. फ. उच्चाल हुंप, उ. स. हुंचाल झंखे, द. उच्चाल झंप।

(८) १. धा. झरहि जल सुत्ति, मो. झरहि मनि भूति, उ. स. जहां झरहि जेम ना. झरहि मनु सुत्ति, अ. झरहि मनि सुत्ति. फ. रहसि मनु सुत्ति। २. मो. गच्छति लपि (= लपइ), धा. ना. द. अ. फ. गच्छति लख्ले (लप्पे—अ. फ.ना.), उ. स. गज झंप लख्ले।

(९) मो. वीर (< वीर), उ. स. तिनं चीर। २. उ. स. धारंत। ३. मो. तुटे (< तुटि = तुटइ), धा. तुट्ट, अ. फ. ना. छुट्टे।

(१०) १. धा. मतुह, उ. स. प्रनं। २. धा. रितुराज द्रम पाइ, फ. रतिराज द्रम पत्र, ना. रतिराज द्रुम पत्त, उ. स. रत्ति रज (राजं-उ.) तरं पत्त। ३. मो. छुटे (< छुटि = छुटइ ?) धा. अ. फ. ना. छुट्ट।

(११) १. उ. स. तिनं नीर, द. नीव तत। २. मो. फूट पगे (< पगि=पगइ) धा. फूट फुब्बइ, ना. छुट्टि जग्गे, द. फुटि लगे, फ. फुट्ट पछे।

(१२) १. धा. तिचहि, फ. अनइ, ना. तव, द. तचि, उ. स. तमंचे। २. धा. सिर सिषर, ना. सिर सिषरा, फ. गिरि सिषरि। ३. मो. द्रम दाह लगे (< लग्ग=लग्गइ), धा. दव दाव गव्वइ, उ. स. जम दाह लग्गे, अ. फ. दव दाह लग्गे, द. द्रुम दाह। ४. ना. में यहाँ और है :

दरी कैशालि सिलानि वेली। सिषर धावंत आसे सुछिन्नी।

(१३) १. धा. धूम पर जार, उ. स. तिनं अम्म प्रज्जारि, अ. फ. पज्जार, ना. धूम परिजारि, द. धुंम पर जाल। २. धा. मग्ग नयनी, मो. मग्ग गयने, स. उ. अग्ग घना, अ. फ. मग्ग गजनी (—गउनी फ.), ना. मग्ग मयनी (< गजनी)।

(१४) १. धा. चलहि तज, अ. फ. चलहि तिह, ना. चलहि गिरि, उ. स. तहां चलहि तिन। २. अ. फ. मुष। मो. चंद (< चंद) रमनी, अ. फ. चंद रवनी (रउनी—फ.), ना. चंद वयनी, उ. स. चंद रैनी।

(१५) १. धा. ना. द. अ. फ. विव, मो. व्यंब, उ. तहाँ वीव, स. तहाँ बीज। २. मो. धावि (=धावइ), धा. धावइ, ना. धावहि, अ. फ. धावे, उ. स. धाय।

(१६) १. मो. दसन भूप भय, ('भूप' कदाचित् 'भय' का पाठान्तर है, जो यहाँ आ गया है) उ. स. तहाँ दसन बाल भै (बाल भै-उ.) २. मो. वासन छपावि (=छपावइ), धा. द. वसननि छिपावइ, ना. दसननि छिपावहि, स. दसनं छिपाए, उ. बसनं छिपाए, अ. वसननि छिपावै, फ. वसनुनि तपाव।

(१७) १. धा. सवं महिरोस, ना. सवइ सहरो. उ. स. तिनं सद (सबद उ.) सह रोस, द. सबद सह रोस, अ. फ. सवद सारोस। २. धा. सहिवे ससंकी, मो. साहाय (< साहाय) सकी, द. साहस ससंकी, ना. सारस्स संकी, अ. उ. स. सहि रोस सकी, फ सहै रोस संकी।

(१८) १. धा. थरहरसि थकि हरि, फ. थरहरं छकि ररि, ना. थरहरहि थकि रहि, उ स. तहाँ थरहरे (—थरहरत उ.) थकि रही। २. धा. छीन, मो. हीन (< झीन)।

(१९) १. मो. केच (< केव), धा. ना., अ. फ. के वि, उ. स. कवि। २. धा. अ. फ. ना. रटि रटित, मो. रत्ति, ना. द. रट रटति। ३. धा. प्रिय प्रीय, अ. फ. ना. द. उ. स. पिय पियहि। ४. धा. जंपइ, मो. जंपि (=जंपइ), अ. फ. जंपै।

(२०) १. मो. प्रेम, अ. फ. एमि, ना. द. नाम। २. धा. रिपुरमनि प्रिथिराज, ना. द. प्रिथिराज रिपुरवनि। ३. मो. कपि (< कंपइ), धा. इंपइ, अ. फ. ना. द. कंपै।

टिप्पणी—(४) घट < घट्ट=आघात। (५) विच्छोहि < विक्षोभ। (६) पत्त < पत्र=पत्ता। (७) झंप < भ्रम =घूमता-फिरना, चलना। (८) गच्छति < गिघाल=गिरना, टपकाना। (९) तुट्ट < त्रुट्=टूटना। (१०) उचाल=ऊँची, या तीव्र चाल। (११) पगइ < प्रकृत=स्वाभाविक। (१३) परजाल < प्रज्वाल। (१४) चल < चल्=जाना, गमन करना। (रवनी=रजनी।) (१५) व्यंब < बिंब। (१६) दसन < दशन। (१७) साहिस

< साधिक=सविशेष। (१९) केति > कतिपय। जंप < जल्प्=बोलना, कहना। (२०) एम < एवं=इस प्रकार। रवनि < रमणी।

[८]

दोहरा— गयमंदा चषि[1] चंचला गुर[2] जंघा[3] कटि रंचि[4]। (१)
पिय[1] प्रथीराज रिपु किअ[2] तउ*[3] बिपरित कीन[4] बिरंचि[5]॥ (२)

अर्थ—(१) "गज की भाँति मन्द [गति], चंचल आँखों, गुरु जंघाओं, तथा क्षीण कटि वाली [शत्रु रमणियाँ अपने पतियों से कहती हैं,] (२) 'हे प्रिय, पृथ्वीराज को जो तुमने शत्रु किया तो विधाता ने [सब कुछ] उलटा कर दिया'।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. ना. उ. स. चष., द. भषि। २. धा. ना. गुरु, द. गय ३. द. जं। ४. उ. स. अ. फ. रंच।

(२) १. धा. प्रिय, मा. जु, ना. उ. स. अ. फ. पिय। २. धा. उ. रिपु कियउ, उ. स. जुरिपु कियौ, ना. अ. फ. जु रिपु कियौ, द. जु रितु कियौ। ३. मो. तु (=तउ), अन्य प्रतियों में यह शब्द नहीं है। ४ मो. कीउन धा. ना. अ. फ. कीन, ना. द. उ. स. करण (ना. उ. स. करन)। ५ ना. उ. स. फ. बिरंच।

टिप्पणी—(१) गय < गज। चष < चक्षु।

[९]

दोहरा— जिनिअ* जगत[1] जय पत्त लिय[2] दिसि[3] सुरवर उपदेस। (१)
षिति रष्षन[1] निति वर सबल[2] रिपु पंगुरह[3] नरेस[4]॥ (२)

अर्थ—(१) "[पंगराज जयचन्द की स्त्रियाँ उससे कहती हैं,] '[पृथ्वीराज ने] जग को जीता और जय-पत्र प्राप्त किया है और सुर (मरु) धरा की दिशा को उपदेश किया—दंडित किया है। (२) तुम्हारा शत्रु, हे पंगराज, धरती की रक्षा करने वाला और नित्य ही विशेष बल शाली होता जा रहा है'।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. जीत जगत, मो. जीताअ (< जीतीअ) जगत, म. राजिति ?, उ. स. जित्ति जगत, ना. अ. फ. जीति जगत। २. मो जय पथलीय, फ. जय पत्ति लिय, अ. जय पत्त लिय, फ. ययपत्ति लिय, म. जयपत ले। ३. धा. दिस. फ. दिशा।

(२) १. मो. षिती रषन, धा. छिति रष्षन, उ. स. छिति रष्षन, फ. छिति रक्षा, अ. छिति रष्षन, ना. छिति रक्षन। २. म. निति वर अबल, धा. छितिपर सबल, ना. म. उ. स. छितिपर सबर, अ. फ. छिति परसपर। ३. धा. रिपु पंगुलो, ना. अ. फ. म. उ. स. सुनि पंगुरे (पंगुरँ-म.)। ४. मो. नुरेस।

टिप्पणी—(२) षिति < क्षिति। निति < नित्य।

[१०]

पद्धडी— कर[१] पग्ग मग्ग अग्गइ*[२] सुवार[३] । (१)
सुर सुक्कि मुक्कि[१] सुह मनहु[२] प्रहार[३] ॥ (२)
सुनियइ*[१] न सद्द नीसान भार[२] । (३)
दरबार भयौ[१] इत्ती जउ*[२] पुकार ॥[३] (४)
थकि बेद विप्प[१] माननी सु[२] गान । (५)
आनंद सकल सुविसइ[१] न कानि[२] ॥ (६)
कर चंपि राय मुक्यउ*[१] उसासि[२] । (७)
बिग्गड्यउ*[१] जग्गु[२] मंत्री बिसासि[३] ॥[४] (८)
सुनियइ*[१] न पुन्य[२] सभ[३] मभ्भ राज[४] । (९)
युवजन युवत्ति अनु[१] करिग साज[२] ॥[३] (१०)
संजोगि[१] जोग वर तुम्ह[२] आज । (११)
व्रत[१] लिअउ*[२] वरण*[३] प्रथिराज राज[४] ॥[५] (१२)

अर्थ—"(१) [तुम्हारे आक्रमण के भय से पंगराज के] मार्ग में [उसके] हाथ पैर आगे रुक गए हैं, (२) स्वर शुष्क हो गया है, सुख समाप्त हो गया है, मानो [तुम्हारा] आक्रमण हुआ हो। (३) धौंसों के भारी शब्द नहीं सुनाई पड़ रहे हैं, (४) [जयचन्द के] दरबार में जो इतनी पुकार हुई है। (५) वेद [पाठ] में विप्र और गान में मानिनियाँ थक (शिथिल हो) गई हैं, (६) समस्त आनन्द अब कानों में प्रवेश नहीं कर रहे हैं। (७) राजा (जयचन्द) हाथ मल कर उच्छ्वास छोड़ रहा है कि (८) मंत्री के विश्वास में मेरा यज्ञ बिगड़ गया। (९) सभी राज्य में पुण्य नहीं सुनाई पड़ रहे हैं, (१०) और युवतिओं ने आसक्ति की है। (११) संयोगिता के योग्य वर आज तुम्हीं हो। (१२) हे राजा पृथ्वीराज, उसने तुम्हें वरणा करने का व्रत लिया है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
(१) १. द उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—
"तिन समय ताम कनवज नरेस । क्रत काम पुन्य सज्जे असेस ।
संबर संजोग सम जग्यकाज । विध्धुरिय रिद्धि गति बिबिध राज ।
श्रृंगारि सहर विविधं विनान । आनंद रूप रज्जे ऊतान ।
तोरन अनूप राजै सुभाइ । जगमगत थंभ हिम जरित ताइ ।
वासन विचित्र ऊत्तान ताम । मंडप्प ऊच सज्जे सुधाम ।
वास नह श्रेन विधि बंविदान । सोमंत धज्ज बंधे सुथान ।
क्षोनी पवित्र सखी सवारि । द्रावैं सुमंडि सुर सम अपार ।
गावंत थान थानइ सु गेव । मंगल अनेक साजै सु भेव ।
जल जास माल तोरन कुसुम्म । बहु रंग विद्धि सोभा सुरम्म ।
आए सु नृपति अनेक थान । उदार मत्ति थिति आसमान ।
संभर संजोग लखे सुभूप । संपत्त काज हय गय अनूप ।
देवंत अत्ति ऊत्तान थान । प्रगटंत अप्प गुन आसमान ।
चिंतै सुचिन्त कमधज्जराइ । केहरि कंठेर वर मुत्ति काय ।

संजोग सज्जि नयरी पकार। सग करइ साज हय गय सुमार।
बाजे अनंत बज्जे विवान। बहु न्रत्य करत रंजंत तान।
कौतिग सुराज राजै अनूप। कतवंस कंठ साद्दिष्ट रूप।
झूलंत नेन देषत विनान। मझंम चित्त साकुल्य जान।
आतस चरित्त साजे अनेव। नाटिक्क कोटि नाचंत भेव।
देषहि विवान साजहि सु देव। वानिय प्रसाद कछु कहिय भेव।
इहि विद्धि सत्त अइ विति जाम। अइा आइ कुक्कि पर दार ताम,

२. धा. अग्गइ, मो. आगि (=आगइ), ना. अग्गे, उ. स. आगें, अ. फ. अंगइ। ३. मो. सुपार, ना. सुवार, स. सुवीर।

(२) १. ना. सर सुकिसु, मो. सह मनहु, धा. सुह मन, ना. सुमन, द. उ. स. सुमन, अ. फ. सहमन। २. अ. फ. पहार, द. पसार, स. प्रसीर।

(३) १. मो. सुभिइ (सुभियइ), धा. सुनियइ, ना. सुणीयै, द. उ. स. अ. फ. सुनियं (सुनिये-अ.)। २. धा. चार।

(४) १. मो. भयु (=भयउ), द. भई। २. मो. इतनु, द. इत्तंती, धा. उ. स. अ. फ. एती, ना. इत्ती। ३. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

तम पुच्छि ताम जैचंद राज। अवगुन अधम्म किन करिय काज।
उच्चंत ताम धाहू सउत्त। चहुआन राव सोमेस पुत्त।
सब देस भंजि षोषंद थान। बालुकाराय हनि देषि थान।

(५) १. धा. द. वेद वेद, ना. वेद वेदांति, म. वेद विप्र, उ. स. वेन, अ. फ. वेद भेद। २ धा. विप्पनि सु, म. वयनं सु, उ. स. विप्रान, ना. बिप्रन सु, अ. फ. बिप्रनि सु।

(६) १. मो. सुवीसि (<सुविसइ)। २. धा. ना. म. उ. स. द. अ. फ. कान, केवल मो. में 'कानि'।

(७) १. धा. सुक्किय, ना. म. उ. स. द. सुक्यौ, अ. फ. सुक्कै। २. मो. उसारि, धा. ना. अ. फ. उसांस (उसास-म.), म. उ. स. निसास।

(८) १. धा. ना. उ. स. म. द. अ. फ. बिग्गार्‌यौ (बिगस्यौ-म० विगास्यौ-ना०) मो. विगड्डु (=विग्गाड्यउ)। २. अ. जग्गि, फ. म. ना. जग्य। ३. धा. विसास, म. उ. स. द. ना. अ. फ. विसास। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

बंधौ सु चंपि अब चाहुआन। बिग्गार्‌यौ जग्य निहचै प्रमान।
जोगिनी राज चित्रंग जोइ। बंधौ समेत प्रथिराज दोइ।
सम्राह राज बंधौ सवीर। निर्वार करौ चहु आन भीर।
आहुट्ठ राज प्रथिराज साहि। पीलौं जु तेल जिय तिल प्रवाहि
संभरि जुन्हाइ बुझाइ राइ। इक बत्त कहा पिय सुनहु आइ।

(९) १. मो. सुनीइ (=सुनियइ), धा. सुनई, ना. उ. स. द. म. सुनिय। २. मो. ना. पुन्य, धा. पुकार, फ. अ. फ. न पुन्नि। ३. धा. सब, अ. सुम। ४. धा. महाराज, द. मज्झि राइ, स. मध्य राज, अ. फ. मंडराइ।

(१०) १. मो. युवजन युवती अन, धा. युवतीय जनन युव, ना. जुव जनु जुवति अनु, म. जुव जनु जुवत्ति अनु, उ. जुवजनि जुवति, स. जुवजसि जुवत्ति अति, अ. फ. युवतीजन युवजन। २. अ. फ. साइ। ३. ना. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

पुच्छी स ताम संजोगि बत्त। कहि धाइ कौन मो पित विरत्त।
उच्चरी ताम सहचरी एक। बंधी सुराज प्रथिराज तेक।
दिल्ली नरेस सोमेस पुत्त। चहुआन पान देषे स उत्त।
बालुका राव सच्यौ सुतेन। षोषंद भजि पुर लुटि रैन।
सुनि स्रवन बत्त संजोगि तथ्य। चिता सुचित्त गंधर्व कथ्य।

(११) १. म. संजोग। २. धा. ना. अ. व्रत सु, फ. व्रतम।

(१२) १. उ. स. व्रित्त, फ. व्रत। २. धा. लियो, मो. लीउ (=लियउ) म. लयं, अ. फ. ना. लियौ। ३. मो.

चरण (< वरण), म. वरज, फ. वचन । ४. धा. उ. स. म. प्रिथिराज साज, अ. फ. प्रथिराज (प्रिथिराज-अ.) काज । ५. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) ।:

द्रिढ़ करिय मंत्र सम चित्त अत्ति । दितु विरत्त बुद्धि छंडो विमत्ति ।
सञोगि ताम जंप्यौ सु प्रम । मानौं सु सुस्स इह द्रढ़ नेम ।
चहुवान सुवर मो सत्ति मत्ति । छंडौ सु अवर लालिच्च अत्ति ।
इस जंपि मत्र सा निज्ज धाम । छंडे व अव्व विधि व्याह काम ।

टिप्पणी—(१) मग्ग < मार्ग । (२) सुक्क < शुष् । मुक्क < मुच् । सुह < सुख । (३) सद्द < शब्द । इत्ता < इत्तिअ < इयत्=इतना । (४) जउ < यत । (६) विस < विश्=प्रवेश करना । (७) मुक्क < मुच्= छोड़ना । उसासि < उच्छवास । (८) विसास < विश्वास । (१०) अनु=और । साज < सज्ज < सज्= आसक्ति करना ।

[११]

दोहरा— *तिहि[१] पुत्तिय[२] सुनि गन इतउ* [३]तात वचन तजि काज । (१)*
कइ[१] वहि[२] गंगहि संचरउं[३] कइ[४] पानि गहउं*[५] प्रथीराज[६] ॥ (२)*

अर्थ—(१) "उस (जयचंद) की पुत्री (संयोगिता) के सम्बन्ध में [मैंने] सुना है कि वह यहाँ तक गुनने लगी है कि 'पिता के वचन और [स्वयंवर के] कार्य का त्याग कर (२) या तो मैं गंगा में वह चलूँगी, और या तो पृथ्वीराज का पाणिग्रहण करूँगी' ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. अ. फ. तिह । २. अ. फ. म. ना. पुत्ती । ३. मो. गन इतु (=इतउ), धा. गणइ इत, अ. फ. गुनय इत, द. ना. स. उ. म. गुन इतौ, फ. गुनि इता ।

(२) १. मो. काइ, म. अ. फ. कै । २. मो. विहि, धा. वय । ३. मो. ना. गंगहि संचरु (=संचरउं), धा. वहि गंगहि परौं, अ. गंगहि संचरौं, म. गंगह सिंचरौं । ४. मो. काइ, म. कै । ५. मो. गुहुं (=गुहउं), धा. ग्रहै, ना. ग्रहुं (=ग्रहउं), द. ग्रहं, फ. हुं गहं, अ. गहुं (=गहउं), म. उ. स. ग्रहन । ६. धा. म. ना. प्रिथिराज ।

टिप्पणी—(१) गण < गणय् । इतउ < इयत्=इतना ।

[१२]

दोहरा— *सुनत राइ[१] अचरिज* भयउ[२] * हियइ* मन्यउ*[३] अनुराउ[४] । (१)*
नृप वर आनि उर[१] अंगमइ[२] दैवहि अवर[३] स भाउ[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) को [संयोगिता के इस संकल्प की बात] सुनते ही आश्चर्य हुआ, और उसने हृदय में संयोगिता के अनुराग को मान लिया । [और उसने कहा] (२) "नृप (जयचन्द) अपने हृदय में उसके लिए अन्य वर (भले ही) निश्चित कर चुका है, किन्तु दैव को तो दूसरा ही [वर] भाता है ।"

पाठान्तर—(१) १. धा. द. फ. सुनित राइ, ना. सुनत तावत, अ. सुनति राइ, म. सुनत राय । २. धा. म. अचरिज्ज किय, अ. फ. अचरज्ज किय, ना. अचिरिज कीयौ । ३. मो. हीइं मन्यु (=मन्यउ), उ. स.

. ज़िये मज़ि, धा. हिय मज्झर, द. हिय मानु (=मानौं), अ. फ. ना. हिय मान्यौ। ४. धा. अनुराह, . अनिराव, उ. स. अनराव।

(२) १. धा. ञिपवर अवरह, अ. फ. ना. नृपवर और (अउरहि—फ., औरं—ना.), म. उ. स. हौं वरि वरहि (औरहि—म.)। २. धा. निम्मवह, अ. फ. निर्मय, फ. नृमये, ना. संभव, म. देउं अब, उ. स. उं बर। ३. अ. फ. दवहि और, धा. अवर अचिंत्यो, उ. स. दैवै और, म. देवै अवर, ना. दइयं ४. धा. थाइ, अ. म. उ. स. सुभाव, ना. द. फ. सुभाउ।

टिप्पणी—(१) मन्य < मन्। (२) अनि < अन्य। अवर < अपर।

[१३]

नाराच—परठि[1] पंगराइ दुत्ति[2] सुतीय[3] आलि[4] मुकने[5]। (१)

साम दान दंड भेद[1] सारसं[2] वियष्षने[3] ॥[4] (२)

जे ग्रीव ग्रीव तार तार नेन सेन[1] मंडिहो[2]। (३)

जे[1] वचन्न विध्धि निध्धि धीर[2] ही सग्यान पंडिहो[3] ॥[4] (४)

अनेक बुध्धि सुध्धि[1] सब्ब मुच्छि[2] काम जग्गवइ[3] ।[4] (५)

ते[1] प्रचारि काम च्यारि जाम[2] अंगनं[3] समुम्झवइ[4] ॥[5] (६)

अर्थ—(१) [उधर] स्त्री (संयोगिता) की अड़ (हठ) को छुड़ाने के लिए पंगराज (जयचन्द) ने दूतियाँ प्रष्ठापित कीं (नियुक्त कीं), (२) जो साम, दान, दंड तथा भेद में समान रूप से विचक्षणा थीं, (३) जो ग्रीवा, ताली (हथोड़ी) तथा नेत्रों से संकेत मंडित किया करती थीं, और (४) अपनी वचन-रचना की निधि से सज्ञानों (ज्ञानियों) के भी धैर्य को खंडित करती थीं। (५) वे सब अनेक युक्तियाँ शोध-शोध कर मूर्च्छित काम को जगाती थीं और चार प्रहर काम की उत्तेजना करके वे उस अंगना (संयोगिता) को समझाती थीं।

पाठान्तर—(१) १. मो. परठी म. परति, ना. पति। २. धा. अ. म. ना. उ. स. दुत्ति, मो. दूति, फ. दुत्त। ३. धा. अ. म. पुत्ति, फ. पुत्त, ना. गुत्ति। ४. ना. सुत्ति आलसं। ५. धा. म. ना. मुक्कनै (मुक्कनं—ना.) मो. मूकने।

(२) १. धा. द. ति साम डंड वीर भेद, ना. जि साम दान भेद वीर, अ. फ. ति (ते-फ.) साम दान भेद दंड, म. ति साम दान भेद दंड। २. मो. सरस वीर (पाठान्तर का समावेश), धा. म. उ. स. सारसी (सासो— उ.), अ. फ. सारसै। ३. धा. विचंछने, अ. फ. विचछछनं, म. उ. स. विचष्षने (विचषने—म.)। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. का पाठ) :

वचन्न चित्त चातुरी न ताहि कोइ पुज्जई।
हरंत मान मेनका मनोहरं न सुझ्झई॥

(३) १. धा. सुग्रीव ग्रीव कंठ तार नयन सयन, मो. जा ग्रीव ग्रीव तार तार नेन सेन, अ. फ. सु ग्रीव ग्रीव कंठ ताल नैन सैन, ना. जि (=जे) ग्रीवता ग्रीव तार तार नन सैन, उ. स. श्रवन्न नेन नेन सेन तार तार, म. श्रवन नैन सेन सेन तार तार। २. धा. मंडही, मो. मंझिहीं, म. उ. स. मंडई।

(४) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। २. धा. वचन्न विद्धि निद्धि रंग, अ. फ. वचन्न मिद्धि सब्ब, ना. वचन्न विद्धि निद्धि रंग, उ. स. अनेक विद्धि निद्धि सब्ब, म. अनेक विध सिध साध। ३. धा. उ. स. म. ना. ईसग्यान षण्डही, (षंडई—म.) अ. फ. ईस ग्यान षंडही, द. ग्यान ग्यान षंडहीं। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

अनेक भाँति चातुरीनि चित्त चप चारई।
छिनेक मैं प्रसन्नंव जु प्रेम मैन छोरई।
कउक्क कर्क मन्नाप जाप ताप धू संतरं।
अिपंड ज्यों मिठास बास सामा ता प्रसन्नई।

(५) १. म. छुध। २. धा. अ. फ. मूच्छि, म. मुठि (< मुछि), ना. मुछ्यौ। ३. मो. जगवि (=जगवइ) म. ना. जग्गवै, फ. जगाउही। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

सुपाठई चतूर चप्प प्रथम मन्न लग्गवै।
रहंत मोन मोनही हसंत ते हंसावही।
विर्षम जोग मोष तेज जोर सौं मनावहीं।
अमोल कंठ पोत रूप उत्तरं दिखावई।
कपट्ट शान बस्त मंझि हट्ट सो छुडावही।

(६) १. धा. ति (=ते), मो. त, फ. न, ना. द. म. उ. स. मे यह शब्द नहीं है। २. धा. अ. प्रचारि च्यारि जाइ, फ. प्रचार च्यार जाइ, म. उ. स. प्रचारि कासु (कांसु—म.) चारि (च्यारि—म.) जाइ (जाय—म.)। ना. द. प्रचारि चारि (च्यारि—द.) जाइ अग्ग। ३. मो. अंगनं, धा. अंननं, उ. स. आप मन्न, अ. फ. ना. अंगन। ४. मा. समूझविर=समूझवइ), धा. समुज्झवइ, अ. समज्झवं, फ. समुझाउही, म. ना. उ. स. समुज्झवै।

अनेक भाँति चित्त चातुरीनि सु आप मन्न सुज्झवै।

५. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

टिप्पणी—(१) परिट्ठव < प्रति+स्थापय्। आलि < अड्ड [देशज]। मुक्क < मुच्। (२) सारस < सरिस < सदृश। वियष्षन < विचक्षण। (३) तार < ताल=ताली। सेन < संकेत। (४) सथांन < सज्ञान। (५) मुच्छ < मूर्च्छ्।

[१४]

रासा—अलस[१] नयन अलसाय ति[२] अदरु[३]× अप्प[४] किय। (१)
[पुत्री वाक्यः] किम बुध्धी[१] मय[२] तात संकिल्लिअ[३] इक्क जिय[४]। (२)
[दूती वाक्य] तव बाले वर तात[१] संकिल्लिअ एक जिय[२]। (३)
किहि[१] वर वर उतकंठ[२] त पुच्छइ अच्छरिय[३]॥ (४)

अर्थ—(१) उस (संयोगिता) ने अलस नेत्रों से अलसाते हुए आप ही [उस दूती का] आदर किया [और पूछा,] (२) "मेरे पिता ने जी में कैसी (कौन सी) एक बुद्धि संकीलित कर रक्खी है?" (३) [दूती ने उत्तर दिया,] "हे बाले तेरे श्रेष्ठ पिता ने एक [बुद्धि] यह संकीलित की है कि (४) तुम्हें किस श्रेष्ठ वर की उत्कंठा है वह, हे अप्सरा, तुमसे पूछे।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. म. स. ना. द. तव अलस। २. म. अलसायत, ना. अलसाइ चित्त। ३. धा. उ. स. आदरु (आदुरु—स.), म. ना. आदर। ४. स. अप्प।

(२) १. म. बुधीन, फ. बुद्धिय। २. धा. मम, मो. ना. द. मय, अ. फ. भय, म. उ. स. मो। ३. धा. ना. उ. स. किल्लि ति, म. संकिल्लिय, अ. प. संकिल्लिव, फ. सकलव। ४. म. एक हिय, ना. इक्क हिय।

(३) १. धा. अ. फ. हे बाले तव तात, ना. तव बोले वर तात, द. तव बाले बल तात, २. धा. ना. संकिल्लित राय (राइ—ना.) लिय, द. संकिल्लित रायलि, अ. फ. संकिल्लिय राइ लिय, म. उ. स. सयंबर मंडइय (—मंडईय म.)।

(४) १. धा. म. उ. स. कहि। २. धा. उतकंत, फ. उत्तिकंठ म. उ. स. उतकंठाइ। ३. मो. त पुच्छिहि

अच्छरीय, धा. अ. फ. उ. ना. सु पुच्छइ (पुछै—अ. फ.—पुच्छहि-ना. द.) अच्छरिय, म. उ. स. माल कर छंडइय (छंडईय—म.) ।

टिप्पणी—(२) मय < मद्=मेरा । सकिलित < संकीलित < संकीलित=कील लगा कर जोड़ा हुआ, दृढ़ता-पूर्वक गाड़ा हुआ । (४) अच्छरिय < अप्सरसि=अप्सरा ।

[१५]

[पुत्री वाक्यः] रासा—मय मन मज्झ स* गुज्झ[१] गुरुजन छंडि*स तुम कहउं*[२] । (१)
जंपत लज्जइ*[१] जीह न अक्खर[२] लहु लहउं*[३] ॥ (२)
पट दह[१] जिहि सामंत[२] सोइ प्रथीराज कोइ[३] । (३)
दान खग्ग भय मानि न[१] मुकउ तात सोइ[२] ॥[३] (४)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) मेरे मन में जो गुह्य है, वह गुरुजनों से भी न कहकर तुमसे कह रही हूँ। (२) उसे कहते हुए मेरी जिह्वा लज्जा का अनुभव करती है, और [उसे कहने के लिए] मैं एक लघु अक्षर भी नहीं पाती हूँ। (३) जिसके सोलह [या साठ ?] सामंत हैं, वही कोई पृथ्वीराज [मेरा वर] है, (४) जिसने [मेरे पिता के] खड्ग-दान (खड्ग-युद्ध) से भय मान कर मेरे पिता को छोड़ा नहीं है [और उससे युद्ध करना चाहता है]।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. मय मन मझस गुझ, १ धा. मुहि मनमहं गुझ जानि, द. उ. स. म. मो मन मझ गुरजन, ना. मय मनन मझ, अ. फ. मो मन मझ गुज्झन। २. मो. गुरजन छंडसु तम कहुं (=कहउं), धा. गुज्झ त तुम्ह कहुं (=कहउं), ना. उ. स. म. गुज्झ सु (सुं—म.) तुम कहौं, (कहौ—म., कहुं=कहउं—ना.), अ. फ. गुझझ सु तुम कहुँ ।

(२) १. मो. जंपत लजि (=लज्जइ), धा. जंपत लज्जै, ना. जंपत लज्जुं (=लज्जउं), उ. स. जंपति लाजौं, अ. फ. जंपत (जंपति—फ.) लज्ज, म. जंपति लाजौं । २. मो. न अक्षर (=अक्खर), धा. न अष्पर, अ. फ. न अछ्छर, म. सुअंतर, ना. न अक्खिर, उ. स. सु उत्तर । ३. मो. धा. ना. लहुं (=लहउं,) अ. फ. लहै, उ. स. लहौं, म. लहौ ।

(३) मो. धा. षटदह, अ. षट (षट) दह, फ. षड्ड (षड्ड) दह, ना. द. म. उ. स. सत्त (सित्त-द.) सेन (सयन—ना.) । (२) धा. अ. फ. सावंत । ३. धा. प्रिथी प्रिथीराज कइ, अ. फ पृथी (पृथ्वी—अ.) पृथिराज होइ, ना. द. म. उ. स. सैंर छह (छह—ना.) मंडलिय ।

(४) १. धा. मो. फ. दान खग्ग भय मान, अ. दान खग्ग भय मानि, ना. द. म. उ. स. वरन (वरण—मो.) इच्छ वर मो हिअ (हिय—म., हिअँ—ना.) । २. धा. न मुकइ तात सइ, मो. नमयुक्यु (=नमकयउ) तात सोइं, अ. फ. न (नि—फ.) मुकइ तात सुइ (सोइ—फ.), ना. द. म. उ. स. हंति अखंडलिय ।

टिप्पणी—(१) मय < मद्=मेरा । गुझझ < गुह्य । (२) जंप < जल्प् । जीह < जिह्वा । (४) मुक < मुच् ।

[१६]

[दूती वाक्यः] गाथा—अवधा*[१] अलीह[२] बाला श्रयउं*[३] उच्चरिय मिथ[४] रस एनम्[५] । (१)
लहु आ[१] तुहार पुत्ता[२] तुं पुत्तीय राइसं धीय[३] ॥ (२)

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) हे बुद्धिहीना और अलीक (लीक त्याग कर चलने वाली) बाला, तू क्यों भिन्न रस के इन [वचनों] को बोल रही है ? (२) वह लघु लघु [पिता] का पुत्र है, जब कि तू, हे पुत्री राजेश्वर की दुहिता है।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. अबुधे, ना. द. सुगधा, म. उ. स. सुगधे, अ. फ. मुद्धे। २. मो. अलि बाला, ना. मुगधप रसया, द. म. उ. स. मुगधा रसया, अ. फ. असुद्ध रसाइ। ३. मो. वयुं (=वयउं), धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। ४. ना. उवरजे भयंन, उ. स. अवरज भिन, म. अचरज भिन, अ. फ. उच्चरिय वयण भिन्न। ५. मो. पत्न् (<पत्तन्), धा. पण, ना. द. पत्र (पद्र—ना.), म. उ. स. पत्रि, अ. फ. नाव।

(२) १. धा ना. द. अ. फ. लहुआ। २. धा. लुआर पुत्ती, अ. फ. लहुवाय पुत्तं, द. उ. स. लुहान पुत्तं, म. लहुआन पुत्त, ना. लहान पुत्तं। ३. धा. तं पुत्ती राजघर आयी, ना. द. तु (तुं—द.) पुत्ती रा (राजा—द.) ग्रहेवि (ग्रेहेवि—द.), उ. स. तूं पुत्ती राजग्रेहायं, म. तूं पुत्ती राजग्रेहाइं, अ. फ. तं पुत्ती राज घर आयं।

टिप्पणी—(२) लहु < लघु। आ=वह। लुहअ < लघुक। राइसं < रायस < राजेश। धीय < दुहितृ।

[१७]

[पुत्री वाक्यः] साटिका—आरत्ती अजमेरि[१] धुम्मि धमनी[२] कति मंडि मंडोवर[४]। (१)
मोरी रा मुरमंड*[१] दंड दमनो[२] अग्गिनी उतिट्ठा[३] कर[४]। (२)
रण थंभ[१] थिर[२] थंभ सीस अहिरयि[३] जलजिद्वि[४] कालिंजर[५]। (३)
कप्पानं[१] चहुआन जानु घनयो[२] धरनोपि[३] गोरी धरं[४]॥ (४)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) उसीने अजमेर में धूम धाम मचाई और मंडोवर को काटकर मंडित किया, (२) [उसीने] मरु मंड के मोरी राज को दंडित करके उसका दमन किया, और उत्थित करों (लपटों) वाला अग्नि बन कर (३) उसीने स्थिर स्तंभ वाले रणस्तंभपुर (रंथंभौर) के के सिर पर अभिरमण किया और कालिंजर को जलमग्न किया, और (४) चहुआन की वही कृपाण तो गोरी धरा पर घन की भाँति घहराई !"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित चरण फ. में नहीं है।

(१) १. अ. फ. आरत्ता (नारत्ती—अ.) अजमेरि, मो. आरत्ती अजमेर। २. मो. धूमि धमनी, धा. धुम्मिप धवनी, द. म. उ. स. धुम्मि धमनी, अ. फ. ना. धुम्मि (धूम—फ.) धवनी (धम्मी—फ.)। ३. मो. कति मंडि (< मंडि), धा. म. ना. करमंडि, अ. कमंडि, फ. कुमंडि। ४. मा. मंडोवरं (< मंडोवरं।)

(२) १. मो. मोरीरा मरमंड, धा. अ. फ. मोरीरा मुरमुंड, ना. मोरारा मुरमुंड, द. उ. स. मोरीरा मरमुंड, म. मोरीरा मर्मुंड। २. धा. डंड दवनो, अ. फ. ना. दंड दवनो, म. डंड दमनो। ३. धा. अग्गी उचिस्टं, अ. फ. अग्गी उचिट्ठं, म. अग्नि उचिट्ठा, ना. अग्गी उतिट्ठा। ४. म. ना. करी।

(३) १. धा. रनथंभिर, अ. फ. रंथंभं। २. फ. थिर। ३. धा. सीस वजिरा, अ. फ. सीस अहरनि, ना. सीस हरणां, म. सीस अहितं, उ. स. सीस अहिलं। ४. धा. अ. जल जुसुट, फ. जलजुट्ठि, ना. जरजिट्ठ, म. उ. स. ज्वलदिट्ठ। ५. मो. कालिंजरं, म. कालउजरं, ना. काल्यंजरं (=कालिंजरं)।

(४) १. धा. किप्पान, अ. क्रिप्पान, फ. क्रप्पानं, म. क्रिपानं, ना. कर पानि। २. धा. जानि धनयो, मो. जान धनयो, अ. जानि धनयो, द. जानु रहियं, म. जांन रहियं, ना. जान हियय। ३. धा. धरणोपि, द. धहणोपि, म. धडनोपि, ना. धटनोपि। ४. म. धडा, ना. अ. फ. धरा।

टिप्पणी—(१) रज्ज < रणय्=शब्दायमान करना, गुँजाना। कन्त < कृद्। (२) रा < राज। ठट्ठि < अस्थित=बैठी हुई। (३) अहिरम < अभि+रम्।

[१८]

[दूती वाक्यः] साटिका—तो जा[१] पुत्तीय[२] मरहट्ट थट्ट[३] सबले निम्मंचि*[४] वइरागरं[५]। (१)
करनाटी[१] करवीर[२] नीर गहनो[३] गुंडी गुरं[४] गूर्जरं[५]। (२)
निर्माली हथमेव[१] मालव धरं[२] मेवाड मंडोवरं[३]। (३)
जत्तउ* तात इति सेव देव[१] नृपयो[२] तत्तानि किं तू वरं[३]। (४)

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) तू जिसकी पुत्री है, [हे संयोगिता,] उसने महाराष्ट्र, थट्टा, नीमच और वैरागर को शबल (भ्रष्ट) किया; (२) कर्णाट, करवीर, गुंड और गुरु गुर्जर की कांति के लिए ग्रहण हुआ; (३) निर्माल्य जिस प्रकार हाथ में हो, उसी प्रकार उसने मालव भूमि, मेवाड़ और मंडोवर को हस्तगत किया। (४) जब कि ऐसा तुम्हारा पिता है, और ऐसे देव जैसे नृप उसकी सेवा करते हैं, तब तू उन्हें क्यों नहीं वरण करती ?"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. ना. द. म. उ. स. तो [मात्र], धा. अ. फ. जा [मात्र], मो. तो जा। २. म. ना. पुत्री। ३. द. मरहट्ट वट्ट, ना. मरहट्ठ। ४. मो. निर्मनि, म. उ. स. नीमंच, ना. द. नीमांच, धा. अ. निम्वीय, फ. नद्वीय। ५. म. अ. फ. ना. वैरागरे।

(२) १. द. कर्णाट, म. कर्नाटी। २. धा. करनीर, म. उ. स. करवीर, अ. फ. कर्रिनीर। ३. मो. नीर गिहिनो, ना. म. नीर गहना, धा. अ. फ. चोर गहनो, द. नीर गहिनो। ४. मो. गुडा गुरं, धा. गुंडी गुरे, ना. द. म. उ. स. गोरी गिरा। ५. म. उ. स. गुज्जरी, धा. अ. फ. ना. गुज्जर, द. गुर्ज।

(३) १. धा. निम्माले हथमाक, अ. फ. निर्मोंलो हथमेलि, म. निर्मोलो हथलेव, उ. निर्मा हथलेव, ना. निर्माली हथमेव मेलि, स. निर्मावे हथलेव। २. म. ना. धरा। ३. उ. स. मेवार मंडो धरा, म. मेवार मंडोवरा, फ. मेवार मंडोवरं।

(४) १. मो. जतु (=जत्तउ) तात हूं षत सेव देव, धा. जातस्तात देव, ना. जिन तातं इति सेवदेव, उ. स. म. जित्ता तातय सेव देव अ. फ. जाता तस्य सदैव सेव (सेउ—फ.)। २. अ. फ. नृपयं, म. त्रिपति। ३. मो. तत्वनकी तू वरं, धा. तात सुत किंवा वरं, अ. फ. ज्ञानं न तं किं वरं, ना. तत्वान तु कथं वरे, द. तत्तानतुं किं वरं, म. तत्तात्पनं किंवरे, उ. स. तत्वान्यनं किं वरे।

टिप्पणी—(१) जा < या। सबल < शबल। (३) निर्माली < निर्माल्य। हथमेव < हस्तन्+एव। (४) जत्तउ < यत्+तव। तत्तानि < तत्+तानि।

[१९]

[पुत्री वाक्यः] श्लोक—न मो[१] राजान*[२] संवादे[३] न मो[४] गुरुजनागरे[५]। (१)
वर मेकं सयं[१] देह अन्यथा[२] पृथिराज ए[३]॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) न मैं राजाओं के संवादों (संदेशों) का और न गुरुजनों [के आदेशों] का आकलन करती हूँ। (२) एक सौ देह (जन्म) ग्रहण करना पड़े तो भी अच्छा होगा, अन्यथा [नहीं तो] पृथ्वीराज [मुझको प्राप्त हों]।"

* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. म. नमे (नंमे—फ.)। २. मो. रामान (<रायान), धा. रयन, ना. द. म. उ. स. अ. फ. राजन। ३. अ. फ. संवाहो। ४. मो. नमोत्व, अ. फ. म. नमे (नं मे—म.)। ५. मो. गुरुजनयोग गुरे, धा. गुरु रयन जागरे, म. उ. स. गुरु (गुर—म.) जन आ गरे, अ. गुरज नागरे, फ. गुर्ज्जी गरे।

(२) १. मो. श्रयं, ना. सुयं, अ. फ. उ. स. स्त्रयं, म. प्रिय। २. मो. अन्यथा, धा. आनित्ताभि, म. उ. स. नान्यथा, अ. फ. सर्वथा। ३. मो. प्रथीराज, धा. प्रथिराज यं, म. प्रथीराज यं, ना. प्रथिराजयो।

टिप्पणी—(१) आगर < आकल < आ+कल्‌=आकलन करना। (२) सर्व < सर्व।

[२०]

[दूती वाक्यः] साटिका—इंदो किं[१] अंदोलिना[२] अमीया[३] चक्रीवं गंगा सिरे[४]। (१)
वच्छी छीर[१] विचार चारु[२] भमरे[३] चिंचीन बंका करे[४]। (२)
तत्स्थाने[१] कर पाद पल्लव वसा[२] वल्ली[३] वसंता[४] हरे। (३)
चतुरे तुं[१] चतुराय[२] आनन रसं[३] ता जीव मदनावरे[४]॥ (४)

अर्थ—[दूती ने कहा,] (१) "इंदु क्यों [इंदु] है? इन्दुलेखा (ज्योत्स्ना) के अमृत के कारण। चक्री (शिव) भी [चक्री क्यों है ?] गंगा के सिर पर होने के कारण। (२) वत्सिन्‌ (बछड़े वाली गौ) [वत्सिन्‌ क्यों है ?] क्षीर [के कारण]। भ्रमर भ्रमर क्यों है ? चारु विचरण के कारण। चिंची [चिंची क्यों है ?] अपने बाँके (टेढ़े) करों (फलों) के कारण। (३) वशा (हस्तिनी) क्यों अपने स्थान पर है—क्यों वशा (हस्तिनी) है ? अपनी [सुन्दर] कर (सूँड़), तथा पल्लव सदृश [कोमल] पाद (पैरों) के कारण। वल्ली [क्यों वल्ली है ?] क्यों कि वह वसंत को ग्रहण करती है। (४) [उसी प्रकार] हे चतुरे, तुम्हारे मुख और जिह्वा की जो चतुरता है, वह [तुम्हारे] जीव के मदन द्वारा आवृत्त होने से है।

पाठान्तर—(१) मो. इंदो क्यं, म. उ. स. इंद्रो कि, धा. ना. द. अ. फ. इंदो (अंदो—द.)। २. धा. अ. फ. इंदोलिषन, मो. अंदोलिया, म. अलि अन्य ईस, ना. इंदोलिआनि, उ. स. अन्य ईस (ई—उ.)। ३. म. उ. स. अनयो। ४. मो. चक्रीवं गंगा सरे, धा. अ. चक्री भुजंगा सिरे, फ. वक्री भुजंगा सिरे, म. उ. स. चक्री भुजंगा सुरं (सुरे-म.), ना. चिर्क्री भुजंगा सिरे।

(२) १. मो. वछच्छर, धा. चिच्छी छीर, उ. स. चच्छी चारु, म. दछी चारु, द. वछी चारु, ना. चच्छी वीर, अ. पच्छी छीर। २. मो. विचार चार, धा. अ. विचार चाभि, फ. विचारु वाभि, ना. विकार चारु, म. उ. स. विचार चारु। ३. धा. म. स. अ. भंवरे, फ. भउरे। ४. धा. बिंचीन चंका करे, मो. चंचीन बंका करे, अ. फ. बिना न (नु—फ.) बंका करे, ना. न बिंका करे, म. विचिति वंका करे, उ. स. चिंचीनि बंका करे।

(३) १. मो. द. अ. फ. तस्याने, म. उ. स. तस्थानं, ना. स्तथाने। २. मो. कर पाद पल्लव वास धा. ना. कर पाद चूव पलव रसा, अ. फ. करपाद लूव (भूव—फ.) पलव रसा, म. उ. स. कर पाद पल्लव, वसा। ३. मो. वला (< वल्ली)। ४. धा. वसंतो।

(४) १. धा. अ. फ. किं, उ. म. तं, स. तव। २. धा. चतुराइ। ३. मो. आनन रसे, धा. अ. फ. जान तुरसा, ना. द. उ. स. म. आनन (आंनन—म.) रसा। ४. स. मह्नावरे।

टिप्पणी—(१) अंदोलिया < इंदुलेखा। अमीय < अमृत। चक्री < चक्री=शिव। (२) वच्छी < वत्सिन्‌= बछड़े वाली गौ। छीर < क्षीर। चिंचिणी [देशज]=इमली। बंका < वक्र। (३) वसा < वशा=हस्तिनी। हर < ग्रह्‌=ग्रहण करना। (४) रसा=जिह्वा। आवर < आ+वृ=आच्छादन करना।

[२१]

[पुत्री वाक्य:] दोहरा——सा जीवन[१] जत्तह[२] वयनु वयन[३×] गए[४] मृत[५] होइ । (१)
*जो थिर[१] रहइ सु कहहुं किन[२] हउं[*] पुच्छउं[*३] तुम[४] सोइ ॥ (२)*

अर्थ——(१) "[मनुष्य का] जीवन वहीं तक है जहाँ तक वचन [की पूर्ति] हो; वचन के जाने पर मनुष्य मृत हो जाता है। (२) जो स्थिर रहता है, वह तुम क्यों नहीं बताती ! मैं तुमसे वही पूछ रही हूँ।"

पाठान्तर——* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. सज्जीवा, म. उ. स. जा जीवन। २. धा. राखं, अ. फ. रव्वै, ना. जंतह, म. उ. स. वतह (मतह–फ.)। ३. धा. में यह शब्द नहीं है, ना. वयतु। ४. मो. गरप, स. गये अ. फ. ना. गयै। ५. धा. म्रित, फ. मृति, द. मृतु।

(२) १. मो. जिउं थिर, धा. ना. म. स. जो थिरु (थिर–धा.स.), द. उ. जा थिर, फ. जोवन, अ. जो थितु। २. मो. सु कहुहु किमि, धा. द. अ. फ. सु कहउ (कहहु–अ. फ.) किन, म. उ. स. सोई कहौ, ना. सो कहु (=कहउ) किनि। ३. मो. हुं (=हउं) पूच्छुं (=पुच्छउं), धा. द. हूं पूछूं, अ. फ. हौं पुच्छौं, ना. हूं पुच्छुं (=पुच्छउ), उ. स. हो पूछूं, म. हुं पुछछौं। ४. मो. तम, धा. द. तुम्ह।

टिप्पणी——(१) जत्तह < यत्र। वयनु < वचन।

[२२]

*[दूती वाक्य :] दोहरा——थिरु[१] बाले[२] वल्लभ[३] मिलन जउ[*४] जोवन दिन[५] होइ । (१)*
अये[१] जोबन[२] कुव्वन तन सु[३] को मंडइ रति सोइ[४] ॥ (२)

अर्थ——[दूती ने कहा,] "(१) हे बाला, [इस संसार में] स्थिर केवल वल्लभ (प्रिय) से मिलन है, [किन्तु] यदि यौवन के दिन हों। (२) यौवन के चले जाने पर जब तन कुवन (विकृत) हो जाता है, वही (यौवन के दिनों क) रति कौन माँडता (करता) है ?"

पाठान्तर——* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का हैं।

(१) अ. फ. थितु। २. अ. फ. बालं। ३. धा. अ. वल्लभ, फ. बलन (< वल्लभ)। ४. मो. जु (=जउ), धा. जा, ना. जो, अ. फ. म. उ. स. जौ। ५. धा. जुव्वन तन, मो. जो अनिनइ, म. ना. द. अ. फजु वन दिन, स. जुव्वनु दिन।

(२) १. धा. गउ, अ. फ. गैं, ना. द. गय, स. गयौ। २. धा. अ. फ. ना. जुव्वन, उ. स. द. जुवन। ३. धा. कुव्वन्न तनहु, ना. कोवन तुहिसु, उ. कवन तनाहि, स. कछु बनत नहि, द. कुवन तनहि, अ. फ. कुव्वन (कुच्चन–फ.) तनह। ४. मो. को मंडि (=मंडइ) रति सोइ, धा० रत्ति न मंडइ कोइ, उ. स. रति मंडइ (मंडौ–स.) घट लोइ, ना. को मंड रति सोइ, अ. फ. को मंडइ (मंडै–फ.) रिति सोइ।

टिप्पणी——(१) थिरु < स्थिर। वल्लभ < वल्लभ। (२) अय < अय्=जाना।

[२३]

[पुत्री वाक्य :] दोहरा——तुव सम[१] मात न तात[२] तनु गात सुरत्तरियाह[३] । (१)
जुव्वनु धन[२] अथिर[१] रहै अंभु कि अंजुरियाहं ॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] (१) "तुम्हारे समान न [तुम्हारी] माता और न [तुम्हारे] पिता के गात्र सुन्दर हैं। (२) यौवन-धन तो अस्थिर रहता है; [तुम्हीं बताओ,] क्या अंजलि में पानी स्थिर रहता है ?"

पाठान्तर—(१) १. ना. द. तों सुत्र, म. उ. स. तोसौं २ अ. तात तन, फ. मात तनु। ३. अ सुरंतरियाइ (=सुरत्तरियाइं), फ. सुरंभरि याहं, ना. द. म. उ. स. सुरंगरियाहं।

(२) १. द. जुं जुव्वन, ना. जोवन जुव्वन। २. अ. फ. अच्छिन। ३. ना. अंबु, म. उ. स. अंब।

टिप्पणी—(१) रत्त < रक्त। (२) अथ्थिर < अस्थिर।

[२४]

[दूती वाक्यः] साटिका—जाने मंदिर दार चौर[*१] चिहुरा[+×] बाढंति[+×२] चित्तानला[+×३] । (१)
जाता[+×] फुल्लित[+×१] चंपकस्य[+×२] कलया[३] मनु कंदर्प दीपा प्रहा[५] । (२)
झंकारे[१] भवरे[२] उडंति[३] बहुला फुल्लानि फुल्लंदिया[४] । (३)
सोयं तोय[१] संजोगि[२] भोग समया[३] प्राप्ते[४] वसंतोत्सवे[५] ॥ (४)

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) जिससे मंदिर (घर) फाड़ खाने लगता है, चोर तथा चिकुर (केश) चित्त के अनल (अग्नि) को बढ़ाते हैं, (२) जिससे फुल्लित (फूली हुई) चंपक की कली कंदर्प-दीप की प्रभा-सी हो जाती है, (३) जिससे झंकार करते हुए भ्रमर बड़ी संख्या में उड़ पड़ते हैं और फूल खिल उठते हैं, (४) वही तो, हे संयोगिता, भोग का समय वसंतोत्सव प्राप्त हुआ है !"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।
+ चिह्नित शब्द या शब्दांश अ. में नहीं है।
× चिह्नित शब्द या शब्दांश फ. में नहीं है।

(१) १. मो. जाने मंदिर दार वौर (<चौर), धा. जेने मंजर दार चाह, ना. द. म. उ. स. जाने (जाने-म.) मंदिर द्वार चाह (चार-म. उ. स.), अ. फ. जेने मंजरि दारु चारु (चारु-फ.)। २. धा. बार्जति, म. बाढंत। ३. मो. चांत्यानिला (<चांत्यानिला), धा. चित्तानला, म. चिन्तानला, ना. द. चित्तानिला, उ. स. चित्तानलं।

(२) १. मो. जादा फूलित, धा. जाता फुल्लिय, द. जाती फुल्लिय, ना. जदि तीय फुलीय, म. जाती फूलय। २. ना. उ. स. पंकजस्य। ३. उ. कुलया। ४. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है। ५. धा. दीपं प्रहा, ना. द. अ. फ. दीप प्रभा, उ. स. दीपं प्रभा, म. दीप प्रभा।

(३) १. ना. झंकारो। २. धा. भवरे, मो. भ्रमरे, अ. फ. भवरा (भवरा-फ.), म. उ. स. भ्रमरे, ना. भमरं। ३. उडंत। ४. धा. अ. फ. फुल्लानि फुल्लंदया, मो. फूलानि फूलंदिया, द. म. उ. स. फुल्लानि फुल्लंतया, ना. फूलापि फूलंदया।

(४) १. म. सोयं जोय, अ. फ. सायं तोइ, ना. सायं तोय। २. मो. संयोग, म. उ. स. संजोय, फ. संजोगु। ३. धा. अ. फ. ताहि सुभरे, मो. भोग शमया (समया), म. सोग समया, द. भाग समया। ४. धा. अ. फ. पत्तो, ना. प्राप्तो। ५. मो. वसंतोत्सवो, धा. वसंतोच्छवइ, ना. वसंतोच्छव, म. उ. स. वसंते छवि (छवी-स.)।

टिप्पणी—(१) दार =फाड़ना। चिहुर < चिकुर=केश। (२) प्रहा < प्रभा। (३) फुल्ल=खिला हुआ।

[२५]

[पुत्री वाक्य।] श्लोक—संवादेव विनोदेव[१] देव देवेन रच्यते[२] । (१)
धन्य प्राणोऽथवा प्राणो[१] प्राणेश[२] दिल्लीश्वरः[३] ॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) संवाद में और विनोद में भी उसी प्रकार, देव देव (महादेव) द्वारा मैं रक्षित हाऊँ। (२) वे अन्य प्राण से या इसी प्राण से [प्राप्त] हों, मेरे प्राणेश्वर दिल्लीश्वर हैं।

पाठांतर—(१) १. मो. संवादेव विनोदेन, धा. संवादे च, विनोदे च, ना. सवादेव विनोदेव, द. संवादेवि वनादेव, म. संवादे विनोदेव, अ. फ. सवादे य (ज-फ.) विनादेय। २. धा. देवे देवन रच्छितं, ना. देव देवान रस्थितः, म. उ. स. देव देवान रच्छितः (रच्छित-म.), अ. देवदेवति रछछति, फ. देवदेव न रछछती।

(२) १. मो. अन्न प्राणेऽथवा प्राणे, धा. अ. अन्द प्रानव प्रानेव, ना. अनुप्रानेन पानेवा, द. उ. स. अनुप्राने प्रयाने (प्रवाने-द.) व, म. अनुप्राने प्रयानेव, फ. अन्त प्रानेव प्रानेव। २. मो. ना. द. अ. फ. प्राणेवा, धा. प्रानेव, अ. उ. स. म. प्रानेस, म. प्रानेसं। ३. अ. फ. मो. डिल्लीस्वर, ना. दिल्लीसुर, म. ढिल्ली वारि।

[२६]

दोहरा— *तब दूतिन उत्तर करिय[१] पंग पुत्ति परवांन[२]। (१)*
नृप अग्गइ[१] वद्दइ[२] न कछु आंन न मुक्कइ मान[३] ॥ (२)*

अर्थ—(१) तब दूतियों को पंगपुत्री (संयोगिता) ने प्रामाणिक उत्तर दिया। (२) वह न राजा के आगे कुछ कहती थी, न [अपनी] आन छोड़ती थी, और न [अपना] मान।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. दूती उत्तर आनि दिय, ना. द. दुत्तिनि (दुत्तनि-ना.) उत्तर करिय तिहि, उ. स. दुत्तिअ उत्तर उत्तरिय, म. दूतिन उत्तर उत्तरी, अ. फ. दुत्तिनि (दुत्तिन-फ.) उत्तर आनि दिय। २. मो. पंगपूती परवांन, म. उ. स. बुद्धि बंध परमान (परमानि-म.), द. अप्प बुद्धि समान।

(२) १. धा. आगइ, मो. आगैं, ना. अग्गैं, म. उ. स. आगैं, अ. अग्गर, फ. अग्गा। २. मो. वंदि (=वद्दइ), द. वंदौ, धा. अ. फ. वदिय, म. वदीय, स. वदिहय, ना. वदिआ। ३. धा. मुक्कइ मान न आन, मा. आनन मूकि (=मूकइ) मान, म. उ. स. उत्तर दियौ न आनि, ना. द. आनन मुक्किय (मुकै-द.) मान, अ. फ. मान न मुकै आन।

टिप्पणी—(१) परवांन < प्रमाण। (२) वद्दइ < वद्। मुक्क < मुच=छोड़ना।

[२७]

दोहरा— *तब क्रुकित राइ गंगह तट त[१] रचिपचि उच्च आवास[२]। (१)*
चाहि गहउं[२] चहुआन तकु[३] जु मिट्टइ*[३] बाला आस[४] ॥ (२)*

अर्थ—(१) राजा (जयचंद) ने तब क्रुद्ध होकर गंगा-तट पर एक ऊँचा आवास रच-पच कर [उसमें में संयोगिता को रक्खा और] (२) यह देखने लगा, "चहुआन (पृथ्वीराज) को पकड़ूँ जिससे बाला (संयोगिता) की [उसके संबंध की] आशा मिट जावे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा. अ. फ. तब क्रुकिय (=क्रुक किय) गंगा तटहि (तटह-अ.), ना. द. म. उ. स. क्रुकिन किय (कीय-ना. द.) गंगा तटह। २. धा. ऊच अवास, ना. म. उ. स. उंच अवास, ना. द. उच्च अवास।

(२) १. मो. चाहि गहुं (=गहउं), धा. अ. चाहि गहहुं, फ. चाहि गहहि, म. चाय गहौ, स. चहति गहौं, ना. चाहि गहौं। २. धा. इह, ना. फ. कौ, म. कौं, स. कौ, उ. कौं, अ. कहुं, द. कुं। ३. धा. अ. फ. मिटै, ना. जु मिटि (=मिटइ), ना. ज्युं (=जयउं) मिटै, उ. म. उ. क्यौं मिटैं (मिटय-म.)। ४. धा. अ. फ. ना. द. उ. स. म. बाल वर (वार-धा.) आस।

[२८]

अडिल्ल— सुनि सुनि[१] वचन राय[२] जनि[३] जंपिउ[४] । (१)
थरहर[१] धर[२] ढिल्लीपुर कंपिउ[३] ॥ (२)
जिउं[*१] सूर[२] तेज तुच्छत[३] जल[४] मीनह[५] । (३)
तिउं[*१] पंगह भय[२] दुज्जन भय+ पीनह[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) [संयोगिता की] बातें सुन-सुन कर राजा (जयचंद) जब जल्पना करने लगा, (२) तब धरा थर्रा गई और ढिल्लीपुर काँप उठा। (३) [जिस प्रकार] सूर्य के तेज से घटते हुए जल में मीन [क्षीण] होते हैं, (४) उसी प्रकार पंगराज (जयचंद) के भय से दुर्जन (उसके शत्रु) क्षीण हो गए।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. सुनि फुनि, ना. सुनि जा, द. सु न । २. म. राज, ना. अ. फ. राइ । ३. धा. अ. फ. द. जब, ना. जो, म. उ. स. इम । ४. मो. जंप्यो, धा. जंपिउ, म. उ. स. अ. फ. जंपँ, ना. जंप्यौ ।

(२) १. धा. मनहर, ना. थरहर, अ. थरहरि । २. धा. धरि । ३. धा. कंपिउ, मो. कंप्प, म. उ. स. अ. फ. कंपँ, ना. कंप्यौ ।

(३) १. मो. द. उ. स. ज्यौं, द. ज्यों, ना. म. ज्युं (=ज्यउं), धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. म. उ. स. रवि । ३. ना. तुच्छि, म. उ. स. तुच्छ । ४. म. स । ५. ना. मिनह ।

(४) १. मो. तिउ (< तिउं) द. त्युं, म. उ. त्यौं, ना. इम, धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. मो. पंगह, धा. द. अ. फ. पंग भयह, ना. पंग भय, म. उ. स. पंग भयं । ३. मो. दूजन भय पिनह (=पीनह), धा. अ. फ. द. दुर्जन भय (भये-अ.) षी नह (षीनहि-फ.), म. उ. स. दुज्जन भय छीनह (छीह-म.) ।

टिप्पणी—(१) जंप < जल्प् । (४) पीन < क्षीण ।

१. कयमास-वध

[१]

दोहरा—तिहि तप[१] आषेटक भमइ[२] थिर न रहइ*[३] चहुवान[४] । (१)*
नर प्रधान जुग्गिनि पुरह[१] धर रष्षइ परवान[२] ॥ (२)

अर्थ—(१) उस [विरह] ताप में चहुआन (पृथ्वीराज) आखेट में फिर रहा था, और [राजधानी में] स्थिर नहीं रहता था, (२) योगिनीपुर (दिल्ली) की धरा की रक्षा उसका श्रेष्ठ प्रधान (अमात्य) प्रमाण रूप से कर रहा था।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) फ. तिह तब। २. मो. भमि (=भमइ), धा. भमहि, ना. भमै, म. उ. स. फ. भ्रमै, द. फिरैं अ. भय। ३. धा. रहिइ (< रहइ), मो. ना. द. म. उ. स. अ. फ. रहै। ४. फ. चौहुवान।

(२) १. मो. यूगिनि पूरण, धा. युग्गिनि पुरह, फ. युग्गिनु पुरहि, ना. जुग्गनि पुरह, उ. योगिनिपुर, स. योगीनिपुर। २. मो. धर रष्यौ परवांन, धा. धर रषइ परधान, ना. सुधर रषन परवान, द. धर रक्खन फुरवान, म. धर रषै बरवान, उ. गय सामंत प्रधान, स. दस सामंत प्रधान, अ. फ. धर रष्षै परवान (परमानु—फ.)।

टिप्पणी—(१) भम < भ्रम्। (२) धर < धरा। परवान < प्रमाण।

[२]

साटिका—राजं जा प्रतिमा स चीन[१] धर्मी[२] रामा[३] रमे[४] सा मतीन्[५] । (१)
निस्तीरे कर[१] काम वांम[२] वसना संगेन सेज्या[३] गतिः[४] । (२)
अंधारेन जलेन[१] छिन्न[२] छितया[३] तारानि[४] धारा रत[५] । (३)
सा मंत्री[१] कयमास[२] काम अंधा[३] देवी विचित्रा गति[४] ॥ (४)

अर्थ—(१) जो राजा की प्रतिमा (प्रतिनिधि) था, वह लघुकर्मा हो गया, और उसकी मति रामा (कामिनी) में रमण करने लगी। (२) वह जिसके हाथ में तीर नहीं है, ऐसे [धनुर्धर] कामदेव की वामा (कामिनी) के वश में होकर वह उसके साथ शय्या-गत हुआ। (३) अंधेरे में [बरसने वाले] जल से जब क्षिति छिन्न हो रही थी, और तारागण भी [वर्षा के जल की] धारा में रत (लीन) हो रहे थे, (४) वह मंत्री कयमास कामांध हो गया, दैव की भी गति विचित्र है।

पाठान्तर—(१) म. जंजा प्रतिम कन्ह, ना. राजंजा प्रतिमा सुचीन। २. मं. धर्म धर्म, म. धरमं, द. उ. स. प्रतिमा। ३. धा. रोमा, मो. रामा, म. रामं। ४. धा. अ. फ. रमा, म. रामे। ५. मो. सा मतीन, म. संमता, शेष में सामती।

(२) धा. निस्तीरे सर, ना. द. नीती रंकर, उ. स. निसी रंकरि स. ना तीरे कर, अ. निस्तीरे (नीतीरे—फ.) कर (करि—फ.)। २. धा. तास, अ. फ. ताम। ३. मो. संगेन, शेझा (=सेझया),

धा. संजेन सेउरा, ना. उ. स. द. सर्ज्जान संग्या, म. संगन सिउरा। ४. धा. गती, अ. गता।

(३) १. म. अरधरेन जलेन, द. अंवारेन जलिन, स. आधारेन जलिन। २. म. ना. स. छीन, फ. क्षन। ३. मो. के अतिरिक्त सभी में तड़िता (जडिता—म., तडिता—फ.)। ४. धा. धाराणि, ना. म. उ. स. ताराण। ४. मो. दामन्य। ५. मो. दामायते, धा. ना. धारा रत्ती, अ. धारा रत्ती, फ. साधारुनी।

(४) १. द. म. उ. स. सो मंत्री। २. अ. फ. कैवास। ३. धा. कामलुबया, ना. द. उ. साम विषया, म. नास विषया, स. मास विषया, अ. फ. बुधि हरनी। ४. धा. अ. फ. देवो विचित्रा गता (गा. अ.) मा. देवी बिरदा गति, ना. देवे विचित्रा गतां, उ. स. देवी विचित्रा गतां, म. देवो विहगा गता।

टिप्पणी—(१) चीन=छोटा, लघु। (२) निर्त्तारे कर=जिसके करों में तीर न हो। (४) विरदा < विचित्रा।

[३]

दोहरा—करनाटी[१] दासी[२] सुवन[*३] *रजनी अथिथ अवास*[३] *। (१)*

काम मुच्छ[१] *कयमास तनु*[२] *दिट्ठि विलग्गी तास*[३] *।।+ (२)*

अर्थ—(१) करनाट की एक सुवर्ण (सुरूपा) दासी थी जो रात्रि में [राजकीय] आस्थान-आवास में थी। (२) काम-मूर्छित कयमास की ओर उसकी दृष्टि लग गई।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

+ चिह्नित चरण मो. में नहीं है।

(१) १. धा. करणादिय, म. करनाटीय। २. धा. म. दासिय (दासीय—म.)। ३. मो. क्रुवन < कुवन), धा. अ. फ. म. सुवन, ना. सगुन, उ. स. सुबर। ३. धा. रमन हि अथिय अबास, अ. फ. राजन अधि आवास, फ. राजन अथिय अवास, ना. द. उ. म. चित चच्चल निय वास, म. रजनी अरथ अवास।

(२) १. मो. मुच्छ, शेष में 'रत'। २ म. तहा। ३. अ. फ. दिठिय तुठि अवास, द. उ. स. दिट्ठि (दिट्ट—स.), उरझिझय तास, म. दिठीय पिठ पवास, ना. दृष्टि उलझीय तास।

टिप्पणी—(१) अथिथ अवास < आस्थान (?) आवास=सभा गृह या गोष्ठी गृह। (२) मुच्छ < मूर्च्छ्। दिट्ठि < दृष्टि।

[४]

कवित्त— *चलउ*[*] *मुहिलि*[१] *कयमास*[*] *रयणि*[२] *नट्ठी*[३] *जाम इक्कत*[४] *। (१)*

तंबोलय[१] *सषि साषि*[२] *पट्ट रंगिनीअ*[३] *निधि संकित*[४] *। (२)*

दीपक जरइ[*] *संकूरि*[१] *भमिअ*[२] *रत्तिअ पति अंतह*[३] *(३)*

अति स रोस[१] *भरि भूज*[२] *लिहि*[*] *दीय दासी करि*[३] *कंतह*[४] *। (४)*

पह्लारिा अस्त्र तंषिन षरीय[१] *अवधि दीइअ*[२] *दुहु घरिय*[३] *कहं*[×] *। (५)*

पल गयण[१] *प्रयण वनि*[२] *संचरिअ*[३] *नयन*[४] *नयनप्रथिराज जहं*[५] *।।(६)*

अर्थ—(१) एक पहर रात्रि के नष्ट (व्यतीत) होते-होते कयमास उस महल को चला। (२) तांबूल-वाहिका सखी ने [दोनों के] उस निधि (स्नेह) से शंकित होकर पट्टरानी से साक्षी [दी]. (३) कि दीपक संकुटित (पतला किया जाकर) जल रहा है, और वह रात्रि पति (चन्द्र) तुल्य कयमास अन्तःपुर में फिर रहा है। (४) [यह सुनते ही] अत्यन्त रोष में भर कर

(रुष्ट होकर) भूर्ज पत्र लिख कर उसने दासी के हाथों में अपने कांत (पृथ्वीराज) के लिए दिया। (५) तत्क्षण अश्व पलान (कस) कर उसे [रानी ने] खरी दो घड़ियों की अवधि [पृथ्वीराज को लाने के लिए] दी। (६) पल भर में वह गजों से प्रकीर्ण वन में संचरण करने लगी और नेत्रों के सकेत मात्र [के समय] में [वह वहाँ जा पहुँची] जहाँ पृथ्वीराज थे।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के है।

× चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

(१) १. मो. चुल मुहिलि, धा. अ. फ. चल्यो महल, ना. चल्यौ महल, म. गयौ महल, द. उ. स. गयौ मध्य (मधि—द.)। २. मो. किमास (=कयमास) रयणि, धा. कइवासु रयन, अ. फ. कैवासु रैनि, म. कैमास रैन, उ. स. कयमास रयनि। ३. धा. नट्ठियत्ति, ना. संपत्ति, द. उ. स. संप्त, अ. फ. नठियति, म. नठीवत। ४. धा. म. ना. अ. फ. जाम (याम—धा.) इक।

(२) १. धा. तंबालो, अ. फ. तंबोल, म. तंबोलि, ना. तब मुलौ, द. उ. स. तंबुलिय। २. धा. अ. फ. साथ, ना. सीथ, म. सथि, अ. फ. उ. स. साथ। ३. मो. पट्टरागिनी, अ, धा. पाटरागिनि, अ. फ. पट्टरागिनि, म. पट्टरागनी, ना. द. उ. स. पट्टरागिनिय। ४. धा. अनग सिख, अ. फ. उलंघि सिक, ना. उ. स. निकट सिक, म. कसिक सिक।

(३) १. धा. अ. फ. दिय दीपक संपूरि (संपूनि—धा.), मो. दीपक जरि (=जरइ) संकुलि, ना. द. उ. स. वास (वास—ना. द.) धास दिय पूर, म. वास भ्यातु कीय पूर। २. धा. नयर, म. संमीय, अ. फ. [illegible]. स. ना. अमिय। ३. मो. रतिअ पत्ति अंतइ, धा. ति पत्ति अंत कह, अ. फ. भय रत्ति पत्ति तइ, म. पाइक जग अंतइ, ना. पिय किय पत्ति अंतइ, द. उ. स. पिय किय अत्ति अंतइ।

(४) १. मो. अति सरेस, म. अत सरोष। २. धा. अ. फ. लिखि भोज, ना. द. उ. स. मिक पानि (पान—ना.), म. रोसइ। ३. मो. लइ दीय दासी करि, धा. दाव (=दी) दासी कर, अ. फ. दियो दासी कर, ना. द. उ. स. सुनष (सुन—ना., नष्ष—उ.) लिखि (लषिषि—ना.) सषि (सकि—ना.) कर, म. पत्रि पिकनष लिखि। ४. मो. कलह।

(५) १. अ. फ. पल अस्व हंकि तषिन खवरि, म. दासी असि पलनि गमन किय, ना. द. उ. स. असि (पति—द.) असमवारि (असि निवारि—ना.) मग्गह धरिय। २. अ. फ. ना. द. उ. स. अवधि दीन (दिन्न—ना.) म. विधि दिन्ही। ३. मो. दुइ धरीअ, अ. फ. दुइ घरिय, म. घरी दोइ, उ. स. दो धरिय, ना. दुय धरीय।

(६) १. धा. वयनि, अ. फ. गयनि। २. धा. अ. फ. वचन बल, स. सुराइव, द. सराइवं, ना. राइव, म. वयम तहां। ३. मो. संचरीय, धा. में 'सं' मात्र है। ४. ना. सुष्य, द. उ. स. अयन। ५. धा. जहिं, मो. जाहां, म. जहां।

टिप्पणी—(१) रयणि < रजनी। नट्ठ < नष्ट। जाम < याम। (२) पट्टरागिनीअ < पट्टराज्ञी। निधि < स्नेह्य। (३) संकुरि < संकुटित=सिकुड़ा या सिकोड़ा हुआ, कम किया हुआ। भम < भम्र्। रत्तिअ < रात्रि। (४) भूज < भूर्ज। लिह < लिख्। कंत < कान्त। (५) तषिन < तत्क्षण। (६) गय < गज। प्रयग < प्रकीर्ण। सयन < संकेत।

[५]

गाथा—भू भ्रत[१] सचित सुनिद्रा*[२] संग+×[३] सा[३]+× रयणि× जग्गइ×* अविध्धा[४]× ।(१)
दीपकु× जरइ× सुमुद्धा[१]× नूपुर[२] सद्दानि[३] भानि अच्छानि[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) भूभर्त्ता (भूमि का भरण करने वाले—भूपति) सुचित्त होकर सुनिद्रा में थे, और [उन के] साथ वह रजनी भी अवैध रूप से जाग रही थी। (२) दीपक जल रहा था, [उस समय] उस मुग्धा [दासी] ने नूपुर के अच्छ (स्वच्छ) शब्दों से [उस निद्रा को] भंग किया

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।

× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. भ्रमेल, अ. फ. ना. भूपल। २. मो. अचित, मूर्छितो, धा. चंचित निंद्रा, संमूर्छित सुनंदा, ना. चित्त सुनिद्रा, म. मुर्छित नंदा, द. मुच्छित मुनिद्रा, उ. स. मुर्छित निद्रा। ३. अ. संगी मा, धा. संग सा, द. संगी स, उ. स. सिंगीसार, म. संगीता। ४. मो. जगि (=जगः) अविम्भा, धा. जाने चिय बढा, द. अग्गियं विद्धा, स. जग्गिर्यं बिद्ध, म. जगीर्यं विम्भा, ना. जग्गियं बढा, अ. फ. जग्गि जियं बढा।

(२) १. धा. जरह समुदा, ना. द. अ. जर. सुमंद्रा, धा. म. जोर सुमंदा, उ. अरंत सुद, स. अरंत मंद। २. मो. नपर। ३. अ. मद, फ. सहाय। ४. धा. अच्छानि म. आच्छासि, द. आथानि, अ. फ. यंजनो।

टिप्पणी—(१) भूभ्रंत < भूभर्तृ=भूपति। निद्रा < निद्रा। रयणि < रजनी। (२) मुद्धा < मुग्धा। सद < शब्द। मान < मज्ज।

[६]

साटिका— भूकंपं[1] जयचंद राय[2]× कटके[2] शंकापि न ज्ञायते[3] । (१)

संसे साहिबस सहावसाहि[1] +सकलं[2] इच्छामि[3] युधाइने[4] । (२)

सिद्ध[1] चालुक चाइ मंत्र[2] गहने[3] दूरे स विस्वासरे[4] । (३)

अग्यानं[1] चहुआन जानि रहितं[2] दैवोऽपि रक्षा करे[3] ॥ (४)

अर्थ—(१) जयचंद राज के कटक मे भूकंप होता था, किन्तु [पृथ्वीराज को] उससे शंका भी नहीं ज्ञात होती थी; (२) शाह शहाबुद्दीन से उसने समस्त युद्ध साहस के साथ और इच्छा पूर्वक किए थे; (३) सिद्ध (जैन) चालुक्य [भीम] को जब मंत्री (कयमास) ने चाव (उत्साह) से पकड़ा था, वह विश्वासर में दूर था [उस युद्ध में इसने भाग भी नहीं लिया था]। (४) ऐसे भी चहुआन (पृथ्वीराज) को अज्ञ [कयमास] जान न पाया, [अतः] दैव ही उसकी रक्षा करे।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द द. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) धा. भू कपह, मो. म. द. भूपं (भूप—म.) उ. स. भूपाल, ना. भू कंपं, अ. फ. भूकंप (भूकंपे—फ.)। २. मो. धा. ना. म. उ. स. द. निकटं (निकटा—म.)। ३. मो. निहा (=नेहा) पि चयुं सर्थायनो, धा. नेहो पित ज्ञायते, ना. द. उ. स. नेहान (नेहाइ—ना. द.) जग्गाइने (जग्गायने—ना.), म. नाहा पोर्थ्यजागने, फ. शंकापि न गायते।

(२) १. मो. ससाहित्र साहि सकलं, धा. साहिव साहि अपथा, अ. फ. साहक साहि उहाव दीन सकलं, म. नं सांहि साहि सकल, द. संसाहिरस बसाइ सकल, ना. संसाहस्स बसाहि बद्ध सकलं, उ. स. संसाहिस्स बसाह साह सकलं। २. मो. अच्छादि, धा. अुब्धाधि, म. अछिमि। ३. मो. युधायनं, धा. न ज्ञायते, म. जुद्धाइने, ना. जुद्धाइमे।

(३) १. मो. सिधि, धा. सिधं, ना. सिद्धी, द. सिधो, उ. स. सिद्धं। २. धा. चित्त, म. मंति। ३. मो. गाहनो, धा. दहनो, ना. म. उ. स. द. गहनो। ४. मो. ना. दूरे स विस्वासरे, धा. दूरेऽपि जानाम्यहं, अ. फ. दूरे सुजाना रते, म. परेस विस्वस रे, द. उ. स. दूरे स विस्वारने।

(४) १. मो. अग्यानां, अ. फ. आग्यानं। २. धा. जान रहितं, मो. जानि रहायं अ. जानिरहियं, ना. म. जानि रहायं। ३. धा. दैवोऽपि रक्षा करं, मो. अ. फ. दैवोपि रक्षा करो (रछ्छाक रं—अ., रक्षा, कर—फ.), ना. द. उ. स. देवं (दैवं—उ.) तु (च—ना.) रष्या (रिक्ष्या—द., रच्छा—ना.) करे, म. देवो तुव रिष्या करो।

टिप्पणी—(४) जानि रहिय < ज्ञान रहित।

[७]

रासा— छत्तिय[1] हत्थु धरंत[2] नयनन्नु चाहियउ[3] । (१)
तब हि दासि करि* हथ्थ[1] सु वंचि[2] सुनावियउ[3] । (२)
बानावरि दुहु बाह[1] रोस रिस[2] दाहियउ[3] । (३)
मनहु[1] नागपति पतिनि*[2] अप्पु[3] जगावियउ[4] ॥ (४)

अर्थ—(१) [जगाने के लिए दासी के] छाती पर हाथ रखते ही [पृथ्वीराज ने] आँखों से [उसे] देखा । (२) दासी ने तभी (तत्काल) [पत्र को] हाथ में [ले] कर उसे बाँच सुनाया । (३) [पत्र को सुनते ही] उसके दोनों बाहुओं में बाणावली [शोभित होने लगी] और वह रोष-रिस से दग्ध हो गया । (४) [दासी का पृथ्वीराज को उस समय जगाना ऐसा लगा] मानो नागपति को [उसकी] पत्नी ने आप ही जगाया हो ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. छत्तिका, म. छत्ती । २. द. धरंनत, ना. धरंति । ३. मो. नयनन्नु नाहिय, धा. नयननि चाहियउ, अ. फ. नयननि वाहयउ (वाहयौ—फ.), ना. नयन्न चिवाहयो, द. उ. स. नयनन चाहयौ (चाहयों —द.), म. नयननु चाहयो ।

(२) १. मो० तवही दास कर हथ, धा. उ. स. दासिय दष्षिन हत्थ, ना. द. अ. फ. दासिय दछिछन हथ्थ (हथ्थि—ना., हथ्थन—अ. फ.), म. दासी दिष्षन हसंति । २. मो. सुबंच, धा. सु बंचि, फ. बंच, अ. बंचि, ना. ति बंचि । ३. मो. सुनावयुउ, अ. सुनाइयउ, फ. सुनावयौ, म. सुनाइयो, धा. दिषावियउ., स. दिखाययौ, द. ना. उ. दिखावयौ (दिषावयो—ना.) ।

(३) १. मो. बानावलि विदहु (पाठान्तर भी सम्मिलित है) बांन, धा. बानावरि बिहुंबान, ना.बा नावरि बिय बान, म. बानावरी चहुवांन, द. बानावल बोय बान, उ. स. जिनबाला बलवान, अ. फ. बानावरि दुहु (बानावर दिहु—फ.) बाह । २. धा. रसि, उ. स. रस, फ. विस । ४. मो. दाहयु (=दाहयउ), धा. ना. म. दाहयो, उ. स. फ. दाहयौ, अ. दाहयउ ।

(४) १. ना. अ. फ. मनौ, उ. स. मानहु, म. परिहा मांनुहुं । २. मो. नागपति पतिन, धा. नागपति सुत, अ. फ. नागपति नारि, स. नागपतित्त, ना. उ. नागपति पति त (तं—ना.), म. नागपति पति । ३. धा. अप्पु, अ. फ. सुअप्प, ना. अप्पु, म. सुआप । ४. ना. द. फ. उ. स. जगात्रयौ, मो. जगाइयु (=जगाइयउ), म. जगावयो ।

टिप्पणी—(१) चाहना=देखना । (२) बंच < वाच < वाच् ।

[८]

रासा— संग सयन न सथ्थि[1] नृपति न जानयउ[2] । (१)
दुहुं[1] बिच्चि इक दासिय[2] संग संमानयउ[3] ।[×] (२)
इंदु फणिंदु[1] नरिंद न[2] अथ्थि[3] स भानयउ [4×] । (३)
घरह घरिय[1] दुहुं[2] मझ्झि[3] तत्तष्षिन[4] आनयउ ॥(४)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के जाने की बात] न संग की सेना ने जानी और नृप के सथियों ने । (२) दोनों के (पट्टरानी और अपने) बीच में एक दासी को संग में रखकर [पृथ्वीराज ने] उसको सम्मानित किया । (३) उसने इंद्र, फणीन्द्र और नरेन्द्रों की अथ्थियों (गोष्ठियों) [के गर्व] को भी भंग (समाप्त) कर दिया । (४) [पृथ्वीराज को] वह घर दो घड़ियों में तत्क्षण ले आई ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

×चिह्नित चरण म. नहीं है।

(१) १. म. और संग नन स्थित्थ, अ. फ. संग सयनन सहर, धा. संग सयसयन्न विसत्थ, द. संग सयननि सथ्थ, ना. सयनन सत्थ। २. धा. आनवो (तुल० चरण ४), म. फ. आनयौ, अ. आनयउ, ना. आनयौ।

(२) १. अ. रहु, फ. रहौ। २. धा. विच्चइ इक दासिन, अ. फ. विच हुइ इक दासिय, द. विच्च हय इक दासिन, ना. वीचिह इक दासिय। ३. ना. समानयो, अ. समानयउ, फ. समानयौ।

(३) १. धा. इंदफनिंद्र, ना. इंद्रफुनिंद, द. इंद सुनिंद, उ. स. इंद नरिंद। २. मो. धा. अ. फ. नयइ (<नरयंद) म, ना. सुनिदइ, उ. स. फुनिंदर। ३. ना. अच्छि। ४. धा. सुमानयो, अ. सुमानयउ, फ. सुमानयौ, ना. द. स. समानयो (समानयो—ना.)।

(४) अ. फ. घर इक, धा. घरहि घरा, ना. घरह घरा, म. घर घरा। २. धा. द. हुइ, फ. हुवौ, ना. हुवय, उ. स. हुअ, म. होइ। ३. म. मइ, ना. महि। ४. धा. अ. फ. ना. ततक्खिन। ५. म. आनयौ, धा. ना. आनयो।

टिप्पणी—(१) सयन < सेना। (३) अच्छि < आस्थान (?) < अथाह। भान < भञ्ज्। (४) ततक्खिन < तत्क्षण।

[९]

दोहरा—नवति नवप्पल* निसि गलित[१] धनु[२] घुम्मइ*[३] चिहु पासि[४]। (१)
पानि न[१] अंखि न[२] संचरइ*[३] महुल[४] कहल[५] कयमास*[६] ॥ (२)

अर्थ—(१) [कयमास के महल में आने के अनंतर] नवनवति (निन्यानवे) पल निशा [और ?] गल (बीत) गई थी, जब [पृथ्वीराज का] धनुष [कयमास को लक्ष्य बनाने के लिए] उसके पास चारों ओर घूमने लगा। (२) उस समय [अंधकार के कारण] आँखें और हाथ नहीं संचरण कर पा रहे थे, जब कयमास महल में केलि में था।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. नववलि नव पल नसि गलीत, धा. नवति नवैं पल निसि गलित, अ. फ. नव सत नव पल निसि गलित, ना. द. नववति नवपल (नवपल—ना.) निसि गलित, म. नव नववति निस प्रति मिलति, उ. स. रति पति मुच्छि अलुच्छि तन (तुल० अगला दोहरा)। २. धा. म. धन ३ मो. घुमि (<घुम्मइ), न. घूमे, द. घुम्म, धा. अ. फ. म. उ. स. घूमरा (घुम्मौं—म. अ. फ.)। ४. मो. चहूपास, धा. ना. चिहुं पासि, अ. चहुं पास, फ. चौह पास, द. उ. स. चिहुं पास, म. चुहु पास।

(२) १. म. जानन, फ. पान नि। २. .. स. अंष न। ३. मो. संचरि (<संचरइ), अ. फ. म. उ. स. संचरैं, ना. संचरहि। ४. मो. के अतिरिक्त सभी में 'महल'। ५. मो. फ. कलह, म. केल। ६. मो. कमास (<कयमास), धा. कइमासि, अ. फ. ना. कैमास, म. कैमास।

टिप्पणी—(२) कहल < केलि।

[१०]

दोहरा—रतिपति मुच्छि अलुच्छि तन[१] धन डुलइ* बिय*[२] काज[३]। (१)
तडित[१] किअउ*[२] अगुलि अधम[३] सु भरिग[४] बान प्रथीराज[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) जिनके तनु रतिपति (काम) से मूर्च्छित और अलक्ष्य हो रहे थे, ऐसे दोनों के लिए [पृथ्वीराज का] धनुष डोल रहा था। (२) अधम अंगुली ने तडित [के समान कार्य] किया और पृथ्वीराज का बाण भर गया (धनुष पर जा लगा)।

पाठा — (१) १. म. रतिपति मुर्छो अलूष्यों तन, धा. ना. द. अ. फ. रतिपति मुच्छिय लच्छि अलच्छि-अ. ना.) तनु, म. रतिपति तुच्छय अउछ तन, उ. स. निसि अद्धो सुद्धो नहीं । न. मो. घन डुनि =डुनइ) वय, धा. तरनी रवन वद, अ. फ. तरुनि पान वय, ना. द. विरस (विरसि-ना.) काय विय, म. घन तर पानव, उ. स. वर कैमासय । २. अ. फ. काजि ।

(२) १. इस चरण के पूर्व मो. में अतिरिक्त है; 'पुनरु नयन कोय' जो कदाचित् इस छंद के किसी अंश का पाठान्तर मात्र है । २. धा. अ. फ. ना. द. उ. स. करिग, म. कोयौ । ३. धा. धरइ, ना. द. म. उ. स. धरम, अ. करइ, फ. करहि । ४. धा. करिग, ना. धरिग, अ. फ. म. उ. स. भरिग । ५. धा. म. अ. ना. प्रिथिराज ।

टिप्पणी—(१) मुच्छि < मूर्छे । अलुष्यि < अलक्ष्य । बिय < द्वय ।

[११]

कवित्त-भरिग[१] बान चहुआन जानि[२] दुरि[३] देव नाग[+] नर । (१)
मुट्ठि दिट्ठि[१] रिसि[२] डुलिग[३] चुकि[४] निकरिग[५] एक[६] सर । (२)
उभय बान दिअ[१] हत्थि[२] पुट्ठि परमारि[४] पचारिय[५] । (३)
बानावरि[१] तटकंति[२] तुटित धर धरनि[२] आधारिय[३] । (४)
किय कब्बु सब्बु सरसइ[१] गनित फुणिव[२] कहउ[४*] कवि चंद तत[५] । (५)
इम[१] परउ[*२] अयास अवास तइ[*३] जिम निसि नसित[०] नषत्रपति[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) चहुआन (पृथ्वीराज) का बाण भर (चढ़) गया, यह जानकर देव, नाग तथा नर छिप गए । (२) [किन्तु] क्रोध के कारण [पृथ्वीराज की] मुट्ठी तथा दृष्टि डोल गई, और एक बाण चूक कर निकल गया । (३) [तदनन्तर] परमारी (पट्टराज्ञी ?) ने उसके हाथों में दो बाण और दिए और पीठ पर (पीछे से) उसे प्रचारा (ललकार कर उत्तेजित किया) । (४) बाणावली के तड़कते ही [कयमास का] आहत धड़ आकर धरणी पर आधारित हुआ । (५) [यह] सारा काव्य सरस्वती ने विचार कर के किया, और तदनन्तर उसने कवि चन्द से इसे कहा । (६) कयमास आकाश [-चुम्बी] आवास (प्रासाद) से इस प्रकार गिरा जैसे निशा में नक्षत्रपति (चन्द्रमा) विनष्ट होकर गिरा हो ।

पाठान्तर— ० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।
+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. ना. भरिक । २. म. जांन । ३. धा. उ. स. दुर, मो. दूर, म. दु, अ. फ. दुरि ।

(२) १. ना. बुद्दि (< छुट्टि ?) सुद्दि (< मुट्ठि), फ. मुट्ठ दिट्ठ । २. धा. उ. स. रस, अ. फ. रिस, ना. सर, फ. सिरु, म. सिरि । ३. म. रुलिग । ४. मो. चक्कि । ५. ना. नन करिग । ६. धा. ना. म. इक्क ।

(३) १. धा. उभय आनि दिय, मो. भय बान दिअ, उ. दुतिय बान, स. दुत्ति बान, ना. बीयौ बान, म. उभय आंन दीयौ, अ. फ. उभय आनि दिय । २. मो. म. उ. स. अ. इथ्थ । ३. मो. पुठि, म. सुठि । ४. धा. धावारि, मो. परमार, उ. स. पामार, द. म. पंमारि, धा. अ. फ. पावारि, ना. पामारि । ५. उ. स. अ. पचार्यो, धा. ना. म. फ. पचार्यौ ।

(४) १. मो. बानीवर तटकंति, धा. बानीवर तरकंत, ना. स. बानि वृत्त (वृत्ति-ना.) तुटिकंति, द. उ. बान वृत्ति तुटिकंत, अ. फ. बानि वरत्तरकंत, म. बानावर तरकंति । २. मो. तुटित धर, धा. छुट्टि धार धर, अ. फ. छुट्टि धर धर, म. छुटि धर धरनि, ना. द. उ. स. सुनत (सुनति-ना.) धर (सिर-ना., सुर-द.) धरनि । ३. धा. उधारय, ना. द. म. उ. स. अधार्यौ, अ. फ. आधार्यो ।

(५) मो. कीय कव सव शरस्सि (=सरसइ), धा. अ. फ. इय कब्बु सब्बु (सब्बु-फ.) सरसइ (सरसं-फ., सरसैं अ.), म. हुइ इक चित्त बससर, ना. ईय कव सरसैं । २. मो. गनीस (=गनित), धा. गुनित, अ. फ.

(२) १ म दवि घ इ जल घन अ नल, ध.. .व ..ास जल धुल अनिल, उ. स. देववारन जलद्धि ते, म. दव वरह जलहर अनिल, अ. फ. देवररनि जल धन अनिल। २. धा. कहिग चन्दपति प्रात, उ. स. लीला कहिग सुप्रात, म कहिय चन्द प्रत वत्ति, अ. फ. कहिय चन्द कवि प्रात।

टिप्पणी—(१) सुरया < सुरूया < मुरूपा।

[१४]

दोहरा—अप्पु[१] राय वलि वनि गयु+[×] सुंदरि संउपि[*] सदाय[२]। (१)

सुपनंतरि[१] कवि चंद सउं[*२] सरसइ[३] वहि सु आय[४]॥ (२)

अर्थ—(१) स्वयं राजा (पृथ्वीराज) उस दाय (संपत्ति या भेद) को सुंदरी (परमारी) को सौंप कर वन लौट गया। (२) स्वप्न में कवि चंद से [यह सारी घटना] सरस्वती ने आकर बताई।

पाठांतर—+चिह्नित चरणार्द्ध द. में नहीं है।

×चिह्नित चरणार्द्ध ना. में नहीं है।

(१) मो. आपि राय चलि वनि गयु, धा. अप्पु राउ वलि वनइ गउ, अ. फ. अप्पु राउ चलि वनइ (वनहि—फ.) गौ, म० आपि राउ चलि वनइ गौ, उ. स. गयौ अप्प वन अद्धनिसि। २ मो. सुंदरि सुंपि (=सउंपि) स दाय, धा. अ. फ. सुंदरि सुंपि (सौंपि—अ. फ.) सुदाइ, म. ना. उ. स. सुंदरि सौंपि (सौंपि-म. ना.)। सदाय (सदाइ-ना.)।

(२) १. म. सुपनंतरि, ना. अ. सुपनंतर। २. मो. धा. म. सुं (=सउं), अ. फ. सौं, उ. स. सौं, ना. सुं (=सउं)। ३. धा. सरसइ, मो. सरसि (=सरसइ), ना. उ. स. अ. फ. सरसै, म. परसे। ४. मो. वहिसु आय, शेष में 'बद्दी आइ' (बदिय आय— उ. स., बंदीय आय—म.)।

टिप्पणी—(१) वल < वल्=लौटना, वापिस आना।

[१५]

दोहरा—सु[१] जोतिष तप गति उपाय बिनु[२] नहि देष्यउं[*] सुनि अष्षि[३*]। (१)

तउ मानउं स्वामिनि सयल[१] जउ[*] सु होइ परतष्षि[२]॥ (२)

अर्थ—[चन्द ने स्वप्न की सरस्वती से कहा,] "ज्योतिष, तपोबल, तथा उपाय के बिना मैंने कहा हुआ [सब कुछ] सुन कर भी [आँखों से] नहीं देखा, (२) मैं यह सब तब मान सकता हूँ यदि [तू] प्रत्यक्ष हो।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। २. धा. जोतिग तियगति उपय विनु, ना. अ. फ. जोतिक (जोतिग—फ. ना.) तपगति उपय (उपय—अ.) बिनु, द. जोतिक तप उपाय बन, म. सच तौ मानू सामनी, उ. स. जो तिक पंगति उप्पउयँ। ३. मो. नहि देष्यु (=देष्यउं) सुनि अंखि (=अष्षि), धा. नहि दिक्खिय...न अंक्खि, अ. फ. सुनिय न दिष्षि अंषि (दिष्षी अष्ष—फ.), ना. नहि दिष्षौ सुनि अषि, द. नहि देषौं सुख अषि, म. सकल सुम षति दषि, उ. स. बंनन्र दिवि कविचंद।

(२) १. मो. तुं (=तउ) मांनुं (=मानउं) स्वामिनि सयल, धा. द. अ. फ. तउ (तौ—अ. फ.) मानउं (मानौं—अ. फ.) स्वामिनि (स्वामिन—फ.) सकल, ना. तौ मानौं स्वामिनि सबे, म. चंद्र कहै बंदी बचन, उ. स. साम प्रगट वर कंध नइ (बरधनइ— उ.)। २. मो. जु (=जउ) सु (=सु) होइ परतषि (=परतष्षि), धा.

जइ तुंसी होइ परतक्खि, ना. जो होवँ परतिष, अ. फ. जौ सु होइ परतिष्षि (परतष्य–फ.), म. जो स होइ परताष, उ. स. बर प्रमाद (प्रसाद–उ.) सुख इंद ।

टिप्पणी—(१) अष्ष<आ+ख्या=कहना । (२) परताष<प्रत्यक्ष ।

[१६]

अडिल्ल—

भइ परतष्षि[१] कव्वि[२] मनि आइ[३] । (१)
उगति उकंठ कंठ[१] समुहाई[२] ॥ (२)
बाहन हंस अंस[१] सुषदाई[२] । (३)
तब तिहि[१] रूप चंद कबि धाई[२] ॥ (४)

अर्थ—(१) [सरस्वती] प्रत्यक्ष हुई और चन्द कवि के मन में आई । (२) [परिणामस्वरूप] उक्तियों की उत्कण्ठा कवि के कण्ठ में समुहाने (आगे आने) लगी । (३) [सरस्वती का] वाहन सुखदायक हंस का अंस (कंधा) था । (४) तब उस (सरस्वती) के रूप का चन्द ने [इस प्रकार] ध्यान किया ।

पाठान्तर—(१) १ मो. पइ परषि, अ. फ. भई परतष्य (परतिष्य–फ.), ना. म. भईय परतषि (परतष्षि–ना.) । २ मो. कविचन्द, धा. कवी, ना. द. उ. स. सुकव्वि, अ. फ. म. कवि । ३. अ. फ. मन आई, ना. द. उ. स. मनाई, म. मनह आइ ।

(२) १. धा. अ. फ. उकति कंठ कंठह, म. उकति कंठ कंठ, उ. स. उगति जुगति कहि कहि । ना. द. उकति उकंद (उकं०) कंद (कंठ) । २. मो. धा. स. समुझाई (समझाइय—धा.), म. समझाइ ।

(३) १. धा. हंस, म. अस । २. म. सुखदाइ ।

(४) १. मो. तिठ तिहि, म. तब कवि । २. मो. चकवि धाई, धा. चन्द कवि धाइय, ना. द. उ. स. ध्यान कवि (धरि–ना०) पाई (ध्याई–ना. द.), म. ध्यानं न ध्याइ, अ. फ. चन्द कवि गाई ।

टिप्पणी—(१) परतष्षि < प्रत्यक्ष । (२) उककंठ < उत्+कण्ठा । (४) धा < ध्यै=ध्यान करना, चिन्तन करना ।

[१७]

अर्ध नाराच—

मराल[१] बाल आसनं ।[०] (१)
अलित्त[१] छाय[२] सासनं[३] ।[०] (२)
सोहंति[१] जासु तुंबरं[२] ।[०] (३)
सुराग राज[१] धुंमरं[२] ।[०] (४)
कयंद केस[१] सुक्करे[२] । (५)
उरग्ग[१] बास विठ्ठरे[२] ।[३] (६)
कपोल[१] रेख गातयो[२] । (७)
उवंत[१] इंदु प्रातयो[२] ।[३] (८)
बभूव[१] जूव षंचये[२] । (९)
कलंक[१] राह[२] वंचये[३] । (१०)

श्रवन्न[१] ताट[२] पिष्षयो[१] । (११)
अनंग रथ्थ चक्कयो[१] । (१२)
उछंमि बारि पंनयो[१] ।+ (१३)
तिरंति रूव रंजयो[१] ।+ (१४)
सुबाल[१] कीर सुद्धयो ।×°° (१५)
तकंत रत्त बिंबयो[१] ।×°° (१६)
दिपंत[१] तुच्छ दिठ्ठयो[२] । (१७)
विची[१] अनार फुट्टयो[२] । (१८)
सुग्रीव कंठ सुत्तयो[१] । (१९)
सुमेर गंग पत्तयो[१] । (२०)
भुजा स जासु तुङ्गर*[१] । (२१)
सुरत्ति[१] लग्गि[२] भ्रंमरं[३] । (२२)
नषादि अद्द* रष्षियां[१] । (२३)
घरंति[१] सच्छ*[२] लष्षयां[३] ।÷ (२४)
कनक्क सा बिपच्चया*[१] ।÷ (२५)
सुराग सीस दिठ्ठया[१] । (२६)
विविच्च[१] रोम रिंथये[२] । (२७)
मनु[१] पपील रिंगये[२] । (२८)
हरंति[१] छब्बि[२] जामिनी[३] । (२९)
कटिस्स[१] हीनि[२] कामिनी[३] ।[४] (३०)
अभाष दोष बंचही ।× (३१)
सुहं त[१] देव संचही ।× (३२)
अपुठ[१] रंभ नारुहे[२] ।[३]× (३३)
अदेव[१] बंभु मानुए[२] ।[३] (३४)
सुरंग चंग पिंडुरी[१] (३५)
कली सु चंप अंगुरी[१] । (३६)
सबद्द[१] बद्द नुप्पुरे[२] ।× (३७)
चलंति हंस अंकुरे[२] ।× (३८)
सुभाय[१] पाय[२] रंगु जा ।× (३९)
सु अघ्घ[१] रत्त अंबुजा[२] ।[३]× (४०)

अर्थ—(१) बाल मराल (हंस) जिसका [सरस्वती] आसन था, (२) अलि (भ्रमर) शासन (नियंत्रण) पूर्वक जिस पर छाए हुए थे, (३) जिसकी वीणा का तूंबा शोभा दे रहा था, (४)

[जिसस निकलते हुए] अच्छे रागों का भ्रम शोभित हो रहा था, (५) कलिंद [के समान जिसके श्याम] केश मुक्त थे, (६) जैसे सुवास के लिए उरग (सर्प) बैठे हुए हों (७) जिसके गात्र में कपोलों की रेखा [ऐसी लगती थी] (८) मानो इंदु प्रातःकाल में उदित हुआ हो (९–१०) और जो राहु के कलंक से बचने के लिए [अपने मृगरथ के] रूप को बहुत खींच रहा हो, (११) कानों में ताटंक दिखाई पड़ रहे थे, (१२) [जो ऐसे लगते थे] मानो अनंग-रथ के चक्र हों, (१३) [जिसके नेत्र ऐसे थे जैसे दो] छोटे वारि-खंजन (१४) रूप के रंजित जल में तैर रहे हों, (१५) [जिसकी नासिका ऐसी थी मानो] सीधा (सरल स्वभाव का) वाल कीर (१६) लाल बिंबाफल [सदृश ओठों] को ताक रहा हो, (१७) [जिसके दाँत ऐसे] तुच्छ (छोटे) और दीप्त दिखाई पड़ रहे थे (१८) मानो अनार का फल बीच से फट गया हो, (१९) जिसकी ग्रीवा में मुक्ता-माल थी (२०) [जो ऐसी लगती थी मानो] सुमेरु ने गंगा को प्राप्त किया हो। (२१) जिसकी भुजाओं में टोडर थे, (२२) जिसके अंबर (चीर) में रत्तिका (घुंघचों) लगी हुई थी, (२३) जिसके नाख आर्द्र (कोमल) और रक्षित थे (२४) और स्वच्छ लक्षणों को धारण करते थे, (२५) कनक का विरचित (जड़ाव-युक्त) (२६) जिसका सुंदर शीश (शीशफूल) दिखाई पड़ रहा था, (२७) जिसका विविक्त (पृथग्भूत, प्रकट) रोमावली थी, (२८) जो ऐसी लगती थी मानो पिपीलिकाएँ रेंग रही हों, (२९) जो यामिनी की छवि का अपहरण करती हो (३०) ऐसी क्षीण जिस कामिनी की कटि थी, (३१) [जिसके गुह्य प्रदेश का वर्णन न करके] अपभाषण दोष से बचते हैं (३२) और देवता शुभ का संचय करते हैं, (३३) [जिसकी जाँघें] अपुष्ट (कोमल) कदली-नाल [के सदृश] थीं, (३४) मानो वे अदेव (अनीश्वर विश्वासी) के [स्थूल] ब्रह्म हों, (३५) जिसकी पिंडलियाँ सुंदर और अच्छी थीं, (३६) जिसकी उंगलियाँ चंपा की कलियों के समान थीं, (३७) जिसके नूपुर शब्द कर रहे थे, (३८) [मानो] मराल चल रहे हों (३९) और जिसके पैर स्वाभाविक रीति से ऐसे रंजित थे (४०) मानो उनके नीचे रक्त (लाल) कमल हों।

पाठान्तर—० चिह्नित चरण मो. में नहीं है।
(० ०) चिह्नित चरण धा. में नहीं है।
+ चिह्नित चरण द. ना. में नहीं है।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है।
÷ चिह्नित चरण फ. में नहीं है।
* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. म. मुराल।

(२) १. द. अलिन्ति। २. फ. वाइ, अ. ना. छाइ, स. साय। ३. अ. फ. तासनं।

(३) १. म. सोहंत, ना. सोहंता (< सोहंती), अ. फ. सुहंत, उ. सुहंति। २. मो. जासि तमरं, उ. स. जास तामरं, म. जाम्न तंवरं।

(४) १. मो. सुराग राय (=राज), ना. म. सु राग राय, द. स. सुराग राज। २. मो. भूमरं, उ. स. भ्रामरं।

(५) १. ना. कलयंत केस, म. उ. स. कलिंद केस, म. कलिंद केलि, अ. फ. कइंद केस। २. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. मुक्करे, म. मोकरे।

(६) १. धा. म. उरंग (=उरग)। २. धा. वास विद्दरे, फ. वास विच्छरे, ना. वास विठ्ठरे, द. वाल विडरे, म. वास विडरे, उ. स. वाल विथ्थुरे। ३. उ. स. में यहाँ और है:—

किलन्द रेप चंदनं। प्रभात इंद उद्दनं।

(७) १. धा. कप्पिल। २. धा. गत्तयो, अ. फ. गातए (गातुउ—फ.)।

(८) १. धा. उठंतु, फ. उवंति, म. उचंत। २. धा. म. इंद प्रातयो, अ. फ. इंद (इंदु—फ.) प्रातए, ना. इंद्र पातयौ, उ. इंद्र पातयौ, स. इन्द्र पाथयौ, म. अंदु प्रतयो। ३. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

अ न नक ... तिलक प न सकाइ।
सुरत तेज भासई। कलंत मुत्ति पासई।
उपंम चंद जंपयौ। अनंत कीर सोप्यौ।
त्रिभंग मार भातुरं। त्रिकुक चाल चातुरं।

(९) १. धा. म. द. ना. त्रिभुअ, स. त्रिभुअ, अ. फ. त्रिभुअ। २ धा. ना. द. म. पंजयौ (पंजयो-ना.), अ. फ. पंजए।

(१०) १. म. किलंक। २. धा म. राहु। ३. धा. ना. द. म. बंचयौ, स. चंपयौ, म. चंपयो, अ. फ. बंचए (चंचए-फ.)।

(११) १. म. अवन। २. धा. दाद, अ. फ. तह, ड. स. आद। ३. अ. फ. पिष्षए।

(१२) १. अ. फ. चक्कए।

(१३) १. धा. उछाइ नारि पंजया, अ. फ. उछाहि नारि पंजए, ड. स. उछाइ कीर पंजर्न।

(१४) १. मो. निरंति रूप रंजयो, धा. निरंत रूप रंजयो, अ. फ. निरंत तव रंजए, ड. स. तछन्न रूप रंजर्न।

(१५) १. द. ना. जु। २. स. सथ्यो, म. सुरूथो, अ. फ. सुक्कए।

(१६) १. अ. फ. तकित त्रिय रंभए ना. तकत रंत विंदयौ।

(१७) १. धा. दिपंति। २. अ. फ. दिट्ठए, म. दिट्ठयो।

(१८) १. धा. अ. फ. त्रिबी (< त्रिवी), मो. त्रिबा, म. त्रिभि, ना. विभि, द. स. त्रिव। २. अ. फ. फट्टए (फुट्टए-फ.), म. फट्यो।

(१९) १. धा मोतयो, अ. फ. मुतए।

(२०) १. अ. फ. पटए।

(२१) १. मो. भुजा म (< स) जासु तंमरं (< तंडरं=तद्धुरं), धा. भुजाय नास तुंवरं, म. फ. भुजास जास (भुजासु जासु-फ.) तुंवरं, अ. सुभाइ जासु तुवरं, ना. द. सुभंत तास (जासु-ना.) तुंमरं, ड. स. सुभंत कुच तुमरं।

(२२) १. मो. सुवत, ड. सुरच्छि। २. मो. लग्न। ३. अ. फ. अंतरं, ना. म. अंबरं।

(२३) १. मो. निअध अन रछिणं, धा. अ. फ. निषाध आध रछिनं (रच्छिनं-अ., रछिनं-फ.), ना. नषादि आदि रष्षनं, म. निपोय अद रषनं, ड. स. नषादि ईस अच्छनं।

(२४) १. ना. म. धरंन। २. ड. सच्छि (सांछ < सान्छ), शेष में 'सीस'। ३. मो. रक्षणं, धा. ड. स. म. अ. फ. कच्छिनं, ना. लष्षन। ४. ड. स. में यहाँ और है :—

सुरंग हथ्थ सुंदरी। सो पानि सोव सुंदरी।
सुजीव अम्म बालनं। सुगंध त्तिथ्थ तालयं।

(२५) १. म. साव प्रोचया, शेष में 'सा विपव्वया' (< विपच्चया)।

(२६) १. मो. सुराग शिसि रिठया, धा. सुराग सीस रडठया, अ. फ. सुराग सीस रठ्ठया, ना. म. सुराग सीस दट्ठया (डठया-न.), स. सुराग सिस दिष्षया, ड. सुराग सिस दिष्षया।

(२७) १. धा. ना. विविछि, अ. फ. विवांच, द. विवच, म. विचित्त, क. विचाव। २. मो. रथयो, धा. रम्मए, ना. द. ड. रमयौ, म. रिंघयो, स. रंगयं।

(२८) मो. मनु पिपील रथयो, धा. मनो पिपिल रंगए, अ. फ. मनौ पिपील रिंगए (रंगए-फ.) म. मानों प्रपील रिंगयो. द. ना. प्रपीलिका (पिपीलिआ-ना.) सु रंगयौ, ड.स. पपील सुत रंगयं। २. अ. फ. में यहाँ और है :

सु नोमिला निरूपए। अनंग जालि कूपए।

(२९) १. करंत, ना. करंत्ति। २. मो. छत्रि, धा. छत्ति, म. पाप, अ. फ. छित्र। ३. मो. जामिनी, म. याजनी।

(३०) १. ड. स. करिंसु, म. करत, ना. करंसि। २. मो. हासि (< हासि), अ. फ. ना. हीन। ३. म. कामनी, ना. स्वामिनी, ड. म. भामिनी, द. भामनी।

(३२) मो. मोहंति, अ. फ. सुमंत।

(३३) १. मो. अपू० रंम, धा. अपुट्ठ रंग, अ. फ अपुब्ब रंग, द. ना. उ. स. अपुट्ठ । २. ना. नारणी, स. उ. द. नारिनी, अ. फ. आनुए ।

(३४) १. द. सदेवि, म. सदेव ना. सुदेव । २. धा. अ. फ. बंभ मानुए, मो. ब्रह्म चारु रे, ना. म. स. उ. द. ब्रह्मचारिणी (ब्रह्म वारनी–म.) । ३. उ. स. में यहाँ और है : सज्जुत आप कारिनी । ४. उ. स. में यहाँ और है:—

अबुद्ध बुद्धि कारिनी ।
नयन्न नास कोसई । बरट्टि कट्टि भेसई ।
झलक्क तेज कंबुजं । चरन्न चारु अबुजं ।

(३५) १. धा. चंग पुंडरी, मो. चंग उमरी, ना. द. रंग उब्भरी, उ. स. रंग बेंडुरी, म. चंग स्वंभरी ।

(३६) १. मो. कलित (=कलीन) चंप पिंडुरी, धा. कलिद चंद अपुरी, अ. फ. कली सु चंप (सचंपि–फ.) अपुरी, ना. स. उ. द. कलाति चपि (चप–ना.) पिंडुरी (पुंडरी–ना.), म. कलीन चंप तुडरी (पुंडरी)। (पिंडुरी चरण ३५ में आ चुकी है ।)

(३७) १. उ. स. सद्द, फ. दब्ब । २. धा. अ. फ. नूपुरा, ना. स. द. नूपुरे, उ. नूपुर (< नूपुरे) ।

(३८) १. मो. चलंत । २. धा. अ. फ. अंकुरा ।

(३९) १. धा. अ. फ. सुभाइ, द. उ. स. सुपाइ ना. समाय । २. धा. पाइ ।

(४०) १. ना. द. अब रत्त, धा. अ. फ. जु अद्ध । २. धा. अंभुजा । ३. उ. स. में यहाँ और है :—

दरस्स देवि पाइयं । सुकव्वि किस्ति गाइयं ।

टिप्पणी—(४) धूमर < धूम्र । (५) कयंद < कलिंद । मोकरे < मुक्त । (६) विट्ठ < विष्ट–बैठे । (९) वभूव < प्रभूत । जूव < यूप । (१३) तुच्छ < तुच्छ । (१४) रूप < रूप । (२०) पत्त < प्राप्त । (२३) अद्द < आर्द्र=कोमल । (२५) विपच्चया < विपच्चित । (२७) विविच < विविक्त=पृथग्भूत, प्रकट । (३२) सुहं < शुभ । (३३) अपूठ < अपुट्ठ । (४०) अब्ब < अवस् ।

[१८]

अडिल्ल—अंबुज विकास[1] बास[2] अलि आयौ[3,4] (१)
सांमि[1] वयनि[2] सुंदरि[3] समझायौ[4] । (२)
निस[1] पल पंच घटिय दोइ[2] धायौ[3] । (३)
आखेटक नंपे[1] नृप आयौ[2] ॥ (४)

अर्थ—[सवेरा होने पर] कमलिनी विकसित होने लगी और उसकी सुवास के लिए अलि (भ्रमर) आ गया । (२) स्वामी (अलि) ने वचनों में सुंदरी (कमलिनी) को समझाया । (३) रात्रि में दो घड़ी तथा पाँच पल नृप (पृथ्वीराज) दौड़े थे, (४) अब वे आखेटक को समाप्त कर आ गए ।

पाठांतर—(१) अ. फ. विगसि, ना. विकसि । २. अ. वासु, फ. ना. बासि । ३. मो. आयु (=आयौ), म. ना. आयौ, शेष में 'आयो' । ४. म. में यह चरण नहीं है और इसके स्थान पर यथा द्वितीय है: घन गहयौ धर माहि छिपायौ ।

(२) १. धा. अ. फ., ना. द. उ. स. स्वामि, म. स्वामन । २. मो. वयनि, शेष में 'वचन' । ३. ना. सुंदर, म. चंद । ४. मो. समझायु (=समझायौ) धा. सब जायो, शेष में 'समुझायौ' या 'समुझायौ (समझायौ–ना. म.)।

(३) १. मो. निश (निस), म. नस, अ. फ. निसि । २. धा. अ. घडिय दुइ, ना. घटी दुइ, उ. स. घटी द्व, द. घटाद्वय, म. घटी दो, अ. घडिय दुइ, फ. घरीय दो । ३. मो. धायु (=धायउ), धा. ना. धायो, अ. धाए, उ. स. आयौ, द. म. फ. धायौ ।

(४) १. धा. अ. फ. झंपै, मो. झंपे, उ. स. जंपिए, ना झंकिए, द. झंपि, म. झपे । २. मो. आयु

(=आयउ), धा. अ. फ. ना. म. द. उ. स. आवौ (आयौ—धा. अ.) ।

टिप्पणी—(२) वयन <वचन । (४) नंष <नश=फेंकना, समाप्त करना ।

[१९]

अडिल्ल—मझ्झ[१] पहुर[२] पुच्छइ[३] तिहि[४] पंडिय[५] । (१)*

कहि कवि[१] विजय[२] साह[३] जिह डंडिय[४] ॥ (२)

सकल सूर[१] बोलिव[२] सभ[३] मंडिय । (३)

आसिष[१] जाइ दीध[२] कवि चंडिय[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) [प्रथम या मध्य के] प्रहर के मध्य (समय) वह (पृथ्वीराज) पंडित (जयानक ?) से पूछने (कहने) लगा, (२) "हे कवि, मेरी विजय [का काव्य—पृथ्वीराज विजय] कहो, जिस प्रकार मैंने शाह शहाबुद्दीन को दंडित किया है।" (३) तदनंतर समस्त शूरों को बुला कर उसने सभा की, (४) जिसमें चंड (उग्र) कवि [चंद] ने आशीर्वाद दिया ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. म. मधि, अ. ना. मध्य । २. मो. पहर, ना. पिम्म, फ. पहरि, द. प्रहर । ३. मो. पुच्छि (=पुच्छइ), म. पुछीय, ना. पूच्छे, अ. फ. पूछै । ४. धा. तहि, ना. द. म. प्रभु, उ. स. नृप । ५. म. चंडीय ।

(२) १. म. विप्र । २. धा. कहि । ३. धा. ना. साहि । ४. मो. तिह षंडीय, अ. फ. ना. जिहि डंडिय, म. सिहै डंडीय, उ. स. जिन मंडिय ।

(३) १. ना. सू. । २. धा. अ. बोलिय, मो. बोलइ, फ. बोलिउ, उ. स. बैठे । ३. म. सभा ।

(४) १. म. आसिक । २. धा. जाइ दियो, अ. फ. दीयो जाइ, ना. आइ दियौ, उ. स. आनि दीय, म. दियौ आइ । ३. मो. तब चंडीय, धा. म. ना. अ. फ. कवि चंडीय, उ. स. तब चंदिय ।

टिप्पणी—(१) पंडिय <पंडित । (२) विजय=पृथ्वीराज विजय ।

[२०]

अडिल्ल— प्रथम[१] सूर पुच्छइ[२] चहुआनहु[३] । (१)*

*हइ *[१] कयमासु कहूं कोइ[२] जानहु[३] । (२)*

तरणि[१] छिपंत संझि[२] सिर नायउ[३] । (३)*

प्रात[१] देव[२] मुहुल न[३] पायउ[४] ॥ (४)*

अर्थ—(१) पहले चहुवान (पृथ्वीराज) शूरों से पूछने लगा, (२) "कयमास कहीं है ? कोई जानते हो ?" (३) [उन्होंने उत्तर दिया,] "सूर्य के छिपते समय संध्या काल में [हमने उसे] सिर झुकाया था, (४) किन्तु हे देव, प्रातःकाल हमने उसे महल में नहीं पाया ।"

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. अ. फ. पृथिमि । २. धा. पूछइ, मो. पुछि (=पुच्छइ), अ. ना. द. म. उ. स. पुच्छै, फ. पूछे । ३. धा. अ. फ. ना. चहुवानह, उ. स. चहुआनय, म. चहुवांनह ।

(२) १. मो. हि (=हइ), शेष समस्त में 'है'। २. धा. कहहु किहु, अ. कहहु कहुं, द. उ. स. कहौ कहुं, फ. कहा कहौ, ना. कहौ कहां, म. कहां कोउ। ३. धा. द. जानह, उ. स. जानय, म. जांनहु।

(३) १. धा. अ. फ. दरसि, म. सरतु। २. धा. छिपंत संझि, द. उ. स. अ. फ. छिपंत संझ, मो. छपंत मंझ (<मध्य), द. नपंत संकि, ना. छिपंति मांझ, म. छिपंतह सीस। ३. मो. नायु (=नायउ), धा. अ. फ. नायो, ना. उ. स. नायौ, म. नवायौ।

(४) १. धा. प्रातु, ना. प्रातह। २. धा. अ. फ. उ. स. देव हम, म. देव है। ३. धा. अ. फ. उ. स. महल न, ना. महल नहु, म. मोहल न, द. महल नहि। ४. मो. पायु (=पायउ), धा. अ. फ. पायो, म. ना. पायौ।

[२१]

दोहरा—उदय अगस्ति नयन+ दिठि+१ उज्जल जल ससि कास२। (१)
मोहि चंद हइ१ विजय मन२ कहहुं कहां३ कयमास४× ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] "अगस्त्य का उदय हो गया, और नेत्रों से जल, चन्द्रमा तथा कास उज्जवल दिखाई पड़ने लगे। (२) हे चंद मुझे मन में [कन्नौजराज पर] विजय की [लगी हुई] है; बताओ कयमास कहाँ है ?"

पाठान्तर—+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

× म. में इस छन्द का पाठ है :—

अडिल्ल—उव अगास रिती अभिदासं। मोहि चंद है विजया मासं।
उजलन है। सीसि आकासं। कहि हौ मोहि कहा कैवासं।

(१) १. मो. उदय अगस्ति न चंद ति, अ. फ. उद अगस्ति रितु नव नदिन (-निदितु फ.), ना. द. उदय अगस्त रितु नयन दिन (दिठ – द.), उ. स. उदय अस्त सौ नयन दिठि। २. मो. नव ससि कास, ना. द. सिसि आकास।

(२) १. धा. हइ, मो. हि (=हइ)। २. धा. म. मनु। ३. मो. कहहुं कोहां, ना. कहिहि कहौ। ४. धा. कइमासु, मो. किमासु (=कयमास), अ. फ. कैवास।

[२२]

दोहरा— नागपुर सुरपुर१ सयल२ कथित कहउ* सब३ साज। (१)
दाहिम्मउ* दुल्लह भयउ*१ कहउ*२ न जाइ प्रथीराज३ ॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "नागपुर (नाग लोक), सुरपुर (देव लोक) [आदि] सब के सब साज यदि तू कहे तो मैं कहूँ। (२) [किन्तु] दाहिमा कयमास [इन लोकों में भी] दुर्लभ हो गया है; [अतः] हे पृथ्वीराज, मुझ से कहा नहीं जा रहा है [कि वह कहाँ है]।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. अ. फ. नागपुर नरपुर, ना. नागपुर नरसुर, उ. स. नागपुरह नर सुर, म. नागपुर सुरपुर। २. अ. फ. सकल, उ. स. पुरह। ३. मो. कथित कहू (< कहुं=कहउं), धा. अ. कथि सु देव पुर, फ. कथित देउ पुर, ना. उ. स. कथत (कथित–ना.) सुनत सब, म. द. ना. कथित सुनहि सब।

(२) १. मो. दाहिमु (=दाहिम्मउ) दुलभ भयु (=भयउ), शेष में 'दाहिम्मो' (दाहिमौ–ना. म.) दुल्लह भयो (भयौ–म.)। २. मो. कहू (< कहुं=कहउ), धा. अ. फ. उ. स. कहि, ना. म. कहयौ। ३. धा. ना. प्रिथिराज, म. प्रिथिराज, द. प्रतिराज।

टिप्पणी—(१) सयल < सकल। (२) दुलभ < दुर्लभ।

[२३]

दोहरा कहा[1] भुअग कहा उदे सुर निकमु कव्व काव[3] पंडि[4] । (१)
कइ[*] कयमास[*] बताहि मो[1] कइ[*×] हर[2] सिद्धी[3] वर छंडि[4] ॥ (२)

अर्थ—(१) '[पृथ्वीराज ने कहा,] "[कयमास] क्या भुअंग (नाग) अथवा क्या सुर (देव) [योनि में] उदय हुआ है—जन्मा है ? तू अपने निकम्मे काव्य को, हे कवि, नष्ट कर दे। (२) या तो तू मुझे कयमास को बता, और या तो हर-सिद्धि का वर छोड़ दे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द धा. अ. फ. स. में नहीं है।
* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. उ. स. का, म. काहा, द. कहां, अ. ना. कहि। २. धा. का देव नर, अ. फ. कह (कहा—फ.) देव नर, द. कहां देव सौ, ना. कहि देव सुं, म. का देव सुनि, उ. स. काह देव ससि। ३. मो. निकमक कवि, धा. ना. द. म. निकम काव (कव्व—धा., कव्वु—म.) कवि (कवु—ना.), अ. फ. करम कव्वुं (कव्वि—ना.) कवि, द. उ. स. निकम कवित्त (कवि—द) जु। ४. फ. पंड।

(२) १. मो. कि (=कइ) किमास (=कयमास) बताहि मो, धा. ना. द. म. उ. स. कै बताउ (-बताइ म.) कैवास मोहि (मुहि—म.), अ. फ. बतावहि कैवास मुहि (वहि—फ.)। २. मो. कि (=कइ) हिर, अ. हरि, फ. हरु, धा. स. हर, ना. कै हरि, म. उ. कै हर। ३. फ. द. सिद्धिय। ४. फ. छंड।

टिप्पणी—(१) कव्व < काव्य।

[२४]

दोहरा—जउ[*1] छंडइ[*2] सेसह[3×] धरणि[×] हर[×] छंडइ[×*4] विष[×] कंद[×5] । (१)
रवि[×] छंडइ[×*1] तप ताप कर[*2] तउ[*×÷] वर[3] छंडइ[*4] कवि चंद ॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा,] (१) "यदि शेष धरणी को छोड़ दें, शिव विष-कंद [का खाना] छोड़ दें, (२) सूर्य अपनी गर्मी और तापपूर्ण किरणें छोड़ दे, तो कविचंद [सिद्धि का] वर छोड़ सकता है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
÷ चिह्नित शब्द अ. फ. उ. स. में नहीं है।

(१) १. धा. जो, मो. जु (=जउ), ना. द. फ. जै (<जइ), उ. स. अ. प. जौ। २. मो. छंडि (=छंडइ), उ. स. छंडै, म. अ. फ. ना. छंड। ३. अ फ. ना. सेसु तु, म. सेसु त। ४. मो. छंडि (=छंडइ), उ. स. अ. फ. ना. म. छंडै। ५ म. कंदु।

(२) १. मो. छंडि (=छंडइ), ना. म. उ. स. अ. फ. छंड। २. मो. धा. फ. तप ताप कर, अ. (कर—मो.), म. तप ताप कौ, म. जौ तपि किरनि। ३. मो. तु (=तउ) वर, म. तौ वर, धा. अ. फ. उ. स. वरु (वर—उ. स.), ना. नौ (<तौ) वर। ४. मो. छं, धा. अ. फ. म. ना उ. स. छंड।

टिप्पणी—(१) जइ < यदि। (२) तउ < तदा।

[२५]

दोहरा—हठि[1] लग्गउ[*] चहुआन[2] नृप अगुलि[3] मुपह[4] फणिदु[5] । (१)
तिहुपुरि[1] तुअ मति[2] संचरइ[*5] कवन[3] सुहे[4] कवि चंदु ॥ (२)

अर्थ—चहुआन राजा (पृथ्वीराज) हठ में लग गया, और ऐसा हठ करने [मानो] फणीन्द्र के मुख में उँगली देना था। (२) [उसने चंद से कहा,] "तेरी बुद्धि तीनों लोकों में संचरण करती है, इसलिए हे कवि चंद, यह बताने से ही बनेगा [कि कयमास कहाँ गया है]।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. हठि लगु (= लग्गउ), धा. हठ लग्यो, अ. फ. हठि लग्यो, ना. हठ लग्यौ, उ. स. हठ लग्गौ। २. फ. चौहुवान। ३. मो. अगुर्ली, म. अंगुरी। ४. धा. मुषहि, उ. स. मुष्ष, म. मुष। ५. मो. फणिंद, धा. फनिंद, म. उ. स. फ. फुणिंद (फुनिंद—म.)।

(२) १. मो. तिह पूर, धा. जिह पुरि, म. तिहँ पुरि, ना. तिहि पुर, उ. स. अ. फ. तिहुं पुर। २. मा. तिहम, धा. तुअमति, स. तुव अति, म. तुव मत। ३. धा. संचरइ, मा. संचरि (= संचरइ), अ. फ. सचर, ना. म. संचरै। ४ मो. धा. सुकहि (= सुकहै), ना. सुकह्यं, द. सुकह्यो, म. कह्यो, उ. सुकहै, स. अ. फ. कहै। ५. मो. वयन, धा. बिनइ (< बनइ), म. उ. स. अ. फ. ना. बनै।

[२६]

दोहरा— सेस सिरुप्परि[१] सूर तर[२] जइ[३] पुच्छइ[४] निप एस[५]। (१)
दोहुं बोलि[१] मंडन[२] मरनु कहइ[*३] तउ[*३] कव्वु[४] कहेस[५]॥ (२)

अर्थ—(१) "हे राजा," [चंद ने कहा,] "शेष के सिर पर और सूर्य के नीचे (तीनों लोकों) [के विषय में] यदि तुम ऐसा पूछते हो, (२) तो दोनों बातों में—बताने पर भी और न बताने पर भी—मरण का मंडन (आयोजन) होता है, इसलिए यदि तू कहे तो मैं काव्य कहूं।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. सिरुप्परि, मो. सिरप्पर। २. अ. फ. सूरत्तर, ना. सूरतरण, उ. स. सूरतन, म. सुरसुतर। ३. मो. जु (= जउ), धा. जइ, म. जै, अ. फ. उ. स. ना. जौ। ४. मो. पुंछि (= पुच्छइ) धा. पुच्छइ, अ. पुच्छहि, फ. द. ना. म. उ. स. पुच्छै। ५. धा. नृप एसु म. कवि जासु।

(२) १. धा. दहु बोलां, अ. फ. दहु (अ = दुहुं) बोलइ, म. दहुं (< दहुं) बोल। २. मो. जीवन, फ. मंदन। ३. मो. कहि तुं (= कहइ तउ), धा. अ फ. कहहु त, प. कहै न, द. ना. कहै त, उ. स. कहौ तौ। ४. मो. उ. स. कब्बि, म. कब्ब। ५. धा. कहेसु, म. कहासु।

टिप्पणी—(१) एस < ईदृश। (२) कव्वु < काव्य।

[२७]

कवित्त—एकु[१] वान पुहवी[२] नरेस कयमासह[*३] मुक्कउ[४]। (१)
उर उप्परि[१] थरहरिउ[*२] वीर[३] कष्षहतर[४] चुक्कउ[५]। (२)
बीउ[१] वान संधानि[२] हनउ[*३] सोमेसुर नंदन[४]। (३)
गाढउ[*] करि[१] निग्गहउ[*२] षनिव षोदउ[*३] संभरि धनि[४]। (४)
थर[*१] छंडि[२] न जाइ अभागरउ[*३] गारइ[*४] गहउ[*] जु गुन परउ[*५]। (५)
इम जंपइ[*१] चंद विरद्दिया[२] सु कहा निमट्टिहि[३] इह[४] प्रलउ[*५]॥ (६)

अर्थ—(१) हे पृथ्वीनरेश, एक बाण तुमने कयमास को [लक्ष्य करके] छोड़ा। (२) वह बाण उस के हृदय पर खरभराता हुआ उस वीर की काँख के नीचे से होकर चूक (निकल) गया। (३) तुमने, हे सोमेश्वर नंदन, दूसरा बाण संधान करके [कयमास को] मार डाला (४) और, हे साँभर पति, तुमने खन-खोद कर गड्ढा करके उसको उसमें जकड़ दिया। (५) उस अभागे (कयमास) से अब स्थल छोड़ा नहीं जा रहा है, क्यों कि पाषाण (भूमि) ने उसे बुरे गुणों से (भली भाँति) पकड़ रखा है। (६) चन्द विरद्दिया इस प्रकार कहता (पूछता) है, इस प्रलय [जैसे भयानक कार्य] से क्या निपटेगा (बनेगा) ?"

पाठांतर— ×चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. अ. फ. एकु, म. एक, 'शेष' में 'इकु'। २. मो. पुहुमा, धा. अ. पुहमी, फ. ना. पुहवी, म. पौहमि, उ. स. पहुमी। ३. मो. किमासह (=कयमासह), धा. कैवासह, अ. फ. म. कैवासहि, ना. उ. स. कैमासह। ४. मो. मुकु (=मुक्यउ), धा. मुक्क्यो, अ. फ. मुक्कउ, म. द. ना. उ. स. मुक्यौ।

(२) १. अ. फ. उरप्पर, म. उ. स. उप्पर। २. मो. षरहरि, धा. षरहराउ (< परहरीउ), अ. फ म. ना. द. उ. (षरहर्‍यौ—फ. षरहरयौ—म. ना.), स. थरहरयो। ३. मो. वीरां, फ. वीत। ४. मो. कष्षह वर, धा. कष्षतल, ना. बाहू बर, म. बाहुबल, स. कष्यंतर। ५. मो. चुक्यु (=चुकयउ), धा. चुक्क्यो, अ. फ. चुक्कउ, म. द. ना. उ. स. चुक्यौ।

(३) १. मो. यह, ना. वीयो, द. म. उ. स. अ. फ. बियौ। २. ना. द. उ. स. अ. फ. संधान, म. संधति। ३. मो. हनु (=हनउ), धा. ना. हन्यो, अ. फ. द. म. उ. स. हन्यौ। ४. मो. नंदनी, म. नंदनि।

(४) १. मो. गाड्डु (=गाडउ) करि, धा. गाढो कै, ना. गाढौ कै, अ. फ. गढउ (गढौ—अ.) करि, म. गड्यो करि। २. मो. निग्रहु (=निग्रहउ), धा. निग्गह्यो, स. उ. स. अ. फ. निग्रह्यौ। ३. मो. षिन (< षिनु=षिनउ) षोदु (=षोदउ), धा. खन्यौ गड्ढौ, अ. फ. षन्यौ रह्यौ, ना. षन्यौ षोद्यौ, म. षुन्यौ षुध्यौ, द. उ. स. षनिव (षनिय—द.) गड्यौ। ४. धा. अ. ना. उ. स. संभरि धन, फ. संभर धनि।

(५) मो. द. थिर (<थर ?), धा. फ. थर, ना. थह, उ. स. थल, म. थरु (< थरु)। २. मो. ना. द. छोडि, अ. फ. छाडि, उ. स. छोरि, म. छंड। ३. मो. अभागरु (=अभागरउ), धा. न. अभ्गलो, अ. फ. न जाई वप्पुरो, ना. न जाइ अभग्गरौ द. उ. स. न जाइ अभागरौ, म. जाइ मगरि गगरि। ४. मो. पु (< गु) गारि (=गारइ), धा. गारं, अ. फ. गार, उ. स. गाड्यौ, म. कहयौ न, ना. द. गूंग। ५. मो. गहु गु (=गुु) गुन धरु (=धरउ), धा. गह्यो गुनषले, अ. फ. गहै गुनन धरौ (धरं—अ.), ना. द. षढौ गुल (गुद—द.) षलौ, उ. स. गाड्यौ गुनगहि अग्गरौ, म. न जाइ ही गुन घले।

(६) १. मो. जंपि (< जंपइ), शेष में 'जंपै'। २. मो. विरदीयु (=विरदियउ), धा. ना. विरदीया, अ. फ. म. उ. स. बरद्दिया। ३. धा. तह नवटे, मो. सु काहा नीमटिहि, द. अ. फ. कहा निबट्टे (निबट्टै—द.), ना. उ. स. कहा (कहां—ना.) निघट्टै, म. कह्यौ न मिटै। ४. धा. इह, मो. अ. फ. यह, उ. स इय, म. जैहै, द. इयु। ५. मो. प्रलु (=प्रलउ), धा. प्रलजले, उ. स. ना. अ. फ. प्रलौ, परौं, म. प्रलै।

टिप्पणी—(१) पुहुमी < पृथ्वी। मुक्क < मुच्। (२) कष्ष < कक्ष। (३) बीय < द्वितीय। (४) गाड < गड्ड < गर्त=गड्ढा। निग्गह < निग्रह=निरोध, अवरोध। (५) < थर स्थल। गार < ग्रावन्=पत्थर, पाषाण। (६) निमट्ट < निवृत्। प्रलउ < प्रलय।

[२८]

अडिल्ल— [1]भइ वयन[2] सुनि सुनि[3] सोइ[4] कानहु[5]। (१)

अप्पु अप्पु[1] गए गेह परानहु[2]॥ (२)

जोगिनिपुर[1] जागउ* चहुवानहु[2]। (३)

भयि[1] निसि च्यारि जाम[2] जुगु जानहु[3]॥ (४)

उसने मुख फेर कर पर [तक] नहीं सरकाया था (४) भद्र [illegible] [[illegible]] [illegible] जल के समान पृथ्वीराज के राघ से क्षण प्रतिक्षण सूख रहा था। (५) [illegible] (चंद्रमा) के जागते रहते (आकाश में स्थित रहते) ही घर घर यह वार्ता चली कि (६) "[illegible] (कयमास) को [कोई] बड़ा दोष लगा है—उससे [कोई] घोर अपराध हुआ है—और वह कलि (कल्मष) [उसके सिर से] उतर कर मिट नहीं रहा है।"

पाठान्तर— *चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. राज मज्झ, धा. राज मज्झि, म. राजमंझि, अ. फ. राज महल, स. राजन मझ। २. मो. संभयो (< संभयु), धा. संभह्यो, स. संपरिय, फ. संप्रत, अ. संप्रत्य, म. संपति, उ. संभरिय, ना. संभयौ (< संभयउ)। ३. धा. उप्पर, अ. फ. उट्ट। ४. मो. परट्टोय।

(२) धा. बाहुरि (=बाहुरइ), अ. बहुरि, फ. बौहुरि, ना. द. उ. स. म. बहुरे। २. धा. नृवि, फ. राज। ३. अ. फ. सामंत। ४. मा. मनु (=मनउ) लगि, धा. अ. फ. मनहु (मनौहु–फ.) लग्गिय, ना. म. मंत लग्गिय, द. उ. स. मत भग्गिय।

(३) १. धा. रह्यो, मो. रहयु (=रह्यउ), शेष में 'रह्यौ' या 'रह्यो'। २. धा. अ. फ. ना. द. म. उ. स. बरदाइ। ३. धा. पगु न सरक्यो, मो. पग न सरक्यु (< सरक्यउ), म. पग न सक्यौ, द. म. उ. स. पग न सरक्यौ, ना. पगा न सरक्यौ।

(४) १. मो. अ. फ. गिंभ, म. ग्यंभु, उ. स. ग्रम्भ, ना. डिंभ। २. धा. रोस जल पिंपि पिनि, म. राम जल पंपनि। ३. धा. सुक्यो, मो. उ. सुक्यु (=सुक्यउ), म. सुक्यौं; ना. सुक्यो, शेष में 'सुक्यो'।

(५) १. मो. रत्तिरि, म. रातरी, इनके अतिरिक्त सभी में 'रत्तरी'। २. धा. जागंतरी, मो. जगंतरि (< जग्गंत रइ), अ. फ. जागंत रह, फ. जागंतरु, म. जंगंतरैं, ना. जग्गत्तरैं, द. उ. स. जागंतर। ३. ना. होइ, उ. स. भई। ३. मो. म. घर घर, अ. फ. ना. घरन्घर, धा. घरे घरि (=घरि घरि), उ. स. घरंघर (=घरन्घर)।

(६) १. मो. दाहिमु (=दाहिमउ), धा. उ. स. दाहिम्म, ना. दाहिमौ, म. अ. फ. दाहिमैं। २. मो. लगु (=लगउ) परयु (=परउ), धा. दासौ सिरिस, अ. फ. लग्गो (लग्यौ–अ.) परउ, (परा–फ.), म. लगौ परौ, ना. उ. स. लग्यौ परौ। ३. मो. सु मिटि (=सु मिटइ) द. मिट, शेष सब में 'मिटै'। ४. धा. कलिसुत उत्तरी, मो. कलिसु (=सु) उत्तरी, अ. फ. कलि सौं उत्तरी, द. कलिसूं उत्तरी, म. कल सम उत्तरी, ना. कलि सो उत्तरी।

टिप्पणी—(१) परिट्ठ < परि+स्थ। (४) गिम्ह < ग्रीष्म। सुक्क < शुष्। (५) रत्तिरी < रात्रि। वत्तरी < वार्त्ता।

[३०]

आर्या— उग्गिअ[×] भान[१×] पायान[२×] पूर[३×]। (१)
बज्जियं[×१] देव दरि[२] संख तूर[३]॥ (२)
कलत[१] कयमास[*२] चढि[३] वरणसाला[४]। (३)
देव वरदाइ[१] वर मंगि बाला[२]॥ (४)

अर्थ—(१) पादों (किरणों) से पूर्ण भानु उदित हुआ, (२) देव द्वार पर शंख और तूर्य बजने लगे। (३) कयमास की कलत्र (स्त्री) वर्ण शाला पर चढ़ी। (४) [और] देव (महादेव) के वरदायी (चन्द), से वर (मृत पति) माँगने लगी।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।
× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) धा. उग्गियं भानु, अ. उग्गिय पालान, स. उग्गियं भान, शेष में 'उग्गियं भान'। २. धा. पायाल। ३. स. पूर।

(२) १. मो. बाजिय, शेष में 'वज्जिय'। २. म. वंदामि, ना. दवदारे, शेष में 'देव दर'। ३. स. तूर।

(३) १. अ. फ. कलब, द. उ. स. कलत्र, म. कलि। २. धा. अ. फ. कैवास, मो. किमास=कयमास)। ३. मो. चढ़ि, शेष में 'चढ़ि'। ४. स. साल।

(४) १. मो. अ. ना. द. देवि वरदाइ, धा. देवि वरदायि, म. फ. देव वरदाइ, स. वरदाइ देवि, [अन्यत्र हर से 'वर' प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है—यथा ३. २३, ३. २४]। २. स. बाल।

टिप्पणी—(१) पाय < पाद=किरण। (२) तूर < तूर्य=तुरही। (३) कलत्त < कलत्र=स्त्री।

[३१]

कवित्त— जा जीवन[१] कारणइ[२] धर्म[३] पालहि[४] मृत[५] जालहि। (१)
जा जीवन[१] कारणइ[२] अथ्थ सं[३] चित्त[४] उबारहि। (२)
जा जीवन[१] कारणइ[२] दुरग रष्पहि सब[३] अप्पहि[४*]। (३)
जा जीवन[१] कारणइ[२] भूम नव ग्रह करि[३] कप्पहि[*४]। (४)
जउ[*१] जीवन[२] साईं अप्पनउ[*३] नृपति बहुत वचनह भउ[४*]। (५)
सुकि[१] सरोवर हंस गउ[२] सुकिलि उडउ[*] अंधार भउ[*३]॥ (६)

अर्थ—(१) [उसने कहा,] "जिस जीवन के कारण ही [मनुष्य] धर्म का पालन करता और [उसके द्वारा] मृत्यु को जलाता है, (२) जिस जीवन के कारण ही [मनुष्य] अर्थ—धनोपार्जन [के साधनादि]-से चित्त को उबारता है, (३) जिस जीवन के कारण ही मनुष्य सब कुछ [शत्रु को] अर्पित करके भी दुर्ग की रक्षा करता है; (४) जिस जीवन के कारण ही वह भूमि नव ग्रह [की शांति] के लिए संकल्पता (देता) है, (५) यदि वह मूल्यवान जीवन है, तो नृपति के बहुतेरे वचनों का भी भय होता है, (६) [किन्तु] सरोवर सूख गया, तो हंस (प्राण—सूर्य) भी चला गया और हंस (प्राण—सूर्य) के सिमट कर (पंख बटोर कर) उड़ जाने पर अँधेरा हो जाता है।"

पाठान्तर—(१) १. फ. जीउन। २. मो. कारिण (=कारणइ), ना. कारणइ, धा. फ. म. कारनै, द. कारणहं, उ. स. कारनह, अ. कारणं। ३ उ. स. द. ध्रम्म। ४. मो. पालिहि, ना. पार। ५ म. पाल, अ. मृतु, म. म्रितु, स. फ. चित्त। ६. मो. जालिहि, धा. जालहि, ना. रहि, शेष में 'टारहि' (टालहि-फ.)।

(२) १. फ. जीउन। २. मो. कारिनहि, ना. कारणहि, धा. फ. म. कारनै, द. कारणहं, उ. स. कारनह, अ. कारणै, म. फ. कारनै। ३. अ. फ. अथ्थ सौं, ना. म. अथ्थि धन, द. अथ्थि दान, उ. स. अथ्थि दे। ४. ना. द. म. मूल।

(३) १. फ. जीउन। २. मो. कारनिहि, द. कारणहं, उ. स. कारनह, अ. कारणे, म. फ. कारन, ना. में 'जा जीवन०' लिख कर छोड़ दिया गया है। ३. मो. दुरग रष्पिहि सव, अ. फ. दुर्ग रष्षै सबु (अव—फ.), ना. द. म. उ. स. दुरग (द्रग्ग—ना.) ब्रय देसति। ४. अ. फ. अप्प, म. दिजहि।

(४) १. फ. जीउन। २. मो. कारनिहि, द. कारणहं, उ. स. कारनह, अ. कारणौ, म. फ. कारनै, ना. में 'जा जीवन०' लिखकर छोड़ दिया गया है। ३. उ. स. ना. द. अ. फ. होमकरि नवग्रह म., होम नर ग्रह। ४. मो. कंपिहि (=कप्पिहि,) ना. उ. स. जप्पहि, अ. फ. जप्प, म. कंपिजहि।

(५) १. मो. जु (=जउ), धा. जे, म. जो, ना. ड. स. अ. फ. जा। २. फ. जीउन। ३. धा. साईं अप्पुनो, मो. साइ अपनु (=अपनउ), ना. साईं अप्पनौ, अ. फ. सुं अप्पनौ, म. सोइ अप्पनै, स. साईं सुपन, उ. साईं सुप्पनौ। ३. मो. वहु ला वचनह जु (=भउ), धा. अ. फ. बहुत जच्चहि (जवने—फ.) सभो (—सभौ अ. फ.), ना. उ. स. बहुत जाच्चिय (जच्चिय—ना.) अभौ (आयौ—ना.), म. बौहति दिन जीयै।

(६) १. मो. सुकि (=सुकि), धा. सुकयो, उ. स. सुक्कोसु, ना. द. म. सुकै, अ. सुकयउ, स. फ. सुक्यउ

धा. गउ, मो. गु (=गउ), ना. म. उ. स. अ. फ. गौ। ३. मो. कलि उडु (=उडउ) अधियार उ (=अउ), धा अ. फ. कलि वुड (वुडडै–धा.) अंधियार भो, ना. कलि वुडड अंधियारौ भयौ, उ. स. कलि वुड्डै अंधियार भ म. कलि अंधियारै भर्जाय।

धा. में प्रथम चार चरणों का पाठ निम्नलिखित है: ऐसा लगता है कि प्रथम चरण के खंडित होने के कारण पाद-पूर्ति के लिए धा. के चतुर्थ चरण की कल्पना की गई है:—

जा जीवन कारन अत्थि धन मूल उबारहि।
जा जीवन कारन होम ५.२ नव ग्रह टारहि।
जा जीवन कारन दुग्ग दत भूवर सज्जहि।
जा जीवन कारन समर तजि नर भर भज्जहि।

टिप्पणी—(१) जाल < ज्वालय्। (२) अथ्थ < अर्थ। (३) अप्प < अर्पय्। (४) भूम < भूमि। (५) साई < साति= सातिशय पदार्थ, मूल्यवान पदार्थ। (६) सुकिकि < संकल्।

[३२]

कवित्त— मातु[१] गब्भ[२] वास करिवि[३] जंम[×] वासर[×४] वसि[×] लहगउ[×*५]। (१)
खिन[१] लग्गइ[*२] खिन[३] रुदइ[४] मुदइ[×*५] खिन[×६] हसइ[×*]अभग्गउ[×*७]। (२)
वपु विसेस[१] वड्ढिअउ[२] अंत डहइ[३] डर डरयउ[४]। (३)
कच तुचा दंत न रार[१] धीर[२] किम[३] किम उब्बरयउ[४]। (४)
मान भंगु मुकइ[*] सयल[१] लखित निमिष्ष नि मिट्टहि[*×२]। (५)
पर काज[१] आज[२] मंगउ[३] नृपति कहु[४] त[५] प्राण[६] पमुकहि[*७]॥ (६)

अर्थ—(१) "मनुष्य माता के गर्भ में वास करने अनंतर दिन के वश (दिन पूरा होने पर) जन्म लाभ करता है। (२) एक क्षण वह [संसार में] संलग्न होता है तो दूसरे क्षण वह [उससे खिन्न होकर] रोता है, एक क्षण वह मुँद जाता है (मौन हो जाता है) तो दूसरे क्षण वह अभागा हँसने लगता है। (३) [उसका] वपु (शरीर) विशेष रूप से संवर्धित होता है, किन्तु अंत में वह जलाए जाने के डर से डरता है। (४) कच, त्वचा, और दंत [आदि] को रार (झंझटे) छोड़ कर धीर किसी न किसी प्रकार उनसे उबरता है। (५) इसलिए तू [पृथ्वीराज से याचना करने में मान-हानि होगी] इस समस्त मान-भंग [की भावना] को छोड़, क्योंकि जो लक्षित (निर्धारित ?) है वह एक क्षण के लिए नहीं मिटेगा। (६) दूसरे के लिए तू आज नृपति से याचना कर; यदि तू उससे कहे तो [कयमास का शव लेकर] मैं प्राणों को मुक्त करूँ।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. द. मंत। २. धा. अ. फ. ना. द. गर्भ, म. उ. स. गरभ। ३. मो. संचरीय, धा. वास करिय, अ. फ. बस (बसि-फ.) करिवि (करवि–फ.), उ. स. बस करी, ना. बसि करिय, द. बसि करी, म. संभरीय। ४. मो. जंम वासर, अ. फ. जेम सुक्कइ, ना. म. उ. स. जम्म वासुर (वासर–ना.)। ५. मो. विसी लहगु (=लहगउ), उ. स. बस लम्भय, ना. वस लग्गौ, म. विस लम्भै, अ. फ. सुरसालहं।

(२) १. धा. अ. फ. वत, म. खितु। २. मो. लगि (=लगइ), धा. लग्गे, ना. लग्गे, अ. फ. नग्गइ, उ. लग्गि, म. लग्गइ, स. ललग्गि। ३. धा. अ. फ. धन, स. खिं, म खितु। ४. मो. रुदि (=रुदइ), धा. रुद, अ. फ. रुदइ, ना. ग्रे, उ. स. द. रुदाइ, म. रुदै। ५. मो. मुदि (<मुदइ), ना. मुषै, द. उ. स. मुदय, अ. फ.

रुदइ, म. में यह शब्द नहीं है। ६. अ. फ. रत्न, म. वितु। ७ मो. हसि (=हसइ) अभगु (=अभगउ), ना. अ. फ. हंस विहालह, ना. हसँ अभग्गौ, उ. स. हंस अक्कभय, म. दहि सत गम।

(३) १. मो. बपु बसेष, धा. वपु बिसेस, ना. द. अ. फ. बपु बिसेष, उ. स. बपु बिसषपु, म. बिष बिसेष। २. अ. बढियउ, फ. बढियौ, मो. वढियु (=वढ्डियउ), धा. द. उ. स. वड्ढयो, म. वढय। ३. मो. डढि (<डढि), धा० डड्ढे, ना. दहह, उ. स. रुढ्ढह, म. ददं, अ. दढ्ढइ, फ. दिढ्ढइ। ४. धा. उ. स. डरयो, म. डरय, अ. डरियउ, फ. डरयौ।

(४) १. मो. चकित चंदि त= रार, धा. किंचित चंद जु:रारि, अ. फ. किंचित च्चांद जुरार (रारि—फ.), ना. द. उ. स. कच तुच (तुव—ना.) दंत जु (ज—ना.), रार म. कबि चंद तु जुर धार। २. धा. अ. फ. ना. उ. स. धार (धारि—फ.)। ३. धा. म. फ. करि। ४. धा. उ. स.. उच्चरयो, अ. फ. उच्चरयउ, म. ऊचरय, ना. उच्चरयौ।

(५) १. मो. मान भंगु मुकि (=मुकइ) सयल, धा. मनु मगि भूमि मुक्के सयल, अ. फ. मनु सम्म गम्म इकइ सकल, द. ना. मन भंग मग्ग मुक्कहि सयल, उ. स. मन भंग मग्ग मुक्कत सयल, म. मान भंग सोग मुक्कहि सयल। २. मा. लषित निमिष नि मिटहूं, धा. अ. फ. लिषत नामिखु जू''हइ (<हि), अ. फ. लिषत (लिषति—फ.) निमष्षु (निमुष्षु—फ.) ज नष्षिहइ (नुष्षिहइ-फ.), द. ना लिषत निमेष न नषियं (निषियें—ना.), म. लिषतु निविधह चुकीयं, उ. स. लिषत निमेव न चुकयौ।

(६) १. धा. अ. फ. ना. उ. स. पर कज्जु (परि कज्ज—फ. ना. उ. स.)। २ धा. अ. फ. उ. स. अज्जु। ३. मो. मंगू (<मंगु=मंगउ), धा. मंगहि, अ. फ. मंगउ, म. मग्यौ, ना. मंग, उ. स. मंगौ। ४. मो. कह (कहु ?) धा. अ. फ. सकइ, ना. उ. स. सकै, द. म. सकहि। ५. द. उ. स. न। ६. अ. फ. प्रमान। ७. मो. पमूकहि (=पमुकहि), धा. पमुकहइ (<पमुक्कहि), अ. फ. पमुक्किहइ (<पमुक्किहि), म. द. पमुक्किय, ना. मुकीयं, उ. पमुकयौ, स. पमुक्कयौ, ना. मुक्कियँ।

टिप्पणी (१) गम्म <गर्भ। जंम <जन्म। लह <लभ्। (२) लग्ग <लग्न्। मुद <मुद्रय्। (३) दड्ढ <दग्ध। (६) पमुक्क <प्रमुच्।

[३३]

कवित्त— राषि[१] सरणि[२] सहगवनि[३] मरन मंगल अपुव्व[४] किय। (१)
दरणि[१] पेषि[२] दरबान[३] रुक्कि सक्किय[४] न मग्गु दिय। (२)
जागि जुलन[१] पृथीराज नयन नयनन जब दिष्षउ[२]। (३)
अंतकु कर रध्धांनु[१] त्रइग्गुण[*] त्रियतनु[२] लिष्षउ[३]। (४)
बोलिअउ[*१] वयन सु दयन हिय[२] कवन कम्मु[३] कवि अच्छयउ[*४]। (५)
तव देव कितिय कमलिय कमल[१] धरणि तरुणि[२] तनु मुक्कयउ[*३]॥ (६)

अर्थ—(१) चन्द ने उस सहगामिनी (पति के शव के साथ भस्म होने वाली कयमास की स्त्री) को शरण में लिया, जिसने अपूर्व मंगल [का शृंगार] किया था। (२) दरबान भय के साथ देखकर उसे रोक न सका, उसने उसे मार्ग दिया। (३) जलते हुए (क्रुद्ध) पृथ्वीराज ने जाग कर अपने नेत्रों से [जब उस सहगामिनी स्त्री के] नेत्रों को देखा, (४) तो अंतक (काल) के करों द्वारा राँधे हुए पकवान के समान उसने उस स्त्री के त्रिगुण तनु को जाना। (५) अत्यन्त दया-पूर्ण हृदय से वह बोला, "हे कवि, कौन-सा कार्य है?" (६) [चन्द ने कहा,] "देव, तुम्हारी कीर्ति [रूपी मतवाले हाथी] ने कमल (कयमास) को कवलित कर लिया। इस लिए धरणी पर यह तरुणी (स्त्री) शरीर त्याग रही है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा. म. उ. स. ना. द. अ. रष्षि, फ. रक्षि। २. धा. म. ना. द. फ. सरन (सरण–ना. द.)। ३. धा. गह गनन, मो. म. सहगवन, फ. सहि गउनि। ४. मो. मंगल अपूरब, म. मंगलु जु अपु।

(२) १. मो. दरगा (< दरण), धा. डरन, अ. फ. दारुण, द. डरण, म. वरनि, उ. स. दरनि, म. षरने। २. मो. पेषि, ना. दिष्य, शेष में 'पिष्षि'। ३. उ. स. दरबार। ४. धा. सक्कि, मो. सुकिय, अ. फ. सक्यउ, द. सक्यो, म. ना. उ. स. सक्यौ।

(३) १. धा. जग्गि जुलन, अ. फ. दिग्घि ज्वलन, ना. जग्गि जुगनि, द. उ. स. जग्गि जलनि (जलणि –द.), म. जागि जुलनि। २. मो. दिक्षु (दिष्यु=दिक्खउ), धा. दिष्यो, ना. द. म. उ. स. दिष्यौ।

(४) १. धा. अंतुक करि वर धम्म, ना. अ. फ. द. अंतक कर वर धम्म (ध्रम–द., धर्म्म–ना.), म. अतक करव धरयंति, उ. स. अति करुना रस वीर। २. मो. त्रिगुग (=त्रइगुण) त्रियतनु, धा. त्रइय गुन त्रिय सवि, अ. फ. कम्प त्रियगुन सम, उ. स. करी संकर रस, म. काम त्रिगुन त्रिय, द. कम्म त्रिगुन त्रि, ना. कर्म्म त्रिग्गुन त्रिय। ३. मो. लिक्षु (=लिक्खउ), धा. लष्यो, ना. म. द. उ. स. लिष्यौ।

(५) मो. बोलिउ (=बोलिअउ), धा. बुल्लयो, अ. फ. बुल्लियौ, उ. स. बुल्यौ न, ना. बुल्यौ सु, म. बुल्यो जु। २. सू (=सु) दयन हिय, धा. तब दीन हुइ, ना. म. उ. स. तब दीन हुव (हुअ–स.), द. तव दँन हुव। ३. मो. कवन काम, ना. द. कवन कंम, अ. फ. कवन काज, उ. स. कनक काम, म. बकविनि काज। ४. मो. अछ्यु (=अछयउ), ना. द. उ. स. धा. अ. फ. अच्छयो, म. इछियौ।

(६) १. धा. अ. फ. तवहि देव किन्तिय कलिय, ना. द. उ. स. तुम (तव–द. ना.) देव किन्ति कुइलिय कमल, म. तवु देवि कित्त कइनइ विमल। २. ना. धरणि तरणि, उ. स. धरनि धरनि, अ. फ. धरनि तरुनि, म. धरानेत। ३. मो. तनु मुकयु (=मुक्कयउ), धा. तिन मुच्छयो, अ. उ. स. तन मुक्कयो, फ. तरु मुक्कये, ना. जन मुक्कयो, म. रति मुकीयौ।

टिप्पणी—(१) अपुव्व < अपूर्व। (२) दर=भय, डर। पेष < प्रेक्ष्। मग्गु < मार्ग। (३) जुल < ज्वलन। (४) रद्ध=राँधा हुआ, पक्व। (५) वयन < वचन। कम्म < कर्म। अच्छ < अस्। (६) कमलिय < कवलित। मुक्क < मुच्।

[३४]

गाथा— *बाला मंगइ* वरयो[१] काउ[२] वासं ति[३] भट्ट सरनांइ[४]। (१)*

तुव गति कछु मन संभरिवइ[१] संभरिवइ* त* संभरु राय[२] ॥ (२)*

अर्थ—(१) "कापोत (कपोत के रंग का) वस्त्र धारण करके भट्ट के शरण में आई हुई बाला, [हे पृथ्वीराज,]" चन्द ने कहा, "तुम से [अपना] वर (पति) माँग रही है। (२) उसके मन में कुछ तुम्हारी गति है, [अतः] वह, हे राजा, 'सांभर पति' 'सांभर पति' स्मरण कर रही है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. बाला मंगि (=मंगइ) वरयो, धा. अ. फ. बाला मग्गति (मग स–फ.) वरयो, ना. द. बालानि (=नइ ?) मंग वरयो, उ. स. बालान मंग वरयौ, म. बाला मंगि सवरयो। २. अ. काओ, फ. कोआ, ना. कायो, म. में नहीं है। ३. म. बासंत। ४. धा. सिर जाइ, द. उ. स. सिरयाई, म. अ. फ. ना. सिर आइ।

(२) १. मो. तूंव गति कछु मन संभरिवि (=संभरिवइ), धा. द. उ. स. ना तूंअ ग त संभरवइ (संभरवै–उ. स.), अ. फ. ना सुव गति संभरइ, म. नि तुव गति संभरवै, ना. ना तुव गति संभरिवै। २. मो शंभवै न संभरराय (< संभरिवै त संभरराय), धा. संभरव राय रायेसु (राजेसं–ना.), उ. स. अ. फ. ना. संभरिवै राय रायस, म. संभरिव राइ राजेस।

टिप्पणी—(१) काउ < कापोत। (२) संभरिवइ < शाकंभरी पति।

[३५]

दोहरा— बछ्य[१] किति बुलिय[२] वयन ढिल्ली[३] पुरह[४] नरिंद[५] । (१)
दाहिम्मउ*[१] दाहिर हरो[२] को कढ्ढइ*[३] कवि[४] चंद ॥ (२)

अर्थ—(१) ढिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) ने कीत्ति की वांछा की, [इस लिए] वह बोला, (२) "दाहिमा (कयमास) दाहिर (गर्त्त) के द्वारा अपहृत हो चुका है, उसे कौन निकाल सकता है ?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. बंछिय, ड. स. पछिय, ना. वछिड, फ. वछी, शेष में 'बछिय' । २ धा. अ. फ. ना. द. उ. स. बुल्लिय, म. बुलं । ३. म. ढिल्लीय । ४. धा. फ. पुरहि । ५. म. नरिंदु ।

(२) १. ना. दाहिमु (=दाहिमउ), शेष में 'दाहिमो' या 'दाहिम्मौ' । २. धा. म. उ. स. दाहर जहर, अ फ. दाहन गहर, ना. दाहिन गहर । ३. मो. को काढि (=काढइ), धा. को कढ्ढइ, उ. स. म. अ. फ. कढे (<कढ्ढि= कढइ), ना. द. को कढ्ढ (कढ्ढे—ना.), द. कढै न बने । ४. म. कवि तिने ।

टिप्पणी—(१) बछ < वाञ्छ् । किति < कीर्त्ति ।

[३६]

कवित्त— रावन[१] किमि गड्डिअउ*[२] क्रोध+ रघुराय+[३] बान+ दिय+ । (१)
बालि+[१] किनि*+[२] गड्डिअउ*+[३] सु त[४] सुग्रीव जीव[५] लिय । (२)
चंद किनि× गड्डिअउ×*[१] कीअ* गुरुदार[२] स किल्लउ*[३] । (३)
रवि न पंड[१] गड्डिअउ*[२] पुच्छि[३] सह देव[४] पहिल्लउ*[५] । (४)
गड्डउ*[१] न इंदु[२] गोतम[३] रषि[४] बरु[५] सराप[६] छंडिय जिनी[७] । (५)
इह[१] रोस दोस पृथिराज सुनि[२] मम गड्डइ[३] संभरिधनी[४] ॥ (६)

अर्थ—[चंद ने कहा] "(१) रावण को किसने गाड़ा था ? क्रोध में रघुराज (राम) ने उसे बाण ही तो दिया (मारा) था । (२) बालि को किसने गाड़ा था ? उसका सुग्रीव ने जीवन ही तो लिया था । (३) चन्द्रमा को किसने गाड़ा था ? उसने गुरु-पत्नी से केलि की थी । (४) पाण्डु ने [भी] रवि (सूर्य) को नहीं गाड़ा था; हे देव, पहले [के ऐसे प्रसंगों को] सभा से पूछें । (५) इन्द्र को गोतम रिषि ने नहीं गाड़ा था, भले ही जिन्होंने उसे शाप छोड़ा (दिया) था । (६) हे पृथ्वीराज, सुनो, [ऐसे आचरण पर] इतना रोष करना दोष है; कयमास को, हे साँभरपति, मत गाड़ो ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

+ चिह्नित शब्द द. में नहीं है ।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. फ. राउन । २. धा. किन गड्डयो, मो. किनि गड्डिउ (=गड्डिअउ), अ. म. किनि गड्डियो, शेष में 'किन गड्डयो' (गड्डयौ—फ. उ. ना. स. ।) ३. म. रघुनाथ ।

(२) १. फ. बलि, म. वल, ना. बाल । २. मो. किन, धा. अ. किनं, फ. ना. किन, उ. स. किन, म. किनह, ना. किन । ३. मो. गड्डिउ (=गड्डिअउ), फ. गडीयौ, शेष सब में 'गड्डयो'

(गड्डु-ौ-फ. ना. उ. म.)। ४. ध. नदिन, म. न्याय, अ. फ. स. सुत्रिय, ना. द. त्रिय लगि। ५. उ. स. जाय, फ. जाउ।

(३) १. मो. चंद किनि गड्डिउ (=गड्डिअउ), फ. चंद न किन गडीयौ, शेष में, 'चंद (चंदु-म.) किनै गड्डयो (किन्नै गड्डयो-स.)। २. मो. अगुरुदार, धा. कियौ गुरुवार, फ. गुरुव गुरुवार, शेष में 'कियो गुरुवार'। ३. मो सकिलु (=सकिल्लउ), धा. सकिल्लो, ना. सहिल्लीय, द. सहिल्लय, उ. स. सहिल्लइ, म. सकिलीय, धा. अ. फ. सकिल्लो।

(४) १. धा. रवि किन, अ. म. रमि न पंडु, ना. रवनि पडु, फ. उ. स. रवि न पंग। २. मो. गड्डिउ (=गड्डिअउ), शेष सब में 'गड्डयो' (फ. उ. स.ना. गड्डयौ)। ३. अ. फ. तुच्छ, फ. म. पुच्छ, द. उ. स. पुच्छि। ४. मो. सहदेवि, शेष सभी में 'सहदेव' (सहिदेव, उ-फ.)। ५. मो. पहिलु (=पहिलउ), धा. अ फ. पहिल्लो, ना. पहिल्लीय, म. उ. स. पहिलइ, म. पहलीय, द. पहिलय।

(५) १. मो. गड्डु (=गड्डउ), शेष में 'गड्डयौ' या 'गड्डयो'। २. धा. इंद, म. इंदु, उ. स. अ. फ. इंद्र। ३. अ. गउतम। ४, धा. म. उ. स. रिषह, फ. रिषहि, ना. रिषीय। ५. धा. अ. फ. बहु, मो. बर, उ. स. सिव। ६. ना. सरषि। ७. धा. छंड्यौ जिनिय, उ. स. छंडन जनो, म. बंध्यौ जनीय, अ. फ. छंड्यौ जनो, ना. छंडे जनी।

(६) १. धा. उ. स. इन, म. द. इहि, ना. रहि। २. धा. रोक्ष दोस चहुवान तुव। ३. धा. फ. मम (नन-फ.) गड्डुलि (गडिस-फ.), अ. नन गड्डुहि, ना. मम गड्डुहि, उ. स. मति गड्डुय, म. मम गडिस। ४. धा. म. संभरि धनीय, फ. संभरु धनो।

टिप्पणी— (३) किल्लु < कीर्ति। (४) सह < सभा। (५) इंद < इंद्र। रषि < ऋषि।

[३७]

दोहरा— *तउ* अप्पउं कयमास*१ तु हि२ मिटिहि उरह३ अंदेसु। (१)*
दिष्षावइ१ पहु पंगुर२ जइ३ जयचंद नरेसु॥ (२)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने कहा] "(१) तुझे कयमास को तब अर्पित करूँगा और तभी [मेरे] हृदय का अंदेशा मिटेगा, (२) जब तू पंगुल-प्रभु जयचंद नरेश को मुझे दिखावेगा।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. तु अपु किमास (=तउ अप्पउ कयमास), धा. तउ अप्पउं कैवास, उ. स. तौ अप्पों कैमास, म. तौ अप्पुं (=अप्पउं) कैमास, फ. तौ अतौ कैवास, अ. तौ अप्पौ कैवास, द. तौ अप्पौ कैमास। २. धा. अ. म. ना. तुहि, मो. फ. तोहि (<तुहि)। ३. धा. मिट्टइ उरहि, अ. फ. मिट्टहि उर, ना जो मिट्टहि उर, म. उ. स. जो (जौ-म.) मटे।

(२) १. धा दिखबावई, मो. दिषावि (=दिषावइ), म. देषावै, ना. उ. स. दिष्षावहि। २. ध. पहु पंगुरो, अ. ना. उ. स. पहु पंगुरौ, म. पहु पंगरौ, फ. पहु पंगुरउ। ३. उ. स. तो। मो. जु (=जउ), धा. जइ, द. उ. स. जै, अ. फ. जई, ना. म. जौ।

टिप्पणी—(१) अप्प < अर्पय। अंदेस < अंदेशा (फा०)। (२) पहु < प्रभु। जउ < यदा।

[३८]

दोहरा— *पिन त मनहि१ धीरज धरहु२ अरि दिष्षत३ तिहि४ काल। (१)*
अति बरबर बोलइ नहीं१ सु किम२ चालइ*३ भुआल४॥ (२)*

अर्थ—[चंद ने कहा,] (१) "[इस] क्षण तो मन में धैर्य रखलो, इस समय तुम्हारा शत्रु देख रहा है—तुम्हारे कन्नौज-आक्रमण की बात जान गया है। (२) बहुत बर्बर [होकर] न बोल; बता कि तू, हे भूपाल, किस प्रकार [कन्नौज] चलेगा।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. छिनकु मनुहिं, अ. छिनकु मनह, फ. छिनक मनहि, द. ना. षिनुकु(षिनक–ना.) न मन, म. षिनक तम्ह, उ. स. षिनक न मन। २. धा. रहै, द. उ स. धरहि, अ. करहु, फ. करौहु। ३. मो० अर दीपंति, धा. ना. अरि दिष्षत, अ. म. स. अरि दिष्षित, फ. उ. स. अरि दिष्षन। ४. धा. फ. तिहि, स. तिन, उ. तति।

(२) १. मो. अति बरबर बोलि (= बोलइ) नहीं, धा. अति बलि सूं बल ना कह्यौ, अ. फ. अति बरबरु (बरबर–फ.) बुलहु नही, ना. द. अति बरबर बुलैं नहीं, म. अति बरबर बुल्यौं नहिन, उ. स. अति बरबर बुलै नहीं। २. धा० किय, अ. फ. किम, म. सो किम। ३. मो. चालि (= चालइ) धा. चल्लइ, फ. चल्लौह, ना. चलिहै, द. चलहै, अ. म. उ. स. चलहु। ४. अ. फ. ना. भूपाल, द. भोपाल, म. भुवाल।

टिप्पणी—(१) षिन < क्षण।

[३९]

मुडिल—　चलउं[१] भट्ट[२] सेवग होइ सथ्थहं[३] । (१)
जउ बोलउं*[१] त हथ्थु तुह मथ्थहं[२] ॥ (२)*
जबह राइ जानइ[१] संमुह हुअ[२] । (३)*
तब अंगमउं[१] समर दुहुनि भुअ[२] ॥ (४)*

अर्थ—[पृथ्वीराज ने कहा,] "(१) हे भट्ट (चंद), मैं तुम्हारे साथ सेवक हो (बन) कर चलूँगा। (२) यदि [उस समय मैं कुछ] बोलूँ तो मेरा हाथ तुम्हारे मस्तक पर है—मैं तुम्हारी सौगन्ध खाता हूँ। (३) जभी राजा (जयचंद) मुझे सम्मुख हुआ जानेगा [और युद्ध करेगा], (४) तब मैं दोनों भुजाओं पर युद्ध ओढ़ूँगा।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा. चलौं, मो० चलु (=चलउ), फ. चलउ, द. चल्यौ, अ. चलौं, ना. चलौ, उ. स चलौं। २. धा. अ. फ. चंद। ३. धा. अ. फ. सथ्थह सेवग (सेवक–अ. फ.) हुअ (हुव–अ. फ.), द. सेवक हुइ सथ्थहं।

(२) १. मो. जु (=जउ) बोल (< बोलुं=बोलउ), धा. जो बुल्लौं, अ. फ. जौ बुलउं, द. अब जौ बोलुं, उ. अह जौ बोहूं, ना. जौ बोलौ, स. जौ बोहू। २ धा. तउ अथ्थि बुले भुव, अ. फ. त अथ्थि बुहइ भुव, द. त हथ्थ तुम मथ्थहं, ना. तो हथ तुव मथ्थह, उ. स. तो हथ तुम मथ्थह।

(३) १. मो. जवह राइ जानि (=जानइ), धा. जब उह राय जानि, अ. फ. जब वह जानि मोह, फ. जब जानूह मोह, ना. जब वासौं जानि हौ, स. जबह जानि। २. धा. समुहो हुअ, मो. संमह हुअ, अ. फ. संमुह हुइ, ना. सुमुह हुव।

(४) १. मो. अंगमु= (अंगाउ), धा. अ. अंगवउ, फ. अंगउ, द. तब अंगवुं, उ. स. तब अंग करौं। २. मो. त समरि दुह भूअ, धा. समर सम्हां हुअ, उ. स. सम्नह दोउ भुअ, अ. समर सह निझइ, ना. समर दुर हरि भुव, फ. समर निझर भूव, द. समर दुहुनि भुव।

म. में यह रसाइनो है और पाठ यह है :—

चल्यौं चंदकवि भटहू सेवक सथ तूव। जो बुलति सुष बंन तु डुलति अथ धूव।
जो बस राउ सु जांनि सम सम्हौ हुवौ। परिहा तौ अंग सम बल दषिह चूव भूह लयौ।

टिप्पणी—(१) सेवग < सेवक। (२) संमुह < संमुख। (४) मुअ < मुजा।

[४०]

दोहरा— दोइ[१] कंठ लग्गिय गहन[२] नयनह जल गल न्हांनु[३]। (१)
अब जीवन[१] बंछिहि[२] अधिक कहि[३] कवि[×] कौन[४] सयानु[५]॥ (२)

अर्थ—(१) दोनों (चंद तथा पृथ्वीराज) कस कर गले मिले और नेत्रों के गिरते हुए जल से दोनों ने स्नान किया। (२) [पृथ्वीराज ने कहा,] "हे कवि तुम्हीं कहो, अब [जयचंद के द्वारा अपमानित होने पर] कौन समझदार व्यक्ति अधिक जीवन की वाञ्छा करेगा ?"

पाठांतर—× चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. मो. दोइ, धा अ. फ. दुवे (<द्वय ?), ना. दोऊ, द. दोउ, म. दुहुं, उ. स. दोय। २. धा. लागी गहनु, अ. लग्गो गहन फ. लग्गो गह्नन, ना. लग्गिय दयन, उ. स. लग्गिय अगनि, म. लग्गा गहन। ३. मो. नयनह जल गिल नान्ह, धा. नयन जलग्गुलु न्हानु, अ. फ. नयन गलग्गल न्हानु, ना. नयन अग्गि गल नान, उ. स. नयन जलग्गि ललान, म. नयन जलबं हांन।

(२) १. स. अंब जीव। २. मो. बंछिहि, धा. अ. फ. बंछहि, ना. म. बंछीय, उ. स. बंछै। ३, मो. किहि, अ. फ. कथि, द. कहि। ४. धा. कवनु फ. म. कौनु, ना. कौन। ५. फ. म. सयान।

टिप्पणी— (२) सयानु < सज्ञान।

[४१]

अडिल्ल— अब उपाउ[×१] सुमझउ[*२] एक[३] संचउ[*४]। (१)
सुनि कवि मरनु[१] टरइ[*२] नवि[३] रंच्यउ[*४]। (२)
समर[१] तित्थ[२] गंगह[३] जल चंच्यउ[*४]। (३)
अवसरि[१] अब स[२] पंग धर[३] नंच्यउ[*४]॥ (४)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने कहा,] "(१) अब एक सच्चा उपाय सूझ गया है। (२) हे कवि, सुन; [विधाता द्वारा रचा हुआ] मरना रंच मात्र भी नहीं टलता है। (३) रण-तीर्थ तथा गंगा-जल ने खींचा है—वे हमें बुला रहे है। (४) [इस] अवसर पर हम पंग (कन्नौज राज) की भूमि पर नृत्य करें—रण-कौशल प्रदर्शित करें।"

* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

पाठांतर—× चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. म. आब उपाव, फ. जब उपाउ। २. धा. सुझ्यो अ. सुझ्यौ फ. सुझ्यो, ना. द. सुझ्यौ,

उ म सनह्यौ म सह्यौ ३ धा अ फ म इक उ स इइ ४ मो सच्चु (< सचु = सचउ') धा. अ. उ. स. सची, ना. सच्यौ, द. फ. सच्यौ, म. सवर।

(२) १. म. तुसनि मरनि । २. मो. टरि (= टरइ), धा. ना. टरै, उ. स. ना. अ. फ. मिटै। ३. धा. अ. फ. नहिं, उ .स. नइ, म. नही, ना. नन। ४. मो. रंच्चु (=रंच्यउ), धा. अ. फ. रंचौ, ना. रच्यौ, फ. द. रंच्यौ, म. नर।

(३) १, मो. समरि, म. चौसुर, शेष में 'समर'। २. म. रति। ३. मो. गंगह, शेष में 'गंगा'। ४ मो. पंच्चु (=पंच्यउ), धा. उ. स. पंचौ, ना. म. अ. फ. पच्यौ।

(४) १. मो. आवसरि, अ. अवसर। २. अ. उ. ना. अवसि, फ. अवसु। ३. मो. गंगधर, धा. द. पंगु ग्रिह, ना पंग ग्रिह, अ. पंगु वृहि, फ. उ. स. पंग ग्रह, म. पग तह। ४. मो. नंच्चु (= नंच्यउ) धा. उ. स. नंच्यौ, अ. फ. म. नंच्यौ।

टिप्पणी—(३) तित्थ < तीर्थ।

[४२]

दोहरा— आनंदउ[१] कवि चंद जिय[२] नृप किय[३] संच विचार[४]। (१)
मन गरुअर[१] सिर हरुअ हइ*[२] जीवन[३] हरुअ सिरभार[४]॥ (२)

अर्थ—(१) कवि चंद जी में आनंदित हुआ कि राजा (पृथ्वीराज) ने यह एक सच्चा विचार किया। (२) [उसने जान लिया कि इस समय पृथीराज केलिए] मन [का संकल्प] गुरुतर है और उसकी तुलना में सिर हलका हो रहा है, जीवन हलका—महत्वहीन—हो रहा है, और [कन्धों पर] सिर भारी हो रहा है—उसको उतार फेंकने की उत्कण्ठा हो रही है।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. आनंदु (= आनंदउ), धा. आनंदिउ, अ. फ. आनंद्यउ, द. अनंदयौ, ना. उ. स. आनंदयौ, म. अंनदो। २. धा. कवि कव्वसनु, अ. फ. कवि सुनि वयनु, म. कवि वयंन भिपु, ना. कवि इक वयन, उ. स. कवि के वयन। ३. म. कीयउ। ४. मो. राच विचार, म. संच विहार।

(२) १. धा. सरन (< मरन) गरुअ, अ. उ. स. ना. द. मरन गरुअ, फ. मरन सगरु, म. मरन गिरु। २. धा. सिर हरुव है, मो. सिर हरुअ हि (= हइ), अ. ना. द. उ. स. सिर हरुअ है (है– द.), फ. वासर हरू, म. सिर पडुव है। ३. धा. जावन (< जीवन), उ. स. जियन, फ. जीउन, म. जीवनु। ४. धा. हरु सिर भार, फ. तुव सिर भार, ना. हर सिर भार, म. गिरु सिरु भार, उ. हरुअ सि भार।

टिप्पणी—(१) संच < सत्य। (२) गरुअर < गुरुतर। हरुअ < लघुक।

[४३]

रासा— अप्पउ*[१] कवि कयमास*[२] सतीय सय ले[३] संचरिउ[४]। (१)
मरन लग्ग[१] विधि[२] हथ्थु तथ्थु कवि[३] उच्चरिउ[४]। (२)
धरि[१] वरु[२] पंगु प्रगट्ट[३] अरु थट्ट[४] विहंडिहइ*[५]। (३)
इत उपहास[१] विलास न[२] प्रान पमूकिहइ*[३]॥ (४)

अर्थ—(१) कवि ने कयमास [के शव] को उसकी स्त्री को अर्पित किया, और सती स

लेकर [चिताग्नि में] संचरित हुई। (२) तब कवि ने कहा, "मरण और लग्न (विवाह) विधाता के हाथ में होते हैं। (३) हम भले ही पंग धरा—कन्नौजराज की भूमि—पर प्रकट होंगे और अरि-थट्ट—शत्रु-सेना—को विखंडित करेंगे, (४) वहाँ रहकर उपहास सहन करते हुए और विलासों में हम अपने प्राणों को नहीं छोड़ेंगे।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. आपु (= आपउ), धा. अप्पिउ, द. ना. अप्यौ, म. अप्पौ, अ.अध्यउ, फ. आधौ। २. मो. कवि किमास (= कयमास), धा. कवि कैवास, ना. म. कवि कैमास, उ. स. पहु कैमास। ३. धा. ना. द. उ. स. सतु (सत – ना. उ. स. म.), अ. फ. सरु। ४ धा. संचरिउ, मो. संचर्‌यु (< संचर्‌यउ), उ. स. अ. फ. द. संचरयौ (संचरयो–अ.), ना. संचयौं, मा. वारयो।

(२) १. धा. अ.-फ. म. उ. स. ना. द. लगन। २. फ. विध। ३. मो. तथ्थु कवि, म. त कवि, ना. में पिछला शब्द नहीं है। ४. धा. उच्चरिउ, मो. उच्चर्‌यु (< उचर्‌यउ); अ. फ. उच्चरयो, म. उचारयो, ना. उच्चयो।

(३) मो. घर, धा. धरि, शेष में 'धर'। २. म. व, उ. स. द. भर। ३. मो. पंग प्रगुट, ना. द. पंग प्रगटि, म. पंग रूप। ४. धा० त छट्ट, म. प्रगट, उ. स. रुठ्ठ, अ. फ. तुछक्क, ना. हिडंड, म. तु षंडि। ५. मो. विहंविडु, धा. विहंडियउ, अ. ब. विहंठिहै, फ. विहंदहंहि, उ. स. विहंडिहौ, ना. द. विहंडिहैं; म. विहंडिहै।

(४) १. धा. इति उपहास, फ. इत उपहास, अ. उ. स. इन उपहास, म. परिहा तो उपहास, ना. इतौपहास। २. फ. विलास ति, म. ना. विलासत। ३. मो. प्रान पमूकहि (= पमूकहइ), धा. प्रान न छंडियउ, ना. अ. प्रान न छंडिहै, फ. प्रान न छंडियहि, द. प्रान पमुकिहैं, उ. स. प्रानय षंडिहौं, म. प्रान प्रमुकिहै।

टिप्पणी—(१) आप < अर्पय्। सय < सत। (२) लग्ग < लग्न। तथ्थ < तत्र। (३) विहंड < वि+खंडय्। (४) पमुक < प्र+मुच्।

४. पृथ्वीराज का कन्नौज-गमन

[१]

कवित्त— कनवज्जिय[१] जयचंद[२] चलउ[*३] ढिल्लियसुर[४] पेषन[५] । (१)
चंद बिरदिया साथि बहुत[१] सामंत[२] सूर घन । (२)
चहूआंन राठवर जांति पुंडीर गुहिल्ला[१] । (३)
वडगूजर पांमार कुरंभ जांगरा रोहिल्ला[१] । (४)
इत्ते[१] सहित्त[२] भुअपति[३] चलउ[*४] उडी रेन किन्नउ नुभउ[*५] । (५)
एकु एकु[१] लष्ष वर लष्षवइ[*२] चले[३] सथ्थ[४] रजपुत्त[५] सउ[*६] ॥ (६)

अर्थ—(१) कन्नौज में जयचंद को देखने के लिए दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) चल पड़ा। (२) विरुदिआ (विरुद कहने वाला) चंद साथ में था और बहुत से सामन्त तथा अनेक शूर थे। (३) वे चहुआन, राठौर, पुंडीर, गुहिल, (४) वड गूजर, पंवार, कूरंभ (कछवाहा), जाँगरा तथा रोहिल्ल [क्षत्रिय] थे। (५) भूपति (पृथ्वीराज) इतनों के साथ चल पड़ा; [उस प्रयाण से] रेणु उड़ी और उससे नभ आकीर्ण (आच्छादित) हो गया। (६) [जिनमें से] एक-एक [एक-एक] लाख का बल दिखाता था (?), ऐसे सौ राजपूत साथ चले।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. कनविज्जय, धा. कनवजहे (<कनवजहि), द. कनवजहां, अ. फ. म. उ. स. कनवज्जह। २. फ. जइचंद। ३. मो. चलु (=चलउ), धा. द. चल्यो, अ. फ. म. ना. उ. स. चल्यौ। ४. मो. दिल्लियसुर, धा. दिल्लेसुर (< दिल्लिसुर), अ. फ. ढिल्लिय सुर, उ. स. ना. म. दिल्लीपति, द. द. ढिल्लियपति। ५. धा. अ. दिष्यन (=दिष्षन), द. दक्षनु, द. ना. म. उ. स. पिष्षन (=पिष्षन)।

(२) १. धा. चंद बरदिया साथ बहुत, अ. फ. सथ्थ चंद बरदाइ बहुत, द. ना. म. उ. स. चंद बरद्दिय (द. बिरदीयो, ना. बिद्दह, म. बरदीया) तथ्थ सथ्थ। २. अ. फ. सावंत।

(३) १. धा. मो. ना. चाहुवान (चहूआंन–मो.) राठौर (राठवर–मो., राठौर–ना.) जाति पुंडीर (जाति पंडोर–मो.) गुहिलय (गहिल्ला–मो, गुहिल्लह–ना.), अ. फ. चाहुवान रोठाड (राठोर–फ.) जावौ (जाउ–फ.) पुंडरी गहिल्ला, द. म. उ. स. चाहुआन कूरंभ गौर (गौड–द.) गाजी वडगुज्जर।

(४) १. धा. वड गुज्जर पांवर चले जांगरा सुहलय, मो. वड गूजर पांमार कुसम जांगरा रोहिल्ला, अ. फ. वड गुज्जर पावार चले कूरंभ मुहिल्ला, द. म. उ. स. जादव (जदौं–द.) रा रघुबंस पार पुंडीर ति पष्षर, ना. वड गुज्जर खीची पमार कूरंभ गुहिलह।

(५) १. मो. इत्ते, धा. कुरंभ, अ. फ. ना. इत्तनं, म. इतनिअ। २. मो. सहत। ३. धा. ना. द. म. उ. स. भूपति। ४. धा. चल्यो, मो. चलु (=चलउ), अ. फ. म. चढ्यौ, उ. स. छट्यौ। ५. धा. उडिय रेणु किन्हो नभो, मो. उडी रेन किन (<किनु=किनउ) नुभू (=नुभउ), अ. फ. उडी रेनु किंनौ (रेन कीनौ–फ.) नभौ, ना. म. उ. स. उडी रेन (रेणु–ना.) छिनौ (छीनौ–म. उ. स.) नभौ (नभाँइ–म.)।

(६) १. धा. म. इक इक्, अ. फ. ना. इक इक, ना. लष्यवर, द. उ. स. इक लष्य। २. धा. वीर आंगमइ, मो. वर लष्यवि (=लष्यवइ), अ. फ. वर लिष्यिये, म. उ. स. वर लषाये, द. वर लषिये। ३. धा. अ. फ. लियौ, ना. लये, म. उ. स. चले, द. चढे। ४. धा. मो. अ. फ. साथ, द. ना. म. उ. स. सथ्थ। ५. मो. रचपुत्त, म. रजपूत। ६. धा. सो, मो. सु (=सउ), अ. फ. ना. सौ, म. सौंइ।

टिप्पणी—(१) पेख < पेक्ख < प्र+ईक्ष्=देखना, अवलोकन करना। (३) जांति < ज्ञाति। (५) किन्न < किण्ण < कीर्ण।

[२]

दोहरा— *राज सगुन संमुह हुअ[१] ति ध्रुर[२] तन सिंघ[३] दहार। (१)*
मृग दक्खिन[१] षिन षिन[२] खुरहि[३] सु चरइ न[४] संभरिवार[५]॥ (२)*

अर्थ—[चंद ने कहा,] "(१) हे राजा, शकुन सामने ही हुआ है—कि ध्रुव [की दिशा—उत्तर] की ओर [मुख कर] सिंह दहाड़ रहा है; (२) मृग दक्षिण [दाहिनी ओर] क्षण-क्षण [भूमि] खूट रहा (खुर से खंडित कर रहा) है, किंतु हे साँभरवाल (पृथ्वीराज), वह चर नहीं रहा है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. राज सगुन साम्हो हुवो, मो. राज सगुन समह (< संमुह) हुअ ति, अ. फ. राज सकुन सम्मुह हुवौ (<हुवउ–फ.), ना. राजा सगुन सम्मूह हुव, म. उ. स. राज सगुन सम्मूह हुअ। २. धा. ध्रुवनर, ना. अ. फ. ध्रुवतर, द. धुवतन, म. उ. स. धुअतन। ३. मो. संघ (< स्यंघ), धा. ना. द. म. उ. स. सिंघ, अ. फ. सिंह।

(२) १. मो. दक्षन, धा. दक्खिण, अ. दक्षिन, फ. द्दिक्षिन, म. दषिन, द. ना. उ. स. दच्छिन। २. धा. खिणि खिणि, मो. म. पिनषिन, उ. स. छिन छिन, ना. पिनु, अ. दक्षिन, फ. दच्छिन। ३. धा. खुरति, मो. रहै, अ. घरइ, फ. परहि, ना. उ. स. धुरहि, म. पुरे। ४. धा. चरहि न, मो. सु चरि (=चरइ) न, अ. फ. चलहि न, ना. द. चलहिं (चलहि–ना.) त, म. चलें ब, उ. स. चलहि त। ५. धा. संभरवारि, ना. संभरवारि।

टिप्पणी—(१) ध्रुर < ध्रुव। (२) खुर <खुड < तुड् (?)=खंडित करना, तोड़ना (तुल० अवधी 'खुरिहारब')।

[३]

दोहरा— *सुनत[१] सीस[२] सारस सबद उदय[३] सबद्दल[४] मांन[५]। (१)*
परन[१] भंजि[२] प्रतिहार जिह[३] करिहि[४] त कज्ज[५] प्रमांन[६]॥ (२)

अर्थ—"(१) सिर के ऊपर सारस का शब्द सुनते हुए, बादलों के साथ सूर्य के उदय काल में, (२) अथवा यथा (जब) प्रतीहार (तीतर) परों को भाँजे (उड़े—उड़ाता हुआ दिखाई पड़े), [कोई] कार्य करे तो वह प्रमाण (ठीक) हो।"

पाठान्तर—(१) १. धा. सुरति, अ. फ. रत्त। २. धा. साथ। ३. अ. फ. म. उभय (उभे-म.)। ४. धा. सबदला, फ. ना. सब्बदल, म. उ. स. सुबद्दल। ५. धा. फ. भानु।

(२) १. धा. अ. म. उ. स. परनि, ना. द. परणि। २. धा. भज्ज, द. उ. स. भाजि, फ. भंज। ३. धा. ज्यँ, ना. सुं, म. उ. स. सौ, अ. फ. सौं। ४.धा. द. ना. उ. स. करहि, अ. फ. करहु, म. करे। ५. धा. अ. त अज्ज, मो. त काज, म. ति काज, फ. जु कज्ज। ६. धा. प्रवान।

टिप्पणी—(२) पर < पट। जिह < यथा।

[४]

दोहरा— तब[१] कल करार[२] सधो[३] समुह[४] हसि[५] नृप बुझ्झउ[६] चंद। (१)
एक[१] रवि मंडल भेदहि[२] एक ति करिसह दंदु[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) इसके अनन्तर कल (अच्छे) और कराल [दोनों प्रकार के] शकुन सब ही सम्मुख आए, और राजा (पृथ्वीराज) ने हँस कर चंद से [उनका परिणाम] पूछा। (२) [चंद ने कहा,] "एक [प्रकार का शकुन] [योद्धाओं को रण में] वीरगति दिलाकर रवि-मंडल भेदन [उपस्थित] करेगा और एक [प्रकार का शकुन] द्वन्द्व (सुख-दुःख) [उपस्थित] करेगा।"

पाठान्तर—(१) १. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी में नहीं है। २. धा. कर करार, मो. कल कराद, अ. फ. सुनि कराल, ना. म. कल करार, द. सकल रार, उ. स. कल कलार। ३. मो. समो, धा. सज्यो, अ. फ. सधउ, द. सधो, उ. स. सधौ। ४. मो. समूह। ५. मो. हसो। ६. मो. बझु (<बुझु=बुझउ), धा. बुझ्यो, अ. फ. बुझ्यउ, उ. स. बुझ्यौ।

(२) १. धा. अ. फ. म. ना. द. उ. स. इक। २. धा. अ. भिद्दिहै, फ. सिद्धिहै, म. भिदहि, द. भेद है, ना. उ. स. भेदिहै। ३. धा. अ. फ. इक करहि (करही-फ.) ग्रिह (ग्रह-फ.) दंद, द. इक करहि ग्रह आनंद, म. इक करहि आनंद, ना. इक करहि गृह नंद, उ. स. इक करिहै आनंद।

टिप्पणी—(१) करार < कराल। (२) दंदु < द्वन्द्व।

[५]

दोहरा— त्रयत[१] दिवस त्रय[२] जांमिनी[३] त्रयत[४] यांम[५] पल उन्न[६]। (१)
जोजन[१] एकइस[२] संचरिग प्रथीराज संपन्न ॥ (२)

अर्थ—(१) तीन दिवस, तीन रात्रि और तीन पहर में पल भर ऊन कम था (२) जब इक्कीस योजन (चौरासी कोस) तक [कन्नौज की दिशा में] पृथ्वीराज चल कर पहुँच चुका था।

पाठान्तर—(१) १. धा. त्रीय, अ. फ. त्रियत। २. धा. अ. फ. त्रिय। ३. म. द. जामिनीय। ४. धा. त्रयी, अ. फ. त्रियत। ५. मो. यांम, शेष में 'जाम'। ६. धा. ना. पल तिन्न, अ. फ. पल उन, म. पल ऊन, द. पल चन्न, उ. स. फल उन्न।

(२) १. धा. योजन। २. धा. ना. इक इक, अ. इत इक, फ. इक, म. उ. स. इक्कत।
टिप्पणी—(१) उन < ऊन=हीन।

[६]

दोहरा— [1]त्रयत[2] यांम बासर[3] बिसर[4] घटिग हंस तनु[5] रात। (१)
जु कछु इच्छि चच्छनु हुति[1] तैं सब दिष्षव प्रात[2]॥ (२)

अर्थ—(१) तीन पहर दिन जाने के बाद सूर्य और [तदनन्तर] रात्रि का तनु (शरीर) घट (बीत) गया। (२) [फिर] चक्षुओं को जो कुछ (जिस वस्तु की) इच्छा थी, उस प्रात को सब ने देखा।

पाठान्तर—(१) १. धा. में इस छंद के स्थान पर निम्नलिखित छंद है:—
मद्दत निसा दिस मुदित तिम उड़ त्रिप तेज बिराज।
कथित साथ कथहे कथा सुक्ख सयन प्रिथिराज॥
किन्तु यह छंद धा. १८० में है, जैसा अन्य प्रतियों में भी वह है, इसलिए धा. में यहाँ वह भूल से आया हुआ लगता है। २. म. उ. स. त्रयति। ३. उ. स. वासुर। ४. उ. स. बिसरि। ५. उ. स. तन।
(२) १. उ. स. चष्ष इच्छा हुती। २. उ. स. सोइ दिष्षौ परभात।
टिप्पणी—(१) बिसर=वि+सर (सर्=जाना)।

[७]

पद्धडी— उत्तरिय[1] चित्त[2] चिंता[3] नरेस। (१)
बत्तरहिं[1] सूर सुरलोक देस। (२)
एक[1] कहइ*[2] लिइहिं त्रर[3] इंद[4] राज। (३)
जस जीवन[1] मरन प्रथीराज[2] काज। (४)
करि[1] करहि[2] सूर असनांन[3] दांन। (५)
बल[1] भरहिं[2] सूर सुनि सुनि निसांन[3]। (६)
सरवरिअ[1] साल[2] बंछहिं[3] त भांन[4]। (७)
बधु[1] बाल जिमे[2] बंछहि[3] बिहांन[4]। (८)
गुरु[1] दइत[2] उदित मृग मुदित[3] इत्तु[4]। (९)
झलमलिग[1] तार तरु हलिग[2] पत्तु[3]। (१०)
दिप्पियतु[1] इंदु[2] किरणअनु[3] मंदु। (११)
उद्दिम्म[1] हीन जिम नृपति चंदु[3]।[4] (१२)
पुह[1] फटिग घटिग[×] सरवरि[2] सरीर। (१३)
झलकंति[1] कनक[2] दिष्ष गम नीर[3] [4] (१४)

नृप अमिग[१] जानि[२] पहु[३] पुब्ब देस । (१५)
अरि नयर[१] नीर[२] उत्तर कहेस ॥[३](१६)

अर्थ—(१) [प्रभात होता देखकर] नरेश (पृथ्वीराज) के चित्त की चिन्ता उतर गई। (२) शूर-गण [युद्ध में मर कर] सुरलोक देश (स्वर्ग) [प्राप्ति] की बातें कर रहे थे। (३) एक कह रहा था कि भले ही इन्द्र का भी राज्य होगा, तो वह उसे ले (जीत) लेगा, (४) उसका यश, जीवन, और मरण पृथ्वीराज के कार्य के लिए होगा। (५) शूर गण स्नान करके दान कर रहे थे, (६) और धौंसे की ध्वनि सुन-सुन कर शूर-गण बल भर रहे थे—उत्साहित हो रहे थे। (७) वे शर्वरी (रात्रि) के लिए शल्य रूप भानु [के उदय] की [उसी प्रकार] वाञ्छा कर रहे थे (८) जैसे बालिका (अल्पवयस्का) वधू रात्रि के अन्त की वाञ्छा करती है। (९) दैत्य-गुरु (शुक्र) उदित हो गए थे और मृगशिरा नक्षत्र अब मुदित [दिखाई पड़ रहा] था, (१०) तारक-गण झिलमल-झलमल कर उठे और तरु के पत्ते हिल उठे। (११) इंदु की किरणें मन्द दीख पड़ने लगी थीं, (१२) [वह ऐसा लगने लगा था] जैसे उद्यम-हीन नृपति हो। (१३) पौ फट गया और शर्वरी—रात—का शरीर क्षीण हो गया, (१४) [आकाश का] स्वर्ण [वर्ण] जल के मार्ग (प्रवाह) में झलकता हुआ दिखाई पड़ने लगा। (१५) नृप पृथ्वीराज [पंग—] प्रभु का देश पूर्व [दिशा में] जान कर भटक गया था, (१६) [जब कि लोगों ने] बताया कि उसके अरि (शत्रु) जयचंद का नगर निकट ही उत्तर [की ओर] था।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. में इसके पहले और है (स. का पाठ):—

चंपी सु भोमि कनवज्ज राइ। दस गुनौ सूर बर चढ़त भाइ।
उच्चर्‌यौ भट्ट कवि चंद सथ्थ। दीसई राज रवि सम समथ्थ।
जिम जिम सुनिकट कनवज्जआय। डरपहि न सूर तिम तिम दृढ़ाय।
ओपंम चंद जंपी सुराय। बल बंधि पीय संगम दिढाय।

२. मो. च्यंति (=चित्ति), अ. फ. ना. उ. स. चित्त। ३. मो. च्यंता (=चिंता), शेष में 'चिंता'।

(२) १. मो. बितरिहि, धा. बत्तरहि, अ. ना. बित्तरहिं, फ. बित्तरइ, म. बेतरहि, उ. स. बेतरहि।

(३) १. धा. ना. अ. फ. उ. स. इक, मो. एक, म. इइ। २. मो. कहि (=कहइ), धा. अ. फ. कहहिं, ना. कहै, म. उ. स. कहत। ३. मो. लेइहि (<लेइहइ), धा. अ. लेहि वर, फ. लेह वर, ना. म. द. उ. स. लेहि (लेहि—ना.) बल। ४. धा. इंदु, द. चन्द, म. उ. स. इन्द्र।

(४) १. धा. जस जिवन, अ. फ. म. उ. स. जस जियन (जीयन—म.), ना. सज जीय। २. धा. प्रिथिराज, म. प्रिथीराज।

(५) १. धा. एक, अ. फ. ना. इक, द. म. उ. स. कर। २. मो. करिहिं, शेष में 'करहिं'। ३. मो. धा. असनान, फ. सनान, ना. स्नान।

(६) १. मो. धा. बल, अ. फ. ना. म. उ. स. बर। २. मो. भरिहि, ना. भिरहिं, स. भरत। ३. धा. सुणि सुणि निसान, ना. सुनि धुनि निसान, म. सुनि रुनिसान।

(७) १. ना. श्रब्बरिय। २. अ. फ. सल्ल। ३. मो. फ. बंछि (=बंछइ)। ४. मो. भांन, धा. बि भान, अ. फ. ति भान, ना. न भान।

(८) १. धा. बुधु, ना. द. म. उ. स. मुघ, उ. मधु। २. धा. केम, ना. फ. म. उ. स. जेम, अ. जेमि। ३. मो. वंछिहि (<वंछहि), धा. मंगइ, अ. मंगहि, फ. मंगै, ना. मग्गहि, म. उ. स. इच्छत, द. इछहि। ४. धा. बिधान।

(९) १. मो. गरु। २. धा. दयत (=दयत), म. उ. स. दयत, ना. देत। ३. धा. उदित, फ. छुदित (<सुदित)। ४. अ. फ. अत्त।

(१०) धा. झिलिमिलिग, ना. झलमलीग, द. झलमिलगि। २. धा. तरतिलिग, मो. अ. ना. तरहलिग, फ. तहलग्ग। ३. फ. पत्ति, द. पान।

(११) १. धा. दिखइ, अ. दिष्षिये, फ. दिर्ष्षाय, ना. दिर्ष्षायें, द दिषयहिं, उ. स. देषियत, म. देषयइ। २. अ. फ. चंद, म. इंद्र। ३. धा. किरणांण, द. किरणीन, अ. फ. किरनीन, उ. स. ना. किरणीनि, म. जनु किरन।

(१२) १. धा. उहिने, अ. म. उ. स. ना. उद्दिमइ, फ. उद्दिमहि। २. धा. जिमि, ना. जनु। ३. धा. निपति बंदु। ४. मो. के अतिरिक्त शेष सभी में यहाँ और है (स. का पाठ):—

धरहरिग सोत सुर मंद मंद। उप्पज्यो जुध्ध आवध्ध दंद।

[यह पंक्ति स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है क्योंकि किसी भी पाठ के अनुसार यहाँ युद्ध का प्रसंग नहीं है।]

(१३) १. धा. यह, अ. म. उ. स. पहु, ना. फुह, फ. सुपहि। २. फ. सव्वरि, म. सरवर, ना. सर्वरि।

(१४) १. धा. अ. म. उ. स. ना. झलकंत। २. अ. कन, फ. कंति, ना. द. म. उ. स. कलस। ३. धा. दिष्षियगं नीर, अ. दिष्षिय मर्नार, फ. दिष्षिय ननीर, ना. दिषि मगन नीर, द. म. उ. स. दिषि गमन नीर। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. का पाठ):—

विरहीन रैनि छुट्टिमित मान। नष्षंत तोरि भूषन प्रमान।
असुवंत अंसु उस्सास आइ। विरहीन कंत चंदहु बुलाइ।
पह फट्टि धट्टि भूषनन बाल। दिसि रत्त दरसि दरसी कसाल।
भ्रिप भ्रंमि गंग सव पुब्ब देस। आरब्भ अरिन उत्तर नरेस।

[किन्तु अंतिम चरण म. उ. स. में पुनः अपने स्थान पर भी यथा अन्य प्रतियों में आया है, इसलिए उनमें पुनरावृत्ति स्पष्ट है।]

(१५) १. मो. भ्रमिग। २. म. जंमि, धा. कहिग। ३. मो. पुहु, ना. फ. पुह, उ. स. इह।

(१६) १. धा. अरिय नीर, अ. फ. अरि नैर। २. म. जानि। ३. मो. के अतिरिक्त सभी में यहाँ और है:—

बरसिंघ हिंदु कनवज्ज राज। तहं चढ्यउ सुर्ग धरि धर्म काज।

[यह पंक्ति स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है, क्योंकि इसकी कोई संगति नहीं प्रतीत होती है और यह उक्ति श्रृंखला का भी अतिक्रमण करती है।]

टिप्पणी—(१) बत्तरहिं : तुल० बतराहिं। (२) इंद < इंद्र। (५) साल < शल्य। (९) दइत < दैत्य। इत्त < अत्र। (१०) पत्त < पत्र। (१४) गम=मार्ग, रास्ता। (१५) पहु < प्रभु। (१६) नीर < नियर < निकट।

[८]

दोहरा— रवि सम्मुह तमकउ उवइ*१ हे तुहि२ मग्ग समुभ्भ३। (१)*
*भुल्लि भट्ट१ पुब्बहि२ वलउ*३ कहि४ उत्तर कनवज्ज॥ (२)*

अर्थ—[पृथ्वीराज ने चंद से कहा,] "(१) रवि [हमारे] सम्मुख तमतमाता हुआ उदित हो रहा है, और तेरा मार्ग समझा (आना) हुआ है (२) हे भट्ट, मैं भूल कर पूर्व की ओर मुड़ पड़ा, जब कि कन्नौज उत्तर में कहा जाता है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. समूह तमकू (=तमकउ) उवि (=उवइ), धा. तुम्हः समुह उहइ, तुम्हाहि संमुहि उयौ, फ. त्रमहि संमुह उयौ, उ. स. तंमुह संमुह उयौ, म. तंमू संमुह उयौ, ना. सम्मुह उदयौ। २. मो. है तुहि, धा. इह तुम्ह, अ. फ. ना. है तुहि, उ. स. इह है कछु। ३. मो. समूझ, फ. मग्ग समुज्ज, म. मग समझ, ना. मंगल सुज्झ।

(२) १. मो. भूलि भट्ट, धा. भुलि भट्टि। २. मो. पूविहि, अ. फ. ना. पूव्वह। ३. मो. (=चलउ), धा. द. चल्यो, अ. फ. चल्यौ, म. उ. स. चलिय, ना. चल्यौ। ४. मो. किहि, फ. कह।

टिप्पणी—(१) उवय < उदय। (२) वल < वल्=मुड़ना।

[९]

दोहरा—　कंचन फुल्लिग[*१] अर्क बन[२] रतन जि[३] किरन[४] प्रकार[५]। (१)*
इह कलस्स[१] जयचंद गिह[२] सुनि सुनि[३] संभरिवार[४]॥ (२)

अर्थ—[यह सुनकर चंद ने कहा,] "(१) जिसका कंचन सूर्य वर्ण का हो कर प्रफुल्लित हो रहा जिसके रत्न किरणों की भाँति हो रहे हैं, (२) ऐसा वह कलश जयचंद के गृह का है, हे साँभरव (साँमर पति), सुनो।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. फूल्या, मो. उ. फुलि (=फुलि), अ. फ. फुल्लिग, म. फूलिग, स. फूलिअ। २ फ. सम। ३. धा. रतने, अ. रतननि, फ. तरनन, थ. तरंन, उ. स. रतन। ४ धा. किरण, ना. किन्न, किरंन। ५. धा. प्रहार, उ. स. प्रसार, म. प्रसारि।

(२) १. धा. उये कलस, अ. फ. उदय कलस, ना. द. उ. स. सुवै कलस, म. सुचे कलस। २. ग्रह, द. म. उ. स. घर। ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. संभरि। ४. धा. सिंभरि वार।

टिप्पणी—(१) ज < यः।

[१०]

भुजंग प्रयात—　कहौं[१] संभरेनाथ ठाढे[२] गयंदा। (१)
सुतं दिष्षिहीं[१] रूव[२] अयरावइंदा[३]। (२)*
कहौं फेरवै[१] भूप+ आछे[२] तुरंगा। (३)
मनु[१] दिष्षियत वाय लग्गे[२] कुरंगा।×(४)
कहौं माल भूअदंड[१] ते सरोह[२] साधइ[३]।×(५)*
*कहौं पिष्षि पायक[१] बानेत[२] बांधइ[*३]।×(६)*
कहौं बिप्र ते उट्ठि ते[१] प्रात चल्ले। (७)
मनु[१] देवता सेव ता मर्ग[२] मुल्ले। (८)
कहौं यग्य याज्यंति ते राज राजा[१]। (९)
कहौं देवदेवा तं[१] निरयान साजा[२]। (१०)

कहौं तापसा[१] तप्प[२] तें[३] ध्यान लग्गे[४] । (११)
जिनें[१] देषितं[२] रूप संसार भग्गे[३] । (१२)
कहौं षोडसा राय[१] अप्पंति[२] दानं । (१३)
कहौं हेम सामान[१] प्रथमी[२] प्रमानं ।[३] (१४)
एतनें चरित्र ते गंग[१] तीरे । (१५)
सोयं[१] देषते[२] पाप नट्ठे[३] सरीरे ॥ (१६)

अर्थ—[चंद ने कहा,] (१) "हे साँभरपति (पृथ्वीराज), कहीं पर [जो] गजेन्द्र खड़े हैं, (२) वे तो ऐरावतेन्द्र के रूप (समान) दिखाई पड़ रहे हैं। (३) कहीं राजागण अच्छे घोड़ों को घुमा रहे हैं, (४) जो ऐसे लगते हैं मानो कुरंग (मृग) [भागते हुए] वायु से लग (मिल) रहे हों। (५) कहीं पर मल्ल भुज-दंडों से सरों साध रहे हैं, (६) कहीं पर पदातिक बाने बाँधे—या बाँधते—हुए दिखाई पड़ रहे हैं। (७) कहीं पर विप्रगण उठकर प्रातः काल ही चल पड़े हैं, (८) मानो देव गण सेवा से आकृष्ट होकर [स्वर्ग का] मार्ग भूल रहे हों। (९) कहीं पर राजा गण यज्ञ यजन कर रहे हैं, (१०) कहीं पर देव देव (महादेव) [के मंदिर में] नृत्य सजे हुए हैं। (११) कहीं पर तपस्वी तप के ध्यान में लगे हुए हैं, (१२) जिनको देखते ही रूप का संसार भाग जाता है। (१३) कहीं पर राजा गण षोडस दान अर्पित कर रहे हैं, (१४) कहीं पर स्वर्ण से [वे विप्रादि का] सम्मान कर रहे हैं, और कहीं पर वे पृथ्वी (भूमि) का दान प्रमाणित कर रहे हैं। (१५) गंगा के तट पर इतने चरित्र दिखाई पड़ रहे हैं, (१६) जिन्हें स्वयं देखने पर शरीर के पाप नष्ट हो जाते हैं।"

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

×चिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. इस छंद में आए हुए 'कहौं' के स्थान पर मो. में सर्वत्र 'कांहा', धा. अ. में 'कहूं', ना. में 'कहुं', फ. में 'कहौं', म. में एक स्थान पर 'कहौं' अन्यथा 'कहुं' तथा द. उ. स. में एकाध स्थान पर 'कहौं' अन्यथा 'कहूं' है। २. धा. थवड्डे, अ. फ. उठे, म. थटे, ना. ठड्डे।

(२) १. मो. सुतं दिषिइ, धा. अ. फ. मनो दिक्खियै, ना. मनुं (=मनउ) दिष्पीयै, म. उ. स. मन, (मनौ-म.) पिष्षियं। २. मो. ना. म. उ. स. रूप। ३. मो. अयरायरंदा, धा. एरावइंदा, ना. औरापयंदा, म. उ. स. अरापइंदा, फ. उठे गजंदा।

(३) १. धा. अ. फ. म. फेरही (फेरहीं-म.), ना. फेरहि ति, उ. स. फेरिहिन। २. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. अच्छे (अच्छें-म.)

(४) १. मनो दष्षियं, अ. फ. मनो दिष्षयं, ना. मनुं (=मनउ) पर्षते, म. उ. स. मनो प्रक्खसं। २. धा. द. उ. स. बद्धे, अ. फ. चढे, ना. चढि (=चढ़इ)।

(५) १. अ. फ. भूडंड। २. धा. सजि साहि, अ. फ. ते सार, ना. द. ते सरौं, म. ते सरं, उ. ते सरों, स. ते रोस। ३. धा. अ. फ. सधे, मो. साधि (=साधइ), ना. साधे, म. उ. स. साधैं। ४. म में अगले चरण के स्थान पर तथा उ. स. में यहाँ अतिरिक्त (स. का पाठ): तिकै मुष्टिकं जोर चानूर बाँधैं।

(६) १. ना. दिष्षि पाइक्क, फ. पिक्खीयै। २. मो. बानि (=बाने) त, धा. बानंत, अ. फ. बानंति (त—फ.)। ३. मो. बांधि (=बांधइ), फ. बंधे। ४. उ. स. में यहाँ और है: मनो इंद्र आहे सक बज्र साधैं।

(७) १. धा. ता उठि ते, अ. फ. ते उठि हीं, ना. म. उ. स. उठ्ठं त ते।

(८) १ धा मनो। २ धा भग्गते स्वर्ग, अ फ स्वर्ग ते भग्ग, ना सेवते भग्ग म उ स सेव त

(९) १. धा. जप्पिजै पुण्य ते राज काजं, अ. फ. जप्यते पुन्य ते राज काजं, ना. द. उ. जाप्यन्न (जापंत-ना.) ते राज काजै (काजं-ना.), म. जग जापंन त राज काजे।

(१०) १. धा, अ. ना. देव देवाल, मो. देवता देव, फ. विप्र प्रातै, म. देव देवात, उ. द देव। २. मो. निरयाल साजा, धा. ते भ्रिथ साजं, अ. ते क्रिति साज, फ. छठे जवप साजं, द. ना साजं, म. स. नृयान साजैं (साजै-म.)।

(११) १. म. उ. स. तापसी। २. धा, अ. फ. ना. ताप। ३. म. तेज। ४. म. लागे फ. र

(१२) १. धा. ना. तिनं, अ. म. उ. स. तिनं, फ. तक। २. धा. अ. फ. देखते, उ. स. (ना. म. देषिये। ३. म. भागे, फ. भग्गी।

(१३) १. धा. राइ। २. धा. फ. अप्पंत, म. ना. आपंत।

(१४) १. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. सम्मान (समान-म.)। २. धा. अ. फ. प्रिथ्वी, ना. स. प्रिथ्वी। ३. म. उ. स. में यहाँ और है (स. का पाठ) :—

कहूं बोल ही भट्ट छंदं प्रमानं। कहूं औघटं वीर संगीत गानं।
कहूं दिष्षि सिद्ध लग्गी तारि भारी। मनो नैर प्रातं कपाटं उघारी।
कहूं बाल गावैं विचित्रं सुम्यानं। रहै चित्त मोहन्न कुल्ले नृपानं।

(१५) धा. अ. फ. ना. इतं चारु चारित्त ते गंग (संवेग-धा.), म. उ. स. इतं चरि(ते गंग।

(१६) १. धा. अ. फ. तिने, ना. म. उ. स. स्वयं। २. ना. दीप्यते। ३. धा. नट्ठ।

टिप्पणी—(२) रूव < रूप। (५) भुअदंड < भुजदंड। सरो=एक प्रकार का व्यायाम का (९) पायक्क < पदातिक। (८) मग्ग < मार्ग। (१६) नट्ठ < नष्ट।

[११]

त्रिभंगी—

हरि गंगे[१]।[२] (१)

तन[१+×°] तरल तरंगे, अघ कृत[२] भंगे[३], कृत[४] चंगे। (२)
हर सिर परसंगे, जटग्ग[१] बिलंगे[२], अरधंगे[×+°]। (३)
गिरि[°×+] तुंग[×+°] वनंगे[१+×°], विहरति[२] दंगे, जल जंगे[३]। (४)
गन गंध्रव[१] छंदे, जय जय वंदे[२], सुष चंदे[४]। (५)
मति उछ गति मंदे[१], दरसत[२] नंदे[३], गत[४] दंदे[५]। (६)
वपु अपु विलसंदे, जम भूत[१] जंदे[२], कह गंदे[३]। (७)
षिति भित[*१] उर मालं, सुगति विसालं,[२] सद[३] सालं[४+]। (८)
सुर[°×] ग्गर[×°+] टट[×°+] सालं[°×+१] कुसमित[°×+२] लालं[×°+] अलिजालं[×°+]। (९)
हिम रित[१] प्रतिपालं[२] हरि चरणालं[३] बिधि बालं[+]। (१०)
दरसन[१] रसराजं,[२] जय जुग काजं, भय भाजं[+]। (११)
अंमर छरि[१] करजं, चामर वरजं[२], सुभ[३] साजं[४]। (१२)
अमल तन[१] मंजरि, निम्र° तन° जंजरि[°२], वष° षंजरि[३°४]। (१३)
करुणा° रस° रंजरि[°१], जन पुन गंजरि,[१ २] सा संकरि। (१४)
कलिमल हर[१] मज्जन[२], जन[३] हित[४] सज्जन,[५] अरि गयन (१५)

अर्थ—(१) [गंगा की स्तुति करते हुए चंद ने कहा,] "हे हरि गंगा—हरि नदी, (२) तू तरल तरंगों के तन वाली हो, तुम अघों को भग करती, और कल्याण करती हो। (३) तुम हर (शिव) के सिर के प्रसंग में [आने पर] उनकी जटाओं से विलग्न (लगी) रहीं और [शिव का] अर्धाङ्ग हो गईं। (४) उत्तुंग गिरि (हिमालय) के वनों में उल्लास पूर्वक विहार करते हुए तुम्हारा जल चलता रहा। (५) गंधर्व गण ने छंदों में, ऐ चन्द्रमुख वाली, तुम्हारा जय जय गान किया और वंदना की। (६) [मेरे जैसे] ओछी मति और मंद गति वाले को भी तुम अपने दर्शन से आनंदित और द्वंद्व से विगत करती हो। (७) जो शरीर से तुम्हारा जल बिलसते हैं, [उनके पास जब] यम के सेवक जाते हैं, वे (तुम्हारे भक्त) कहकहा लगाते (प्रसन्न होते ?) हैं। (८) तुम क्षिति मात्र की उरमाला हो, विशाल मुक्ति [रूपा] हो और सत (सतोगुण) की शाला हो। (९) तुम्हारे तट पर सरकंडे, नरकुल और साल लाल (सुन्दर) कुसुमित होते हैं और [उन पर] अलि-समूह [गुंजार करता] रहता है। (१०) तुम हिम (हेमंत) ऋतु द्वारा प्रतिपालित—हेमंत ऋतु के हिम से जल प्राप्त करती, हरि के चरणों की आर्द्रता और विधि की बालिका हो। (११) तुम्हारा दर्शन रसों (आनन्दों) का राजा है तथा जगत् के कार्यों में विजय [प्रदान करने वाला] है और समस्त भय उससे भाग जाते हैं। (१२) तुम अमरों (देवताओं) के लिए छल कारिणी (?) हो और श्रेष्ठ चामर [तुल्य] शुभ साज वाली हो। (१३) तुम निर्मलता की मंजरी (उत्पादिका) हो, नीच तनु जन्म को जर्जरित करने वाली हो, और खंजरीट के चक्षुओं वाली हो। (१४) तुम करुणा रस का रंजन करने वाली, जनों (दासों) के पुण्यों को गाँजने—पुण्यों की ढेरी लगाने—वाली, और शंकरी (कल्याण करने वाली) हो। (१५) तुम्हारा मज्जन कलियुग के पापों को हरता, जन (दासों) के हित का साज करता और शत्रुओं को नष्ट करता है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

× चिह्नित शब्द उ. स. द. में नहीं हैं।

० चिह्नित शब्द म. में नहीं हैं।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं हैं।

‡ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं हैं।

(१) १. धा. हर गंगे हर गंगे हर गंगे, अ. फ. म. हरि हरि गंगे, ना. जै जै हरि गंगे। २. ना. में यह चरण अगले चरण से मिला दिया गया है, म. उ. स. में न केवल यह चरण अगले चरण से मिला दिया गया है, वरन् तदनुरूप बाद वाले चरणों में आवश्यक मात्रा वृद्धि कर दी गई है, जिससे छन्द त्रिभंगी नहीं रह गया है।

(२) १. धा. तमि। २. मो. अघिकृत, अ. अपकृत, फ. अवकृति। ३. ना. अंगे। ४. मो. कत, शेष में 'कृत'।

(३) १. म. जटिल, २. फ. जटनि। २. फ. में यहाँ और है: दहन अनंगे।

(४) १. धा. तरंगे, ना. अ. फ. विरंगे। २. ना. विहरत। ३. धा. गंगे।

(५) १. मो. गन गंद्रव, म. उ. स. गुन गंध्रव। २. धा. जग जस चंदे। ३. म. उ. स. में यहाँ और है: क्रित अघ कंदे। ४. अ. सुष चन्दे, फ. सुष वंदे।

(६) १. धा. म. ना. मति उच गति (गत—म.) मंदे, मो. गति उच मन्दे। २. धा. दरसत, ना. दरसन, अ. फ. दरसिन। ३. म. गत दंदे, अ. फ. गति दंदे। ४. म. उ. स. में यहाँ और है: पदि वर छन्दे। ५. धा. वंदे।

(७) १. मो. जमभूत, ना. जयमूंत। २. म. उ. स. में यहाँ और है: सुरधुनि नंदे। ३. अ. फ. कहकहे।

(८)मो. षिति मिन (<मत), धा. अ. फ. छिति मनि, ना. म. षिति मुति, उ. स. षिति मति। २. म. उ.स. में यहाँ और है: चिर धुत कालं (चिरधुत कालं—उ. स.)। ३. धा. सह, अ. फ. सय। ४. म. कालं।

(९) १. मो. सरण रहित सालं, अ. फ. सुर नर दट वालं। २. धा. कुसुमति।

(१०) १. मो. धा. अ. फ. रिम, म. रिति। २. म. उ. स. में यहाँ और है: सुरनर हालं (सुर तट तालं—उ. स.)। ३. म. वरनालं, उ. स. हरनालं।

(११) १. अ. फ. दरिसन। २. म. उ. स. में यहाँ और है: सुमित साजं (सुभरित साजं—उ. स.)।

(१२) १. मो. धा. अमरच्छरि करजं, फ. म. अमर छर करजं (करिजं—म.)। २. उ. स. वरिजं। ३. म. उ. स. में यहाँ और है: बहु पारजं (वर बहु पाजं—उ. स.)। ४. धा. सुव साजं, अ. फ. सुसमाजं, द. सुगसाजं, स. सुरसाजं।

(१३) धा. अमलत्तिन, ना. अमलेतन, म. अमरु तरु। २. धा. पंजरि। ३. उ. स. में यहाँ और है बर बर वंजरि। ६. धा. पंजरि, अ. फ. यंजरि।

(१४) १. अ. फ. नंजार। २. धा. नतम पुर्न जरि, अ. फ. जनम पुर्नकरि, ना. जनम पुन्य गिरि, म. द. जनम पुनंगरि। ३. म. उ. स. में यहाँ और है: हसि हसि संकरि।

(१५) १. धा. मो. ना. हरि। २. अ. फ. मज्जन। ३. म. उ. स. में यहाँ और है: भवभ्रित भंजन। ४. ना. जिन। ५. अ. रंजन, म. संभन, फ. रंजनि।

टिप्पणी—(३) परसंग < प्रसंग। बिलंग < विलग्न। (४) जंग < गम्=चलना। गंध्रव < गंधर्व। (६) उछ < उच्छ < तुच्छ। (७) अपु < आप=जल। (११) जुग < जगत्। (१२) बरजं < वर्य। (१३) अमलत्तन < अमलत्व। निअ < नीअ < नीच।

[१२]

वसन्त तिलक— उभय[१] कनक[२] सिभं[३] म्रिग[४] कंठीव[५] लीला
पुनरपि पुहप पूजा[६] वदति रति विप्पराज[७] । (१)
उरसि[१] मुत्तिहार[२] मध्धि घंटीय सबदं[३]
मुगति सुकल[×] वल्ली[४] नंग रंग त्रिवल्ली[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "[इसके दोनों तटों पर जो] दो कनक-शंभु हैं [वे ही इसके दोनों कुच हैं], मृगों की कंठध्वनि है [वही इसकी कंठध्वनि है], पुनः इसे पुष्प की पूजा [अर्पित] करके विप्रराज (श्रेष्ठ विप्र) इससे अपनी रति (भक्ति) निवेदित करते हैं। (२) इसके उर में [जल-कणों का] मुक्ताहार है, और मध्य (कटि) में [पूजकों द्वारा किया जाने वाला] घंटी (कटि की घंटी) का शब्द है; इस प्रकार यह सुन्दर मुक्ति की वल्ली अनंग-रंग (काम-क्रीड़ा) की त्रिवल्ली है।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

(१) १. फ. उरमयं। २. धा. कमल, फ. कनिक। ३. धा. मो. सोभा, ना. सिभं, म. सिंभौं। ४. मो. हंभंग, अ. भिंग। ५. मो. कंव, धा. कंठाव, अ. म. कंठीय। ६. मो. पुनरपि सुक पूजा, धा. पुनर पुहप पूजा, अ. पुनपुहपत्रजा, फ. पुनपुहप पुज्जां, ना. पुनर पुनर पूजा। ७. मो. वदति रति विपरया, धा. ना. वंदते विप्रराज, अ. फ. वदति रति विप्रराज, म. उ. स. विप्रवे कामराजं।

(२) १. धा. उरिल, मो. ना. उरलि, अ. उरसि, फ. उरस्य, उ. स. त्रिवलिय। २. मो. गंगहर, धा. मुतियहारं, अ. फ. मुत्तिहारं, ना. गंगहारा, म. उ. स. गंगधारा। ३. मो. सिंभि घंट घंटीय सरदा, धा. सब्द घंटी ति बंबं, अ. फ. मध्य घंटीय (घट्टीय-फ.) शब्दे, म. उ. स. मध्य घंटीव सबदा। ४. मो. सुर नर मुनि मुगति सुकल ठली मिरंदीव, धा. मुकति मुकति भारं, ना. मुकति मुत्ति समीरे, अ. फ. मुकति भीरं, म. उ. स. मुगति सुमति भीरे। ५. मो. नंग रंग त्रीबल, धा. नग रंग त्रिवल्ली, अ. फ. अनंग अंग त्रिवल्ली, ना. अनंग रंग त्रिवेली, म. उ. स. नंग रंग (रंग-म.) त्रिवेनी।

टिप्पणी—(१) सिंभ < शंभु। (२) मुत्ति < मौक्तिक।

[१३]

रासा— *दिष्षइ*[*१] *नयर सहाय ति*[२] *कवियन*[३] *इयुं कहइ*[४] *। (१)*
मोहइ[*] *अथ्थि पुरंदर*[१] *इंद जु इहिं रहइ*[२] *।*[×] *(२)*
चष चंचल तनु सुध्ध[१] *ज सिध्धनु मनु हरइ*[*२] *। (३)*
कंचन कलस[१] *झकोरि ति गंगहि*[२] *जल भरइ*[*३] *॥*[४] *(४)*

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "यह नगर जैसा स्वभाव से (स्वाभाविक रूप में) दिखाई पड़ रहा है, उसके विषय में कविजन (चंद) की उक्ति इस प्रकार है कि (२) इसकी अथाइयाँ पुरंदर को मुग्ध करती हैं, और [इस कारण] इन्द्र यहीं रहता है। (३) चंचल चक्षु तथा शुद्ध तन वाली नारियाँ जो सिद्धों का भी मन हरती हैं, (४) कंचन कलशों को झकोर (हिला) कर गंगा का जल भरती हैं।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित चरण म. उ. स. में नहीं है।

(१) १. धा. फ. दिष्षिय, मो. दिषि (=दिषइ), अ. दिष्षित, ना. द. म. उ. स. दिष्यौ। २. धा. नयर सुभाइ न, अ. फ. नेर सभावित, ना. नयर सुहायौ, द. नगर सुहावौ, म. नगर सुहायौ, उ. स. नगर सुहावो। ३. मो. कवयन, ना. कवियनु। ४. धा. यूं कहइ, मो. इयु किहिहि, अ. फ. ना. यह कहै, म. उ. स. इह कहै।

(२) मो. मोहि (=मोहइ) अथि रंप रंद जू, धा. है मनु अच्छि पुरंदर, अ. फ. ना. है मनुं (मुनि-फ.) अथ्थि पुरंदर। २. मो. इंद जू इहिं रिहि (=रिहइ), धा. ना. इंद जइह रहइ (रहै-ना.), अ. फ. इंद जु (ज-फ.) इह रहै, द. इंद जुहां रहै।

(३) १. मो. चषि चंचल तन सुध, धा. ना. चष चंचल तन सुद्धि (सुद्ध-ना.), अ. फ. म. चष चंचल (चंचलु-म) तनु (तन-फ.) सुद्ध (सुध-म.)। २. धा. ति सिद्धहु मनु हरिह, मो. सु सिधां मन हरि (=हरइ), अ. फ. त सिद्धनु (सिद्धि तन-फ.) मनु हरै, उ. स. जु सिद्ध ति मन रहै, म. जु सिद्धि ति मन हरै, ना. ज सिद्ध न मनु हरै, द. जु सिध मनि मनुह रहै।

(४) १. धा. करस। २. धा. झकोलनि गंगह, अ. फ. झकोरति गंगा, ना. झकोरि गगा महि, म. उ. स. झकोर ति गंगह। ३. धा. भरहि, मो. भरि (=भरइ), अ. फ. ना. म. उ. स. भरै। ४. म. उ. स. में स्वीकृत द्वितीय चरण नहीं है। उसके स्थान पर यहाँ है : सुकवि चंद बरदाय सु ओपम तहं करे।

टिप्पणी—(१) सहाय < स-हाअ < स्व-भाव। कवियन=कविजन। (२) अथ्थि < आस्थान=अथाई।

[१४]

अर्ध नाराच— *भरंति*[१] *नीर सुंदरी। (१)*
सु[१] *मानि*[२] *पंच*[३] *अगुरी*[४] × *(२)*

कनक बंक[१] जे[२] जुरी[२] ।× (३)
ति लग्गि[१] कट्टि जेहुरी[२] ।× (४)
सुभाय[१] सोभ पिंडुरी[२] । (५)
सु[१] मैन[२] चित्त ही[२] भरी । (६)
सकोल लोल[१] जंघया । (७)
ति लीन[१] कच्छ रंभया । (८)
कटित्त[१] सोभ सेउरी । (९)
वनित्त जानि[१] केसरी । (१०)
अनेक[१] छुब्बि छत्तियां । (११)
कहंत[१] चंद रत्तियां । (१२)
दुराय[१] कुच्च उच्छरे[२] । (१३)
मनहु[१] अनंग ही भरे । (१४)
ललंति[१] हार सोहये । (१५)
विचित्त चित्त[१] मोहये । (१६)
उडत्ति[१] हत्थ अंचले[२] । (१७)
झरंति[१] मुत्ति[२] सा जले[२] । (१८)
कपोल लोल[१] उज्जले । (१९)
लहु ति मुछ[१] सिघले[२] । (२०)
अधर आरत्त[१] रत्तये । (२१)
सुकील[१] कीर[२] बंधये[२] । (२२)
सोहंत[१] दंत आलमी[२] । (२३)
कहंत बीअ[१] दालमी[२] । (२४)
गहग्ग[१] कंठ[२] नासिका । (२५)
बिनान[१] राग सासिका[२] । (२६)
सुभाय सुत्ति सोभये[२] । (२७)
दुभाय[१] गुंज लग्गये[२] । (२८)
दुराय कोय[१] लोचने । (२९)
प्रतष्ष[१] काम[२] मोचने । (३०)
अवध्धि ओट मौंहये[१] । (३१)
चलंति सोह सौंहये[१] । (३२)
ललाट[१] आड[२] लग्गये[२] । (३३)
सरद चंदु[१] लग्गये[१] । (३४)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "जो सुन्दरियाँ पानी भरती हैं, (२) उनकी हाथों की उँगलियाँ पत्तियों के समान [कोमल] हैं। (३) जो बाँके (खरे) सोने से जुड़ी (बनी) हुई हों, (४) ऐसी कटी हुई जेहुरी (?) [सदृश] वे हैं। (५) उनकी पिंडलियाँ स्वाभाविक रीति से शोभित हैं, (६) जो मदन के चित्त में भरी हुई हैं। (७) गतिशील और चंचल उनकी जाँघें हैं, (८) वे रंभा (कदली) सदृश जाँघें उनके कछोटों में लीन (छिपी) हैं। (९) उनकी कटि में जो सेउरी—शैवाल जैसी—शृंखला शोभित हो रही है, (१०) उससे ऐसा लगता है कि बनिताएँ मानो सिंहिनियाँ हों। (११) उनके वक्ष की छवि बाँकी है, (१२) जिसका कथन करते हुए चन्द रक्त (लुब्ध) हो रहा है। (१३) वस्त्रों में छिपाए हुए उनके कुच ऐसे उभरे हुए हैं, (१४) मानो [वस्त्रों में] अनंग (कामदेव) ही भरे हों। (१५) हिलते हुए उनके हार शोभा दे रहे हैं, (१६) और वे ऐसे विचित्र हैं कि चित्त को मुग्ध कर लेते हैं। (१७) जब हाथों से उनके अंचल उड़ते हैं, (१८) तो [उनके हारों के] सजल (कांतियुक्त) मोती हिलते [दिखाई पड़ते] हैं। (१९) उनके कपोल लोल और ऐसे उज्ज्वल हैं (२०) कि सिंहल के मोतियों [की आभा] को भी वे मोल लेते हैं। (२१) उनके अधर रक्त युक्त होने के कारण लाल हैं, (२२) [और उनकी नासिका उनके पास] बँधे हुए क्रीड़ा कीर के समान है। (२३) उनकी दँतावली ऐसी शोभा दे रही है (२४) कि उसे दाडिम बीज कहा जाता है। (२५) उनके कण्ठ गढ़ंग (आकर्षक) हैं और नासिका (२६) विशाल और राग की शासिका है। (२७) उनके [नासिका के] मोती स्वभाव से ही शोभित हैं, (२८) और [उनके साथ] अन्य भाव [का चमत्कार ले आने] के लिए बीच बीच में गुंजा लगे हुए हैं। (२९) वे अपने लोचनों के कार्यों का दुराव करके [कटाक्ष करती हुई] (३०) प्रत्यक्ष काम [—बाण] मोचन करती हैं। (३१) उनके वे आयुध भौंहों के ओट में रहते हैं, (३२) और वे सम्मुख चलते हुए शोभित होते हैं। (३३) उनका ललाट जिस पर आड (तिलक) लगा हुआ है, (३४) शरद के चन्द्रमा को भी लज्जित करता है।"

पाठांतर—✕ चिह्नित चरण फ. में नहीं है।

(१) १. म. भरंत।

(२) १. धा. अ. ति, द. जि, ना. जु. म. उ. स. सु। २. धा. पान। ३. अ. म. ना. पत्ति। ४. ना. अंजुरी, म. जेतुरी।

(३) १. धा बक्र। २. धा. ज। ३. अ. जेजरी, ना. जरी।

(४) १. मो. ललग, द. तिलग। २. धा. द. कड्ढि जेहरी, अ. कट्टि जेजरी, म. कढि जेहहरी, ना. कट्टि जेहरी।

(५) १. धा. अ. फ. सहज्ज, उ. स. सुभाव, द. सुभाह। २. मो. पुंडरी, धा. पंडुरी, अ. फ. ना. म. उ. स. पिंडुरी।

(६) १. धा. म. उ. स. जु, ना. द. जि, अ. फ. ति। २. मो. धा. अ. फ. ना. मीन, उ. स. मेन। ३. धा. चित्र ही, ना. चित्र हा, म. हो चित्ते।

(७) १. धा. लोज।

(८) १. म. द. सु लीन, उ. स. सु लील, ना. कि लान।

(९) १. धा. करिज्ज। २. धा. म. ना. सेसरी, अ. फ. सेषरी, द. संसरी, उ. स. संकुरी।

(१०) १. धा. मनो जुवान, अ. फ. बन्यो ति (त—अ.) जानि (जान—फ.), न. बनी ति ज्वान, म. उ. स बनी जुवान।

(११) १. म. उ. स. ना. द. अनंग।

(१२) १. धा. कहूँ सु, स. कहत।

(१३) १. धा. दुराइ। २. म. उ. स. उब्भरे, फ. छुछरे।

(१४) १. धा. उ. स. मनो, म. मनौं, अ. फ. मनौ, ना. मनुं (= मनउ)।

(१५) १. धा. हुरंत, द. उ. स. रुलंत, अ. म. रुरंत, फ. रुरंति, ना. घुरंत।

(१६) १. फ. चिचि।

(१७) १. धा. उठंति, म. उ. स. अ. फ. ना. उठंत। २. धा. अंचलं।

(१८) १. ना. द. म. उ. स. रुलंत (रुलंति—म. द. ना.)। २. अ. मुत्ति, फ. मुत्त। ३. धा. सुज्जलं अ. फ. सुज्जले, ना. संजुले, म. उ. स. संजले।

(१९) १. धा. उच्च, अ. फ. उछछ, ना. द. म. उ. स. लोल।

(२०) १. धा. लहंति मोल, अ. लहंत मोह, फ. सुहंत मोह, द. हसंत मोह, ना. लहंत माल द. म. उ. स. लहंत मोल। २. म. ना. संधले।

(२१) १. धा. ना. म. उ. अधर (अद्धर—म.) अद्ध, अ. फ. अधर रत्त, द. अधरत्त अधर, स अरद्ध अद्ध।

(२२) १. मो. सुकलि, अ. फ. सकार, म. द. सुक्रील। २. म. क्रील, अ. फ. कीड। ३. धा. अ. फ. बढ्ढये, ना. षढए।

(२३) १. अ. फ. म. उ. स. ना. सुहंत। २. मो. अलमी, अ. फ. दाडिमी, म. ना. आलिमी।

(२४) १. धा. म. उ. स. बीय। २. अ. फ. दाडिमी, म. ना. दालिमी।

(२५) १. अ. फ. महग्ग, ना. गहग्ग, म. उ. स. गहंग। २. म. कंठि।

(२६) १. म. उ. स. विनाग। २. ना. वासिका।

(२७) १. मो. सुभा मोति सोभये, धा. सुभाइ मुत्ति सोहये, स. सुभाय मुत्ति सोभये, ना. सुभाय मुत्ति सोभए, म. उ. सुभाय मुत्ति सोहये।

(२८) १. अ. दुराइ, फ. दुलाइ। २. धा. मो. अ. उ. स. गंज, फ. जंग। ३. म. उ. स. लोभये, द. लब्भये।

(२९) १. धा. दुराइ कोद।

(३०) १. मो. प्रत्यक्ष, धा. अ. फ. उ. स. प्रतख्ख, ना. प्रतिष्ष, अ. प्रतषि। २. म. कांन।

(३१) १. धा. अवद्ध ओर भौंह ही, मो. अवधि उच भृहये, अ. फ. अवद्धि (अवद्ध—फ.) उट भौंहही, द. ना. अबद्धि उट मुहही (मुंहह—ना.), म० आवध ओट भौंहए, उ. स. अवद्ध ओट भौंहए।

(३२) १. धा. चलंत। २. मो. सुह सुंहये (= सउह सउहये), धा. सोह सोहही अ. फ. सौंह सौहही, म. उ. स. सौंह सोहए (सौंहए—म.) उ. सोह सौंहई, ना षंसुंह सुंहई (= सउह सउहई)।

(३३) १. धा. अ. फ. म. लिलाट। २. धा. लाट, मो. अट, ना. अट्ठ, उ. स. राज। ३. उ. स. आडये, म. राजये।

(३४) १. ना. इंदु। २. धा. लग्गए, म. उ. स. लाजए।

टिप्पणी—(६) मैन < मदन। (७) सक्क < ष्वष्क्=चलना, जाना। (८) कच्छ < कक्षा। (९) सेउर < शैवाल। (१०) वनित्त < वनिता। (११) अनेक < आणिक्क (दे०)=वक्र, बाँकी। (२०) मुल्ल < मूल्य। (२६) विनान < विज्ञान। (३१) अवधि < आयुध।

[१५]

दोहरा— ढिल्ली[१] गुहि[२] अलकइ[*३] लता स्रवणि सुनहु[४] चहुआन। (१)
चानु[१] भुअग[२] सजह[*] चढउ[*२] कथन षम प्रमान[४]। (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "[इन सुन्दरियों की] ढीली गूथ कर लटकाई हुई अलक-लता, हे चहुआन पृथ्वीराज) सुनो, (२) ऐसी लगती है मानो कंचन के स्तंभ पर सचमुच सम्मुख ही भुजंग चढ़ा हुआ हो।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. अ. ढिल्लिय। २. मो. गह, धा. ज्ञुहि, म. उ. स. द. ग्रुह, ना. गुही। ३. धा. अ. फ. अलकै, मो. अलकि (=अलकइ), म. उ. स. अलिकी, द. अलकें। ४. मो. श्रवणि सुचह, धा. द. स्रवन सुनें, अ. फ. स्रवन सुनहि, म. ना. श्रवन सुनहु।

(२) १. मो. जानु, धा. मनु, शेष में 'जनु'। २. धा. भुवंग, म. भुर्ज। ३. मो. सहु (=सहउ < सउह < सउहं) चढु (=चढ़उ), धा. साम्हो चढे, अ. फ. ना. संमुह चढे, म. उ. स. सम्मुप चढें। ४. अ. फ. प्रदान।

[१६]

दोहरा— रहहि चंद मम कव्वु*१ करि करहि त कव्वु*२ विचारि३। (१)
जितिय नयरि सुंदरि कही१ सु तिय दिष्षिय पनिहारि२॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] "हे चंद, रहने दे, काव्य मत कर, और यदि काव्य करे तो विचार कर करे, (२) [क्योंकि] तूने जिन स्त्रियों को नगरी की सुन्दरियाँ कहा है, वे स्त्रियाँ तूने पनिहारिनें ही देखी हैं।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. रहिहि चंद मम कव्वि, धा. अ. फ. रहहि चंद मम कव्वु (कव्व—अ., फ.), ना. उ. रहहि चंद मम गव्व (गव्वु—ना., गर्ब—उ.), म. स. रहि रहि चंद म गव्व (गरब—म.)। २. मो. करिहि त कव्वि, धा. करहि त कव्व, अ. फ. कहहि न कव्वु, ना. करहि तु कवि विचारि, म. उ. स. करहि (करिहि—म.) त कवित। ३. मो. धा. विचार।

(२) १. मो. जीतीय नगरि सुंदर संयल, धा. जि तुम नयरि सुंदरि कही, अ. फ. जितैं नयर सुंदरि कही, द. ना. जे तुम्ह (तुम—ना.) नयरि सुंदरि (सुंदर—ना.) कही, म. उ. स. जे तुम नयरि सुंदरि कही। २. धा. सवि दीठी पनिहार, मो. सुतिय दिष्षिय पनिहार, अ. फ. सब दिष्षिय पनिहारि (पनिहार—फ.), द. सहि दिष्षिय पनिहारि, ना. ते सब दिषी पनिहारि, उ. स. सह दिष्षिय, म. तेस दिषय पनिहारि।

टिप्पणी—(१) कव्व < काव्य। (२) नयरि < नगरी

[१७]

दोहरा— जांहनवी तटि पिष्षियइ*१ रूव२ रासि वे३ दासि। (१)
नगर ति१ नागर२ नर घरणि रहहिं३ अवासि अवासि+४॥ (२)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "जाह्नवी के तट पर जो रूप-राशि देख रहे हो, [अवश्य ही] वे दासियाँ हैं। (२) नगर के नागर नरों की गृहणियाँ आवासों में ही रहती हैं।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है

+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

(१) १. मो. जाहनवी तटि पिषिह (< पिषियि=पिषियइ), धा. जांह नदी तट पिक्खियहि, ना. अ. जाहनवि टटि पिषियं, फ. जाहनंवि टट पिषीयं, ना. द. जाहनवी (जाह्नवी–ना.) तटि पिषिये (पिष्षियहि–ना.), म. ड. स. जाहनवी तट दिषि दरस। २. मो. ना. म. उ. स. रूप। ३. धा. वै, मो. अरु, अ. फ. ते।

(२) १. ना. अ, म. उ. स. सु। २. ना. म. उ. स. नागरि। ३. मो. रहिहि। ४. अ. ना. अवास अवास, फ. अनूपम वास।

टिप्पणी—(१) रूव <रूप।

[१८]

दोहरा—दंसन[१] दिणिअर दुलही[२] निय[३] मंडन भरतार। (१)
सुह कारणि[१] विहि निम्मयी[२] सु[३] दुह[४] कत्तरि करतार[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "वे दिनकर के लिए भी दुर्लभ दर्शन वाली हैं—दिनकर भी उन्हें नहीं देख पाता है, और अपने भर्त्तार (पति) का मंडन करने वाली (पतिव्रता) हैं। (२) वे विधाता के द्वारा सुख के लिए निर्मित हैं, और वे कर्त्तार (विधाता) की [रची हुई] दुःख की कतरनी हैं।"

पाठान्तर—(१) १. मो. दरसन, अ. दरिसन, फ. दरसन, ना. तिन दरसन, म. उ. स. ते दरसन। २. मो. दणिअर दुल्लही, धा. दिनयर दुल्लही, अ. दिनयरु दुल्लही, फ. दिनीयरु दुल्लही, म. दिनीयर दुलहि, ना. उ. दिनयर दुलहि, स. दिनयर दुलह। ३. अ. फ. निज।

(२) १. धा. सह कारन, अ. फ. सुष कारन, ना. म. उ. स. सुह कारन। २. मो. विधि निर्मयी, अ. फ. विधि भ्रिमई, ना. विधि निम्मंइ, म. विह निरमई, उ. स. विह भ्रिमई। ३. अ. फ. ना. म. में यह शब्द नहीं है। ४. मो. दह, अ. दुष, फ. दुक्ख। ५. मो. कतरि कतार, धा. कत्तिन करताफ, तरि करताफ, ना. कत्तनि करतार।

टिप्पणी—(१) दंसन < दर्शन। दिणिअर < दिनकर। दुल्लही < दुर्लभा। निय < णिअ < निज। (२) विहि < विधि। निम्म < निर्+मा। दुह < दुःख। कत्तरि < कर्त्तरी।

[१९]

दोहरा— कुवलय रवि लज्जा हरणि[१] रहि× भजि[२] भंग[३] सरणिय[४]। (१)
सरस सुधि[१] वरणन करउं[२] सु[३] दुलहि[४] तरणि* तरुणिय[५] ॥ (२)*

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "जो कुवलय–नीली कुमुदिनी–के सदृश सूर्य से लज्जा करती हैं, [किन्तु जिनके पद्मिनी होने के कारण] भ्रमर जिन की शरण में भाग रहते हैं, (२) सरस सुधि (कल्पना) के साथ [अब] उन सूर्य के लिए भी दुर्लभा तरुणियों का मैं वर्णन कर रहा हूँ।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द द. में नहीं है।

(१) १. धा. लज्जा रहन, अ. लिज्जाइ रहन, फ. लज्ज रहन, ना. लज्जाइ हरणि,

उ. लज्जा विहसि, म. स. लज्जा रहसि। २. मो. रिह्हि भंगि, ना. द. उ. स. रहि भगि। ३. अ. फ. ना. उ. स. भृंग, म. भ्रंग। ४. अ. फ. म. सरंग, उ. स. सरन्न।

(२) १. धा. सरस सुध, अ. फ. म. उ. स. सरस बुधि, द. सरस म मंथी, ना. सरसै बुधि। २. मो. चरणन (<वरणन) करु (=करउ), धा. अ. वरनन कियो, फ. वरनन कियो, ना. वर्नन कियौ, म. द. अंनन कियो, उ. स. वृंनन कियौ। ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. में यह शब्द नहीं है। ४ ना. माझ। ५. धा. तरुनं तरन्नि, मो. तरण्य (< तरणि) तरणं (=तरण्ण), म. तरुन तरंग, अ. फ. तरुणि तरंनि, (तरंन–अ.), ना. तरुणि तरंणि, उ. स. तरुन तरंन।

टिप्पणी—(१) हर < ग्रह्। भंग < भिंग < भृङ्ग। सरण < शरण। (२) सुद्धि < शुद्धि=चेतना। दुल्लह < दुर्लभा।

[२०]

भुजंग प्रयात—
पुनर जन्मेजय[*१] ते[२] जानि जग्गे[३]। (१)
रहे संकि ते सेस ते[१] पूठि[२] लग्गे।+(२)
मांग+[१] मोहन्नि लय सुत्ति[२] वानी। (३)
मनउ[*१] धार[२] आहार कउ[*३] दूध[४] तानी। (४)
तिलक नग[१] निरषि[२] जग जोति[३] जग्गी[४]। (५)
मनउ[*१] रोहिणी रूव उर[२] इंद लग्गी[३]। (६)
रूव[१] भुव देषि अवरेषि[२] जग्गउ[*३]। (७)
मनहु[*१] काम करि चाप[२] उहि अप्प[३] लग्गउ[*४]। (८)
पंगुरे अयन ते नयन[१] दीसं। (९)
विच्चि[१] जोति सारंग निवीत रीसं[२]। (१०)
तेन आटंक ते[१] स्रवन डोलं[२]। (११)
मनउ[*१] अर्क राका[२] उदइ[*३] अस्त लोलं[४]।[५](१२)
जलज जिम भाइ तह हीर लोलं[१]। (१३)
दिव्य दरसी तिहां[१] ढिल्ल[२] बोलं। (१४)
अधर आरत्तता रत्त साइ[१]। (१५)
जनउ+[१*] चंद बिंबीय[२] अकने बनाई।[३](१६)
कपोलं कलंगी[१] कलिंदीव[२] सोहं। (१७)
अलक अरोहं[१] प्रवाहे ति[२] मोहं। (१८)
सिता[१] स्वाति बिंदे य ते[२] हार भारं। (१९)
उभय ईस[१] सीसं मनउ[*२] गंग धारं। (२०)
करं कोकनद[१] ति[२] कंचु (=कञ्चु) समुभ्भ[३]। (२१)
मनहु[१] तिथ्थ राज[२] त्रिवली भल्लुभ्भ[३]। (२२)

उप्पमा पानि श्रंगव[१] लम्मं[२] । (२३)
लज्जि दुरि[१] केलि कुल[२] मम्भ[३] गम्भं[४] । (२४)
नितंबं उतंगं जुरे[१] बे गयंदं । (२५)
मम्भ[१] रिपु छीन[२] रापउ*[३] मयंदं ।[४](२६)
सक्कि[१] सोवन्न मोहन्न थंभं । (२७)
सील संनेह[१] रितु दोष भंगं[२] । (२८)
नारंगं[१] रंग[२] पींडी सु छोटी[३] । (२९)
मनउ*[१]+ कनक कुंडीतु[२] कुंकंम लोटी[३] ।[४](३०)
रोहि[१] आरोहि[२] मंजीर सद्दं[३] । (३१)
मंदु मृदु तेज[१] परकीर[२] वद्दं[३] । (३२)
एडिया[१] डंबर[२] श्रोषा[३] वाग्री[४] । (३३)
फिरै कच्च चीनीन मइ* रत्त[१] पानी । (३४)
नषं निर्मलं[१] दर्पणं[२] भाव दीसं । (३५)
समीपं सुकीयं कियं मान रीसं[१] । (३६)
श्रंबरं[१] रत्त नीलं त[२] पीतं । (३७)
मनउ*[१] पावसं[२] धनुष[३] सुरपत्ति कीतं । (३८)
सुकीया यसो जीयनं स्वामि जानं[१] । (३९)
पंग रवि साय[१] अरविंद[२] मानं ॥ (४०)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "[उनकी वेणियों को देखते हुए ऐसा लगता है, कि] मानो जो जन्मेजय थे, वे पुनः [नाग—] यज्ञ कर रहे हैं, (२) जिससे शंकित होकर जो [नाग] शेष थे, वे आकर [उन सुंदरियों की] पीठ पर लग गए हैं। (३) उनकी मोहिनी माँगें मुक्ताओं का वर्ण (रंग) लिए हुए ऐसी लगती हैं (४) मानो उन सर्पों के आहार के लिए दूध की धारा तानी—प्रवाहित की हुई—हो। (५) [उनके मस्तक पर के] तिलक के नग को देख कर जगत् की [समस्त] ज्योति [जैसे] जाग पड़ी है, (६) [वे नग ऐसे लगते हैं] मानो रूपवती रोहिणी इन्दु के उर में लगी हो। (७) भौंहों को देख और उन [की सुन्दरता] का लेखा करके रूप इस प्रकार जाग गया है (८) मानो काम के हाथों में चाप अपने आप उड़ कर लग गया हो। (९) उनके नेत्र गति में ऐसे पंगुल (अचंचल) दिखाई पड़ते हैं (१०) जैसे बीच (ओट?) में निर्वात दीप-शिखा हो। (११) उनके श्रवणों में तेज (दीप्ति) युक्त ताटंक ऐसे हिलते हैं, (१२) मानो उदित सूर्य और अस्तमित राका (पूर्ण चन्द्र) [एक साथ] हिल रहे हों। (१३) [उनके शरीर की कांति से उनमें लगे हुए] चंचल हीरे का भाव (सौन्दर्य) जलज (मुक्ता) जैसा हो जाता है। (१४) वे दिव्य दिखाई पड़ती हैं, और धीमे स्वरों में बोलती हैं। (१५) [उनके सुन्दर मुख-मंडल में] उनके आलक्तक के समान अति (अत्यंत) रक्त अधर ऐसे लगते हैं, (१६) मानो चन्द्रमा में अरुण कुन्दरू के फल बनाए गए हों। (१७) उनके कपोलों पर कलभियाँ कालिंदी के समान शोभा देती हैं, (१८) और उनके अलक (मुक) अलक अवलम्बमान होते हुए मुग्ध करते हैं (१९) श्वेत

स्वाति विंदु (मोतियों) के उनके भार हारी हैं, (२०) जो [उनके कुचों पर] ऐसे लगते हैं मानो दो ईशों (शिवों) के सिर पर गंगा की धारा हो। (२१) उनके कोकनद (कमल) सदृश करों द्वारा कच इस प्रकार सुलझाए जा रहे हैं (२२) मानो तीर्थराज में त्रिवेणी आरूढ़ हुई हो। (२३) उनके अंगों का पानी (कांति) ऐसी उपमा प्राप्त करता है कि (२४) कदली-गर्भ अपने कुल के मध्य में जा छिपा है। (२५) उनके नितंब ऐसे उत्तुंग है मानो दो गजेन्द्र आ जुटे हों (२६) और [उनके मध्य में उनकी कटि ऐसी लगती है] मानो उनके बीच में उनका शत्रु सिंह, जो [उनसे संघर्ष करते करते] क्षीण हो गया हो, रख दिया गया हो। (२७) उनके जंघे शक्र (इन्द्र) को मुग्ध करने वाले स्वर्ण-स्तंभ [जैसे] हैं, (२८) जो शीत के संनिभ (सदृश) ऋतु दोषों को नष्ट करते हैं। (२९) उनकी नारंगी के रंग की छोटी पिंडलियाँ हैं, (३०) जो ऐसी लगती हैं मानो स्वर्ण की कुंडियाँ—लुटियाँ (जल-पात्र विशेष)—कुंकुम में लिपटी हुई हों। (३१) उनके मंजीर (नूपुर) आरोह अवरोह युक्त ऐसा शब्द करते हैं (३२) मानो मन्द, मृदु तथा तीव्र स्वरों में प्रकीर (तोते) बोल रहे हों। (३३) उनकी एड़ियाँ शोणित के वर्ण की (लाल) हैं, (३४) और ऐसी लगती हैं, मानो काँच की चीनी शीशियों में लाल रंग का पानी फिर रहा हो। (३५) उनके निर्मल नख दर्पण के भाव के (सदृश) दिखाई पड़ते हैं, (३६) [और उनमें पड़ता हुआ उनके पति का प्रतिबिंब ऐसा लगता है] मानो स्वकीया ने समीप ही रोषपूर्ण मान किया हो [और पति उसके चरणों में पड़ा हो]। (३७) उनके वस्त्र लाल, नीले, और पीले हैं, (३८) और वे ऐसे लगते हैं मानो पावस में सुरपति (इन्द्र) ने धनुष [धारण] किया हो। (३९) ये स्वकीयाएँ स्वामी को इस प्रकार जीवन जैसा जानती हैं, (४०) मानो सांति (सुन्दर) अरविंद रवि को ग्रहण कर रहा हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित चरण या शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. पुनरजन्मजे, मो. अ. फ. ना. पुनरजनमेज, द. पुनरजंनमे, म. उ. स. पुनरजनमजे। २. ना. द. उ. स. ते रहे। ३. धा. जानि जग्गं, फ. जाइ जग्गो।

(२) १. अ. फ. रहे शेष (स—फ.) सेषते, द. रहे सोष से तिके, ना. संकि रहे संसते, म. उ. स. हुये सेस (सेष—म.) सेसा तिके (तिक—म., सिके—उ.)। २. अ. पुट्ठि, म. उ. स. पिट्ठ।

(३) १. मो. मांग, अ. फ. मान, द. मंग, उ. मगं मग्ग, स. मग्गु मग्ग, म. मगं। २. धा. मोहन्नि ले मुत्ति, मो. अ. फ. मोहन लय मुत्ति, उ. मोहन्न मोतीन, म. मोहनं मोह मोतीन, स. मोहन्न मोतीन, ना. मोहन्न मुत्तान।

(४) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनों, उ. स. मनों, अ. फ. म. मनो, ना. मनु (=मनउ)। २. द. सार, ना. दुद्ध। ३. धा. कहं, अ. फ. कौं, उ. स. कै, म. के, ना. कु। ४. धा. अ. फ. उ. स. दुद्ध, ना. धार।

(५) १. म. उ. स. निकक्कं नगं। २. मो. निरिषि। ३. मो. जग ज्योति, धा. ना. जगि जोति। ४. मो. जागी, म. लगी।

(६) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, (=मनउ) धा. अ. फ. म. मनौ, उ. स. मनो। २. मो. अह। ३. मो. इंद लागी, ना. इंदु लग्गी, म. इंद नगी।

(७) १. मो. रूप, अ. फ. ना. रूव, म. उ. स. रुव्वं। २. धा. मुष देखि अवरेष, अ. फ. मुव देषि अवरेषि, ना. मुव देषि अवरोषि, म. उ. स. अव्वरेषं मुखं देखि (देष—म.)। ३. धा. लग्यो, मो. जग्यु (=जग्यउ), अ. फ. दग्यो, म. ना. जग्यौ।

(८) १. धा. उ. स. मनो, ना. मनु (=मनउ), म. अ. फ. मनौ। २. धा. काम करि चंपि, मो. अ. ना. काम कर चाप, उ. स. काम चापं, फ. काम करि चाप (<चाप)। ३. मो. उडि आप, धा. अ. फ. उडि अप्पु, ना. उ. उड्डि; म. उड्डत, स. करं उड्डि। ४. मो. लग्यु (=लग्यउ). धा अ फ उ स लग्यो, ना. लग्यौ, म. लग्यौ।

(९) १. धा. पंगुरे जैन ते नैन, मो. पंगरे जेल ते नयन, द. पंगुरे नयन ते अयन, अ. फ. ना. पंगु नैन ते (तैं—ना.) अन, म. . प्रगरे नयन विचि (चिवि—म.) अपन, स. प्रगट्टे नयन विचि अयन।

(१०) १. मो. विचि (=विचइ,) ना. विचैं, द. मनौ, म. मनौं, अ. फ. बचे। २. मो. नृप सरीरं, धा. अ. फ. ना. निर्वात दीसं, द. निर्वास रीसं।

(११) मो. ते त्राटंक ते, धा. अ. फ. तेज ताटंकता, म. तिनं तेज नाटक तैं, ना. तेज त्राटंक ते। २. ना. जेलं, म. डोलं।

(१२) धा. उ. स. मनौं, अ. फ. म. मनौ, ना. मनुं (=मन)। २. मो. रा। ३. मो. उदि (=उदइ), धा. अ. फ. म. ना. उदैं। ४. म. तोलैं। ५. ना. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

कहौ चन्द कव्वी उपमा प्रमानं। मनु चन्द रथ भंग ग्रय भानु जानं।

(१३) १. धा. द. जलद जंभीर सइ मध्य जोलं, अ. फ. जलजं जभीहीर भय मध्य जोलं, ना. जलज जंभीर सै मध्य जोलं, म. उ. स. उरजं जंभीरं भई मझ जोलं।

(१४) १. अ. फ. दिव्य दरसी तहाँ, उ. स. उवं दिव्य दासी अरु, ना. दिव्य दरसीय अरु, म. उव दिष दरसी अरु। २. धा. ना. म. उ. स. ढील, फ. दिव्य।

(१५) १. मो. साहाँ, उ. स. साइ, म. साँई।

(१६) १. मो. जनु (=जनउ), अ. फ. उ. स. मनो, म. मनौं, ना. मनुं (=मनउं)। २. धा. बिय बीय, मो. वीबी, ना. द. म. उ. स. बिय बिंब, अ. बंबीय, फ. बदनीय। ३. ना. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

कहौं ओपमा दंत मोतीन कंता। मनो बीज वाला (माला—ना. म. उ. स.) जुगं सोभयंती।

(१७) १. उ. स. कलागो। २. अ. कलिंदीय, फ. कलंदीय, द. कलिं दीख।

(१८) १. मो. आरोहं। २. म. उ. स. अवाहंत।

(१९) १. ना. सता। २. धा. छुट्टैं जिते, अ. फ. बुंद जिता, ना. बिंदु यते, उ. बुदं जिसे, म. स. बुंदं जिते।

(२०) १. मो. इ। २. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ), धा. उ. स. मनो, म. अ. फ. मनौं।

(२१) १. अ. फ. करं कोल कंडू। २. धा. अ. फ. न, म. जि, ना. सु। ३. ना. समुज्जं।

(२२) १. धा. उ. स. मनो, अ. फ. म. मनौं, ना. मनुं (=मनउ)। २. धा. अ. फ. म. उ. स. तित्थराया। ना. तित्थराजाधि। ३. अ. फ. उरइझं, ना. अरुज्जं।

(२३) १. मो. उप्पमा पान अंगन, धा. उप्पम पानि अंगून, अ. फ. उप्पमा पानि अंगूनि, म. उ. स. तिनं ओपमा पानि आनंन, ना. ओप्पमा पानि आनंद। २. ना. नर्म्म।

(२४) १. धा. अ. फ. लज्जि दुर, ना. लज्जि कुल, उ. स. लाजि कुल, म. लजंत कुल। २. म. कैकि दुरि। ३. धा. म. उ. स. मझ्झ, मो. अ. फ. मधि, द. ना. मध्य। ४. ना. गर्भं।

(२५) १. अ. फ. जरे।

(२६) १. धा. मध्य, मो. मध, म. तिनं मझि, उ. स. तिनं मझ्झ, ना. मनुं (=मनउ) मध्य, अ. फ. मद्धि। २. धा. फ. ना. षीन, म. द. छीन, अ. क्षीन। ३. मो. राघु (=राषउ), धा. रक्ख्यो, अ. फ. म. उ. स. रष्यौ, ना. रिष्या। ४. म. उ. स. ना. द. में यहाँ और है (स. पाठ) :

कटी काम मापी सुकामौ करालं। मनौं काम की जोति बद्धी सरालं।

(२७) १. अ. फ. साष, उ. स. जवं व्रत्त, म. जंधं व्रत, ना. सकुं।

(२८) १. धा. सीत उसनेह, अ. फ. ना. सीत उष्नेह, म. उ. स. मनो सीत उष्नेव। २. धा. फ. म. उ. स. ना. रितु दोष रंभं, अ. रति दोष रंभं।

(२९) १ अ. फ. नारिंम, द नारिंकी उ स. बरगीनि, म नारयीनि, ना नरगज्ञ २ धा अ

फ. रंगीय, ना. रंगसु, म. उ. स. रंगीसु। ३. मो. सुछुटी (=छोटी), धा. ना. छछोरी, अ. फ. छछुटी, द. म. उ. स. छछोटी।

(३०) १. धा. अ. फ. उ. स. मनो, म. मनौ, ना. मनुं (=मनउ)। २. मो. कुंडली, द. ना. म. उ. स. कुंदीय, अ. फ. लुट्ठीय। ३. धा. कुंकुम लोरी, मो. कुंकुंम लपेटी, अ. फ. कुंकुंम लुट्टी, ना. म. उ. स. कुंकुंभ लोटी। ४. ना. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

किधौं के सरं रंग हेमें झकोरं। किधौं बढ़िय बाय मनमथ्थ जोरं।

(३१) १. उ. स. सदरोहि, म. सदरोह। २. म. अरोह, ना. द. आरोह। ३. म. उ. स. वादे, धा. सद्दे, ना. सद्दें।

(३२) १. म. मर्द मृदु तेजं। २. धा. मो. प्राकार, अ. फ. प्रकार, उ. स. परकार, फ. प्रकार, म. परंकर। ३. धा. वद्द, द. सद्दै, ना. वद्दे, म. उ. स. वादे।

(३३) १. मो. उड्डिआ, धा. फ. एडि इमआ, म. उ. स. पगं एड्डियं। २. मो. इंवरं। ३. ना. बनी श्रोणि। ४. म. बानी।

(३४) १. मो. फिरे कच चीर मिरत (=मइरत्त), धा. फिरैं कच्च रच्चीन,मुदरत्त, अ. फ. मनौ कच्च (कव्व-फ.) रचीनि में रत्त, ना. मनुं (=मनउ) कव्व जीतीनि मै रत्त, द. उ. स. मनो कच्च चीनीन में (मै-द.) रत्त, म. मनौं कच चातीत मे रत्त।

(३५) १. धा. निम्मलं, म. उ. स. भ्रिम्मलं। २. धा. दप्पनं, म. उ. स. द्रप्पनं।

(३६) १. मो. समीपा सुकीया मनु (=मन) समान रीसं। धा. समीपं समीवं कियं माननीरस, अ. फ. समीपस् सुकीयं कियं मानरोसं, ना. म. उ. स. समीपं सुपीयं (सुकीयं-ना.) कियं मान (मानु-ना.) रीसं।

(३७) १. म. उ. स. रगं (रंगं-म.) अम्मरं, द. अंमरं। २. धा. म. सु।

(३८) १. धा. उ. स. मनो, ना. मनुं (=मनउ), म. अ. फ. मनौं। २. धा. पावसे, अ. फ. पावसै। ३. ना. द. म. उ. स. धनुक।

(३९) १. मो. सुकीचा यसोज्जीयनं स्वामि जानं धा. सुकीयं समीपं नवे सामि,जानं, अ. फ. सुगीयं सुकीयं जियं स्वामि जानं, ना. द. म. उ. स. सुकीवं सुजीवं जियं स्वामि (सामि-म.) जानं।

(४०) १. धा. पंग रवि दरिस, अ. फ. पंग रव दरस, ना. द. पंग (पंगु-ना.) रवि दरस, म. रवी पंग दरस, उ. स. रवी पंग दरसं। २. म. उ. स. अरब्बिंद (अरबिंद-म.)।

टिप्पणी—(२) पूठि < पृष्ठ। (३) मुत्ति < मौक्तिक। बानी < वर्ण। (७) भुव < भ्रू < भ्रू। (१०) रीसं < सदृश। (१५) साई < साति=अतियुक्त। (१७) कलिंदी < कालिंदी। (१८) अरोह < आरूढ। (२२) अलुझ्झ < आरुद्ध। (२४) गम्भं < गर्भ। (२५) गयंद < गजेन्द्र। (२६) मयंद < मृगेन्द्र। (२७) सक्कि < शक्र। (२८) संनेह < संनिभ। (३१) सद्द < शब्द। (३३) बाणी < वर्णी। (३८) कीतं < कृत। (४०) पंग (दे०)=ग्रहण करना। साय < साइ < साति=अतिशय युक्त द्रव्य।

[२१]

दोहरा— हय गइ[१] दलु सुंदरि[२] सहरु[३] जउ[*४] बरनउं[*५] बहु बार[६]। (१)
एह[१] चरित्त कह[२] लगि कहउं[*३] सु चलहु[४] संदेह[५] दुआर[६]॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा है,] (१) "हय, गज, दल (सेना), सुंदरियों और सुभटों का यदि बहुत समय तक वर्णन करूँ (२) तो यह चरित्र कहाँ तक कहूँगा! अतः संदेह देवी के द्वार पर चलो।"

पाठान्तर * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं

(१) १. म.. गइ, शष म गय । २. ना. द.सुद्दर । ३. धा. अ. फ. सुद्दर । ४. मो. जु (=ज८ धा. जे, ना. उ. स. द. जौ, अ. फ. जं । ५. मो. वरनु (=वरनइ), ना. वनु, द. वरणुं (=वरणइ धा. वरनह । ६. धा. वारि ।

(२) १. धा. फ. वह, अ. यय, द. यहु, ना. इय, उ. स. इह । २. धा. ना. अ. फ. कव । ३. गिनैं, मो. स. कहुं (<कहुं=कहइं), अ. फ. कहै, ना. कहौं, उ. गनों । ४. मो. चलह, धा. चलउ, अ. ना. चलि । ५. उ. स. पहुपंग । ६. फ. दुवारि ।

टिप्पणी—(१) गइ < गज । सद्दर < सुभट ।

[२२]

भुजंग प्रयात—

दिष्षियं[१] जाइ[२] संदेह सोहं*[३] । (१)
अर्क[१] सा[२] कोटि संपन्न[३] देहं[४] । (२)
मंडपं[१] जास सोवन्न[२] गेहं[३] । (३)
मुत्तिश्रा छत्ति[१] दीसइ* न[२] छेहं[३] । (४)
श्रोणि सम भेष[१] बहु महिष रत्ती[२] । (५)
प्राति[१] पूजंति[२] नर नेम अत्ती[३]।[४] (६)
पंड[१] भारथ्थ उहि[२] बार सज्जी[३] । (७)
देषि[१] चहुआन किलकाल[२] गज्जी[३]।[४] (८)
वयन[१] आयास सह[२] भउ*[३] विराजं[४] । (९)
होय जय पक्ष[१] प्रथीराज[२] राजं । (१०)
दछनं[१] अंग करि नमसकारं । (११)
मध्य[१] ता नयर[२] किज्जइ*[३] विचारं ॥ (१२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने] जाकर संदेह देवी के सौध (मन्दिर) को देखा । (२) उसका देह कोटि सूर्य जैसा संपन्न था । (३) जिसका मंडप सोने के गृह का था (४) और जिसके छत्र में लगे मोतियों का अन्त नहीं दिखाई पड़ता था, (५) उसका शोणित के समान [रक्त] वेष था और वह महिष पर बहुत अनुरक्त थी । (६) प्रात के समय में मनुष्य अति नियम के साथ उसकी पूजा करते थे । (७) पांडवों को महाभारत में उसने उस बार सजाया था । (८) चहुवान (पृथ्वीराज) को देख कर वह [फिर] किलकारती हुई गर्जना कर उठी । (९) उसका यह वचन समस्त आकाश मे विराजित हुआ, (१०) "राजा पृथ्वीराज के पक्ष में विजय हो !" (११) [यह सुनकर] दक्षिण अंगों से उसे नमस्कार कर (१२) उस नगर में उस (पृथ्वीराज) ने विचरण (?) किया ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. देषीए, म. तहां दिषियं, उ. स. जहां दिष्षियै, ना. दिष्षीय । २. मो. ना. द. म. उ. स. जाइ । ३. मो. संपन्न देहं सुहं (=सोहं), म. उ. स. संदेह सेहं, ना. संदेश सोहं ।

(२) १. म. उ. स. उवं अर्क (अरक–म.) । २. ना. सी । ३. धा. संपुन्न । ४. धा. दोहं ।

(३) १. मो. मंडपा, धा. मंडपैं, अ. फ. ना. मंडपं, म. उ. स. बने मंडपं । २. मो. सोभन, ना. म. उ. स. जाइ सोवन । ३. म. गेहं, अ. फ. सोह

(४) १. धा. मुक्तियं छित्त, मो. मोत्तिआ छवि, अ. फ. मुत्तियं नछित, म. ऊ. स. तिनं मुत्तिय (मुठिर्य–म.) छत्र, ना. मुत्तियां छत्र। २. धा. ना. अ. फ. म. दीसै, मो. दिशि (=दिसइ) न, फ सोवन्न। ३. द. सोहं।

(५) १. मो. श्रोणि शम मेष, धा. श्रोन सत एक, ना. द. श्रोन सित (सत–ना.) महिष, अ. फ महिष सत एक, उ. स. रुधिं सित्त माहीष, म. रुधि सत्त महिषं। २. मो. बहू भिहिष रत्ती, धा. महि महिष रत्ती, अ. फ. बहु श्रोन रत्ती, ना. बहु भष्य रत्ती, उ. स. बहु मष्ष रत्ती (रार्ता–उ.), म. बहु महिष रंती।

(६) १. धा. अ. फ. प्रात, मो. राति, म. उ. स. तिनं प्रात। २. धा. पूजंत। ३. धा. नय अत्ता, अ. फ. नेम मत्ता, म. नेम अंती, ना. नेम अत्ती। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

भुजं डंड दुदेस देसं प्रकारं। भ्रमैं देवता इंद्र लभ्मैं न पारं।
बजै दुंदभी देव देवाल निझं। बरं उट्ठि संगीत गानं पवित्तं।
बजै सद्द झंझ सर्म जोग भिद्दं। निरत्तं न पायं तिनं कब्बि चंदं।

(७) १. म. उ. स. सुषं पंड। २. मो. विय वार, धा. विहु वार, फ. उह बार, अ. उहि बार, ना. बीय वेर, उ. स. विय वैन, म. विय बेर। ३. धा. ना. उ. स. म. साजी, अ. फ. रज्जी, ना. जाजी।

(८) १. धा. दिष्प, म. उ. स. मुषं देखि। २. धा. कलिकार, फ. किलकरि, ना. म. अ. किलकार। ३. धा. गाजी ना जागो। ४. म. ना. उ. स. में यहाँ और (स. पाठ) :—

प्रभा भान तेजं बिराजै अकारी। मनो अग्नि ज्वाला जलं मैं उजारी।
नमो तुज्झ तारं नमो मात माई। तुअं सक्ति रूपं जगत्तं बताई।
तुअं थावरं जंगमं थान थानं। तुअं सत्त पाताल सरतं सतानं।
तुअं मारुतं पानिमं अग्गि मट्टी। तुअं पंच भूतं स्वयं देह थट्टी।
सुअं स्वस्ति चंदं अनंदं अनंदी। भई मोह माया जपैं जाप बंदी।

(९) १. धा. तनु, द. म. उ. स. तवं बयन (बैन–म.), ना. तब बयन। २. धा. आकास सा, अ. फ. आकास सह, ना. द. म. उ. स. आकास भहि। ३. मो. भु (=भउ), धा. भो, अ. फ. ना. भौ, द. भा, उ. स. भयो, म. भयौ। ४. धा. विराजं, उ. स. ताजं, म. तराजं।

(१०) १. धा. अ. फ. होइ जय पत्त, उ. स. तुम होइ जय पत्त, म. तुमं होय जैपत्त, ना. हूयं जयतु तुव आज। २. धा. प्रिथिराज।

(११) १. धा. दछिछनं, फ. बंछिनं, ना. दष्षणं, म. उ. स. तबं दछिछनं। २. मो. नाभसकारं, फ. निमसकारं।

(१२) १. उ. मधुर मध्य, म. धुरं मध्य, स. धुवं मध्य। २. अ. म. नैर, फ. नैन, ना. नगर। ३. धा. म. कीजै, मो. किजि (=किजइ), अ. ना. कीनौ, फ. मनमध्य।

टिप्पणी—(१) सोह < सौध=प्रासाद, मंदिर। (४) छत्त < छत्र। छेह < छेअ < छेद (?)=अन्त, नाश। (५) श्रोणि < शोणित। रत्त < रक्त। (९) सह < सभा (?)=सब।

[२३]

भुजंग प्रयात— *लंगरी जूथ[१] तिनके[२] प्रसंगा। (१)*
दिष्षिये[१] कोटि कोटिन+[२] नंगा[३]। (२)
जिते[१] रूप के जूप×[२] जुप्पे जुआरी[३]। (३)*
उभरे[१] सोह[२] आन न[३] पारी (४)

जिते[१] साध[२] संभारि[३] षेलंत लच्छे*[४] । (५)
तिते[१] देषिए[२] भूप दानवं विपच्छे*[३] । (६)
जिते[१] छइल[२] संघट्ट[३] वेसानि[४] रत्तो । (७)
तिते दव्व षीयत्त*[१] हीनेति*[२] गत्तो । (८)
जिते[१] दासि के आसि[२] लग्गे[३] सरूपा । (९)
मनउ*[१] मीन चाहंति[२] बग मध्य कूपा[३] । (१०)
नायिका[१] देषि[२] नर नयन डुल्ले[३] । (११)
रहे[१] सुरलोक[२] सह देव भुल्ले[३] । (१२)
उचरइ*[१] वयन निसि केउ[२] जग्गे[३] । (१३)
मनउ*[१] कोकिला भाष संगीत लग्गे[२] । (१४)
ऊड१ अब्बीर सेझ्या[२] समारइ*[३] । (१५)
मनउ*[१] होय वासंत[२] भूपाल दुआरइ*[३] । (१६)
कुसुंभ सा[१] चीर सा[२] कीर सोभा । (१७)
मध्य[१] ता काम कदली[२] सु[३] गोभा[४] । (१८)
राग[१] छत्तीस[२] कंठे[३] करंती[४] । (१९)
बीन[१] बाजं ति[२] हथ्थे[३] धरंती[४] । (२०)
दिष्षि[१] अभिमान[२] मृगी ढटुकी । (२१)
मनउ*[१] मेनका[२] नृत्त तइ*[३] तार[४] चुकी । (२२)
बरगाते* भाय लग्गइ[१] ति भारे[२] । (२३)
पट्टने[४] मेह[३] दीसे[३] संवारे[४] ॥ (२४)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा] "यहाँ हम लंगरी—वस्त्रधारी साधुओं के—यूथ देखते हैं, तो उनके प्रसंग में—साथ ही—(२) कोटि-कोटि नग्न [साधुओं] को भी देखते हैं। (३) [जहाँ] रुपये के जुए में चुप्पे (चुप चाप खेलने वाले) जुआड़ी हैं, (४) [वहाँ दूसरे ऐसे भी हैं जो] सौगंध-पूर्वक कह रहे हैं कि अन्य की पारी नहीं है [उनकी है]। (५) जहाँ एक ओर साधु (सज्जन) सँभाल कर खेलते दिखाई पड़ते हैं, (६) वहाँ विपक्ष में—दूसरी ओर—दानव-भूप (दानवों के सरदार) भी दिखाई पड़ते हैं। (७) जहाँ छैलों के समूह वेश्याओं में अनुरक्त हैं, (८) वहाँ द्रव्य के क्षय होते ही उनकी गति हीन हो जाती है। (९) जहाँ सुरूपा दासियों की आशा में लोग [टकटकी लगाए हुए] हैं, (१०) [वहाँ वे ऐसे लगते हैं] मानों बगुले कूप में मछलियों को ताक रहे हों। (११) नायिकाओं को देख कर लोगों के नेत्र चंचल हो उठते हैं, (१२) और सुरलोक में समस्त देवता भी [उनको देखकर] भूल पड़ते हैं—सुधि-बुधि भूल जाते हैं। (१३) [उनसे मिलने पर] लोग कहते हैं कि [उनके विरह में] वे कई रातों से जागते रहे हैं, (१४) [और उनसे ऐसा मधुर संभाषण करते हैं मानो कोकिल संगीत भाषण करने लगा हो। (१५) [नायिकाओं की] शय्या सँवारने में इतनी अबीर उड़ती है, (१६) मानो भूपाल के द्वार पर वसन्त—फाग—हो रहा हो। (१७) [उन नायिकाओं के] कुसुंभी चीर कीर की शोभा के हैं, (१८) और [उन चीरों में लिपटा हुआ] उनका शरीर-काम-कदली-

गर्भ [के समान लगता] है। (१९) वे छत्तीस राग कंठ में [धारण ?] करती हैं, (२०) और वीणा वाद्य को हाथों में धारण करती हैं। (२१) उन्हें [गाते-बजाते ?] देख कर अभिमानिनी (!) मृगियाँ भी ठिठक जाती हैं, (२२) [वे ऐसी लगती हैं] मानों मेनका नृत्य करते हुए ताल चूक गई हो। (२३) उनका भाव (सौन्दर्य) बखानते हुए भारी कठिनता ज्ञात होती है, (२४) इस पट्टन (महानगर) के घर इस प्रकार सँवारे दीख पड़ते हैं।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. जे लंगरी जूथ, मो. लंगरी रूप, अ. फ. जिते लंगरी जूथ, ना. द. म. उ. जिते लंगरी जूप, स. जिते लंगरी रूप। २. मो. म. उ. स. ना. दिन के, धा. तिनि कै, अ. फ. जिनके।

(२) १. धा. दे दिष्षिजहि, अ. ति दिष्षियहि, फ. देति दिषीयै, म. ना. उ. स. तिते (तितौ—ना.) दिष्षियं। २. धा. म. ना. कोपीन, अ. कोटेति, फ. कोटेन। ३. ना. गंगा।

(३) १. धा. ना. जे, फ. तियै, ना. जितैं। २. धा. जूप के, अ. फ. जूप कुं चोप, ना. जूप के चोप, म. जूप को दान, उ. स. जूप कौं चोव। ३. मो. चूपे (=चुप्पे) जुआरी, धा. सु चोपवारी, द. ना. चांपै (चपि—ना.) जुवारी, म. चोपै जुआरी।

(४) १. धा. तिके उच्चरे, फ. ति, द. म. ना. तितै उच्चरे, उ. स. तितै उच्चरें। २. उ. स. सो, धा. ना. सोइ, म. सौंइ। ३. धा. अन्नोन, मो. आनन्द, ना. आनंत।

(५) १. धा. जकै, अ. फ. जिकै, ना. जिकें। २. धा. सारि, अ. साधि, फ. साधि, म. साधु। ३. मो. संभार, म. द. सम्हारि, ना. संध्यारि। ४. धा. पोलंत लष्षे, मो. पेलंत लषि (=लषे), अ. फ. पेलंत लष्यौ, म. ना. वेलंत लष्षे।

(६) १. धा. अ. फ. तिके, ना. तितै। २. धा. दिरिखये, ना. दिष्षीयें। ३. धा. भूप दानिव्व पष्षे, द. भूप दामंति पिष्षे, ना. भूप दीपंत पष्षे, म. भूष दामंत पषे, अ. फ. भूप दानव्व पिष्यौ।

(७) १. धा. अ. फ. जिके, ना. जितै। २. म. अ. फ. छेल। ३. मो. सथर, धा. सुघट्ट, अ. फ. ना. संघट्ट, द. उ. स. संघाट, म. साघाट। ४. मो. विसानि (=वइसानि), धा. अ. फ. वेस्यास्रु, ना. वेश्यानि, म. विस्यान।

(८) १. धा. अ. फ. तिके दव्व (द्रव्य—अ. फ.) के हीन, मो. तिले (< तिते) दव (दव्व) षीअन (< षीअत), ना. तितै द्रव्य हीन, म. तिते द्रव्य के हीन। २. मो. हीनि ति (=हीने ति), म. हीनंत, ना. हीनंनि।

(९) १. धा. जिके, मो. यते, ना. जितै। २. धा. पासि के रासि, मो. दासि त्रासिक, द. उ. स. दासि कै त्रास, म. दास के त्रास, ना. दासि के आसि, अ. फ. दासि कै आस। ३. मो. लागे, ना. लग्गे (< लग्गे), अ. फ. लग्गौ।

(१०) १. मो. मनु (=मनउ), धा. अ. फ. उ. स. मनो, म. मनौं, ना. मनुं (=मनउ)। २. अ. चाहुंत, फ. वाहुत्त। ३. धा. दूपा।

(११) १. मो. नायका, म. उ. स. किते नाइका (नायका—म.)। २. धा. द. म. उ. स. दिष्षि, अ. दषि। ३. मो. झूलें, धा. म. अ. ना. झुल्लं, फ. झूलें।

(१२) १. मो. रहि (=रहै), धा. एह। २. ना. म. सुरह लोक। ३. धा. मन इंदु भुल्लै, मो. सहदेव भूलि, म. द. सुर दिषि मुल्लं ना. सुर देषि मुल्लं, अ. मनु इंद्र भुल्लं, फ. मानो इंद्र भूले।

(१३) १. मो. उचरि (=उचरइ) धा. उच्चरे, अ. उच्चरहि, फ. उचरैंहि ना. उच्चरैं, म. वच उचरत,

उ स बद्ध उच्चर २ धा मा केउ ना म स काउ (< किउ=कइउ), फ. वउ। ३. फ. जग्गा।

(१४) १. म.. मनु (=मनउ), धा. उ. स. मनों, ना. मनुं (=मनउ), अ. फ. म. मनौ। २. फ. लग्गो।

(१५) १. धा. उड्डु (=वड्डु), म. उ. स. उडं उंच, अ. फ. तहां उड्डि। २. धा. सिजा, अ. फ. ना. सज्या। ३. धा. सवारे, मो. समारि (=समारइ), अ. फ. संवारे, ना. समारे, म. ससारं।

(१६) १. धा. अ. फ. उ. स. मनो, ना. मनुं (=मनउ), म. मनौ। २. मो. वसंत। ३. मो. दुआरि (=दुआरइ), धा. वारे, म. उ. स. द्वारं, अ. फ. ना. द्वारे।

(१७) १. धा. कुसुम सा, मो. कुसम सा, अ. फ. कुसुंभ सा, द. कुसुंभ से, ना. कुसुम से, म. उ. स. कुसम्म समं। २. अ. फ. ता, ना. द. म. उ. स. सं।

(१८) १. द. म. उ. स. मनौं मध्य, ना. मनुं (=मनउ) मध्य। २. धा. कंदलि। ३. उ. द. फ. सु। ४. मो. सुब्भ रंग, ना. सुगर्भा, म. सुग्रभा।

(१९) १. अ. फ. सुवं राग, म. उ. स. रसं राग। २. मो. छेतीस, शेष में 'छत्रीस' या 'छत्तीस'। ३. धा. कंठे। ४. धा. करंति, ना. करत्ती।

(२०) १. द. ना. म. उ. स. वरं वीन, अ. फ. बनै वीन। २. धा. वाजित्र, अ. फ. ना. वाजंत, म. उ. स. वाजित्र। ३. धा. हाथे। ४. धा. मो. धरंति (<धरंती)।

(२१) १. धा. दिक्खि, मो. तिने देषि, म. तिनं दिषि, ना. तिनै दिक्खि, अ. फ. सु दिक्खि। २. अ. फ. यभिमान, म. उ. स. असमान।

(२२) १. धा. उ. स. मनो, मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ), अ. फ. म. मनौं। २. मो. मेनिका, म. वैनका। ३. धा. नृत्तते, मो. नृतति (=नृततइ), अ. फ. नृत्तिते, ना. नृत्यत, म. उ. स. नृत्यते ४. मो. सार, अ. फ. म. उ. स. ताल।

(२३) १. मो. चरणंति भाव्य लागि (=लागइ), धा. वर्णंते भाइ लग्गे, अ. फ. वर्न तेइ भाइ लग्गाइ (लग्गैं~फ.), ना. बरणीत भारी लग्गं, म. वरनंत भाव सु लग्गो, उ. स. वरन्नंत भावं लग्गे। २. धा. तिसारे, उ. स. जग्ग सारे, म. सु सारे, ना. विमारे।

(२४) १. मो. सु पट्टने, धा. मट्टने, अ. फ. ति पट्टनै (पट्टनेथ-अ.), म. उ. स. इसे पट्टने। २. ना. गेह। ३. धा. अ. फ. उ. स. दिष्षे, म. देषे, ना. दिष्षै। ४. मो. सिंवारे।

टिप्पणी—(२) नंगा नग्न। (४) आनं < अन्य। (६) विपष < विपक्ष। (७) छइल < छइल्ल (दे०)। (८) दव्व < द्रव्य। षी < क्षि। (१५) सेझ्या < शय्या। (१८) गोभा < गर्भ (?)। (२०) बाज < वाद्य।

[२४]

दोहरा— अगम[१] ति हट[२] पट्टन नयर[३] रतन मोति[४] मनि धार[५]। (१)
हाटक पट धनु धातु[१] सहि[२] तुछ तुछ[३] दिष्षियइ[४]* संवार[५]* ॥ (२)

अर्थ—"(१)इस पट्टन नगर की हाटों में जो [जनाकीर्ण होने के कारण] अगम्य हैं, रत्न, मुक्ता और मणियों को धारण करने वाले हैं (२) और स्वर्ण, रेशमी वस्त्र, धन (मूल्यवान पदार्थ) और धातु— इन सब को तुच्छ जन भी सँवारे (सँवार कर धारण किए) हुए दिखाई पड़ते हैं।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. सुमग्ग, फ. सुगम, म. उ. अमग, द. अगन। २. मो. द. ति हट, शेष में केवल 'हट्ट' है। ३. ना. नगर। ४. धा. मो. को छोड़कर सभी में 'मुत्ति' है। ५. धा. मनियार, मो. मन धार, म. मनिहारि, ना. मनिधारि, शेष में 'मनि (या मणि) हार' है।

(२) १. मो. हटक पटक घन घन, ना. हाटक पट थनु थरिहु । २. धा. सहु, द. म. ना. उ. स. सह, अ. फ. रस । ३. मो. तच्छ तुच्छ, म. तुछ्छु । ४. मो. दिषीइ (=दिषियइ), धा. म. ना. उ. स. दिष्षि, फ. दिक्ख, अ. दिरिक । ५. अ. फ. म. सवारि, शेष में 'सवार' है ।

टिप्पणी—(१) नयर < नगर ।

[२५]

मोतीदाम—

अगम गति हट्ट ति[1] पट्टन मंझ[2] । (१)
मनउ* दिग हेदेवर[1] (इंदीवर?) फुलीय[2] संझ । (२)
सु नषइ*[1] मोर[2] तंबोर[3] सुढार[4] । (३)
उलिच्चत कीच त[1] होइ*[2] उगार[3] । (४)
सु मालइ पुहुप दुवे[1] दल चंपु । (५)
ति सीत[1] समीर[2] मनउ*[3] हिम कंपु । (६)
बेलू क[1] सेवंतीय[2] गूठिहि जाय[3] । (७)
सु दे* दव दासीय[1] लेहि ढहाय[2] । (८)
बुधि[1] बजाव सु बिच्चहि[2] सार । (९)
झुवंत न[1] वासर[2] सुमझइ*[3] तार[4] । (१०)
दिष्षिहि[1] नारि स कुंज[2] पटोर । (११)
मनउ*[1] दुम दष्षिन[2] लग्गइ*[3] थोर[4] । (१२)
मुत्ति[1] जराव[2] मढे बहु भाय[3] । (१३)
सु कड्ढहिं कोर[1] कहे सु न गाय[2] । (१४)
लै[1] तनसुष्ष[2] रहे अपघाइ[3] । (१५)
जिन सेझि[1] सुगंध रही[2] लपटाइ । (१६)
लहिल्लहि* तांन कतांन ति पांन । (१७)
बनी त्रिय दिष्षिय पूरण काम[1] । (१८)
जराउ जरंति[1] कनक कसंति[2] । (१९)
मनउ*[1] मय वासर[2] जामिनि अंत[3] । (२०)
कसिकसि हेम ति[1] कड्ढइ[2] तार । (२१)
उअंत दिनेस किरंन प्रसार[1] । (२२)
करिकरि[1] कंकन अंकइ* जोव*[2] । (२३)
मनंउ*[1] दुज हीन सरदइ[2] सोभ[3] । (२४)
जरे जिवं* पान[1] प्रकार ति[2] लाल । (२५)
मनउ*[1] ससि सम्मझहिं+ तार बिसाल ।×(२६)

तुलंत सु तुव्व*[१] तराजुन्ह[२] जोष[३] ।×(२७)
मनउ*[१] घन मभ्भि[२] तडित्तह ओप*[२] । (२८)
जरे जिवं* नग्ग[१] सुरंग सुघाट[२] । (२९)
सुंदरि[१] सोभ[२] कुहावति पाट[३] । (३०)
दु अंगुलि नारि[१] निरष्षहिं[२] हीर । (३१)
मनउ*[१] फल बिंबहि[२] चंपत[३] कीर । (३२)
नषन्नष चाह ति[१] सुत्तिअ अंस[२] । (३३)
मनउ*[१] भष छंडि[२] रहउ*[३] गहि हंस[४] । (३४)
दिसिदिसि[१] पूरि[२] हयग्गय भार । (३५)
पुछ्छत[१] चंद[२] गयउ*[३] दरबारि[४] ॥ (३६)

अर्थ—(१) "इस पट्टन (कन्नौज) की हाटें, जो [भीड़ के कारण] अगम्य-गति हैं, (२) ऐसी लग रही हैं मानो दिशाओं में सन्ध्या समय इंदीवर खिल गए हों। (३) मोर (श्वपच, चांडाल) जब तांबूल की ढार (पीक ?) फेंकता है, (४) तो उगाल को उलीचने से कीचड़ हो जाता है। (५) मालती पुष्प, दूर्वादल तथा चंपा [के संस्पर्श से] (६) जो शीतल समीर बहता है उससे मानो हेमंत की कँपकपी होती है। (७) वेला, सेवंती और जाही [मालिकाओं में] गूथे जा रहे हैं, (८) जिन्हें लोग [गूँथने वाली] दासियों को द्रव्य देकर [अपने गले] में डलवा रहे हैं। (९) चतुर बजाज जो साड़ियाँ बेच रहे हैं, (१०) [वे ऐसी झीनीं हैं कि] दिन में भी छूने पर उनके तार-ताने बाने—सूझते नहीं हैं। (११) नारियाँ [उन बजाजों से लेकर] कंचुकी और पटोर (लहगे के वस्त्र) देख रही हैं। (१२) [किन्तु उन्हें देखती हुई वे इसी प्रकार नहीं अघा रही हैं] मानो द्विज को दक्षिणा [कितनी भी मिल रही हो] थोड़ी लगती हो। (१३) उनके जड़ाऊ आभरणों में मोती बड़ी सुन्दरता से मढ़े (जड़े) हुए हैं, (१४) और [रत्नादि में] जो कोर किए गए हैं उन्हें कवि गा कर नहीं कह रहा है। (१५) वे तनसुख (एक प्रकार का वस्त्र) लेकर उन्हें अपना रही हैं, (१६) जिनमें शय्या की (के लिए उपयुक्त) सुगंधि लिपटी हुई है। (१७) तान, कतान और पाम (विशेष प्रकार की बनावट के वस्त्र) ले लेकर (१८) स्त्रियाँ पूर्णकाम बनी दिखाई पड़ रही हैं। (१९) वे जो जड़ाव के जड़े हुई कनकाभरण कसे (धारण किए) हुए हैं, (२०) [वे ऐसे दीप्तियुक्त हैं कि] मानो यामिनी का अन्त कर दिन [का आगमन] हुआ हो। (२१) [स्वर्णकार उनके लिए] खींच खींचकर [सोने के तार] निकाल रहे हैं, (२२) जो ऐसे लगते हैं मानो दिनेश (सूर्य) के उदय होते समय किरणों का प्रसार हो रहा हो। (२३) उनके हाथों में जो कंकण हैं, उनके अंक (आकार) [इस प्रकार] दीख रहे हैं, (२४) मानो बिना शरद के भी चन्द्रमा शोभा दे रहा हो। (२५) [उन कंकणों में] जो लाल पत्तियों के प्रकार (आकृति) के जड़े हुए हैं, (२६) [वे ऐसे लगते हैं] मानो चंद्रमा के मध्य में विशाल तारा हो। (२७) तौले जाने वाले सामान (आभरणादि) तराजुओं में जोख कर जब तौले जाते हैं (२८) तब ऐसा लगता है कि मानो घन में तडित् का ओप हुआ हो। (२९) जिस प्रकार [उनके आभरणों में] सुंदर और उभड़े हुए नग जड़े हुए हैं, (३०) [उसी प्रकार] सुन्दर पाट (रेशम के लच्छों) में वे सुंदरियाँ उन्हें गुहा भी रही हैं। (३१) नारियाँ दो उँगलियों [के बीच] में हीरों को [लेकर जब उन्हें] देखती हैं, (३२) तो [उन उँगलियों की लालिमा से लाल लगता हुआ हीरा उनके
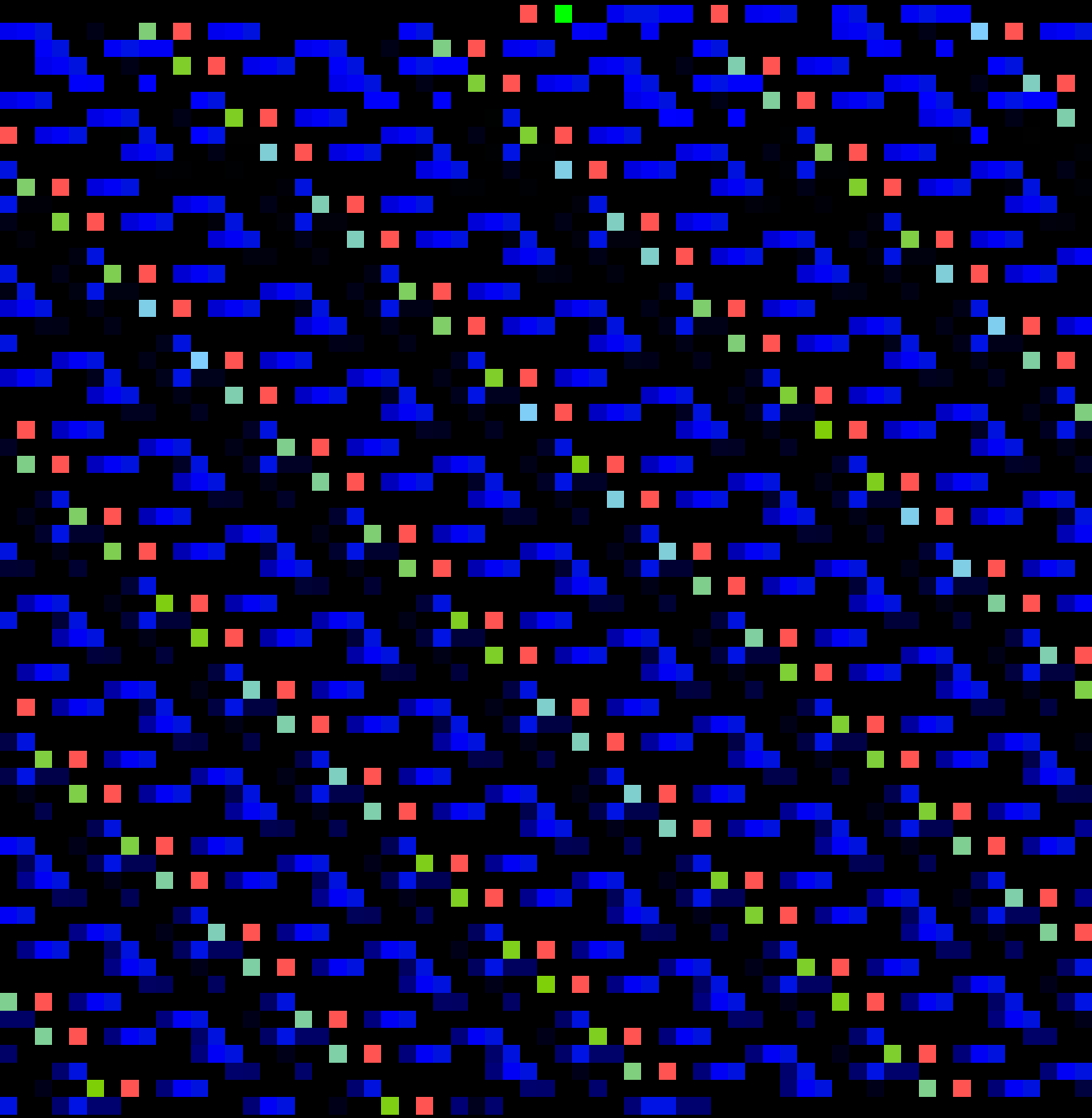
बीच ऐसा लगता है] मानो शुक बिंब फल (कुंदरू के पके फल) को [अपनी चोंचों में] दबाए हो। (३३) वे सुंदरियाँ नखों से [थाम कर] जब मोतियों के अंशु (पानी) को देखती हैं, (३४) तब ऐसा लगता है मानो हंस अपना भक्ष्य छोड़कर मोती पकड़े हुए हो। (३५) [नगर में] दिशा-दिशा में भारी हय-गज पूरित हो रहे हैं।" (३६) [इस प्रकार नगर का वर्णन कर] पूछता-पूछता चंद [जयचंद के] दरबार [की दिशा] में गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

× चिह्नित चरण म. में नहीं हैं।

(१) १. धा. म. उ. स. अमग्ग ति हट्टति, अ. फ. ना. अमग्ग ति हट्टन। २. ना. संझ।

(२) १. धा. मानो द्रिग है, मो. मनु (=मनउ) द्रिग हेदेवर, म. मनौ द्रुग देवल, ना. मनुं (=मनउं) द्रुग देवल, अ. फ. मनौ द्रुग देषत (देषित-फ.), . स. मनों द्रुग देवल। २. धा. अ. ना. फुल्लिय, फ. फूली।

(३) १. मो. नष्षि (=नष्षइ), धा. म. जु नषहि, ना. जु तुंषहि, अ. फ. सु नष्षहि। २. धा. अ. फ. ना. उ. स. मोरि। ३. धा. म. तंमोर। ४. ना. उ. स. सुठार।

(४)१. मो. उलंचंत क्वंचित, धा. उलिचि ज काचतु, धा. उलिचि ज कीच सु, अ. फ. उलीचनि की बसु (बसि-फ.), द. उलीचत कीच सु, ना. उलीचत पीक सु, म. उ. स. उलिचत कीच कि (उलीचत कीच जु-म.)। २. मो. हुइ (=होइ), म. उ. स. द. पीक, ना. चीक। ३. धा. अगार, म. औकार।

(५) १. धा. अ. सुमालय पुहप (पहुप-धा.) हुवे, फ. सुमालइ पुल हवे, मो. मलं पुहुपं दुवे, ना. द. मलया पहुप (पहुपइ-ना.) सुवे, ना. मलया पहु पट्ट सुवे, म. मलं पद पद सुवे, उ. स. मिले पह पह सुवे।

(६) १. धा. अ. फ. म. उ. स. सु सीत (सुसित-म.), ना. द. सीता। २. मो सिमीर, ना. सुमीर। ३. मो. मनु, ना. मनुं, फ. मानौं, म. मनौं, धा. अ. उ. स. मनो।

(७) १. मो. वेलूक, धा. वेलि, अ. सुवेलि, फ. सुवेल, म. उ. स. जुवेलि, ना. द. वेलस। २. मो. फ. सेवंती, ना. सेवति, स. सेमंतोय। ३. धा. गुछिय जाइ, अ. फ. गुथ्थहि जाइ, म. गुंथहि जाय, ना. गूंथहि जाइ, उ. स. गुंथहि जाइ।

(८) १. मो. जु देहि द गुहि दासीय, धा. दये द्रवु दासी, अ. फ. दिये द्रव दासिय, द. दपे द्रव दासिद्ध, म. दीपें (दिये) द्रव दाससि, उ. स. दियें द्रव दासि स, ना. दर्भ द्रवु दासि ति। २. मो. लं तहाय, धा. अ. फ. लैहि ढहाइ, ना. केहि ढहाय। ३. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

सुबुद्धि बजावत (बनावत-म.) बीन अलाप। अनेक कथा कथ ग्रंथ कलाप।

(९) १. धा. सुबुद्धि, म. उ. स. विवेक, अ. फ. सुबुद्धि, ना. बुध। २. मो. बिचिहइ, धा. बंचहि, द. अ. फ. बिच्चहि, म. वेचहि (< वेचहि), ना. पंचहि।

(१०) १. धा. छुवंति न, ना. छवंत नि, द. छुवे तन, फ. छवंत न। २. म. फ. वासुर। ३. धा. सुज्झहि, मो. सुझि (=सुझइ), उ. स. सुझइ, म. सुझहि, ना. सुच्यति। ४. ना. हार।

(११) १. धा. जु दिष्षिहिं, मो. दिषिहि, म. उ. स. ति देषहि, अ. फ. सु दिष्षिहि। २. फ. नारिय संझ, ना. नारिं न कुंज।

(१२) १. धा. मनो, मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, म. मनौ, शेष में 'मनो'। २. मो. दुहिज दक्षिन, धा. दुज देखिन, म. उ. स. दुज दष्षन, अ. दुज दछिछन, फ. दुज दछछन, द. दुज दष्षन, ना. दुज दिष्षिन। ३. मो. लागि (=लागइ), धा. अ. फ. ना. लग्गहि, म. लेहि, उ. स. लागहि। ४. धा. चोर, फ. घोर।

(१३) १. धा. जु मुत्ति, म. अ. फ. सुमुत्ति, उ. स. सुमोति। २ मो. जराव, व धा. जराउ, म. जराय, ना. उ. स. जराइ। ३. धा. मद्दे बहु भाइ, अ. फ. जरै सु सुभाइ, ना. चढ़े बहु भाइ, म. मद्दे बहु भाइ।

(१४) १. धा. सु कट्टहि कोर, मो. ना. कट्टहि कोर (कोरि-ना.). अ. फ सुकट्टहि कोर, म उ स.

जु कड्डहि कोरि। २. धा. कहे सुन गाइ, म. कहै सुनि गार, फ. कहै सुत भाइ, उ. स. कहै सुनि गाइ, अ. ना. कहे (कहै–अ.) सुन गाइ।

(१५) १. मो. वे, धा. अ. फ. जु लै (ले–धा.), ना. जि ले, म. उ. स. सु ले। २. धा. तनु सुष, द. न सुष। ३. मो. रहि (=रहै) अपणाइ, धा. अपुब्ब सुसाजु, म, उ. स. ना. रहै (रहे–ना.) अपनाइ (अपराव–म.), अ. फ. अपुब्ब सुभाइ।

(१६) १. धा. सुसेजु, अ. फ. सुसेज, ना. द. सेज, म. उ. स. जु सेज। २. धा. रहै, म. ना. रहे।

(१७) १. मो. लह लह तांन कतांन॰ति पांम, धा. लहलक तातु कतान सिपाम, अ. फ. लहै लह (लहै लहै–फ.) तान कतान सुपाम, द. लहलह तान कतान सु वाम, ना. लहलह तान कुतान ति पाम, उ. स. लहलह तान कतान ति वाम, म. लहलह तान कतान कतांम।

(१८) १. धा. त्रिने त्रिय दिख्खिय धूरन काम, म. उ. स. बनी त्रिय दीसहि काम भिराम।

(१९) १. धा. अ. फ. म. ना. जरंत, उ. स. जरंज। २. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. कसंत।

(२०) १. मो. मनु (=मनउ) धा. मनो ना. मनु (=मनउ), म. मनौ। २. म. भयौ वासुर। ३. अ. जामिनि जंत, फ. जामिनि जंति, म. उ. स. ना. जामनि अंत, द. ज्यामनि अंत।

(२१) १. धा. अ. फ. हि, ना. जि, म. उ. स. सु। २. मो. कढिइ, धा. अ. कड्ढहि, द. कड्ढति, स. काढत, ना. कड्ढहि।

(२२) १. धा. द. उवंति दिनेसहि कर्न प्रकार (पुकार–द.), मो. उअंत दिसेस किरंन प्रसार, अ. फ. उवंति (उवंत–फ.) दिनेस किरन्नि (किरन–फ.) प्रकार, ना. उवंत दिनेस किरंन प्रसार, म. उगंतहि हंस किरन्न पसार, उ. स. उगंत कि हंसइ क्रन्न प्रकार।

(२३) १. द. अ. फ. करि कर, उ. स. करे कर, ना. करकर, म. करकर। २. धा. अंकन लोभ, मो. अंकि (=अंकइ) जोभ, अ. फ. अंकहि लोभ, ना. द. अंकहि जेव, उ. स. अंकहि जेव, म. अंकइ जोव।

(२४) १. धा. मनो, मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, (=मनउ), म. अ. फ. मनौं। २. मो. सिरदइ, म. सरवइ, शेष में 'सरद्दहि'। ३. द. उ. स. सोव, म. सोव, ना. हेव।

(२५) १. मो. जरे जिव पान धा. जरे जुव नग्ग, अ. फ. जरे इमि (इम–फ.) नग्ग, ना. जरे विचि पान, द. म. उ. स. जरे निव (जव–म.) प्रान। २. म. फ. प्रकारित।

(२६) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), शेष में 'मनो' या 'मनौ' है।

(२७) १. मो. जु तुज, धा. ज तुंज, अ. फ. जु तत्त (तत्त–फ.), ना. द. उ. स. जुषंत। २. धा. तराजन। ३. मो. जोष, शेष सभी में 'जोप' है।

(२८) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, अ. फ. मनौ, (=मनउ), म. मनौं, शेष में 'मनो' है। २. म. मध्य, ना. मद्धि। ३. मो. उप (=ओप), म. आल।

(२९) १. मो. जरे जिव नंग (=नग्ग), धा. जरे जुय नग्ग, अ. जरे निवि नग्ग, म. उ. स. जरे जि नंग (=नग्ग), ना. जरे जुवि नंग, फ. जरे विंय नंग। २. धा. सुघाट, अ. फ. सुघट्ट, ना. म. सुघाट, उ. स. सुघाटि।

(३०) १. मो. सुंदरि, म. विसुंदरि, ना. ते सुंदरि, शेष सभी में 'तिसुंदरि'। २. धा. सोह। ३. धा. पुवावहि घाट, मो. कुहावति हाट, द. पुवावहि पाट, म. पुवावत पाट, ना. दुलावटि पाट अ. फ. पुहावहि पट्ट (मट्ट–फ.)।

(३१) १. मो. दो (< दु) अंगुलि नारि, धा. द. दु अंगुलि नार, अ. फ. ना. दु अंगुलि (अंगुल–फ. ना.) नारि, म. उ. स. दु अंगुलि (अगलि–म.) जोरि (नोरि–अ. फ.)। २. म. तिरष्षहि, म. तिरष्षइ।

(३२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, (=मनउ), म. मनौं शेष में 'मनो'। २. मो. व्यंवहि, शेष में 'बिंबहि' ३ धा. मंपहि, ना मंपइ, स मंपति, उ मंपहि, म मंपहि

(३३) १. धा. नषं नष चाहिति, अ. फ. नषं नष वाहहिं, म. नषं नष चाहत, द. नपं नष चाहहिं। २. मो. मोतिअ अंस, धा. मुत्तिन अंसु, अ. ना. मुत्तिय असु (अंस--ना.), फ. म. उ. स. मुत्तिय अंत।

(३४) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ), म. मनौ, अ. फ. मनौ, शेष में 'मनो'। २. फ. मपि छंड, द. मष छांडि। ३. धा. गह्यो, मो. रह (=रहउ), ना. म. रह्यौ। ४. धा. रहि हंसु, मो. गिहि हंसु, अ. ना. गहि हंसु।

(३५) १. धा. दह दिसि, द. दसे दिसि, ना. दश दिसि, फ. दिशि दिस, म. उ. स. दसौं (दसौ--म.) दिसि। २. धा. देखि, ना. द. म. उ. स. अ. पूरि फ. पूरु।

(३६) १. धा. जु दिष्षत, म. अ. फ. ना. सुपुच्छत (पुच्छति--फ.)। २. मो. देव, शेष में चंद। ३. मो. गयु (=गयउ), धा. ना. गयो, म. गयौ। ४. मो. दरबारि, शेष में 'दरबार'।

टिप्पणी---(५) मालइ < मालती। दुवेदल < दूर्वादल। चंप < चंपक। (७) गूठ < ग्रथ्। जाय < जाती। (८) दव < द्रव्य। (११) कुंज < कंचुकी। (१६) सेझ<शय्या। तान=वे वस्त्र जो ताना-पाई करके बनाए जाते हैं (?)। कतान=क्षौम। पांम=एक प्रकार की छींट। (२३) जोव=बाट देखना। (२४) पान<पर्ण। (२७) तुल्ल (< तुल्य ?)---तौले जाने वाला पदार्थ। (२९) थट < थाड=बाहर निकला हुआ, उमड़ा हुआ। कुहाव=गुथाना (तु० अवधी 'गुहाउब') (३३) अंस < अंशु। (३४) मष < मक्ष्य।

५. पृथ्वीराज का कन्नौज में प्राकट्य

[१]

मुडिल्ल— पुच्छत[१] चंद गयउ*[२] दरबारह[३] । (१)
हेजम जहाँ[१] रघुबंस[२] कुमारह[३] । (२)
जिहि हर[१] सिध्धि सदा[२] वर पायउ*[३] । (३)
सुकवि चंद[१] दिल्ली पइ[२] आयउ*[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) दरबार को पूछते-पूछते चंद [वहाँ] गया, (२) जहाँ पर हेजम (कोतवाल) रघुवंश कुमार था। (३) [चन्द ने उससे कहा,] "जिसने हर (शिव) से सिद्धि का सदैव के लिए वर प्राप्त किया है, (४) वह कवि चंद दिल्ली से आया है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. पुच्छन, मो. पुच्छँ, अ. पुछ्छत, फ. ना. पूछत, उ. पुच्छित । २. धा. गयो, मो. गयु (= गयउ), शेष में 'गयौ' या 'गयो'। ३. मो दरबारि (<दरबारइ <दरबारह), फ. दरबारा।

(२) १. मो. जाहां, धा. जह, अ. फ. जहि। २. फ. रघबंस। ३. म. कमारह।

(३) १. फ. हर, अ. उ. स. हरि । २. म. ना. पासि । ३. धा. पायो, मो. पायु (= पायउ), शेष में 'पायो' या 'पायौ'।

(४) १. धा. सो कविराज। २. मो. दिलीपइ, धा. अ. ढिल्ली हुंति, द. दिल्लीय हुत, फ. ढिल्ली हुतैं, उ. स. दिल्लिय तें, ना. दिल्ली तैं, म. दिलीसुं। ३. धा. अ. आयो, मो. आयु (= आयउ), द. म. उ. स. फ. आयौ।

टिप्पणी—(४) पइ < पाहि < पक्खे < पक्षे=से (अपादान)।

[२]

दोहरा— सुनत[१] बोल×[२] हेजमइ उठत[३] दिषित चंद हित ताहि[४] । (१)
नृप अग्गइ[१] गुदरन[२] गयउ*[३] जहाँ पंगु नृप आहि[४] ॥ [५] (२)

अर्थ—(१) यह वचन सुनकर हेजम (कोतवाल) उठा और चंद के देखते देखते उसके [कार्य के] लिए (२) नृप जयचद के आगे निवेदन करने [वहाँ] गया, जहाँ पर पंगराज (जयचन्द) था।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

× चिह्नित शब्द उ. में नहीं है।

(१) १. धा. सुनित, अ. फ. सुनिन। २. धा. अ. फ. म. उ. स. हेत, ना. वचन। ३. धा. अ. फ. हेजम उठित, म. हेजम उठिग, उ. स. हेजम उठिन, ना. हेजम उठ्यौ। ४. धा. म. उ. स. दिषत चंद बर दाय (बरदाय—म), ना. [illegible] चंद बरदाय, द. अ. फ. दिष्षि चंद बरदाइ

(२) १. मो. आगि (=आगइ), धा. अग्गे, अ. अग्गइ, फ. अगे, द. अगें, म. उ. स. आगैं, ना. आगं। २. धा. अ. म. ना. उ. स. गुदरन, फ. गुद्दर। ३. मो. गयु (=गयउ), शेष में 'गयौ' या 'गयो'। ४. मो. जाहां पंगु नृप आहि, धा. जिह पंगुर नृप आहि, द. म. उ. स. जहां पंग नृप (अप–स.) आहि (आय–म.), अ. फ. जहं पंगुरौ सु (स–फ.) राइ, ना. जहाँ पंगुरौ राय। ५ ना. में इसे निम्नलिखित दोहे का 'पाठान्तर' कहा गया है :–

सुनत हेत हेजम उठ्यौ कह्यौ चंद कवि आउ।
बलि समान बलि करन सुत इहि भौमी धान राउ॥

यह दोहा मो. में ही और पाया जाता है, किन्तु उसमें इसे पाठान्तर नहीं कहा गया है।

टिप्पणी—(१) गुदर < गुज़र (फा.)।

[२]

वस्तु— *तब सु हेजम युगम कर जोरि*[१]। (१)
*सीस नामइ**[१] *दस बार*[२]। (२)
सेत छत्र[१] *सु*[×] *निहि*[×२] *दिट्ठउ*[×३]। (३)
स कल बंध सथ्थह[१] *नयन*।[×] (४)
चकित चित्त दिसि दिसि[१] *गरिट्ठ उ**[२]।[×] (५)
तब स[१] *किअउ** *परनाम*[२] *तिहि सुनि ज राय विभ्भार*[३]। (६)
जिहि प्रसन्न सरसइ[१] *कहहि**[२] *सु इत्त*[३] *चंद दरबारि*[४]॥ (७)

अर्थ—(१) तब उस हेजम (कोतवाल) ने दोनों हाथ जोड़ कर (२) दस बार सिर झुकाया। (३) [किन्तु] श्वेत छत्र [वाले जयचन्द] ने [हेजम को प्रणाम करते हुए] नहीं देखा। (४) इसलिए उसने कल (मधुर ध्वनि) से सभा के लोगों के नेत्र अपनी ओर बाँधे (आकृष्ट किए), (५) [जिससे] दिशा-दिशा में (सभी ओर) गरिष्ठ लोग (गुरुजन, सभ्यजन) चकित-चित्त हुए। (६) तब उसने उसे (जयचन्द को) प्रणाम किया, और कहा, "हे विभार (भारी) राजा सुनिए। (७) जिस पर [लोग] सरस्वती को प्रसन्न कहते हैं, वह चन्द कवि यहाँ दरबार में [उपस्थित हुआ] है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं और उनके स्थान पर...बने हैं।

× चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. तब सुहेजम युगम कर जोर, धा. तब सुहेजम तब सुहेजम जति करि जोड़ि, अ. फ. तब सु हेजम सुजस जंपि कहिं, द. म. उ. स. तब सुहेजम तब सुहेजम जुगम कर जोरि।

(२) १. मो. नामि (=नामइ), धा. अ. फ. नाइ, द. ना. नायौ, म. उ. स. नयौ। २. ना. दरबार, उ. दरबार तिहि, स. दस बार तिहि।

(३) १. धा. फ. ना. उ. स. सेत (सेन–धा.) छत्रपति, अ. सेतुछपति, म. दिषि सेत छत्र पति। २. अ. फ. ना. नहि, स. मद, म. नद। ३. म. सुदिठौ, फ. सट्ठिउ, ना. सुदीठौ।

(४) १. धा. संघन, द. सथ, ना. सब (< सथ), म. उ. स. सथ्थइ।

(५) १ ना. म. उ. स चकित चित्त बुल. द चकित चित्त बुलें सु। २ मो. गरठु (=गरिठउ), शेष में गरिठो या गरिठों'

(६) १. धा अ. म. ना. द. स. सु । २. मो. कीअ परनाम, (=किअउ परनाम), म. कियौ परन्मा अ. फ. ना. कियौ परिणाम, उ. कियौ परिनाम । ३. धा. वह करि तिहि प्रतिहार, अ. फ. यह कहि ति (हि–फ.) प्रतिहारु, ना. म. वरु (वर–म.) करि राय प्रहार, उ. स. वरु करि राय प्रतिहार, द. यह करि राइ प्रतिहार ।

(७) १. मो. सरस, अ. ना. सरसै, म. उ. स. सरसति । २. मो. कहिहि, अ. कहहि, शेष में 'कहै' । ३. मो. इत्त, शेष में 'कवि' । ४. द. दरवारि, शेष में 'दरवार' ।

टिप्पणी—(१) जुगम < युग्म । (३) सथ्थ < साथ=प्राणि - समूह, सभा । (५) गरिठ्ठ < गरिष्ठ । (७) सरसइ < सरस्वती ।

[४]

मुडिल्ल—

आयस[1] भयु[2] गुनिअन तन[3] चाहउ[4] । (१)
तिन परणाम[1] किअउ[2] सिर[3] नायउ[4] । (२)*
किधउं[1] डिंभ[2] कवि कवि[3] परमांनी[4] । (३)*
सरसइ बह[1] उच्चारहु[2] जांनी[3] ॥ (४)*

अर्थ—(१) [जयचंद का] आदेश हुआ और गुणीजन की ओर उसने देखा । (२) उन्होंने [जयचंद को] प्रणाम किया और सिर झुकाया । (३) [जयचंद ने कहा,] "देखो, [चंद] डिंभ (बाल) कवि है, या प्रमाणी कवि है । (४) सरस्वती का बल उच्चार (काव्योच्चार) से ज्ञात होता है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. आइस । २. धा. जो, (< भो), मो. भयु (=भयउ !), अ. फ. भय, म. उ. स. भौ, ना. द. भयौ । ३. मो. त । ४. मो. चाहु (=चाहउ), धा. द. उ. स. चाह्यो, ना. म. चाह्यौ, अ. चाहउ, फ. चाहिउ ।

(२) १. मो. धा. तीन प्रनाम (प्रणाम–मो.), स. तिन परमांन, अ. फ. ना. तिन परिणाम (परिनाम–फ.) । २. धा. करिउ, मो. कीअ, अ. फ. म. ना. उ. स. कियौ । ३. द. सिरि । ४. मो. नायु (=नायउ), धा. नायो, अ. नायउ, फ. ना. नायौ, म. नाह्यौ ।

(३) मो. किधु (=किधउं), धा. म. अ. फ. किधौं, उ. स. कैधौं, म. ना. कैधुं । २. मो. डंभ, शेष में 'डिंभ' । ३. धा. कवि कव्व, फ. कवि कव्वि, अ. कवि कछुछु, ना. म. उ. स. कवी । ४. धा. अ. फ. प्रमानिय, म. परिवांनी, ना. उ. स. परवानी ।

(४) १. मो. सरसि (=सरसइ) वह, धा. सरसइ कब, अ. फ. सरसै वरु, ना. सरस बयन, उ. स. सरसें वर, म. सरवे वर । २. धा. उच्चारहि, ना. उच्चहु । ३. धा. अ. फ. जानिय, द. ना. म. उ. स. बानी ।

टिप्पणी—(१) आयस < आदेश । गुनिअन < गुणिन्+जन । (४) सरसइ < सरस्वती ।

[५]

मुडिल्ल—

ति[1] कवि आवि[2] कवि पह संपत्ते[3] । (१)
गुन[1] व्याकरन कहि[2] रस वत्ते[3] । (२)

थकि प्रवाह बचन मुख मत्ती[१] । (३)
सुर नर श्रवन मंडि रहि वत्ती[१] ॥ (४)

अर्थ—(१) वे कवि आकर कवि चंद के पास पहुँचे। (२) उन्होंने गुण, व्याकरण और रस की वार्त्ताएँ कहीं (कीं)। (३) उनके मुख के वचनों से मत्त होकर [गंगा का] प्रवाह शिथिल हो रहा (४) और देवताओं तथा मनुष्यों ने उस वार्त्ता में अपने श्रवण लगा रक्खे।

पाठान्तर—(१) १. ना. ते। २. मो. आवि, शेष में 'आइ' (आय-म.)। ३. धा. कवि पहि (< पहि) संपत्ते, उ. कवि सहि संपत्ते, अ. कवि पहि संपत्ते, फ. कवि हेजम पत्ते, ना. कवि पहि संपत्ते, म. कवि पैं संपत्ते।

(२) १. म. उ. स. गुर। २. मो. अ. कहि, धा. करहि, म. कहौ, द. ना. कहै, फ. कही। ३. धा. रस रत्तउ, ना. अ. फ. रस रत्ते, म. मन मत्ते।

(३) १. धा. अ. फ. ना. गंगा मुख मत्ती (मुख मत्ते-अ. फ. ना.), मो. वचन मुख मत्ती, म. उ. स गंगा सैंरसत्ती।

(४) १. धा. रहि वंती, म. उ. रहै वत्ती, अ. फ. रहि वत्ते, ना. रहे वत्ते।

टिप्पणी—(१) संपत्त < संप्राप्त। (२) वत्त < वार्ता। (४) वत्ती < वार्त्ता।

[६]

मुडिल्ल—
मुख परसपर देखत भयउ[*१] रत्ते ।‡ (१)
गुन[१] उच्चार करउ[*२] सरसत्ते[३] ।‡ (२)
गुन उच्चार चारु[१] तिनि[२] किंनउ[३] । (३)
जानुं[१] भुष्षइ[२] साकर[३] पय[४] लिन्नउ[५] ॥ (४)

अर्थ—(१) [जयचन्द्र के कवियों और चन्द के] मुख परस्पर दर्शन से रक्त [वर्ण के] हो गए—उन पर लालिमा आ गई। (२) उन्होंने सरस्वती का गुणगान किया। (३) उन्होंने [इस प्रकार रुचिपूर्वक] चारु गुणगान किया कि (४) मानो भूखे ने शक्कर और दूध ग्रहण किया हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नितचरण धा. अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. मुष परसवर देषत भयु (=भयउ), ना. मुख परस्पर दिष भय, द. उ. स. मुख परसत परसपर, म. मुषसंपर परसंपर।

(२) १. ना. द. उ. स. मनु (=मनउ), म. मनौं। २. मो. करु (=करउ), द. म. उ. स. कर्‌यौ, ना. कह्‌यौ। ३. म. नर सत्ते, ना. सरते।

(३) १. मो. चार, धा. चारि, म. सार। २. धा. तव, ना. द. स. तिन, उ. स. तन। ३. धा. किन्हो, मो. किनु (=किनउ), अ. किनउ, ना. म. उ. स. कीनौ, द. किनो, फ. कीनउ।

(४) १. धा. जउ, मो. जानुं, ना. द. अ. म. उ. स. जनु, फ. जनौ। २. धा. ना. भूषे, मो. भूषे (< भूखि=भूषइ), अ. भुष्षइ, फ. भूष, स. भूषय, द. भुखे। ३. धा. म. उ. स सक्कर। ४ मो पकति।

५. मो. लीनु (=लीनउ), धा. दिन्हो, अ. दिन्नउ, फ. दीनउ, ना. म. दीनौ, उ. स. दीनो, द. दिनो।

टिप्पणी—(१) रत्त < रक्त। (३) सरसत्ते < सरस्वती। (४) साकर < शर्करा।

[७]

साटिका— अंभोरुह[१] माणंद (मानन ?) जोय[२] लरिसो[३] (लुरिसो ?) डाडिम्म[४] लो बीयलो[५]। (१)
लोयणो[१] चलु चालु[२] चालु×[३] यारा[४] (अधरा ?) बिंबाउ[५] कीयग्गहे[६]। (२)
केसीरी[१] के साय[२] वैनिय रसो[३] चकी मिगी[४] नागवी[५]। (३)
इंदो[१] मध्य[२] सु विद्यमान[३] विहतो[४] एरस्स[५] भाषा छवो[६]॥ (४)

अर्थ—[जयचन्द्र के गुणियों ने कहा,] "जिसके अंभोरुह (कमल) सदृश आनन (१) पर ज्योति लोटती रहती है, [जिसके दाँत] दाड़िम के बीज के सदृश हैं, (२) जिसके चंचल लोचन चारु हैं और तथा बिंबकत्व ग्रहण किए हुए अधर भी चारु हैं, (३) जो अधिक केशों वाली है, और जिसके प्रस्तुत किए हुए उत्तम वैणिक (वीणा से उत्पन्न) रस से मृगियाँ और नागिनें चकित हो जाती हैं, (४) [उसी सरस्वती ने] इंदु के मध्य विद्यमान [अमृत तुल्य] छः भाषाओं को विहृत (अलग) करके [इस पृथीतल पर] एरित किया है (प्राप्त कराया है)।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द फ. ना. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. अंबोरुह। २. धा. ना. जोइ, म. उ. स. लोइ। ३. ना. लरिसौ, उ. स. लरिसी। ४. धा. अ. फ. ना. दाडिम्म, म. दारिम, उ. स. दाडिम्म। ५. मो. में 'बीयलो' का 'बी' मात्र है।

(२) १. धा. लोयदे, अ. फ. लोयंनु, ना. द. म. उ. स. लोयन्ने। २. म. फ. ना. चल। ३. धा. आरु, म. चारु। ४. धा. कलऊं, अ. फ. आरा, द. उ. स. यवरं, ना. यवरा, म. यार। ५. मो. ब्यबाउ (=बिंबाउ), धा. म. बिंबाय, ना. बिंबापि, द. अ. फ. उ. स. बिंबाइ (बिंबादि—अ. फ.)। ६. धा. म. कीयो गह्यो, उ. स. ना. कीयौ गह्यौ, अ. फ. कीयो गह्यो, द. कीयो गह्यो।

(३) १. अ. फ. कश्मीरी, द. किसरी, फ. कासीरी। २. धा. केसाहि, ना. केशाह, फ. कोसाइ। ३. मो. वेणी सीसो, धा. वेयन रसो, द. वीनी रिसो, अ. फ. ना. वीना रसो। ४. मो. चकी मिकी, धा. चिकि सकी, अ. फ. ना. चकी मृगी (मृगा—ना.), द. चिकी मिगी, उ. स. चीकी मिकी, म. चिं॰॰। ५. फ. नागदी।

(४) १. द. यंदो। २. अ. फ. म. ना. मद्धि। ३. अ. फ. विद्दिमान, ना. विधिमान, उ. स. इंदमान। ४. मो. विह्न, धा. विह्ना, म. अ. फ. विह्नो, ना. विहिनो, उ. स. विहितो। ५. धा. ए षछ, मो. एकठ। ६. मो. भाषा सठे, धा. भासा छंदो, फ. भाषाच्छवो, द. उ. स. भासा छठौ, म. भाषा छठो।

टिप्पणी—(१) डाडिम्म < दाडिम। लुर < लुठ्। (२) ब्यंब < बिंब। (३) केसी < केशी। साय < साति=उत्तम। वैनिय < वैणिक=वीणा से उत्पन्न। मिगी < मृगी। (४) एर्=प्राप्त करना, प्राप्त कराना।

[८]

मुडिल्ल— कबि देपत[१] कबि कउ*[२] मन[३] रत्तो[४]। (१)
न्याय[१] नयर[२] कनवज्जि[३] पहुत्तो[४]। (२)
कबि अग्गहि[१] अंगीकित[२] हीनउ*[३] ।†(३)
हेम बिना जिम°[१] भयउ*° नग° दीनउ*°[२] ॥ (४)

अर्थ—(१) [जयचन्द के] कवियों को देखकर कवि (चन्द) का मन रक्त (प्रसन्न या अनुरक्त) हुआ, (२) [उसने मन में कहा,] "मैं कन्नौज पहुँचा यह उचित ही हुआ। (३) कवियों के आगे [कवि] अंगीकृत होने के अभाव में [मेरी वही दशा होती] (४) जैसी स्वर्ण के अभाव में दीन हुए नग की होती है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

(१) १. ना. दिष्षत, स. उ. स. पिष्षत। २. मो. कु (=कउ), धा. उ. स. को, म. ना. अ. फ. कौ। ३. ना. मनु। ४. मो. रत्त (=रत्तो), फ. म. ना. उ. स. रत्तौ।

(२) १. धा. न्याइ। २. मो. नयन (< नयर), धा. नयरि, म. नगर। ३. मो. कनजि, स. कवंज, शेष में 'कनवज्ज'। ४. मो. पहुतो, धा. सपुत्तउ, अ. फ. संपत्तउ, फ. म. ना. उ. स. संपत्तौ (संपतौ—म.)।

(३) १. धा. अंगइ, म. ना. उ. स. एकह। २. मो. अंगीक्रते, म. अंगीक्रति। ३. मो. हीनु (=हीनउ), धा. हीना, म. उ. स. कीनो, ना. कीनो।

(४) १. धा. हेम विभा, म. उ. स. हेम सिंवासन, ना. हेम सिंह वानी। २. मो. भयु (=भयउ) नग दीनु (=दीनउ), म. उ. स. आसन दीनौ, ना. गुन दीनौ।

टिप्पणी—(१) रत्त < रक्त। (२) नयर < नगर।

[६]

मुडिल—	*अहो चंद वरदाइ[१] कहावहु[२]। (१)*
	कनवज्जह[१] दिष्षन नृप[०२] आवहु[३]।[४] (२)
	*जउ[*] सरसइ[*१] बल जानहु[२] रंचउ[*३]। (३)*
	*तउ[*] [१]अदिट्ठ[०२] बरनउ[*३] नृप संचउ[*४]॥[५] (४)*

अर्थ—(१) [जयचन्द के कवियों ने कहा,] "हे चन्द, तुम बरदायी कहाते हो, (२) और कन्नौज के राजा (जयचन्द) को देखने आ रहे हो। (३) [अतः] यदि सरस्वती (वाणी) के बल से कुछ भी जानते हो, (४) तो बिना देखे नृप (जयचन्द) का सच्चा वर्णन करो।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. वरदायि, म. ना. वरदाय। २. धा. कहूं हूं, फ. कहावह।

(२) १. धा. फ. कनवज्जहि। २. मो. दिषिन नृप, अ. न्रिप दष्षिन, फ. न्रिप दक्षिन, म. उ. स. न्रिप देखन। ३. धा. आयहूँ। ४. धा. में यहाँ और है: जे सरसइ जवनह्नु न्रिप संचउ। (तु० चरण ३+४)

गजपति गरुव गेह किमि गंजहु।

किमि गुनि पंगु राइ मन रंजहु॥

(३) १. मो. जु सरसि (=जउ सरसइ), धा. जे सरसइ, अ. फ. जौ सरसं, ना. जो सरसं, उ. स. जौ सरसति, म. सरसतिहा। २. धा. जानहुं वर, अ. जानहु वर, ना. वरु है कछु, द. म. उ. स. जानौ वर (वरि—फ.) ३. मो. रंचु (=रंचउ), ना. रंचौ, अ. फ. म. उ. स. चाव (चाउ—अ. फ.)

(४) १. मो. तु (=तउ) धा. तो, अ. फ. म. उ. स. तौ २. धा. [illegible], अ. फ. ना. म. उ. स. [illegible]

अदिष्ट ३ मा वरनु (=वरनउ) धा वरनहि, अ. फ. वर्णहु, ना. वरणौ, म. उ. स. वरनौ। ४. मो. सचु (=सचउ), ना. संचौ, अ. फ. म. उ. स. भाव (भाउ–फ.)। ५. म. में प्रस्तुत छन्द का उत्तरार्द्ध तीन छन्द पूर्व भी आया है, और वहाँ पाठ है : जौ सरसै बर है तुम रचौ। तौ अदिष्ट बरनौ ग्रिप सचौ।

टिप्पणी—(४) अदिट्ठ < अदृष्ट। संच < सत्य।

[१०]

साटिक—साइ सीसं[२] चमरेन स्वेत सतुसा[२] किंकिन आंदोलिता[३]। (१)
बालह*[१] अर्क समान जान तेजं[२] क्रीटीय अंमोलिता[३]।+(२)
सत्रू षत्त समस्त मत्त दहियं[१] सिंधू प्रयाती[२] खलं। (३)
कंठे हार रुलंति आनि×[१] अंतक समं[२] पृथिराज[३] हालाहलं॥ (४)

(१) [चंद ने कहा,] "उस (जयचंद) के सिर पर अतियुक्त (उत्कृष्ट) स्वेत चामरों से शत-शत किंकिणियाँ आंदोलित हो रही हैं। (२) उसका तेज मानो बाल सूर्य के समान है और उसका क्रीट अमूल्य है। (३) समस्त मत्त क्षत्रिय शत्रु दग्ध हो चुके हैं, और खल गण भाग कर समुद्र [पार की दिशाओं] में चले गए हैं। (४) उसके कंठ में हार हिल रहे हैं, वह अन्य अंतक (यम) के समान है, और पृथ्वीराज के लिए हालाहल [तुल्य] है—अथवा उसके लिए पृथ्वीराज हालाहल [तुल्य] है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द धा. म. उ. स. में नहीं है।

(१) १. मो. साई सीसं, धा. किं सांस, ना. द. किं सीसं, अ. फ. सीसं सा, म. उ. स. जा जीसं। २. धा. चुवरेण सेतु सतुसा, मो. चमरेन स्वेत संसा, अ. फ. चंवरेन सेठ (सेव–फ.) छत्रु (छतु–फ.) जा, म. उ. स. चमरायते सित छत्तं, ना. द. चमराय सेत छत्रं (छत्रकि–ना.)। ३. धा. अ. फ. किंकि त (न–अ फ.) अंदोलिता; म. उ. स. षंषिश (षंषील–म.) इंदोलिता।

(२) १. मो. वालि (=वालइ), धा. ना. द. अ. फ. म. उ. स. बाला। २. धा. जाम तेज, ना. जान तिजितं, म. उ. स. तेज तपनं। ३. मो. क्रीड्य अंदोलिता, धा. अमीलि मोलिता, उ. स. क्रीटी तपं मौलिता, ना. क्रोटी (< क्रीटी) दिपं मोलिका, म. क्रीटी तपं मौलिका।

(३) १. धा. शत्रो शात्र समस्त खत्त दहियं, अ. फ. सत्रै (स–फ.) सत्र समस्त मत्त दहियं, ना. म. शत्रो शत्र (सत्रौ सत्र–म.) समस्त षित्त (षित्ति–म.) दहियं, उ. स. सत्रे सत्र समस्त षिति दहियं। २. धा. प्रजाती, अ. फ. प्रजाता, ना. म. द. उ. स. प्रयाते।

(४) १. द. रुलंति आन, म. रुलंत ['आन' शब्द नहीं है] २. धा. आंतिनि समं, अ. फ. अंतक समो, द. अंतक समा। ३. धा. म. द. ना. प्रिथीराज, उ. स. प्रथीराज।

टिप्पणी—(१) साइ < साति=अति युक्त, उत्कृष्ट। (३) षत्त < क्षत्रिय (४) आनि < अन्य।

[११]

दोहरा— सत सहस्र बजन[१] बहुल[२] बहुल[३] बंस बिधि नंद[४]। (१)
सत सहस[१] संषध्धुनि*[२] मुहिल[३] जांम[४] जयचंद॥ (२)

अर्थ—"(१) [जयचंद के महल में] शत सहस्र बहुतेरे वाद्य हैं, बहुत सी बधियाँ [और] आनंद की विधियाँ है। (२) प्रत्येक प्रहर उसके महल में शत सहस्र शंखों की ध्वनि होती है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) मो. सत सहस वजनं, धा. छत्र सरद जब जन, अ. फ. छत्र सरद वज्जन, ना. द. म. उ. स. छत्र सहस (सहस छत्र—ना.) वज्जन। २. मो. स. वहुल। ३. धा. महल। ४. मो. संद।

(२) १. ना. द. म. उ. स. एक सहस। २. मो. संष धुनी, धा. संघ ध्वनिज, अ. फ. संषह धुनिय, म. उ. स. संषह धुनी। ३. मो. मुहिल, शेष सब में 'महल'। ४. उ. स. जानि।

टिप्पणी—(१) वज्जन < वाद्य।

[१२]

दोहरा— मंगल गुरु बुध सुक्र सनि[१] सकल सूर उदे[२] दिठ्ठ। (१)
आतपत्त[१] ध्रुव तिम तपइ[*२] सुभ[३] जयचंद बयिठ्ठ[४]॥ (२)

अर्थ—"(१) समस्त शूर मंगल, बृहस्पति, बुध, शुक्र, तथा शनि [आदि] के रूप में उदित दिखाई पड़ रहे हैं, (२) और उसका छत्र ध्रुव के समान तप रहा है, [इस प्रकार की सभा में अपने 'चंद्र' नाम को सार्थक करता हुआ] शुभ जयचंद्र बैठा हुआ है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. अ. फ. सुनि, स. सवि। २. धा. ना. द. उ. स. उइ, अ. फ. उद, म. उडि।

(२) १. धा. आठपत्त। २. धा. तमतिमइ, मो. तिमतपि (=तपइ), द. तिम तपै, अ. फ. तम तमै, ना. म. उ. स. जिम तपै। ३. धा. मो. ना. सुभ, म. उ. स. सुभि। ४. मो. वियट्ठ, धा. वइट्ठ, अ. फ. वयिट्ठ, म. उ. स. बयट्ठ।

टिप्पणी—बयिट्ठ < उपविष्ठ।

[१३]

भुजंग— थासले[१] सूर वड्ढे[२] समाहं[३]। (१)
जिति[१] जे पिति राय के सु राहं[२]। (२)
धम्म[१] दिगपाल[२] धर धरनि षंडं। (३)
वरहि[१] सिर सोभ[२] दुति कनक दंडं।° (४)
जिने[१] साजिते[२] सिधु[३] गाहे* सुपंगं। (५)
तिमिर तनि[१] तेज[२] भिय ज्यउं[*३] कुरंगं[४]।[५] (६)
जिनि[१] हेम परवत्त ते°[२] सब्ब घाहे[४]। (७)
एक[१] दिन अट्ठ[२] सुरतान साहे[३]। (८)
जंपिय[१] सब्ब[२] सो चंद चंडं[३]। (९)
थप्पिय[१] बाय तिरहुति पिंड[२] (१०)

दक्खिनी[१] देस अप्पउ* विचारे[२] ।× (११)
उत्तरयउ[१] सेत बंधइ पहारे[२] ।× (१२)
करण[१] डाहल दु*[२] बार बंध्यउ*[३] । (१३)
सिध्धु[१] सोलंकि[२] कइ*[३] बार षेध्यउ*[४] । (१४)
तिन[१] दिन युध्ध करि[२] रुंड मुंडा+[३] । (१५)
तोरि*[१] तिलिंग[२] गोवल कुंडा[३] । (१६)
छंडिअउ*[१] बंधि[२] इक गुंड[३] जीरा । (१७)
लिये[१] बइरागरे*[२] सब्ब[३] हीरा । (१८)
गज्जिनि*[१] सूर[२] साहाब साही । (१९)
सेवते[१] बंधि[२] निसिरुत्ति पाही (षांही ?)[३] । (२०)
भुल्लि[१] बिभ्भीषन[२] पाहिं*[३] रोरे*[४] । (२१)
रोस[१] कइ* सोस[२] दरिआइ जोरे*[४] । (२२)
बंधि[१] षुरासान किय[२] मीर बंदा । (२३)
सुतउ* राठ वयराठ[१] विजपाल[२] नंदा । (२४)
वंस[१] छत्तीस आवइ*[२] हकारे । (२५)
एक[१] चहूआन प्रिथिराज[२] टारे ।। (२६)

अर्थ—"(१) [जयचंदकी सभा में] आसनों पर [बैठे] शूर गण हैं जो बढ़े हुए (समृद्ध) और सुव्यवस्थापित हैं, (२) जिन्होंने क्षिति के राजाओं को जीत कर [उन्हें जयचंद में] राचित (अनुरक्त) कर दिया है। (३) वह (जयचंद) धरणी के खंड (भरत खंड) को धारण कर दिक्पालों का धर्म वहन कर रहा है (४) और सिर पर वह [छत्र के] कनक-दंड की शोभा और द्युति को धारण कर रहा है, । (५) जिस पंग (कन्नौज राज) ने [सेना] साज कर सिंधु [नदी] का अवगाहन किया (६) [जिसके आगे] तिमिर अपना तेज छोड़ कर कुरंग (मृग) [के समान] भयभीत हुआ, (७) जिसने हेमकूट (मेरु के समीपस्थ एक पर्वत) [में स्थित राज्यों] को संपूर्ण रूप से ढहाया और (८) एक दिन में आठ सुल्तानों का साधा (वश में किया)। (९) चंड (उग्र) चंद सत्य कहता है कि उस (जयचंद) ने (१०) तिरहुत जाकर विंद (सेना) स्थापित की। (११) 'दक्षिण देश को अर्पित करूँ' ऐसा विचार कर (१२) वह सेतुबंध के पर्वत पर जा उतारा। (१३) उसने डाहल देश के कर्ण को दो बार बंदी किया, (१४) और [गूर्जर के] सोलंकी सिद्ध (जैन) राजा को कई बार खदेड़ा। (१५) उसने तीन दिनों तक रुंड मुंड युद्ध करके (१६) तिलंग (त्रिलिङ्ग) और गोवल कुंड (गोल कुंडा) को तोड़ा (वश में किया), (१७) एक मात्र गुंड के शासक जीरा को बाँध कर (बंदी कर) के छोड़ दिया, (१८) और वैरागर देश से सब हीरे ले लिए। (१९) गजनी के शूर शाह शहाबुद्दीन की (२०) जो सेवा में था, उस निसुरत खाँ (?) को बंदी किया। (२१) जो भूल कर [लंका जा कर] विभीषण पर रोर (आक्रमण) कर बैठा, (२२) अपने रोष के शोषण द्वारा समुद्र को चंचल कर डाला (२३) और जिसने खुरासन के अमीर बंदा को बंदी किया, (२४) वह तो राठ प्रदेश का पति राष्ट्र [कूट] विजयपाल का पुत्र [जयचंद] है। (२५) उसके बुलाने पर छत्तीस कुलों के क्षत्रिय आते हैं, (२६) एक मात्र चहूआन पृथ्वीराज को छोड़कर।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित चरण या शब्द मो. में नहीं है।

× चिह्नित चरण उ. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. अ. फ. आसनं, द. ना. आसनै, म. उ. स. जहाँ आसनं (आसनै–उ. स.)। २. अ. ठड्ढे, म. चड्ढे, । ३. मो. समाई, मो. के अतिरिक्त सभी में 'सनाई।

(२) १. धा. अ. जीति, मो. जितीये, फ. जित, द. जिनैं जित्ति, म. उ. स. जिनैं जीति, ना. जित्ती। २. मो. क्षितिराय के सुराई, धा० छितिराइ किय ना सुराई, अ. फ. छिति (छित–फ.) राइ किनै सुराई (सुनाई–अ.), म. उ. स. छितिराय किय एक राई, ना. ये राइ छिति के सराई।

(३) १. अ. फ. धर्म, ना. ध्रम्म, म. उ. स. धरा ध्रम (ध्रम–म.)। २. ना. भ्रिगपाल।

(४) १. अ. फ. दरक्कि, म. उ. स. धरे छत्र। २. ना. सोम।

(५) १. मो. यते, शेष में 'जिनै'। २. धा. सज्जिगे, अ. फ. सज्जले, ना. साजनै, द. म. उ. स. साजते। ३. द. सिधि। ४. मो. गाहि (=गाहे) सुपंगं. धा. अ. फ. गाहो (<गाहि=गाहे) सुपंग (सुपंगु–फ.), द. म. उ. स. गाहै=(गाहें–उ. स.) सुपंगं (सुपंगा–म.), ना. गाही (< गाहि=गाहि) सुपंगा।

(६) १. मो. तिमिर तज, ना. तिमर तप, म. उ. स. धन तिमिरि (तिमर–म.) नजि, द. तिम तिम। २. धा. तेजु, अ. फ न भेज। ३. मो. भीय ज्यु (= भिय जाउ), धा० भैज्यो, ना. म. उ. स. भाजै + द. भगे। ४. ना. कुरंगा। ५. ना. में यहाँ और है : जिनैं साज तैं इंदु कंपै सुचंदं। तिमरजा तीर तरण रंग नंदं।

(७) १. मो. जेने (= जिनि), ना. जिनैं शेष में 'जिनै'। २. फ. नैं, म. से। ३ धा. सवे। ४. धा. म. ना. डाहे (डाहैं–ना. अ. फ.)।

(८) १. अ. फ. इक, म. उ. स. जिनैं एक, ना. जिनैं इक,। २. धा. मो. आठ, ना. अ. फ. अठ्ठ। ३ ना. साहै।

(९) १. धा. ना. अ. फ. जंपियो, म. उ. स. जसं जंपियं। २. धा. सब, फ. सब, ना. सब्ब। ३. मो. चंद चंदं, धा. चंड चंडं, शेष में 'चंद चंडं'।

(१०) १. म. उ. स. जिनै (जिनं–म.) थप्पियं। २. मो. त्रिहुति पिंडि, अ. तिरहुत्ति पंडं (< प्यंडं), फ. तिरहुत्त प्यंडं, म. उ. स. तिरहुत पिंडं।

(११) १. धा. दक्खिन्नी, मो. दक्षिनी (= दक्खिनी), अ. ना. दछिन्नं, फ. दक्षिनं, म. उ. स. जिनैं दक्खिनी। २. मो. आपु (= आपउ) विचारे, धा. अप्पो विचारं, अ. फ. अप्पे विचारं, उ. स. अप्पै विचारैं, म. द. ना. अप्पौ (अप्पौ–म. ना.) विचारे (विचारै–ना.)।

(१२) १. मो. उतरयु (= उत्तरयउ), धा. द. उत्तरयो, ना. उत्तरयौ, फ. उत्तरे, म. उ. स. जिनैं उत्तरयौ। २. धा. सेतबंधे पहारं, द. उ. स. सेतुबंधं पहारै (पहारे–ना. द.), अ. सेतु बंधे पहारं, फ. सेत बंधे वस्तारे, म. सेत पाज बंधं पहारे।

(१३) १. मो. करणं डाहल (= डाहल), म. उ. स. जिनै करन डाहाल, धा. अ. फ. कर्ण (कर्न–धा.) डाहाल। २. मो. दु (= दु) धा. ना. दुहूं, म. उ. स. दुअ। ३. मो. बार बांध्युं (= बांध्यउं), धा. बान बंध्यो, अ. फ. बान बेध्यउ, ना. म. उ. स. बान बेध्यौ।

(१४) १. मो. धा. अ. ना. सिंधु (= सिंधु), फ. सिंध, द. सिंधि, म. उ. स. जिनैं सिद्ध। २. मो. के अतिरिक्त सभी में 'वालुक' है। ३. मो. कि (= कइ), धा. म. ना. के, उ. स. कय। ४. मो. वेध्यु (= वेध्यउ), धा. द. वेध्यो, ना. म. उ. स. वेध्यौ, अ. वेध्यउ, फ. बेध्यौ।

(१५) १. मो. धा. तीन, म. उ. स. तिजं (= तिन्न)। २. धा. अ. फ. दिन जुद्ध भरि, द. ना. दिन जुद्ध भिरिं, म. उ. स. दिन्न जुद्धं भिरै (भिरे–म.)। ३. अ. फ. रुंड मुंडं, उ. स. भूमि रुंडं, म. भूमि रुंडं, ना. भूमि मंडं।

(१६) १. मो. उरि (<तुरि=तोरि), म. उ. स. वरं तोरि, फ. भोरि। २. धा. ठिछंग, मो. तिरयंग (=तिलिग), अ. फ. तिरिछग, स. ना. उ. स. तिछंग। ३. मो. गोवल गूडा, धा. द. गोवल्ल कुंड म. अ. फ. ना. गौवाल (गौवाल—म.) कुंडं, उ. स. गोआल कंड।

(१७) १. मो. छडिउ (=छंडिअउ), धा. अ. फ. छंडियो, ना. छडियो, म. उ. स. जिनै छडियो २. फ. बंध्य (=बंधि)। ३. मो. इक गूड, ना. इकु गोडु।

(१८) १. ना. ग्रहै, म. उ. स. ग्रहे लिद्ध (लीध—म.)। २. मो. विरागरे (=वइरागरे), धा. वरागिरि (=वरागिरइ), ना. वैरागरं, शेष में 'वरागरे'। ३. म. श्रब्ब।

(१९) १. मो. गजेने (< गजिनि), धा. गाजने, ना. द. गज्जनं, म. उ. स. जिनै गज्जने (गज्जनैं—म.)। २. अ. फ. सुत।

(२०) १. ना. मुकल्यौ, म. उ. स. तिनं (तिनं-स.) मोकल्यो (मोकल्यौ—म.)। २. धा. बंध, अ. बंधि, फ. बंधु, ना. गजनि, म. उ. स. सेव। ३. धा. निसुरत्त पाई, अ. फ. निसुरत्ति (निसुरत्त—फ.) पाई, द. म. निसुरत्ति भाई, उ. स. निसुरत्ति भाहीं।

(२१) १. धा. मो. अ. फ. भुलि, द. मुलि, म. उ. स. वरं मुलि (भूलि—म.)। २. मो. विभीषनो, धा. भछि छने, ना. भभीषनं। ३. धा. अ. फ. जाइ, द. म. उ. स. जीव। ४. मो. रोरि (=रोरे), ना. रोरैं, शेष में 'रोरे'।

(२२) १. ना. तो रोस, म. उ. स. तहां रोस। २. धा. ना. उ. स. कै, म. अ. फ. के। ३. धा. सास। ४. मो. दरि आइ लोरि (=लोरे), धा. उ. स. अ. फ. दरिया हिलोरे, म. दरिया लिलोरे, ना. दरिया हिलौरैं।

(२३) १. म. उ. स. जिनै बंधि। २. ना. कीये।

(२४) १. धा. राव राठोर, मो. सुनु (< सुनउ) राठवय राठ, म. उ. स. इसौ रठ्ठवर राय, अ. फ. सुतौ राठौर, ना. सुतं राठौड, द. सुत रठोर। २. म. अ. विजैपाल, विज्जैपाल।

(२५) १. म. उ. स. जहां बंस। २. धा. म. द. ना. आवै, मो. आवि (=आवइ) अ. फ. आवे।

(२६) १. म. उ. स. परं एक। २. उ. स. धुंमान।

टिप्पणी—(१) समाह < समाहित=भली भाँति व्यवस्थापित। (२) राइ < राधित=प्रसन्न, अनुरक्त। (६) भिय < भीत। (८) साह < साध्=वश में करना। (११) आप < अर्पय्। (२१) रोर < रोल [देशज]=कलह। (२२) लोर < लोल। (२४) राठवय < राष्ट्रपति [अब भी 'राठ' नाम की एक तहसील है]

[१४]

दोहरा— सुने ति नृप[1] रिपु[×] कउ[*] सबद[2] तम तम[3] नयन[4] सुरत्त[5]। (१)
*दल[1] दलिद[2] मंगन घरह[3] सु[4] को मेटइ[*5] विधिपत्त[6]॥ (२)*

अर्थ—(१) उन्होंने (जयचंद के कवियों ने) [जब अपने] नृप (जयचंद) के रिपु (पृथ्वीराज) का शब्द (नाम) सुना, तो उनके नेत्र तमतमा कर लाल हो गए। (२) [उन्होंने चंद की इस प्रकृति को देखते हुए अपने मन में कहा,] "यदि मंगन के घर में दारिद्रय का दल हो, तो विधाता के उस पत्र (लेख) को कौन मिटा सकता है ?"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।
(१) १ धा. अ. फ. सुनि नृपति (फ. में 'पति' नहीं है), ना. द. म. उ. स. सुनत नृपति।

२. मो. [रिपु] कु (=कउ) सवद, ना. रिपु कौ सवद, धा. रिपु कै सवद, अ. रिपु कौ सब्द, फ. रिष कौ सबद, म. उ. स. रिपु कौ बयन। ३. मो. द. ना. म. उ. स. तनमन, धा. तामस। ४. अ. फ. ना. नैन। म. भयंन। ५. द. स रत्त।

(२) १. धा. दरि, अ. फ. दर, द. म. उ. स. ढिय, ना. दों। २. धा. दरिद्द, मो. दिलद्द, म. उ. स. दरिद्र, ना. दालिद्र। ३. धा. अ. फ. सुपह (सुवहि–फ)। ४. धा. अ. फ. उ. स. में यह शब्द नहीं है। ५. धा. मेट्ठ, मो. [मेटि] (=[मे] टइ) मिटें (<मेटि=मेटइ), द. ना. म. उ. स. मेटै। ६. फ. पत्ति।

टिप्पणी—(२) दलिद्द < दारिद्र्य। पत्त < पत्र।

[१५]

दोहरा— *आदरु किय[१] नृप तास कउ*[२] कहउ*[३] चंद कवि[४] आय[५]। (१)*
ढिल्लिय पति जिहि विधि रहइ[१] सु वत्त कहहि[२] समझाय[३]॥ (२)*

अर्थ—(१) [जयचंद के समक्ष पहुँचने पर] नृप (जयचंद) ने उसका आदर किया, और कहा, "चंद कवि, आ; (२) दिल्ली पति (पृथ्वीराज) जिस प्रकार रहता है, वह वार्ता मुझे समझा कर कह।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. किअ, ना. करि। २. मो. कु (=कउ), धा, अ. फ. को, ना. म. उ. स. कौं। ३. मो. कहु (=कहउ), धा. कहयो, अ. कह्यउ, ना. द. फ. म. उ. स. कह्यौ। ४. मो. कवि। ५. धा. अ. फ. ना. उ. स. आउ।

(२) १. मो. ना. धा. अ. फ. ढिलीय (धा. दिल्ली, अ. फ. दिल्लिय) पति जिहि विधि रहइ (रहि=रहइ मो., रहै–अ. फ.), द. म. उ. स. मिलै मोहि (न मोहि–स. न, मुहि–स.) दिल्लिय धनी। २. धा. सु वत्त कहै, अ. फ. सु तो कहहु, ना. सुतो मोहि, म. उ. स. सुवत्त कहिग, द. सुवत्त कहहिं। ३. धा. अ. फ. समुझाउ, मो. समुझाइ, द. ना. उ. समझाउ।

टिप्पणी—(२) वात < वार्त्ता।

[१६]

दोहरा— *कितुक[१] कंति[२] संभर[३] धनी कितुक[४] देस दल विंदु[५]। (१)*
कितु इक रन[१] हथ्थग्गरु[२] सु हसि नृप बुझ्झउ चंद[३]॥ (२)*

अर्थ—(१) [जयचंद ने पूछा,] "साँभरपति में कितनी कांति है और कितना उसका देश और दल-वृन्द है? (२) कितना वह रण में हाथ [चलाने] में आगे है?" यह हँस कर नृप (जयचंद) ने चंद से पूछा।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. कितुक, धा. द. कितकु, अ. जितकु, फ. जिनकु, म. उ. स. कितक। २ मो. कंति, शेष सभी में 'सूर'। ३. ना. सैभर। ४. मो कितु एक, धा. द अ फ कितकु, म उ स.

किरक। ५. मो. दल ब्यंदु (=विंदु), धा. दल बंध, अ. फ. कुलचंद, ना. दल चंद, उ. स. दल (बल–उ. बंधि (बंध–उ.), म. दस बंध।

(२) १. धा. कितोकु रन इथ अग्गलउ, मो. कितुइक रन इथ गउ, अ. फ. कितकु (कितिकु–फ. रन इथ्थअग्गलौ, ना. कितुक रण इथ अग्गरो, द. म. उ. स. कितक हथ्थ रन (रण–द.) अग्गारौ। २. मो सु हसि नृप बूझ (=बुझ्झउ) चंद, धा. पुच्छइ राउ सु चंद, अ. फ. पूछउ राइ सुचंद, ना. द. म. उ. स हसि नृप बूझ्यौ (बूझीय–म.) चंद।

टिप्पणी—(१) कंति < कान्ति। विंद < वृन्द।

[१७]

दोहरा— सूर जिसउ*१ गयनहि२ उवइ*३ दल दव४ मारन५ आसि६। (१)
जब लगि अरि कर उच्चवइ*१ तब लगि देइ२ पचास॥ (२)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "जिस प्रकार गगन में सूर्य द्रव (जल) दल के मारने के लिए उदित होता है, [उसी प्रकार पृथ्वीराज भी है]; (२) जितनी देर में शत्रु हाथ उठाता है, उतनी देर में वह पचास [हाथ] दे देता है।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. सूर जिसु (=जिसउ), धा. सूर जिसो, अ. म. उ. स. सूर जिसौ, ना. सूरि जसैं, फ. सूरज सौ। २. धा. म. उ. स. गयनइ, अ. फ. ना. गैंनइ। ३. मो. उवि (=उवइ), धा. उ. स. द. उवै, ना. म. उगैं, अ. फ. उवे (< उवि = उवइ)। ४. धा. दल दल, मो. दल दव, फ. दल बदल, ना. अरिदल, शेष सभी में 'दल बल'। ५. धा. मरनां, ना. अरिन, अ. में 'न' मात्र है, फ. मन। ६. धा. आसि, शेष में 'आस'।

(२) १. मो. धा. अरि कर उचवि (=उच्चवइ), धा. अरि नृप बज्जवैं, ना. म. द. स. अरि कर (करि–म.) उट्ठवै, अ. नृप अरि कठवे, फ. अरि नृप कठवे। २. म. देय, ना. देहि।

टिप्पणी—(१) गयन < गगन। उव < उदय्। दव < द्रव।

[१८]

दोहरा— मुकुट बंध१ सवि२ भूप हइ*३ लष्षन*४ सवै५ संजुत्त६। (१)
बरनहि किनि उनहारि रहि१ कहि चहुआन स उत्त२॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद ने कहा,] "[मेरी सभा के] सब भूप मुकुट-बंध हैं और वे सब लक्षणों से युक्त हैं। (२) तू वर्णन कर कि किसकी उनहार (अनुकृति—आकृति) [उसकी] है; तू चहुआन (पृथ्वीराज) का उक्ति पूर्वक कथन कर।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. ना. संध। २. मो. ना. सवि, शेष सभी में 'सब'। ३. मो. हि (=हइ), म. . स. है; धा. अ. फ. ना. हैं। ४. धा. फ. म. उ. स. लच्छिन, मो. लखन (=लष्षन), ना. लक्षन

(= लष्यन), द. लछयन, अ. लछन। ५. धा. मो. सर्व, शेष में 'सब'। ६. धा. सुजुत्त, अ. फ संजुत्त।

(२) १. धा. वरन वदउदनिहारि इह, अ. वरनि जेनि उनहारि वह, फ. बरन जेनु उनिहार उह, द. ना. उ. स. कौन वरन उनहार (वरण अनुहार—ना.) किहिं, म. कौन वरन उन हीन कहि। २. धा. छ्यूं चहुवान संउत्त, म. कहि चहुआन सयुत्त, अ. फ. कहि चहुवान संजुत्त, म. उ. स. कहु (कहि—म. उ.) चहुआन सुउत्त, द. ना. जस चहुवान सउत्त।

टिप्पणी—(२) उनहारि < अनुकार। उत्त < उक्ति।

[१९]

कवित— बत्तिस लक्खन* सहित[१] बरस छत्तीस मास छह। (१)
इम[१] दुज्जन[२] संगहइ*[३] राह[४] जिम[५] चंद सूर गह[६]। (२)
वय[१] छुट्टइ*[२] महिदान[३] दुज्जन[४] छुट्टइ* जि[५] डंड दिहि। (३)
एक गहि गहि[१] गिरिकंन[२] एकु अनसरइ*[३] चरन गहि[४]। (४)
चहुवान चतुर चावदिसहि[१] बलि हिंदुआन[२] सचि[३] हथ्थि जिहि। (५)
इम जंपइ चंद विरद्दिआ*[१] सु प्रथीराज[२] उनिहारि[३] एहि[४]॥ (६)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "पृथ्वीराज बत्तीस [शुभ] लक्षणों से युक्त है, और छत्तीस वर्ष तथा छः मास का है। (२) वह दुर्जनों को इस प्रकार बंदी करता है जैसे राहु चंद्रमा तथा सूर्य को पकड़ता है। (३) वे मही-दान से छूटते हैं, तो दुर्जन दंड दे कर छूटते हैं। (४) एक (कुछ) गिरि-कंदरों को पकड़कर—उनमें आश्रय लेकर [छूटते हैं] और एक (कुछ) उसके चरण पकड़ कर उसका अनुसरण करते हैं। (५) चतुर चहुआन (पृथ्वीराज) ऐसा है कि जिसके हाथ में चारों दिशाओं के बली हिंदू [शासक] हैं।" (६) चंद विरदिआ इस प्रकार कहता है, "पृथ्वीराज की अनुहारि (अनुकृति-आकृति) इस प्रकार की है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. वत्तिस लक्षन (= लक्खन) सहित, धा. लच्छन सहित बत्तीस, अ. फ. बत्तीस लष्षिन (लष्षन—फ.) सहित, द. ना. वत्तीसह लछिन (लक्ष्यन—ना.) सहित, म. उ. स. बत्तीसह (बत्तीस—म.) लच्छिनह।

(२) १. धा. इन, म. इह, स. इस। २. अ. फ. दुर्जन, ना. दुरजन। ३. मो. संगहि (=संगहइ), धा. संग्रहे, अ. फ. संग्रहै, ना. संग्रहहि, म. उ. स. संग्रहत। ४. धा. राहु। ५. अ. जिमि, स. जिस। ६. मो. गहि, धा. अ. फ. गह, ना. म. उ. स. ग्रह।

(३) १. धा. उव, मो. वय, अ. फ. वै, द. इव, ना. उवं, उ. स. एक, म. इक। २. मो. छुटि (= छुटइ) धा. छुट्टे, द. म. उ. स. छुट्टहि, अ. फ. ना. छुट्टे। ३. मो. मिहि (< महि) दानि, शेष सब में 'महि दान'। ४. धा. दुजन, म. इक। ५. मो. छुटि (= छुटइ) जि, धा. म. छुट्टेति, ना. छुट्टति, फ. छुट्टंतिह, उ. स. छुट्टहिति, म. छुटहित। ६. धा. दंडवहि, अ. फ. दंड कहि, उ. चंद भर, ना. स. दंड भर, म. दंड भरे।

(४) १. धा. इक गहहि, अ. फ. इक गहिहि, ना. इक गहैहि, द. इक गहि है, उ. स. एक गहहि, म. इक ग्रहहि। २. मो. में 'कंन' शेष सभी में 'कंद'। ३. मो. एकु अनसरि (= अनसरइ), धा म अ

फ ना. इक्क अनुसरहि (अनुसरहि–अ. फ. ना.), उ. स. एक अनुसरहि । ४. मो. वरन (=चरन) गहि म. चरन पर, उ. स. चरन परि ।

(५) १. मो. चावदसहि, धा. चहुं दिसहि, अ. चहुं दिसइ, फ. चौहुं दिसइ, म चावौदिसहि, ना. चावदिशिहि । २. धा. अ. बलि हिंदुवान (हिंदवान–अ.), फ. बलि हंदवान, शेष सभी में 'हिंदुवान' (हिंदवान–म.) मात्र है । ३. मो. सिव (< सवि) । ४. मो. हथि शेष, में 'हथ' ।

(६) १. मो. विरदीउ (=विरदिअउ), धा. अ. फ. म. उ. स. वरदिया, ना. विरदीया, द. वरदियो २. धा. प्रिथीराज । ३. धा. अनुहार, ना. अणुहरि, अ. उनहार, फ. उनहार, ना. द. उ. स. अनहारि म. उनिहार । ४. धा. अ. फ. इहि ।

टिप्पणी—(३) दुयन < दुर्जन । (४) कंन < कंद । (६) अनुहारि < अनुकार ।

[२०]

दोहरा— दिष्षि[१] थवायत[२] थिरु[३] नयन[४] करि[५] कनवज्ज[६] नरिंद । (१)

नयन नयन अंकुरि[१] परिय[२] मनु+ इकु°[३] थह° दोइ°[४] मयंद[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) [यह सुनकर] कन्नौज-नरेन्द्र ने जब [चन्द के] थवाइत (तांबूल-पात्र-वाहक–पृथ्वीराज) को स्थिर नयनों से देखा, (२) तो नेत्रों नेत्रों में अंकुर (बल) पड़ गए, [और ऐसा लगा] जैसे एक ही आश्रय-स्थान में दो मृगेन्द्र [मिल गए] हों ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है ।

(१) १. द. दिष्षि, म. उ. स. देषि । २. धा. थवांइत, फ. थवाइति, म. थवाइत, ना. तवाइत । ३. द. थिरि । ४. म. तपन । ५. मो. कर, अ. फ. करि । ६. फ. कनउज्ज ।

(२) १. स. नयने अरि, धा. अ. फ. नयन अंकुरि । २. धा. परइ, ना. परी, अ. फ. परे । ३. मो. इकु, धा. अ. फ. मनुं, म. मनौं इक । ४. मो. दोउ, अ. फ. उभै, ना. म. दोय । ५. धा. मइंद ।

टिप्पणी—(१) थवायत < थइआइत्त < स्थगिकावत् = तांबूल-पात्र-वाहक । (२) थह [देशज]= निलय, आश्रय, स्थान । मयंद < मृगेन्द्र ।

[२१]

दोहरा— जे त्रिय[१] पुरुष[२] रस परस×[३] बिनु उठिग राय सुरसान[४] । (१)

धवलगृह ते अनसरइ*[१] भट्टहि अप्पन[२] पान ॥ (२)

अर्थ—(१) "जो स्त्रियाँ पुरुषों के रस और स्पर्श विहीन—कौमार्यपूर्ण—हैं", राजा का [ऐसा] उत्तेजित स्वर उठा, (२) "वे भट्ट (चंद) को पान अर्पित करने के लिए धवलगृह से अनुसरण करें (चल पड़ें) ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित शब्द म. में नहीं है ।

(१) १ धा जे त्रिवन, द अ फ त्रियन, ना. जे तीयन २ धा पुरष, द पुरिस, स पुरिष, ना

परस्थ। ३. म. परसि। ४. धा. उठिय राय सुरिसान, मो. उठि गयु (=गयउ) राय सु सान, द. ना. म. ड. स. उठिग राइ सु निसान, अ. फ. कढ़िय राइ सुरसान।

(२) १. मो. धवल ग्रहि जे अनशारि (=अनसारइ), धा. धवल ग्रिह ग्रिप अनुसरिग, अ. फ. धवलग्गृह ते अनुसरिग, ना. द. धवल ग्रिह सपत्त करि, म. उ. स. धवल ग्रिह संपत्त कहि। २. धा. रिपु मंगन सं, मो. रिपु मंगन कह, ना. द. मट्टहि अप्पौं, अ. फ. मट्टहि अप्पुन।

टिप्पणी—(१) सुर < स्वर। सान < शाणित=उत्तेजित।

[२२]

दोहरा—तिन[१×] कह[×] हथ्थह[×] अथ्थि[२×] किय[३×] जे[×] राय[४×] ग्रह[×] अथ्थि[५]* । (१)
ते[१] सुंदरि सब एक समयि[२] चली[३] सुगंधन[४] कथ्थि[५]* ॥ (२)

अर्थ—(१) उनके हाथों–पाणि ग्रहण–के लिए [अपने को] अर्थी किया था ऐसे राजाओं ने जो उन्हें गृहिणी बनाने के अर्थी थे। (२) वे सुंदरियाँ सबकी सब एक समिति—मंडली—के रूप में प्रशंसनीय सुगंधियों में [सनी हुई] चल पड़ीं।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× धा. में चिह्नित शब्दावली नहीं है।

(१) १. मो. किन। २. ना. म. उ. द. अथ्थि सुहथ्थ। ३. मो. क्यय (=किय)। ४. ना. म. उ. स. द. राजन। ५. मो. ग्रह अच्छ, धा. अत्थ, ना. उ. स. ग्रह (गृह–ना.) अच्छि, म. ग्रेह अच्छि।

(२) १. धा. म. उ. स. छह। २. धा. एकइ समइ, मो. सब एक समिय (< समियि) ना. द. ड. स. सब एक सम म. सब एक सम। ३. मो. सू (= सु) चली। ४. धा. सुगंधनि, मो. ना. म. सुगंधन। ५. मो. कच्छ, धा. कत्थ, म. उ. स. द. ना. कच्छि।

टिप्पणी—(१) अथ्थि < अर्थिन्। (२) समयि < समिइ < समिति। कथ्थि < कथ्य=प्रशंसनीय।

[२३]

दोहरा— षोडस[१] बरष स सुचि ग्रह[२] ले सब दासि[३] सुजान[४] ।° (१)
मनहुं°[१] सभा° सुरलोक थइ*[२] चली अच्छरी[३] समान ॥ (२)

अर्थ—(१) [इन] षोडश वर्षीया [सुंदरियों] ने समस्त सुजान (चतुर) दासियों को लेकर [धवल–] गृह इस प्रकार छोड़ा (२) मानो सुरलोक से [देवाङ्गनाओं की] सभा (मंडली) अप्सराओं के साथ चल पड़ी हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

° चिह्नित चरण तथा शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. यहाँ ना. द. में 'जे' भी है, जो और किसी में नहीं है। २. अ. फ. बरष सु सुकि गृह, द. बरष ससुचह, ना. बर्षह जमल, म. उ. स. षोडस बरष स सुच्च ग्रह। ३. ना. ग्रह सब दासि, म. के साव दिस। ४. उ. स. सुजानि।

(२) १. म मनौं, ना मनु २ मा थि (=थइ), धा वहु, द. कै, अ. फ, तै, ना. कुं, स. म के, उ कै। ३ द म उ. अछरीय, स. अच्छरिय, ना. अछरज।

टिप्पणी—(१) मुच्च < मुच्। (२) अच्छरी < अप्सरस्। समान=साथ (?)।

[२४]

अर्ध नाराच—

विहंग[१] भ्रंग[×] पू पुरं[२] । (१)
चलंति[१] सोभ[२] नूपुरं[३] । (२)
अनेक भंति[१] सादुरं[२] । (३)
असाढ़ मोर[१] दादुरं । (४)
सुधा समान सुष्षहीं[१] । (५)
उठंति दंत* डुम्महीं[१]* ।[२] (६)
दीपंति[१] दोर[२] कंकने[३] । (७)
कटि प्रमान[१] रंकने[२] ।°[३] (८)
धनुष्ष[१] भउंह*[२] अंकुरे ।° (९)
नयन्न बान[१] बंकुरे । (१०)
स्रवन्न मुत्ति[१] तारये[२] । (११)
अलक बंक[१] आरमे[२]* । (१२)
सबद सोभ ये षुले[१] । (१३)
रहंति[१] लज्ज[२] कोकिले । (१४)
अनेक वर्ण[१] जउ* कहउं*[२] ।°+ (१५)
तउ*[१] जाम[२] अंत न लहउं*[३] ।+° (१६)

अर्थ—(१) जिस प्रकार विहंग (पक्षी) तथा भृंग [मधुर रव करते] पूरित (व्याप्त) हो रहे हों, (२) इस प्रकार उनके चलते समय उनके नूपुर शोभित हो रहे थे। (३) [नूपुरों के शब्द इस प्रकार लगते थे मानों] अनेक प्रकार से बोलते हुए (४) आषाढ़ में मोर और दादुर (मेढक) हों। (५) उनके सुधा के समान [कांति वाले] मुखों को (६) उनके उठते (खुलते हुए) दाँत धवलित कर रहे थे। (७) उनके डुलते हुए—हिलते हुए—कंकण प्रदीप्त हो रहे थे। (८) उनकी कटि प्रमाण-रंक थी—इतनी क्षीण थी कि उसके अस्तित्व में भी संदेह हो सकता था। (९) उनकी भौहें अंकुरित (चढ़े हुए) धनुष के समान थीं। (१०) उनके नेत्र बाण वक्र थे। (११) उनके श्रवणों के मोती तारकों के समान थे, (१२) जो उनकी बाँकी अलकों में उलझे हुए थे। (१३) उनके शब्द यदि खुलते—मुख से निकलते—थे, तो इस प्रकार शोभते—सुहाते—थे (१४) कि कोकिल लजा कर रह जाते थे। (१५) यदि उनके अनेक वर्णों (रूप रंगादि) का कथन करूँ, (१६) तो एक पहर तक उस वर्णन का अन्त नहीं पा सकूँगा।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द उ. में नहीं है।
० चिह्नित चरण धा. में नहीं है।
+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

(१) १. ना. विहंगि। २. धा. अ. फ. भृंग (भंग–धा.) जा पुरा, द. म. उ. स. मंग जो पुरं, ना. जो पुरा।

(२) १. अ. फ. चकंत। २. अ. फ. लोन, म. होत। ३. धा. अ. फ. ना. नूपुरा, म. नोपुरं।

(३) १. अ. फ. ना. भांति, म. मंजि। २. ना. सौंदुरं।

(४) १. द. मोर, शेष में 'सोर'।

(५) १. मो. सुष्षही, धा. मुकही, अ. ना. मुष्षही, फ. सुखही, म. उ. स. सथ्थही।

(६) मो. उठंति ति दुदु महो, धा. उठंति तिदु संमुही, द. उठंत दंति दुंमुही, अ. फ. उठंत इंदु, ना. उवंत इंद सम्मुही, म. उ. स. सुगंध हथ्थ (गंध–म.) हथ्थही। २. मो. के अतिरिक्त सभी में यहाँ या कुछ चरणों के बाद और है (स. पाठ):—

वितंव तुंग स्याम के। मनो सपत्त काम के।
लवग्न भृंग गुंजही। सुगंध गंध पुंजही (हथ्थही–धा.)।

(तुल० चरण ६ का म. उ. स. का पाठ)। म. उ. स. में इन पंक्तियों के पूर्व और भी है:—

चरन्न रत्त सोभई। उपम्म कब्बि लोभई।
करन्न रत्त श्रीरजे। कसीस कासमीर जे।
चरन्न पुट्ठि रत्तए। उपम्म कब्बि पत्तए।
सुवंक चंद अंकनं। सुराह तेज संकनं।
सुवंक चंद अंकनं। सुराइ तेज संकनं।
सु संक जौवन टरं। सुनें सरूप में करं।
नषादि आदि उप्पनं। सुकाम केलि दुप्पनं।
चरन्न हंस सद्दही। उपम्म कब्बि बद्दही।
सुनंत डोड़ छंडयौ। चरन्न सेव मंडयौ।
सु पिंडि बाल सोभई। सुरंग रंग लोभई।
सुरंग कुंकुमं भरी। धराद काम उत्तरी।
सुरंग जंघ ताल से। निकाम षंभ बाल से।

(७) १. धा. वर्षंति, स. दिषंति। २. ना. डोर। ३. ना. कंकनं।

(८) १. अ. फ. पमान। २. ना. रंकनं। ३. म. उ. स. में यहाँ और है:—

दिकै न दिट्ठ लंकयौ। बिलोकि अष्षि अंकयौ।
उतंग तुंग तामयौ। कि भ्रम्म लोभ कामयौ।
सु रोम राज दिट्ठयौ। रुलंत बेनि पिट्ठयौ।
सु चंपि चंद गाढयौ। विपास काम बाढयौ।
जु अग्र हीय सोभई। सु सिद्ध मेन लोभई।
ग्रहन्न रंग चालई। सु लज्जि लंक हालई।
उठंत कुच्च कंचुभं। कि तंबु काम रच्चयं।
बजे प्रमान सज्जनं। सुमेर श्रष्प भंजनं।
जु पीत पुंज सोभयो। सुचित्त काम लोभयो।
सुजिति राह थानयौ। सु चंद बैठि मानयौ।
जराइ चौकि कंठयौ। उपम्म कब्बितं ठयौ।

ग्रहं जुइंद आइयं । चरन्न चंद साहियं ।
वनित्त सब्ब जंपयौ । सुराह थान अप्पयौ ।
चिबुक्क चारु सोभयौ । उपम्म कब्बि मोहयौ ।
सुवास अंग पत्तयौ । सुकंज मुक्कि जत्तयौ ।
सुरत्त अद्ध रत्तओ । लहै न ओप अंतयौ ।
ओ साफ कब्बि सौहयौ । प्रबाल रत्त मोहयौ ।
सुधा समान सुष्षही । दसन्न दुत्ति रुष्षही ।
सुसद्द बद्द पंचमं । कलिन्न कंठ तंकमं ।
सुनी सुकब्बि राजई । उपम्म कब्बि साजई ।
ससंद सारंग हरी । प्रगट्ट काम मंजरी ।

(९) १. स. अ. फ. धनुक्क, उ. धनक, द. धनंक । २. मो. ना. भुंह (= भंउह) शेष में भौंह ।

(१०) १. मो. नयन बान, शेष में 'मनो (मनुं ना., मनौं–म.) नयन्न' है ।

(११) १. मो. मोति । २. उ. स. तालजे, तारिजे, म. भलजे ।

(१२) धा. डंक । २. मो. लुम्भारए, धा. अ. फ. आरए, द. उ. स. आलुझे, म अलुझे, ना. आलुजे ।

(१३) १. धा. द. जो घुले, अ. फ. पंगुले, ना. ते घुले, म. उ. स. जौ घुले ।

(१४) १. धा. रहित्त । २. मो. लाज, ना. अ. फ. लज्जि ।

(१५) १. उ. स. वृन्न, ना. म. वंन । २. मो. जु कहुं (=जउ कहउं), धा. म. उ. स. जो कं (कहे–धा.), द. जो कहैं, ना. जौ कहुं ।

(१६) १. मो. तु (=तउ), धा. ते, द. ना. म. उ. स. तौ । २. धा. द. ना. म. उ. स. जम्म । ३. धा. मो लहे, मो. न लहुं (=लहउं) द. नं लहै, म. उ. स. ना लहै, ना. ना लहुं ।

टिप्पणी—(३) साद < शब्द । (६) धुम [देशज]=धवलित करना, श्वेत बनाना । (११) तारय<तारक

[२५]

अडिल्ल— चहूआन[१] दासिअ रति कंषिअ[२] । (१)
पुरि[१] रट्ठवर रहिय[२] दिसि[३] नंषिय[४] । (२)
विगल केस[१] पुरिषन कहि अंषिय[२] । (३)
प्रथीराज[१] देषत[२] सिर[३] ढंकिय ॥ (४)

अर्थ—(१) चहूआन (पृथ्वीराज) की एक दासी ने रस (सुख) की आकांक्षा की; (२) वह [इसलिए] दिशाओं में लुप्त होकर राठौर (जयचन्द) के पुर (कन्नौज) में रहने लगी थी (३) वह विगलित केश (बिखराए बालों) युक्त रहा करती थी, और पुरुषों को कह कर [उनके मर्म] बता दिया करती थी । (४) उसने पृथ्वीराज को देखते ही सिर ढँक लिया ।

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. फ. ना. चाहुवान, म. उ. स. चहुवानह । २. मो. रसि कंपीअ, धा. रिसि कषिय, द. अ. फ. ना. रिसि (रिस–अ. फ. ना.) कंषीय (कंपिय–अ. ना.), म. स. सिर कंषिय, उ. ना. रिस कंषिय ।

(२) १ द में पुरि, शेष सब में 'पुर' २ मो रठवर रहिय धा राठौर रहा, द ना म उ स राठोर रही, अ फ राठौर रहे । ३ म दिसं ४ ना छिप्पय

(३) १. धा. बिजर बाल, द. बिगर केस, ना. बिथुर केस, स. बिगरत केस, म. बिगरब केत, उ. बिगरत केस, अ. बिगलि केस। २. मो. पुरिषन कहि अंषीय, अ. फ. पुरुषत कोइ अप्पिय, द. म. उ. स. पुरुष नहिं (नह-म.) अंकिय (अंषीय-म.), ना. पुरुपन कहि अष्षीय।

(४) १. धा. प्रिथीराज। २. ना. दिष्पित। ३. फ. सिरु, द. सिरि।

टिप्पणी—(१) कंष < काङ्क्ष्। (२) नंष < नश् (१)=लुप्त होना, भागना। (३) अंष < आख्या < आ+ख्या=कहना, बोलना।

[२६]

*दोहरा— भय चकि[१] भूप अनूप सह[२] पुरुष सु[*३] कहि प्रथिराज। (१)*
*सु मनु[१] भट्ट सथ्थिहि[२] अछइ[*३] जाहि करत[४] त्रिय लाज॥ (२)*

अर्थ—(१) भूप जयचन्द [तथा उस] की सभा अनुपम प्रकार से भय चकित (भौचक्के) रह गए, [और कहने लगे,] "वह पुरुष पृथ्वीराज कहाँ है ? (२) वह मानो (ऐसा लगता है कि) भट्ट चंद के साथ है, जिसे वह स्त्री लज्जा कर रही है।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. भए चुकि, उ. स. अ. फ. भै चकि (वकि-फ.), ना. भयह चकित, म. नव भेवक। २. ना. सहि। ३. धा. म. उ. स. जु, मो. सूर (< सु) अ. जि, ना. द. फ. ज।

(२) १. म. उ. स. सुमति। २. धा. सत्थह, म. सुथह, ना. सत्थं। ३. मो. अछि (=अछइ), धा. अ. ना. म. उ. स. अछै, फ. अछे। ४. धा. जिह करंति, उ. स. जिहि करंत, अ. तिहि करंत, म. जिहि करिंत, ना. जिहि करत, द. फ. तिह करंत।

टिप्पणी—(१) सह < सभा। कहिं < क्व, कुत्र। (२) अछ < अस्।

[२७]

*दोहरा— इक कहइ[*१] बिट्ठिय[२] सुभट इह न[३] सथ्थि[४] प्रथिराज[५]। (१)*
*इह[१] नृपत्ति° दुहु° एक° हइं[°*२] ताहि करत त्रिय[३] लाज॥ (२)*

अर्थ—(१) एक कहने लगा, "यह जो सुभट [चन्द के साथ] बैठा हुआ है, यह [उसके] साथ में पृथ्वीराज नहीं है। (२) यह (चन्द) और नृपति (पृथ्वीराज) दोनों एक—अभिन्न—हैं, [इसीसे] यह स्त्री उस (चंद) से लज्जा करती है।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० धा. में चिह्नित शब्द नहीं हैं।

(१) १. मो. इक कहि (=कहइ), धा. एक कहिय, अ. फ. इक कहहि, ना. इक कहहि, म. उ. स. एक कहै। २. अ. फ. बिट्ठहि, ना. बिट्ठौ, म. उ. स. बैठे। ३. म. उ. स. इनह, ना. इन। ४. अ. फ. म. उ. स. सथ्थ (मथ्थ-म.), ना. सत्थहि। ५. धा. म. ना. प्रिथीराज।

(२) १. धा. इनि, अ. इहि, ना. इहै, म. उ. स. ए। २. मो. हिं (=हइं), अ. फ. उहिं (उह-फ.)

दुहु मन इक्क है, म. उ. स. नृपजीवन एक है, ना. दुहुं में एक नृप। ३. धा. जिह करंति त्रिय, अ. १ तिहि करंति (करंत—अ.) सइ (तइ—फ.), म. उ. स. तिनह करत (तिन इरकता—म.) त्रिय, न तिहि करत त्रीय।

टिप्पणी-(१) बिट्ठ < उपविष्ठ (?)।

[२८]

दोहरा— अपिग[1] पान सनमान[2] करि नहि[3] रष्षउ[*4] कवि गोय[5]। (१)
जु कछु इछ्छ करि मंगहिइ[1] प्रात[2] समप्पउं[*3] तोय[4]॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द को] पान अर्पित कर और उसका सम्मान करके [जयचन्द ने कहा,] "हे कवि, मैं तुझ से [कुछ भी] छिपाकर नहीं रख रहा हूँ (स्पष्ट कह रहा हूँ); (२) जो कुछ भी इच्छा कर तू माँगेगा, मैं तुझे उसे [कल] प्रातः समर्पित करूँगा।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा अ. अप्पिग, द. अफि, ना. म. उ. स. अप्पि। २. धा. अ. फ. पानु समानु (संमान—फ.)। ३. द. नहि रषि, म. नइ। ४. मो. रषु (=रष्षउ), धा. रक्खु, म. ना. उ. स. रष्यौ। ५. अ. फ. ना. तोहि।

(२) १. धा. मंगिइइ, अ. फ. ना. मंगिहै (मंग्यहै—फ.), द. म. उ. स. मंगिहौ। २. धा. कल्लि अ. फ. कल्हि। ३. मो. शमपु (=समप्पउं), धा. समप्पू, ना. समप्पुं (=समप्पउं), द. स. समप्पौं, अ. फ. म. समपौ। ४. धा. अ. फ. तोहि।

टिप्पणी-(१) अप < अर्पय्। (२) समप्प < समर्पय्।

[२९]

दोहरा— हक्कारिउ[1] रष्षत[2] नृपति कुंकुम कलस[3] सुवास। (१)
पच्छिम दिसि[+1] जयचंदपुरि[2] तिहि[3] रष्षउ[*] जाय[4] प्रवास[5]॥ (२)

अर्थ—(१) नृपति जयचन्द ने भृत्य को बुलाया, और उसने कुंकुम [वर्ण] के कलश वाले सुवासित (२) आवास (प्रासाद) में, जो जयचन्द पुर (कन्नौज) में पश्चिम दिशा में था, उसे (चन्द को) जाकर रक्खा—स्थान दिया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।
+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

(१) धा. हकारिउ, मो. हकारो, अ. हकार्यौउ, फ. द. म. उ. स. हकार्यौ (हकार्यो—स.), ना. हकार्यौ। २. धा. रषत, फ. राउन, शेष सब में 'रावन' या 'रावन' ३. म. उ. स. के के मुकि, फ. कुंकुम कला।

(२) १. मो. पुच्छम दिसि, अ. पश्चिम, फ. पश्चिम बास, स. पच्छि दिस्सि। २. ना. में पुरि, शेष सब में 'पुर'। ३. म. तिह। ४. धा. रष्षइ तिय, मो. रषु (= रष्षउ) जाय, अ. फ. ना. ले (लै—ना.) रषि,

म. उ. स. रष्षौति, द. रष्षौ जाइ। ५. धा. वास, म. आवास।

टिप्पणी—(१) रष्षत < रक्षित=भृत्य। (२) अवास < आवास।

[३०]

दोहरा—आयस[१] रावन[२] सथ्थि चलि असिय सहस[४] तिहि[५] सथ्थि[६]। (१)
जि भर भूमिह ठिल्लन कहइ*[१] त मेरु भरहिं मनु वथ्थ[२] ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचन्द के] आदेश से रावण उसके साथ चला, और अस्सी सहस्र [भट] उसके साथ चले। (२) [वे भट ऐसे थे] जो भूमि को ठेल देने के लिए कहते थे, और जो [ऐसे लगते थे] मानो व्यस्त (अलग-अलग—एक-एक) मेरु को धारण कर सकते थे।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. अ. फ. ना. आइस। २. धा. राइन, फ. राउन। ३. धा. अ. फ. म. उ. स. सथ्थ। ४. म. ना. द. उ. स. अयुत (अजुत—ना.) एक। ५. धा. भर, अ. फ. म. उ. स. भट। ६. मो. में सथि, शेष सब में 'सथ्थ'।

(२) १. मो. जि भर भूमिह दि गि कहि (=कहइ), धा. भिर भुम्मिहिठिल्लन कहइ, अ. फ. जि भर भुम्मि ठिल्लन कहै, ना. जे भर भुमि छिल्लन कहैं, द. म. उ. स. अग्ग (अँग—म., अग्गौ-द.) राह सु (सौ—म.) संचरै। २. मो. त मेरु भरहि मनुमथि, धा. मेरतरिक्ष मुनिवथ्थ, अ. फ. मेर (फेरु—फ.) भरहि उठि वथ्थ, ना. म. उ. स. मेर (मेरु—ना.) उचावहि (उचावै—ना.) वथ्थ (हथ्थ—म.)।

टिप्पणी—(१) भर < भट। (२) भर < भृ=धारण करना। वथ्थ < व्यस्त=अलग अलग।

[३१]

दोहरा— सकल सूर सामंत घन[१] मधि कविता किय[२] चंद। (१)
प्रथिराज सिंघासन ठयउ*[१] जनु पर पुर उग्गयउ*[२] इंद[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) समस्त शूर, और घने सामन्त थे और सबके मध्य में चन्द ने कविता की। (२) पृथ्वीराज सिंहासन पर [इस प्रकार] स्थित था मानो शत्रु (वृत्र) के पुर में इन्द्र उदित हुआ हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. म. ना. द. उ. स. तहाँ (तहँ—ना.) सु (स. द. में यह शब्द नहीं है) सूर सामंत मिलि। २. ना. मध्य कवित्त किय, म. स. मधि नायक कवि, द. मधि कविता किव।

(२) मो. पृथीराज सिंघासन (< स्यंघासन) ठयु (=ठयउ), धा. प्रिथिराज सिंघासनहि, अ. फ. पृथियराज सिंघासनह (सिंघासनहि—फ.), ना. म. उ. स. प्रथीराज (प्रिथीराज—म. ना.) सिंघासनह। २. धा. पुररप ऊग्यो, मो. जनु पर पुर उग्यु (=उग्गयउ), अ. फ. जनु उयपरु (पर—अ.) पर, ना. मनु पर पुर उग्यौ, द. उ. स. जनु परिपूरन (परपूरन—द.). म. मनहु प्रिथीपर। ३. धा. फ. इंदु।

टिप्पणी—(२) ठा < स्था उग्ग < उद्+गम् इंद < इन्द्र

[३२]

दोहरा— भइत[1] निसा[2] दिसि मुदित विभु[3] उड नृप[4] तेज विराज । (१)
कथिक[1] सथ्थ[2] कथ्थहि कथा[3] सुष्ष सयन[4] प्रथिराज ॥ (२)

अर्थ—(१) निशा हो गई, दिशाओं में उसका वैभव मुद्रित हो गया और उडुगणों के राजा—चंद्रमा—का तेज विराजने लगा। (२) कथकसभा में कथा कहने लगा, और पृथ्वीराज सुखपूर्वक शयन [करने लगा]।

पाठांतर—(१) १. धा. अयत, फ. भइतु, ना. भईति। २. अ. फ. नुसा (तुसा—फ.)। ३. धा. दिसि मुदित वनु, अ. फ. दिन मुदि वनु, द. म. उ. स. दिन मुदित विनु (विन—म.), ना. दिशि मुदित बिनु। ४. उ. स. उडपति।

(२) १. फ. कत्थकि, द. कथकि, ना. उ. स. कथक, म. कथा। २. अ. फ. कथ्थ, म. उ. स. साथ ३. धा. कथहि त कथा, अ. फ. कथ्थति ति सथ (सव—फ.), द. कथ्थहि कथं, म. कथत कथा। ४. फ. सुष सय मृग, म. सुष्ष सुपन।

टिप्पणी—(१) मुदित < मुद्रित। (२) सथ्थ < सार्थ=प्राणि—समूह, सभा।

[३३]

दोहरा— मृदु[1] मृदंग धुनि संचरिय[2] अलि[3] अलाप[4] सुध[5] विंदु[*6] । (१)
तार[1] त्रिगांम उपंग[2] सुर अवसर[3+] पंग[4] नरिंदु[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) [इसी समय] मृदु मृदंग-ध्वनि संचरित हुई, अलि (सखियों-गायिकाओं) के आलाप, जो सुधा-बिन्दु [के समान] थे, [संचरित हुए], (२) और ताल के तीनों ग्राम तथा उपंग [वाद्य] के स्वर [भी] पंगराज (जयचंद) के अवसर (नृत्य-संगीत-समारोह) में [संचरित हुए]।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

× चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

(१) मो. मनु, म. त्रिद। २. अ. धुनि संचरिग, फ. धुनि संचरग, ना. ध्वनि संचरिग। ३. धा. अलिय, म. अक। ४. म. अलीप। ५. ना. सुधि। ६. मो. चंदु. धा. बिंद, ना. छिंद, फ. छंदु, अ. छंद. म, बिंद, उ. स. व्यंद (=विंद)।

(२) १. ना. द. म. उ. स. ताल। २. धा. त्रिगामउ पसर, अ. त्रिगम्य उपंग, फ. नगम्यौ पंग, म. त्रिगाज उप्रंग, स. त्रिग्गम उपंग। ३. धा. अउसर, फ. म. उ. स. औसर। ४. फ. ना. पंगु। ५. फ. परिंदु।

टिप्पणी—(२) तार < ताल।

[३४]

दोहरा— झलन[1] दीप दिम[2] अगर रस स[3] फिरि घनसार तंमोर । (१)
जमनि कपट[1] उच महिल मुख[2] लतु[3] सरद अभ्भ ससि[5] कोर ॥ (२)

अर्थ—(१) दीपों में जलने के लिए अगुरु-रस दिया—डाला—गया, और घनसार (कपूर) तथा ताम्बूल [सभा में] फिरे (घुमाए—वितरित किए—गए)। (२) यवनिकाओं (आच्छादक पटों) के कपड़ों में [से झाँकते हुए] महिलाओं के उत्तम मुख [ऐसे प्रतीत होते थे] मानो शरद के अभ्र (बादलों) में [से निकलती हुई] शशि की कोरें हों।

यह छन्द अ. फ. प्रतियों में छूटा हुआ है अतः पाठान्तर उसी शाखा की ६० संख्यक भागचन्द के लिए लिखी गई भा. प्रति से दिया जा रहा है।

पाठान्तर—(१) १. म. उ. स. ज्वलन। २. ना. म. दीय। ३. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है।

(२) १. धा. जमिनि कपट, ना. जिमनि कपट, म. जमनि निकट्टप। २. मो. उच्च महुल सुख, धा. अनमहिल सुष, ना. द. म. उ. स. उच (उव–म.) महल सुष (सुष–म. ना.), भा. उच्च महल किंव। ३. मो. जानुं, धा. ना. में यह शब्द नहीं है। ४. द. म. उ. स. अम, भा. ना. अभ्र। ५. द. सिसि।

टिप्पणी—(२) १. जमनि < यवनी। कपट < कर्पट=कपड़ा। उच्च < उच्च=उत्तम। अम्भ < अभ्र।

[३५]

दोहरा—तत्त[१] धरम्मह मंतु[२] यह[३] रत्तह काम सु वित्तु[४]। (१)
ता काम[१] विरुध्ध न विधि[२] किअउ*[३] नित्त[४] नितंबिनि[५] नृत्तु[६]॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद ने कहा,] "धर्म का तत्त्वपूर्ण मंत्र यही है कि चरित्र काम में रत हो, (२) [अतः] उस काम के अविरोध के लिए [मैंने] नित्य नितंबिनी नर्तकियों के नृत्य का विधान किया है।"

यह छंद भी अ. फ. प्रतियों में छूटा हुआ है, अतः इस छन्द का भी पाठान्तर उसी शाखा की उपर्युक्त भा. प्रति से दिया जा रहा है।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. तत्तु, म. उ. स. तात, द. तत्र। २. मो. धरम्मह रुत्तु, धा. धरम्मह मत्तु, भा. धरामहि तत्तु, ना. धरम्मह मत्त। ३. धा. जाह, ना. म. उ. स. इह। ४. मो. ना. वित्त, धा. वित्तु शेष में 'चित'।

(२) १. ना. द. म. ता काम, शेष सभी में 'काम' मात्र। २. म. उ. स. नि विद्ध, द. निविध, ना. निवध। ३. मो. कीउ (=किअउ), धा. कियो, द. म. उ. स. कीय, भा. ना. कियौ। ४. मो. नृत, द. म. उ. स. त्रित्य (त्रित–म., त्रत्य–उ. स.)। ५. म. तितंवन, ना. नितंबनि। ६. धा. नित्तु, मो. नृत, भा. ना. द. म. उ. स. नित्त।

टिप्पणी—(१) तत्त < तत्व। मंतु < मंत्र। वित्त < वृत्त=चरित्र, आचरण। (२) नित्त < नित्य। नृत्त < नृत्य।

[३६]

साटक+ [१]दीपकांगी[२] नेत्र पंगी[३] कुरंगी। (१)
कोकाक्षी*[१] कोकिला*[२] रागवे[३] भागवानी[४] (२)

अंगोले[१] लोल[२] डोलं एक बोलं अमोलं[३]।[४](३)
पुष्फांजलि[१] पंग सिर[२] राइ जयति बिम्र[३] कामदेव॥[४](४)

अर्थ—(१) [उन नितंबिनी नर्तकियों में कोई] दीपक के [लौ जैसी] अंगवाली, और [कोई] कुरंगिनी के [से] अच्छे नेत्रों वाली थी; (२) [कोई] चकवाक के [से] नेत्रों वाली, और [कोई] भाग्य वाली कोकिला [सी] रागवती थी। (३) उनकी अंगूठियाँ [उनकी घूमती-फिरती उगलियों के साथ] चपलतापूर्वक डोल (फिर) रही थीं और [उनके मुखों में] एक ही अमूल्य बोल था : (४) पंग (जयचंद) के सिर पर पुष्पांजलि डाल कर [वे कह रही थीं,] "हे द्वितीय कामदेव, तुम्हारी जय हो !"

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है। इसके स्थान पर धा. में 'धात्ती' है।

(१) १. धा. ना. द. पात्र नाम, मो. पात्रनम्रा। २. धा. अ. फ. दर्पकांगी, द. ना. दीपकंगी। ३. धा. नेतचंगी, अ. फ. नेत्रचंगी।

(२) धा. ना. कोकाछी, अ. फ. कोकाछिक, द. कोकाषी। २. धा. कोकिला, अ. द. ना. कोकिलानी, फ. कोकिलानी। ३. धा. रागंमि, अ. द. ना. रागन्, फ. रंगमे। ४. ना. भोगवानी।

(३) १. धा. अंगाल। २. द. लाल। ३. धा. एक बोल अमोल। ४. मो. में यहाँ और है:

पुष्फांजली कर मंडीत सोही मर द्वंहत विक्रकित्तीय दोय।

(४) १. मो. पुष्पांजलि, द. पुहपांजली, अ. पहुपंजुलि, फ. पुष्फंजल, ना. पुहपांज। २. द. सुभग रागही, ना. सुभग बीना। ३. धा. जयति पिय, अ. फ. जयति तुव, ना. जैत बीय, द. जयति बिय। ४. म. उ. स. में संपूर्ण छंद इस प्रकार है :—

दीपांगी चन्द्रनेत्रा नलिन अलि मिली नैन रंगी कुरंगी।
कोकाषी दीर्घनासा सुरसरि (सुसर—उ. स.) कलिरवा नारिंगी (नारिदं—म.) सारदंगी।
इन्द्रानी लोल डोला चपल मति भरा एक बोली अमोली।
पूहपा (दूहपा—म.) बानी बिसाला सुभग (सुम—म.) गिरवरा जैत रंभा सु बोली॥

टिप्पणी—(१) चंग [देशज]=सुंदर, मनोहर, रम्य। (२) अच्छि < अक्षि=आँख। रागवे < रागवइ < रागवती। (३) अंगोले < अंगुलीयक=अंगूठी। (४) पुष्फांजलि < पुष्पाञ्जलि। बिम < द्वितीय।

प्रस्तावना में दिए हुए कारणों से इस छंद के अनंतर द. के पाठ का मिलान नहीं किया जा सका है।

[३७]

दोहरा— पुष्फंजलि[१] सिर मंडि प्रभु[२] फिरि लग्गी गुर[३] पाय[४]।(१)
तरुनि[१] तार सुर[२] धरिय चित[३] अब[४] धरणि[५] निरष्षिय चाय[७]॥(२)

अर्थ—(१) अपने प्रभु—जयचंद—के सिर को पुष्पाञ्जलि से मंडित कर वे फिर गुरु के पैरों लगीं। (२) उन तरुणियों ने ताल-स्वर चित्त में धारण किए, और अब वे [नृत्य प्रारंभ करने के लिए] चाव (उत्साह) से धरणी की ओर निरखने—देखने—लगीं।

पाठान्तर—(१) १. मो. पुष्पांजलि, फ. पुष्फंजल, अ. पहुपंजुलि म उ स पहुपंजलि, ना. पुहपांजलि। २. मो. अ. फ सिर (सिर—फ) मंडि (मड फ) प्रभु, म ना उ स. दिठि नाम कर

) । ३. मो. धा, गुरु लग्गो फिरि (फिर–मो.), म. फिरि लगा गुर । ४. धा, बाइ, ना. * उ.
।
मो. तरुणी, फ. तरुन । २. मो. तार सुर, अ. रात सुर । ३. फ. धर पवित, म. धरि
. के अतिरिक्त यह शब्द किसी प्रति में नहीं है । ५. धा. धरिनि, फ. रषनु, म. धरनि,
मो. निरष्यो, उ. निष्यिय । ७. धा. उ. स. अ. फ. चाइ ।
–(२) तार < ताल । सुर < स्वर ।

[३८]

[१]ततत्तथेइ ततत्तथेइ° ततत्तथेइ°[२] सु मंडियं । (१)
थथुंगथेइ थथुंगथेइ[१] विराम काम डंडियं[२] ॥ (२)
सरीगमप्पधन्निधा[१] धुनं धुनं[२] ति रष्षियं[३] । (३)
भवंति गोति[१] अंग[२] तान[३] अंगु अंगु लष्षियं[४] ॥ (४)
कला कला[१] सु भेद भेद+ भेदनं[२] मनं मनं[३] । (५)
रणंकि झंकि[१] नूपुरं[२] बुलंति जे[३] झनंझनं[४] ॥ (६)
घमंडि थार[१] घंटिका[२] भवंति[३] भेष लेषयो[४] । (७)
कुटित्त वृत्त[१] केस पास पीत साह[२] रेषयो ॥ (८)
जति गतिस्सु[१] तारया[२] कटिस्सु भेद[३] कट्टरी[४] । (९)
कुसंम सार[१] आवधं[२] कुसंम सार उड्डु[३] नट्टरी[४] ॥ (१०)
उरप्परंभ[१] भेष रेष[२] सेषरं[३] करक्कसं[४] । (११)
तिरप्पि[१] तिप्प[२] सिष्षयो सुदेस[३] दक्खिनं[४] दिसं ॥ (१२)
सुरं ति[१] संग गीतने[२] धरंति सासने धुने । (१३)
जमाय[१] जोग कट्टरी[२] त्रिविध्ध[३] नंव संचने[४] ॥[५] (१४)
उलट्टि[१] पलट्टि नट्टने[२] फिरक्कि[३] चक्कि चाहने[४] । (१५)
निरत्तने[१] निरष्षि[२] भानु[३] बंभ पुत्ति वाहने[४] ॥ (१६)
विसेष देस ध्रुप्पदं पदं वदंन रागयो[१] । (१७)
चक्रमेष[१] चक्रवृत्ति+[२] वाल्लि ता विसाजयो[३] ॥ (१८)
उरध्ध सुध्ध[१] मंडली अरोह रोह[२] पालिनं[३] । (१९)
ग्रहंति मुत्ति दुत्तिमा[१] मनुं[२] मराल मालिनं[३] ॥ (२०)
प्रवीण वाणि[१] अच्छरी[२] मुनिंद्र मुद्र[३] कुंडली[४] । (२१)
प्रतिष्ष भेष उध्धरउ*[१] सु भोमि लो अपंडली[२] ॥ (२२)
तलत्तलस्सुतालिता[१] मृदंग धुक्कने धुने[२] । (२३)
अपा अपा[१] भयंति मे अपंति[२] जानि[३] योजने[४] ॥ (२४)
अलष्ष लष्प× लष्पने°[१] नयन° बयन[२] भूषने[३] । (२५)
नरे नरे+ नरिंद मां स[१] मेस काम सुष्षने[२] ॥ (२६)

अर्थ—(१) [उन नर्तकियों ने] 'ततत्तथेइ', 'तत्तथेइ' माँडा (विधिपूर्वक किया), (२) [तदनन्तर] 'थुंगथेइ', 'थुंगथेइ' करके काम [के अन्तर्गत] विराम को दंडित किया। (३) उन्होंने 'स रि ग म प ध नी' आदि ध्वनियों को रक्खा—प्रस्तुत किया। (४) तानों के जो भंग होते हैं, वे [उनके] भ्रमित होते समय ज्योति बन कर [उनके] अङ्ग-अङ्ग में दिखाई पड़ने लगे। (५) कला-कला (नृत्य संगीतादि) के भेद-प्रभेद दर्शकों के मन को भेदने लगे। (६) उनके नूपुर रणंकार और झंकार करके 'झनझन' बोलने लगे। (७) [उनकी कटि में लगी हुई] धार (काँसे) की, घंटियाँ [उनके नाचने से] घुमड़ने—शब्द करने—लगीं, और उनकी वेद-लेखा भी भ्रमित होने—चक्रावर्तित होनेलगी। (८) उनके लहराते और खुले हुए [सुनहले?] केश पाश स्वर्णाभ पीत रेखा [निर्मित करते] थे। (९) यति, गति, और ताल के भेद वे कटि से काटने (कुशलतापूर्वक इंगित करने) लगीं। (१०) कुसुम-शर (कामदेव) के आयुध के सदृश कुसुंभी साड़ी पहने हुए वे ओड़ (उड़ीसा के) नृत्य करने लगीं। (११) [तदनंतर] उर (हृदय) से मेघ-लेखा को लगाकर और कल शेखर (चंद्रिका—शिरोभूषण) को कलकर (१२) तिरप की तीक्ष्ण (गति युक्त) शिक्षा (कला) प्रदर्शित करती हुई उन्होंने सुन्दर दक्षिण [का नृत्य] दिखाया। (१३) स्वरों के साथ गीत [प्रस्तुत] करने में वे ध्वनियों का शासन धारण करती (मानती) थीं, (१४) और योग की काटें (कौशलपूर्ण क्रियाएँ) प्रदर्शित कर वे त्रिविध नृत्यों का संपादन कर रही थीं। (१५) वे उलटे-पलटे नृत्य करती हुई फिरकी की भाँति घूम कर चकित दृष्टि से देखती थीं। (१६) नर्त्तन में निरत वे ऐसी दीखती थीं मानो ब्रह्मपुत्री (सरस्वती) का वाहन (मयूर) हों। (१७) विशेष देशों के तथा ध्रुवपद रागों को कहती हुई (१८) वे बालाएँ चक्रवाक का वेष और चक्रवाक की वृत्ति विशेष रूप से साज (?) रही थीं। (१९) वह मुग्धा मंडली ऊर्ध्व आरोह में चलकर जब [अव-] रोह में चलती थी, (२०) तो वह ऐसी लगती थी मानो मराल-माला द्युतिपूर्ण मुक्ता-माला ग्रहण कर (चुग) रही हो। (२१) वे प्रवीणा की वाणी का आधार लेती हुई जब मुनीन्द्रों की मुद्रा और कुंडली का प्रदर्शन करती थीं, (२२) तो ऐसा लगता था मानो भूमि पर इन्द्र का [स्वर्गीय] वेष प्रत्यक्ष उद्धृत हुआ (उतरा) हो। (२३) मृदंग जब 'तलत्तलत' की तालयुक्त सुन्दर ध्वनि कर रहा था, (२४) [उसके साथ] 'अपा अपा' कहती हुई वे ऐसी हो रही थीं मानों वे आत्म-योग में लग रही हों। (२५) अलक्ष्य और लक्ष्य लक्षणों तथा नयन, वचन और आभूषणों से (२६) वे नर-नर में और नरेन्द्र (जयचन्द) में काम-सुख का [उन्-] मेष कर रही थीं।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

• चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

‡ चिह्नित शब्द मो. म. उ. तथा स. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. में यहाँ और हैः (स. पाठ) :—

उर्भ अलाप मद्धिता सुरं सुग्राम पंचमं।
षडंग तप्प मूरछं मनुं तमान संचमं।
त्रिसंग धारतं अलप्प जाप ते प्रसंसई।
दरस्सभाव नूपुरं हतन्न तान बेलई।
सुरं सपन्न तंत्र कंठ बोधि राग सामरं।
हहा हुहू निरष्षितार रंभ चित्तताहरं।

१. धा. ततंग'........मो. ततत थेई ततत थेई तततथे, अ. ततत्तथे ततत्तथे ततत्तथे, फ. तत्तथे

तत्थे तत्थे, ना. ततथेई थेई थेई, म. ततंगथेई तत्थेई तत्थेई, उ. स. ततंगथेइ तत्थेई तत्थे।

(२) मो. थथुंगथेय थथुंगथेय, धा. तथुं गथुं थं, ना. थथुंगथे, अ. तथुं गथुं गथु गथे, फ. तथुं तुथुं गथुं गथे, म. थथुं गथुं गथुं गथे, उ. थथुं गथुं गथे, स. थथुं गथुं गथु गथे। २. ना. म. उ. स. विराम काम मंडयं (मंडियं-म. ना.), अ. फ. विराम काम डंडियं।

(३) १. म. सरगमय धुंनिथी, धा. ना. सरगमम्पि धन्निधी (धन्निधा-धा.)। २. मो. धनु धनु, धा. धनिध्वनी, अ. फ. धनुद्धनि, ना. धनंधुनं। ३. ना. अ. निरष्पीयं।

(४) १. मो. फ. योति (=जोति)। २. मो. अंगि, शेष सब में 'अंग'। ३. धा. फ. तानु, म. उ. स. मानु। ४. मो. लपियं।

(५) १. धा. अ. फ. ना. कलकला, म. उ. स. कलंकलं। २. म. उ. स. सुसथ्थनं सुभेदनं (सुमादनं-म.)। ३. धा. मतं।

(६) १. मो. डकि। २. धा. नोपुरं। ३. धा. अ. फ. बुलंति ते, मो. बोलति जे, ना. म. उ. स. बुलंत झं (झे-ना. म.)। ४. अ. रनं झनं, फ. रनं जनं।

(७) १. धा. धार, अ. फ. धार, ना. धारु। २. मो. धा. अ. फ. धुंटिका। ३. म. मर्मत, उ. स. मर्मंति। ४. मो. म. ना उ. स. रेषयो।

(८) १. धा. तुटित्त छुत्त, अ. फ. तडित्त जुत्त (युत्त-फ.), ना. म. उ. स. जुटंति (जुटंत-म.) धुंट (घट-उ., पुट्टि-म.)। २. धा. अ. फ. ना. उ. स. स्याह।

(९) १. धा. जातिज्गातिसु, उ. स. लजंति गत्ति, ना. जगत्ति गत्ति, म. लजंति नग। २. अ. तारयो, फ. तारयौ, ना. नारया। ३. धा. अ. फ. करिरसुभेद (करिस्सभेद-फ.), ना. कटिसु भेद, म. उ. स. कटि प्रमान। ४. म. उ. स. कंदरी, अ. फ. सुंदरी।

(१०) १. धा. कुसम्ह सार, ना. कुसंमतार। २. मो. थं। ३. मो. कुसंम सोर उड, धा. कुसम्ह उड्ड, अ. फ. कुसम्ह (कुसुंभ-अ.) उड, ना. कुसम्म षोल। ४. ना. म. उ. स. नंदरी, अ. फ. नंदरी।

(११) १. मो. उरप्पिरंभ, धा. आरप्परंभ, अ. उरप्परंभ, फ. उरूप्परंभ, उ. स. उरंपरंभ, म. उरमयात। २. म. थाम तेष। ३. धा. सेपकं करकसं, मो. सेपकंक रकसं, ना. सेषरं करे कसं, म. सेषरं कसं कस, उ. स. सेषरं कर कसं, अ. फ. सेष किंकिनी कसं।

(१२) १. धा. अ. फ. तिरप्प (तिरुप्प-फ.), मो. तरप्पि, ना. तिरुप्प, म. तिरप्पि। २. म. तीय। ३. मो. देद। ४. मो. दक्षिनं (= दक्खिनं), धा. अ. फ. दक्खिनं, म. उ. स. दच्छिनं, ना. दष्यनं।

(१३) १. मो म. ना. सुरत्ति (< सुरंति), धा. द्विसादि। अ. फ. सुरादि, २. अ. गीवने,. ना. गातने, म. गातनो। ३. धा. सासनं धर्मं, मो. सासने धने, अ. फ. सासने धर्ना, ना. सासने धने।

(१४) १. अ. फ. लजाइ। २. मो. कठरि, अ. फ. कट्टनी। ३. अ. विविद्धि। ४. धा. नंप संचनं, ना. नंत्र संचने, अ. नंच संचनी, फ. नेव सेवनी, म. नंच संपने। ५. म. उ. स. में यहाँ और है—केवल कोष्ठकों के अन्तर्गत अंश म. में नहीं है—(स. पाठ):—

तिरप्पि लेत पातुरं सुचातुरं दिषावहीं।
कै अट्ठ ग्रेह बीय चंद भौर कै भ्रमावहीं।
छतीस राग बंधि [तार ताल ता बजावहीं।
सुक्रम्म तारधी मृदंग चित्त बंध] संचरं।
बिरम्म काम धूव बंधि चन्द्र धूव उच्चरं।
समीप रथ्थ भेदयौ जुचित्त चित्त चोरई।
अनेक भाँति चातुरी जु मन्न गेर डोरई।
सिंगार ते कलेवर परस्सि उम्भ रावके।
सिंगार सोभ पातुरं कि चातुरं सिंगार के।

(१५) १. ना. तुलट्ट। २. धा. पट्टि नट्टनं, अ. फ. पट्टि नट्टिनो, ना. पट्ट नचने, म. पटि नाचयो।

३. मो. करकि, म. फिरंकि, स. फिरहि । ४. धा. चाहनं, अ. चाहनौ, फ. वाहनौ, म. उ. स. चाहनौ, ना. वाहने ।

(१६) १. धा. अ. फ. निरत्तै, म. निरत्तिै, म. उ. स. निरत्तिनें (निरत्तिनैं–म.) । २. म. उ. स. नराधि । ३. मो. जान, अ. ना. म. उ. स. जानि । ४. मो. ना. ब्रह्मपुत्र वाहने, धा. बंभ जुत्त वाहनं, अ. बंभ पुत्त वाहनौ, फ. बंभ सुत्ति वाहनौ, म. उ. स. बंभ पुत्ति वाहनौ ।

(१७) १. धा. ध्रुपदं वदं वदंन राजयो, अ. ध्रुपदं वदन चंद्र राजयो, फ. ध्रुपदं वदत्त चंद राजयो, ना. द्रूपदं वदं वदन राजयो, म. द्रूपदे वदंन दैन राजयो ।

(१८) १. मो. चक्रमेष, अ. फ. सुक्रमेष, शेष में 'सु चक्रमेष' । २. मो. धा. चक्रवर्त्ति, म. चक्रअति, ना. चक्रवत्ति । ३. धा. वालिगा विसाजयो, मो. वालिना विसादयो, म. अ. फ. वालता विसाजयो, ना. वालना विसाजयो ।

(१९) १. मो मुष । २. अ. फ. अरोहि रोहि । ३. ना. चालनं ।

(२०) १. धा. ग्रिहंन मुत्ति वत्तिमा, ना. ग्रहंति मुत्ति दुत्तिमो, म. ग्रहंति मुत्ति दुत्तिमाल, अ. फ. ग्रहंति (गृहंति) मुत्ति उत्तिमा । २. मो. ना. मनु (=मनउ) फ. गुनौ, शेष में 'मनो' या 'मनौं । ३. ना. फ. बालनं ।

(२१) १. मो. प्रवाण वाण, अ. फ. प्रवीण वाण, ना. म. उ. स. प्रवीण वान । २. धा. अंधरी, अ. फ. अद्धरं, ना. म. उद्धरी, स. उद्धरं । ३. धा. मनिद्र मद्, अ. फ. सु विद्रुमंति (विद्रुमंति–फ.) । ४. फ. कुंडला ।

(२२) १. मो. प्रतिष्यमेष उवरु (=उवरउ), धा. ना. प्रतच्छ (प्रत्यष्य–ना.) मेषयो धस्यो (धस्यौ–ना.), फ. प्रतक्ष मेषयौ धरयौ, अ. प्रतछ्छि मेषयो धरयो, म. उ. स. प्रतषि (प्रतष–म.) मेष बद्धरयौ । २. मो. सु भोमिलो यषंडलो, धा. अ. फ. सु भूमि लो अषंडलो (अषंडला–फ.), ना. उ. स. सु भुम्मि (भूमि–ना.) लोइ षंडली, म. सुभूमि लोपि षंडली ।

(२३) १. धा. तलत्तलस् सुतालिना, अ. तलत्तलस्सुतालता, फ. भलतलतल सुतालिना, उ. तलं तलं सुना, स. तलं तलं सुतालता, म. तलं सलं सुतालता । २. मो. धूकने धुने, धा. धंकने धने, अ. धुंकनो धुने, फ. धुंकनो धने, उ. स. धुंकने धने, म. धुकने धनै ।

(२४) १. मो. अपु अंपु, शेष में 'अपा अपा' । २. धा. जुपंति, म. जपंत, अ. फ. ना. जपंति । ३. मो. यानि, धा. अ. फ. ना. जान । ४. म. ज्यों जमैं, उ. स. ज्यों जने, अ. फ. योजले ।

(२५) १. म. उ. स. अलाव लाष लावने । २. धा. अ. फ. ना. बैन, म. उ. स. बैंन (बैन–म.) । ३. धा. भूषने ।

(२६) १. धा. नरे जुरे नरिंद मास, मो. नरे नरेंद (< नरिंद) मास, फ. नरे नरे नरिंद सास, ना. नरे नरे नरिंद मां सुनेम, म. उ. स. नरे नरिंद मास मेस । २. धा. मो. सेव काम सुष्षने (सुष्षन–धा.), अ. फ. सेव काम सुष्षले ।

टिप्पणी—(८) झुटित [दे.] = प्रवाहित । खुत्त < क्षिप्त (?) = निमग्न, डूबा हुआ । साह < श्लाघ्य । (१०) उड्डु < ओड् । (११) परंभ < प्रारंभ । (१४) यन=प्रदर्शित करना । (२२) अखंडलल < आखंडल=इंद्र । (२४) अप < आत्म । (२५) अलष्ष < अलक्ष्य । लष्ष < लक्ष्य ।

[३६]

दोहरा— जाम एक छनदा घटित[१] ससिहू सत्ति[२] निवारि[३] । (१)
कहुं[१] कामिनि[२] सुख रति समर[३] नृपतिहु[४] नींद विसारि[५] ॥ (२)

अर्थ— (१) एक प्रहर रात्रि [जब] समाप्त हो गई, और शशि ने भी अपनी शक्ति का निवारण किया, (२) कहीं पर कामिनी के सुख-रति-समर में नृपति (जयचंद) ने भी नींद भुला दी।

पाठांतर— (१) १. मो. याम (= जाम) एक दकह घटित, धा. जाम एक छनि रास घटि, अ. फ. जाम एक छिनदाछ (छिनदथ–फ.) घट, ना. जाम एक पिनदा छनिद, स. जाम एक षिन दछिन घट, म. जाम एक छिनदा निघट, उ. जाम एक छिन छिन घट। २. धा. अ. सत्तिहु सत्ति, फ. सातिहुं सत्त, ना. सतमी सत्त, म. उ. स. सत्तमि सत्त। ३. धा. नवारि, म. उ. स. निवार।

(२) १. धा. अ. फ. किहु (किहु–धा.) ना. कहौ (< कहुं), स. कहु। २. ना. कामनि। ३. म. सिपर। ४. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. श्रिप निय। ५. मो. धा. ना. उ. स. नींद निवारि (निवार–म.), अ. फ. नीय विसरि।

टिप्पणी—(१) छनदा < क्षणदा। सत्ति < शक्ति।

[४०]

साटिका— सुख्खं सुख्ख मृदंग[१] तार[२] जघनो[३] रागं[४] कला कोकनं[५]। (१)
कंठी[१] कंठ सुभासनं+ समइतं+[२] कामं+[३] कला+ पोषनं+। (२)
उर+ भी+ रंभ+ किता[१] गुणं हरिहरो[२] सुरभीय पवनापिता[३]। (३)
एवं[१] सुष सकाम[२] कुंभ गहिता[३] जयराज[४] रात्रि[५] गता॥ (४)

अर्थ—(१) [रति-] सुख में [संगीत-] सुख का, [कामिनी के] जघनों (नितंबों) में मृदंग के ताल का, कोक-कला में राग-कला का, (२) [कामिनी के] कंठ में [गायिकाओं के] कंठ का, यहाँ [कामिनी के] सुभाषण में [गायिकाओं के] सुभाषण का, [इस प्रकार जयचंद ने] काम-कला में [संगीत-] कला का पोषण किया। (३) [उसने] पुनः [कामिनी के] उर से [परि-] रंभण करते हुए [रात्रि के अंतिम पहर में मानो] हरि और हर के गुणों से [रंभण] किया, और निःश्वास-सुरभि को [देवार्पित सुरभि के समान] पवनार्पित किया। (४) इस प्रकार सुख-[पू]र्वक काम-कुंभों (कुचों) को ग्रहण किए हुए राजा जयचंद की रात्रि व्यतीत हुई।

पाठान्तर— + चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

(१) १. धा. अ. फ. ना. उ. स. म्रिदंग, मो. मदंग, म. डादंग (< अदंग)। २. म. अ. फ. ताल, [उ]. स. तल। ३. मो. जयनो, धा. जयने, अ. जपनो, फ. जपुतो, ना. जघना, म. उ. स. जघनं। ४. मो. [रा]ज्यं। ५. धा. ना. कोकिलं, म. कंहतं।

(२) १. म. कंती, अ. फ. कंठं। २. धा. सुवासिनं मनयितं, मो. सुभासनं ममइतं, म. उ. स. [सु]भासने समजितं, ना. सुभासने ममजितं। ३. मो. कांतं।

(३) १. धा. उभ्रोरंभ पिता। २. मो. म. उ. स. हरहरो, धा. हरिहरा। ३. धा. सुभ्रीय चवना[पि]ता, मो. सुरभीय पवनापतो, अ. फ. सुभ्रीय पवनापिता, ना. म. उ. स. सुरभीय (सुरभी अ–म.) [प]वनं पता।

(४) १. धा. अ. फ. ए सह। २. धा. सुक्ख सुखाह, ना. सुष्प सुकाम, म. उ. स. सुष्पह काम, [अ]. फ. सुष्प सुहाय। ३. मो. कुं गहिता, धा. तार सहिता, ना. कुच कुंभ गहिता, अ. फ. कुंभ महिता।

४. धा. जै राय, ना. जैराइ, अ. फ. राजाय, म. जयराज । ५. मो. म. उ. स. राजं, धा. अ. फ. राज्यं ।

टिप्पणी—(१) मदंग < मृदङ्ग । तार < ताल ।

[४१]

साटिका— कांती भार पुरा[1] पुनर्मद गजं[2] शाखा न गंडस्थलं[3] । (१)
उच्छं[1] तुच्छ तुरा[×] स[×] शशि[×] कमनं[2×] करि[3×] कुंभ[×] निद्धादलं[4×] । (२)
मधुरे[×] साइ[×] सकाइता[×] अलि[×] कुलं[1] गुंजार गुंजा तहा[2] । (३)
तरुणो[1] प्राण लटापटा पग पगं[2] जयराज संप्रापता[3] ॥ (४)

अर्थ—(१) कांति-भार से पूरित और मद गज [के समान मकरन्द चुवाती हुई] यह [पुष्प-तरु की] शाखा है न कि [मद-बिन्दु गिराती हुई मद गज की] गंडस्थली है, (२) यह ओछा—नीचे जाने वाला—तुच्छ शशि है, जो त्वरा के साथ क्रमण (गमन) कर रहा है और जो हाथी के निर्घाटित (निकाले हुए) कुंभ जैसा है; (३) उसी प्रकार यह अत्यंत शंकित मधुकर-कुल है जो कि [गजों के मदगंध से आकृष्ट अलि-कुल की भाँति] मधुर गुंजार कर रहा है; (४) [ऐसी उन्मत्ता-कारिणी प्रातःकाल की वेला में] तरुण प्राणों वाला, किन्तु [रात्रि में जगे रहने के कारण] लट-पट पग रखता हुआ, राजा जयचंद संप्राप्त हुआ— आ पहुँचा ।

पाठान्तर—+चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. मो. कांता भार पुरा, अ. कांती भार पुरा, ना. कान्तो भारपुराण । २. मो. पुन मदि गजं, धा. अ. फ. पुनर्मदगजे (पुनरमद गज—धा.), म. उ. स. नयौ (नयो—म.) विगलिता । ३. अ. फ. गंडस्थली, ना. गइ्लच्छनं, मो. म. उ. स. गइ्लस्थलं (गल्हस्थलं—म.) ।

(२) १. धा. उच्छं, शेष सभी में 'तुच्छं, । २. धा. पुष्प कानलं, मो. शसि कमल, अ. फ. पुष्प कमलं, ना. लम्बि कमले, म. उ. स. लग्गि कमनं । ३. मो. में 'करि', शेष सभी में 'कलि' । ४. मो. निद्धादलं, उ. स. निंद्धादलं, ना. निद्रादलं, म. निद्धादलं ।

(३) १. मो. मधुरे शक शका सकं अलिकुलं, धा. मधुरे साय सकाय कुंभ रसिता, म. उ. स. मधुरे (मुधुरे-म.) माधुरयासि (स—म.) आलि अलिनं, अ. मधुरे सास सकाइता अलिकुलं, फ.—लं, ना. मधुरे माधुरयासि दलनी अलिमरा । २. धा. गुंजार गुंजारया, अ. फ. गुंजार गुंजारवं, म. अलि और गुंजारया, उ. स. अलिभार गुंजारया, ना. गुंजार गुंजातया ।

(४) १. अ. फ. तरुणे, म. तरुनं । २. धा. लटा पटप्पगयरा, अ. फ. लटा पट पग पगः, ना. लटा लट पग, म. उ. स. लुटीय पंग जजिया । ३. मो. जयराज राजं गतं, धा. जइराय संप्रासितं, अ. फ. जैराइ संप्रापता, ना. जैराइ संप्रापिता, म. उ. स. राजंगता सांप्रतं (संप्रति—म.)

टिप्पणी—(२) उच्छ < तुच्छ=ओछा । तुरा < त्वरा । कमन < क्रमण । निद्धादलं < निद्धाडियं < निर्घाटित= निष्कासित । (३) साइ < साति=अत्यंत । तहा < तथा ।

[४२]

दोहरा— प्राति[1] राउ[2] संप्रापतिग[3] जहाँ[4] दर देव[5] अनूप । (१)
सयल[1] करइ[*2] दरबार जिहिं[3] सत्त[4] सहस अस[5] भूप ॥ (२)

अर्थ—(१) प्रातः राजा (जयचंद) वहाँ पर संप्राप्त हुआ— पहुँचा—जहाँ पर [उसका] अनुपम

देव [तुल्य] दल था। (२) वह ऐसा भूपति था कि समस्त शान सहस्र [सामंत ?] जिसका दरबार करते थे।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) धा. फ. म. में 'प्राति' शेष में 'प्रात'। २. म. उ, स. राज। ३. धा. संपरपतिग, ना. संप्रापतिन। ४. मो. जाहो, धा. जह, अ. फ. म. उ. स. जाहं (जह—ना.)। ५ फ. देउ। ६. मो. अनोप (=अनूप), शेष में 'अनूप'।

(२) १. धा. सयल, शेष सब में 'सयल'। २. मो. करि (=करइ), धा. अ. म. उ. स करहि, (करहि-धा.) फ. करैं, ना. करे। ३. धा. जखि, अ. फ. जहँ, उ. स. तहँ, म. तहां, ना. तह। ४. धा. मो. अ. फ. सात, ना. म. उ. स. सत्त। ५. मो. अंस, धा. फ. जिहि, अ. जह।

टिप्पणी—(१) दर < दल। (२) सयल < सकल।

[४३]

दोहरा— मिसि[१] बज्जहि[२] गंगह रवनि[३] दान° कवि° पति° सेइ[४]। (१)
चढित[१] सुषासन सवुह* हुअ[२] सब[३] सामंत[४] समेव*[५]॥ (२)

अर्थ—(१) वाद्यों के मिष (ब्याज से) रमणीय गंगा की सेवा करके दान और कवियों का पति (जयचन्द) (२) सुखासन पर चढ़ कर सब सामंतों के समेत समुहाया (सम्मुख निकल पड़ा)।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० धा. में चिह्नित शब्द छूटे हुए हैं।

(१) १ धा. ना. निसु, म. अ. फ. मिस। २. धा. बाजत, फ. बज्जिह। ३ धा. अ. फ. गंगा (गंगा—अ. फ.) नदिव, मो. गंगह रवनि, उ. स. गंगाभरन, म. गंगा रवन। ४। धा.''' मोह, अ. फ. कवि पति भ्रत (भ्रति—अ.) मूह (समूह—फ.), मो. दान कवि पति सोइ, म. ना. उ. स. दान कवि (कविस -म., कवी—ना. स.) पति सेव।

(२) १. उ. स. अ. फ. चढत, म. चढ। २. मो. सषासन समह (= समुह ?) हुअ, धा. सुषासन संमुहो, अ. फ. म. उ. सुषासन संमुहो, ना. सुषासनं संमुहे। ३. धा. जहि, अ. फ. ना. उ. स. जहं, म. जहां। ४. अ. फ. सावंत। ५. धा. समोह, मो. समेत, म. ना. उ. स. नृपेव, अ. फ. समूह।

टिप्पण.—(१) रवनि < रमणीय। (२) समेव < समेअ < समेत।

[४४]

दोहरा— दस हथ्थिअ[१] मुत्तिअ सघन[२] सत तुरंग जिति भाय[३]। (१)
दव्वु[१] सरस[२] बहु[३] संगि[४] लिय भट्ट समप्पण[५] जाय[६]॥ (२)

अर्थ—दस हाथी, सघन (बहुत से) मोती, सौ घोड़े, जो जितने भी भाव (रूप-रंग) के हो सकते थे, (२) तथा बहुत सा सरस (सुंदर) द्रव्य संग में लेकर भट्ट (चंद) की समक्षा में [जयचंद] चल पड़ा।

पाठांतर—(१) १. म. उ. स. सीस करिय (करी–म. उ.)। २. धा. सयनु, मो. सधन, फ. सयनु। ३. धा. सात तुरंग पट भाइ, ना. शत तुरंग जिति गाइ, फ. सत्त तुरंग बौहु भाउ, अ. सत तुरग बहु भाइ, उ. स. हूं सं (सं–उ.) तुरंग बनाय, म. हूं सं चपल तुरंग।

(२) १. मो. द्रव्य, धा. द्रव्व, अ. फ. दव्व, (दव्वु–अ.) ना. दिव्य। २. धा. दरिस, अ. फ. दरस (दरसु–अ.), उ. स. बदर, म. दरक, ना. सर्व। ३. फ. बौहु, ना. तिहि। ४. मो. संग, म. संगि, शेष में 'संग'। ५. मो. भट्टसमप्पण, ना. भट्टन समप्पन, उ. स. भट्ट समंपन, म. भट्ट संपन चलि। ६. धा. अ. फ. जाइ, मो. ताय, न. राइ, म. अंग।

टिप्पणी—(२) समष्ष < समक्ष।

[४५]

कवित्त— गयउ[१] राय मिल्लान[२] चंद बिरदिआ[*३] समष्षन[४]। (१)
देषि[१] सिंघासन ठयउ[*५] इह त बिट्ठइ[३] इंद[४] नन[५]। (२)
बहुत किअउ आलाप[१] आउ[२] कनवज्ज मुकट[३] मनि[४]। (३)
इह दिल्लिअसुर[१] दत्त बियउ[*२] मन कहूं[३] तुम्ह गिनि[४]। (४)
थिरु रहहि[१] थवाइत बज्र कर[२] छंडि सकारह षिनुक रहि[३]। (५)
जिहि+[०१] असी[०२] लष्ष[०] पल्लाणिइहि[३०] तिहि[*४] पांन देहि दिढ हथ्थ[४] गहि॥ (६)

अर्थ—(१) राजा (जयचंद) [चंद के] मिल्लान (डेरे) को चंद बरदिया को समक्षता मे गया, (२) [तो] वह सिंहासन को देख कर रुक गया, [और उसने मन में कहा,] "यह तो मानो इंद्र बैठा है।" (३) [चंद ने जयचंद से] बहुत आलाप (वार्तालाप) किया और कहा, "हे कन्नौज-मुकुटमणि, आओ। (४) यह दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) का दिया हुआ है, तुम किसी और का [दिया हुआ] कहीं न गिनो (समझो)।" (५) [तदनंतर पृथ्वीराज से चंद ने कहा,] "हे ताम्बूल-वाहक, तू स्थिर रह (ठहर), और [अपने] वज्र कर को छोड़ कर एक क्षण [जयचंद के] सत्कार में रह। (६) जिसके अस्सी लाख [घोड़े] पलाने (कवचादि से सुसज्जित किए) जाते हैं, उसे तू दृढ़ हाथों से ग्रहण कर पान दे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।
+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. गयु, (=गयउ), धा. गयो, म. ना. उ. स. गयौ। २. धा. अ. फ. राज मिल्लान, ना. राइ मिलान, म. राव मिलांन, उ. स. रायस मेल्हान। ३. धा. बरदिइइ, अ. बरदियइ, फ. बरदियहि, ना. बरदीए। रचना में अन्यत्र बिरदिया ही है, यथा: ३.२९, ४.१, ५.१९, १२.४०, ८.११, ८.१४। ४. धा. ना. समप्पन (समप्पनु–ना.), म. समंपन।

(२) १. मो. म. उ. स. देषि, धा. अ. फ. दिक्खि, ना. दिक्ष। २. मो. ठयु (=ठयउ), धा. ठयो, ना. म. ठयौ, स. सज्यो। ३. धा. अ. फ. इह जु (ज–फ.) बयठयउ (बैठौ–फ.; धा. में अंतिम शब्द नहीं है), म. ना. उ. स. पास पारस्स (पारंस–म.)। ४. धा. [इं] दु, ना. इंदु, म. उ. स. अ. फ. इंद्र। ५. म. उ. स. अ. फ. जनु (जन–म.)।

(३) १. मो. बहुत कीउ (= किअउ) आलाप, अ. फ. बहुत कियउ (कियौ–फ.) आलापु, म. ना.

उ. स. कवि आदर बहु कियौ । २. फ. आउ, म. देषि, ना. कहै । ३. ना. सुगट । ४. फ. मण ।

(४) १. धा. द तु दिल्लीसर । २. मो. बीसु (= वियउ), धा. दियो, शेष में 'वियौ' । ३. धा. तहि गिन्यो, अ. फ. नहि गनौ, उ. स. नहि गनं, म. नहि गिनै, ना. नहि कहुं । ४. धा. म. फ. गनि, अ. मनि, ना. गति ।

(५) १. धा. अ. फ. रहै, मो. रहिहि, म. रहे, ना. रहि (= रहइ) । २. धा. विज्जु कर, अ. फ. ना. थिरन यन । ३. धा. छंडिस...करिहि, मो. छंडि सीकारह थिनु परिही, अ. फ. ना. छंडि (छंड—फ.) सिकारहि (सकारहि—फ.) थिनकु रहि (रहिं—ना., जिहिं—अ., जिहुं—फ.), म. छंडि यकारह छिनक रहि ।

(६) १. अ. फ. में यह शब्द नहीं है । २. ना. असीउ । ३. अ. फ. म. ना. उ. स. पलानियहि । ४. मो. तिन, ना. तिहिं, शेष में यह शब्द नहीं है । ५. फ. हिथ्य ।

टिप्पणी—(१) समष्ष < समक्ष । (२) ठय < स्थग् = रोकना, बंद करना । (४) बिय < द्वितीय । (५) थवाइत < थइआइत्त < स्थगिकावत्=ताम्बूल-पात्र-वाहक । सकार < सक्कार < सत्कार ।

[४६]

दोहरा— सुनि तंबोल पठ्ठिय सुकर[२] बर उठि दिठ्ठिय बंक[२] । (१)
मनु रोहनि सु यमुन[×] मिलिग[१] मनु[२] बिबि[३] उदित मयंक ।। (२)

अर्थ—(१) [थवाइत (पृथ्वीराज) ने] 'तांबूल' [शब्द] सुनते ही अपना हाथ प्रस्थित (प्रकर्षपूर्वक स्थित) किया, और उठकर [जयचंद को] वक्र दृष्टि से देखा । (२) [यह ऐसा हुआ] मानो रोहिणी और यमुना मिल गई हों, अथवा [एक साथ] दो मृगाङ्क (चंद्रमा) उदित हो गए हों।

पाठांतर— × चिह्नित शब्द के द्वितीय तथा तृतीय अक्षर फ. में नहीं हैं ।

(१) मो. सुनत बोल पकार, धा. सुनि समूल सा पट्ठि करि, अ. फ. सुनि समूल सा पिट्ठि किय, ना. सुनत बोल छंडिय तुरग, म. उ. स. सुनि तमोर पठ्ठिय सुकर । २. धा. अ. फ. वर उठ्ठिय डिठि (दिठि—अ., दिठ—फ.) बंक, ना. वर कर वर दिठ बंक, उ. स. बर सुप उत करि बंकौ, म. सुष उत करि दिठ बंक ।

(२) मो. मन मोहनि सुं (= सउं) मन मिलिग, धा. मनो मोहनि सु मन मलिग, अ. मनु रोहिणी यमुन मिलग, फ. मनो रोहणिय मिलगि, म. मनौं रोहिन सुमहि, स. मनु रोहिनि सों मिलिगं, उ. मनु रहिनि सा मिन मिल्लिग, ना. मनु रोहिणि सुमन मिलिग । २. फ. नन, ना. ज्युं, उ. स. ज्यौं । ३. धा. नव, अ. फ. दुइ, म. ना. बीय ।

टिप्पणी—(१) पट्ठिअ < प्रस्थित । दिट्ठिअ < दृष्टि । बंक < वक्र । (२) बिबि < द्वय । मयंक < मृगाङ्क ।

[४७]

दोहरा— भुअ बंकी[१] करि पंग[२] नृप अप्पिअ[३] हथ्थि[४] तंमोर[५] । (१)
मनहु वज्रपति[१] वज्र धरि[२] सह अप्पिअ तिहि जोर[३] ।। (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने] भौंहें बाँकी कर पंगराज (जयचंद) के हाथों में तांबूल अर्पित किया । (२) [उसका यह अर्पण करना ऐसा लगा] मानो वज्रपति (इंद्र) ने [हाथों में] वज्र धारण करके उसे जोर के साथ अर्पित किया हो ।

पाठांतर—(१) १. धा. अ. फ. भुव बंकिय, मो. उ. स. भुअ बंकी, ना. भुह (= भौंह) बंकिय, म. भौंह बंकी। २. म. ना. उ. स. कीय पंग (पंगु—ना), अ. फ. कार बंक। ३. मो. अथीय, धा. अकिग। ४. धा. म. हत्थ, अ. फ. हथ्थ, ना. अच्छि। ५ धा. तंबोल, म. ना. तंबोर।

(२) १. धा. वज्ज पति, शेष में, 'वज्र पति'। २. मो. वज्र धरि, अ. फ. वज्र गहि, धा. वज्ज गहि, ना. उ. स. वज्र धर, म. वज्रधरि। ३. धा. सह पि-यो सजोर, अ. फ. सहि अप्पियो (अफिफ्यो—अ.) सजोर, ना. सहु अप्यौ तिहि जोर, म. उ. स. सब अप्यौ (अप्पौ—उ. स.) तिहि जोर।

टिप्पणी (१) बंक < बक्र। तमोर < तांबूल। (२) जार< जोर (?)।

[४८]

कवित्त— पहिचानउ*१ जयचंद इह त२ ढिल्लियसुर पिष्षै४। (१)
नहिन१ चंद उनहारि२ दुसह दारुण तन दिष्षै३॥ (२)
करि संठउ१ करि वार२ कहइ*३ कनवज्ज मुकुट५ मनि। (३)
हय गयंद पष्षरउ१ भाजि२ प्रथिराज३ जाइ+ जिनि×४। (४)
इत्तनह*×१ कहत×२ भुअपति× चढउ×३* सुनत× सूर× किअउ×* न भउ४। (५)
पारस्व मंडि प्रथिराज कउ*१ कहइ* भले२ रजपूत सउ३॥ (६)

अर्थ—(१) जयचंद ने [पृथ्वीराज को] पहचान लिया [और उसने कहा,] "यह तो दिल्लीश्वर दिखाई पड़ा रहा है यह तो। (२) चंद की [बताई हुई] उनहार का नहीं है और दुःसह दारुण तन का दीख रहा है।" (३) "संगठन करके [इस पर] वार आघात करो," कन्नौज मुकुट-मणि [जयचंद] ने कहा। (४) "घोड़ों और गजेंद्रों को पाखरो—उनपर कवचादि डालो; पृथ्वीराज भाग न जावे!" (५) इतना कहते ही भूपति (जयचंद) ने चढ़ाई कर दी, किन्तु [पृथ्वीराज के] शूरों ने भय नहीं माना। (६) वे पृथ्वीराज का पार्श्व माँड कर—उसके पार्श्व में स्थित हो कर—कहने लगे, "हम सौ रजपूत पर्याप्त हैं।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द म. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. मो. पहिचानु (= पहिचानउ), शेष में 'पहिचान्यं' या 'पहिच्या-यौ'। २. धा. इह ति अ. फ. यह त। ३. मो. ना. ढिल्लीसुर, धा. दिल्लीसर म. उ. स. दिल्लेश्वर। ४. धा. ना. फ. लक्ख्यौ, मो. पेषै (= पिष्षै), अ. लिष्षउ, म. उ. स. लिष्यौ।

(२) १. अ. फ. म. उ. स. नहीय। २. धा. चंद उनिहारि, फ. चंद उनिहारु, ना. चंद अनुहारि, उ. स. चंड उनिहारि, म. चंदौनहारि। ३. धा. फ. अति पिक्खयौ, मो. तव दिष्षै, ना. म. उ. स. तन दिष्यौ, अ. अति पिष्षउ।

(३) १. मो. करि सुठु (= सुठउ), धा. करि संथिअ अ. करि सठ्ठु, म. उ. करि संठ्यौ, ना. कर संठौ, स. करि संठ्यौ। २. फ. करुवा, ना. करवार। ३. मो. कहि (= कहइ), धा. ना. म. कहै; फ. कही। ४. ना. कनवय। ५. म. मुकट।

(४) १. मो. हय गयंद पष्षरु (= पष्षरउ), शेष समस्त में 'हय गय दल पष्षरहु (पष्षरउ—धा., पष्षरहो—फ.),। २. ना. भज्जि। ३. धा. प्रथिराज। ४. धा. जाइ जनि, म. उ. स. जाइ (जा—म) जिन, फ. जाइ जिनु।

(५) १. मो. इतनि (= इत्तनइ) धा. इत्तनउ, अ. फ. इत्तनो, म. ना. उ. स. इत्तनौ । २. ना. म. उ. स. सोच । ३. मो. चढु (= चढउ), धा. उट्यो, म. उ. स. उठ्यौ, अ. फ. ना. चढ्यौ (चर्‌यौ–फ.) । ४. मो. किनु (= किनउ) न भु (= भउ), धा. अ. सुनि नरिंद किन्हों न भउ (किन्नौ न भौ–अ. कीनो न भौ–फ.), ना. उठी रेणु अंतक अछिन ।

(६) १. मो. पारस्व मंडि प्रथीराज कु (= कउ), धा. सावंत सूर हंसि राज सं., अ. फ. सावंत सूर हसि परसर (परसपरि–फ.), म. उ. स. सावंत (साभंत–म.) सूर हसि (हस—म.) राज सों (सौ–म.), ना. भर भरणि आउ पुज्जीय धरोय । २. मो. कहि (= कहइ) भले, धा. कहहि भला, अ. फ. कहहि भले, स. कहहि भलौ, म. कहै भुलौ, ना. प्रगट अगनि । ३. मो. रजपुत सु (= सउ), अ. रजपूत सौ, फ. म. उ. स. रजपूत भौ, ना. अविरुह वहनि ।

टिप्पणी—(१) पिष्य < प्रेक्ष् । (२) उनहारि < अनुकार । (३) संठ < संगठन । (४) गयंद < गजेन्द्र । पष्षर < पक्षधर (?) अश्वसंनाह ।(५) भुअपति < भूपति । (६) पारस्व < पार्श्व ।

---

६. संयोगिता-परिणय

[१]

दोहरा— सुनउ*[१] सबे सामंत हो[२] कहइ न्रिपति[३] प्रथीराव[४] । (१)
जउ अछछउ*[१] षिन षेतरइ*[१] तउ*[२] दक्खिन नयर[३] विराज ॥[×] (२)

अर्थ—(१) राजा पृथ्वीराज ने कहा, "अहो, सभी सामंत सुनो । (२) यदि तुम क्षण भर [रण–] क्षेत्र में रहो, तो नगर की प्रदक्षिणा विराजे (हो जाए) ।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित चरण म. में नहीं है ।

(१) १. मो. सुनु (= सुनउ), धा. अ. फ. सुनहु, ना. म. उ. स. सकल । २. धा. सब्ब सामंत हह, अ. सद्ध सावंत हो, फ. सब्ब साउंत हौ, ना. म. उ. स. सूर सामंत सब । ३. मो. किहि (= किहइ) न्रिपति, धा. कहै न्रिपति, ना. म. उ. स. वर बुल्यौ । ४. धा. ना. प्रिथिराज ।

(२) १. धा. अ. फ. जउ अच्छहु खिन खित्त (षित्ति–फ.) महि, (मइ–अ. फ.) मो. जु (=जउ) अछु (= अछउ) षिन षेत मि (= मइ), उ. स. जौ रहौ षिन षेत मैं, ना. जौ अछो छितु छित्त मैं । २. ना. तौ (< तउ); शेष में यह शब्द नहीं है । ३. मो. दक्षन (= दक्खन), धा. दक्खिन नयर, ना. दष्यन नगर, म. उ. स. देषौं नगर ।

टिप्पणी—(१) हं < अहो । (२) अछ < अस् । दक्खिन < दक्षिणा=प्रदक्षिणा ।

[२]

दोहरा— बोलउ*[१] कन्ह[२] अयान[३] न्रिप मति मंडन समरथ्थ[४] । (१)
जउ[१] मुकइ*[२] सथ सथ्थियनु[३] तउ*[४] कित लिये*[५] सथ्थ ॥ (२)

अर्थ—(१) कन्ह बोला, "हे अजानी राजा, तू मति माँडने (बातें बनाने) में समर्थ है; (२) यदि तू [अपने] साथियों का साथ छोड़ता है, तो तूने उन्हें साथ ही क्यों लिया ?"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. बोलु (= बोलउ), धा. अ. फ. बुलिय, ना. बुले, उ. स. बोल्यो, म. बंल्यौ । २. मो. कंन, फ. कहि, शेष में 'कन्ह' । ३. धा. अ. ना. आयान, फ. अज्जानु । ४. म. उ. रे मत मंडन समत्थ (समथ्थ–उ.), स. रे मत मंड समथ्थ, अ. फ. मति मंडन असमथ्थ ।

(२) १. मो. जु (=जउ), धा. जउ, म. अ. फ. ना. जौ, उ. स. जो । २. धा. मुकहि, मो. मुकि

(=मुक्कइ), अ फ म. उ. स. ना. मुक्क । ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. सत्त सथ्थियन (सत्थअन–धा.), मो. सथ सथीअनु । ४. मो. तु (=तउ), धा. तो, अ. ना. म. उ. स. तौ, फ. मौ । ५. मो. किन लेनि) रघी.=किकतन लने ,)हसि, अ. लिन्है कत, फ. लिहौ कत, ना. कति लिन्है, उ. स. कित लायौ, म. किम लायौ ।

टिप्पणी—(२) मुक्क < मुच् ।

[३]

दोहरा— जउ[1] मुक्कउं[2] सथ[3] सथ्थिअनु[4] तउ[*5] संभरि कुल लज्ज[6] । (१)
दक्खिन करि[1] कनवज्ज कउ[*2] फुनि[3] संमुह[4] मरणज्ज[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने उत्तर दिया,] "यदि मैं [अपने] साथियों का साथ छोड़ दूँगा तो शाकंभरी [का चहुआन] कुल लज्जित होगा। (२) [मुझे तो] कन्नौज की प्रदक्षिणा करके फिर [रण-क्षेत्र में–] सम्मुख मरना है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. जु (=जउ), धा. जउ, शेष सब में 'जौ'। २. मो. मूकुं (= मूकउं), फ. मुकौ, म. मुंकौ, उ. स. मुकौं, ना. मुकै। ३. मो. ना. 'सथ', शेष सभी में 'सत'। ४. ना. सत्थीयन। ५. मो. तु (=तउ), धा. तो, शेष में 'तौ'। ६. मो. धा. 'लाज', शेष सभी में 'लज्ज'।

(२) १. मो. दखिन (= दक्खिन) करि, म. उ. स. दिष्षन करि, ना. दष्षन करि, अ. फ. दष्षिन कर। २. मो. कुं (= कउं), धा. अ. कहुं, ना. फ. कौ, म. कौं, उ. स. कौं। ३. धा. अ. फ. ना. पुनि, उ. स. फिर, म. फिरि। ४. मो. संमह, म. संमुष। ५. धा. मो. मरणाज (मरनाज–धा.), ना. मरणिज्ज, शेष सभी में 'मरनज्ज'।

टिप्पणी—(१) मुक्क < मुच् = छोड़ना। (२) दक्खिन > दक्षिणा = प्रदक्षिणा।

[४]

दोहरा— भय[1] टामंक[2] दिस्सइ[*]न दिसि[3] बहु पष्षर महराउ[5] । (१)
मनुं[1] अकाल ट्टिड्डिअ[2] सघन सु पव्वइ[*3] छुट्टि[4] प्रवाह[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) [इधर] ऐसी टामंक (धुंधलाहट) हुई कि दिशाएँ नहीं दिखती थीं, [क्योंकि] पाखरों (संनाह से सुसज्जित अश्व-सेना) का बहुत महराव (घिराव—आक्रमण के लिए एकत्रीकरण) हो गया था। (२) [ऐसा लगता था] मानो अकाल प्रस्तुत करने वाली सघन टिड्डियों का प्रवाह पर्वत से छूट पड़ा हो।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. भइ, फ. भे, म. उ. स. भौ, ना. भयौ। २. अ. समक, फ. समंकि। ३. मो. दिसि (= दिसइ) न दिसि, धा. दिसि विदिस हुइ, अ. दिसि बिदिसि मिलि, फ. दिस विदस मिलि, ना. दिशि विदिसि दिसि, म. उ. स. दिसि (दिस–म.) विदिस कहु। ४. धा. छोह, ना. छुलि। ५. धा. तिहराउ अ. फ. महराव (भहराव–फ.), म. बहुराह, उ. स. बहुराव, ना. भहराइ।

(२) १. म., धा. अ. उ. स. ना. मनु (मनु ना. अ.), म. जना । २. म., अकाल टडाअ, धा. अकाल तिडिय, फ. अकास लिटिडिअ, ना. म. अकास टिडी । ३. मो. सु पवि (= पवइ), धा. चल्या तु, अ. फ. पावस (पाउस–फ.), ना. उ. सुपब्बय, म. स. पब्बय । ४. धा. मो. छूटि, अ. फ. ना. उ. स. छुट्टि (छुट्टि–स.), म. च्छुटि । ५. फ. प्रहार ।

टिप्पणी—(१) पाखर < पक्षधर (?) = अश्व = संनाह । (२) पव्वइ < पर्वत ।

[५]

भुजंग —

प्रवाहे[१] स्वेत[१] ताजी[२] न° लज्जे प्रहारे[३] । (१)
मनउ[*१] रव्वि के रथ्थ[२] आने पहारे[३] ॥ (२)
सामि[१] संग्रामि[२] झिल्लइ[*३] दुधारा[४] । (३)
[१]उप्पमा[२] केम[३] दीजइ[४] छिकारा[५] ॥ (४)
साहियं[१] वग्ग[२] कड्डइ[*] जि तारा[३] । (५)
मनउ[*१] आवझइ[*२] हथ्थ वज्जंति[३] तारा[४] ॥ (६)
छुट्टियं[१] तेज छुट्टे जि कारा । (७)
ते[१] सज्जियं[२] सूर सव्वे[३] तुषारा ॥ (८)
पब्बरे[१] प्रान से[२] मत्त बारा[३] ।[४] (९)
[१]कंध नामइ[*२] नही लोह धारा[३] ॥[४]+ (१०)
घाट अवघाट[१] बेक[ता?][२] निनारा[३] । (११)
[१]कंठ झूमंति[२] गजगाह[३] मारा ॥ (१२)
लोह[१] लाहउर[*२] बाजइ[*३] तुरकी । (१३)
तिने[१] धावते दीसइ नहि धूरि[२] धुरकी[३] ॥ (१४)
पच्छिमी सिंधु[१] जानइ[*२] न थकी । (१५)
ते साथि[१] सीषी[२] वले जक्कि[३] जकी ॥ (१६)
पवन[१] पंषीन अंषी[२] मनकी[३] । (१७)
जे आस[१] कड्ढे नहीं चंपि नक्की[*२] ॥x (१८)
राग[१] बागे[२] नही सुधि[३] उरकी[४] । (१९)
मनउ[*१] उप्पमा[२] उच्च आवइ[*३] धुरकी[४] ॥ (२०)
आरबी देसावरी[१] लोह लच्छी । (२१)
गनइ[*१] को कंउ कंठीन[२] कच्छी ॥ (२२)
धरा षिसि[१] षुदंति[२] तुट्टंति[०३] बाजी । (२३)
दिष्षिअइ[*] एक[१] अंकेक (=अर्क्कक) ताजी ॥ (२४)
पंडवे[१] पंगुरे राय[२] सज्जे[३] । (२५)
दुवन[१] दल[२] तुच्छ[३] देषंत लज्जे[४] ॥ (२६)

एह[१] अप्पुव्व[२] कबि चंद पेक्खउ*[३] । (२७)
तरणि सम तेज दुजराज[१] देक्खउ*[२] ॥[३](२८)

अर्थ -- (१) [संनाह से सुसज्जित अश्व-सेना के उस] प्रवाह में ऐसे श्वेत ताजी थे जो अखाड़े में [पिछड़ कर] लज्जित न हुए थे, (२) [वे ऐसे लगते थे] मानो वे रवि के रथ से अपहृत करके लाए गए हों। (३) वे स्वामी के युद्ध में दुधारे झेलने वाले थे; (४) उनको उपमा छिकारे (हिरन) से किस प्रकार दी जाए ? (५) [उनके मुखों में] बाग साधी गई है, जिससे उनके मुखों से लाला (लार) कढ (निकल) रही है, (६) [दोनों ओर से उनके मुखों में उस बाग का लगना ऐसा लगता है] मानो आउझ (ढोल की जाति के एक वाद्य) पर [दोनों] हाथों से ताल बजाए जा रहे हों। (७) [उनके शरीर से] ऐसा तेज छूट (विकीर्ण) हो रहा है जैसे कार (काल ?) उठा हो। (८) ऐसे सभी तुषारों को शूर साज रहे हैं। (९) वे मतवाले [घोड़े] प्राण से (प्राण-रक्षा की दृष्टि से ?) पाखरे (संनाह से सुसज्जित किए) हुए हैं। (१०) उनका कंधा लोह (तलवार) की धार के सामने नमित नहीं होता है। (११) घाट, औघाट (बुरे घाट) उन्हें निराले रूप से व्यक्त हो जाते हैं—अर्थात् घाट-औघाट को वे स्वयं समझ कर चलते हैं। (१२) उनके कंठ में भारी गजगाह झूमते (झूलते) रहते हैं। (१३) लाहौर के लोहित वर्ण के जो घोड़े हैं, जो तुर्की बाजते (कहे जाते हैं), (१४) उनके दौड़ते समय खुरों की धूल नहीं दिखाई पड़ती है। (१५) जो सिंधु के पश्चिम के घोड़े हैं, वे थकना नहीं जानते हैं। (१६) उन्हीं के साथ जो सिंधी घोड़े हैं, वे जके (बौराए) से मुड़ते-फिरते चलते हैं। (१७) पवन, पक्षी, आँख और मन की [गति] भी, (१८) यदि वे अश्व निकलते हैं, उन्हें चाँपकर—दबाकर—पिछाड़ नहीं सकती है। (१९) जब वे रागे (रागों के कवच पहनाए) जाकर बागे (बाग से सुसज्जित किए) जाते हैं तो उन्हें अपने हृदय (प्राणों) की सुधि नहीं रहती है, (२०) और वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो उच्च (श्रेष्ठ) उपमा हो जो [कवि के मानस में] आगे बढ़ती चली आ रही हो। (२१) अपर देशों के अश्वों में अरबी, जो लोहित वर्ण के हैं, लाखों हैं, (२२) और सुन्दर कंठ वाले कच्छी घोड़े इतने हैं कि कौन-सा कंठ उन्हें गिन सकता है; (२३) वे घोड़े [रण-] धरा की क्षिति पर टूट कर (वेग से बढ़कर) खुरों से खूँद रहे हैं और (२४) एक से एक बढ़कर ताज़ी दिखाई पड़ रहे हैं। (२५) फिर पंडुवे (पांडु के घोड़े) पंगुराज (जयचंद) ने सजाए हैं, जो शत्रु पक्ष के दल को छोटा देखकर लज्जित हो रहे हैं। (२७) कवि चंद ने यह अपूर्व बात देखी कि (२८) तरणि का तेज [आकाश के धूल-धूसरित होने के कारण] द्विजराज (चंद्रमा) के समान दीख पड़ा।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

× चिह्नित चरण मो. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. प्रवाहे स्वेत, धा. प्रवासेत, अ. ना. प्रवासे, फ. प्रवासंत, म. उ. स. प्रवाहंत। २. धा. तज्जी। ३. मो.—ए अहारे, धा. लज्जी अहारे, ना. लाजी अहारं, अ. फ. लाजी अहारं, म. उ. स. लज्जीयहारे।

(२) १. मो. मनु (= मनउ), ना. मनुं (= मनउ), धा. उ. स. मनो, अ. फ. मनो, म. मनौं। २. धा. रत्थे जे, अ. फ. रथ्थं, ना. रत्थें सु, म. उ. स. रथ्थं सु। ३. धा. म. उ. स. प्रहारे, अ. फ. प्रहारं।

(३) १. धा. तिके स्वामि, उ. स. जिके स्वामि, म. जिके सांमि। २. अ. फ. म. संग्राम। ३. धा.

झेले, मो. झिलि (= झिलइ), अ. फ. ना. झिल्लै, म. झुले, उ. स. झल्लै। ५. मो. दो धारा, धा. अ. फ. दुधारे, स. दुधारं।

(४) १. धा. अ. फ. तिने, मो. ते, म. उ. स. तिनं, ना. में यह शब्द नहीं है। २. ना. ओपमा। ३. धा. क्यूंव, अ. कोंव, फ. कों वि, म. क्योंव, ना. कुं (= कौं) अ, उ. स. क्योंव। ४. अ. फ. दिज्जै, म. दीजै। ५. धा. विकारि, म. ठिकारा. उ. स. अ. फ. ठिकारे (ठिकारे–उ. स.)।

(५) १. धा. तिनं साहियं, म. उ. स. तिनं साहियं, फ. साहि। २. अ. फ. ना. वाग। ३. मो. कढि (< कढइ) निकारा, धा. अ. गड्डे निकारा, फ. तिगड्डे निकारा, उ. स. गड्डे न कारा, म. गड्डे नकरामं, ना. गड्डे नकारा।

(६) १. मो. मुनु (= मुनउ), ना. मनुं (= मनउ), धा. म. उ. स मनो, म. मनौं, अ. फ. मनौ। २. मो आवझि (<आवझि = आवज्झइ). धा. आवधे, उ. स. आवधं, म. आवध, ना. अवझं, अ. आवझे, फ. आवजे। ३. उ. स. वज्जंत न वाजंत, म. हज्जंत। ४ धा. सारा।

(७) १. धा. छुट्टियं तेजि, फ. मनौ छुट्टिजं, म. उ. स. हयं छुट्टियं। २ धा. वेठे, अ. फ. वट्ठे, म. ठले, उ. स. ठट्टे, ना चट्टे।

(८) १. तिते, फ. जिते, ना. म. स. सयं। २. मो. साजियं, धा. सज्जए, अ. फ. सज्जिए, म. उ. स. सज्जियं। ३. ना. म. उ. स. सब्वं, अ. सद्दे।

(९) १. म. सरे पाषरे, उ. स. सरे पष्षरे, अ. फ. तहां पष्परे। २. धा. उ. स. प्रानजे, म. प्रानजै, अ. फ. प्रानतै, ना. पानतं। ३. धा. माहु चारा, अ. फ. म. मोह वारा, ना. उ. स. मारवारा।

(१०) १. धा. जके, ना. ते, म. उ. स. तिके। २. मो. नामि (= नामइ), धा. ना. नामे, म. उ. स. नामै। ३. धा. लोह झारा, म. लोल झारा, ना. उ. स. लोह झारा। ४. धा. अ. फ. में यहाँ और है :

[वहै वाय वेगं] नहीं भूमिभारा। तिवै छुट्टियं जानि आकास तारा।

कोष्टकों के अन्दर की शब्दावली धा. में नहीं है।

(११) १. मो. वाट अवघाट, धा. घट्ट अवट्ट, अ. घट्ट औघट्ट, फ. मनौ घट्ट औघट्ट, ना. घाट औघाट, म. तहां औघट घाट, उ. स. तहां घाट औघट्ट। २. मो. बेक, धा. 'फंदे', शेष में 'फंदे' या 'फंदे'। ३. अ. फ. निन्यारा, ना. निरारा।

(१२) १. ना तने, म. उ. स. तिने यह शब्द धा. अ. फ. में नहीं है। २. धा. झुळंति, ना. झूलंत, अ. फ. म. झूमंत (झूमत–म.)। ३. म. जगाह।

(१३) १. अ. फ. किते लोह, म. विसारोह, उ. दिसाबोर, स. दिसाराह। २. मो. लाहुर (= लाहउर), धा. लाहोर, शेष में 'लाहोर' या 'लाहौर'। ३. मो. बाजि (= बाजइ), धा. वज्जइ अ. फ. ना. उ. स. वज्जे, म. वज्जं।

(१४) १. धा. ना. तिनं। २. धा. धावतै दीसन धुरी, अ. फ. धावते दीसे न (नुं–फ.) धूरयो, ना. म. उ. स. धावते (धाव–ना.) धूर (धूरे–म. ना., धू–उ.) दीसैं। ३. धा. फुरक्की, अ. फ. ना. म. उ. स. फुरक्की।

(१५) १. धा. पच्छमी सिंध, अ. फ. सजै पच्छिमी (पच्छिमा–फ.) सिंध, ना. पच्छिमी सुभ्म, म. उ. स. दिसं पच्छिमं (पच्छमी–म.) भूमि। २. मो. जानि (= जानइ), धा. जाने, अ. फ. ना. म. उ. स. जान।

(१६) १. धा. तिनं साथि, मा. ते साथ, अ. फ. म. उ. स. तिनं साथ, ना. जिनैं सत्थ। २. मो. सीधी, ना. फ. संधी, शेष सभी में 'सिधी'। ३. धा. अ. फ. चले जक्कि, मो. चले जक्क, ना. चलै जक्कि, उ. स. चलै नाव, म. चले ज।

(१७) १. धा. पमः, म. उ. स. पवनं न, फ. मनो पवन, ना. पवनं। २. फ. पंषी। ३. धा. मनक्खी, अ. मनीषी, फ. मनुषी।

(१८) १. अ. फ. जिकै (जिकै–फ.) सास, ना. ते सास, म. उ. स. तिके सास। २. धा. नहाँ चंपि मक्खी (< मक्खी), अ. फ. न चंपै ननर्षा, ना. न चपं (चंपै) ननकी, म. स. न चपे ननकी, उ. न चंपै ननंकी।

(१९) १. म. उ. स. खिर्न राग। २. धा. बरणैं, ना. म. उ. स. चंपं। ३. धा. नहीं सुध, अ. न सुक्की, फ. न सक्की, ना. म. उ. स. न सुद्धी (न सुद्धी–ना.)। ४. म. उरधी, उ. स. उरक्की।

(२०) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ), धा. म. उ. स. मनो, अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. धा. उप्परे, अ. उप्पजै, फ. उप्पजे, ना. म. उ. स. ओपमा। ३. मो. उच्च आवि (=आवइ), धा. ओस आदं, अ. फ. उंच आदे, म. उ. स. उंच आय, ना. उच्च आपं। ४. ना. म. उ. स. थरक्की।

(२१) १. मो. आरवां देसावरां, शेष सब में 'अरब्बी (आरबी–ना.) बिदेसी अरं'।

(२२) १. मो. गनि (=गनइ), धा. अ. फ. गणै, म. गनैं, ना. उ. स. गनै। २. धा. अ. फ. को कंठ कंठील, ना. म. उ. स. कोन (कौन–म., कोक–ना.) कंठील कंठील।

(२३) १. धा. अ. फ. धरा खिस, म. उ. स. धरं (धर–म.) बेत्त, ना. धरा बेत। २. धा. खुदंत, ना. फ. कुदंत, अ. म. उ. स. खुदंत। ३. म. अ. सहंत, फ. सहंति, ना. रहंत, उ. स. रहंत।

(२४) १. मो. दिषिइ (=दिषिअइ) एक, धा. दिष्षियइ इक्कु, ना. दिष्षीयैं इक, अ. फ. किसे दिष्षियहि एक, म. हरैंवा इ एक, उ. स. हरंवी इव एक। २. धा. इकंत, अ. फ. एकंत, म. ताजीन, स. तत्तार, ना. ताजीत।

(२५) १. मो. पंडवे, धा. पंडुए, ना. पंडरे, अ. इते पंडुवे, फ. इते पंडुरे, म. तिके पंडुरे, उ. तिके पंडुरा, स. तिके पंडुव। २. मो. म. राय, शेष सब में 'राइ'। ३. मो. साजी, धा. सज्जे, अ. सज्जी, फ. ताजी, ना. राजै, म. उ. स. साजे।

(२६) १. धा. दुअण, ना. भुवन, अ. तबहि दुवन, फ. तुबहि दुबक, म. उ. स. मनों (मनौं–म.) दुअन। २. धा. बल। ३. धा. बच्छ। ४. मो. देषंत लाजी, धा. दिष्षंत लज्जे, अ. फ. देषंत लज्जे (लज्जै–फ.), म. उ. स. देषंत लाजे, ना. देषंत लाजै।

(२७) १. धा. इहे, ना. इह, अ. फ. तहाँ, म. उ. स. इसो यह (इह–म.)। २. ना. आपु पुव्व, उ. स. आपुव्व। ३. मो. पेखु (=पेक्खउ), धा. अ. फ. ना. म. उ. स. पिष्यौ (पिक्खयौ–धा.)।

(२८) १. धा. अ. फ. तरनि दुजराज सम (समे–अ. फ.) तेज (चंद–फ.), म. उ. स. तिनं रवि दुजराज सम (सग–म.) तेज। २. मो. देषु (=देक्खउ) ना. म. दिष्यौ, शेष में 'दिष्यौ' (दिक्खयो–धा.)। ३. ना. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

> हरं डंबरी रेन अप्पै न पारं। अधीनं पधीनं सधीनं निहारं।
> तहाँ कोन सामंत राजंन ठट्टै। मनों मेर उत्तंग हस्ती न बट्टै।
> मुखं जोब जोबं भरं भूप भारे। खिर्न काम कनवज्ज महलैं पधारे।

टिप्पणी—(१) अखारा < अक्खाडग < अक्ष+वाटक=अखाड़ा (२) पहारे < प्रहृत=अपहृत। (३) झिल [दे.]=ऊपर से गिरती हुई वस्तु को थामना। (४) छिकारा=हरिण। (५) साह < साध्=सिद्ध करना, बनाना। (६) आउज्ज < आयुध (?)=ढोल के ढंग का एक वाद्य-विशेष। तार < ताल। (७) बुट्ठिय < व्युत्थित। कार < काल (?)। (११) बेकम < व्यक्त। निसार < णिण्णार < निर्नगर=नगर से निर्गत, निराला। (१२) गजगाह < गजग्राह = घोड़ों के कंठ में बाँधी जाने वाली झालर जो उनके अगले पैरों के सामने लटकती है। (१६) सीधी = सिंधी। वल < वल्=मुड़ना, लौट पड़ना। (१८) आस < अश्व। नंघ < लंघ। (१९) राग=टाँगों का कवच। (२०) धुर=अग्रभाग। (२१) लच्छी < लक्ष। (२६) दुवन < दुर्जन =शत्रु। (२७) अपुव्व < अपूर्व। पेक्ख < प्र+ईक्ष् =देखना।

[६]

दोहरा— करिग[1] देव दक्खिन[2]* नयर[3] गंग तरंगह कुल्ह[4] । (१)
जल छुंडइ*[1] अच्छुइ* करह[2] मीन चरित्तहु भुल्ह[3] ॥ (२)

अर्थ—(१) देव (पृथ्वीराज) ने नगर-प्रदक्षिणा की, [तदनंतर] वह गंगा की तरंगों के कूल (तट) पर (२) अपने अच्छे (या अर्चित) करों से जल छाड़ने (उछालने) लगा और मछलियों के चरित्रों (खेलों) में [अपने को] भूल गया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. ना. करग । २. मो. दक्षन (=दक्खन), धा. दिखुखन, ना. दच्छिन, म. दषिन, उ. स. दच्छिन । ३. मो. नगर, उ. नयन । ४. मो. गंग तरंगह कुल, धा. गंग तरंग अकुल्ह, अ. तुरग अकिल्ह, फ. गंगा तुरंगु अकल्ह, म. उ. स. गंग तरंगह कूल, ना. गंग तरंग कूल ।

(२) १. मो. छंडिइ (< छंडइ), धा. छडहि, उ. छंटै, म. स. छुट्टै, ना. च्छंडिके । २. मो. अछि (=अच्छइ) करइ, धा. अच्छहि करइ, फ. अछे करहि, ना. म. स. तब इच्छ करि । ३. मो. चरित्रहि (=चरित्तहि) भूल, धा. चरित्तनु भुल्ह, अ. चरित्तह भुल्ह, फ. चरित्तह भूल, ना. म. उ. स. चरित्रनि (चरित्रन-ना.) भूल ।

टिप्पणी—(१) दक्खन < प्रदक्षिणा । नयर < नगर । (२) अच्छइ < अर्चित ।

[७]

रासा— भूलउ*[1] नृप तिहि रंग[2] तहि[3] जुध्ध विरुध्ध सहु[4] । (१)
मूग*ति[1] मीननु[2] मुत्ति लहंति जु लष दहु[3] ॥ (२)
होइ*[1] तुच्छ तु तंमोर*[2] सरंत तु कंठ लहु[3] । (३)
पंक[1] प्रवेस हसंत तु[2] झरंत[3] ज गंग[4] महु[5] ॥ (४)

अर्थ—(१) नृप (पृथ्वीराज) उस रंग (क्रीड़ा) में [अपने को] और उसी प्रकार [जयचंद से] सभी विरोध और युद्ध को भूल गया । (२) मछलियों के लिए जब वह [जल में] मोती छोड़ता था, तब वे दस लाख [की संख्या में आकर] उनको ले लेती थीं । (३) वह मोती तुच्छ (हल्के) तांबूल [के रस के समान लाल] हो जाता था जब वह उनके लघु कंठ में जाता था [और उसमें उनके लाल कंठ की झलक पड़ती] थी । (४) यदि वह मोती गंगा में झड़ (गिर) जाता था, तो वे हँसते हुए पंक में प्रविष्ट हो [कर उसे ढूंढने लग] ती थीं ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. भूलु (=भूलउ), धा. भुल्लयो, म. उ. स. भूलौ, फ. ना. भूल्यौ । २. धा. पुहवि नरिंद, फ. नृपति नरिंद, म. ना. उ. स. नृप इह रंगहि । ३. धा. त, फ. स, म. उ. स. में यह शब्द नहीं है । ४. धा. वितुद्ध सह, मो. विरुध शहु (=सहु), म. उ. स. विरुद्ध सह ।

(२) १. मो. मूग ति (=मूग ति), धा. मुक्के, म. नषह, उ. स. नंषहि, ना. नंषै । २. म. मीनति, ना. उ. स. मीननि । ३. मो. लहंति जु लष दह, धा. लहंतु जु लक्खि दह, म. उ. स. लहै जुध लष दह, ना. लहंति जे लष्प दह ।

(३) १. मा. हाल, धा. ना. फ. हय, म. होय। २. मो. तुछलु तमोर, धा. तुछ तमोर, उ. स. तुछ तुच्छ सु सुरि, म. तुछ तु सु भूलि, फ. ना. तुछ तुछ तमोर। ३. धा. सरंत जु कंठ लह, स. नरंत न कंठ लह, म. सरसत कठ लहि, उ. सरंत न कंठ लहं, ना. सरतति कंठ मह, फ. सरंत सुकंत लह।

(४) १. मो. वंक, शेष सभी में 'पंक'। २. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। ३. ना. सुरंत। ४. धा. ना. जु गंग, फ. ज गंग, म. उ. स. न कंठ। ५. म. महि।

टिप्पणी—(१) सहु=सभी। (२) सूस < सुच्=छोड़ना। दह < दश। (३) तंमोर=ताम्बूल। (४) वंक < पङ्क।

[८]

दोहरा— *भुल्लउ*[*१] रंग नृपत्ति इहि[२] पंग चढौ[३] हय[४] पुट्ठि। (१)
सुनि[१] सुंदरि[२] वर वज्जने[३] चढी अवासह उट्ठि[४]॥ (२)

अर्थ—(१) नृपति (पृथ्वीराज) [अब] इस रंग (खिलवाड़) में भूला हुआ था, [उधर] पंग (जयचंद) घोड़े की पीठ पर चढ़ा, (२) और वह सुन्दरी (संयोगिता) वाद्यों को सुन कर उठ कर आवास (महल) [की छत] पर चढ़ गई।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. भूलु (=भूलउ), धा. भुल्यो, अ. भुल्लो, ना. स. फ. भूल्यौ, म. उ. भूलौ। २. धा. अ. फ. रंग सु मीन (मीत—फ.) नृप, ना. म. उ. स. नृप इन (इह—ना. म.) रंग महि (मैं—ना.)। ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. चढ्यो (चढ्यौ—म. ना.)। ४. मो. इय।

(२) १. मो. सो, शेष सभी में 'सुनि'। २. म. ना. उ. स. सुन्दर, फ. सुन्दर। ३. ना. अ. वज्जनै। ४. धा. चढ़ी अवासन उट्ठि फ. चढी अवासहि उट्ठि, ना. चढ़ी अवासनि उट्ठि, म. उ. स. भई अपुब्ब कोइ (कौ—म.) दिट्ठ (दुट्ठ—उ., दुट्ठि—म.)।

टिप्पणी—(१) पुट्ठ < पृष्ठ। (२) वज्जने < वाद्यानि =बाजे।

[९]

दोहरा— *दिषि तं[१] सुन्दरि दल चलनि[२] चमकि चढंति[३] अवास[४]। (१)*
नर कि देव[१] किधु[२] काम हर[३] गंग हसंति निवास[४]॥ (२)

अर्थ—(१) सुन्दरी (संयोगिता) दल (सेना) का चलना देख कर आवास (महल) [की छत पर] चढ़ जाती है, (२) [और गंगा तट पर पृथ्वीराज को देखकर सखियों से पूछने लगती है कि] "यह नर है, या देवता है, या काम या हर (शिव) है जो गंगा में हँसता हुआ (प्रसन्न) निवास कर रहा है?"

पाठान्तर—(१) १. धा. दिष्षति, ना. दिष्षत, म. उ. स. देषत। २. धा. वलनि, फ. वलिनु, अ. वलनि, ना. मिलन, म. मिलत, उ. मिलिन, स. मिलनि। ३. मो. चढंति, धा. ना. फ. चढंति, अ. चढंत, [illegible]. उ. चढ़ी मन, स. चढौ मन। ४ म. आस, उ. स. आस।

(२) १ धा फ दउ २ धा किंधु मो ना अ किधु फ किधू म कधा उ स किधौं ३ फ काम हरि, ना. काम हर, म. उ. स. नागहर। ४—धा. गंग हसंत अयास, म. उ. स. गंग हसत निवास (सत निवासु—म.), अ. फ. किधुं (किधौ-फ.) कधु गंग विगास।

टिप्पणी—चल < चल्=चलना, जाना। चड=चढ़ना।

[१०]

दोहरा— एक[१] कहइ[२] दानव[३] देव हइ[४] एक[१] कहइ[५] इंद[६] मुनिंद[७] ।[×] (१)
एक[१] कहइ[२] एसे[३] कोटि नर एक कहइ[४] प्रथिराज नरिंद[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) [उत्तर में] एक कहती है, "यह दानव या देवता है," और एक कहती है "यह इंद्र या मुनीन्द्र (बड़ा मुनि) है।" (२) एक कहती है "ऐसे कोटि नर होते हैं," और एक कहती है "यह नरेन्द्र पृथ्वीराज है।"

पाठान्तर—× चिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. मो. एक शेष सभी में 'इक'। २. धा. फ. ना. उ. स. कहै, अ. कहहि। ३. धा. दुर, अ. फ. दुरि, ना. उ. स. दनु। ४. मो. हि (=हइ), धा. फ. ना. है, अ. हइ, उ. स. इह। ५. धा. फ. ना. उ. स. कहै, अ. कहि (=कहइ)। ६. धा. इंदु, फ. यंदु। ७. धा. फ. फनिंद, अ. ना. उ. स. फुनिंद।

(२) १. मो. एक शेष, सभी में 'इक'। २. धा. कहैं, अ. कहहि, फ. म. ना. उ. स. कहै। ३. मो. एसे, धा. म. ना. असि, उ. स. अ. फ. अस। ४. धा. इहु, अ. फ. ना. म. उ. स. इक। ५. मो. प्रथिराज नरेंद (< निरिंद), शेष में 'प्रिथिराज नरिंद'।

टिप्पणी—(१) इंद < इंद्र। मुनिंद < मुनीन्द्र। (२) नरिंद < नरेन्द्र। एस < ईदृक्=ऐसा।

[११]

दोहरा— सुनि रव[१] सुंदरि[२] उभ्भ तन[३] स्वेद कंप सुर भंग। (१)
मनु कमलिनि[१] कल संभरी[२] अम्रित[३] किरन तन[४] रंग ॥[५] (२)

अथ—(१) ['पृथ्वीराज'] का शब्द (नाम) सुन कर सुंदरी (संयोगिता) के शरीर में प्रस्वेद, कंप और स्वरभंग ऊर्ध्व (अंकुरित) हो गए। (२) [ऐसा प्रतीत हुआ] मानो सुंदर कमलिनी ने [सूर्य की] अमृत किरणों की क्रीड़ा का स्मरण किया हो।

पाठान्तर—(१) १. धा. वर। २. धा. सुंदर। ३. धा. उभय हुव, अ. फ. उप्भ हुव, मो. उभतन।

(२) १. मो. अ. फ. कमलनि, धा. कमलिनि। २. धा. समहरि, अ. फ. संहरिय। ३. धा. अम्रिम्रित, मो. अमिरत। ४. मो. किरतन, धा. करनेतन अ. किरनि, तन, फ. किरन त। ५. धा. में 'तथा अन्तर पाठान्तर' लिखकर यहाँ निम्नलिखित दोहा भी है :

सुनि रव प्रिय प्रिथिराज कउ उभद रोम तिन अंग।
सेद कंप सुरभंग भयउ सपत भाइ तिहि अंग॥

अ. फ. में भी यह दोहा है, केवल 'तथा अउर पाठान्तर' नहीं लिखा हुआ है। म. उ. स. का पाठ है :

सुनि वर (रवि—म.) सुन्दरि हंम तन उभय रोम तन अंग।
स्वेद कंप सुरभंग भौ नैन पिवत पृथु रंग॥

प्रथम चरण के 'उभैतन' और 'उभय रोम तन' में जो पुनिरुक्ति है, उससे इनमें भी पाठ (मिश्रण प्रकट है)। ना. का पाठ है :

सुनि रव सुंदरि लग हुव उभैं रोम तन अंग।
स्वेद कंप स्वर भंग भौ नयन दिष्षि पृथु रंग॥
मानहुँ कमलिनि कल संभरिय तिमर किरनि तनु रंग॥

प्रकट है कि ना. में मो. तथा म. उ. स. के पाठों का मिश्रण हुआ है।

टिप्पणी—(१) उम्भ = ऊर्ध्व। (२) संभर = संस्मर् स्मरण करना।

[१२]

पुडिल— *गुरुअन गुरु न निंदरिय[१] सुंदरि। (१)*
राजपुत्ति[२] पुच्छइ न दुंदरि[२]। (२)
*अमु पुच्छइ[*] लउ[*१] दुत्ति पठावइ[*२]। (३)*
*गुन[१] अच्छइ[*२] पच्छइ[*] करि आवइ[*३]। (४)*

अर्थ—(१) [यह देखकर संयोगिता की एक सहचरी उससे कहती है,] "हे सुंदरी, गुरुजनों और गुरुओं की निंदा न होने दीजिए [—इस प्रकार हर एक से चर्चा करने पर उनकी निंदा होगी], (२) हे राजपुत्री, द्वंद्व के साथ—इस प्रकार कि उसका शोर हो जावे—न पूछिए। (३) उसे पूछने के लिए दूती भेजिए। (४) [यदि वह पृथ्वीराज ठहरे] तो अपने अच्छे गुणों से [वह दूती] उसे [आप के] पक्ष में करके आवे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. न निंदरीय, धा. वंदिय नहि, अ. फ. दद्दइ नहि, ना. णिंदीराये न, उ. स. निंदरियं, म. निंदर पग।

(२) १. ना. राजन पुत्त। २. धा. पुच्छे कहुँ सुंदरि, अ. फ. पुछ्छइ कहु दुंदरि, ना. म. उ. स. पुच्छियै (पुच्छि—ना., पुच्छियत—म.) न दुरि दुरि (दिदुरि—ना.)।

(३) १. मो. अमु पुछि (=पुछ्छइ) लु (=लउ), धा. अम्महि पुच्छन, अ. फ. अम्हह पुछ्छन ना. हम ही पुच्छि पुच्छन, म. उ. स. कमहि पुच्छि (पुच्छ—म.) तौ। २. धा. दूत पठावहि, मो. दुति पठावि (=पठावइ), ना. दुति पठावहि, अ. फ. दुत्ति पठावहि, म. दुति पठावहि।

(४) म. उ. स. कुन। २. मो. अछि (=अछइ), म. अच्छे, ना. अच्छैं। ३. धा. पच्छे करु आवहि, मो. पछि (=पछ्छइ) करी (करि) आवि (=आवइ), अ. फ. पछ्छे करवावहि, म. उ. स. पुच्छवि करि आवहि, ना. पुच्छि करि आवहि।

टिप्पणी—(१) निंद < निन्द्=निंदा करना। (२) दुंद < द्वन्द्व। (३) अमु=इसको। (४) पच्छ < पक्ष।

[१३]

रासा— *पंगुरा सा[१] पुत्तिय[२] सुत्तिय थार[३] भरि। (१)*
*यो प्रिय[१] जउ[*२] प्रथीराज न[३] पुच्छइ[४] तोहि फिरि[५]। (२)*
*जउ[*१] इन लष्षन[२] सब सहित[३] बिचार न सोइ करि[०४]। (३)*
*हउ[*१] व्रत[२] मोहि[३] निं जीव सु[४] लेउं सजीव वरि[५]॥ (४)*

अर्थ—(१) पंगुराज (जयचन्द) की उस पुत्री (संयोगिता) ने मोतियों का थाल भरा, [और दूती से कहा,] (२) "हे स्त्री, यह यदि पृथ्वीराज हुआ, तो तुझसे फिर (घूम) कर [मोतियों के संबंध में] न पूछेगा। (३) यदि वह इन सब लक्षणों के साथ हो, तो तू उसका (मोतियों के फेंके जाने का) विचार न करे, (४) [क्योंकि] मेरा व्रत है कि इस नर जीव (शरीर) से ही उसको जीवन रहते वरण करूँ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

○ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) धा. पंगुराइ सा, मो. पंगुराय स, अ. फ. पंगराइ सा, उ. तब पंगर राइसु, म. स. तब पंगुर राय सु, ना. पंगुराय। २. धा. पुत्तिसु। ३. धा. थाज, म. अ. फ. ना. थाल।

(२) १. धा. जुत्तो, अ. फ. जुवती, ना. जौहेय, सा. जौ हिय, म. उ. जौ तिय। २. मो. जु (=जउ), धा. जो, म. उ. स. इह, अ. फ. जो, ना. में यह शब्द नहीं है। ३. धा. प्रिथिराजन, म. प्रिथीराजइ, उ. स. प्रथिराजइ। ४. मो. पुछि (=पुछइ) अ. पुछइ, फ. पूछै, धा. पूछहि, ना. पुच्छै, म. उ. स. अच्छहि। ५. मो. तोहि करि, धा. बीति फिरि, शेष में 'तोहि फिरि' (फिर—फ.)।

(३) १. मो. जु (=जउ), धा. जइ, अ. फ. ना. म. उ. स. जौ। २. धा. इनि छिनि, अ. फ. ना. म. उ. स. इन लछिछन। ३. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी में नहीं है। ४. मो. विचारि न सोइ [—करि मो. में नहीं है], धा. अ. फ. नि (न—अ. फ.) तब्ब विचारु (विचारि—फ.) करि (करु—फ.), म. उ. ना. तौ (त—ना.) तब्ब विचारि करि, स. तब्ब विचारि करि।

(४) १. मो. हि (=हइ), शेष सब में 'है'। २. मो. म. व्रत, धा. व्रतु। ३. म. सोहि। ४. मो. नृजीवसु, धा. त्रितावत, अ. फ. नृजीवत, ना. भीउत, म. उ. स. नव जीव तौ। ५. ना. लेउ सजीव वर, म. फ. लेउ सजीव (सजीउ—फ.) वरि।

टिप्पणी—(१) थार < स्थाल=थाल। (२) यथा (३) जउ < यदि।

[१४]

रासा— सुंदरि आइसं[१] धाइ[२] विचार[३] न बोलइय[४]। (१)
जउ*[१] जल गंगह लोल[२] प्रतीत[३] प्रसंगु लिय[४]। (२)
कमल ति[१] कोमल पांनि[२] कलिककुल[३] अंगुलिय[४]। (३)
मनहु[१] अघ्घ* दुज दान[२] सु अप्पति[३] अंगुलिय[४]॥ (४)

अर्थ—(१) वह सुंदरी [सहचरी] आदेशानुसार दौड़ आई; उसने [पृथ्वीराज से] अपना (मंतव्य) नहीं कहा। (२) जहाँ पर गंगा का लोल जल था, वहाँ उसने प्रतीति [उत्पन्न करने] का वह प्रसंग—पृथ्वीराज को चुपचाप मोती देते रहने का उपाय—ग्रहण किया। (३) उसका हाथ कमल सा कोमल था, और उसकी उंगलियाँ कलिका-कुल—कलियों—के समान थीं। (४) [उसका मोती अर्पित करना ऐसा लगता था] मानो वह (कमल) द्विज (चंद्रमा) को अंजुलि द्वारा अर्घ्य-दान अर्पित कर रहा हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. म. आयस, ना. आइप। २. मो. धाहि, धा. अ. फ. उ. स. धाइ, म. धाय, ना. साइ। ३. धा. अ. विचारि, फ. विचार। ४. धा. त नावुलिय, अ. फ. त (ति—फ.) मार्ज लिय,

ना॰ णि छुह.र, म. न ‍उलहय, उ. न बछहय, स. न बुलहय ।

(२) १. धा. जो, मो. जु (<जद्र), ना. ज्युं, म. ड. स. ज्यौं, अ. फ. जह । २. मो. गंगह लोल, शेष सभी में 'गंग हिलोल' । ३. ना. नृपति, ड. स. प्रथीति, म. प्रथिति, ना. पृथांग, अ. फ. प्रतीर । ४. उ. स. तिय ।

(३) १. अ. फ. कमलिन । २. धा. अ. फ. हस्त (हस्तं—फ.), मो. पान । ३. धा. केलि कुलि, म. अ. फ. उ. स. ना. केलिकुल । ४. धा. म. उ. स. अंगुलिय ।

(४) १. धा. मनो, ना. म. मनहुं, अ. फ. मनौ । २. धा. अ. फ. दान दुज अंध (< अब्ध), म. उ. स. अंध (< अब्ध) दुज दान । ३. धा. अ. फ. समप्पति । ४. मो. अंगुरिय, धा. अ. फ. म. ना. उ. स. अंगुलिय ।

[१५]

नाराच—
[1]भ्रपंति[2] अंगुलीय दान जान सोम लग्गये[3] । (१)
मनउ*[1] अनंग रंग वस्य[2] रंभ[3] इंद[4] पुज्जये[5] । (२)
जु[1] पांनि बाहु बार थकि[2] थार सुत्ति[3] वित्तये । (३)
पुने पि[1] हत्थ कंठ[2] तोरि पोति[3] पुंज अप्पये[4] । (४)
निरष्षि नयन टेरि वयन[1] ता त्रिपत्ति[2] चाहियं । (५)
तरषि दासि पासि पंक (पक्ष)[1] संकियं न चाहियं[2] ।[3] (६)
अनेक (अनिक ?) संग ग रूप[1] रूप जानि[0] सुंदरी । (७)
उछंगी† गंग‡ मझ्झि† छुकि[1]† सर्गपत्ति†[2] अछूछरी† । (८)
हुउ*[1]=‡ अछूछरी† नरिंदु[2]‡ नाहि[3]‡ दासि† गेह[4]‡ राय[5]‡ पंगुरे† । (९)
तास† पुत्ति[1] बंस छाडि[2] ढिल्लिनाथ[3] आदरे[4] । (१०)
सा बंध[1] सूर चाहुवान मान[2] ईम[3] आनये । (११)
करेन[1] केहरी न पीन[2] इंदु मीन[3] थानये[4] । (१२)
प्रतष्षि[1] हीर[2] जुध धीर[3] यो सु वीर[4] संचही[5] (१३)
वरंतु[1] प्रान मानिनी[2] चलंति[3] देत[4] गंठही । (१४)
सुनंत सूर अस्व फेरि तेनि[1] ताम हंकियं[2] । (१५)
मनउ*[1] दलिद्द[2] रिध्धि पाय जाय कंठ[3] लग्गियं[4] । (१६)
कनक कोटि अंग[1] धात रास[2] वास+‡ माल चौ[3] । (१७)
रहंत भउंर*[1] भौंर भौंर[2] साह छत्र[3] कांम चौ[4] । (१८)
जुगा सरोज मोज मंग[1] अलंक (अलक) रंक[2] हल्लये[3] । (१९)
मनउ*[1] मयन फंद[2] पासि[3] काम केलि चल्लये[3] । (२०)
करिस्य[1] कांम कंकनं[2] सु पानिबंध बंधये[3] । (२१)
जु भावरी[1] सषी सलज्ज[2] संक* तुरंयं वज्जये[3] ।[4] (२२)

माषाकर[१] भाक[२×] देव सब्ब[३] दोइ[४] पष्प जंपही[५] । (२३)
गंठि[१] दिढ़[२] इकचित्त लोक लोक चंपही[३]।[४] (२४)
अनेक (अनिक?) सुष्प सुष्प सीस[१] जुब्ब साथ लग्गिउं[२] । (२५)
सु[१] कंत कंत अंत ता[२] तमोरि मोरि[२] अप्पियं ॥ (२६)

अर्थ—(१) मानो वह (कमल) [चंद्रमा को] अंगुलियों के द्वारा [अर्घ्य—] दान अर्पित कर रहा हो, [इस प्रकार की] शोभा लग रही थी। (२) [अथवा] मानो अनंग—रंग (काम-क्रीड़ा) के वश में होकर रंभा इन्द्र की पूजा कर रही हो। (३) यद्यपि उस बाला के पाणि और बाहु थक गए, और थाल के मोती भी समाप्त हो गए, (४) फिर भी हाथ से कंठ-माला तोड़ कर वह उसकी पोत-पुंज (काच की गुरियों) को अर्पित करने लगी। (५) नयनों से [उस पोत-पुंज को] देखकर वचन द्वारा बुला कर नृपति (पृथ्वीराज) ने उसे देखा। (६) किन्तु वह पक्की (दृढ़) दासी [पृथ्वीराज के] पास में [होते हुए भी] तड़पकर (व्याकुल होकर) और शंकित होकर बोली नहीं। (७) [तब पृथ्वीराज ने उससे कहा,] "हे सुंदरी बाँके रंग-रूप के संग (संयुक्त) तुम [अलंकृत यश-] यूप [जैसी] हो, (८) [अथवा लगती हो कि स्वर्गपति के] उछंग (क्रोड़-या बाहुपाश) से [छूटकर] गंगा में धुक (उक—गिर) पड़ी हुई स्वर्गपति (इन्द्र) की अप्सरा हो।" (९) [उसने उत्तर दिया,] "हे नरेन्द्र, मैं अप्सरा नहीं हूँ, मैं तो पंगराज के गृह की दासी हूँ, (१०) उसकी पुत्री जन्म (जीवन) [का मोह] छोड़कर दिल्लीपति (पृथ्वीराज) का [मन से] आदर करती है। (११) उसका जन्म (जीवन), हे शूर चहुवान, इस प्रकार जानिए, मानो वह (१२) करेणु (हथिनी), अधीन (दुर्बल) केसरी, इंदु और मीनों का स्थान बन गया है—हथिनी के समान उसकी गति क्षीण केसरी के समान उसकी कटि, इंदु के समान उसका मुख और मीनों के समान उसके नेत्र हो रहे हैं। (१३) जो प्रत्यक्ष हीरक [के समान कांतियुक्त] है, युद्ध में धीर है, और जो वीर है उस [पृथ्वीराज के अनुराग] का वह संचय करती है, (१४) उसको वह मानिनी प्राण वरण करती है, इसलिए उसने [मेरे] चलते समय गाँठ दे दी है [जिससे मैं उसका यह संदेश देना भूल न जाऊँ]। (१५) यह सुनते ही उस शूर (पृथ्वीराज) ने घोड़े को फेर (घुमा) कर उस ताजी (घोड़े) को हाँका (१६) और इस प्रकार वह संयोगिता के पास पहुँच कर उससे गले मिला मानो किसी दरिद्र ने ऋद्धि प्राप्त की हो। (१७) [संयोगिता इस प्रकार की हो रही थी मानो] कोटि कनक धातु का उसका अंग हो, अथवा सुवासित मालाओं की राशि ही हो। (१८) भँवर झुंड के झुंड [उस पद्मिनी संयोगिता के आस-पास] काम के वलाध्य छत्र की ही भाँति [उड़ रहे] थे। (१९) सुधा और सरोज के ओज से मंडित उसकी माँग अलकावली के झूले में हिल रही थी, (२०) [जो ऐसी लगती थी] मानो मदन [अपने] फंदों का पाश काम-केलि के लिए डाल रहा हो। (२१) उसके करों में जो काम-कंकण [बँधे], थे वे पाणि-बंध (पाणि-ग्रहण) के बंधन हुए। (२२) भाँवरों पर उसकी सलज्ज सखियों ने जो रव (शब्द) किया, वही [मानो] तूर्य बजे। (२३) समस्त [संस्कारोचित] चारु आचार का देव-गण दोनों पक्षों से उच्चारण कर रहे थे। (२४) उनकी दृढ़ गाँठ उनकी एकचित्तता थी और लौकिक आचार उनका लोक-मर्यादा का अतिक्रमण था। (२५) [किन्तु इन] बाँके सुख्य सुखों के सिर पर युद्ध की साध [पृथ्वीराज के मन में] लगी हुई थी, (२६) इसलिए उस कान्त स्वकान्त को [संयोगिता ने] मोड़ (बीड़े बना) कर [बिदाई के] तांबूल अर्पित किए।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
० चिह्नित शब्द धा, में नहीं है।

– चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

‡ चिह्नित अक्षर और शब्द में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द उ. में नहीं है।

(१) १. फ. ना. म. उ. स. में इसके पूर्व है (स. पाठ) :—

नराज माल छंदय। कइत्त (कईत–म.) कवित्त चंदय।

२. मो. धा. अ. अपंति। ३ म. लजए।

(२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ), धा. उ. स. मनो, म. मनौं, अ. फ. मनो। २. धा. अ. फ. रंग अंग, म. रंचि सेव, उ. रत्त सेयों, स. रत्त सेय, ना. रंत्ति सेउ। ३. मो. भंग। ४. धा. अ. इंदु, ना. इंद्र। ५. मो. पूजये।

(३) १. मो. जू, म. उ. स. सु, ना. ज। २. धा. पानि वारि वाहु थक्कि, अ. पानि हार चाहुवान, फ. पानि हारि चाहुवालु, म. पानि बाह वीर थकि, ना. जपा फुलि बाहु वार थाकि, स. पानि बार थक्कि, उ. पानि वार वाह थक्कि। ३. मो. थारि, न. उ. स. थाल। ४. मो. मोत्ति, धा. अ. फ. म. उ. मुत्ति, स. मुत्ति।

(४) १. धा. पुनरपि, अ. फ. पुनरौपि, म. पुनिपि, उ. स. पुनेपि, ना. पुनेहि। २. म. कंठि। ३. मो. पाति। ४. धा. आयए।

(५) १. धा. निरक्खि नैन देखि नैन, ना. निरखि नैन फोरि वयन, म. उ. स. छ टेरि नेन (नैन–म.) फेरि रैन (वैन–म., वैन–उ.)। २. स. ता निपत्ति, ना. नृपति।

(६) १. ना. उ. स. कंपि, म. केपि। २. मो. संकियं न चाहियं, धा. संकि जानि साहियं, अ. फ. सक पन साहियं, म. से कियं न वाहियं, ना. संकियं न चाहीयं। ३. अ. उ. स. में यहाँ और है (म. पाठ) :

नराज गात श्रम विषयौ। कै स्वर्ग इंद अंग मैं तरंग निति पिषयौ।

(७) १. धा. संगि रंगि रूप, ना. म. उ. स. संग रूप रंग, अ. रंग अंग रूप, फ. एक रंग रूप।

(८) १. धा. अ. फ. जान संग मध्य (मज्झि–धा.), ना. म. उ. स. संग मधि धुक्कि (धुंकि–ना.)। २. धा. सुनं पत्ति, अ. सुनि पत्ति, ना. सर्ग पत्ति, म. स्वरग पत्ति, उ. स. स्वर्ग पत्त।

(९) १. धा. अ. फ. ति, ना. हु (=हउ), म. उ. स. हौं (हौं–स.) मो. नरेंदु, धा. म. नरिंद, ना. परनंद। ३. धा. नाह। ४. ना. म. अहे। ५. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है।

(१०) १. अ. सुजीपु पुल्लेत्ति, म. उ. स. सुतास पुत्ति, ना. तासु पुत्ति। २. धा. छोड़ि, ना. म. छंडि ४.। ना. दिल्लीनाथ। ४. धा. अ. फ. आचरे, म. उ. स. अद्दरे (अंदरे–म.)।

(११) १. धा. अ. फ. सवंत (सावंत–अ.), मो. सार्मम्य (=संम्म), ना. स जम्म, म. उ. स. संपत्र। २. म. उ. स. मत्र। ३. मो. इनू, शेष सभी में 'धम'।

(१२) १. धा. करन्नु, अ. फ. करन्न, ना. करेण, म. उ. स. करीन। २. मो. कहरीन, म. उ. स. केहरी न दीप, ना. केहरी पनोन। ३. धा. मन्न, म. नाथ, उ. स. एन। ४. म. मोनए।

(१३) १. धा. म. उ. स. प्रतक्ख। २. म. हार। ३. धा. बार। ४. धा. जे सवार, ना. जौवीर, म. जो सबीर, स. जौ सुबीर। ५. मो. संवाह, अ. फ. संवही, म. संठहो।

(१४) १. धा. चरन, धा. अ. फ. म. वरंत। २. धा. म. मानतो। ३. फा. चलंतु, स. चलौ सु, ना. चल्यौ सु। ४. धा. देतु, मो. देह, म. उ. स. देन (दैन–म.)।

(१५) १. अ. फ. म. उ. स. तेज। २. धा. ढंक्यौ, अ. फ. ढंकियौ, म. उ. स. ढंकयं।

(१६) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, अ. फ. मनो, उ. स. मनो, म. मनौं। २. धा. म. दरिद्द, उ. स. दरिद्र। ३. धा. रिद्धि धाइ जाइ कंठ, म. दत्त पाय जाय कंठ। ४. धा. लग्गयौ, अ. फ. लग्गियौ, म. उ. स. लग्गयं।

(१७) १. धा. आस, अ. फ. अष्ट। २. धा. रासि। ३. धा. अ. फ. माळती, ना. कामची।

(१८) १. मो. रहंत भुंर (=भउंर), ना. रहंत भौर, धा. रुनंति भोर, अ. फ. रुनंति भौर। २. मो. जोर जोर, धा. सोनि सोनि, अ. फ. झौनि झौनि, ना. झौर झौर, म. झौर स्याह, उ. स. झौर स्याम। ३. मो. रात्र, धा. अ. फ. ना. स्याह छत्र, म. उ. स. छत्र तत्र। ४. धा. अ. फ. कामसी।

(१९) १. म. मौजयं, ना. मौज अंग। २. धा. अ. फ. लिक्क रंग, म. अलकि अलि, ना. चल अलिक्क। ३. अ. फ. हल्लिए, म. हलयं, ना. उ. स. हल्लियं।

(२०) १. मो. मत्तु, ना. मतु (=मत्त), धा. मनो, म. मनौं, उ. स. मनों, अ. फ. मनौ। २. धा. मयंक फट्ठ पासि, अ. फ. मयंक फंद पासि, ना. म. उ. स. मयन्न रत्तिरत्त। ३. धा. काम काल वज्जए, मो. काम केलि झलये, ना. उ. स. काम पास घल्लियं (घलयं—स.), म. काम पास घलयं, अ. फ. काम काल वज्जए।

(२१) १. धा. कारिस्स, अ. फ. ना. म. उ. स. करस्सि। २. धा. कोस कंकणं, म. काम कंकनं, फ. कोम कंकनं। ३. धा. अ. फ. जु पानि (तियान—अ. फ.) पत्त बंधए, मो. सु पानि फंध बंधये, उ. स. ति पानि फंद साजए, (साजए—स.), ना. जुपानि फंद बंधए, म. जु पानि फंद साजए।

(२२) १. अ. भांवरी, फ. भाउती, ना. सु भांवरी, म. नावरी। २. अ. फ. धा. उ. स. सुलज्ज, म. सुलाज। ३. धा. सुज्झ सज्झ वज्जए, मो. सज्झ तुरंयज्जये, अ. फ. जूझ रज्ज वज्जए, ना. शूझ सुबिराजए, म. उ. स. झुंझ (झुंड—उ. स.) सो (सौ—म.) विराजए। ४. फ. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ): अनेक संग डोररंव रत्त मत्त सस्सियं। उसंग हां सरोज सोभ होत कंत तस्सियं।

(२३) १. धा. ना. अचारु, मो. आचरु, स. ना. अ. फ. अचार। २. धा. दारु, म. अब, यह शब्द उ. में नहीं है। ३. धा. अ. फ. देव सब, ना. देश सब्ब। ४. धा. अ. फ. दूव, ना. म. दोउ। ५. ना. म. उ. स. जंपियं।

(२४) धा. अ. फ. म. ना. सु। २. मो. दिठ, धा. दिट्ठ, ना. म. दिट्ठ (दिट्ठ—ना.), अ. फ. डिट्ठ। ३. मो. झंपहि (=झंपही), ना. म. उ. स. चंपियं, धा. अ. फ. चंपही। ४. ना. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

सु इंदनी जु इंद्र जानि गंध्रबी विवाहयं।
मुसकि मंद हासयं सम्मुष दिष्षि नाहयं।
सु अंगुली उचंकि एक देव तानि सुंदरी।
मिकंत होय कथ्थ मोहि स्वर्ग बाल संदरी।

उ. में पूर्ववर्ती चरण के 'एक' से लेकर इन अतिरिक्त चरणों में से तृतीय के 'एक' के पूर्व की सारी शब्दावली दुहराई हुई है।

* (२५) १. अ. फ. सारु (सार—अ.), ना. म. उ. स. सास। २. धा. जंघ संधि लग्गयं, म. उ. स. जुद्ध साथ लग्गियं (लंपियं—स.), अ. फ. जुद्ध संधि लग्गियं, ना. जुद्ध लग्गियं।

(२६) १. धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. धा. कंत कंति कंत अंति, अ. कंति कंति अंतसं, फ. कंत कंत अंति चंतित, ना. कंत कंति अच्छता, म. उ. स. कंत कंति (कंति—म.) अथ्थिता। ३. धा. म. मोर। ४. धा. अप्पयं, अ. फ. अप्पियं।

टिप्पणी—(१) अप < अप्प < अप्। (२) इंद < इंद्र। (३) बार < बाला। (४) पोति < पोत्ती [दे०] काँच, शीशा। (५) चाह < वाञ्छ (?) (६) वाहि < व्या+ह=बोलना, कहना। (७) अनेक < आणिक्क =बाँका। (८) वछंग < वत्सङ्ग=कोड़, बाहुपाश। (१०) जंम < जन्म। (१२) करेन < करेणु=हथिनी। (१४) गंठ < ग्रंथि। (१५) तेजि < ताजी। (१७) रास < राशि (?)। (१७,१८) की तु, एव। (१८) झौंर=झुंड। साह < श्लाघ्य। (१९) रंक < रङ्कु=हला। (२०) मयन्न < मदन। पासि < पाश। वल्ल डालना। (२२) रंझ < रुंज < रु=आवाज़ करना। तुरंयं < तूर्य। (२३) जप < जल्प्=बोलना, कहना (२४) दीठ < दृष्ट। (२५) अनेक < आणिक=बाँका (२६) तमोरि < ताम्बूल।

[१६]

दोहा— वरि[1] चल्लउ*[2] ढिल्लियनृपति[3] सुत[4] जयचंद कुमारि[5] । (१)
गंठि छोड़ि[1] दक्खिन[2] फिरिग[3] प्रान करिग मनुहारि[4] ॥ (२)

अर्थ—(१) दिल्ली-नृप (पृथ्वीराज) तब उस कुमारी जयचंद-सुता (संयोगिता) को वरण कर चला। (२) गाँठ खोल कर वह प्रदक्षिणा में आरब्ध हुआ, तो उसके प्राण [संयोगिता को साथ ले चलने के लिए] मनुहार (अनुरोध) करने लगे।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. फ. लं, ना. वर। २. मो. चलु (=चलउ), धा. अ. फ. चल्यो, म. उ. स. चल्यौ। ३. फ. वर इंदुपति। ४. मो. सुध, १. ना. म. सुत। ५. धा. कंवारि, म. कुंआरि, अ. फ. कुंवारि। (२) १. धा. ना. छोरि, म. उ. स. छोर। २. धा. दिच्छन, मो. दक्षिन (=दक्खिन); अ. फ. दष्षिन, ना. म. उ. स. दक्खिन। ३. मो. ना. फिरग, अ. फिरिग, फ. करिगु, ४. मो. मनहारि।

टिप्पणी—(२) गंठि < ग्रन्थि। दक्खिन < प्रदक्षिणा।

[१७]

गाथा— पायातु[1] पंग पुत्तीय[2] जयति जयति°[3] योगिनि[4] पुरेसं[5] । (१)
सर्वं[1] विधि निषेधस्य[2] यः तंबोलस्य[3] समादायं[4] ॥[5] (२)

अर्थ—(१) [संयोगिता कहने लगी,] "पंगपुत्री (संयोगिता) की रक्षा करो, हे योगिनी पुरेश—दिल्लीपति—तुम्हारी जय हो, जय हो। (२) सभी प्रकार से [तुम्हारे जाने के] निषेध का जो ताम्बूल है, उसे ग्रहण करो।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द धा. ना. में नहीं है।

(१) १. धा. अ. फ. पयंपि। २. धा. पंग पुत्रीय, ना. पंगु पुत्ती। ३. धा. ना. जयति, मो. जय जयति। धा. जोगिन, ना. जुग्गनि। ४. धा. पुरइ।

(२) १. धा. सरव ना. श्रब्बे। २. धा. निसेधाइ, अ. फ. निषेधये, ना. निषेधाय। ३. मो. यः तंबोलस्य, धा. तंबूलस्य, अ. फ. ना. तांबूलस्य। ४. मो. ना. समादयं, अ. समदाय, फ. समदाइ। ५. म. उ. स. में पाठ है :

श्लोक—पयाने टंग पुत्री च जैतिक जोगिनी पुर।
विधि सर्वं (सरबा-म.) निषेधाय तांबूलं ददतं नृपं ॥

[१८]

दोहा— रेन[1] प्पर[2] सिरि[3] उप्परिहि[4] हय गय[5] गयु*[6] उछार[7] । (१)
मनु[1] ढिल्ली ठगु ठगि गयु[2] रहि गयु सब[3] मुच्छार[4] ॥ (२)

अर्थ—(१) सिर पर [सैन्य-संचालन से उठी हुई] रेणु (धूल) पड़ रही थी, [इसलिए]

घोड़े हाथियों का उछलना चला गया था—समाप्त हो गया था। (२) ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दिल्ली का ठग [ठगमूरी खिला कर] ठग गया था, इस लिए सब मूर्छित रह गए थे—हो रहे थे।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. रेनु, अ. रेणु, फ. रेण, ना. रैंण, उ. स. रैन। २. धा. परइ, अ. फ. परे, ना. परि, म. उ. स. परै। ३. अ. फ. म. उ. स. सिर। ४. धा. उप्परहि, अ. फ. उप्परह, म. उ. स. उप्परैं। ५. धा. गन। ६. मो. गजु (< गजु), धा. ना. गज, अ. फ. गुंज, स. गतर, म. इर। ७. धा. अच्छार, उ. उछारि म. उछाह।

(२) मो. मनु, धा. अ. म. उ. स. मनहु, फ. मनहो, ना. मानहु। २. धा. ढग ढग मूल ले, अ. फ. ठग्ग ठग मूरि (झूरि–फ.) दै, म. उ. स. ना. ठग्ग (ठग–ना.) ठग भूरि ले, (ले–म.)। ३. धा. अ. फ. रहे ति सब, ना. रहि गए सब, म. उ. स. रहिय सवैं (सबे–म.)। ४. म. मूछार, ना. मुरछार।

टिप्पणी—(१) रेन < रेणु। (२) मुच्छार < मूच्छीउ (?)।

[१९]

दोहरा— मनहू[१] बंध[२] ति अज्ज भर[३] हेति न जान ति थट्ट[४]। (१)
वचन सामि[१] भंगु नन करहु[२] सह[३] जोअइ[*४] नृप बट्ट[५]॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के] भट मानो आज (इस समय) भी बँधे हुए थे, वह [भट-] समूह कारण नहीं जानता था [कि पृथ्वीराज को क्यों विलंब हो रहा था]। (२) [वे परस्पर कह रहे थे,] "स्वामी के वचन को भंग किसी दशा में न करो, हम सभी राजा (पृथ्वीराज) की बाट देख।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधितपाठ का है।

(१) १. मो. मनुहू, धा. ना. अ. मनहु, फ. मनहौ, म. मनौ। २. अ. फ. वध, ना. बध्ध। ३. धा. अज हुंति भरे, अ. अज हुंति सर, फ. अज हो तिभर, उ. स. अनभूति धर, म. अनहित वरि, ना. अजहे तिमर। ४. मो. हेतिन जान निघट, धा. हेतिनि जानत थट्ट, अ. फ. है तिन जानत बट्ट, ना. म. उ. स. हेतिन जानत थट्ट (ठाट–ना.)।

(२) १. धा. वचन साह, म. वचन स्वामि, ना. वचनह स्वामि, फ. वचन स्वामु। २. धा. ना. भंगु न करहि, अ. फ. भंग न करे, म. उ. स. भंग न करहि। ३. धा. सहु, ना. सुव अ. सव, फ. सच। ४. धा. जोवइ, मो. जोइ (=जोअइ), ना. अ. जोवहि, फ. जोउरि, म. उ. स. देषहि। ५. ना. बाट।

टिप्पणी—(१) भर < भट। (२) बट्ट < वर्त्मन्=मार्ग।

[२०]

दोहरा— धीर तनु धरि ढाल सिर[१] बाहु दंत उभ रोभ[२]। (१)
नृपति[३] नयन त्रिय अंकुरु[४] मनहु मदग्गज[५] सोभ[६]॥ (२)

अर्थ—(१) [उधर पृथ्वीराज का यह हाल था कि] धीर तनु पर जो ढाल वह धारण किए था, वही सिर था, उसके बाहु उसके उठे और हुए दाँत थे, (२) नृपति (पृथ्वीराज) के

रुके (निकले) नेत्रों में स्त्री का अंकुर था—स्त्री गड़ी हुई थी—ही, [इस प्रकार राजा ऐसा हो रहा था] मानो मदोन्मत्त गज शोभित हो रहा हो।

पाठान्तर—(१) १. धा. धीरत्तु धर ढार सिर, फ. धीरत्तु सिर ढाल धरि, म. उ. स. धीरत धरि ढिल्लिम, वर ना. धीरत्तन धरि ढिल्ली सुरह। २. धा. बाहु देतिय उभ रोस, मो. म. उ. स. बहुदंती उभ रोम (रोस—स.), अ. फ. बाहु दंत उभ रोम, ना. दंती उभा रोम।

(२) १. धा. त्रिप्पु। २. मो. नयन त्रिय अंकुर, धा नयन त्रिअ अंकुरिग, अ. फ. यन्न त्रिय अंकुरिग, ना. म. उ. स. नयन तन अंकुरे। ४. फ. मनौह मदगाज, म. मानहु मदराज, स. मनहु मत्त राज। ५. म. सोस।

टिप्पणी—(१) उभ > उब्भ < ऊर्ध्व= उठा हुआ। रोम < रुद्ध।

[२१]

दोहरा— हरषवंत[१] नृप चित्त[२] हुअ[३] मेन[४] मज्झिहि[५] अनुराहु[६]। (१)
मिलित[१] हथ्थ कंकन[२] लषिउ*[३] कन्ह कहइ इह काहु[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) का चित्त हर्षित था क्योंकि वह मदन (काम) में अनुराद्ध (संप्राप्त) था। (२) जब उसके हाथ में मिला (बँधा) हुआ कंकण देखा तो कन्ह ने कहा, "यह क्या है ?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. म. हरषचंद। २. म. ना. में 'चित्त' शेष सभी में 'त्रित' या त्रित्य। ३. धा. हुआ। ४. मो. फ. में 'मेन' शेष, सभी में 'मन'। ५. धा. मज्झहि, उ. स. अ. फ. ना. मझह म. मंझह। ६. मो. अनुराहु, धा. जुविराहु, म. उ. स. अ. फ. ना. जुधचाव (चाव–फ. ना.)।

(२) मो. ना. मिलित, फ. मिलवि, शेष सभी में 'मिलत'। २. मो. म. हथ कंकत (< कंकन), धा. हस्य कंकम। ३. मो. लिष्यु (=लिष्यउ) म. लिष्यौ, धा. लखिउ, अ. फ. लष्यौ, ना. उ. स. लष्यौ। ४. मो. कन्ह कहि (=कहइ) इह काहु, धा. कहहि कन्ह यहु काहु, अ. फ. कहइ (कहै—फ.) कंक नह (इह–फ.) काव (चाउ–फ.), ना. म. उ. स. कह्यौ (कर्‌यौ–म.) कन्ह इह (यह–ना.) काव।

टिप्पणी—(१) १. मेन < मयण < मदन। अनुराह < अनुराद्ध।

[२२]

दोहरा— गगन रेखु[१] रवि छुंद लिअ[२] धर सिर[३] छंडि फुनिंदु[४]। (१)
इहु[१] अपुव्व[२] धीरत्त तुहि[३] कंकन हथ्थ नरिंदु ॥ (२)

अर्थ—(१) [कन्ह ने कहा,] "गगन में [पहुँची हुई] रेणु ने रवि पर आक्रमण कर दिया है, और फणीन्द्र (शेष) धरा को सिर से छोड़ चुके हैं। (२) ऐसी दशा में यह तुम्हारी ही अपूर्व धीरता है कि, हे राजा, तुम्हारे हाथ में कंकण [बँध रहा] है।"

पाठान्तर—(१) १. धा. रेनु, अ. फ. ना. रेणु, म. उ. स. रेन। २. धा. छुंद लिय, अ. फ. म. उ.

स० सुंदि लिय, ना. छूंद लिय । ३. म० उ० स० थर भर, ना० थर भर । ४. मो० फुणंद, धा० अ० फ. फनदि स० ना. उ. स० फुनिंद ।

(२) १. धा० इहु, मो. इहि, अ० फ० यह, म. उ. स. इह, ना, ईय । २. मो. अदूव, म० पुव । ३. मो. धीरय तुही, धा. अ० फ० म० धीरत्त तुहि, ना. धीरज्ज तुहि ।

टिप्पणी—(१) रेण < रेणु । धुंद < धुंद=आक्रमण करना । फुणिंद < फणीन्द्र । (२) अपुव्व < अपूर्व ।

[२३]

मुडिल—

बरिअ[१] बाल सुत पंगुर[२] राइ[३] । (१)
उहि व्रत रष्षि[१] मिलउ* तुम्ह आइ[२] । (२)
तजि[१] सुष्षहि[२] अब जुष्ष सहाइ[३] ।× (३)
अवास आनि दइ* लियउं* बताइ[१] ।× (४)
तिहि तजि चित्त कियउ*[१] तुम्ह पास[२] ।÷ (५)
छंडिय कन्ह रुदंति अवास[१] ।[१] (६)
जु सउ भृत मज्झि[१] एक भृत होइ[२] । (७)
सो नृप युवति न[१] मूंकइ[२] कोइ[३] । (८)
हम सउ रजपूत[१] सा सुंदरि एग[२] । (९)
मुकि जाइ ग्रहि[१] बंधइ तेग[२] ।[३] (१०)
जउ अरि ठट्ट[१] कोडि[२] दल साज[३] ।+ (११)
तउ* ढिल्लिअ तषत[२] देहुं[३] प्रथिराज[४] ।+ (१२)
इह नृपति न बुज्झियै तोय[१] । (१३)
परणि मूंकि सुंदरि अरि* छेइ[१] ॥ (१४)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] मैंने पंगराज (जयचंद) की सुता बाला [संयोगिता] का वरण किया, (२) और उसका [प्रणय—] व्रत रख कर तुम से आ मिला । (३) इस सुग्धा को छोड़ कर मुझे [अब] युद्ध ही सुहा रहा है (४) [इसलिए] आवास (भवन) में आ कर मैंने तुम्हें बता दे लिया— सूचना दे दी । (५) उसको छोड़ कर चित्त मैंने तुम सब के पास किया है (६) और उसे, हे कन्ह, मैंने [उसके] आवास (भवन) में रोता छोड़ दिया है ।" (७) [कन्ह ने कहा,] "यदि हम सौ भृत्यों में से एक भी भृत्य होता (८) तो वह भी हे राजा, [तुम्हारे द्वारा परिणीता] युवती को न छोड़ता । (९) [तब जबकि] हम सौ राजपूत हैं, और एक ही सुन्दरी है, (१०) तो क्या उसे छोड़ कर और घर जाकर हम तेग (तलवार) बाँधेंगे ? (११) यदि शत्रु-समूह करोड़ का दल भी साजे, (१२) मैं दिल्ली का सिंहासन पृथ्वीराज को दूँगा । (१३) हे राजा तुमसे ऐसा नहीं समझा था—ऐसी आशा नहीं थी । (१४) तुम परिणीता सुन्दरी को छोड़ कर शत्रु को छिन्न (नष्ट) करना चाहते हो ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
× चिह्नित चरण ना. में नहीं हैं ।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

§ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण म. उ. स. में दो बार आए हैं।

(१) अ. फ. चारिय। २. ना. पंगुह, म. उ. स. पगह। ३. मो. राई।

(२) १. मो. उहि वृत रषि, धा. उहि चितु रखिव, फ. इछ वृत रषि, म. उ. स. वह व्रत भंग। २. मो. मिलु (=मिलउ) तुम्ह आई, धा. अ. फ. ना. मिल्यो तुम (तुम्ह—ना.) आइ, म. मोह मन जाइ, उ. स. मोहि वृत जाइ।

(३) १. म. उ. स. तिहि, (तिहि—म.)। २. धा. मुंधइ, मो. मुधही, अ. फ. मुंधहि, उ. मुंधहि। ३. मो. धा. सहाइ, म. सुहाय, अ. फ. सुहाइ, स. सुहाई।

(४) १. मो. अवास आनि दि (=दइ ?) लीयु (=लियउ) बताइ, धा. सु अव दई आवास बताइ, अ. फ. छंडिय कन्ह अवासह (अवासहि—फ.) आइ, म. उ. स. [सो—उ. म.] अथ्थि अवासह देउं (देउ—म.) बताइ (बताय—म.)।

(५) १. मो. कीतु (=कियउ), धा. किया, म. उ. स. कियौ ना. कियो। २. उ. स. तुम पासं, तुम पासि।

(६) १. मो. रुदंत ली अवास, धा. रुवंत अवास, म. उ. स. रुदंत अवासं, म. रुदंत अवासि, ना. रुदंत अवास।

(७) १. मो. जु स भृत नाहि, धा. ज सउ भ्रित मज्झि, अ. फ. ना. सौ भृत (नति—फ.) मज्झि, म. उ. स. सौ (सो—म.) सुभट्ट महि। २. धा. इक भितु होइ, अ. फ. इक भृत (भ्रित—फ.) होइ, म. उ. स. एक भट होइ (होय—म.)।

(८) १. धा. त्रिप बूझहिन, अ. फ. तऊ (तौ—फ.) न सुंदरि, ना तौऊ न सुंदरि, म. तौ त्रिप नहि न, उ. स. तौ नृप बुझहि न। २. धा. म. उ. स. अ. फ. मुक्कै। ३. धा. कोई, म. कोय।

(९) १. धा. हम सउ भ्रित, अ. सो रजपुत्ति, फ. सौ रजपूत, म हम सौं रज, ना. सौर पुत्त, उ. स. हम सौ रजपूत। २. मो. सा सुंद रग, धा. सुंदरी एग, अ. फ. ना. सुंदरिय (सुंदरी—फ. ना.) एक, म. उ. स. सु सुंदरि एक।

(१०) १. मो. मुनि जांइ ग्रहि, धा. ना. मुक्कि जाइ ग्रिह, अ. फ. मुक्कि जाइ ['ग्रिह' नहीं है], म. उ. स. मुक्कि जांहि ग्रह। २. १. मो. बंधि (=बंधइ) तेग, अ. फ. म. उ. स. बंधहि तेक, ना. बंधै तेक। ३. ना. में यहाँ और है: गज्जित कन्ह कही यह सह। राजन बात कीन्ह यह हह।

(११) १. मो. जु (=जउ) अरि ठट (< ठट ?), धा. जउ अरि थट्ट, अ. फ. ना. जौ अरि थट्ट (थट्ट—फ. ना.), म. उ. स. जौ अरि थाट। २. धा. अ. फ. म. उ. स. कोरि, ना. कौअरि। ३. मो. साजा, अ. फ. साजहि, म. साज।

(१२) १. यह शब्द धा. अ. फ. में नहीं है, म. उ. स. तौ। २. अ. फ. तपत। ३. धा. देहु, अ. फ. देउं, म. देहि, ना. थु (=थउं), उ. स. देंहि। ४. मो. प्रथीराजा, धा. प्रिथिराज, अ. फ. पृथिराजहि, म. प्रिथीराज।

(१३) १. मो. इह नृपति न वूझै (< बज्झइ) तोय, धा. अ. फ. ना. इहु (यह-अ. फ. ना.) नृपति बुज्झियै (बुझियै—अ. फ.) न तोहि, उ. स. इतनौ नृपति पुच्छयै तोहि, म. इतनौ नृपति बुझियै तोहि।

(१४) १. मो. परणि मूकि सुंदरि यरि (=अरि) छेइ, धा. सुंदरि तजि जीवन का मोहि, अ. फ. सुंदरि तजै जीवन क्यों मोहि, ना. सुंदरि तजै जीवन क्युं मोहि, म. उ. स. परनि (परन—म.) मुक्कि सुंदरि इह होइ (होति—म.)।

टिप्पणी— (३) मुंध < मुग्धा। (७) भृत < भृत्य। (८) मूक < मुच्। (९) एग < एक। (१४) छेअ < छेदय्।

[२४]

दोहरा— चलि चलि सूर ति[1] सथ्थि[2] हुअ रण निसंक[3] मनि[4] मउन*[5] । (१)
सह अचार मुख मंगलहि[1] मनहु फिरि करइ*[2] गउन*[3] ॥ (२)

अर्थ—(१) शूरगण चल-चलकर पृथ्वीराज के साथ हो लिए, वे रण के लिए निःशङ्क थे, और उनके मन में वह भवन था [जिसमें संयोगिता थी]। (२) [ऐसा लगता था] मानो आचारों के साथ मुख्य मांगलिक कार्य ही लौट कर गमन कर रहा हो—मानों उन्हीं को वहाँ साथ ले जाने के लिए वह यहाँ आया रहा हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. चलचलि सूर ति, धा. चले सूर सहु, अ. फ. चलि चलि सूर सु, म. चलि चलि सूरि त, उ. चलि चलि सूति, ना. चलि मिल सुरस। २. अ. फ. म. उ. स. सथ्थ। ३. उ. नरसिंक। ४. मो. में 'मनि' है, शेष में 'मन'। ५. मो. मुंन (=मउन), धा. अ. फ. मौन, ना. मौम, उ. स. मोंन, म. भौन।

(२) १. धा. अिग लहि, अ. फ. मंगही, म. उ. स. मंगलह, ना. मंडलहि। २. मो. फिरि करि (=करइ), धा. करे फिरि, अ. फ. कियौ फिरि (फिरु—फ.), ना. म. उ. स. करंइ (करहिं—म.) फिरि। ३. मो. गुंन (=गउन), धा. अ. ना. गौन, फ. गौनु, उ. स. गोंन, म. गौन।

टिप्पणी—(१) सह=साथ।

[२५]

गाथा सुडिल्ल— पानि परसि[1] अरु दीठ विलग्गिय[2] । (१)
सा[1] सुंदरि[2] कामागनि[3] जग्गिय[4] ॥ (२)
षिनु तनु तलप[1] अलप मन किन्नउ[2] । (३)
जउ*[2] वरु[2] बारि[3] गए[4] तनु[5] मीनउ[6] ॥ (४)

अर्थ—(१) [संयोगिता ने पृथ्वीराज के] पाणि का स्पर्श किया था, और [उससे उसकी] दृष्टि लग गई थी, (२) [इसलिए] उस सुन्दरी की कामाग्नि जाग उठी थी। (३) एक क्षण [के लिए] वह शरीर से तल्प (पर्यङ्क) पर चली गई और उसने मन को छोटा कर लिया, (४) [उस के शरीर की दशा कैसी हो रही थी] जैसी श्रेष्ठ जल के शेष न रहने पर मछली के शरीर की होती है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. परस्य (=परसि), धा. अ. फ. उ. स. परस, म. परसि। २. धा. द्रिष्टि, अ. दिट्ठि, फ. दिष्ट, ना. द्रष्टि, म. उ. स. दिठ्ठ। २. मो. म. विलगीय (=विलग्गिय), अ. फ. विलग्गिय, धा. कलग्गिय।

(२) १. म. सुअ। २. फ. सुदरु। ३. मो. कामागति, अ. फ. कामगिनि, उ. कामाजिस, स. कामागिन। ४. मो. जंगीय।

(३) १. धा. षन तलप्प, मो. षिनु तनु तलप, अ. फ. षन तलाप, ना. उ. स. षिन तलपह, म. विनत षन। २. मो. अलय मन किनु (किनउ), धा. अलप्प मनु कीने, अ. फ. लाम मनु कीनउ (कीनो—फ.), म. तपइ मन कीनौ, ना. उ. स. अलपह मन कीनौं।

(४) १. मो. ज्यु (< ज्युअउं), धा. जैं, अ. फ. ज्यौं, ना. ज्युं (=ज्यउं), उ. स. ज्यों, म. जौं। २. धा. वहि। ३. फ. बाले। ४. धा. उ. स. गये, म. अ. गयें, ना. गयं, फ. गयो। ५. अ. फ. ड. स. तन, म. तिन। ६. धा. मीने, मो. मीनु (=मीनउ), म. ना. फ. मीनौ (मीनों—ना.), अ. मीनउ।

टिप्पणी—(३) तलप < तल्प=पर्यंङ्क।

[२६]

अडिल्ल— फिरि फिरि[१] बाल[२] गवष्षिन[३] अष्षी[४] । (१)
ता सिष देहि[१] वयन[२] वर सष्षी[३] ॥ (२)
विन[१] उत्तर तु मौन[२] मुष[३] रष्षी[४] ।+(३)
जिम चातुकि पावस रति नष्षी[१] ॥+(४)

अर्थ—(१) बाला (संयोगिता) की आँख पुनः-पुनः [आते हुए पृथ्वीराज को देखने के लिए] गवाक्षों में [जा लगतीं], (२) ता उसको उसकी सखियाँ श्रेष्ठ वचनों में सीख देतीं। (३) [किन्तु संयोगिता] उन्हें उत्तर दिए बिना मुख को मौन रखती, (४) जिस प्रकार चातकी पावस ऋतु को बिताती है।

पाठान्तर—+ चिह्नित चरण फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. फिर फिर। २. फ. बालि। ३. धा. गवक्खह, मो. गवाषिन, अ. गवष्षिनि, फ. गउष्षिन, उ. स. गवष्षनि, म. गरुषिन, ना. गवष्षन। ४. मो. अंषी (=अष्षी), धा. अष्षी, शेष में 'अष्षिय'।

(२) १. फ. सुषदेह, अ. सषि देहि, म. ना. सिष दैन, ना. उ. स. सिख देन। २. ना. म. बैन, फ. वयर। ३. मो. संषी (=सष्षी), ना. म. सिष्षीय।

(३) १. धा. बिनु। २. धा. अ. मोहन, ना. उ. स. सु मौन, म. सौ मौन। ३. मो. मष, ना. म. उ. स. मन। ५. ना. म. रषीय।

(४) १. धा. जिम चातग पावस ऋतु नखी, मो. जीम (=जिम) चाउकि (< चातुकि) पावस रति नंषीय (=नष्षीय), अ. ना. जिमि चात्रिक (चात्रिग जिम—ना.) पावस रितु नष्षिय, म. ड. स. मन बच क्रम प्रीतम रस कष्षिय (चषीय—म.)।

टिप्पणी—(१) अष्षी < अक्षि=आँख। (२) सिष < शिक्षा। (४) रति < ऋतु। नष्ष < नश= काटना, बिताना।

[२७]

सुडिल्ल— अंगना अंग सउ[*१] चंदनु लावइ[*२] ।+(१)
अरु अंगन लाजन[१] समुझावइ[*२] ॥+(२)
दे[१] अंचल चंचल द्रिग मुद्दइ[*२] । (३)
कुल सभाउ[१] तुरी जिम कुद्दइ[*२] ॥ (४)

अर्थ—(१) वह अंगना (संयोगिता) अपने अंगों से चन्दन लगाती, (२) और अपने अंगों को लजावश समझाती [कि उन्हें अपनी आतुरता प्रकट न करनी चाहिए], (३) वह अञ्चल

देकर अपने चंचल नेत्रों को मूँदती, (४) [किन्तु वे उसी प्रकार न मानते] जिस प्रकार अपने कुल-स्वभाव के कारण [बाँधने पर भी] घोड़ा कूदा-उछला करता है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) + चिह्नित चरण फ. में नहीं है।

१. मो. अंगना अंग सुं (=सउं), धा. अंगना अंगह, अ. अंगन अंजन, ना. अंगनि अंग सु, म. उ. स. अंगन अंगसु। २. मो. चंदन लावि (=लावइ), धा. ना. म. उ. स. चंदनु (चंदन–ना. म. उ. स.) लावहि, अ. चंदन चाचहि।

(२) १. धा. असु काजनु राजनु, अ. अरु काजल राजत, म. ना. उ. स. अरु राजल काजल। २. मो. समुझावि (= समुझावइ), धा. अ. फ. म. उ. स. ना. समुझावहि (समझावहि–म.)।

(३) अ. फ. म. ना. उ. स. दै। २. मो. मुदि (=मुदइ), ना. म. अ. मुंदहि, फ. मुंदहि, शेष में 'मूंदहि' (छुंदहि–अ. फ.)।

(४) १. धा. अ. फ. ना. कुल सुहाइ (सुभाइ–अ. ना., सभाइ–फ.) तुरिया जिम (जिव–धा., जिमि–अ. फ.) धुंदहि, मो. कुल सभाउ तुरी जिम कुंदि (=कुद्दइ), म. उ. स. बिर (चिर–म.) हायन दाहन रवि उद्दहि।

टिप्पणी—(३) मुद्दइ < मुद्रय्=बंद करना, मूँदना।

[२८]

मुडिल्ल—

बहुत जतन संजोगी* समवें[१] । (१)
सोम अमृत कमल तुम्ह नु छवैं[२] ।। (२)
इह कहि बाल गवक्खिन* पत्तिय[१] । (३)
पति देषत[१] मन महि[२] नहि रत्तिय[३] ।। (४)

अर्थ—(१) संयोगिता ने [विकलता-निवारण के लिए] बहुतेरे यत्न किए [किन्तु वे व्यर्थ गए यह देखकर उसने कहा,] (२) "हे सोम (चन्द्रमा), अमृत, और कमल, तुम्हें कोई भले ही न छुवे [क्यों कि तुम्हारे स्पर्श से शीतलता की अपेक्षा करना व्यर्थ है।]" (३) यह कह कर वह बाला गवाक्षों को संप्राप्त हुई (पहुँची)। (४) किन्तु जब उसने पति (पृथ्वीराज) को [युद्ध में न लगकर अपने पास आते] देखा, वह मन में [उस पर] रक्त (प्रसन्नता) नहीं हुई।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. संजोगि (=संजोगी) समवे, म. संजोगि समाए, शेष सब में 'संजोगि (संजोग–धा.), समाए'।

(२) १. मो. सोम अमृत कमल तुम्ह न छवे, धा. ना. अ. फ. सोम कमल अम्रित दरसाए, ना. म. उ. स. सोम (अनु सोम–म. उ.) कमल दिनयर (दिणयर–ना., दनियर–म.) दरसाए।

(३) १. मो. इह कहि बाल गवाक्खिन (=गवाक्खिन) पत्तीय, धा. अ. फ. ना. म. उ. स. झझकि झकि (झझिकि–म.) दिष्षउ (दिख्यौ–धा. उ. स., दिष्यौ–ना. म.) पुन पत्तिय (पुन पत्तिय–धा प्रनपत्तिय म. उ. स., प्रणपत्तिय–ना.)।

(४) १. धा. देष्यो, अ. देषन, फ. देषति, ना. म. उ. स. दिष्षत। २. मो. मिहि (< महि)। ३. धा. अ. फ. ना. अनुरत्तिय, म. उ. स. अभिरत्तिय।

टिप्पणी—(१) सम्भ् (सम्+अब्) = लगाना, प्रयुक्त करना। (२) नु (णु) = व्यंग्य, अपमान अथवा अमान सूचक अव्यय। छव < छिय < स्पृश्=छूना। (३) गवष्ष < गवाक्ष। पत्त < प्राप्त। (४) रत्त < रक्त।

[२९]

श्लोक— गुरु जनो वि मनो[१] नास्ति तात आप्तात वर्जिता। (१)
तस्य कार्य[२] विनस्यंति यावत्[२] चंद्र दिवाकर[३]॥ (२)

अर्थ—(१) [संयोगिता ने अपने मन में कहा,] "यदि किसीके मन में गुरुजन [के प्रति आदर] नहीं होता है, और वह तात (पिता) तथा आप्त (ज्ञानी पुरुषों) से वर्जित (रहित) रहता है, (२) तो उसके कार्य जब तक चंद्र तथा दिवाकर होते हैं—अर्थात् सदैव—नष्ट होते हैं।"

पाठान्तर—(१) धा. गुरुजनो नाम, अ. फ. गुरुजनो नमो, ना. गुरुजन जमो, म. गुरंजनं नमो, उ. गुर जनं मयो, स. गुरजनं मनो। २. धा. अ. फ. तात मात विवर्जितः, म. उ. स. तात आज्ञा (अज्ञा—म. उ.) विवर्जित। ना. तात तातञ विवर्जितः।

(२) १. धा. म, ना. म. उ. स. अ. फ. कार्य (कार्य—ना. म. उ. स) म. कारज्यं। २. धा. जाम। ३. मो. म. उ. चंद्र दिवाकर, धा. चंद्र दिवाकरः, अ. फ. चंद्रो दिवाकर, ना. स. चंद्र दिवाकरौ।

टिप्पणी (१) आप्त < आप्त = ज्ञानी पुरुष।

[३०]

दोहरा—इह[१] कहि सिर धुनि सखिन सउ*[२] दिखि[३] संजोगि[४] सुरज्ज[५]। (१)
जिहिं[१] प्रिय तन अंगलि फिरइ[२] तिहिं[३] प्रियजन[४] कहा* कज्ज[५]॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) को देख कर संयोगिता ने सखियों से यह कहा और सिर पीट लिया, (२) "[सखियो,] जिस प्रिय की ओर [लोगों की] उंगलियाँ फिरें—उठें, उस प्रियजन से [हो] क्या कार्य (प्रयोजन)?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. ना. यह। २. मो. सुखिन सुं (=सउं), ना. सखिन सुं (=सउं), धा. उ. स. सखिनि सों, अ. सखिन्हि स्यौं, म. फ. सखिन सौं, ना. सखिन सुं। ३. धा. अ. फ. देखि। ४. मो. संयोग सु, फ. संजोग सु, ना. म. उ. स. संजोगिय। ५. म. में 'रज्ज', शेष सभी में 'राज'।

(२) १. फ. जिहु, म. जिहिं। २. मो. प्रयजन अंगलि फिरइ, धा. पियजन अंगुलि फिरिय, अ. प्रियतन अंगुलि फिरं, फ. प्रियतनु अंगुलि फिरहि, ना. प्रीयन अंगुलि फिरं, म. उ. स. प्रियजन अंगुलि करं। ३. धा. ना. म. उ. स. तिहि, अ. फ. सो। ४. मो. पयजन। ५. मो. काहा कज्ज, धा. कह काज, अ. म. उ. स. किहि काज, फ. कहि काज, ना. कह काज।

टिप्पणी—(२) कहा कथम् < क्रम।

[३१]

दोहा— सुनत[१] सामंतन[२] सत्त कहि[३] पंग पुत्ति[४] धर मंथ[५] । (१)
इहि सथ्थहि सामंत सुभट[१] ब वइ*[२] ठिल्लहि[३] गय[४] दंत ॥ (२)

अर्थ—(१) यह सुनते ही सामन्तों ने सत्य [ही] कहा, "हे पंगपुत्री (संयोगिता), यह [पृथ्वीराज] जो धरा का मस्तक है, और इसके साथ जो सामन्त सुभट हैं, वे हाथियों के दाँतों को भी ठेल देते हैं, [इसलिए यह न समझना कि पृथ्वीराज युद्ध से भयभीत होकर तुम्हारे पास आया है ।]"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. सुनि, ना. म. स. ए । २. धा. सावंतनि, ना. सामंतहि, म. सामंत जु, स. सावंत जु । ३. धा. संत कहि, मो. सत किहि । ४. धा. पुत्रि । ५. धा. ना. स. धहि मंत, म. घट मंत ।

(२) १. मो. इहि सथ्थहि थत सुभट, धा. तुम्ह सत्थहि सामंत सुभट, ना. इहं सत्थ सत भट सुभट, म. स. एक लष भर लष्यिवं (लथ्यौ–म.) । २. मो. ज वि (=वइ), धा. जे, ना. म. जे, स. जै । ३. धा. ढिल्लहि, म. गढै, ना. स. कड्ढै । ४. धा. म. ना. स. गज ।

टिप्पणी—(१) धर < धरा । मंथ < मस्तक । (२) गय < गज ।

[३२]

गाथा— मदन[१] सराल ति विवहा[२] निमिष दइत[३] प्रान प्रानेन[४] । (१)
नयन[१] प्रवाह ति[२] विवहा दिवा कथय कथा[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) मदन के शर रूपी काल से विनष्टा [संयोगिता] के प्राण एक क्षण के लिए दयित (प्रिय, पति) के प्राणों से [अभिन्न रहे] । (२) [किन्तु] उस विनष्टा के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहे ।

पाठान्तर—(१) १. स. मदनं । २. मो. सिरालति विवहा, स. सरालति विविहा, म. मराल निवहा, फ. सरालति विषहा । ३. मो. निमिष दहति, धा. वि वहारे देत, अ. फ. बिवहा (विवह–फ.) देत, म. ना. उ. स. जिहा रत्योति । ४. ना. मान प्रायेन, उ. स. प्रान प्रानेसं ।

(२) १. ना. पत । २. धा. प्रवाहि, अ. प्रवाहिन, फ. प्रवाहिन । ३. धा. अहवा कामा कथ दोह, अ. फ. अहवा कांती कथा, ना. अहवामा कांती कथा, म. उ. स. अहवमां कत (कंत–उ. स.) कथ्थायं ।

टिप्पणी—आल < काल । विवहण < विध्वंसन=विनाश । दइत < दयित=प्रिय ।

[३३]

कवित्त— हे[१] प्रथिराज वामंग[२] संग जो[३] कन्ह[४] नन्ह[५] दल ।° (१)
हउं*[१] चहुआन समथ्थ[२] हरउं*[३] रिपुराय तथ्थ बल[४] ।° (२)
मोहि बिरुद[१] नरनाह दंद को[२] करइ*[३] भुवनि[४] वर ।°(३)
मोहि कंप[१] सुरलोक कंप तपिय तह[२] नाग[३] नर । (४)

मम कपि कंपि[1] सुंदरि[2] सपहु[3] चडिग[4] कोडि कायर[5] रषत[6] । (५)
इहि[1] भुवनि[2] ढिल्लि[3] कनवज्ज करउं[4] इहि[5] अप्पउं*[6] ढिल्लिय[7] तषत ॥ (६)*

अर्थ—(१) [यह देख कर कन्ह ने पुनः कहा] "हे पृथ्वीराज की वामाङ्ग, यदि कन्ह के साथ नन्हा-सा भी दल हो, (२) तो मैं समर्थ चहुवान रिपुराज से वहाँ (रण-क्षेत्र में) [उसका] बल हर लूं। (३) मेरा विरुद 'नरनाह' है, कौन मुझसे [अपनी] भुजाओं के बल से द्वन्द्व करेगा ? (४) मुझसे सुरगण काँपते हैं, और उसी प्रकार नाग और नरगण काँपते और त्रस्त होते हैं। (५) हे सुन्दरी, तुम मत काँपो, मत काँपो, कोटि कायर रक्षित (भृत्य) [अपने] प्रभु (जयचन्द) के साथ चढ़ चुके—चढ़ाई कर चुके हैं। (६) [फिर भी] मैं [अपनी] इन भुजाओं से कन्नौज को दिल्ली कर सकता हूँ और इस (तुम्हारे पति) को दिल्ली का तख्त अर्पित कर सकता हूँ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के पाठ हैं।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं हैं।

(१) १. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. मो. प्रथिराज वमांग, ना. पृथीयराज वामंग। ३. अ. फ. म. उ. स. ना. जो। ४. मो. कंन, शेष में 'कन्ह'। ५. अ. उ. स. नन्ह, फ. मन, म. न, ना. तौ नन्ह।

(२) १. मो. हूं (<हुं=हउं), अ. फ. हौं, म. ना. हुं (=हउं), स. हौ। २. मो. समथ, अ. फ. समछ्छ। ३. मो. हरु (=हरउ), अ. फ. हरौं, ना. हरुं (=हरउं—ना.), स. हरूं, म. हनौ, उ. हरौं। ४. मो. रिपुराय तिथ्थ बल, अ. फ. रिपुराइ तथ्थबल, ना. उ. स. रिपुराइ भुजन (भुजनि—ना.) बल, म. रिपुराय भुजबल। (तुलना-चरण ३)

(३) १. ना. विरद। २. मो. अ. चंद को, ना. दुंद को, म. उ. स. दंद को, अ. चंद कौ, फ. चंद कौं। ३. मो. करि (=करइ), अ. फ. ना. म. उ. स. करै। ४. स. भुजन, उ. स. भुजन।

(४) १. धा. अ. फ. म. उ. स. मो कंपहि, ना. मुहि कंपै। २. मो. कंप तपिय तह, धा. अ. फ. सत्त पायाल (पाताल—धा.), ना. पन्न पन्नग अरु, म. उ. स. पंति पंनगरु (पंगनरू—म.)। ३. ना. नाम, म. भ्रम, उ. स. भूमि।

(५) १. धा. अ. फ. जंपि, ना. संकि, म. स. चंपि, उ. में यह शब्द नहीं है। २. फ. सुंदरु, म. सुंदर। ३. मो. सपुहु, धा. अ. सपहु, ना. म. उ. स. सुपहु। ४. मो. चडिग, धा. चिडिग, अ. चढिग, म. चढिगे, फ. तुढिग, ना. स. चढ़िग। ५. धा. कोरि काइर, अ. फ. कोर काइर (काइरु—फ.), ना. कोरि कायर, म. उ. स. कोटि कायर। ६. फ. रक्खति।

(६) १. अ. फ. इह, ना. म. उ. स. इन। २. धा. अ. फ. भुवहि, ना. म. स. भुजन, उ. भुज्ज। ३. मो. अ. फ. ढिल्लि, ना. उ. स. ढेलि। ४. धा. कनवज करउं, मो. कनवज करु (=करउ), ना. कनवज करुं (=करउं) अ. फ. कनवज्जनौ, म. उ. स. कनवज्ज कौं। ५. धा. इह, अ. फ. ना. तुहि, म. तौ, स. तौं, उ. तो। ६. मो. ना. अप्पुं (=अप्पउं), धा. अप्पउं, अ. फ. अप्पौं, स. अप्पौं, म. थप्पहु। ७. ना. स. ढिल्ली, अ. फ. ढिल्लिय, म. दल्ली।

टिप्पणी—(२) समथ्थ < समर्थ। तथ्थ < तत्र=वहाँ। (३) दंद < द्वन्द्व। भुव < भुज। बर < बल। (४) तह < तथा। (५) पहु < प्रभु। कोडि < कोटि। रषत < रक्षित=भृत्य। (६) भुव < भुज।

[२४]

रासा— सुंदरि सोचि[1] समच्छिम[2] गहगहकु[3] कंठ भरि। (१)
तबहि[1] प्रान[2] प्रथिराज[3] त पंषिय[4] बाहु करि[5] ॥ (२)

दिय हय पुट्ठिय[१] भार[२] सु[३] सव्व सु लष्षिनउ*[४] (३)
करति[१] तुरंग सुरंग[२] पुच्छि ति वच्छनउ[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) समक्ष (प्रत्यक्ष के विषय–युद्ध) को सोच कर सुन्दरी हर्ष से पूरित हो गई और [उसने] कंठ भर लिया, (२) तब उसके प्राण पृथ्वीराज ने उसे [उसकी] बाँह के द्वारा खींच लिया, (३) और उस सर्व सुलक्षणा का भार घोड़े की पीठ को दिया, (४) और वह तुरंग घोड़ा भी पूँछ तथा छाती के सुरंग (सुन्दर खेल) करने लगा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. फ. सोच। २. धा. समज्झि, अ. समुझ्झि सु, फ. समझ सु, उ. स. समुझ्झित ना. समुझिन, म. विचारि। ३. धा. गहग्गह, म. समझीय।

(२) १. मो. तबहु, धा. तबहि, फ. तबाह, शेष में 'तबहि'। २. धा. प्रान, अ. फ. राज, म. पान, ना. उ. स. पानि। ३. धा. प्रिथिराइ। ४. धा. सु विंचिय, अ. सुषंच्चिय, म. सु षच्चीय, फ. सुवीय। ५. अ. फ. बाहु भरि, म. ना. बाह करि।

(३) १. मो. पुत्तिय, अ. म. उ. स. पुट्ठहि, फ. पुट्ठिह, ना. पुच्छहि। २. धा. भारु, म. उ. भीर, स. भोर। ३. धा. अ. जु, फ. ज, ना. में यह शब्द नहीं है। ४. मो. नर्व सुलिष्षनउ, धा. अ. फ. सव्व सुलच्छिनिय, म. उ. स. सव्व सुलच्छनिय, ना. सवु सुलषिनौं।

(४) १. धा. करउ, अ. ना. म. उ. स. करत। २. म. सुर। ३. मो. पुछ्छित वछ्छनउ, धा. स पुच्छति वच्छ निय, अ. फ. ति (सु–फ.) पुछ्छनि अछ्छनिय, उ. स. सु पुच्छनि वच्छ निय, म. पुठिनि ववनीय, ना. सु पुंछनि वच्छनौं।

टिप्पणी—(१) समच्छ < समक्ष। गहगह [दे०]=हर्ष से भर जाना। (३) पुट्ठि < पृष्ठ। सुलषि < सुलक्षणी। (४) पुछ्छि < पुच्छ। वछ्छ < वक्ष।

७. पृथ्वीराज-जयचन्द्-युद्ध (पूर्वार्द्ध)

[१]

दोहरा—परणि[१] राउ[२] ढिल्लिय सुषह[३] रुष किद्धिअ*[४] मन[५] आस । (१)
कहइ*[१] चंद नृप पंग सउ*[२] जिहि[३] जुध्ध जुरहि[४] जम हास[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) ने संयोगिता का परिणय करके दिल्ली की ओर रुख (मुँह) करने की मन में आशा की। (२) चंद ने इस समय पंगराज (जयचंद) से [इस प्रकार] कहा, जिससे यम (काल) के हास [सदृश] युद्ध जुटे (हो)।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. फ. परुन। २. ना. राज, म. राय, स. राइ। ३. धा. अ. फ. समुह, मो. ना. सुषह, म. समुष, उ. स. सुमुष। ४. मो. रुष कंनीअ, धा. रुष कीनी, अ. फ. रुष किन्निय, ना. मुषि कि भाय, म. उ. स. रुष किन्नौ। ५. धा. मनु।

(२) १. मो. किहि (=किहइ), धा. ना. कहहि, ना. कहिहि, अ. फ. कहै, म. उ. स. कहौ। २. मो. पंगसू (=सउ), धा. पंग रख, अ. फ. म. उ. स. पंग दल, ना. संग सौ। ३. ना. जिहि जुद्ध, धा. जुज्झ, मो. सुध, अ. फ. म. उ. स. जुद्ध। ४. मो. जुरिहि, धा. अ. फ. ना. जुरहि, म. उ. स. जुरै। ५. मो. यम दास, धा. जिम दास, ना. जम हास।

टिप्पणी—(१) रुष < फा० रुख=मुँह।

[२]

गाथा— स ज रिपु[१] ढिल्लियनाथ[२] सो ध्वंसनं जग्गियं आये[३] । (१)
परणेवं[१] तव[२] पुत्ती युध्धं[३] संगति[४] भूषनं[५] सोइ[६] ॥ (२)

अर्थ—(१) "जो तुम्हारा रिपु दिल्लीश्वर है, वह तुम्हारे यज्ञ को ध्वस्त करने आया था। (२) तुम्हारी पुत्री को परिणीत करके अब वही तुमसे [तुम्हारी कन्या के लिए] आभूषण [के रूप में] युद्ध माँग रहा है।"

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. फ. सय रिपु, मो. सो ज रिपु, ना. सायाह, उ. स. सायाहि, म. सायादि। २. धा. ढिल्लिय नाथो, अ. फ. ढिल्लियनाथे, म. उ. स. ढिल्लिनाथो, ना. दिल्ली थानं। ३. धा. स एव आला अग्य धुंसनं, अ. फ. स एव ए आये दा पध्वंसनाय, उ. स. सायं तु जग्य विध्वंसनो, म. साप तु जिग विध्वंसनो, ना. सायंतु अग पविद्धंसन।

(२) १. मो. परणेवं, फ. परनौवा, शेष में 'परणेवा' या 'परनेवा'। २. मो. तव, शेष में 'पंग' या 'पंगु'। ३. धा. ए जुद्ध, अ. फ. जुद्धाइ (युद्धाइ-फ.)। ४. अ. फ. ना. मागंति, म. मागत, स. मांगत। ५. फ. भूषनुं। ६. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी में नहीं है।

[३]

*दोहरा—सुनि सवनन[१] चहुआंन कउ[*२] भयउ[*३] निसानहि[४] घाउ[५] । (१)*
*जानु मद्दव[१] रवि अस्तमन[२] चंपइ[*३] वद्दल[४] वाउ[५] ॥ (२)*

अर्थ—(१) श्रवणों से चहुआन (पृथ्वीराज) को सुनने पर निशानों पर [इस प्रकार] आघात हुआ [और जयचंद की सेना चारों ओर से दौड़ पड़ी] (२) मानो भादों में अस्त होते हुए सूर्य को वायु [और उससे प्रेरित] बादल दबा (घेर) लें।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. सुनी श्रवन, म. सुन श्रवनन, शेष में 'सुनि सवननि' (या 'श्रवननि')'। २. मो. चहुआंन कुं (=कउ), धा. अ. फ. प्रिथिराज कहुं (कहु–धा.), ना. म. उ. स. चहुवान (कौं–म., को–उ. स.)। ३. मो. भयु (=भयउ), धा. उ. स. भयो, म. अ. फ. ना. भयौ। ४. धा. अ. ना. निसानह, म. उ. स. निसानन। ५. अ. म. उ. स. घाव, ना. थाउ।

(२) १. धा. ज्यूं मद्दव, अ. फ. ज्यौं भद्दवं, म. जनौ मदव, ना. जनुभद्दु (= भद्दउं), उ. स. जनु भद्दव २. धा. अस्तमनह, अ. अस्तगह, फ. आगस्तगहु, म. उ. स. अस्तमनि। ३. मो. चंपि (= चंपइ) धा., म. उ. स. चंपिय, ना. चंपहि, अ. चंपय, फ. चंप। ४. फ. बइठ दल। ५. म. अ. बाव, स. वाव।

टिप्पणी—(१) मदव < भाद्रपद। अस्तमन < अस्तमायन = अस्त होता हुआ।

[४]

भमरावलि— सलिता जन[१] सत्त समुद्द[२] लियं । (१)
दुहु राय[१] महाभर[२] यं[३] मिलियं ॥ (२)
करकादि निसा[१] मकरादि दिनं । (३)
वर[१] वध्धति[२] सेन दुआल मनं ॥ (४)
*दुहु राय[१] रपत्त[२] ति रत्त[३] उठे[*४] । (५)*
*बिहुरे जन[१] पावस अभ्भ[२] वुटे[*३] ॥ (६)*
निसि अध्ध विढे ति[१] निसांन घुरे । (७)
दरिआइन[१] बान[२] पहार[३] गु रे[४] ॥ (८)
सहनाइ नफेरिय काहलियं[१] । (९)
रस वीरह वीर चली मिलियं[१] ॥ (१०)
घननंक ति घंट[१] ति घंट[२] घुरं[३] । (११)
*कल कउतिग[*१] देव पयाल पुरं ॥ (१२)*
लगि अंबर[१] बंबर[२] डंबरियं[३] । (१३)
बिसरी दिसि अट्ठ ति धुंधरियं[१] ॥ (१४)
*समसेर दुसेर[१] समाहि लसइ[*२] ।[×] (१५)*
*दमकइ[*१] दल[°] मम्मिक[°२] ताराइन[°] सइ[३*°] ॥[×] (१६)*

चमके चवरंग[१] सनाह घनं ।+× (१७)
प्रति बिंबित[२] मित्त मऊष[३] बनं ॥+× (१८)
दरसी दल कांदल झल्लरियं° ।[१] (१९)
समरे घर कायर बल्लरियं ॥ (२०)
जिनके मुष मुच्छ ति मच्छरियं[१] । (२१)
निरषे तिनके[१] तन अच्छरियं[२] ॥+×§ (२२)
त्रिप जोय फवज्जह[१] बंटि लियं ॥[३] (२३)

अर्थ—(१) सरिताएँ मानो उस सिन्धु में लिप्त हो रही (मिल रही) हों, (२) इस प्रकार लगा जब दोनों राजाओं के महाभट मिले। (३) कर्क के आदि से रात्रि तथा मकर के आदि से दिन [जिस प्रकार बढ़ता है], (४) [उसी प्रकार] सेनाओं के द्विपादों (सैनिकों) के मन [उत्साह से] खूब बढ़ रहे थे। (५) दोनों राजाओं के रक्षित (भृत्य) युद्ध के लिए राते हो उठे, (६) मानो पावस के बहुरने (लौटने) पर बादल व्युत्थित हुए हों—उमड़ पड़े हों। (७) आधी रात्रि के विढत्त (अर्जित—प्राप्त) होने पर निशान (धौंसे) घुमड़ पड़े, (८) [और ऐसा लगा] मानो समुद्रों में पहाड़ गिर पड़े हों। (९) शहनाई, नफीरी और काहल [की सम्मिलित ध्वनि में] (१०) वीरों का वीर रस मिल चला। (११) घंटों ही घंटों का घन-घन घुमड़ने लगा, (१२) और कलह का कौतुक देवपुर (आकाश) और पातालपुर में [व्याप्त हो रहा]। (१३) बंबर (धूल) का डंबर आकाश में जा लगा, (१४) और अष्ट दिशाएँ धुंधलेपन के कारण विस्मृत हो गईं। (१५) शमशीर (तलवार) और दुसेल (दोमुहे सेल) की समाह (सज्जा) शोभित हो रही थी; (१६) वह (सेना) के मध्य इस प्रकार दमक रही थी जैसे [आकाश में] तारागण हों। (१७) चतुरंगिणी सेना का सघन सन्नाह चमक रहा था, (१८) [और] मित्र (सूर्य) का मयूख-वन (किरण-जाल) उसमें प्रतिबिम्बित हो रहा था। (१९) कंदल (युद्ध) के [लिए तैयार] उन दलों की झालरें दरसीं—दिखाई पड़ीं—तो (२०) कायरों ने [भागने के लिए] घर और वन का स्मरण किया। (२१) [किन्तु दूसरी ओर] जिनके मुखों पर मूछें थीं—जो वीर थे—और जो मात्सर्य-पूर्ण थे, (२२) उनके शरीरों के लिए अप्सराएँ आँखें लगाए हुए थीं। (२३) नृप (पृथ्वीराज) ने [यह] देखकर फौज को बाँट लिया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
§ चिह्नित चरण धा. में नहीं है।
+ चिह्नित चरण अ. में नहीं है।
× चिह्नित चरण फ. में नहीं है।
° चिह्नित शब्द अथवा चरण ना. में नहीं है।

(१) १. मो. धा. ना. जन, अ. शा. स. जनु, फ. जाने। २. मो. मुद।

(२) १. धा. दुइ राइ, अ. फ. दुहु राइ (दुहौ राइ–फ.) ना. दोऊ राय, शा. स. दोउ राज। २. फ. भउ। ३. अ. फ. यौ।

(३) १. मो. नशा।

(४) १. अ. फ. जनु (जनौ–फ.)। २. धा. बर्धंति, फ. बद्धत, ना. बर्धंत, शा. स. विद्धत। ३. धा दुवाल भवं, अ. दुपाल मनं, फ. दुपालि मनं, ना. दुवाल मनं, शा. स. दुवालमिनं।

(५) १. धा. अ. दुहु राइ, (दुहौ राइ–फ.), शा. स. दोउ राज, ना. दोऊ राउ। २. धा. ना.

रषत्ति सि, अ. नरप्पति, शा. स. रषत्त सु। ३. अ. फ. रत्ति। ४. मो. उठि (=उठे), धा. अ फ. शा. स. उठे।

(६) १. मो. बिहुरे जन, धा. बिहुरे जनु, मो. अ. फ. बिहुरे जल, शा. स. बहुरे मन (मनु—शा.)। २. धा. अ. फ. अंज, ना. अञ्ज। ३. मो. धा. अ. फ. उठे, शा. स. बुठे, ना. छुठे।

(७) १. धा. बिघत्त, अ. फ. बिघेत, ना. बघेति, शा. स. विभत्ति। २. शा. स. धुरं।

(८) १. धा. ना. शा. स. दरियादिव, अ. फ. दरिया दव। २. धा. ना. अ. फ. शा. स. जानि। ३. मो. पाहार, शेष सभी में 'पहार'। ४. धा. तुरे।

(९) १. धा. सहनाइ फेरि कलाहालियं, मो. सहनीइ नफेरी कला हलियं, अ. फ. सहनाइ नफेरिय (नफीरिय—फ.) काहलियं, ना. शा. स. सहनाइ (सनाइ—ना.) नफेरि कुलाहलियं।

(१०) १. अ. फ. चले मिलियं, ना. शा. स. मिले बलियं।

(११) १. धा. अ. ठहनंकित, फ. ठहनंकिनि, शा. स. अ. ठहनं कित, ना. थनंनकिन। २. धा. अ. फ. ना. शा. स. घंट निघंट, मो. घटति घूंट। ३. ना. घुरं।

(१२) १ धा. कल कोतिग, मो. कल कुतिग (=कलतिग), अ. फ. कल (कलि—फ.) कौतुक, ना. शा. स. कल कौतिग।

(१३) १. शा. डंवर, ना. अम्मर। २. ना. ढंढर। ३. ना. शा. स. उंमरियं।

(१४) १. मो. अठ्ठ ति घुघरांय, अ. अंघ ति, धुंघरियं, फ. अंधि तु धुंघरियं।

(१५) १. अ. फ. न सेल, शा. स. दुसेल। २. मो. समाहि लसि (=कलइ), धा. समाइ निसे, अ. फ. सवाहनि सौ, शा. स. समाइ नसे, ना. समाहि नसे।

(१६) १. मो. दमकि (=दमकइ), धा. ना. दमके, अ. फ. शा. स. दमकै। २. मो. मध्य, धा. अ. फ. मद्धि, शा. स. मधि। ३. ना. सि (सइ), अ. फ. सौ।

(१७) १. धा. चमके चत्तरंग, शा. स. चमकै चवरंग।

(१८) १. धा. प्रतिविंवित, शा. स. प्रति बिंब सि। २. धा. मित्ति सजल, शा. स. मित मयूष, ना. मित्त मयूष।

(१९) १. धा. दरसै दल बददल ढलरिया, अ. फ. दरसी दल कीवर ढलरिया, शा. स. दरसी दल की दल ढलरियं।

(२०) १. मो. समरी (< समरि < समरे) घर, ना. अ. सुमिरे घर, फ. सुमरे घर, शा. स. सुमिरैं घर। २. अ. फ. बछरिया।

(२१) १. धा. मुंछति मुंछरिया, अ. मुंछ स मच्छरियं, ना. मूंछनि मछरीयं, शा. स. मुंछ नमच्छरिय, फ. मुंछ नरु मच्छरियौ।

(२२) १. अ. फ. तन केतन। २. फ. अछरियौ।

(२३) १. धा. फवज्जनि, अ. फवज्ज ति, फ. फवजि सु। २. धा. बंट्टि (< बंटि), मो. बंटि, अ. बंदि, फ. बंद। ३. यहाँ सभी प्रतियों में निम्नलिखित चरण और हैं (धा. पाठ):—

मुह माहिरिक चवक राउ दियं।
भुज दच्छिन अब्बुअ राउ रच्यो।
सिरि छत्र सुमेरु जु आनि सच्यो।
भय की दिसि वाम पंडीर भख्यौ।
कट कंध कवंध गिरंग लख्यौ।
कूरंभि अरंभ जु अंभ अनी।
सु भरी कवि चंद सुनी सु मनी।
दल पुठ्ठि न मोरिय राउ सुन्यो।
कवियत्तनि संच सुन्यो सु मन्यो।

निरवाह चंदेल ति नद्दमने ।
हय मुक्कि लरे जम सू जुरने ।
तिनि मज्झि त संभरि वायु जिसो ।
भुज अर्जुन अर्जुन राउ जिसो ।
समराउलि छंद प्रवान थियं ।
त्रिप जोइ कवज्जइ चंद लियं ।

अन्तिम चरण दो बार आया है, और उसकी यह पुनरावृत्ति क्षेपक के लेख के सम्मिलित किए जाने के कारण हुई ज्ञात होती है, इसलिए पुनरावृत्ति के बीच की पंक्तियाँ प्रक्षिप्त मानी गई हैं ।

टिप्पणी—(१) सलिता < सरिता । समुद्द < समुद्र । (२) भर < भट । (४) बंध < बधंय् । द्विप=दो पैर वाले, मनुष्य । (५) रषत्त < रक्षित=भृत्य । रत्त < रक्त । (६) अंभ < अभ्र । वुठे < व्युत्थित । (७) विढे < विढत्त [दे०]=अर्जित, प्राप्त । (११) कउतिग < कौतुक । पयाल < पाताल । (१६) तराइन < तारागण । (१७) चवरंग < चतुरंग । (१८) मित्त < मित्र=सूर्य । मऊष < मयूख । (१९) काँदल < कन्दल=युद्ध । (२०) वक्तर=वन, अरण्य । (२१) मुच्छ < श्मश्रु । मच्छर < मात्सर्य । (२२) अछरी < अप्सरा ।

[५]

कवित्त— य[1] दिन रोस रट्ठिवर[2] चंपि चहुवांन गहन[3] कह[4] । (१)
सउ*[1] उप्परि[2] सउ*[3] सहस बीह[4] अगनित लष्ष दह[5] । (२)
तुट्टि[1] गिर जम[2] थल[3] भरिग[4] भजिग[5] जल गंग प्रवाहह*[6] । (३)
सह अच्छरि[1] अच्छहि[2] विमान[3] सुरलोक नाग तह[4] ।×(४)
कहि[1] चंद दंद दुहु[2] दलि[3] भयउ*[4] घन जिम सिरि[5] सारह झरिग[6] । (५)
भर सेस हरी°[1] हर ब्रह्म तन[2] तिहि समाधि तिहि दिन[4] टरिग[5] ।।‡(६)

अर्थ—(१) जिस दिन राठोर (जयचंद) को रोष हुआ और उसने [चारों ओर से] दबा (घेर) कर चहुवान (पृथ्वीराज) को पकड़ने के लिए कहा, (२) [उस दिन पृथ्वीराज के] सौ [राजपूतों] के ऊपर [जयचंद के] सौ हजार [टूट पड़े]; और [उसकी] अगणित वीथियों (पंक्तियों) में [तो] दस लाख [सैनिक] थे । (३) गिरियों के टूट-टूट कर गिरने से जैसे भूमि भरी, [उसी प्रकार] गंगा के प्रवाह का जल भी [समुद्र की ओर] भागा (वेग से प्रधावित हुआ) । (४) सभी अप्सराएँ [मृत वीरों का स्वागत करने के लिए] विमानों पर सुरलोक तथा नागलोक में [आ डटीं] । (५) चंद कहता है कि दोनों दलों में द्वन्द्व (युद्ध) हुआ, और बादलों के समान योद्धाओं के सिर पर तलवारें झड़ीं । (६) [सेनाओं के] उस भार से शेष, हरि, हर, तथा ब्रह्मा की समाधि उस दिन टल (छूट) गई ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
° चिह्नित शब्द मो. में नहीं है ।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है ।
‡ यह छन्द ना. में दो स्थानों पर है: ३३. १०७ तथा ३५. ५ । दिए हुए पाठान्तर प्रथम स्थान पर के है ।

(१) १ धा जि, ना. अ. फ, ज, म. उ. स. त। २. धा. राठोर, मो. रढिवर, अ. फ. ना राठौर, म. उ. स. रट्ठौर। ३. अ फ. गहन। ४. अ. फ. ना. कहु, म. उ. स. कहि।

(२) १. मो. सु (=सउ), धा. सँ, अ. फ. ना. म. उ. स. सौ। २. म. उ. स. उप्पर, फ. उप्पक ३. मो. सु (=सउ), धा. सँ, ना. म. अ. फ. नौ, ना. उ. सं, स. सँ। ४. मो. वीह, धा. बीस, अ. फ बीय, ना. विवह। ५. म. उ. स. दहि, ना. दहु।

(३) १. धा. तुटि, अ. ना. डुट्टि, फ. पुट्टि, उ. स. छुटि, म. छुटि। २. मो. गिर जस, शेष में 'डूंगर' या 'डुंगर' (डूगा–ना.)। ४. ना. सुरिग। ५. धा. अ. फ. भरिग, ना. भजिग, म. उ. स. फुट्टि (फुटि–स.)। ६. मो. जलगंग प्रवाह [< प्रवाहइ], धा. थल जलनि प्रवाहिग, अ. फ. म. उ. स. जल थलति (थलनि–अ. फ.) प्रवाहिग (प्रवाहिगु–फ.), ना. जलगंग प्रवाहहि।

(४) १. धा. कच्छर, ना. अत्थरि। २. मो. 'अछिलहिं' ना. अत्थरि, शेष में 'अछुछहि'। ३. अ. बिवान, फ. विना, ना. विवानु। ४. मो. सुरलोक नर नाग तह, ना. सुरलोक नाग तिहि, शेष सभी में सुरलोक (सुरलोग–धा.) वनाइग (विनाइग–धा.)।

(५) १. सभी प्रतियों में 'कहि'। २. यह शब्द मो. में नहीं है, धा. दुइं, फ. दुहौ। ३. अ. फ. ना. दलि शेष, में 'दल'। ४. मो. मयु (=मयउ), धा. अ. ना. मयो, फ. म. उ. स. मयौ। ५. धा. सर, मो. ना. सिर। ६. धा. धरिग, अ. फ. झरिय, ना. झरिगु।

(६) १. धा. भर सेसु हर्रा, अ. हर सेसहार, फ. हरि सेसहार, ना. धर सेसहार, म. उ. स. हरि सेस ईस। २. म. उ. स. भक्षानि तनि (तति–म.)। ३. धा. अ. फ. तिड्ड, म. उ. स. तिडुं, ना. थिड्डं। ४. अ. फ. म. उ. स. तद्दिन, ना. ता दिन। ५. अ. फ. दरिय, म. दरिग।

टिप्पणी—(२) वीह < वीथि=श्रेणी, पंक्ति। (३) तुट < त्रुट=टूटना। गिर < गिरि। (४) सह= सभी। तह < तथा। (५) दंद < द्वन्द्व। सार=लोह (तलवार आदि लौह के शस्त्रास्त्र) (६) भर < भार।

[६]

भुजंग— सज्जतं[१] घूम घूमे[२] सुनंतं[३]। (१)
कंपिय[१] तीनपुर केलि पत्तं[२]॥ (२)
डमरु डहडह किय[१] गवरि कंतं। (३)
जानियं[१] जोग जोगादि अंतं॥ (४)
किम किमे[१] सेस सिर[२] भार रहियं[३]। (५)
किमे[१] उच्चासु रवि रथ्थ नहियं॥° (६)
कमल सुत कमल[१] नहि अंबु[२] लहियं। (७)
संकियं ब्रह्म[१] ब्रह्मांड गहियं[२]॥+ (८)
राम[१] रावन्न कवि किन[२] कहिता[३]। (९)
सकति[१] सुर महिष बलि दान[२] लहिता[३]॥° (१०)
कंस[१] सिसुपाल पुरबवन[२] प्रभुता। (११)
भ्रामिया[१] जेन[२] भय लष्पि*[३] सुरता[४]॥ (१२)
चढ्डिअं[१] सूर आजान[२] बाहुं। (१३)
तुरिग वन सघन[१] वड्डी नलाहुं[२]॥ (१४)

गंग[१] जल जिमन[२] धर हलिय[३] ओजे[*४] । (१५)

पंगरे[१] राय राठउर[*२] फोजे[३] ॥ (१६)

उप्पाइ[*१] फोज[२] प्रथिराज[३] राजं । (१७)

मनउ[*१] वानरा लग्गि लंकाहि[२] गाजं[३] ॥ (१८)

जग्गियं[१] देव देवा[२] उनिंदं[३] । (१९)

दिष्षियं दीन इंदं[१] फनिंदं[*] ॥ (२०)

चंपियं[१] भार पाथाल दुंदं[२] । (२१)

उड्डियं[१] रेन[२] आयास मुदं ॥ (२२)

लहइ[१] कोन[२] अगनित्त राउत्त रत्ता[३] । (२३)

छत्र[१] षिति[२] भार दीसइ[*३] न पत्ता ॥ (२४)

आरंभ चक्की[१] रहे कोन[२] संता[३] । (२५)

वाराह[१] रूपी न कंधे[२] धरंता ॥ (२६)

सेन सन्नाह नव[१] रूप रंगा । (२७)

मनउ[*१] झिल्लि वइ[*] ति[२] त्रिनेत्र गंगा[३] ॥[×४] (२८)

[१]टोप टंकारि[२] दीसै[३] उतंगा ।[+] (२९)

मनउ[*१] बद्दले पंत्ति[२] बंधी बिहंगा ॥[+] (३०)

जिरह जंगीन[१] गहि अंगि[२] लाई[३] । (३१)

मनउ[*१] कंठ कंथीन गोरष्ष पाई[२] ॥ (३२)

हथ्थरे हथ्थ[१] लग्गे सुहाई[२] । (३३)

घाय[१] लग्गइ[*] न[०२] थकइ[*३] थकाई ॥ (३४)

राग नरजी[१] बनाइत्त[२] अछूछे[३] । (३५)

देषिअइ[*१] जानु[×] जोगिंद[×२] कछूछे[×] ॥ (३६)

सत्त[१] छत्तीस[×] करि[×] कोहु[×] सज्जइ[×२] । (३७)

इत्तने[×] सूर[×] वाजित्र बज्जइ[१] ॥ (३८)

नीसान सादंति[*१] बाजे[*२] सुचंगा । (३९)

दिसा देस दक्खिन्न[*१] लष्षी[२] उपंगा ॥ (४०)

तबल तंदूर[१] जंगी[२] मृदंगा । (४१)

मनउ[*१] नृत्य[२] नारद्द कद्दे[३] प्रसंगा ॥ (४२)

बजहि वंस विसतार[१] बहु रंग रंगा । (४३)

जिने मोहि करि[१] सथ्थि[२] लग्गे[३] कुरंगा[‡] ॥ (४४)

वीर[१] गुंडीर सा सोम मृंगा[२‡] । (४५)

नचइ ईस सीसं[१] धरो जासु[२] गंगा[‡] ॥[×] (४६)

सिधु[१] सहनाइ[२] श्रवने[३] उतंगा ।×(४७)
सुने[१] अछूछरिअ अछूछ मजाइ*[२] सुअंगा[३] ॥×(४८)
नफेरी नवरंग[१] सारंग भेरी । (४९)
मनउ*[१] नृत्य नइ[२] इंद्र आरंभ केरी ॥ (५०)
सिंधु सावझ्झनं गेन भेरी[१] । (५१)
झझे आवझझ हथ्थ[२] करेरी ॥ (५२)
उछुछरहि घाउ[१] घनघंट घेरी[२] । (५३)
चिरिता अ.घक[१] कध्धे[२] कुवेरी ॥ (५४)
उपमा पंड नव, नैन झग्गी (जग्गी)[१] । (५५)
मनउ*[१] राम रावन्न हथ्थेव लग्गी[२] ॥ (५६)

अर्थ—(१) [सुभट जब] धूम-धाम से सजते हुए सुनाई पड़े (२) तो तीनों पुर (आकाश, पाताल, मर्त्यलोक) कदली पत्र [के समान कंपित] हो गए। (३) [क्या] गौरीकान्त (शिव) ने डमरू को 'डह डह' किया (४) [क्योंकि] उन्होंने जाना कि योग-योगादि का अन्त हो गया ? (५) क्या शेष का सिर भार-रहित तो नहीं हो गया ? (६) [अथवा] क्या उचाश्व (उच्चैःश्रवा) रवि-रथ में नहीं रहा ? (७) [अथवा] कमल-सुत (ब्रह्मा) ने अम्बु (जल—क्षीर सागर) में कमल को नहीं पाया (८) और [इसलिए] शंकित होकर ब्रह्माण्ड को पकड़ लिया। (९) इसे राम और रावण [का युद्ध] कवि क्यों न कहे ? (१०) [अथवा यह क्यों न कहे कि] शक्ति महिषासुर का बलिदान लाभ कर रही थी ? (११) कंस, शिशुपाल और प्रद्युम्न की जो प्रभुता थी (१२) वह लक्ष्मी जैसे उनसे भयभीत होकर [जयचंद में] रत हुई [वहाँ] भ्रमित हो रही थी। (१३) आजानु बाहु शूर [इस प्रकार] चढ़ चले, (१४) [मानो] सघन वन में अनल-आभा छूट (उत्पन्न हो) कर बढ़ रही हो। (१५) [जिस प्रकार] धरा पर गंगा-यमुना की ओजें (ओजपूर्ण लहरें) हलरा रही हों (१६) उसी प्रकार पंगराज (जयचंद) की फौजें थीं। (१७) उनके ऊपर राजा पृथ्वीराज की फौज [ऐसी] थी (१८) मानो बंदर लंका गढ़ पर लग (चढ़) कर गर्ज रहे हों। (१९) देव-देव (शिव) उन्निद्र होकर जग गए, (२०) और इन्द्र तथा फणीन्द्र (शेष) दीन दिखाई पड़ने लगे। (२१) [एक ओर जहाँ सेनाओं के] भार ने पाताल में द्वन्द्व उत्पन्न कर दिया था, (२२) [वहाँ दूसरी ओर] उनके संचरण से उड़ी हुई रेणु ने आकाश को मूँद दिया था—आच्छादित कर लिया था। (२३) उस युद्ध में सम्मिलित अगणित राते (सुसज्जित) रावतों को कौन जान सकता था ? (२४) क्षिति पर उनके छत्रों के भार से पत्ता नहीं दिखाई पड़ता था। (२५) चक्रवर्तियों के आरंभ [हलचल] से [भला] कौन शांत रह सकता था ? (२६) बाराह रूप [भगवान] भी पृथ्वी को कंधे पर नहीं धारण कर रहे थे। (२७) सेना की नवीन रूप-रंग की सन्नाह [ऐसी लग रही] थी (२८) मानो त्रिनेत्र (शिव) उस प्रकार (शरीर पर) गंगा को झेल रहे हों। (२९) वहाँ तुङ्ग (ऊँचे) टोपों (लोहे की टोपियों) की टंकार (पंक्ति ?) इस प्रकार दीखती थी, (३०) मानो बादलों में विहगों ने पंक्ति बाँधी हो। (३१) जंगीन (मजबूत) जिरह अंगों से कस कर लगाए गए थे, (३२) [वे इस प्रकार लगते थे,] मानो गोरखपंथियों ने कंठ में कंथा डाल लिया हो। (३३) उनके हाथों में हथ्थे (दस्ताने) सुंदर लगते थे। (३४) उन्हें घाव लगता था किन्तु वे थकावट से थकते नहीं थे। (३५) उनके राग (टाँगों के कवच) और जरजीन ऐसी बनावट के [लगते] थे (३६) मानो योगीन्द्रों को [कछोटा] काछे देख रहे हों। (३७) क्रोध

करके छत्तीस प्रकार के साज वे सैनिक सजे हुए थे। (३८) फिर, इतने ही शूर बाजों को बजा रहे थे। (३९) निशान (धौंसे) अच्छा शब्द कर रहे थे, (४०) दक्षिण दिशा के देश से लब्ध (प्राप्त किए हुए) उपंग थे, (४१) तबल, तंबूर, तथा जंगी मृदंग थे, (४२) [ऐसा लगता था] मानो ये नारद के नृत्य के प्रसंग से निकले हों। (४३) बंसी विस्तृत रूप से नाना रंगों में—नाना प्रकार से—बज रही थी, (४४) जिन पर मोहित कर कुरंग (मृग) साथ लग गए थे। (४५) वीर गुंडीर (गुंड देश के सैनिक) सिंगा बाजों के साथ इस प्रकार शोभित थे (४६) मानो ऐसे शिव नृत्य कर रहे हों जिनके सिर ने गंगा को धारण किया हो। (४७) शहनाइयों से [गाया जाता हुआ] सिंधू [राग] श्रवणों में [इस प्रकार] ऊँचा (उत्कृष्ट) [प्रतीत होता] था (४८) [मानो] शून्य (आकाश) में अच्छ (निर्मल) अप्सराएँ अपने सुंदर अंगों को मज्जित कर रही हों—स्नान करा रही हों। (४९) नफीरी, सारंग, भेरी का नशा ही रंग था (५०) [जो ऐसा प्रतीत होता था] मानो निजु (बिल्कुल) इन्द्र के केलि-आरंभ (अखाड़े) का नृत्य हो। (५१) [नर] सिंगे और धाउज इस प्रकार बज रहे थे जैसे गगन में भेरी बज रही हो। (५२) झाँझ और आवझ भी कड़े हाथों से बजाए जा रहे थे। (५३) घनघंट पर हुए आघात का स्वर घेर (घुमड़) कर उच्छलित हो रहा था। (५४) इस कुवेला में [रण-वाद्यों से] चेतनता अधिक बढ़ रही थी। (५५) [प्रस्तुत] युद्ध के लिए नेत्रों में ना खंडों की उपमाएँ जागीं किन्तु (५६) मानो [दोनों पक्ष] राम और रावण के हैं, यही उपमा हाथ लगी।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित चरण मो. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द या चरण म. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण फ. में नहीं है।

‡ चिह्नित चरण ना. में नहीं है।

(१) १. मो. साजते, ना. साजवं, म. उ. स. सर्व साजते (साजतै—म.)। २. धा. धून धूमे, म. उ. स. धो धुम्मे (धूमे—म.), फ. धूम तते। ३. फ. सततं।

(२) १. धा. कववइ, फ. कर्षायं, म. उ. स. तहाँ कंपियं। २. धा. अ. फ. ना. तीन पुर जेनि (जेम—ना.) पंतं (पत्तं—धा.), मो. तीन पुर केलि पंतं (—पत्तं), म. उ. स. केलि तिथपुर कपंतं।

(३) १. धा. डंबर वर डहकियं, अ. डवरु डहडह कियं, फ. बडर डहडहि कुयं, उ. स. तहाँ डवरु (डंमरू—म.) कर डहकियं, ना. डमरु डुड्डु डुड्डु कीय।

(४) धा. मानयं, म. उ. स. तिनं आनियं।

(५) १. म. तब किर्स किमारू, ना. किमकिम, उ. स. तबं कम कमिर। २. धा. अ. फ. सह। ३. ना र होयं, म. उ. स. सहियं।

(६) १. म. उ. स. तहां किमसु, ना. किमस। २. अ. फ. उच्वेसुवा सयन बहियं, ना. उच्चास रवि रथ रहीयं, म. उच्चास रवि सथ रहियं।

(७) १. धा. कमलसुत कमठ, अ. फ. कमठ सुत कमठ, म. उ. स. वहाँ कमट सुत कमल, ना. कमठ सुत कमल। २. म. नह अंबु, ना. उ. स. नहिं अबु, धा. अ. फ. नहि अंबु।

(८) १. धा. अ. जुकि नब्रान, उ. स. तब संकि अब्रान, म. तव संकि ब्रह्मंड, ना. संकि ब्रह्मंड मान। २. म. हियस हियं।

(९) १. उ. स. उर्न राम, म. उवराव। २. धा. कवि कन्ह, मो. कवि कंन, ना. कवि कंन, म. उ. स. कवि किन। ३. मो. कहिता, शेष में 'कहता'।

(१०) १. म. उ. स. उर्न (उन—म.) सकति, । २. अ. फ. सुरलोक वरदान, ना. म. उ. स. सुर ('''र—म.) महिष बलधन्न (बलदुव—ना.)। ३. धा. अ. फ. ना. कहता।

(११) १. म. मनौ किरन, उ. स. मनो कंस। २. मो. पुरयवन (=पुरजवन), धा. जुरि मन, ना. जरा जमतु, शेष में 'जुरजमन'।

(१२) १. धा. संक्रियं, ना. अम्मोयं, म. तनं अम्मियं, अ. मम्मियं, फ. मुमीयं, म. उ. स. तिनं अम्मियं। २. धा. अ. फ. एन, ना. म. उ. स. यम। ३. म. लष्ष, धा. अ. म. उ. स. ना. लच्छि, फ. तनि। ४. म. सुरता।

(१३) १. म. उ. स. भरं चढ्ढियं। २. म. अजान, ना. अज्जन, अ. आजानु।

(१४) १. धा. दुट्ठि बन सिघ, फ. ठुट्टि नव सघन, ना. अ. ढुट्टि बन सघन, म. उ. स. सिन दुट्टि बन सिंघ। २. धट्टीन लाई, धा. तट हीन लाई, अ. फ. बट्टी न लाई, उ. स. दीसंत लाई, म. दिसंत ताह।

(१५) १. म. उ. तिनं गग, ना. गंगा। २. धा. जमन, अ. ना. जमुन, फ. जमनु, म. उ. स. मीन। ३. धा. धरहिलय, फ. धर लहै, ना. सर हलीव, अ. धर हलं, ४. मो. उजे (=ओजे), धा. जुझे, ना. औजं, उ. स. ओजे, म. औजे, अ. फ. मौजे।

(१६) १. धा. पंगुरा, ना. पंगुरे, म. उ. स. भरं पंगुरे (पंगुरै—म.। २. मो. राठुर (=राठउर), धा. फ. राठोर, अ. राठौड़, म. राठौर, ना. रठ्ठौर। ३. म. उ. स. मौजे (मौजै—म. स.), अ. फौड़, फ. फौजे, ना. फौजं।

(१७) १. मो. उपरि (=उपरइ) धा. उप्परे, अ. उप्परइ, फ. उप्परे, ना. उप्परहि, म. उ. स. तबै उप्परै (उपरि—उ., उप्परे—म.)। २. अ. फ. रोस। ३. धा. ना. प्रिथिरा ।

(१८) १. मो. मनुं (=मनउ), धा. मनो, ना. मनुं (= मनउ), म. मनौ। २. धा. अ. फ. लंक लगेहि, ना. लंक लंकाहि, उ. स. लेन ते लंक, म. लिनतक। ३. धा. भाज, अ. फ. काजं।

(१९) १. मो. जागियं, म. उ. स. तबं (तबे—म.) जग्गियं, ना. गज्जियं। २. ना. म. देवदेवं, फ. देवी देव। ३. मो. उनंद, फ. उन्यंदं, ना. उनिंद सिंदं।

(२०) १. धा. दुक्खियं दीन इंद, अ. तहाँ दिष्षियं दीन इंद, फ. तहाँ दष्षियं दीन दीय, म. उ. स. तिनं चं पेयं पाय, भारं (तुलना० चरण २१)। २. मो. फनदं (<फनिंदं), शेष में 'फनिंदं' या 'फुनिंदं'।

(२१) १. अ. फ. जहां चंपियं, म. उ. स. तबैं चापियं (चंपियं—म.)। २. धा. पायाउ इंदं, अ. फ. म. उ. स. पायाल इंदं, ना. पायाल इंद।

(२२) १. अ. फ. तहां उड्डियं, म. उ. स. घनं उड्डियं। २. ना. रेणु।

(२३) १. म. ना. उ. स. गिन, अ. फ. लहै। २. ना. कौन। ३. धा. रखत्त अगणित्त रत्ता, ना. अगनित्त रावत्त रत्ता।

(२४) १. म. उ. स. तिनं छत्र। २. धा. छति, अ. फ. ना. उ. स. छिति। ३. मो. दीशि (=दीशइ), धा. दीसइ, अ. दीसे, फ. म. उ. स. दीसे, ना. सुझै।

(२५) १. धा. आरंभ चवा, म. उ. स. जु आरंभ चक्को (चक्कौ—म.)। २. मो. रहे केन, ना. रहै कौन। ३. ना. सत्ता।

(२६) १. म. उ. स. सु बाराह, अ. फ. जु बाराह. ना. जौ बाराह। २. फ. थेकं।

(२७) १. धा. सिरे सन्नाख नव, म. उ. स. अ. फ. जु सेनं सनाहं नवं, ना. सन्नाहि निव।

(२८) १. मो. मनु (=मनउ), धा. ना. में यह शब्द नहीं है, अ. फ. म. मनौ, उ. स. तिनं। २. धा. सहिवे सौस, मो. झिलिवे (<झिलिवइ) ति, अ. झिलवं सास, अ. फ. किहवे सास, स. झिहवै तेग, ना. उ. झिलवं तेग। ३. ना. निन्नेत तंगा। ४. म. में इस चरण के स्थान पर भी चरण ३० दिया हुआ है।

(२९) १. अ. तहां, म. उ. स. तिनं, मो. ना. में यह शब्द नहीं है। २. धा. टंकाल, अ. फ. म. ना. उ. स. टंकार। ३. धा. अ. फ. ना. दीसे।

(३०) १. मो. मनु (=मनउ) ना. मनुं (=मनउ), धा. अ. मनो, म. मनौं, उ. स. मनों । २. धा. बद्दले पंति, मो. बादले पंति, अ. बद्दलंपंति, ना. बद्दलं पंति ।

(३१) १. मो. म. उ. स. जिरह जंगीन, धा. जिरह जंगीन, अ. फ. जिरह जंजीर, ना. जरह जंजीर । २. मो. गहि संग, धा. अ. फ. गहि अंग, ना. उ. स. बनि अंग मच्छिनि अंग । ३. ना. आई ।

(३२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउं), अ. फ. म. मनों, शेष सभी में 'मनो' । २. धा. कच्छ रक्खान गोरक्ख पाई, अ. फ. ना. देह गोरष (रोरष–फ.) लगरि रपाई (थकाई–फ.), म. उ. स. कठ्ठ (कंठ–म. उ.) कंथी (कंथी–म.) ह्व गोरख बनाई ।

(३३) १. म. उ. स. तिनं हत्थ रें (रे–म.) हत्थ, फ. अ. ना. हत्थ रैं हत्थ । २. लग्गी पुष्षामी, अ. फ. लग्गिय सुहाई, ना. म. उ. स. लग्गे सुहाई ।

(३४) १. धा. दांव, ना. धाइ, अ. फ. म. उ. स. तिनं धाइ(ध्याइ–फ.) । २. धा. मो. लगि (=लगइ), धा. ना. अ. फ. गंजै न, म. जेन । ३. मो. थकि (=थकइ), म. थकै न, ना. थक्कै ।

(३५) १. मो. राग जल जी, धा. राय जल जीन, ना. अ. फ. राग जरजीन, म. उ. स. तिनं राग जर जीन । २. मो. नाहल, धा. बिन्नवन, अ. फ. ना. म. उ. स. बनि बान । ३. म. आछै, ना. अ. फ. अच्छै ।

(३६) १. मो. देषीइ (=देखिअइ), धा. ना. दिक्खयं, म. उ. स. भरं दिष्षियै, अ. फ. दिष्षियहि । २. धा. मानु नर भेष, ना. जानि जोगेंद्रे, अ. फ. मनौं नट भेष ।

(३७) १. उ. स. मनं सज्ज । २. मो. ना. कोइ साजे, अ. फ. कोइ सज्जइ (सजाई–फ.), म. उ. स. लोह साजे ।

(३८) १. मो. एतने सूर बाजित्र बाजे, धा. इत्तने सोर बाजित्र बज्जे, अ. फ. ति इत्तनें सौर (सोर–फ.) बाजित्र बज्जइ (बजाई–फ.), उ. स. इसे सूर सामंत सौ राज राजे, म.–सो राज राजै, ना. इतनीयें भाँति बाजित्र बाजे ।

(३९) मो. नीसान साद (< सादं ति ?), धा. अ. फ. निसानं निसाद्दार, ना. म. उ. स. निसानं दिसानं ति (सु–ना., त–म.) । २. धा. ना. बज्जे, मो. बाजि (=बाजे), म. बाजे ।

(४०) १. मो. दिसा देस दक्षन (=दक्खन), धा. अ. फ. दिसा देस दच्छिन, म. दिसा दिषनं देस, ना. दिसा दच्छिनं देस । २. अ. लछ्छीं, फ. लछी, उ. स. लीनी, म. लीने ।

(४१) १. धा. अ. फ. तबल्लं ति (त–अ. फ.) दूरं ति, ना. तिबल तंदूर, म. उ. स. तबल्लं ति दूरं (तदूरं–म.) जु । २. धा. जग्गी (< जंगी), म. जोरं, फ. जंगा ।

(४२) १. मो. मनु (=मनउ), धा. सुले, अ. फ. सुनं, ना. मनुं (=मनउ), म. मनौं, स. मनो । २. धा. निन्ति, अ. फ. निन्त । ३. मो. कटे, धा. काढे, अ. फ. कंठे, ना. म. उ. स. कढ्ढे ।

(४३) १. मो. बजिहि बंस बिसतार, धा. बधं बंस बिसातल (< बिसताल), अ. फ. बंधै बंस बिस्तार, ना. म. उ. स. बजै (बजे–म.) बंस बिसतार ।

(४४) १. धा. जिसे मोहियं, अ. फ. जिनैं मोहिए, म. उ. स. तिनं मोहियं । २. अ. फ. म. उ. स. सथ्थ । ३. फ. नगो ।

(४५) १. धा. म. उ. स. वरं वीर, अ. फ. तहां वीर । २. धा. तेसे सुरंगा, अ. फ. तैसै सुरंगा, म. उ. स. संसे ससंगा ।

(४६) १. धा. नच्चै इस सीसं, उ. स. तिनं नच्चई ईस । २. धा. धरो जास, अ. फ. धरै जान, उ. स. ते सीस ।

(४७) १. उ. स. सिरं सिंधु । २. ना. सहनादि, फ. समधिताइ । ३. धा. सवपे (< स्रवणे) ।

(४८) १. धा. अ. फ. सुनै, ना. सुनै । २. मो. मजि (=मजइ) धा. मज्झे, म. उ. स. अ. फ. ना. मंजै । ३. ना. म. उ. स. में यहाँ और है : रसे सूर सामंत सुनि जंग रंगा ।

(४९) १. मो. नफेरी नव रंग, धा. नफेरी नवा रंग, अ. फ. नफेरी नवे रंग, म. उ. स. नफेरी नवं रंग, ना. नफीर नव रंग ।

(५०) १. मो. ना. मनु (=मनउ), धा. उ. स. मनों, म. मनौं, अ. फ. मनौ। २. मो. नृत्य नइ, धा. म. त्रितनौ, अ. फ. ना. नृतनौ, उ. स. त्रतनौ।

(५१) १. मो. सिंधु सामधन गेन मेरो, धा. सिंघ सावज्ज उगो न नेरो, अ. फ. सिंग सावक्क उग्गो न नेरौ, ना. सिंघ सावद्ध नग्गो नमेरौ, म. उ. स. सुने (सुनि—उ.) सिंगि (सग—म.) सावद (सावद्ध) नंगी न नेरो (न नेरौ—म.)।

(५२) १. धा. सज्जि आवज्ज हत्थं, अ. फ. बजे झिझि (झिझ—फ.) आवज्झ (आवज्ज—फ.) हत्थें, म. उ. स. मना (मनों—म.), झिझ आवद्ध हत्थैं (हथे—म.), ना. मनु झिझि आवद्ध हत्थं।

(५३) १. धा. उच्छरे धाइ, म. उ. स. कर्रो उच्छरा धाव, ना. उच्छरे धाउ, अ. फ. उछ्छरे (उछसरे) धाइ। २. धा. विर वंट टेरे, अ. फ. वर (वरु—फ.) वंट टेरौ, ना. म. उ. स. धन वट टेरौ।

(५४) १. धा. चित ते नाहि, अ. चितत नहौ, फ. चितत नाहि, म. चित चित्त तिन हीन, उ. स. चित चित्ति तन हीन, ना. जित्त तन हीन। २. धा. बढ्ढौ, अ. फ. न हुँ, ना. वहु, म. धार्यो, उ. स. बाढौ।

(५५) १. धा. उपमा खंड नवं नयन लग्गी, मो. उप्पमह षंड नयनेन लग्गी, अ. फ. उप्प षंड नव नयन भग्गी (लग्गी—अ.), ना. ओपम षंडनंने न लग्गी, म. उ. स. अन्यं ओपमा षंड नैनेनि भग्गी, ना. उप्पमं षंड नंनेन लग्गी।

(५६) १. मो. ना. मनुं (=मनउ), म. मलौ, अ. फ. मनौ, धा. म. उ. स. मनो। २. मो. हत्थेव लग्गी, म. हथं विलग्गी, शेष में 'हत्थे (हत्थं—ना) विलग्गी'।

टिप्पणी—(२) केलि < कदली। पत्त < पत्र। (५) रहिय < रहित। (६) उच्छासु < उच्छ्वास। (७) अंबु < अम्भस्। (१२) धुरयवन < प्रध्वस्त। (१५) जिमन < यमुना। (१८) गाज < गर्ज्। (१९) उनिंद < उन्निद्र। (२१) पयाल < पाताल। दुंद < द्वन्द्व। (२२) सुदद < सुदृढ्। (२५) चक्को < चक्रिन्। संत < शांत। (३९) साद < शब्द। (४०) लध्धा < लब्ध। (४७) उतंग < उत्तुङ्ग। (४८) अच्छछरिअ < अप्सरस्। (५०) नइ=निश्चय-सूचक अव्यय। केरी < केलि। (५१) गेन < गगन। (५४) वधूव < वर्ध्।

[७]

दोहरा— सुनि वज्जन[१] राजन[२] चडिग[३] बहु पष्पर समहाउ[४]। (१)
मनुह[१] लंक विग्रह करन चलउ*[२] रघुपतिराउ[३] ॥[४] (२)

अर्थ—(१) [जयचंद के] बाजों को सुनकर बहुत सी पाखरों और [युद्ध की] सामग्री [के साथ] राजा (पृथ्वीराज) ने [इस प्रकार] चढ़ाई का दी (२) मानों लंका पर विग्रह करने के लिए राजा राम चले हों।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) धा. सुणिय वयण, अ. फ. सुनि वयन, ना. सुनीय वज्ज, उ. स. सुनि वज्जन, म. सुनि वाजना। २. ना. रज्जन। ३. धा. चढिय, फ. चढिगु, अ. ना. उ. स. चढिग। ४. मो. बहु पष्पर समहाउ, धा. बहु पक्खर सरराहु, अ. फ. ना. म. उ. स. सहस संघ धुनि चाव (चाय—म., चाउ—ना. चाह—उ. स.)।

(२) १. अ. मनहु, फ. मनौ, म. मनौं, उ. स. मनों। २. मो. च (=चलउ), अ. फ. ना. म. उ. स. चढ्यौ। ३. अ. राव, म. राय, उ. स. राइ। ४. धा. में इस चरण का पाठ है :

मनु अकाल तेडिय सघन पवय छूट परवाहु।

[प्रथम चरण का 'भहराहु', तथा यह चरण धा. में भा. २०० की स्तुति से आगए लगते हैं।]

टिप्पणी—(१) बज्ज < वाद्य। चड्=चढ़ना।

[८]

दोहरा— रामद्दल°[१] बंनर° सयल°[२] उंहि रष्षस बहु बंधु[३]। (१)
असी[१] लष्ष[२] सउ[*] सम भिरिग[४] सु[५] धनि[६] प्रथिराज नरिंद[७] ॥ (२)

अर्थ—(१) राम के दल में समस्त बंदर थे, और उस(रावण) के [दल में] उसके बहुसंख्यक राक्षस-बंधु थे। (२) [किन्तु यहाँ तो] अस्सी लाख [सेना पृथ्वीराज के] केवल सौ [राजपूतों] के साथ भिड़ी, [इसलिए] नरेन्द्र पृथ्वीराज धन्य है।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. अ. फ. ना. म. उ. स. राम दलह। २. ना. म. उ. स. बंद (बद्दर—उ.) विषम। ३. धा. औहि (< उंहि) रक्खग बहु बंध, अ. फ. उहि रछ् छस दल बंद (चंद—फ.) ना. म. उ. स. रष्षस (राषस—म.) रावन बृद (बधि—ना.)।

(२) १ धा. अ. फ. असिय। २. धा लाष। ३. मो. सु (= सउ) सम, धा. पर सुं, ना. दल सुं (= सउं), अ. फ. म. उ. स. सौ (सौं—स.) सौ, ना. सौ सुं (= सउं)। ४ धा. भिरग, फ. भिरग, ना. म. उ. स. जुरिग। ५. धा. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। ६. धा. मो. धन, अ. म. उ. स. धनि। ७. मो. प्रथिराज नरेंद (< नरिंद ?), शेष में 'प्रिथिराज नरिंद'।

टिप्पणी—(१) सयल < सकल। रष्षस < राक्षस।

[९]

दोहरा— दल संमुह दंतिय[१] सघन[२] गणि को कहइ[*३] अगणित्त[४]। (१)
मनु पव्वय°[१] बिधि° चरण°[२] किय° सहि[३] दिष्षिय[४] मयमत्त[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) सेना के मुख भाग में घने हाथी थे; उन्हें गिनती करके कौन कह सकता है, अगणित थे। (२) [वे ऐसे प्रतीत होते थे] मानो पर्वतों को विधाता ने चरण [प्रदान] कर दिए हैं; वे सभी मदमत्त दिखाई पड़ते थे।

*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

पाठांतर—(१) १. धा. संमुह दंती, ना. म. समूह दंतिय (दंती—ना.)। २. मो. सधन। ३. मो. गणि किहि (= किहइ), धा० गणि को कहि (= कहइ), अ. फ. ना. गनि कु (= को) कहै, म. स. गनत न वनि, उ. गनत बनि। ४. फ. अगतित्त म. अगिनत।

(२) १. अ. मनु परवत, फ. मम तु परबत्ति, म. उ. स. मनों (मनौ—म.) पव्वय। २. ना. बरनन। ३. धा. सहु, अ. फ. ना. म. उ. स. सह। ४. धा. दिखवइ म. दषियत। ५. अ. फ. मयमंत।

टिप्पणी—(१) संमुह < संमुख। (२) पव्वय < पर्वत। सह=समस्त। मयमत्त < मदमत्त।

[१०]

भुजंग— दिष्षिअइ[*१] इक्क गय मत्त मत्ता[२]। (१)
छुत्र सह रत्त[१] अग्गइ[*] धरंता[२] ॥ (२)

जे (१) न छदून[१] छूटे+[*] जुरंता[२] । (३)
वाय[१] बहु वेग झटकंत दंता ॥ (४)
जिने[१] सिंघली सिंघ[२] सुंडे[३] प्रहारे । (५)
ते[१] सार संमुह[२] धाइ पहारे[३] ॥ (६)
उज्झये बान[१] सज्जे हकारे[२] । (७)
अंकुसे[१] कोस ते नहि[२] चिकारे[३] ॥ (८)
मिंठ मंगूल[१] चहु[२] कोद[३] बंके । (९)
भूप[१] बाहूट[२] बाजून[३] हंके ॥ (१०)
तेह[१] तर जोर[२] पट्टे न[३] झिल्लै*[४] । (११)
चंपिअइ*[१] पानि[२] तउ*[३] मेर[४] ढिल्ले°*[५] ॥ (१२)
रेस रेसमिअ यारी ति[१] मल्ली ।‡ (१३)
सेस संदेह संदूखि[१] मिल्ली ॥°‡ (१४)
जु[१]‡ रेष‡ वइरष*[२] रत: पीत‡ चल्ली[४] । (१५)
मनो वनराइ ढाले ति हल्ली[१०] । (१६)
घंट घोरं न[१] सोरं[२] समानं । (१७)
हल्लये मन[१] लग्गे विमानं[२] ॥ (१८)
सिघु सा बंधु[१] बंधे‡ धुरंगा[३] । (१९)
संग संगी त[१] हरि येभ[२] संगा ॥ (२०)
सीस संयूत[१] गज झंप[२] झंपइ*[३] । (२१)
देषि[१] सुरलोक सहि* देस[२] कंपइ* ॥ (२२)
दंत[१] मणि मुत्ति जर जटित लष्षे+[१] ।° (२३)
बीज[१] चमकंति[२] घन[३] मेघ पष्षे +[४] ॥° (२४)
इत्त नी (निअ) थास सम्माध रहियं[१] । (२५)
कहइ*[१] प्रथिराज प्रथिराज गहियं ॥ (२६)

अर्थ—(१) एक (कुछ) गज मत्त-उन्मत्त दिखाई पड़ रहे थे, (२) जो सभी [अपने] आगे रक्त [वर्ण का] छत्र धारण किए हुए थे, (३) जो अंदुओं (शृंखलाओं) से छूटकर उनसे जुटते (बँधते) नहीं थे, (४) जो वायु में बहुत वेग से अपने दाँतों का झटक रहे थे। (५) जो सिंघली [हाथी] थे, वे सिंहों पर अपनी सूँड़ों से प्रहार करते (करने वाले) थे; (६) वे [युद्ध में] सार (लौह—शस्त्रास्त्र) के सम्मुख दौड़कर प्रहार करते थे, (७) हँकार (पुकार) लगाने पर उद्यत हो कर वे बाना सजते थे, और (८) अंकुश-कोष [के गड़ाने] पर भी चीत्कार नहीं करते थे। (९) उनके मिंठ (महावत) चारों ओर बाँके मंगोल थे, (१०) भूप गण उनको बाहुँटे और बाजू से हाँकते थे। (११) उन्हीं के समान कुछ वेगवान भी थे जो पाद-प्रहार नहीं झेलते थे, (१२) यदि उन्हें हाथ चाँपा (लगाया) जाता तो वे मेरु को हिला देते। (१३) [उनके हाँकने के निमित्त]

रेशमी रेशों (लच्छियों) वाली नालीकें तथा भल्लियाँ (बर्छियाँ) थीं, (१४) जो उनके देह से श्लिष्ट तथा उन पर रक्खे गए सन्दूक से मिली थीं। (१५) [उन पर] जो लाल-पीले वैरषों की रेखा (पंक्ति) चलती थी, (१६) [वह ऐसी लगती थी] मानो वनराजि की डालें हिल रही हों। (१७) उनके घोर घंटों का शोर [पृथ्वी तल पर] समा नहीं रहा था, (१८) [इस लिए] मानों उनके लग कर विमान हिलने लगे थे। (१९) सिन्धु देश के धुरंग (अगों पर धूल डालने वाले—हाथी) बन्धन से बंधे हुए थे। (२०) इन [हाथियों] के संग जो संगी—साथ रहने वाले—थे, वे भी इन इभों (हाथियों) के संग [रहते हुए] डरते थे। (२१) इनके सिरों से संयुक्त (जुड़ा हुआ) गजझंप उनको झाँप रहा था, (२२) इनको देखकर सुरलोक तथा समस्त देश काँपता था। (२३) इनके मणि-मुक्ता तथा (जर—चाँदी-सोना) से जड़े हुए दाँत [इस प्रकार] दिखाई पड़ते थे, (२४) [मानो] घने मेघों के पक्ष में विद्युत चमक रही हो। (२५) यहाँ निज (स्वकीय) आशा और समाधि (सुख) में रहते हुए (२६) [जयचंद] कह रहा था, 'पृथ्वीराज को पकड़ो' 'पृथ्वीराज को पकड़ो'।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित चरण मो. में नहीं हैं।

+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

‡ चिह्नित चरण या शब्द फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. दिषिइ, धा. ना. दिक्खियहि, अ. फ. दिष्षियं, उ. स. देषियहि, म. दषियहि। २. मो. इक गय मत्त मता, धा. मंत मय मत्तमत्ता, म. मत मयमत मता, शेष में 'मंत मयमंत (नयमंत--अ. फ.) मंता (मत्ता--अ. फ.)'।

(२) १. धा. ना. उ. स. छत्र छह रंग, छत्र सहरंग, अ. फ. छत्र ह रंग (अंगु--फ.)। २. धा. अंगे ढुरंता, मो. आगि (= आगइ) धरंता, अ. फ. आगे ढुरंता, ना. आगे ढुरंता, म. उ. स. चौरं (उ. चुरैं, स. चौरं) ढुरंता।

(३) १. मो. ज (< जे ?) न अंदून, धा. एमि अ—इसके अनंतर बाद के 'छूटे' शब्द तक धा. में नहीं हैं, अ. फ. एम अंदूनि (अंदूल—फ.), उ. स. छके जेह अंदून, ना. म. जेह अंदून। २. मो. छूटि (= छूटे) जूरता, अ. छुट्टे जुरंता, फ. ते छुट्टे जुरंता, ना. उ. स. छुट्टे जुरंता, म. छुट्टे दुरंता।

(४) १. धा. जो वई, अ. फ. वाइ।

(५) १. धा. जे, अ. फ. जि, म. उ. स. जिते, ना. जितौ। २. अ. फ. सीस सिंदूष, म. सिंघला सिंघ। ३. धा. मुंडे, अ. फ. मुंडें (संडे—फ.) म. ना. उ. स. मुंडी।

(६) १. धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है, मो. ना. ते, म. उ. स. तिते। २. मो. संमुह, शेष में 'संमूह'। ३. धा. धावें पहारे, मो. धाइ प्रहारे, अ. फ. धावइ करारे, ना. धाए हकारें, म. उ. स धावें (धावे—म.) हकारे।

(७) १. म. उज्जरं बानं। २. मो. साजे हकारे, अ. फ. सज्जे हकारे, ना. आवें हकारें, म. स. आवें वकारे।

(८) १. धा. अ. फ. अंकुसइ, ना. म. उ. स. अंकुसं। २. फ. तिहं नहि, नहिं, ना. ते नवि, म. उ. स. तेनं। ३. ना. धिकारे।

(९) १. धा. मन्न संगोल मो. मिले मंगूल, अ. फ. मेठ (मंठ—फ.) मंगोल (मंगोस—फ.), उ. स. मीठ मंगोल, ना. मेछ मंगोल, म. मीन मंगोल। २. फ. चहौ। ३. म. दोद, अ. फ. कोट।

(१०) १. म. मनौं भूप, स. इसे भूप। २. मो. बाहूठ, धा. बाजूनि, फ. बाजुन, अ. बाजनि, शेष में 'बाजूनि'। ३. धा. म उ. स वाजून, अ. वाषूनि, फ. नाषंनि, ना. बाजूनि।

(११) १. अ. फ. तेर, ना तेज। २. म. नर जोर, अ. फ. हजेर। ३. अ. फ. पट्टेनि, उ. स. पट्टेव।
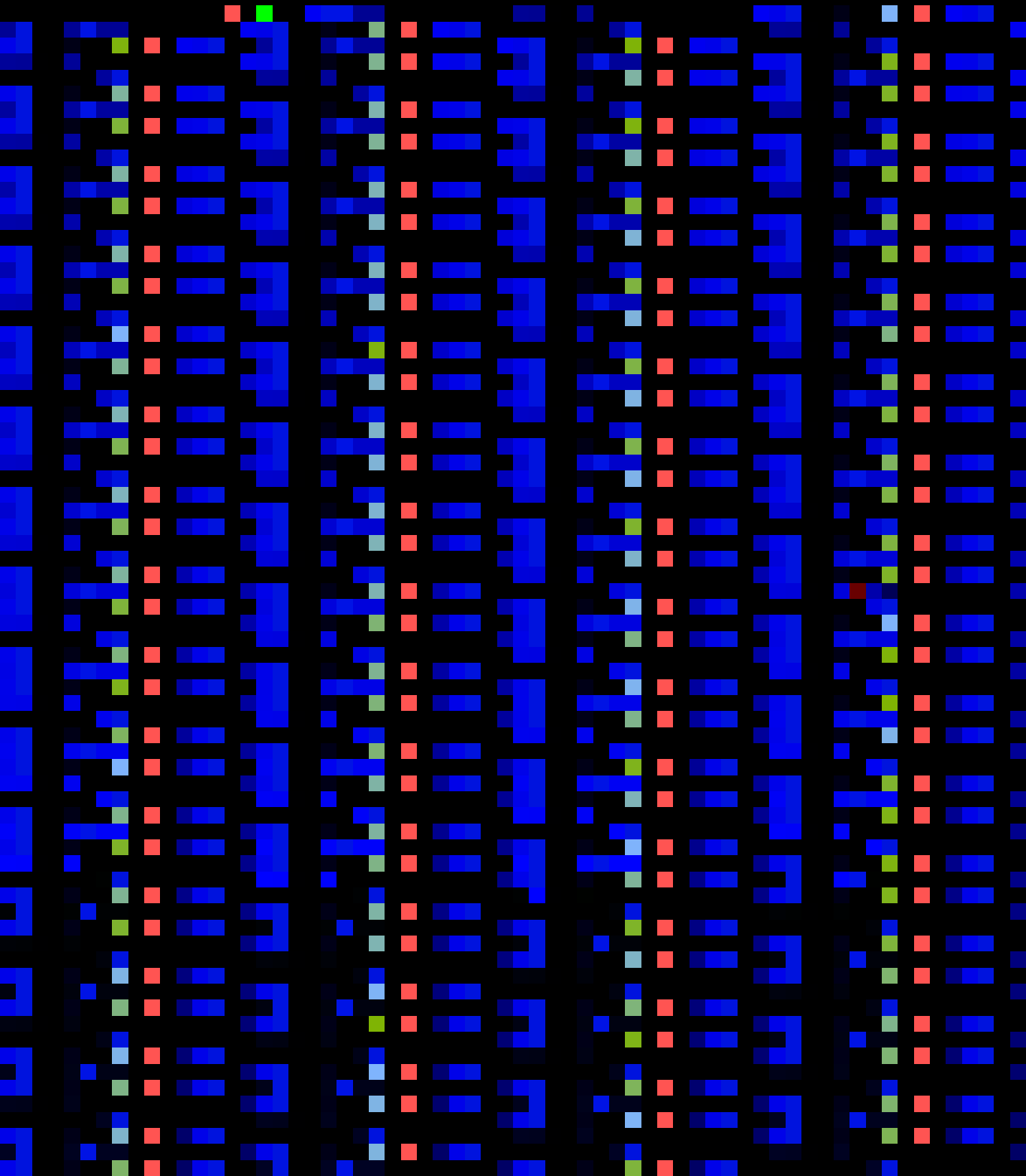
४. धा. छिछै, मा. छिछ (=छिल), अ. छिछे, फ. न. झल्ले, उ. स. छिल्लें; ना. छिछें।

(१२) १. मो. चंपीइं (=चंपिअइं), धा. कंपिये, अ. फ. चंपिध, ना. म. उ. स. चंपियं। २. धा. प्रानि, अ. फ. पानि, मो. म. ना. उ. स. पान। ३. मो. तु (= तउ), शेष में 'ते'। ४. धा. अ. मेव, फ. मरुव। ५. मो. छिछि (= छिछै), धा० छिछै, अ. फ. ठिछें, स. छिछ, उ. ठिछै, म. तिले।

(१३) १. धा. अ. रेस रेसम्म नीरोति, म. उ. स. रेसमी रेस नारीति, ना. रेस रसमीति नारीति।

(१४) १. धा. ना. सेस संदेह सिंदूक (संदूखि-धा.), अ. नीस सिंदूर सिंदूष, म. उ. स. सिरी सीस सिंदूर सोभा (सोभं-म.) सु।

(१५) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसीमें नहीं है। २. मो विरष (= वइरष)। ३. मो. रत्त नील पीत, धा. म. उ. स. पतिपात, अ. फ. पतिपत्ति, न. पतिवपत। ४. धा. ना. वर्छी।

(१६) १. धा. मनों पवनराइ डालेति ढछी, अ. फ. मनौ वनराज बालेति (ढालेति-फ.) ढछी, म. ना. उ. स. मनहु वनराइ द्रुम डाल ढली।

(१७) १. उ. स. पदें बेन बोरंन, म. बढ बोरन सोर, ना. बनं बंट बोरन घोरं। २. मो. शारं, म. मचौ, फ. सज्जे।

(१८) १. मो. हलये मत, धा. अ. फ. ना. हल प. नत (मंत-ना.), म. उ. स. हलं हालए (हालयं-म.) संत। २. ना. अ फ. विवानं।

(१९) १. धा. सीधु संबंध, अ. फ. पो सिंधु संबंधे, ना. विरद बरदाइ, म. उ. स. विरद बरदाइ (बरदाव-म.)। २. धा. बंबइ (< बधे ?) सुरंगा, ना. म., उ. स. अगे (आगें-म. अग्गे-ना.) त्रदंगा (त्रिदंगा-ना.)।

(२०) १. धा. सुग्गी सुग्गी, अ. सुग्गें सुग्गेव, फ. सुग्गे सुग्गीत, ना. सुगा संगीत, म. उ. स. मनौं स्वर्ग संगीत। २. धा डरि इंद्र, अ. फ. डरि चंद्र (डरि, इंद्र-अ.), उ. स. करि रंभ, म. डरि रंभ।

(२१) १. धा. अ. फ. उ. स. सीस सिंदूर ना. सीस संजुत्त, म. ससी सिंदुराल। २. धा. गय झिम्पि, उ. स. गज जप, म. रज झंप। ३. मो. झंपि (= झंपइ), धा. अ. फ. ना. झंपै, म. उ. स. झंपे

(२२) १. धा. ना. दिक्खि, म. मनौं देखि। २. मो. सिहि देस, फ. सबें देव, ना. सहि देव, शेष में 'सहदेव'। ३. मो. कंपि (= कंपइ), धा. अ. फ. ना. कंपें, म. उ. स. कंपे।

(२३) धा. दंत अ. फ. म. उ. स. दंति। २. ना. म. उ. स. जरीबे (जरीवं-म., जरीबै-ना.) झुलप्पी।

(२४) १. अ. फ. म. उ. स. मनौ (मनौं-म.) बीज, ना. मनुं बीज। २. ना. झलकंति, म. झवकंत, उ. स. झमकंत। ३. फ. धति। ४. ना. म. उ. स. पषी।

(२५) १. धा. अ. फ. इत्तनहि सास (सीस-फ.) धरि (धरि-अ. फ.) बारि रहियो (रहियौं-फ.), म. उ. स. इत्तनिय (इत्तनौ-म.) आस धरि मध्य (मिधि-म.) रहियं, ना. इत्तनी आस धरि मघव रहीयं।

(२६) १. मो. कहि (= कहइ) प्रथीराज प्रथीराज गहियं, धा. जु कहि जु कहि प्रिथिराज गहियो, अ. फ. न. कहहि पृथिराज पृथिराज गहियो (गहियौ-फ., गहियं-ना.), म. उ. स. कहहि प्रथिराज गहियं सु गहियं।

टिप्पणी—(१) गय < गज। (२) रत्त < रक्त=लाल। (५) सुंड < शुण्ड=सूँड़। (६) पहार < प्रहार। (७) उज्जय < उज्ज्वल। बान < वर्ण। (८) चिकार < चीत्कार। (९) मिठ [दे०]=महावत। मंगूल=मंगोल। वक < वक्र। (१०) तेह < तादृश। (११) तर < वेग, बल। पट्टे < पट्ट, या [दे०]=पाद-प्रहार। (१२) मेर < मेरु। (१३) रेस रेसमिअ < रेशमी रेशे (लच्छियाँ)। नारी < नालीक=एक प्रकार का माला। (१४) सेस < श्लिष्ट=मिला हुआ। (१५) रत < रक्त=लाल (१६) वनराइ < वनराजि। डाल < डाल। (१८) मन=मनु, मानो। (२०) येभ < इभ=हाथी। (२२) सहि=सभी। (२३) जर < ज़र (फा०)। (२४) बीज < विद्युत्। पष्प < पक्ष। (२५) निअ < निज=अपना।

[११]

दोहरा— गहि गहि१ कहि२ सेना ति सह३ चलि हय गय मिलि सव्व४। (१)
जिम१ पावस पुव्वइ२ अनिल हलिगत वद्दल सव्व३॥ (२)

अर्थ—(१) [जब] उसने समस्त सेना को 'पकड़ो', 'पकड़ो' कहा, हय, गजादि सब सब मिल कर [इस प्रकार] चल पड़े (२) जैसे पावस में पूर्व की हवा से सब बादल हिलग—एक दूसरे से मिल—जाते हैं।

पाठान्तर—(१) १. मो. गिहि गिहि, शेष में 'गहि गहि'। २. मो. किहि, अ. कवि। ३. धा. सेना न सब, मो. सोना ति सह, अ. फ. सेना त सब ना. म. उ. स. सेना सकल। ४. मो. चलि हय गय मिलि सव, धा. अ. फ. चलि (हलि–फ.) हय गय मिलि (मिल–फ.) इक (एक–धा, इक्ख–फ.), ना. म. उ. स. हय गय वन उठि (उठि–म.) गव्व।

(२) १. धा. जाणू, अ. फ. म. उ. स. जनु, फ. जुत्त। २. मो. पवि (पव्वइ), धा. चुव्वइ, म. अ. पुव्वइ, फ. पुव्वहि, उ. स. पुव्वहु। ३. मो. हय गय वद्दल सव्व, धा. अ. फ. हलि मद्दल (चंदलु–फ.), बहु भिष्ष (भेक–धा., भष्षि–फ.), ना. म. उ. स. हलि गति (हलि गत–ना., हिलि गति–म.) वद्दल सव्व।

टिप्पणी—(१) सह=समस्त। (२) हलिगना=हिलगना, पास आना।

[१२]

अर्ध नाराच— हयग्गयं नरभ्भरं१। (१)
उभव्वि नयं१ जलधरं२॥ (२)
दिसा निसान१ वज्जये२। (३)
समुद्द सद्द*१ लज्जये२॥ (४)
रजोद मद्द उच्छली१। (५)
व्योम१ पंक संकुली२॥ (६)
तटाक१ बाल२ रंगिनी। (७)
चकी चक१ वियोगिनी॥ (८)
पयाल पाल+१ पल्लये२। (९)
दिगंत१ मंन२ हल्लये×॥ (१०)
अनंद ते१ निसाचरे।× (११)
कु१ कंपि२ तुंड चाचरे३॥× (१२)
मगंत१ गंग कुल्लये२। (१३)
समुद्द१ सून२ फुल्लये३॥ (१४)
प्रवत्ति१ छत्त२ छत्तये।× (१५)
सरोज मोज१ हल्लये॥× (१६)

अषड रेन मडनै१ । (१७)
डरषि इंदु छंडने१ ॥ (१८)
कमठ पिठ१ निठुरे२ । (१९)
प्रसलच१ भार२ मिथ्थरे३ ॥ (२०)
साप° हंस°१ मग्गये । (२१)
समाधि१ आध२ जग्गये ॥ (२२)
अपूरवं ति बंधये१ । (२३)
जटालु कालु लुब्भये१ ॥ (२४)
नरिंद पंगु१ पायसं । (२५)
स छत्रि मंगि१ आयसं२ ॥ (२६)
गहन जोगिनी१ पुरे२ । (२७)
आप आप१ विथ्थुरे ॥ (२८)

अर्थ—(१) हय, गज, नर और भट (२) उन्नत होकर नत हुए जलधरों के समान [लगते] थे। (३) दिशाओं में निशान (धौंसे) बजने लगे, (४) [जिससे] समुद्र का शब्द भी लज्जित हो रहा था। (५) [सेना के संचरण से] रजोद—रज देने वाली भूमि—का मद उत्खंडित हो गया, और (६) व्योम पंक-संकुल हो गया। (७) [रात्रि का आगमन समझ कर] तडाग [—तट] की रंगिनी—क्रीड़ा करने वाली—वाला (८) चकवी चकवे से वियोगिनी हो गई। (९) पाताल [सेनाओं के भार से दबकर] पिलपिला उठा (१०) और दिशाओं के मत्त [गज] हिल गए। (११) निशाचर [रात्रि का आगमन समझ कर] आनंदित हुए, (१२) पृथ्वी काँप गई और तुंडवाले जीव—संचरण करने लगे। (१३) [आकाश-] गंगा के कूल पर भाग कर आए हुए (१४) समुद्र-पुत्र (चंद्रमा) फूलने (प्रसन्न होने) लगे। (१५) उन्होंने [अपनी किरणों का] छाता तान दिया, (१६) जिससे सरोज का मुख हिल गया। (१७) [किन्तु] अखंड रेणु से मंडित होने के कारण (१८) इंदु भी डरकर [आकाश-गंगा को] छोड़कर भाग निकला। (१९) निष्ठुर कमठ-पीठ (२०) प्रसरण-भार [घट पड़ने के कारण] मिथ्थुर (विस्थूल) हो गई। (२१) सर्प (शेष) हंस (प्राणों) की याचना करने लगे, (२२) और [महादेव] समाधि-आधि से जग गए। (२३) अपूर्व रूप से उन्होंने [जटा को] बाँधा, (२४) और उन जटालु—शिव—ने काल को भी लुब्ध कर लिया। (२५) पंगराज (जयचंद) का प्रादेश था, [अतः] (२६) क्षत्रियों ने उससे आदेश माँगा, और (२७) योगिनी पुरेश—पृथ्वीराज को पकड़ने के लिए (२८) वे आप ही आप फैल गए।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।
§ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. ना. सुनिब्भरं।

(२) १. धा. उनेविये, अ. फ. उनै विनै, ना. अनै विनै, म. सुनंनयं, उ. उनव्वियं, स. उनम्मियं। २. धा. जलद्दं।

(३) १. म. उ. स. बिस दिसान । २. अ. फ. पज्जइ ।

(४) १. मो. साद, शेष सभी में 'सद्द' । २. फ. लज्ज ।

(५) १. मो. रजोद्द मद्द उप्पली, धा. रजाद्द मिद अंखुली, म. रजोद सद्द अंघुली, फ. सरताद सद्दय अंघुली, उ. रजोद्द मद्द उब्बली, ना. रजोद्द मद्द उच्छली, म. स. रजोद मोद्द उप्पली ।

(६) १. मो. पेम, धा. वियोम, अ. फ. व्योम, ना. सु व्योम, उ. स. सव्योम, म. सयोम । २. ना. संकली ।

(७) १. ना. तट्टाकि । २. धा. बाछु, अ. फ. बान, म. बार । ३. अ. फ. रंगनी, म. सोगिनी, उ. स. रींगनी ।

(८) १. फ. जु चक्क सो वियोगिनी, अ. फ. जु बिक्क सो वियोगिनी, म. उ. स. सुचक्कयो वियोगिनी, ना. चक्कि संठि जोगिनी ।

(९) १. धा. पइल्ल, अ. फ. पलइ, ना. म. उ. स. पाल । २. म. पलरं ।

(१०) १. उ. स. द्रगंत, फ. दिग्गंति, ना. द्रिगंत । २. फ. मंति ।

(११) १. धा. अ. फ. अनंदने, उ. स. अनंदिते ।

(१२) १. मो. में 'क' शेष सभी में 'कु' । २. धा. कुंप, ना. कुपि । ३. ना. कुंड बासके ।

(१३) १. मो. संगन । २. अ. फ. स. कूलए ।

(१४) १. उ. स. समुद्र । २. ना. सुंन । ३. अ. फ. म. ना. फूलए ।

(१५) १. धा. चरंति, अ. फ. प्रवतं, ना. प्रवर्ति उ. स. प्रवृत्ति । २. ना. छत्र, फ. छव, उ. स. छत्रि ।

(१६) १. धा. भोज सत्तए, अ. फ. मोज सत्तए, ना. मौज सुम्मए, उ. स. मौज लज्जए ।

(१७) १. धा. मंडणे, ना. मंडले, म. मंडयो, उ. स. मंडयौ ।

(१८) १. धा. छंडणे, ना. इंदु छंडले, म. स. इंद्र छंडयो, उ. इंद्र छंडयौ, ना. इंड छंडिले ।

(१९) १. मो. पीठ, अ. फ. पिट्ठि । २. फ. रनं, म. निठुरं, स. निट्ठुरं, ना. निठुरं, ।

(२०) १. धा. प्रसार, अ. फ. प्रसल्लि, म. उ. स. प्रसाल, ना. प्रसल्ल । २. म. उ. स. भाल । ३. धा. मित्थरं, अ. भिथ्थुरं, ना. विस्थुले, फ. म. उ. स. विथ्थुरं ।

(२१) १. धा. में 'हंस' के 'स' के पूर्व चरण का अंश त्रुटित है, मो. ना. सपानि हंस, अ. फ. साप हंस, म. उ. स. छिपान हंस ।

(२२) १. म. समथि । २. धा. अ. ना. आद्दि, म. आस ।

(२३) १. धा. अ. फ. अपूरवं ति बंधयो, ना. अपूर बंच बद्धए, म. उ. स. अपूर पूर बद्धए ।

(२४) १. धा. भाग्गयो, अ. भग्गयो, फ. भग्गए उ. स. लुद्धए, म. लग्गए ।

(२५) १. मो. नरेंद (< नरिंद ?) पंगु, धा. म. उ. स. नरिंद पंग, अ. फ. नरिंद पाइ ।

(२६) १. मो. छत्री भंगि, धा. गसा भुयंति, अ. फ. गसा भ्रमंति, ना. समुत्त भंगि, म. उ. स. सु छत्रि (पत्र–म.) भंगि, स. भूत्त भंगि । २. धा. आइसं, अ. फ. आयिसं ।

(२७) १. फ. जोगनी । २. ना. पुरेस ।

(२८) १. धा. जु अप्प अप्प विप्फुरे, मो. आप आप विथ्थुरं, अ. फ. सु अप्प विफ्फुरे अरे, ना. आप आप विफ्फुरेस, उ. स. सु अप्प अप्प विप्फुरे, म. सु अप जेम विफुरे ।

टिप्पणी—(१) भर < भट । (२) उनव < उण्णम < उद्+नम् । नय < नत । (४) साद < शब्द । (५) उप्पली < उक्खलिय < उत्खण्डित=उन्मूलित, उत्पाटित । (९) पयाल < पाताल । (१२) साचर < संचर । (१३) कुल < कूल । (१४) सून < सूनु=पुत्र । (१५) प्रवरा < प्रवर्तय् । (१७) रेन < रेणु । (१९) निठुर < निष्ठुर । मित्थुर < विस्थूल । (२०) प्रसलन < प्रसरण । (२१) साप < सप=शेष । (२५) पायस < प्रादेश । (२६) आयस < आदेश । (२८) विथ्थर < वि+स्तृ ।

[१३]

दोहरा— सह समान सह[1] छत्रपति सह[2] सम जुध्घ[3] संजुत्त[4] । (१)
गहन[1] मीन बंदन कहइ[*2] जिहि लग्गइ[*3] लहु वत्त[4]+ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद-पक्ष के सामंतों में] सभी समान थे, सभी छत्रपति थे, और सभी युद्ध में समानरूप से संस्तुत (प्रशंसित) थे, (२) किन्तु पृथ्वीराज को पकड़ने के लिए मीर बंदन ने कहा (बीड़ा लिया), जिसे यह लघु बात लग रही थी।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित चरण का 'गहन' के बाद का अंश अ. फ. में नहीं है।

(१) १. धा. मो. अ. फ. स. सह समान सह, म. उ. तुम सह समान, ना. नम वि समान सह। २. मो. धा. सब, अ. फ. ना. म. उ. स. सह। ३. मो. युध, फ. क्रुद्ध, म. जुद्ध। ४. धा. संजुत्त, अ. फ. सरिजुत्त (सरियुत्त-फ.), म. उ. स. समुद्ध, ना. मजत्त।

(२) १. अ. फ. गहहु। २. मो. मर बंदन कीउ (= किअउ), धा. मीर बंदन हुतो, ना. म. उ. स. मीर बंदन कहै। ३. मो. लगि (= लगइ), धा. लग्गे, ना. म. उ. स. लग्गे। ४. धा. लहुमत, म. लहुवान, उ. लहु बद्द, स. लहु वद्ध, ना. वहुवत्त।

टिप्पणी—(१) सह = समस्त। संजुत्त < संस्तुत। (२) लहु < लघु। बत्त < वत्ता < वार्त्ता=बात।

[१४]

छप्पय—

परठिया[१] पंगु राय[२] सु+ रीसं[३]। (१)
भषइ दोइ[१] दुम्मीन[२] हीने न[३] दीसं॥ (२)*
नीच कंधे°[१] प्रही°[२] रोम सीसं[३]। (३)
उप्परइ[१] फौज प्रथीराज रीसं[३]॥ (४)*

अर्थ—(१) पंगराज (जयचंद) ने [उसे] रोष पूर्वक नियुक्त किया। (२) वह दो दुम्मियाँ—मोटी दुमवाली भेड़ें खाता था और [इसलिए] हीन (क्षीण) नहीं दिखाता था। (३) उसके कंधे नीचे थे और सिर के बाल झड़े हुए थे। (४) उसने पृथ्वीराज की सेना के ऊपर रोष किया।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

° चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) धा. पट्ठिए, अ. फ. पट्ठिय, ना. पट्ठीयं, म. पच्छियं, उ. स. तवे पट्ठियं। २. धा. अ. फ. राइ पंगा, म. उ. स. पंग रायं, ना. पंगुरायं। ३. मो. रीसं, धा. अ. फ. म. उ. स. सुहासं।

(२) १. भखे दोइ, मो. भषि (= भषइ) दोइ, म. भषं दोय। २. धा. दुम्मान, अ. फ. दुर्बीन, उ. स. द्रुम्मीन। ३. मो. ही नयन, अ. फ. ना. ही नैन।

(३) १. अ. फ. निच्चहं, म. नीच कंधे, ना. उ. स. कियं नीच कंधं। २. मो. प्रही, शेष में तुच्छ (तछछ–फ.)। ३. म. रोमं सु सीसं।

(४) १. मो. उपरि (= उपरइ), धा. उप्परे, अ. फ. उप्परं, ना. म. उ. स. परी उप्परं, फ. पंगा। २. धा. राय प्रिथिराज। ३. धा. दीसं, म. उ. स. ईसं।

टिप्पणी—(१) परठिअ < पड्ट्ठविय < परिस्थापित अथवा प्रतिष्ठापित। (३) प्रहा = झड़ना [यथा बालों का झड़ना]

[१५]

रसावला—

जे[१] कौल[२] पलअ[३] भषी[४] । (१)
मेछ सव्व[१] भषी । (२)
रोम राहं नषी[१] । (३)
बीर बाहु[१] पषी[१] । (४)
संभरेन[१] लषी । ‡ + (५)
वनेचरं तं[१] मुषी । × (६)
बान बाहू षषी[१] । × (७)
संधां सा बंधषी[१] । (८)
टंक अठ्ठार षी[१] । (९)
दिव्य[१] बाह लषी[२] । (१०)
दुम्मि साह[१] मुषी । (११)
बोलते[१] न लषी । (१२)
पारसी[१] पालषी[२] ।[३] (१३)
पंग पारठ्ठ षी[१] । (१४)
स्वामिता[१] चित्राषी । (१५)
ढिल्लि ढिल्लइ*[१] भषी ।[२] (१६)
सठ्ठि हज्जार षी[१] ।+ (१७)
पवंग सा[१] पारषी ॥ (१८)

अर्थ—(१) जो कौल होते हैं, वे पल (मांस) भक्षी होते हैं, (२) [किन्तु] म्लेच्छ सर्वभक्षी होते हैं। (३) वे रोमप्रिय और नखी (बड़े नखों वाले) होते हैं, (४) वे वीर और बाहु पक्षी—बाहु का आश्रय लेने वाले होते हैं। (५) वे स्मृति से लक्ष्य करने वाले होते हैं। (६) वे वनेचरों बंदरों (?) के मुख वाले होते हैं। (७) उनका ध्राण का [सा] हीन होता है। (८) वे शरीर के संधों (जोड़ के स्थानों) को बाँध रखते हैं। (९) अठारह (?) टंक [का धनुष] खींचते (?) हैं। (१०) वे दिव्य बाहु—लक्षी (?) होते हैं। (११) वे मुख पर दुम (दाढ़ी) का धारण करते हैं। (१२) वे बोलते नहीं दिखाई पड़ते—कम बोलते हैं। (१३) वे फारस और बलख (?) के होते हैं। (१४) जे पंग (जयचंद) द्वारा परिस्थापित हैं। (१५) उनके चित्तों में स्वामि भक्ति है। (१६) वे दिल्ली को ढीला (शिथिल) करने को झख रहे हैं। (१७) वे साठ हजार हैं। (१८) प्लवंगों (घोड़ों) के वे पारखी थे।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित चरण स. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण ना. में नहीं हैं।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं।

(१) १. धा. अ. फ. उ. स. में यह शब्द नहीं है। २. ना. लोक। ३. मो. ना. म. पलअ, शेष में 'पल'। ४ धा. स. लषी।

(२) १ मो. मछ सव, धा. मेछ सरव, अ. फ. मेछ सव्वं, ना. मेछ स्रवं, म. संस्रवनवं, उ. मे स. मेस स्रवं।

(३) १. मो. म. रषी, शेष में 'लषी'। २. म. उ. स. में यहाँ और है : वेषजे विद्ध धी (विद्धवं

(४) १. धा. चाहू, मो. बेहू, ना. बाहं, अ. फ. म. उ. स. वाहु। २. धा. चखी।

(५) १. धा. सबे नारं, म. उ. स. सुमरे नां।

(६) १. धा. में ये दो शब्द नहीं हैं, ना. वश्च रसं।

(७) १. मो. हू, धा. ना. बाहं

(८) १. धा. संध सावरखी, मो. सिध सावधषी, अ. फ. संध सा बंधषी, ना. सर्वदा विद्धषी, स. विद्धि (विद्ध-म.) सा बद्धी।

(९) १. म. सं. अढरखी। २. मो. के अतिरिक्त सभी में यह और है (स. पाठ) :—

खंच (खंचि-म.) विम्भारषी। कोट नाराचषी (नारं जषी-म.)

और मो. म. तथा ना. के अतिरिक्त सभी में है:

प्राण जोध लषी। कुल वाहं (कोल वाहे-म.) चषी।

(१०) १. अ. फ. हिहि, ना. बिज्जु, म. स. वाज। २. धा. वाहू नखी, ना. वाहैं लषी, चाहैं लषी।

(११) १. धा. द्रुम्म सिसा, अ. फ. धर्म साह, ना. दुमी साहै, स. द्रुम्म साहं, म. दुमि स दुम साहै।

(१२) १. अ. फ. बालते, म. बोतने।

(१३) १. म. पारसं। २. म. उ. स. पारषी। ३. ना. म. उ. स. में यहाँ और है :

बान बाह पषी।

(तुलना० चरण ४)

(१४) १. धा. पारठ्ठकी, म. पारंठषी, ना. पारठषी।

(१५) १. धा. स्वामि ना. म. सामिता।

(१६) १. मो. ढिल ढिली (<ढिलि=ढिलह) धा. ना. ढिल्ल ढाहं, म. ढिल्लि ढाहं, म. स. ढिल्लि २. ना. म. उ. स. में यहाँ और है : बीचरत्तं मुषी (बीखरतं मुषी-म.)। ना. में यहाँ और रज्ज रज्ज रषी।

(१७) १. धा. अ. फ. साहि हजारषी, मो. सठि हैम रषी, म. सठि हजारं मुषी।

(१८) १. धा. पंगवे, म. पवंगे, म. पवंगं, फ. पवंगम।

टिप्पणी—(१) पलम < पल [क]=मांस। (३) राह < राघ। (४) पष < पक्ष। (५) संभर < र बाह < व्याघ। उक्ख [दे०]=हीन। (१३) पालष < मलक्ष (?)। (१४) पारठ्ठ < परिस्थापित।

[१९]

भुजंग— हय दल पय दल१ अग्गइ* सुंडारे२। (१)
नृपतिन छत्रिन१ लध्धे न२ पारे। (२)
सूर१ सामंत मभ्भके२ हजारे। (३)
मनउ*१ विटिय२ कोट मभ्भ३ मनारे४॥ (४)

अर्थ—(१) अश्व-दल और पद-दल के आगे [जयचंद की सेना में] सुंडारे (हाथी (२) नृपतियों और क्षत्रियों का तो पार नहीं मिलता था। (३) शूर और सामंत [उस सेना मध्य में हजारों थे, (४) [जो ऐसे लगते थे] मानो कोट (परकोटे) के मध्य में वेष्टित मीना

पाठान्तर—चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

(१) फ. हय दल पइ दल, ना. हय दलं पय दलं, म. उ. स. हयं सेन पय सेन। २. धा. अ. फ. अभा दुडारे, मो. अगि (=अगइ) दुडारे। ना. अभां दुडारें, म. अबां सुडारे, उ. स. अबां सुडारें। ३. फ. में यह शब्द नहीं है।

(२) १. धा. नृपतिन छत्तनु, अ. नृपतिन छत्तन, फ. नृपतिन छत्राति, म. विषं तीन, ना. उ स. त्रिपत्ती नछत्रीन (नृछत्रीनु—ना.)। २. धा. लब्भन, अ. फ. लब्भंन, ना. लब्भंत, म. उ. स. लब्भं न।

(३) १. म. उ. स. तिनं सूर। २. नो. मध्ये, अ. फ. मद्धे, ना. म. उ. स. मध्य।

(४) १. मो. ना. मनुं (=मनउ), म. मनों, शेष सभा में 'मनो'। २.म. विदीयं, ना. वीदीयं। ३. धा. के, ना. मकं, म. उ. स. संझे। ४. धा. उ. स. मुनारे, अ. फ. मनारे, म. सुनारे।

टिप्पणी—(२) लब्ध् < लभ्। (४) विदिय वेष्टित।

[१७]

भुजंग— मोरियं[१] राज प्रथीराज[२] वग्गं[३]। (१)
उट्ठियं[१] रोस आयास लग्गं[२]। (२)
पथ्थ[१] सारथ्थि[२] भरि[३] होम[४] जग्गं[५]। (३)
घुल्लियं[१] षग्ग षंडु वन[२] लग्गं॥ (४)
उट्ठियं[१] सूर सामंत तज्जे[२]। (५)
षोलियं सिंघ[*] साहथ्थ लज्जे[१]। (६)
वाजने[१] वीर रा पंग[२] वज्जे[३]। (७)
मनउ[*१] आगमे[२] मेह[३] आषाढ गज्जे[४]॥ (८)
मिले योध वथ्थे[१] न हथ्थे हकारे[२]। (९)
उठे[१] गयन लग्गे समं सार[२] झारे। (१०)
कटे[१] कंध[२] काबंध[३] लंघे[४] ननारे[५]। (११)
परे जंग रंगं मनउ[*१] मत्तवारे॥ (१२)
भरे[१] संभरे राय[२] सं[३] सार[४] सारे[५]। (१३)
जुरे[१] मल्ल हल्लइ[*२] नही जे[३] अषारे। (१४)
जबे हाथि हल्लइ[*१] नही को[२] पचारे। (१५)
तबे[१] कोपियं[२] कन्ह[३] मयमत्त[४] भारे[५]॥ (१६)
जबे[१] अप्पियं मारु हथ्थे[२] दुधारे।° (१७)
फूटे[१] कुंभ झुम्मं नीसान भारे।° (१८)
गये[१] सुंड दंतालु[२] दंता उभारे[३]। (१९)
मनउ[*१] कंदला कंद मिली[२] उपारे॥ (२०)
परे पंडुरे[१] वेस ते[२] सीह सीसं[३]। (२१)
मनउ[*१] जोगिनी जोग[२] लागति रीसं[३]। (२२)

बहइ[*१] बान कम्मान[२] दीसै[३] न भानं । (२३)
ससइ[*१] स्रिध्घनी गिध्ध[२] पावै न जानं[३] ॥ (२४)
कलि षेत रत्त[१] षरंतं[२] करारं[३] । (२५)
बोलि[१] कंठ कंठी[२] न लग्गी[३] उभारं । (२६)
सरं[१] श्रोणि[२] रंगं पलं पारि[३] पंकं[४] । (२७)
बजइ[*१] गंल घंषि गंषि वालि[२] करंकं[३] ॥ (२८)
द्रुमं ढाल लोलंति हालंति देसं[१] । (२९)
गये हंस जंतीय गेहं सुवेसं[२] । (३०)
परे पांनि जंघं[१] षरंगं निनारे[२] । (३१)
मनउ[*१] मछ्छ कछ्छ[२] तरे तीर भारे[३] ॥ (३२)
सिरं सा सरोजं[१] कचे[२] सा सिवाली[३] । (३३)
गहे[१] अंत प्रथ्थी[२] सु सोहै[३] मराली[४] । (३४)
तटं[१] रंभ रत्तं[२] भरंतं[३] बिथ्थीरं[४] । (३५)
कतं स्याम स्वेतं[१] कतं[२] नीर[३] पीरं[४] ॥ (३६)
मुरे[१] अंग अंगे[२] सुरंगे[३] सुभट्टं । (३७)
जिते[१] स्वामि[२] कज्जे[३] समप्पं सुघट्टं[४] । (३८)
काल[१] जम जाल हथ्थी[२] समानं[३] । (३९)
इत्तने[१] जुध्ध अस्तमित भानं[२] ॥ (४०)

अर्थ—(१) राजा पृथ्वीराज ने बाग (लगाम) मोड़ी, (२) तो [उसका] रोष उठा और वह आकाश से जा लगा, (३) [जिस प्रकार] पार्थ महाभारत में अहं भाव (?) से भर कर जाग पड़े थे, (४) और उनका खड्ग खांडव वन [को दग्ध करने] में लग गया था। (५) शूर-सामंत लज्जित होकर उठ पड़े, (६) और सिंह के समान लज्जित होकर उन्होंने हाथ खोले। (७) पंगराज के बाजे बज उठे, (८) मानो आषाढ़ में मेघ आकर गज उठे हों। (९) योद्धा व्यस्त (अलग-अलग) मिले, और उन्होंने हाथों को हँकाया (वापस या पीछे बुलाया) नहीं, (१०) [उनके उठे हुए हाथ] गगन से जा लगे, और समान रूप से उन्होंने सार (शस्त्रास्त्र) झाड़े—चलाए। (११) कंधे, कबंध, संध—शरीर के जोड़—कट कट कर अलग जा पड़े (१२) और वे जंग (रण) के रंग-स्थल में ऐसे जा पड़े जैसे मत वाले [पड़े] हों। (१३) सांभर राज (पृथ्वीराज) के द्वारा सारे सार (शस्त्रास्त्र) झले गए। (१४) [किन्तु जयचंद पक्ष के योद्धा उसी प्रकार नहीं हिले] जैसे अखाड़े में जुटे हुए मल्ल नहीं हिलते हैं। (१५) जब इस प्रकार हार कर भी वे हिल नहीं रहे थे, और किसीने प्रचारा (ललकारा), (१६) तब अति मदमस्त हो कर कन्ह कुपित हुआ। (१७) जब उसने हाथों से दुधारे की मार दी, (१८) तो [गजों के] कुंभ फूट कर झूमने (झूलने) लगे, और भारी निशान (धौंसे) बजा। (१९) दंतियों (हाथियों) के शुण्ड [कट] गए और उनके दाँत [इस प्रकार] उखाड़ लिए गए, (२०) मानो सिल्लनी ने कंदल [लता] के कंद उखाड़े हों। (२१) मीरों के सिर पांडुर वेष में [इस प्रकार] पड़े हुए थे (२२) मानो किसी योगिनी का योग [—पात्र] दिखाई पड़

रहे हों। (२३) कमान (धनुष) बाण प्रवाहित कर रहे थे। [जिसके कारण] भानु नहीं दिखाई पड़ रहा था। (२४) [योद्धाओं के गिरने के कारण] गिद्धिनी और गिद्ध [इधर-उधर] चक्कर काट रहे थे, और [वहाँ शवों के पास] आने नहीं पा रहे थे। (२५) उस रक्त [वर्ण के] क्षेत्र में रोर करते हुए कराल पक्षी (काग) विचरण कर रहे थे, (२६) [जिसके कारण] कंठी (कोकिल) बोल करके कंठ नहीं उभाड़ (खोल) रहे थे। (२७) शोणित का वह रंग-स्थल एक सर [बन गया] था, जिसमें पल (मांस) का पंक पड़ा हुआ था, (२८) [जिसमें और भी] मांस जा रहा था, दुर्गंधि खिंच रही था, और करंक (हड्डियाँ) निवास कर रही थीं। (२९) वे ढालें जो लोल थीं, और हिलती हुई थीं [आने को] द्रुम, बतला रही थीं। (३०) जो हंस (प्राण) नष्ट होकर निकले रहे थे, वे ही वे हंस थे जो अपने सुंदर घरों को जा रहे थे। (३१) पाणि, जङ्घ, घड़ [शरीर से] अलग पड़े हुए थे; (३२) [वे ऐसे लगते थे] मानो [उस सरोवर के] मच्छ-कच्छ हों जो उसके तीर (तट पर) तैर रहे हों। (३३) [कटे हुए] सिर सरोज थे, और कच शैवाल थे; (३४) अंतड़ी लिए हुए जो गिद्धिनी थी, वही उस सरोवर पर शोभित मराली थी। (३५) उस [सरोवर] का रंभ (शब्द पूर्ण ?) रक्त तट चीरों से भरा हुआ था; (३६) कितने ही [उन में से] श्याम और श्वेत तथा कितने ही नील और पीत थे। (३७) वे सुभट गण सुन्दर अंगांगों [को प्राप्त कर उन] का विलास कर रहे थे, (३८) जितनों ने (जिन्होंने) अपने शरीर को स्वामि कार्य में समर्पित किया था। (३९) [वहाँ पर] हाथी काल के यम जाल के समान थे। (४०) इतने युद्ध के अनंतर भानु अस्तमित हो रहा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

† चिह्नित चरण फ. में नहीं है।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. तबं मोरियं। २. मो. राय प्रथिराज, शेष में 'राज प्रिथिराज'। ३. मो. ना. वागं, शेष सभी में 'वग्गं'।

(२) १. धा. अड्डियं, फ. उड्डिया, म. उ. स. दरं उड्डियं। २. मो. लग्गं, शेष में 'लग्गं'।

(३) १. धा. ना. पंथ, म. उ. स. मनो (मनौं—म.) पथ्थ। २. अ. भारथ्थ, ना. म. पारथ, शेष में 'पारथ्थि'। ३. अ. भरि, शेष में 'हरि'। ४. धा. हेम। ५. धा. जिग्गै।

(४) १. मो. पुल्लियं, धा. ना. खोलियं, म. मनौ लषियं, उ. स. मनो षोलियं, शेष में 'षोलियं'। २. धा. खाड्योन, अ. फ. षंडुअन, म. उ. स. खंडून, ना. मंड्यौन।

(५) १. मो. उड्डियं, धा. अ. ना. उट्ठियं, म. उठियं रन, उ. स. वरं बट्ठियं। २. धा. ना. ताजे, मो. तागे, म. तजे, अ. उ. स. तज्जै।

(६) १. मो. षोलियं संघ सद्दय लागे, धा. रोह्यिा सिंघ साह्रय आजे, अ. फ. छोहियं सिंघ साहथ्थ लज्जे, म. उ. स. तव षोलियं षग्ग साहथ्थ रज्जै, ना. षोलियं षग्ग साहृत्थ राजे (तुलना० चरण ४)।

(७) १. म. उ. स. सुरं बाजने। २. अ. वीररा पंगु, फ. धाव रावैगुं, ना. पंगरा वीर वीर। ३. उ. स. बज्जै, अ. फ. म. बज्जे।

(८) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, अ. फ. मनौ, ना. मनुं (=मनउ)। २. म. आग मैं। ३. मो. मेह, शेष में 'मेघ'। ४. अ. फ. म. गज्जे।

(९) १. उ. स. मिले कोइ हथ्थं, ना. म. मिले जो षहथ्थं। २. धा. न लग्गो हकारे, अ. फ. न लग्गे करारे, मो. न हच्छे हकारे, म. उ. स. सुरथ्थं हकारे, ना. ति बथ्थं हकारे।

(१०) १. धा. उडे, म. अ. फ. ना. उड्डै, उ. स. उड्डे। २. स. सकंसार।

(११) १. मो. कद, धा. कट्टे, अ. फ. ना. उ. स. कट्टै, म. कटे। २. यह शब्द मो. में नहीं है।

३. धा. कांध, ना. कम्मंध। ४. मो. संधे, म. संधि, शेष में 'संधं'। ५. अ. म. उ. स. निनारे, ना. निरारे।

(१२) १. मो. मनु, ना. मनुं (=मनउ), अ. फ. म. मनौं।

(१३) १. धा. डरे, मो. जुरे, म. उ. स. झरं, फ. झरं। २. धा. अ. फ. राइ, म. उ. स. राव। ३. अ. फ. सा, ना. सुं (=सउं), म. उ. स. सो। ४. फ. मार। ५. ना. म. उ. स. झारे।

(१४) १. जुरं। २. मो. हलि (=हलइ) धा. अ. फ. हल्लं। ३. धा. ते, मो. जे, म. ज्यौं, शेष में 'ज्यों'।

(१५) १. धा. जीवे हारि हल्ले, मो. जुरे हल हलि (=हलइ), ना. म. उ. स. जवं हार (हारि—ना.) मन्ने (संने—म.), अ. फ. जवं हारि हल्लं। २. धा. चो, म. का।

(१६) १. अ. फ. तयें, ना. तवें। २. अ. फ. कोपियो। ३. धा. कोस। ४. मो. नीसान (तुल० चरण १४) म. में संत। ५. धा. मारे।

(१७) १. अ. फ. जहां। २. अ. फ. मध्ये, म. ना. हथं।

(१८) १. अ. फ. कटें, म. उ. स. फूटे, ना. फटें।

(१९) १. धा. गये, अ. फ. अं, उ. स. गहे, ना. म. गहे। २. ना. दंडहि। ३. धा. दंता उपारे, ना. दंता उभारे, म. दंती उभारे, अ. फ. दंती उपारे।

(२०) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), म. मनौ, शेष में 'मनो'। २. अ. कंदरा, म. कद्दरा। ३. मो. विझो, ना. भाली (< मीली), म. उ. स. मीलं।

(२१) मो. परं पंडरे, उ. स. परे पंगुरें, म. अ. परे पत्तरं। २. ना. मेस ते, उ. स. पंडुरे, म. पंगुरं। ३. फ. मीलं।

(२२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ) अ. फ. म. मनौ, शेष में 'मनो'। २. धा. जोगिनी जोट, मो. योगिनी योग, अ. जोगिनी पत्र, फ. जोगिनी जत्र। ना. जोगीयां जोग, म. स. जोग जोगीय, उ. जोगि जोगीय। ३. अ. फ. लागंत दीसं, ना. म. उ. स. लागंत रीसं।

(२३) १. मो. वहि (=वहइ), धा. ना. म. अ. फ. वहै। २. मो. में यह शब्द नहीं है। ३. ना. सुज्झै।

(२४) १. मो. भमि (=भमइ), अ. फ. भवै, म. उ. स. भ्रमें। २. धा. ग्रिद्धणी ग्रिद्ध, अ. फ. गिद्धिनी गिद्ध (गिद्धि—फ.), म. उ. स. गिद्धनी (ग्रिद्धनी—म.) गिद्ध। ३. म. उ. स. में यहां और है (स. पाठ):

लगे रोह रत्ते अरत्ते करारं। मनो गज्जियं मेघ फट्टे पहारं।
दई कन्ह चहू आन अरि पील सीसं। कहो चंद कव्वी उपम्मा जगीसं।
तितं षंग संधी महापील मत्तं। मनों षंचियं द्रोन बरदाय पुत्तं।
किधौं षंचियं राम हथिना पुरेसं। किधौं पंचियं मथन गिरि सुर सुरेसं।
किधौं षंचियं कन्ह गिरि गोपि काजं। धरी सीस ऐसी सुभद्दं बिराजं।

(२५) १. धा. रने षेत रत्तं, मो. रुलि षेत रत्तं, अ. फ. रुलें षेत अंतं, ना. म. उ. स. रुरै (रुरे—म.) षेत रत्तं। २. ना. सरत्तं, म. उ. स. सुरत्तं। ३. मो. किरारं, शेष में 'करारं'।

(२६) १. मो. बोलि धा. घुले, अ. फ. घुलें, उ. स. घुरैं, म. घुरे, ना. घुरै। २. धा. संठी। ३. धा. लंगी, ना. लग्गे, म. लागे।

(२७) १. धा. अ. फ. ना. सरं, म. उ. स. सुरं। २. धा. स्रोन, अ. फ. स्रौन, ना. म. श्रोन, स. स्रोन। ३. धा. पार। ४. ना. वंकं।

(२८) १. मो. वजि (=वजइ), म. वजे, ना. बजै। २. धा. मंस नंसं सुवेसे, मो. मंस षंचि गि-वासि, अ. फ. वंस नंसं सवेगे (वंसे—फ.), ना. म. उ. स. वंस (वेस—म.) नेसं सुवंसं (सुबेसं—म. उ. स.)। ३. ना. करकं।

(२९) १. मो. दुम्मि ढाल लालंति हालंति देसं, धा. दुमं ढाल लोलंति हालं सुदेसं, अ. फ. दुमं

(पुमं--फ.) इछि ढालंति हालं सुदेसं ना. म. उ. स. द्रुमं (सर्म--ना.) ढाल ढा सुलाल सुदेसं (सुदेशं--ना.)।

(३०) १. धा. अ. फ. हंस नासं लगे हंस वेसं; ना. म. उ. स. हंस नंसी (हंसी--ना.) मिले (मिले--ना.,मिलं--उ.) हंस वेसं।

(३१) १. ना. जंपद्ध। २. अ. निन्धारे, फ. नन्धारे।

(३२) १. मो. मनु, ना. मनु (=मनउ), म. मनौं, शेष में 'मनो'। २. धा. मत्य कत्थं। ३. धा. अ. फ. ना. तरंतीर मारे, उ. स. तिरंतं उभारे, म. तिरकं उभारे।

(३३) १. मो. सरासंजं। २. मो. कचे, शेष में 'कचं'। ३. अ. सिवालं, फ. विसालं, ना. सवेली।

(३४) १. धा. ग्रहै, म. गहै। २. धा. म. उ. स. ना. गिद्धी, अ. फ. गिद्धं। ३. मो. सु शोहि (=सोहइ), धा. स सोमैं, ना. स सोहैं, अ. फ. सु सुंभै। ४. मो. ना. मरालो, धा. मुराली, अ. फ. मरालं, उ. स. मुनाली, म. त्रिनाली।

(३५) १. धा. वढं, म. तटं, अ. फ. टरं। २. मो. थरंतं, धा. रंतं, अ. फ. रोतं, म. उ. स. थंभं। ३. धा. भरतं। ४. धा. पिचारे, अ. फ. विर्चारे, ना. ववीरं, म. उ. स. वर्चारं।

(३६) १. ना. सेतं। २. अ. फ. छुतं, म. उ. स. कितं। ३. म. नाल (< नील), धा. नील। ४. धा. फ. पारे।

(३७) १. धा. धरे, म. अ. फ. वरे, ना. परे, उ. स. वरैं। २. अ. फ. अंनं। ३. मो. मुरंगे, धा. अ. फ. ना.म. उ. स. सुरंगं।

(३८) १. मो. जित, धा. जिते, ना. जितै, शेष में 'जिते'। २. ना. स्याम, म. सामि। ३. मो. काजे। ४. मो. शर्म पं, धा. अ. फ. ना. समप्प (समप्पै--अ. फ.) सुघट, म. समपे सु घटं।

(३९) १. धा. अ. फ. तहां काल, म. उ. स. तिते। २. मो. हाथी, धा. म. अ. फ. हथ्थी, ना. हस्ती। ३. धा. मसाणं।

(४०) १. धा. अ. फ. भयो इत्तने, हुवं इत्तनै, म. हुअं इतने, ना. इत्तनौ। २. धा. अस्तमित भाणं, अ. अस्तंसु जान फ. अस्तं सु भानं।

टिप्पणी--(१) वग्ग < वल्गा=लगाम। (२) आयास < आकाश। (३) पथ्थ < पार्थ। होम < अहं (?) (४) षग्ग < खड्ग। (५) ताजे < तर्जित। (८) मेह < मेघ। गाज < गर्ज। (९) वथ्थ < व्यस्त=अलग। (१०) गयन < गगन। (१४) अषारा < अक्खाडग < अक्ष वाटक। (२२) रीस < दृश। (२८) व्रज < व्रज्। (२९) दुम < द्रुम। देस < देशय्=कहना, बतलाना। (३३) सिंवाली < शैवाल। (३४) अंत < अंत्र= आँत। (३६) कत < कति < कियत्=कितना। (३७) मुर=विलास करना।

[१८]

गाथा-- निसि[१] गत वंछीय[२] मानं चक्की[३] चक्काय सूर सा चित्त[४]। (१)
विधु[१] संयोग वियोगे[२] कुमुदिनि[३] कली[४] कातरा धारा[५] ॥ (२)

अर्थ--(१) जिस प्रकार चक्की और चक्रवाक निशा के गत होने पर भानु [के आगमन] की वाञ्छा करते हैं, उसी प्रकार शूरों का चित्त था, और (२) जिस प्रकार वियोग में कुमुदिनी कलिका विधु-संयोग [की वाञ्छा करती है], उसी प्रकार कायर नर [उसकी वाञ्छा] कर रहे थे।

पाठान्तर--(१) १. म. निस। २. मो. वथीय, धा. छछिम, अ. फ. वंछहि, म. वंचिय (< वंछिय), उ. स. वंछिम। ३. धा. चक्काइ, ना. चक्कीय। ४. धा. सा रयणी, फ. सा रयनी, अ. सूर सार धणी।

(२) १. मो. विधि, धा. ना. अ. फ. म. उ. स. विधु (विष--म.)। २. धा. संजोगे, अ. फ. बियोगौ,

ना. बिजोगा, ना. म. उ. स. बिग्गागी। ३. मो. कुमदनि, फ. कुसुदिना, म. कुमुद, ना. कुमुदिन। ४. मो. कलि, धा. कलिके, अ. फ. तु, ना. कलिकाइ। ५. धा. कतेराने, अ. फ. कातराणरा, म. उ. स. कातरा नांचं, ना. कातरानां।

[१९]

दोहरा— उभय सहस हय गय परित[१] निसि[२] निग्रह[३] गत[४] भांन। (१)
सात सहस[१] असि मीर हणि[२] थल[३] विटउ*[४] चहुआंन॥ (२)

अर्थ—(१) दो हजार अश्वों और गजों के गिरने पर भानु निशा के निग्रह-गत हो गया। (२) इसी प्रकार से सात हजार मीरों [की सेना] को मार कर चहुआन (कन्ह) ने रण-स्थल को वेष्टित कर दिया (पाट दिया)।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. ना. म. उ. स. परिग। २. म. निस। ३. धा. अ. आगत, फ. आगति। ४. मो. त।

(२) १. धा. सत सहस्स, म. सहस सत, ना. उ. स. सत्त सहस। २. म. उ. स. असमीर हनि, ना. अस मर हनी। ३. मो. थलि, उ. थल विल, शेष में 'थल'। ४. मो. विंट्ठ (=विटउ), धा. विट्यो, ना. म. अ. फ. विटयौ।

टिप्पणी—(२) विट < वेष्टय्=वेष्टन करना।

[२०]

कवित— परउ*[१] गंजि[२] गहिलुत्त[३] नाम[४] गोविंद[५] राज[६] वर। (१)
दाहिम्मउ*[१] नरसिंघ परउ*[२] ना गवर[३] जास धर। (२)
परउ*[१] चंद पुंडीर[२]‡ चंद‡ पेक्खो[३] मारंतउ*[४]। (३)
सोलंकी सारंग[१] परउ*[२] असि वर[३] झारंतउ*[४]। (४)
कूरंभ राय[१] पालन्ह देउ[२] बंधव[३] तीन निघट्टिया[४]। (५)
कनवज्ज[१] राडि[२] पहिलइ[३] दिवसि[४] सउ मइ*[५] सत्त[६] निवट्टिया[७]॥ (६)

अर्थ—(१) [रण क्षेत्र में] वह गुहलौत गंजित होकर (मारा जाकर) गिरा जिसका श्रेष्ठ नाम गोविंदराज था। (२) दाहिमा नरसिंघ पड़ा जिसकी धरा नागौर थी। (३) चंद्र पुंडीर गिरा, जिसको चंद ने मार-काट करते देखा था। (४) सोलंकी सारंग पड़ा, जो श्रेष्ठ असि (तलवार) झाड़ (चला) रहा था। (५) कूरंभ राजा पाल्हन देव के तीन बांधव घट गए (मरे)। (६) इस प्रकार कन्नौज-युद्ध में प्रथम दिवस सौ [राजपूतों] में सात समाप्त हो गए।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. पर (=परउ), धा. पर्यो, ना. म. परयौ, शेष में 'परके'। २. धा. गज, मो. म. गंज, अ. गंध, फ. गंधि, ना. स. गंजि। ३. मो. गहिलुत, धा. गुहिलोतु, फ. गुहिलौत, ना. गहिलोत,

अ. म. ऊ. स. गहिलोत। ४. धा. राम। ५. धा. ना. गोइंद, म. ऊ. स. गोयंद। ६. धा. जाहु।

(२) १. मा. दाहिमु (=दाहिमउ), शेष में 'दाहिम्मौ' (दाहिम्मो—धा.)। २. मो. परु (=परउ), धा. पलौ, शेष में 'पर्यौ'। ३. धा. मा. नागवर, शेष में 'नागौर'।

(३) १. मो. परु (=परउ), शेष में 'पर्यौ'। २. धा. पंडार। ३. मो. पेखो (=पेक्खो), धा. दिखुयो, अ. फ. म. ना. ऊ. स. पिख्यौ। ४. मो. मारंतु (=मारंतउ), धा. मारंतो, शेष में 'मारंतौ'।

(४) १. धा. अ. फ. सोनकी सारंगु, ना. सालंकी सिरदार। २. मो. परु (=परउ), शेष में 'पर्यो' (धा. परो)। ३. मो. असमर, शेष में 'असि वर'। ४. मो. झारंतु (=झारंतउ), धा. झारंतो, शेष में 'झारंतौ'।

(५) १. धा. कुरम्भ राइ, मो. कोरंभ (< कुरंभ) राय, ना. फ. कूरम्भ राउ, शेष में 'कूरंभ राव'। २. मो. पालन देउ, अ. फ. पज्जून सौ, ना. पाल्हननंद, म. पाजुन दे, शेष में 'पाल्हन दे'। ३. धा. बंध्यो। ४. धा. तिन तिहि ढिया, अ. तिकट्टिया, फ. कट्टिया, म. ऊ. स. सु कट्टिया, ना. निबट्टिया।

(६) १. मो. कनज, शेष में 'कनवज्ज'। २. धा. मो. राडि, शेष में 'रारि'। ३. म. पहिलि (=पहिलइ), धा. पहिलइ, ना. अ. म. फ. पहिले। ४. धा. मो. ना. दिवसि, शेष में 'दिवस'। ५. मो. सुमि (=सउमई), धा. सउमइ, अ. फ. म. ना. ऊ. स. सो मैं (सोने—स.)। ६. मो. अ. फ. सात, धा. सत्त। ७. धा. निघट्टिया।

[२१]

कवित्त— अध्ध रयणि[१] चंदनी[२] अध्ध[३] अग्गइ[*४] अंधिआरी[५]। (१)

भोग भरणि अष्टमी सुक्रवारइ[*१] सुदि रारी[२]।+(२)

च्यारि[१] जांम जंगलीराय[२] निसि[३] निद्द न छुट्टउ[*४]। (३)

थल विटउ[*१] कमधज्ज रहउ[*२] कंदल धाहुट्टउ[*]। (४)

दस कोस कोस[१] कनवज्ज तइ[*२] कोस कोस अंतरि[३] अनी[४]। (५)

वाराह रोह जिमि पारधी[१] इम रोकउ[*२] संभरि[३] धनी[४]॥ (६)

अर्थ—(१) आधी रात [तक] चाँदनी थी, आगे की आधी [रात] अँधेरी थी। (२) भरणी (नक्षत्र) का योग था, अष्टमी की तिथि, शुक्रवार और शुक्ल पक्ष थे, जब रार (लड़ाई) हुई। (३) चार पहर रात्रि तक जांगल-नरेश (पृथ्वीराज) ने नींद नहीं छूटी। (४) कमधज्ज (जयचंद) ने रण-स्थल वेष्ठित कर दिया (पाट दिया) और युद्ध में अधिस्थित (?) रहा। (५) कन्नौज से दस कोस की दूरी तक उसने कोस-कोस के अन्तर पर सेना लगा दी और (६) वाराह को जिस प्रकार शिकारी रुद्ध करता है, इसी प्रकार उसने सांभरधनी (पृथ्वीराज) को रुद्ध किया।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित चरण ना. में नहीं है।

(१) १. म. रयन, अ. रैनी, फ. ना. रैन। २. अ. चंदिनि, फ. म. चंदनीय। ३. मो. अरध, शेष में 'अद्ध' या 'अध्ध'। ४. धा. फ. म. ऊ. स. अग्गै, ना. अग्गं, मो. आगि (=आगइ), अ. अग्गे। ५. म. अंधारीय।

(२) १. मो. सुक्रवारि (=सुक्रवारइ), धा. वार मंगल, अ. फ. सुक्रवारे (सुक्रवरे—फ.), ऊ. स. सुक्रवारह, म. सुक्रवा। २. म. रारीय।

(३) १. धा. चार, ना. चारि, फ. चारि। २. धा. जंगली राउ, अ. फ. जंगली रह्यौ, ना. म. उ. स. जंगलो (जंगलीय–म.) राव। ३. अ. तहं, फ. तिह। ४. मो. निद न छुट्ट (=छुटउ), धा. नींद न, छुट्यौ, अ. फ. नींद (निंद) न छुध्या, ना. निंद न पोट्यौ, म. निंद न छुट्यौ, उ. स. निंद न छुट्यौ।

(४) १. धा. विट्यौ, मो. विट्ठ (=विटउ), ना. विट, अ. फ. विंटे, म. उ. स. विट्यौ। २. मो. रहु (=रहउ), धा. रहवो, अ. फ. ना. म. उ. स. रह्यौ। ३. मो. ना. कमधज्ज, शेष में 'चहुवान'। ४. मो. आहुट्ठ (=आहुटउ), धा. म. उ. स. आहुट्यौ, ना. आद्यौ, अ. फ. आहूया।

(५) १. अ. फ. कोस अंत, ना. कोस कोस कोस। २. मो. ति (=तइ), धा. ते, ना. तै, म. तै, शेष में 'ते'। ३. फ. अंतरि, शेष में 'अंतर'। ४. म. अनीय।

(६) १. अ. जिमि पारधी, फ. जिस पारधी। २. मो. रोकु (=रोकउ), धा. अ. फ. म. ना. उ. स. रुक्यौ। ३. ना. सेंभरि। ४. म. धनीय।

टिप्पणी—(१) रयणि < रजनी। (२) निद्द < निद्रा। (४) विट < वेष्टय। आहुट्ट <अधिस्थित (?)। (६) रोइ < रुध्।

[२२]

रासा— मित्तः[१] महोदधि मज्झ[२] दिसंत[३] ग्रसंत[४] तम[५]। (१)
पथिक[१] वधू पथि[२] दिट्ठ[३] अहुट्टिय*[४] चंग[५] जिमि। (२)
जुव जन जुवती गंजि°[१] सुमत्ति अनंग भय[२]। (३)
जिन[१] सारस रस+ लुध्ध[२] त° मुध्ध मधुप्प लय[३]। (४)

अर्थ—(१) मित्र (सूर्य) महोदधि के मध्य [जा चुके] थे, दिशाओं को तम ने ग्रस लिया था, (२) पथिक-वधू की दृष्टि [प्रियतम के] पथ में उसी प्रकार अधिस्थित (?) थी जैसी [खिंची हुई] चंग (पतंग) होती है, (३) युवाओं और युवतियों की सुमति अनंग-भय से [उसी प्रकार] नष्ट हो चुकी थी (४) जिस प्रकार रस-लुब्ध सारस की अथवा [मधु—] मुग्ध मधुप की हो जाती है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

° चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. धा. मत्त। २. धा. मज्झि, अ. फ. मंझ, ना. मध्य। ३. धा. दीसत। ४. धा. ना. अ. गसंत, फ. गसंति। ५. म. फ. तिम, ना. इम।

(२) फ. पिथग, ना. पथिग। २. धा. मो. पथ, फ. पथि। ३. धा. द्रिस्टि, अ. द्रिष्टि, ना. दिष्टि, फ. दिष्ट, म. दृष्टि। ४. मो. अहोटीय (< अहुटीय)। ५. धा. जग।

(३) १. मो. जुव जन जुवती (=जुवती) गंजि, धा. जिम जुव जुवतिन गत्त, ना. जुव्वन जुवतिनि गत्ति, अ. फ. जुव्वन जुवती रत्ति (रत–फ.), म. उ. स. जुव जन जुवतिन गंजि (गजि–म.)। २. धा. मत्त अंग झुले, मो. सुमत अनंग भय, अ. फ. सुद्ध छि (दिद्व–फ.) अधप्पलउ, ना. सुमत्ति अनंग लौं, म. उ. स. सुमंति (सुमंत–म.) अनंग लिय।

(४) १. अ. फ. जिमि। २. फ. रस लध्ध। ३. धा. त मुंध मधुप्प के, मो. मुध मधुप्प यल, अ. फ.

जु मद्ध मधूप लउं, ना. समुद्ध मधुम्प लौं, म. समुद समुधतिय, उ. हुमद्ध मद्ध तिय, स. समुद्धह मधु तिय ।

टिप्पणी—(१) मित्त < मित्र=सूर्य (२) अडुट्ठिय < अधिस्थित (?)। (४) छुच्छ < छुब्ध। मुच्छ < मुग्ध।

[२३]

रासा— षेचरह कउ* उयउ* इंदु[१] इंदीवर उद्दयउ*[२] । (१)
नव विरही[१] नव नेह नव जल नव रुद्दउ*[२] । (२)
भूषन[१] सोभ[२] समीपनि[३] मंडितु[४] मंडि तन[५] । (३)
मिलि मृदु मंगल[१] कीन मनोरथ सव्व मन ॥ (४)

अर्थ—(१) आकाशचरों (तारिकाओं) के [हर्ष के] लिए इंदु का उदय हुआ, और इंदीवर (नील कमल) उदित हुआ (खिल गया)। (२) नव विरही (पृथ्वीराज और संयोगिता) नव स्नेह के नव जल (अश्रु) का रुदन कर रहे थे। (३) उन्होंने [इसलिए] आभूषणों को समीप ही शोभित होने दिया, उनसे शरीर का मंडन नहीं किया। (४) केवल [दोनों ने] मिलकर मृदु मंगल किया, और मन में सभी प्रकार के मनोरथ किए।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. मो. षेचरह कु (=कउ) उयु (=उयउ) इंदु, धा. अ. फ. परह चारु चै इंदु, ना. षहह चारु रवि इंदु, उ. षह चारुचि इंद, म. स. षह चारु रुचि (जचि—म.) इंद (अंद—म.)। २. मो. इंदीवर उदयु (=उदयउ), धा. ज संदियवर उदय, अ. फ. जु इंदीवर मुदय, म. उ. स. इंदीवर (इंद्रीवर—म.) उदयौ, ना. इंदुवर उदय।

(२) १. धा. विरहिनि, म. विरहा, उ. स. विहार। २. मो. नव जनय मत्र रुदयु (=रुदयउ), धा. अ. फ. नवजलु (नव जल—अ. फ.) नव रुदय, म. उ. स. नवजल रुद्यौ, ना. नव जल नें रुदय।

(३) १. अ. फ. भीषम। २. मो. सोभ, शेष सभी में 'सुम्भ'। ३. धा. अ. स. समीपन, फ. समीपनु, ना. मद्दिपत्र। ४. धा. मंडनु, अ. फ. मंडिय। ५. धा. मंडि तनु, म. अ. फ. मंडि तन, उ. स. मंड तन।

(४) १. धा. मुद मंगल, म. मृदु संग।

टिप्पणी—(२) रुदय < रुद्=रोना।

[२४]

श्लोक— यतो[१] नीरे[२] ततो[३] नलिनी[४] यतो नलिनी ततो नीरं[५] । (१)
त्यजति गृहं न यत्र गृहनी[१] यतो गृहनी ततो गृहं[२] ॥ (२)

अर्थ—(१) जहाँ नीर होता है, वहाँ नलिनी होती है और जहाँ नलिनी होती है, वहाँ नीर होता है; (२) वह गृह त्याग दिया जाता है जहाँ गृहिणी नहीं होती है, [अतः] जहाँ गृहिणी होती है, वहाँ गृह होता है।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. जेतो, म. जित, उ. स. जित्तं। २. धा. नलिनी। ३. म. तित। ४. धा. नीर। ५. धा. अ. फ. यतो (जेतो—अ. फ.) नीर ततो नलिनी (देखिए चरण का पूर्वार्द्ध), म. 'जत्तं

नलिनी तित जलं।

(२) १. धा. यत्र गेह गेहिनी तत्र, मो. त्यजति ग्रह न यत्र ग्रहनी, अ. फ. ति जंत (जंति—फ.) ग्रेह ग्रेहनी जत्र, म. उ. स. जतो गृह (जितो ग्रहं—म., जतो ग्रहं—उ.) ततो (तितो—म.) ग्रहिणी, (ग्रहनी—म.), ना. जत्त गेह ततो ग्रहनी। २. धा. यत्र गेहिनी तत्र गृह, अ. फ. जत्र ग्रहनी तत्र ग्रहं, म. उ. स. जत्र गृहिणी (ग्रहनी—म.) ततो गृहं (ग्रह—म.), ना. जत्र गेहनी ततो गृह।

[२५]

कवित— *दिनिअर सुय दिन जुध्ध[1] जूह[2] चंपइ[3] सामंतन[4] । (१)*
भर[1] उप्परि[2] भर[3] परहिं[4] परइ धरहिं[5] धावंतन[6] । (२)*
दल दंतिय[1] विछुट्टरहि[2] हय जुहय हय[3] कननंकइ[4] । (३)*
अछ्छिर[1] वर[2] हर[3] हार धीर धारा[4] झननंकइ[5] । (४)*
जय जय जु[1] घंट[2] जोगिनि[3] करहिं[4] करि कनवज[5] ढिल्ली वयर[6] । (५)
सामंत[1] पंच षेतह[2] परिग[3] मिरइ[4] भंति[5] भए[6] विप्पहर[7] ॥ (६)*

अर्थ—(१) दिनकर-सुत (शनि) के दिन युद्ध में [पृथ्वीराज के] सामंतों ने [शत्रु के] यूथों को दबाया। (२) भट के ऊपर भट गिरने लगे, और दौड़ते हुए [सैनिक] धरा पर गिरने लगे। (३) सेना के हाथी बिछुड़ने—निकल भागने—लगे और हय (घोड़े) हिनहिनाने-किनकिनाने लगे। (४) हर-हार में अक्षर (मोक्ष) का वरण कर धीर वीर तलवारों को झनझनाने लगे। (५) कन्नौज और दिल्ली के वैर [के उपलक्ष्य] में योगिनियाँ 'जय जय' करती हुई घंटों की ध्वनि कर रही थीं। (६) [पृथ्वीराज के] पाँच सामंत खेत रहे, और युद्ध में दो प्रहर हो गए।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. दिनियर सवि दिव जुह, मो. दिनोअर सुयदिन जुध (=जुध), ना. अ. फ. दिन उग्गत (ऊगति—फ., ऊगत—ना.) भय (यौ—फ.) जुह (जुद्ध—फ., जुद्ध—ना.), म. उ. स. दिनयर सुअ दिन जुद्ध। २. मो. यूह (=जूह)। ३. मो. चंपि (=चंपइ), धा. चंपइ, अ. फ. चंपै, म. उ. स. चंपिय, ना. चंपिग। ४. धा. सावंतहि, अ. फ. सावंतनि, मो. म. उ. स. सामंतन, ना. सामंतनि।

(२) १. धा. पर। २. अ. फ. ना. उ. स. उप्पर। ३. धा. सर। ४. मो. परिहि, धा. परइ, म. नरहि, उ. स. भर। ५. मो. परि (=परइ) धरहि, धा. ना. परहि उप्परि, अ. फ. धरह (धरहि—फ.) उप्पर, म. उप्परि, उ. स. परिहि उप्पह, ना. परहि उप्पर। ६. धा. धावंतहि, अ. धावंतनि, फ. धावं तितु, म. धावंतत।

(३) १. धा. दंती, अ. फ. दंतीय, म. दंतन, ना. दंतिनि, उ. स. दंतिन। २. फ. दिछुरहि। ३. म. ह। ४. धा. किननंकति, मो. कनंकि (=कनंकइ), अ. फ. करनक्कहि, म. खिननकइ, ना. म. उ. स. किन नंकहि (नक्कहि—ना.)।

(४) १. धा. अ. ना. उ. स. अच्छरि, मो. अछि्छर, फ. स. अछूअर। २. धा. पर, अ. दरि, फ. दर, ना. वरि। ३. ना. हरि। ४. धा. धार धारनि, मो. धर धीरा, अ. फ. धार धरनिय, ना. धार धारणि उ. स. धार धारन, म. धार धार। ५. धा. झननंकति, मो. झननंकि (=झननंकइ), अ. फ. ना. झननक्कहि, म. झननंकइ, उ. स. झननंकहि।

(५) १. फ. जय जु, ना. जया जु, दूसरा 'जय' फ. ना. में नहीं है, म. उ. स. जय जया, अ. फ. जय

जय हु । २. अ. फ. म. उ. स. सद । ३. मो. जोगिनि, धा. जुग्गिनि, शेष में 'जुग्गिन' या 'जुग्गिनि' । ४. धा. करइ, अ. कहहि । ५. धा. ना. म. उ. स. कलि कनवज, अ. फ. कनवज्जिय । ६. म. दिल्लीय वर ।

(६) १. अ. फ. सावंत । २. धा. पित्तहि, मो. पेत्तइ, ना. म. उ. स. पित्तइ, अ. मित्तइ, फ. मित्तहि । ३. धा. पथिग, फ. परि । ४. मो. भिरि (=भिरइ), धा. ना. म. उ. स. भिरत, अ. भरित, फ. रित । ५. ना. म. उ. स. पंच । ६. धा. भइ, म. भय । ७. धा. बिक्खहर, अ. फ. बिप्पहर, उ. दुप्पहर ।

टिप्पणी—(१) दिनिअर < दिनकर । सुय < सुत । जूह < यूथ । (२) भर < भट । (४) अछिर < अक्षर । (६) बि < द्वि ।

[२६]

गाथा— विप्पहर[१] पहट्ट[२] परिघं[३] हय गय नर भार सार[४] षंडेन[*५] । (१)
रहरोस पंग[१] भरिअं उध्धरियं[२] वीर बिंवेन[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) [जब] दोपहर प्रहष्ट हुआ, भारी हय, गज, नर, तथा सार (शस्त्रास्त्र) के खंड-खंड होने से (२) पंग (जयचंद) रभस् (उत्साह) युक्त रोष से भर गया, और वह वीर बंब (?) के साथ निकल पड़ा ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. फ. विपहर, अ. विपहरइ, म. विपहर, उ. स. विप्पहुर । २. धा. पहट्ट, मो. पारट्ट, ना. पट्टह, म. महुरति, उ. स. पहुरति, अ. पहट्ट, फ. पट्ट । ३. धा. परयं, फ. परिघं । ४. फ. सीर । ५. मो. षंनेन (< षंडेन ?), धा. अ. फ. ना. हत्थेन (हथ्थने—अ. फ.), म. उ. सथ्थेन, स. नथ्थेन ।

(२) १. मो. रोस रंग, म. उ. स. रंग रोस, ना. रंग जेस । २. धा. ओधरियं, म. उ. स. उड्डियं, ना. उच्छीयं, अ. फ. उधरीयं । ३. मो. वीर ब्यंवेन (=बिंवेन), अ. फ. वीर (चीर—फ.) विवेन, म. वीर वंवेन ।

टिप्पणी—(१) बि < द्वि । पहट्ठ < पहट्ठ < प्रहृष्ट । (२) रह < रभस् । बिंव < बंब=धमक, शोर (?) ।

[२७]

कवित्त— परउ[*१] माल चंदेलु जेन[२] धवली धर गुरजर[३] । (१)
परउ[*१] भान भट्टी[२] भुआल[३] थट्टा[४] धर[५] अग्गर । (२)
परउ[*१] सूर सामलउ[*२] जेन[३] बानौ[४] मुषि[५] मुच्छह[६] । (३)
हसउ[*] तिनिहि[१] पंमार[२] जेन विरदावलि[३] अच्छिह[४] । (४)
निर्वान[१] वीर धार तनउ[*२] रुकत हक नरिंद दल[३] । (५)
पर अंत पंच[१] भये विप्पहर[२] अगनित भंजि अभंग दल[३] ॥ (६)

अर्थ—(१) [युद्ध में] माल चंदेल गिरा जिसने गुर्जर धरा को धवलित किया, (२) भूपाल भान भट्टी गिरा जो थट्टा की धरा का अग्र (प्रमुख) था; (३) सामला शूर गिरा, जिसका बाना मुख-मुच्छ था; (४) [वह परमार भी गिरा] जो उस पर हँसता था और जिसकी विरदावली 'अच्छ' थी, (५) धार का निर्वाण वीर भी [गिरा] जिसकी हाँक पर नरेन्द्र (जयचंद) का दल

थक जाता था, (६) ये पाँच [जयचंद के] अभंग (न टूटने वाले) दल के अगणित योद्धाओं का भंजन करके दोपहर होते-होते तक पड़ (गिर) रहे।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. पडु (=पडउ), धा. परयो, शेष सभी में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. जिन्ह, मो. जेन, अ. फ. जेनि (जैनि–फ.)। ३. मो. गुरजर, शेष सभी में 'गुज्जर'।

(२) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष सभी में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. म. मान भाटी, फ. भान भट्टीय, स. मान भट्टी। ३. ना. भुवाल। ४. धा. घंटा, अ. फ. घट्टा। ५. धा. धर।

(३) १. मो. परु (=परउ) धा. पर्यो, शेष सभी में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. मो सामंत लु (=सामंत लउ), धा. सावरो, अ. सावरा, फ. साउरो, ना. म. उ. स. सामलो। ३. अ. फ. जेनि (जैनि–फ.), ४. धा. वानो, मो. वानेत, अ. फ. बानौ, ना. उ. स. बानै, म. बानइ। ५. ना. मुषि, शेष में मुष'। ६. धा. मुच्छहि, ना. म. उ. स. मच्छइ।

(४) १. मो. हसु (=हसउ) तिन्निहि, धा. हसे जेतु, अ. फ. ना. हसे तिनहि, उ. स. हँसै तेन, म. हसैं तेम। २. धा. फ. पावार, अ. पावार, म. उ. स. पाँवार। ३. अ. फ. बिरद बाना दल (दलि–अ.), ना. बिरुदावलि। ४. मो. अछिहइ, धा. अच्छहि, म. अच्छरि, शेष में 'अच्छइ'।

(५) १. ना. त्रीवान (< त्रीवान)। २. मो. धार तनु (=तनउ), धा. धरवर धनुह, अ. फ. धावर (धाउर–फ.) धनी, ना. धावन धनी, उ. स. धावर धनू, म. धावर धरइ। ३. धा. नवतर एक नरिंद दल, मो. एकत इक नरेंद दल, अ. फ. गन्यो त (ति–फ.) इक नरिंद दल, ना. इने अनेक नरिंद दल, म. उ. स. इनुय (धनुय–म., इनिय–उ.) नरिंद अनेक बल।

(६) १. धा. अ. फ. ए परत पंच, ना. इन भिरित पंच, उ. स. म. इन परत पंच। २. धा. भउ जुग पहर, अ. फ. भय (भज–फ.) जुग पहर, ना. म. उ. स. भय (भए–ना.) बिप्पहर। ३. धा. अगनित भंजिअ पंग बल, मो. अगनित भंजि अभंग दल, अ. फ. अगनित भंजि (भंज–फ.) अभंग पल, ना. म. उ. स. अगनित (अगनत–म., अगनं–उ.) भंजि असंष दल।

टिप्पणी—(१) धर < धरा। (२) अग्गर < अग्र। (३) मुच्छ < श्मश्रु=मूँछ। (६) वि < द्वि।

[२८]

कवित्त—चढउ*[१] सूर मध्यांन[२] पंगु परतंग गहन किय। (१)
षुर त[१] षेह[२] षह मिलित[३] स्रवन सुनिजे[४] सुलीय लिय[५]। (२)
तब नरिंद[१] जंगलीय कोह कढ्ढिय[२] सुवंक[३] असि। (३)
धर[१] धुम्मिलि[२] धुंधुलीय[३] मनहु वद्दल[४] दुतीय[५] ससि। (४)
अरि[१] अरुण रत्त[२] कउतिग*[३] कलह[४] भयउ*[५] न भवह[६] भितंस[७] भर। (५)
सामंतन घट[१] तेरह परिग नृपति सुपट्टिय[२] पंच सर[३]॥ (६)

अर्थ—(१) सूर्य मध्याह्न में चढ़ा तो पंग (जयचंद) ने [पृथ्वीराज को] पकड़ने की प्रतिज्ञा की। (२) खुरों से [उड़ी हुई] धूल आकाश से मिल रही थी, और श्रवणों से यही सुन पड़ता था—'लिया, लिया'। (३) तब जंगली नरेंद्र (जंगली राय) ने क्रोध-पूर्वक बाँकी तलवार निकाल ली। (४) धूमिल और धुँधली धरा पर [वह इस प्रकार लगती थी] मानो बादलों में द्वितीया का शशि हो। (५) [इस समय] शत्रु [पक्ष] के अरुण रक्त का कलह कौतुक हुआ, किंतु वह भट भ्रम-भय से भीत (?) नहीं हुआ (६) [पृथ्वीराज के] तेरह सामंत

गिर कर पड़ रहे [सात पहले मारे जा चुके थे—धा० २५६, पाँच फिर मारे गए थे—धा० २८९, एक यह जंगली राय मारा गया], और नृपति (पृथ्वीराज) को भी पाँच बाणों ने विभूषित किया।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. चढ्ढ (=चडउ), धा. उ. स. चढयो, म. फ. चढ्यौ, अ. चढ्यउ, ना. चढ्यौ। २. धा. उ. स. मध्यान्ह।

(२) १. धा. पभिर, अ. फ. षमरि, ना. उ. पुरणि, म. पूरनि, स. छुरनि। २. म. पइ। ३. धा. अ. फ. म. उ. स. मिलिय। ४. धा. म. उ. स. इह सुनिय, अ. फ. इक सुनिय, ना. धुनियैं सु। ५. धा. ली सु लिय, म. अ. फ. लिय सु लिय।

(३) मो. नरेंद (< नरिंद), शेष में 'नरिंद'। २. धा. काढीय, अ कढ्या, फ. कढ्या, ना. म. उ. स. कढ्ढी। ३. धा. चंक (< बंक), उ. स. बंकि।

(४) १. धा. धीर, अ. फ. अरि। २. अ. धमिल्ल, फ. धमिल्लि, म. धुम्मल, उ. स. धूमिल्लि, ना. धुंधिमिलि। ३. धा. धुंधरिम, अ. फ. धुंधरिग, ना. धूमलीय, म. उ. स. धुम्मरिय। ४. धा. दल मंझ, अ. धन मध्य, फ. धन मझि, ना. दल मध्य, म. दल मझ, उ. स. दल मज्झि। ५. अ. फ. द्वितिय, म. दुतिय।

(५) १. अ. अरु, फ. अने। २. फ. अघु रन रन। ३. धा. कौतुक, मो. कुतिग (=कउतिग) अ. फ. कौतुक, ना. म. कौतिग, उ. स. कौतिक। ४. म. कल, ना. उ. स. कलस। ५. मो. भयु (=भयउ), धा. अ. भयो, फ. ना. म. उ. स. भयौ। ६. ना. भयइ, अ. फ. भवइ, म. उ. स. भयइ। ७. मो. भिरंत, फ. भिरंति, शेष में 'भिरंत'।

(६) १. धा. म. उ. स. सामंतनि घट (त्रिघटि–म.), मो. म. सामंत त्रघट, ना. सामंत त्रिघट्टि, अ. फ. सावंत सु (त्रि–अ.) घट। २. धा. मो. सुपठीय (सुपट्टिय–धा.), अ. न लषिहग, फ. लगति, उ. स. सपिट्टिय, म. सपठिय ना. सपट्टीय। ३. मो. ससर, शेष में 'सर'।

टिप्पणी—(१) चढ=चढ़ना। परतंग < प्रतिज्ञा। (३) कोह < क्रोध। (५) कउतिग < कौतुक। (६) घट < घट्ट=गिरना। पट्टिय [दे०]=विभूषित, अलंकृत।

[२९]

दोहरा— संझ सपट्टिय[१] नृपति रण[२] दिय[३] पारस परि[४] कोट। (१)
रहउ[*१] सूर सामंत चकि[२] चाहि[*३] नृपति न[४] चोट॥ (२)

अर्थ—(१) संध्या को [इस प्रकार] अलंकृत नृपति (पृथ्वीराज) ने [शत्रु के] परकोटे के पार्श्व में रण दिया (किया); (२) किंतु उसके शूर सामंत [यह देख कर] चकित रहे कि नृपति (पृथ्वीराज) को चोट नहीं लगी थी।

पाठान्तर—*चिह्नित संशोधित पाठ के है।

(१) १. मो. सपठिय, धा. सपत्तिय, अ. फ. म. संपत्तिय, ना. सपत्ते, में 'सपत्तिय'। २. म. त्रिपति रत, ना. त्रिपति नर। ३. धा. दिय, अ. फ. करि, ना. परि, म. उ. स. दिय। ४. ना. करि म. पर।

(२) १. मो. रहु (=रहउ), अ. फ. रहै, ना. म. उ. स. रहै। २. ना. झुकि। ३. धा. दिखिय, मो. वाहि (< चाहि), अ. फ. दिष्षहि, ना. देह, म. उ. स. देषि। ४. धा. ना. म. उ. स. नृपति तन।

टिप्पणी—(१) संझ < संध्या। पट्टिअ [दे०]=अलंकृत। पारस < पार्श्व। (२) चकि < चकित (१)।

[३०]

कवित्त— निसि[१] नवमी सिरि[२] चंदु हक्क बज्जी[३] चावदिद्दिसि[४] । (१)
भर[१] अभंग सामंत[२] वीर[३] वरषंत[४] मत्त[५] असि ॥ (२)
अजुत जुत्त[१] आवध्य[२] इट्ठ आरंभ सत्त[३] वर[४] । (३)
एक[१] जीव दस घटित[२] तसति[३] ठिल्लइ[४] जुसहस[५] भर[६] । (४)
दिट्ठउ[१] न देव[२] दानव भिरत वूह रत्ति सूरत्त षल[३] । (५)
सामंत सूर[१] सोरह[२] परिग गणयउ* न[३] पंग अभंग[४] दल ॥ (६)

अर्थ—(१) नवमी की निशा में चन्द्रमा सिर पर था जब चारो दिशाओं में हाँक बीज; (२) अभंग (न हटने वाले) भट और सामंत वीर मत्त [होकर] असि-वर्षा कर रहे थे । (३) वे अयुत आयुधों से युक्त होकर श्रेष्ठ सत्य का इष्टारंभ कर रहे थे । (४) एक-एक जीव दस-दस को मारता था, और दस [जीव] सहस्र भरों को ठेल (पिछड़ा) देता था । (५) इस प्रकार भिड़ते हुए देवता और दानव भी नहीं देखे गए थे, वे युद्ध (?) की रति में अनुरक्त होकर स्खलित हो रहे थे । (६) [पृथ्वीराज के] सोलह शूर सामंत गिर गए जिन्होंने पंग (जयचंद) के अभंग (न हटने वाले) दल को गिना नहीं—कुछ नहीं समझा ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. फ. म. निस । २. अ. गत, फ. गति, ना. म. उ. स. सिर । ३. धा. वाजी, ना. वज्जीय । ४. मो. चाविदसि ।

(२) १. म. अ. भिरि, फ. संभरि, ना. मड । २. धा. अ. फ. सावंत, ना. सूरिमा । ३. म. बर, स. वारि । ४. धा. वरषंति । ५. धा. ना. मत्त, मो. अ. फ. ना. मत्त, म. उ. स. मंत्र ।

(३) १. मो. अयुत युत (=अजुत जुत्त), धा. ना. अजुत जुद्ध, अ. फ. सुजुद्ध जुद्ध, म. उ. स. अयुत जुद्ध । २. ना. आवंत, म. आयुध, फ. आउध । ३. म. अ. फ. ना. सत्ति । ४. म. वत ।

(४) १. धा. अ. फ. ना. इक्क । २. ना. घटति म. घटि । ३. धा. अ. फ. त । ४. मो. ठिल्लि (=ठिलइ), धा. ठिल्लहि, अ. ठिल्लइ, फ. ठिल्लैं, ना. लंहि म. छैलै (< ठेलै) । ५. धा. सहस, अ. फ सहस्स, उ. स. सु सहस, म. सुसह, ना. जुत्त सथ्थ । ६. म. सत ।

(५) १. धा. दिट्ठउ, मो. दिषो (< दिषु ?), अ. दिष्षो, ना. फ. दिष्यौ, म. उ. स. दिठे (दिठे—म.) । २. फ. देउ । ३. धा. सुहर रत्त रत तिय सुपल, मो. युहरती सुरत पल, अ. फ. सुहर रित्त तिय (वीय—फ.) पियति छल, ना. म. उ. स. जूह रत्त रत्तिय (रत्ते—ना.) सुषल ।

(६) १. ना. सावंत सुभट, अ. फ. सावंत सूर । २. धा. सोलह । ३. धा. अ. फ. गन्यो न, ना. गनौं न मो. गण्यु (=गण्यउ) न, म. मारे । ४. मो. ना. अरंग (< अभंग) ।

टिप्पणी—(३) आवध्य < आयुध । सत्त < सत्य । (५) वूह < युद्ध (?) । खल < स्खलित ।

[३१]

भुजंग प्रयात—भए*[१] राइ[२] दुइ इक्क[३] अंके[४] प्रमानं[५] । (१)
परे सूर सोलह[१] तिने[२] नाम[३] आनं ॥ (२)
परउ*[१] मंडली राय[२] मालंन हंसउ*[३] । (३)
जिने[१] हक्किआ[२] पंग रा[३] सेन गंसउ*[४] ॥× (४)

परउ*१ जावलउ*२ जालु३ सामंत मारे३ ।४ (५)
जिने*१ पारिआ२ पंग पंधार सारे३ ॥ (६)
परउ*१ बागरी२ बाघ३ वाहइ* दु हथ्थो४ । (७)
भिरे१ पंग२ भागइ*३ दुहइ* लग्ग४ वथ्थो५ ॥ (८)
परउ*१ वीर जद्दउ*२ बलीराय३ बांना४ । (९)
जिने*१ नंषिया गयणु२ गज३ दंत दांना४ ॥ (१०)
परउ*१ साहतो साह२ सारंग गाजी३ । (११)
दुहइ*१ सत्त भाषउ२ भलउ*३ हथ्थ माभी४ ॥ (१२)
परउ*१ पावरीय२ रायु३ परिहार राना । (१३)
षुले१ सेर२ पाजे वजे३ पंगु बांना ॥ (१४)
१उपटए२ पंग३ आविधि४ नीरं । (१५)
तिहां१ सांपुला सीह२ भुज पार३ भीरं ॥ (१६)
परउ*१ सिंघली राइ२ सातल्ह३ मोरी । (१७)
लगइ*१ लोह अंगे२ जगी४३ जानि४ होरी ॥ (१८)
भिरइ*१ भोज भाजइ*२ नहीं सार भग्गे३ । (१९)
भिरइ*१ मल्ल माने२ नही लोह लागे३ ॥ (२०)
परउ*१ राय२ भोआल३ उक४ चंद सष्षी५ । (२१)
एकु कुसम नंषि इ२ एकइ३ कित्ति भाषी४ ॥५ (२२)

अर्थ—(१) दोनों राजा एक ही अंक के (बराब) रणप्रमाणित हुए। (२) जो सोलह शूर [पृथ्वीराज-पक्ष के] गिरे उनके नाम [समक्ष] ला रहा हूँ। (३) मालन-हंस मंडली राय गिरा, (४) जिसकी हाँक पंग (जयचंद) की सेना को गाँस (शूल) [जैसी] होती थी। (५) जावला तथा जाल्हु नामक भारी सामंत गिरे, (६) जिन्होंने पंग (जयचंद) के सारे पंधारी सैनिकों को गिरा दिया था। (७) बागरी बाघ [राय] गिरा, जो दोनों हाथों से [तलवार] चलाता था, (८) उससे भिड़ने पर पंग (जयचंद) भाग निकला जब उसको व्यस्त रूप से बाघराव बागरी की दोनों [तलवारों] से घाव लगे। (९) बली राय बाने वाला वीर जादव गिरा, (१०) जिसने गगन में गज दंत दान करते हुए फेंके। (११) शाह शहाबुद्दीन को वश में करने वाला सारंग [राय] तथा गाजी (?) गिरे, (१२) दोनों ने सत्य भाषण किया तथा हाथ में भला (बर्छा ?) लिया। (१३) पावरी राय, और परिहार राणा गिरे, (१४) जिन्होंने खुले शेरों को साजा और जिन [के आक्रमण] से पंग के बानैत भाग गए। (१५) जहाँ पर पंग के (जयचंद) के आयुधों का पानी प्रकट हुआ, (१६) वहाँ सांपुला और सिंह [राय] ने अपनी भुजाओं से उस पर पीड़ा डाली थी. (१७) सिंहली राय तथा सातल्ह मोरी भी गिरे, (१८) जिनके अंगों में [जो रुधिर की] लेला लगी हुई थी, वह ऐसी लगती थी मानो होली [की लालिमा] लगी हो। (१९) भोज [गिरा जो] ऐसा भिड़ा था कि सार (लौह—तलवार) के भग्न होने पर भी नहीं भागता था, (२०) मल्ल [गिरा जो] ऐसा भिड़ा था कि शस्त्रास्त्रों के लगने पर भी मानता नहीं था। (२१) भोआल (भूपाल) राय गिरा, जिसकी साक्षी चंद ने की, (२२) एक चंद ने उस पर कुसुम फेंके और एक ने उसकी कीर्ति कही।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित चरण ना. में नहीं है।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. मो. भइ (=भए), धा. भयौ (< भइ=भय), अ. फ. भई, (< भइ=भए), शेष में 'भए'। २. धा. शरीर, फ. रार, ना. म. उ. स. राय। ३. धा. दुकंक, अ. फ. दुहु कंक, ना. म. उ. स. दुव (दुव–ना.) कंक। ४. धा. मो. अंके, अ. फ. अंक, म. इके, ना. उ. स. इक्कै। ५. ना. म. उ. स. समानं।

(२) १. अ. फ. सोरह। २. धा. तिके, म. उ. स. तिनं, अ. फ. ना. तिनै। ३. म. नांत।

(३) १. मो. परु (=परउ), धा. परे, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. मंडली राउ, अ. मंडली राइ, फ. मंडणे राइ। ३. मो. आलन हंसु (=हंसउ), धा. माल्हन हंसो, अ. फ. ना. म. उ. स. माल्हन (मल्हन–म.) हंसो (हंसौ—ना., माल्हण हंसा–फ.)।

(४) १. धा. जिने, अ. ना. म. उ. स. जिन, फ. जिन, फ. जिना। २. धा. हंकिवा, मो. हाकिआ, म. उ. स. पारिया, अ. फ. हक्किया। ३. म. पंगर। ४. मो. सेन गंसु (=गंसउ), धा. सरवन गंसो, अ. फ. सेन गंसो।

(५) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. मो. जावलु (=जावलउ), धा. जावला, शेष में 'जावलो' या 'जावलौ'। ३. धा. अ. फ. म. उ. स. जाल्ह, म. जल्ह। ४. धा. अ. फ. सावंत (सावंत–फ.) भारो (भारौ–अ. फ.)।

(६) १. मो. जेने (< जिन), धा. जिने, शेष में 'जिने' या 'जिनै'। २. धा. पारिये, अ. फ. पारियौ (पारियो–अ.), म. पारिया, ना. पारीआ। ३. धा. अ. फ. मंधार सारो (सारौ–अ. फ.), म. संधार सारे।

(७) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. बारी, ना. बागुरी, म. बगरी। ३. धा. मो. बाघ, ना. बाघु, अ. फ. बाग, म. राव। ४. धा. दुहत्थं, अ. फ. दुहथ्था, ना. म. उ. स. दुहथ्थं।

(८) १. मो. भिरु (=भिरउ), धा. अ. फ. भिरे, ना. भिरयौ, म. उ. स. भिरै। २. मो. म. पग्ग, धा. अ. फ. पंगु (पंग–अ. फ.)। ३. मो. भागि (=भागइ), धा. अ. फ. भग्गे, ना. भग्गे, उ. स. भग्गौ, म. भग्गै (?)। ४. मो. दुहि (=दुहइ), उभय, धा. अ. फ. भरे हत्थ, ना. म. उ. स. मिल्यौ (मिल्यो–ना.) हथ्थ। ५. धा. वथ्थं, अ. फ. वथ्था, ना. म. उ. स. वथ्थं।

(९) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. ना. जादुवं, धा. जंदा, अ. फ. जद्दो, ना. जदु (=जदउ) म. जादौं, उ. स. जादौं। ३. धा. फ. ना. राउ, अ. म. उ. स. राव। ४. ना. म. उ. स. वानं।

(१०) १. मो. जेने (< जिने), धा. जिने, शेष में 'जिने' या 'जिनै'।। २. धा. फ. नाथिया नैन, अ. नंथिया नैनि, ना. नाथीया गैन। ३. धा. गय, अ. फ. गै। ४. धा. अ. फ. नाना, ना. तानं, म. उ. स. पानं।

(११) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. साइजो सूर, ना. सत्ति सावंत, फ. सत्त साउंत, म. साइतो सार, उ. स. साहितो सार। ३. फ. नाजो।

(१२) १. मो. दुहि (=दुहइ), धा. दुहं, अ. फ. दुहू, ना. म. उ. स. दुहुं। २. धा. अ. फ. सथ्थ भष्यो, ना. म. उ. स. सथ्थ भष्यो (भष्यौ–म. ना.)। ३. मो. भलु (=भलउ), धा. भले, शेष में 'भलो' या 'भलौ'। ४. म. उ. स. माजी।

(१३) १. मो. पर (< परु?)। धा. पर्यो शेष में 'पर्यो' या पर्यौ'। २. ना. म. उ. स. पद्धरी। ३. धा. अ. फ. ना. राउ, म. उ. स. राव।

(१४) १. अ. पुळै। २. धा. सेल, मो. सेर, ना. सैल, शेष में 'सेल'। ३. धा. सारंग ले, अ. फ. साळै पुले, ना. सज्जै पुळै, म. उ. स. साजै पुलै (पुलै–उ. स.)।

(१५) १. धा. जवे, अ. फ. म. उ. स. जवै, म. जवं। २. धा. उप्पटे, अ. फ. ना. उप्पटै, म. उप्पट्यौ,

उ. स. उप्पटो । ३. धा. पंग (< पंग) । ४. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. आवद्ध ।

(१६) १. धा. अ. फ. तहां, ना. उ. स. तवं । २. फ. साहि । ३. मो. पाळ, धा. अ. फ. पारि, ना. म. उ. स. भानि (भांन-म.) ।

(१७) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्‌यो, शेष में 'पर्‌यो' या 'पर्‌यौ' । २. धा. सींघ सिंघास, अ. फ. सिंघळी सिंघ, ना. म. उ. स. सिंधु आ सिंधु । ३. धा. सादूर फ. सादिह्ल, म. उ. स. सादह्ल, ना. सादूल ।

(१८) १. मो. लगि (=लगइ), धा. जग्गो, अ. फ. ना. लग्गौ, म. उ. स. लगे। २. धा. अ. फ. लोह अग्गौ, ना. म. उ. स. लोह अगं । ३. धा. लग्गौ, म. उ. स. लग्गौ । ४ धा. ना. जानु ।

(१९) १. मो. मरो (< मरि=मरइ), धा. अ. फ. मिर्‌यो, म. मिरे, ना. उ. स. मिरें । २. मो. भाजि (=भाजइ), धा. भग्गो, अ. फ. भग्गै, म. भग्ग' उ. स. भग्गं, ना. भग्गौ । ३. मो. सारि भागि (=भाग), धा. सार जग्गे, म. अ. फ. सार भग्गे, उ. स. सार भग्गं, ना. सार भग्गौ ।

(२०) १. मो. परि (=परइ), धा. डर्‌यो, अ. फ. जुर्‌यो, ना. धर्‌यौ, म. उ. स. पर्‌यौ । २. धा. पंग मानो, अ. फ. मल्ल हल्लै, म. उ. स. मल्ह (माल-म.), मानो (मनौं-म.) ना. मल्ल मन्नु (=मन्नउ) । ३. मो. लोह लागे, धा. जूर लग्गो, म. उ. स. अ. फ. जूह लग्गो, ना. जूह लग्गौ ।

(२१) १. मो. परु (=परउ) धा. पर्‌यो, शेष में 'पर्‌यो' या 'पर्‌यौ' । २. धा. अ. फ. ना. राउ, म. उ. स. राव । ३. मो. भोआल, धा. ना. उ. स. फ. भ्रहा, ना. म. भौंहा, अ. लोहा । ४. मो. उक, धा. उनो, अ. जुलें, फ. उभौ, ना. म. उ. स. उभै । ५. धा. अ. फ. सष्पं, शेष में 'साषी' ।

(२२) १. धा. म. इके, अ. फ. ना. उ. स. इकै । २. मो. कुसम नांषाइ (< नांषिइ=नांषेइ), धा. कुसुम नखो, अ. फ. कुसुम नंषी, म. उ. स. कुसम नंषै (नंषे-म.), ना. कुस्स नंषे । ३. मो. एकि (=एकइ), शेष में 'इके' या 'इकै' । ४. मो. किति माषी, धा. अ. फ. किति भष्षी, शेष में 'कित्ति माषी' । ५. यहाँ धा. मो. को छोड़कर सभी में और है :

जिसी भारथं षोड़िनि दस अठ्ठ होमी । चैत सुदि रारि निसि एक नौमी ।

टिप्पणी—(८) खग्ग < खड्ग । वथ्थ < व्यस्त=अलग-अलग । (११) साह् < साध्=वश में करना । (१४) सेर < सेल । वज < व्रज्=जाना । (१५) आविधि < आयुध । (१९) भग्ग < भग्न=टूटा । (२१) भोआल < भूपाल । उक < उक्क < उक्त=कथित । साखी < साक्षी । (२२) नांष < नंख < नश्=गिराना । कित्ति < कीर्त्ति ।

८. पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध (उत्तरार्द्ध)

[१]

कवित— मिलै[१] सब्ब सामंत बोलु[२] मग्गहि[३] त नरेसर[४] । (१)
अप्प[१] मग्ग लग्गिअइ[२] मग्ग रष्षिइ[३] ति इक भर[४] । (२)
एक एक[१] झूझंति[२] दंति दंती[३] ढंढोरइ*[४] । (३)
जिके[१] पंग राय[२] भिच्च*[३] मारि[४] मारि कइ*[५] मोरइ*[६] । (४)
हए बोल[१] रहइ* कलि[२] अंतरि[४] देहि[५] स्वामि पारथिअइ* । । (५)
अरि असीइ[२] लष को[२] अंगमइ*[३] परखि[४] राय[५] सारथिअइ*[६] ॥ (६)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के] सब सामंत मिले और तदनंतर वे नरेश्वर पृथ्वीराज से यह वचन माँगने लगे, (२) "आप [दिल्ली के] मार्ग लगें और [उसके] मार्ग की रक्षा एक [एक] भट करे। (३) एक-एक [भट] जूझते-जूझते दंतियों के दाँत खींच निकाले (४) और जो भी पंगराज (जयचंद) के भृत्य हों, उनको मार-मार कर मोड़ दे—युद्ध स्थल से भगा दे। (५) हमारा यह वचन रह जाए कि कलह के अंतर-से कलह से दूर रखते हुए—हम स्वामी को पार स्थिति देंगे, (६) अन्यथा अस्सी लाख शत्रु [सेना] को कौन अंगवेगा—झेवेगा, हे राजा आप सार स्थिति का परिणय कीजिए—वास्तविक स्थिति को स्वीकार कीजिए।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. मेलि, म. उ. स. मिलिए। २. धा. बो[illegible], ना. म. बोलि। ३. मो. मांगिहि, धा. अ. फ. मंगहि (=मग्गहि), म. मांगहि, ना. मग्गहि। ४. धा. फ. ति नरेसुर, अ. उ. स. ति नरेसर, म. त नरेसवर।

(२) १. मो. आप, धा. अप्पु, म. अ. फ. ना. अप्प। २. मो. लगीइ (=लगिअइ), धा. लग्गियइ, अ. फ. ना. म. उ. स. लग्गियै। ३. ध. अ. रक्खहि, फ. रेष, म. उ. स. रष्षै, ना. रष्षीयै। ४. धा. अ. फ. सु महा भर, म. स. इक इक (इक—स.) उ. इकक भर, ना. त इक भर।

(३) १. अ. फ. म. ना. उ. स. इक इक। २. धा. अ. ना. म. स. झुझंत। ३. धा. दंत दंती, अ. फ. दाँत दंतिय, ना. दंति दंतिनि, उ. स. दंति दंतन; म. दंत दंतनि। ४. मो. ढंढोरि (=ढंढोरइ), धा. ढंढोरे, अ. फ. म. ना. उ. स. ढंढोरहि।

(४) १. धा. जिते, मो. झे (' जि) के, अ. फ. जितै; म. उ. स. जिके, ना. जिगे। २. मो. राय शेष में 'रा'। ३. मो. भीछ (< भीच); ना. भिच (= भिच्च), फ. भीच, धा. अ. उ. स. मीछ, म. भिग। ४. म. ते मारि, ना. मारु। ५. मो. मारि कि (=कइ), धा. मारिम्मुड्ड, अ. मारि कर, फ. मारि करि, ना. मार करि, उ. स. सारिन मुष, म. सारन मुष। ६. मो. मोरि (=मोरइ), धा. मोरे; अ. फ. म. उ. स. मोरहि।

(५) १. अ. फ. ना. बोलि । २. मो. रिहि (< रहइ), शेष में 'रहै' । ३. स. कल । ४. मो. अंतरि, धा. म. उ. स. अंतरे, अ. फ. स. अंतरं । ५. अ. फ. देह । ६. मो. पारथीइ (=पारथिअइ), धा. ना. म. उ. स. पारस्थियै, अ. फ. पारस्थियो ।

(६) १. मो. असीर, शेष में 'असी' । २. अ. कुण, फ. कुण, फ. कुन, स. की । ३. मो. अंगमि (= अंगमइ), शेष में 'अंगम' । ४. धा. परिणि, फ. परिन, ना. म. उ. स. बिना । ५. धा. राइ । ६. मो. सारथीइ (=सारथिअइ), धा. ना. म. उ. स. सारथ्थियै, अ. फ. सारथ्थियो ।

टिप्पणी— (१) नरेसर < नरेश्वर । मग्ग < मार्गय्=माँगना । (२) मग्ग < मार्ग । (४) मीच > भिच्च < भृत्य । (५), (६) थिअइ < स्थिति (?) ।

[२]

कवित्त— मति घट्टी[१] सामंत[२] मरण हउ*[३] मोहि[४] दिखावहु[५] । (१)
जम[१] चीठी[२] विणु[३] कदन*[४] होइ जउ* तुमउ* बतावहु[५] । (२)
तुम गंजउ*[१] भर भीम तास+ गव्वह[२] मयमत्ता[३] । (३)
मइ*[१] गोरी साहब्बदीन[२] सरवर[३] साहता[४] । (४)
सुहि सरणहि[१] हींदू तुरक तिह[३] सरणागत[४] तुम[५] करहु[६] । (५)
बूझिअइ*[१] न° सूर सामंत हो[२] इतउ*[३] बोझ[४] अप्पन धरहु[५] । (६)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा], "हे सामंतो, तुम्हारी मति घट गई है जो [रण] भूमि में मरने का हउवा तुम मुझे दिखा रहे हो । (२) यदि यम की चिट्ठी के बिना कदन (नाश) होता हो, तो तुम्हीं बताओ । (३) तुमने भट भीम [चौलुक्य] का नाश किया और उसी गर्व में तुम मदमत्त हो गए हो (४) मैंने भी गोरी शहाबदीन को सरवर (सारोले ?) में साधा (वश में किया) है । (५) मेरी शरण में हिन्दू तुर्क [दोनों] हैं और उसी मुझको तुम शरणागत कर रहे हो । (६) तुम शूर सामंत होकर भी समझ नहीं रहे हो, अपना इतना बड़ा बोझ (अहसान) तुम [अपने पास] रक्खो ।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
+चिह्नित शब्द फ. में नहीं है ।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

(१) धा. अ. ना. घट्टिय, फ. घट्टय । २. अ. सावंत, फ. सावंत । ३. मो. मरण हु (=हउ), धा. मरण भय, शेष में मरन 'भय' । ४. मो. भूमि, शेष में 'मोहि' । ५. धा. दिषायो, अ. दिष्षायउ, फ. दिष्षायौ, ना. सुनावहु ।

(२) १. मो. धा. म. जिम, शेष में 'जम' । २. धा. अ. चिट्ठिय, फ. चिट्ठय, म. चिटी, ना. स. चिट्ठी । ३. मो. बिर, धा. विणु, ना. बिनु, शेष में 'बिन' । ४. धा. म. उ. स. कहन, ना. मरन, अ. फ. होइ । ५. धा. होइ के मोहि करायो, अ. फ. कहन (कहिन–फ.) क्यों तुमहि सुहायउ (सुहायौ–फ.) म. उ. स. होइ (होइ–म) सो मोहि बतावहु, ना. होइ तौ मोहि दिखावहु ।

(३) १, मो. तुम गजु (=गजउ), धा. तुन गज्जुर, अ. तुम गज्या, ना. तुम्ह गंज्यौ, शेष में 'तुम गंज्यौ' । २. धा. गेरव, म. गवह । ३. धा. उ. स. मैं मंतो, म. मैं मत्तो, ना. मय मंतौ, अ. फ. मय मत्तउ ।

(४) १. मो. मि (=मइ) शेष में 'मैं' या 'मैं' । २. धा. बगोरि साहिब्ब साहि, अ. फ. म. ना. उ.

[illegible] सामंतौ (साहतो-म.) ।

(५) १. धा. मो. सरण सरण, अ. फ. मो. चरन सरन, ना. मोहि शरण, म. उ. स. मेरैं (मेरैं-म) ज (जु-उ. म.) सुरनर (सरनि-म.) । २. मो. हींदू तरक, फ. हिंदू तुरक, अ. हिंदुव तुरक, ना. हींदू तुरक । ३. मो. तिहि, शेष में 'तिहि' । ४. अ. सरनअगति, फ. सानगति । ५. ना. तुम्ह । ६. मो. करह, धा. करो, शेष में 'करहु' ।

(६) १. मो. बूझीइ (=बूझिअइ), फ. ना. म. बूझीयै, अ. बुझिय । २. धा. हुइ, फ. हु, ना. तुम, म. हौ । ३. मो. हतु (=हतउ), अ. फ. म. हतौ, ना. में शब्द छूटा है । ४. मो. बूझ, ना.–झ, शेष में 'बोझ' (बौझ-म.) । ५. धा. धरो, मो. धरइ, म. रहु, शेष में 'धरहु' ।

टिप्पणी—(१) हव < भय । (२) जम < यम । (३) गव्व < गर्व । मयमत्त < मदमत्तो । (४) साह < साध्=वश में करना । (६) बूझ < बुद्धि [यथा 'सूझ-बूझ' में] ।

[३]

कवित— वन रष्षइ* जउ*[1] सधु विंझ[2] वन रष्षइ[3]* सिंघहि[4] । (१)
धर[1] रष्षइ ति भुअंग[2] धरणि[3] रष्षइ त भुअंगहि[4]* । (२)
कुल रष्षइ[1] कुल वधू वधू रष्षइति[2] अप्प[3] कुल । (३)
जल रष्षइ जउ*[1] हेम हेम रष्षइ* त[2] सब्बु जलु । (४)
अवतारह जब लगि जीवनउ*[1] मरन जीवन जम आवतह[2] । (५)
रावत° कइ*° स°रय° रष्षनउ*°[1] राउत रष्षइ* राय कहँ[2] ॥ (६)

अर्थ—(१) [सामंतों ने कहा,] "यदि सिंह वन की रक्षा करता है, तो विंध्य वन भी सिंह की रक्षा करता है; (२) धरा को भुजंग (शेष) रक्षा करता है, तो धरणी भी भुजंग (शेष) की रक्षा करती है; (३) कुल कुल-वधू की रक्षा करता है, तो वधू भी अपने कुल की रक्षा करती है, (४) जल हिम को [ओले के रूप में] रखता है, तो हिम भी समस्त जल की रक्षा करता है । (५) जब तक [के लिए] अवतार (जन्म) है, तब तक जीवन भी है; उसी प्रकार मरण तब होता है जब जीवन में यम का आगमन होता है । (६) रावत की कभी राजा रक्षा करता है, तो रावत भी राजा की रक्षा करता है ।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

(१) मो. वन रषि (=रषइ) जु (=जउ), धा. थान रहे ते, अ. फ. ना. वन रष्षै जौ, म. वन रष्षौ जे, उ. स. वन राषे ज्यौं । २. धा. वींह, अ. वींझ, फ. वींझ, ना. मँझ । ३. मो. रषि (=रषइ) धा. रक्खँ, अ. फ. ना. रष्षहि, म. उ. स. राषहि । ४. मो. सींघहि, धा. ना. सिंघह, स. सिंघह ।

(२) १. फ. धइ । २. मो. रषि (=रषइ) ति भुअंग, धा. रक्खे जु भुवंग, अ. फ. रष्षइत भुजंग, ना. रष्षे जु भुजंग, म. उ. स. राषे यौ भुअंग (भुयंग-म.) । ३. फ. धरनँ । ४. मो. रषि (=रषइ) त भुयंगहि, धा. रक्खँ जु भुअंगह, अ. रष्षइत भुजंगहि, फ. रष्षहि तौ भुयंगहि, ना. रष्षे तो भुजंगह, म. उ. स. रष्षंति भुअंगह (भुयंगह-म.) ।

(३) १. मो. रष्षति, धा. रक्खे, अ. फ. रष्षइ, म. ना. उ. स. रष्षे । २. मो. रषित, धा. रक्खे जु, अ. रष्षइति, फ. रष्षइत म. रष्षंति, ना. रष्षै तु । ३. अ. अप्पु ।

(४) १. मो. रषि जु (=रषइ जउ), धा. रक्खे जो, अ. फ. रष्षइ जौ, ना. रष्षे जो म. उ. स. रष्षँ ज्यौं (ज्युं–म.)। २. मो. (रषि=रषइ) त, धा. रक्खै तु, अ. फ. रष्षइति (त–फ.), ना. रष्षँ तौ, म. उ. स. रष्षैति।

(५) १. मो. अवतारह जब लगि जीवनु (=जीवनउ), धा. अ. फ. आव रहै तब लग (लगि–अ.) जियन (फ. में 'जियन' शब्द नहीं है), ना. म. उ. स. अवतार जवहि लगि जीवनौ। २. धा. जिवन जम्मु साजुत रहै, मो. मरन जीवन जम आव सइ (?), अ. जियन जंम आव तहं, फ. जीवन यम आउ तहं, ना. जीवन जम सह आवसइ, म. उ. स. जियन जम्म सब आवतइ।

(६) १. मो. रावत कै (< कइ) सरय पनु (=पनउ), अ. फ. रावत रष्षँ राइ जौ, ना. रावत्त जेम रारष्षनै, म. उ. स. रावत्त तेह रा (राव–म.) रष्पनौं। २. मो. राउत रष्षइ राय कहं, २. धा. रखत रक्खहि राव तिह, अ. रखत रावत्त रष्षँ राइ कहं, फ. रषत रष्षँ राइ कहं, स. राजन रष्षहि राव तह, ना. राइ ज रष्षे राव तह।

टिप्पणी—(५) तह < तथा=उसी प्रकार। (६) रावत < राजपुत्र। कह < कदा=कभी। रय < राजा।

[४]

कवित्त— तै* राषउ*[1] हिंदुआन[2] गंजि[3] गोरी गाहंतउ*[4]। (१)
तै राषउ*[1] जालोर[2] चंपि चालुक चाहंतउ*[3]। (२)
तै राषउ*[1] पंगुरउ*[2] भीम भट्टी दइ* मथ्थउ*[3]। (३)
तै राषउ*[1] रणथंभ[2] राय जादव[3] सइ हथ्थउ*[4]। (४)
इह[1] मरण किति राय[2] पंग की जियन किति रा[3] जंगली। (५)
पहु परणि[1] जाय[2] दिल्लिय लगइ*[3] होइ[4] घरिघरि[5] मंगली॥ (६)

अर्थ—(१) [सामंतों ने कहा,] "[हे पृथ्वीराज] तू ने गाहन करते हुए—पैठते हुए—गोरी [शहाबुद्दीन] को नष्ट करके हिंदुओं की रक्षा की; (२) तूने चाहते हुए—[विजय की] आकांक्षा करते हुए—चालुक्य [भीम] का दमन कर जालोर की रक्षा की; (३) तूने भीम भट्टी को मथ्था (हार ?) देकर पंगुर (?) की रक्षा की, (४) तूने यादवराज के हाथ से रणस्तंभ (रणथंभौर) की रक्षा की। (५) [यह युद्ध] पंगराज की मरण-कीर्ति और जांगल राज (पृथ्वीराज) की जीवन-कीर्ति का है। (६) प्रभु [संयोगिता का] परिणय करके दिल्ली जा लगे और घर-घर मंगल हो, [हम सब की यही कामना है]।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. ति राषु (= तै राषउ), धा. तै रक्खे, अ. फ. तैं रष्षयो, म. तें रष्यौ, ना. उ. स. तें (ते–ना.) रष्यौ। २. धा. हिंदुवाण, म. फ. ना. हिंदवान। ३. मो. गंज, शेष में 'गंजि'। ४. मो. गाहंतु (=गाहंतउ), धा. गाहंतो, शेष में 'गाहंतौ'।

(२) १. मो. तै राषु (=राषउ), धा. तैं रक्खे, म. अ. फ. तैं रष्यौ, ना. उ. स. तें (ते–ना.) रष्यौ। २. ना. जालोरि। ३. मो. चाहंतु (=चाहंतउ) धा. साहंतो, फ. षाहंतौ, अ. म. ना. चाहंतौ।

(३) १. मो. तै राषु (=राषउ), धा. तै रक्ख्यो, म. अ. फ. ना. तैं रष्यौ, उ. स. तें रष्यौ। २. मो. पगुरु (=पगुरउ), धा. पंगुकिय, अ. पंगुर्यौ, फ. पंमलौ, ना. म. उ. स. पंगुरौ। ३. मो. भटी दि मथु (=दइ मथउ), धा. भट्टिय दे मत्थं, अ. ना. म. उ. स. भट्टी दै मथ्थं (मथ्थे–म.). फ. भट्टी नैं मंथौ।

(४) मा त रायु (=रायउ) धा त र९ ७ अ फ म ना न र श ौ उ स त रयौ २ धा म.
रिनथभु । ३ मो जादव धा इदो ना ।_(नादउ), म. जदव, उ. स. जदों । ४. मो. सि हिथु
(=सइ हिथउ), धा. म, सें हत्थै, अ. फ. सौं हत्थै, ना. उ. स. सें हत्थैं ।

(५) १. धा. उ. स. इह्नि, म. ना, इह, अ. फ. यह । २. धा, कीरती, अ. फ. हित्ति राइ, म. ना,
उ. स. कित्तिरा । ३. धा. मा. ना. उ. म. रा, अ. फ. राइ, म. रय ।

(६) १. धा. अ. म. उ. स. पहु परनि, मो. पुहु सरणि, फ. यो परन । २. धा. म. जाइ, मो. जाय,
अ. फ. ना. जाइ, स. जाई । ३. मो. लगि (=लगइ), धा. लगै, स. लगै, शेष में 'लगै' । ४. धा. जु होइ,
म. तौ होय । ५. धा. घरे घर, ना. घरावर ।

[५]

कवित्त— सूर मरण मंगली स्याल[१] मंगल घरि[२] आए*[३] । (१)
वाय मग्ग[१] मंगली[२] धरणि[३] मंगल जल पाए*[४] । (२)
कृपन[१] लोभ मंगली दानि[२] मंगल कछु दिन्नइ×[३] । (३)
सत×[१] मंगल× साहसिइ×[२] मंगल× मंगन×[३] कछु×[४] लिन्नइ[५] । (४)
मंगल वार हइ* मरन कौ[१] तें[२] पति सत्थइ*[३] तन खंडिअइ । (५)
पेत चढि[१] युद्ध कम धज्ज सउं[२] मरन सनम्मुप[३] मंडिअइ[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "शूर मरने में मंगली होता है—मंगल प्राप्त करता है, और स्याल (कायर) का मंगल [युद्ध से भाग कर] घर आने में होता है; (२) वायु मार्ग प्राप्त करने में मंगली होता है—मंगल प्राप्त करता है, और धरणी का मंगल [मेघ से] जल पाने पर होता है; (३) कृपण लोभ में मंगली होता है—मंगल प्राप्त करता है, और दानी का मंगल कुछ देने पर होता है; (४) साहसी का मंगल सत (सत्त्र-प्रयोग) में होता है, और मंगन का मंगल कुछ लेने (पाने) पर होता है । (५) मंगल का द्वार मरण से होकर है, इसलिए पति (स्वामी) के साथ तन (शरीर) को कटाइए; (६) रण क्षेत्र में पहुँच कर कमधुज्ज (जयचंद) से युद्ध कीजिए और सन्मुख मरण माँडिए ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
× चिह्नित शब्द म. में नहीं है ।

(१) १. धा. म. सार, अ. फ. स्यार । २. मो. मंगल वर, धा. मंगली ग्रिह, ना. मंगल घरि, फ.
मरनधर । ३. मो. आइ (=आए), धा. आये, अ. धा. आयै, ना. स. आयैं, म. उ. आयौ ।

(२) १. धा. वार मंगल, अ. फ. वाइ मंगली, म. वाय मंगल, ना. उ. स. वाइ मेव । २. मो. मंगल
म. मंगलीय, शेष में मंगली । ४. मो. पाइ (=पाए), धा. पाये, अ. फ. पायै, ना. उ. स. पायै, म. पायौ ।

(३) १. धा. क्रिपण, फ. क्रपिन, ना. कृपण, स. क्रपन । २. धा. दान, मो. अ. फ. म. स. दान,
उ. दानि । ३. मो. दिनि (=दिनइ), धा. दीनइ, ना. दिन्ने, उ. स. दिन्नै, फ. दीनै ।

(४) १, मो. शत, धा. सत, फ. मत । २, धा. आहिसइ, अ. फ. साहस्स, ना. उ. स. साहसीय ।
३. मो. मंगलल मगन, धा. अ. फ. मंग मंगल, ना. मंगिन मंगल, स. मँगन मगल, उ. मगन मंगल । ५. फ.
कुछ । ६. धा. लीनइ, मो. लिनि (=लिनइ), अ. फ. म. लिनै, ना. उ. स. लिन्नै ।

(५) मो. मंगल वार हि (= हर) मरन की, धा. मंगली जु वार होइ मरण की, अ. फ. वार है
मंगलो मरन कोय, न. ना. उ. स. मंगलो वार हो (है–म. ना.) मरन की (काय–ना.) । २. धा. अ. फ. मैं

नहीं है, म. उ. स. जौ। ३. मो. सथि (=सथइ), धा. अ. फ. ना. सत्थैं, उ. स. सथह, म. सथतन। ४. मो. षंडीय (=षंडियइ), धा. षंडियइ, अ. फ. म. उ. स. षंडिये, ना. छंडिये।

(६) १. मो. ना. पेत चढि (=चढइ), धा. अ. षित चढ़ि, फ. षिति चढ़ि, ना. षेतचढि, म. उ. स. चढि षेत। २. मो. सुध, कमधज स. (=सउ), धा. राइ राठौर सह, अ. फ. ना. राइ कमधुज्ज सौ, ना. कमधुज राइ सुं (=सउ), म. उ. स. राइ (राय-म.) पहुपंग सौं (सौं-म.)। ३. मो. मवसुष, शेष में 'सनमुष'। ४. मो. मंडीय (=मंडिअइ), धा. मंडिअइ, अ. फ. म. ना. उ. स. मंडिये।

टिप्पणी—(१) स्याल < सृगा। (२) मग्ग < मार्ग। (५) वार < द्वार।

[६]

कवित— मरण[१] दीजइ पृथिराज[२] हसहि[३] छत्र[४] करि[५] पइठउ[*६]। (१)
मीच लग्ग निय[१] पायि[*२] कहइ[*३] आइ घरि[५] बइठउ[*६]। (२)
पंच घट्टि सौ[१] कोस कहइ[२] ढिल्लिय[३] यस[४] कथ्थउ[५]। (३)
इक्कु इक्कु[१] सूरवा[२] पेषि दल वाहत[३] नथ्थउ[४]। (४)
घर घरणि परणि राउ[१] पंगुकी[२] पहुचइ[*३] यह[४] वड्डत्तणउ[*५]। (५)
जब लगि[१] गंग जल[२] चंद रवि तब लगि चलइ[*३] कवित्तणउ[*४]॥ (६)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "हे पृथ्वीराज, यदि क्षत्रिय को मरण दीजिए, तो वह उसमें प्रवेश करके हँसता है। (२) मृत्यु को अपने पास पाकर वह कहता है, 'आकर घर में बैठो।' (३) सौ में पाँच कोस कम दिल्ली है, ऐसा कथन लोग कहते हैं। (४) एक एक शूर [रण में] न्यस्त (स्थापित) हो कर [शस्त्र] चलाते हुए [शत्रु] दल को देखे। (५) पंगराज (जयचंद) की [कन्या] को घर-घरनी (पत्नी) के रूप में वरण करके दिल्ली पहुँचा जाए, यही बड़प्पन है। (६) जब तक गंगा में जल और चन्द्र-रवि रहेंगे, तब तक [इस विषय का] कवित्व चलता रहेगा।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. मरण, फ. मरन। २. मो. दीजि (=दीजइ) प्रथिराज, धा. दिजइ प्रिथिरा[ज], अ. फ. दीयौ प्रथिराज, म. दिजे प्रथिराज, ना. उ. स. दिये प्रिथिराज। ३. धा. हसहि, अ. [फ.] हसै, ना. हसै, म. हसैं, उ. स. हसैं। ४. धा. उ. स. छत्रिय, ना. अ. फ. छत्री, म. छित्रीय। [५.] ना. फ. म. कर। ६. मो. पइठु (=पइठउ), धा. पयठो, अ. पटठे, फ. पैठ, ना. अैठ, म. पिठहि, उ. [स.] पट्ठिहि।

(२) १. म. उ. स. लगीनीय, धा. लग्गयेय, ना. लग नया। २. धा. अ. फ. पाइ मो. पायइ, (<पायि) उ. स. म. ना. पाय। ३. मो. कहि (=कहइ), धा. कहै, अ. फ. कहयो, ना. म. उ. स. कहे (कहै-स.)। ४. मो. मरण मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। ५. मो आइ धरि, धा. धरि [आइ], म. ना. अ. फ. आयो (आयौ-प. फ. ना.) घर। ६. मो. बइठु (=बइठउ), अ. फ. वैठे, म. वि[ठे], ना. वैठे, उ. स. वैठहि।

(३) १. धा. पंच घाट सौ, मो. पाँच घाट सो, अ. फ. पांच घाटि सौ, म. स. पच पंच सौ, [ना.] पंच घट्टि सौ, उ. पंच सौ। २. धा. कहइ, मो. कहि (=कहइ), अ. फ. म. ना. उ. स. कहै। ३. दिल्ली। ४. अ. फ. स। ५. धा. कथ्यइ, म. अ. फ. कथ्थे, उ. स. कथ्थैं।

(४) १ धा इक्क इक्क गा इक्कु कु (इक्क क) अ फ ३ उ स एक २ मा ना सूरवा ना सूरिया म पूरिनां उ सूरवां न स सूरिया। ३. धा. उ. स. पिक्ख वाहते, अ. फ. पिक्खि चाहतौ (चाहै ते—फ.), ना. म. पिक्खि चाहते । ४. मो. नथउ, धा. वस्थइ, अ. फ. म. वथ्थे, ना. वत्थै, उ. स. वथ्थें ।

(५) १. धा. उ. स. परनि रा, अ. फ. परनि राई, म. परिनि रय, ना. परणि राय । २. धा. के । ३. मो. पहुचि (=पहुचइ) धा. पहुचे, शेष में 'पहुचैं'। ४. धा. म. उ. स. इहै, अ. फ. कहा, ना. यहै । ५. मो. वड्डुतणु (=वड्डुतणउ), धा. वडित्तनौ, अ. फ. बडत्तनौं, म. ना. वडप्पनौ, ना. उ. स. बड्प्पनौ ।

(६) १. ना. लगे । २. मो. गल, धा. धर, शेष सभी में 'धर'। ३. मो. चलि (=चलइ), धा. चले, शेष में 'चलै'। ४. मो. कवित्तणु (=कवित्तणउ), धा. अ. फ. कवित्तनो, ना. म. उ. स. कवित्तनौ ।

टिप्पणी—(१) पइट्ठ < प्रविश । (२) मोच < मृत्यु । निज < निज । (४) नथ्थ < न्यस्त=स्थापित । (५) वड्डुत्तण [दे०]= बड़प्पन । (६) कवित्तण < कवित्व ।

[७]

गाथा—मिट्यउ[1] न[2] जाइ कहणो[3] वद[4] कवि चंद सार[5] सा मंतं[6] । (१)*
प्राची हय गय‡ वहणो रहणो[2] गत चिंता नरेंद्र तह[3] ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] "जो कथन मेटा नहीं जा सकता है, कवि चंद वह सार मंत्र कहता है। (२) [दिल्ली की ओर प्रस्थान के लिए यह समय उपयुक्त है जब कि] प्राची (पूर्व दिशा—कन्नौज) के हय, गज, वाहन, रथादि तथा नरेन्द्र (जयचंद) गतचिंता [हो रहे] हैं।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है ।

पाठान्तर—(१) १. मो. मिट्यु (=मिटयउ), धा. अ. फ. मिट्यो, ना. म. मिट्यौग। २. अ. उ. । ३. धा. अ. जाइ कहणो, मो. जाइन कहनो, उ. स. जाइ कहिनो, म. जाय कहनौ, ना. जाइ कहनौं । ४. धा. अ. नटणो, फ. नाहना, ना. कहनो, म. उ. स. कहनौं । ५. धा. ना. म. उ. स. सूर । ६. धा. सावंत ।

(२) १. धा. प्राची हयगय वहणो, अ. फ. प्राची हय गय वहणो (फ. में 'गय' नहीं है), म. उ. स. प्राची क्रम्म (क्रम—म.) विमानं । २. धा. रहणों चित निदावंत, अ. फ. गत चित्त निद्रावंत (नंदाउत—फ.) म. उ. स ना. मानं भावई गतं, ना. गत चित सूर सामंत ।

टिप्पणी—(१) वद < वद् । मंत < मंत्र । (२) रह < रथ । तह < तथा ।

[८]

गाथा— सत भट[1] किरण[2] समूरउ[3] सुरंगो* धरेन[5] जान[6][4] आयेस[7] । (१)*
जोगिनिपुर पति[1] सूरो[2] पारस मिसि[3] पंगु रायेस ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के] सौ भटों ने, जो सुरंग (रंगीन) किरणों के समान थे, कहा और कर से मानो आदेश (नमस्कार) किया; (२) "योगिनीपुर पति (पृथ्वीराज [स्वतः] शूर है, पंग (जयचंद) [अपनी] पारस (पारसीक सेना) के मिस (बलपर) राजेश है।"

पाठान्तर — * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. सम्भु भट, अ. सम भट, फ. सम भट, ना. सल भट, म. उ. स. सितर । २. अ. किरण, फ. म. किरन, ना. करण, उ. स. किरनि । ३. मो. मुमुरु (=सुमुरउ), धा. समूहे, अ. फ. समूहो ना. समूरो, म. उ. स. समूरो । ४. धा. नूरो'''मो. सुरगो अरेन जानि, अ. तुब्बो ओरणि आणि, फ. मुणौ आरेनु आणि, ना. उणि आरेणि सुगन, म. उ. सरे, परनयं (सेन—म.) पंग ।

(२) १. मो. योगिनि (=जोगिनि<पुरपति, धा. अ. फ. जुग्गिनि (जौगिणि—धा.), ना. पुरपति, जुग्गनिपुर पति, म. उ. स. जुग्गिनि नि पति भर । २. धा. सूरे, म. सुतौ । ३. धा. पारस मिसि, मो. ना. पारसौ मिसं, म. उ. स. पारस मिलि अ. फ. पारसपति ।

टिप्पणी—(१) समूरव < समुल्लव < समुत्+लप्=बोलना, कहना । अरेन < करेण । आएस < आदेश । (२) राएस < राजेश ।

[९]

त्रोटक—

परि[१] पंग कटक्क ति[२] घेरि[३] घनं । (१)
दस पंच ति[१] कोस निसान धुनं[२] । (२)
गजराज[१] विराजित[२] मध्य घनं[३] । (३)
जनु[१] वद्दलि[२] अभ्भ[३] सुरंग वनं । (४)
परि पष्षर सार तुरं[१]ग घनं[२] । (५)
जनु[१] हल्लति[×] हेल[×२] समुद्र[×३] अनं[×४] । (६)
वर वद्दरष[*१] बंबरि[२] छत्र तनी[३] ।[×] (७)
बिचि[१] माहीय साहीय[२] सिंघ[३] रनी[४] ।[×] (८)
घर मेह मऊष त पीतपनी[१] ।[×] (९)
दिषि[×१] लज्जति[२] रेनु[३] सरद्द[४] तनी । (१०)
भननंकहि[१] भेरि[२] अनेक[३] सयं[४] । (११)
सहनाइय[१] सीधुअ[२] राग[३] लियं[४] । (१२)
निसि[१] सर्व नृपति[२] अनोनु फिरइ[*४] ।[०] (१३)
जानु[१] भांवरि[२] भानु सुमेर[४] करइ[*५] । (१४)
दल सब्ब[१] संभारि[२] अरसि[३] करी । (१५)
जिन[१] जाय[२] निकस्सि नरिंद[३] अरी । (१६)
गत जांम ति[२] जांम सुपीत परी[२] ।[‡] (१७)
जयजय देव. अयास[१] करी ।[२‡] (१८)
नृप जग्गति सब्ब तुरंग[१] चढे । (१९)
बिनु भान प्रयान नु[२] लोह कढे । (२०)
चहुआन कमान ति[२] कोपि[२] लियं । (२१)
मिलि भउहनि[*] पंषि कसीस[२] दियं । (२२)

सर छुट्टि ति पष्षन सद्द भयउ*[१] (२३)
मद गंध गयदल[१] सूकि[२] गयउ*[१]। (२४)
सर इक्क ति बिध्धति[१] सत्त[२] करी। (२५)
दल देषति नैक* ठुठक परी[१] ॥[२] (२६)

अर्थ—(१) पंग (जयचंद) की कटक [कन्नौज के चारों ओर] सघन घेरा डाले हुए पड़ी है। (२) पन्द्रह कोस तक निसानों (धौंसों) की ध्वनि [व्याप्त हो रही] है। (३) उस वन के मध्य [जयचंद की सेना के] गजराज [इस प्रकार] विराज रहे हैं (४) मानो आकाश में सुरंग (सुंदर) बादलों का वन (=समूह) हो। (५) सार (लोह) की सघन पाषरें जो तुरंगों पर पड़ी हैं [इस प्रकार लगती हैं] (६) मानो हेला से अन्य समुद्र ही हिल रहा हो। (७) वैरखों (ध्वजाओं) और छत्रों की बंबर (तड़क-भड़क) बहुत है (८) और उनके बीच में मानों सिंह की रणस्थली साधित (निष्पादित) है। (९) धरा की धूल [उड़कर] सूर्य की किरणों में [ऐसा] पीलापन ला रही है। (१०) कि उसे देखकर शरद की रजनी भी लज्जित हो जाए। (११) अनेक शत भेरियाँ भननक रही हैं (१२) और शहनाइयाँ सिंधू राग में लिप्त हो रही हैं। (१३) शर्व (काली) निशा में नृपति (जयचंद) की सेनाएँ [इस प्रकार] फिर रही हैं (१४) मानो भानु सुमेरु की भाँवरें भर रहा हो। (१५) समस्त दल को सँभाल (तैयार) कर जयचंद ने एक अरति (बेचैनी) उत्पन्न कर दी है, (१६) जिससे कि उसका शत्रु नरेन्द्र (पृथ्वीराज) निकल कर भाग न जाए। (१७) इस प्रकार तीन प्रहर गत होने पर रात्रि बीत पड़ गई (१८) और देवताओं ने आकाश में [पृथ्वीराज का] 'जय-जय' किया। (१९) नृप (जयचंद) शर्व (काले) तुरंग पर चढ़ा भाग रहा है (२०) और बिना भानु (दिन) के ही सेना के प्रयाण के हेतु बाजाबाजा निकल पड़े हैं। (२१) चहुआन (पृथ्वीराज) ने कुपित होकर कमान (धनुष) लिया (उठाया) (२२) और [उसे] भौंहों से मिलाकर खींचा और [उसे] कशिश दी (तनाव दिया)। (२३) शरों के छूटने से [उनमें लगे हुए] पंखों का शब्द हुआ, (२४) [जिससे] गजेन्द्रों का सुगंधित मद सूख गया। (२५) उसके एक शर ने सात हाथियों को बेध डाला, (२६) यह देखकर जयचंद के दल में नैक (बहुत) ठिठक पड़ गई।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

§चिह्नित शब्द ना. में त्रुटित हैं।

×चिह्नित शब्द और चरण म. में नहीं हैं।

०चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

‡चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. में इसके पूर्व और है :

त्रिप संगिय राज तुषार चढे। कवि चंद जयज्जय राज पढे।

२. फ. कटिकत्ति, उ. स. कटिक्कति, उ. स. कटक्कत। ३. ना. घेर।

(२) १. अ. सि, फ. घि। २. ना. म. उ. स. सुनं।

(३) १. ना. गज—['राज नहीं है'] २. धा. बिराजहि, म. अ. फ. बिराजत, ना. बिराजति। ३. अ. फ, बनं।

(४) १. मो. जन, म. जनौं, शेष में 'जनु'। २. धा. बद्दर, मो. बद्दलि, शेष में 'बद्दल'। ३. मो. धा. अ. फ. अंभ (=अम्भ), ना. म. उ. स. अम्भ। ४. म. इनं, अ. फ. उनं (<वनं ?)।

(५) १. धा. पवग । २. धा. म. उ. स. धनी, ना. धणी, अ. फ. रेन ।

(६) १. म. जनौ । २. धा. फ. हेम । ३. ना. समुद्द । ४. धा. उ. स. अनी, म. ना. फ. तनी, अ. तनं ।

(७) १. मो. विरष (= वइरष), धा. अ. फ. ना. वेरष । २. धा. ना. अ. फ. बंवर, मो. बंधरि । ३. धा. तणी ।

(८) १. धा. अ. फ. बिच, ना. विचि, मो. विरच (?) । २. मो. महीय सहीय, ना. उ. स. माहिय स्याहिय (उ. में 'स्याहिय' नहीं है), अ. फ. माहि सुअस्वह (अच्छहि—फ.) । ३. मो. सिध, अ. फ. हीस, ना. संघ । ४. ना. रणी, अ. फ. घनी ।

(९) १. धा. अ. फ. हरि परिथ (वस-अ.फ.) हिमाउन (हिमावत—अ.) पीत पनी, ना. उ. स. हरि पष्ष हुमा (हम—स., उमा—उ.) उपवीत (अपीन—स., पति पीत—उ.) वनी (पनी—ना. उ.) ।

(१०) १. धा. अ. फ. देखि, स. जनु । २. धा. यलिय, अ. फ. लज्जित, ना. में यह शब्द नहीं है, म. उ. स. लज्जत । ३. अ. रैनि, फ. रेनि, उ. स. रेंनि । ४. फ. सरित; ना. समुद्द ।

(११) १. मो. मननंतहि, धा. भणणंकिय, ना. अ. म. उ. स. मननकहि, फ. घननषहि । २. मो. मेर । ३. धा. अनेग, अ. फ. अनेक । ४. मो. सिर्य ।

(१२) १. मो. सरणार, धा. स्मरण हनि, अ. सहनाइन, फ. सेहनाइन, म. उ. स. सहनाइय, ना. सहनाइनि । २. मो. सीधू, धा. म. उ. स. सिंधुअ, अ. फ. ना. सिंधुव । ३. मो. आग, धा. पूरि । ४. अ. फ. म. उ. स. लयं ।

(१३) १. म. निस, फ. निश । २. ना. अ. सब्ब, फ. संधि, म. उ. स. सब्ब । ३. मो. तिहां नृपति, ना. हि नृप । ४. मो. फेरि (< फिरइ ?) म. फिरै शेष में 'फिरै' ।

(१४) १. धा. ना. म. उ. स. अ. जनु, फ. जानौ । २ धा. भावर, फ. भाउर, ना. भामरि । ३. धा. भाण । ४. धा. सनेर, फ. तुमेर । ५. मो. केरि (<किरइ ?), धा. करयो, फ. करी, स. करै, शेष में 'करै' ।

(१५) १. म. उ. स. सब्ब, फ. सतू । २. मो. संभरि, धा. स्मोरि, ना. सम्हारि । ३. धा. यरक्त, अ. यरत्ति, फ. यरेर, म. उ. स. अरत्ति ।

(१६) १. म. जिनि, मो. इन (< जिन), अ. फ. जिलि, ना. निज । २. धा. ना. जाइ । ३. मो. नरेंद, ध. म. उ. स. ना. नरिंद, ना. अ. फ. विपत्ति ।

(१७) १. ना. त्रि । २. म. करी ।

(१८) १. धा. सय सह अयासतु देव, ना. म. उ. स. जयसह अयासह (अकासह-म.) देव । २. म. उ. स. में यहाँ और है :

> कर चंपि नरिंद संजोगि ग्रही । उपमा चारचारु (वरबारु--म.) सुभट्ट कही ।
> मनों भोर दुआरसि अग्गितपी । कलिका गजराज कमोद झपी ।
> य चंपि रकेवनि बाल चढ़ी । रवि वेलि किधौं गरु काम वढ़ी ।
> तरतोन चमंकत पच्छ दिठी । जु मनो तन भान मयूष उठी ।
> सुष दंपति चंद विराज वरं । उदै अस्त सती रवि रथ्थ परं ।

(१९) १. मो. नृप जागति सवें तुरंग, धा. अ. फ. ना नृप जग्गति (जग्गत--अ., गज्जत--फ., जागति--ना) सब्ब तुरंग, म. उ. स. भर नृप्प सजे (सजै--ना.) सु तुरंग (तरंग--स.) ।

(२०) १. धा. विणु भाणु पयाणहि, अ. फ. बिन भान पयानह, म. उ. स. मनौ भान पयान ति (त--म.), ना. विन भान पयान ति ।

(२१) १. धा. बि । २. मो. केपि, धा. फ. ना. कोप ।

(२२) १. मो. मुंहनि (= मंडहनि), धा. अ. फ. ना. मौहनि, म. सोहन, उ. स. मोहनि । २. ना. पच किसीस ।

(२३) १. धा. सर छुट्टति पंखिण सह भयं, मो. सर छूट ति पंखन सह भयु (= मयव), अ. फ. सब

दथ्थर (लवद धुर क) हत अनत ... ना म द म रुर उठ्ठ त (उठ्ठत—उ स) पष ति (पषसि १) रुद्द मय (रु... ...)

(२४) १. धा. अ. फ. मय ... । २ धा हुक्क, २ धु क. न अ फ ना हुक्क ३ मा गयु (= गयउ), शेष में 'गयं' ।

(२५) १. धा. सर एक स विच्छित, अ. फ. सर विद्दल (विद्धल—फ.) इक्क, म. सर एक सुविधति, उ. स. सर एक सुविद्धल । २. अ. फ. सात ।

(२६) १. मो. दल पिषिति निक (< नेक) ठठु करी, धा. दल लिखियत नयकल ठक्क परी, अ. फ. ना. दल दिष्षत (दिविर्ति- फ.) नैक (नेकु—ना.) ठठुक्क (टट्ठक—फ.) परी, म. उ. स. द ल दिष्षत नेन (नेन—म.) ठठुक्क परी । २. उ. स. में यहाँ और है :

तरवारि (तरवारी—उ.) हजारक ज्यारि परी । प्रथिराज करंत न संक करी ।

इसी प्रकार यहाँ धा. अ. फ. में और है :

जहँ आनद्द सूरन भीर परी । ठिलइ चहुवान तु अप्प वरी ।

किन्तु यह दोनों अतिरिक्त चरण उस उक्ति-शृंखला को भंग करते हैं जो इस छंद के उपर्युक्त अन्तिम चरण तथा आने वाले छंद के प्रथम चरण में है । मो. म. ना. इस प्रक्षेप से मुक्त हैं ।

टिप्पणी—(२) धुन < ध्वनि । (४) वद्दलि < वार्दलिक (?) = छोटे बादल । अम्भ < अभ्र= आकाश (६) जन < अन्य । (८) साहीय < साधित=निष्पादित । (९) मऊष < मयूख । (१०) रेण < रजनी । सय < शत । (१२) लिय < लिप्त । (१३) सर्व < शर्व (१५) अरत्ति < अरति । (१६) अयास < आकाश । (१९) सर्व < शर्व । (२४) पष्ष < पक्ष । सद्द < शब्द शब्द । (२४) गयंद < गजेंद्र । (२६) नेक [न + एक] = बहुत ।

[१०]

भुजंग— ठठके सब सेन नइ*[१] मीर मिल्ले[२] । (१)
विजे सब सेन तिक्के नकरें[१] । (२)
भिर[१] चहुआन राठौर जाल्ले[२] । (३)
देषिअइ*[१] पंगुरे[२] नयनरे लाले[४] ।[५] (४)
कोपियं[१] वीर विकराल[२] पुत्तं । (५)
आवियं जंम हा मार हुत[१] । (६)
संघरे सेन सन्नाह दीहं[१] । (७)
नौमि तिथि घल्लि[१] पृथीराज सीहं[२] । (८)
राजसं तामसं बग[१] प्रगट्टं । (९)
मूकियं सत्व[१] सातुक्क[२] वट्टं[३] । (१०)
सार संपत्त[१] आतप्प रच्छं[२] । (११)
मनउ*[१] आवर्क इंद्र रुद्र निकसं[२] । (१२)
निद्दरहिं[१] ढाल गय[२] मत्त[३] मत्तं । (१३)
उट्ठियं सूर तामंत[१] रत्तं । (१४)
भूमि भर परया पीठ रे सुपंथ । (१५)

अथ्थि[१] बिय हथ्थि[३] प्रथीराज सथ्थं[४] । (१६)
बढे[१] बीर सामंत का बीर[२] रूपं । (१७)
जिसे सयल सद्दूर* संदेश[१] जूपं । (१८)
वढे विग्रा नाखे सु भाखे उदंता[१] ।× (१९)
जिसे अर्क फल फूटतें ही अनंता[१] ।× (२०)
कंपि ते कायर लोह रत्तां[१] । (२१)
जिसे[१] अनिल[२] आरंभ पारंभ[३] पत्तां[४] । (२२)
इसउ*[१] युध्ध अनुध्ध[२] मध्यान हूअं[३] । (२३)
रहे हारि हथ्थं कि जूआरि[१] जूअं[२] ।° (२४)
नामियं असि[१] डिल्ली दिसानं ।§ (२५)
पुट्ठिरे[१] पंगु वज्जे निसानं ।§ (२६)
चंपइ*[१] चाहि[२] चहुआन[३] हरसिंघ[४] नायउ*[५] । (२७)
जिसे[१] सैयल ते[२] सिंघ[३] गजजूथ पायउ*[४] ॥[५] (२८)

अर्थ—(१) सब सैनिक ठिठक गए और अमीर म्लान हो गए। (२) सब सैनिक भाग खड़े हुए और उन्होंने लड़ने से इनकार कर दिया। (३) चहुआन (पृथ्वीराज) ने राठौर (जयचन्द) को चिरकाल तक जलाया—संतप्त किया—था, (४) [इसलिए इस समय] पंग (जयचन्द) के नेत्र लाल दिखाई पड़ रहे थे। (५) वीर विजयपाल का पुत्र (जयचन्द) कुपित हुआ (६) और अपने जन्म (जीवन) को भारहीन करने के लिए द्रुत आया। (७) किन्तु [पृथ्वीराज ने उसके] दीर्घ सैन्य-संग्रह का संहार किया (८) और नवमी तिथि को उस [सैन्य-संग्रह] को पृथ्वीराज सिंह ने [रणस्थल में] डाल दिया। (९) रजस् और तमस् के काव्य वहाँ प्रकट हुए, (१०) सबने सात्विक मार्ग का त्याग कर दिया। (११) उस युद्ध में संप्राप्त सार (शस्त्रास्त्र) आतपत्र (छाते) हो रहे थे, (१२) और [वे आयुध ऐसे लगते थे] मानो इन्द्र और रुद्र ने आयुध निकाले हों। (१३) मत्त गज-मद के निर्झर (?) ढाल रहे थे। (१४) शूर और सामंत लाल हो उठे। (१५) [रण] भूमि में धृष्ठ भट स्वपथ को धारण करने लगे। (१६) पृथ्वीराज के साथी दोनों हाथों में [अस्त्र धारण करने वाले] हो रहे थे। (१७) [उसके] वीर सामंत ऐसे वीर रूप में बढ रहे थे (१८) जैसे वे सब सन्देश (संदेह देवों) के यूप (स्तंभ) के सिरे हों (१९) भानु के उदित होने पर विग्रह (?) के बाने वाले [इस प्रकार] गिरने लगे (२०) जैसे अर्क का फल फूटते ही अनंत [भुवों के रूप में] हो [कर उड़] जाता है। (२१) कायर लोग रक्त लौह (शास्त्रास्त्र) देख कर [इस प्रकार] काँपने लगे (२२) जिस प्रकार अनिल के आरम्भ (वेग से चलने) से पत्तों में हलचल हो जाती है। (२३) मध्याह्न तक इस प्रकार का अनुद्धत (अपरित्यक्त) युद्ध हुआ (२४) [मानो] जुआड़ी जूए में हाथ (दाँव) हार गए हों। (२५) [इसी समय पृथ्वीराज ने] अपना अश्व दिल्ली की दिशा में मोड़ा (२६) और उसकी पीठ पर पंग (जयचंद) के धौंसे बज उठे। (२७) [जयचंद की सेना पर] आक्रमण करने के लिए चाव (उमंग) पूर्वक चहुवान हर सिंह झुक पड़ा (२८), जैसे शैल शिखर से सिंह गजयूथ पाकर टूट पड़ा हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं
§ चिह्नित चरण मो- ना. म- अ- स- में नहीं है।

× चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

(१) १. मो. ठक्के सब सैनि नि (=नइ), धा. ठक्की सैनि सनि, अ. फ. ठुक्कय। सेन सव, म. उ. स. ठुक्के सुसेनं मत्त, ना. ढुक्के सेन मन। २. मो. मिलो, शेष सभी में 'मिल्ले'।

(२) १. मो. विजे हव सेन तिके नकरे, धा. विड्डरिय सेन सव्वे नकल्ले, अ. फ. ना. विडरियं (विड्डरी-ना.) सेन सव्वे (सव्वं-फ. ना.) निकल्ले, म. उ. स. डरं बिड्डुरी सेन सव्वे (सवं-स.) निकल्ले।

(३) १. मो. चिर, धा. वरि, अ. फ. चाइ, म. उ. स. वरं बैर, ना. बेर। २. म. रठौर। ३. मो. जाले, धा. जूरे, अ. फ. रछ, ना. म. स. झल्ले, (झल्लं-स.), उ. हल्ले।

(४) १. मो. देषोइ (=देषिअइ), धा. दिक्खियो, अ. फ. दिक्खियहि, म. उ. स. तबं लक्खियं (लषीयं-म.), ना. दिष्यं। २. धा. पंगरे, अ. ना. म. उ. स. पंगुरा, फ. पिंगुरी। ३. अ. फ. म. उ. स. नेन, ना. नैंन। ४. धा. भरे, अ. फ. म. उ. स. लड्डे (लड्डे-न. उ. स.)। ५. ना. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

> तिनं+ उप्पजी रोस उर अम्म अग्गी। उतं+ निक्करे निपलि कै नेन भग्गी।
> तिनं+ लुचियं नेन दीसं दिनानं। तवं+ चंपियं राजनं चाहुआनं।
> तिनं+ उप्पजी संघ धुनि सिंगिधारं। तिनं+ बज्जियं नद्द नीसान भारं।
> लयं+ लगियं कन्न राजं संजोइं। तिनं+ अप्पियं कत कोवंड जोइं।
> तिने+ सुमरियं चित्त गंध्रव्व सई। उतं+ जोइयं मुष्य सामंत हई।
> वचन्नं सुसदं कवी चंद बोल्यौ। तवं+ भंगियं कन्ह सों सो अबोलं।
> तवें+ लग्गियं मास रायंति रायं। उनं+ देषिय काज कौ जुद्ध चायं।

+ ना. में चिह्नित शब्द नहीं है।

(५) १. धा. कुप्पियो, अ. कप्पियउ, फ. कंपिया, ना. कोपीयं, म. उ. स. तब कोपियं। २. धा. बीर विजैपाल, ना. वी [र] विजैपाल। ३. म. सुत्तं।

(६) १. धा. अवद्दं राइ जम भार दत्तं, अ. फ. आवद्द करहि जमजाल जुत्तं, म. स. तिनं आवधां (आवधं-म) झारि जमजालि दुत्तं, उ. तिनं आवधारि जमजालि दुत्तं, ना. आवधं कार जमजार दुत्तं।

(७) १. धा. संप्परे सेन सह सदाइं, अ. फ. संहर्यौ सेन सनि सो सदोइं, म. उ. स. सब संघरी (संहरे-उ, संघरे-म.) सेन (सैन-म. उ.) संनीह (सीन्नह-म.) दोइं, ना. संघरे सेन सन्नाह दोइं।

(८) १. मो. नौमि तिथि थाल, धा. अ. नौमि तिथि थलह, फ. नौमि तिथि थहि, उ. स. इसौ नौमि तिथि थान, म. इसौ नौमि तिथं, ना. नौमि तिथि थाल। २. धा. प्रिथिराज साइं।

(९) १. मो. राजसं तामसे वग, धा. राजस तामसं वेगं, अ. फ. राजसं तामसं वेदं (वे-अ.), म. उ. स. तिनं राजसं तामसं बे, ना. राजसं तान सव्वे।

(१०) १. धा. मुक्कियं एक, अ. फ. मुक्कियं इक, ना. मुक्कीयं सव्व, म. उ. स. भरं मुक्कियं सव्व। २. धा. सानुक, म. सापुक। ३. स. बहं।

(११) १. फ. सार संपत्ति, म. उ. स. सरं सार संपत्ति (संपत्त-म. उ.)। २. धा. ना. पत्ते तिरत्थं; म अ. फ. पत्तेति रच्छ, उ. स. पेतित्ति रच्छ।

(१२) १. मो. मनइ, धा. उ. स. मनो, ना. मनुं (=नइ), म. अ. फ. मनौं। २. धा आवद्ध रुद्र इंद्राति कत्थं, अ. फ. आवर (आउद्ध-फ.) रुद्र इंद्रानि कछ्छं, ना. आवधं रुद्रानि कत्थं, म. उ. स. आवधं इंद्र रुद्रानि (रुद्रनि-उ., रुद्रान-म.) कच्छं।

(१३) १. धा. मो. निहंरहि, अ फ. ना. निड्डरइ (निड्डरं-फ), म. निटरहि, उ. स. वरं निड्डरौ। २. फ. में यह शब्द नहीं है। ३. अ. फ. मंत, ना. म. उ. पत्त, स. पत्ति।

(१४) १. धा. पुट्ठि सावंत सामित्त, अ. फ. पुट्ठि सामंत सीमंत, ना. उड्डियं सूर सामंत, म. उ.

स सबै छुयं सूर सामंत।

(१५) १. धा. फ. भूमि (भौमि-फ.) भारथ्थि (भारथ—अ. फ.) दर (दरै-अ. फ.) सोह पत्थं, म. उ. स. उत्तं भूमि धर (भर—म.) धरनि (धरनि=म.) ढहि ढरि सुपथ्थं, ना. भूमि धर धरणि ढहि ढरि सु पत्थं।

(१६) १. म. उ. स. तनं अथ्थि। २. फ. बह, म. वस। ३. अ. ना. हथ्थि, शेष में 'हथ्थ'। ४. धा. अ. फ. हथ्थं।

(१७) १. धा. बढे, अ. फ. बिढइ। २. मो. न. बीर, फ. सा बील।

(१८) १. मो. जिसे सयल सिंदूर (=सिंदूर), धा. जिसे सयल सादूल सद्देश, अ. फ. जिसौ सेल सादुल भद्देस, ना. म. उ. स. जिस सैल (तेल-उ., सेल-ना.) संदूर (सिंदूर-ना.) संदेस (संदेह-ना.)

(१९) १. धा. उड्ड बिगाबाने स माने उडंतं, ना. म. उ. स. उड्डै बिग्र बाने (बाने-ना.) सु माने (सुमाने-ना. म.) उडंता।

(२०) १. धा. जिरे अंकुलाये निकट्टे अनंतं, उ. स. जिसे अर्क फल फुटि होते अनंता, म. जिसे सेल संदूक (तुल० चरण १८) फल फुटि ही ते अनंता, ना. जिम अर्क फूट हिते अनंता।

(२१) १. मो. कंपि ते कायर लोह रत्तं, धा. फ. कंपे काइरह लोह रत्ते सरंतं, अ. कंपै काइरह लोह रत्तौ सरत्तं, ना. कंपेयं कायरं लोह रत्तं, म. उ. स. तसं कंपियं काइरं (कायरं-म.) लोह रत्तं (रत्तं-स.)।

(२२) १. धा. जिसो, अ. जिसौं, फ. थिसो, म. उ. स. मनो (मनौं-म.), ना. मनुं (=मन)। २. धा. अनल। ३. फ. पारन, ना. उ. स. प्रारंभ। ४. धा. तं।

(२३) १. मो. इसु (=इसउ), ना. इसा। २. धा. अ. फ. अनुसद्ध, म. उ. स. आवद्ध, ना. आनुद्ध। ३. ना. हुव्वं।

(२४) १. अ. जिसो वाप, फ. जिसौ ऊप, म. उ. स. जु जूआरि (जुआरि-म.), ना. जिसं जुव्व। २. ना. जुव्वं।

(२५) १. अ. फ. अस्व। २. धा. निसानं।

(२६) १. अ. फ. पुट्ठप।

(२७) १. मो. चंपि (=चंपइ), धा. म. चंपे, अ. ना. उ. स. चपै, फ. चपौं। २. धा. अ. फ. उ. स. चाह, ना. राह, म. चाय। ३. मो. चहुवान। ४. धा. हरि सिंध। मो. नायु (=नायउ), शेष में 'नायो' या 'नायौ'।

(२८) १. अ. जिसो, ना. म. जिसे। २. धा. सयल ते, अ. फ. सेल सैं, ना. सैल मैं, म. उ. स. सेन मैं (मैं-उ. स.)। ३. मो. संध (< स्कंध)। ४. मो. पायु (=पायउ), धा. पायो, शेष में 'पायो' या 'पायौ'। ५. मो. ना. म. उ. स. में यहाँ और है: करे कूह (कह-मो.) गज जूह सनमुष धायु (धायौ-ना. म. उ. स.)। पंगुराय दल समिटि चहु कोद छायु (छायो-ना. म. उ. स.)। किन्तु स्वीकृत अगले छंद की प्रथम पंक्ति के साथ इस छंद की स्वीकृत अंतिम पंक्तियों की उक्ति-शृङ्खला प्रकट है।

टिप्पणी—(२) विज्=भागना। (३) जाल < ज्वालय्=जलाना (६) जंम < जन्म। दुत्त < द्रुत। (७) सन्नीह < सन्निधि=संग्रह। दीह < दीर्घ। (८) घाल < घल्=फेंकना। (९) वग < वग्ग < वाक्य। (१०) मुक < मुच्=छोड़ना। सातुक < सात्विक। वट्ट < वर्मन्। (११) संपत्त < संप्राप्त (१२) आवद्ध < आयुध। (१३) निझर < निर्झर (?)। (१४) रत्त < रक्त। (१५) धीठ < धृष्ट। (१६) अथ्थि < अस्थिन्। विय < द्वय। (१८) सयल < सकल। सदूर < शार्दूल। (१९) वड < पत्=गिरना। बिग्रा < विग्रह (?)। (२२) पारंभ < प्रारंभ। पत्त < पत्र। (२३) अनुद्ध < अनुद्धृत=अपरित्यक्त। (२५) असिस < अश्व। (२८) सैयल < शैल।

[११]

कवित्त— करि जुहार हरसिंघु[1] नायउ[*2] चहुआन पहिल्लउ[*3] । (१)
वरी अनी सा वरिय[2] लष्षु[3] सउ[*4] भिडउ[*5] इक्किल्लउ[*6] । (२)
अगम कयाहउ[*1] फिरिय[*] धरणि खुर खुर सउं[*3] खुंदइ[*4] । (३)
एक[1] लष्ष सउं[*2] भिरइ[*3] एक[4] लष्पइ[*5] रण[6] रुंधइ[*7] । (४)
तिल तिल हुइ त्रुट्टउ* नहि मुरउ*[1] जय जय हुउ*[2] आयास[3] मधु[4] । (५)
इम जंपइ[1] चंद विरद्दिआ*[2] च्यारि[3] कोस चहुआन गयु[4] ॥ (६)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने जब दिल्ली की दिशा में बाग मोड़ी,] उसको जुहार करके पहला योद्धा चहुआन हरसिंह झुक पड़ा। (२) उसने [शत्रु की] जिस अनीक (सेना) का वरण किया, उसका वरण कर ही लिया, [उससे मुड़ा नहीं] और [शत्रु के] लाख सैनिकों से वह अकेला भिड़ गया। (३) उसका अगम [नाम का] कयाह [जाति का] घोड़ा भी, जब वह [रणभूमि में] फिरने लगा, धरणी को अपने क्षुर (छुरे) के सदृश खुर से खूँदने लगा। (४) [हरसिंह] एक लाख से भिड़ा और एक लाख का उसने रण में रोक रक्खा। (५) वह तिल-तिल होकर टूटा (कट गया) किन्तु [युद्ध से] मुड़ा नहीं, जब [उसको इस वीरता पर] आकाश में 'जय जय' हुआ। (६) चन्द विरदिया कहता है, इस प्रकार [हरसिंह के जूझने से] चहुआन पृथ्वीराज [दिल्ली की दिशा में] चार कोस [आगे निकल] गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. धा. ना. म. हरिसिंघ, अ. वरसिंघ, फ. उरसंधि, स. नरसिंघ। २. मो. नायु (=नायउ), धा. अ. न्यो, म. फ. ना. नयौ। ३. मो. पहिलु (=पहिलउ), धा. पहिलो, शेष में 'पहिलो' या 'पहिल्लौ'

(२) १. धा. वरिय। २. धा. अ. उ. स. सावरी, फ. सावरी, ना. सामरा। ३. धा. अ. म. उ. स. लष्ष, फ. लषि। ४. मो. सु (=सउ), धा. सूं, अ. सन, फ. सन्न, ना. सुं (=सउं) उ. स. सौं, म. सौं। ५. मो. भडु (< भिडउ), धा. लर्यो, अ. फ. ना. म. उ. स. भिर्यौ। ६. मो. इकिलु (=इकलउ), धा. अकलो, अ. फ. अकिल्लो, ना. म. उ. स. इकल्लो।

(३) १. मो. कहायु (=कहायउ), धा. कयाहो, अ. फ. कयाहै, ना. कयाहुं (=कयाहउ), उ. स. कायहुअ, म. कायकरि। २. मो. फिरिध (< फिरिय), फिर्यौ, ना. फिरैं, शेष में 'फिर्यो' या 'फिर्यौ'। ३. मो. ना. खुर खुर सुं (=सउं), धा. तिल तिल खुर (तुल० चरण ५), अ. खुर खुर सौं, फ. खुरस्यौ, म. उ. स. खुरसौं खुर (खुर—म.)। ४. धा. खुदे, मो. षोदि (< षुदइ ?), अ. फ. खुंदइ, ना. षुदैं, म. उ. स. षुंदहि।

(४) १. धा. अ. फ. इक। २. मो. सु (=सउ), धा. सो, ना. सुं (=सउ), अ. फ. म. उ. स. सौं। ३. मो. भिरि (=भिरइ), धा. भिरे, अ. फ. लरइ (लरैं—फ.), ना. उ. स. भिरैं, म. भिर्यौ। ४. धा. अ. फ. ना. इक। ५. मो. लषि (=लषइ), अ. म. उ. स. लषइ, फ. ना. लषहि। ६. उ. रिन, ना. नर। ७. मो. रुंधि (=रुंधइ), धा. रुंधे, ना. रुंधैं, म. उ. स. रुंधहि।

(५) १. मो. तिल तिल हुइ त्रुडु (=त्रुटउ) नहि मरु (=मरउ), धा. तिलतिल तुट्यो नहीं मुरयो, अ. तिल तिल होइ तभो जहो, फ. तिहाँ लोरन मोर हो, म. उ. स. असि धार (धार—प.) झार (झार्यो—म)

वउजै (व जे–म.) विषम, ना. तिल तिळ कै हुत्यौ नहि मुर्‌यौ । २. मो जय जय जु (= जय), धा. अ. फ. मुरि हय हय, ना. जय जय जय, म. उ. स. जै जै जै । ३. धा. अ. फ. म. उ. स. आयास, मो. ना. आकास (आकाश–ना.) । ४. धा. अ. फ. भउ, ना. भय, म. उ. स. भौ ।

(६) १. मो० जपि (= जंपइ), धा. जंपै, शेष सभी में 'जंपै' । २. मो. म. विरद्दिया, ना. विरद्दीय, शेष में 'बिरदिया' । रचना में अन्यत्र 'विरद्दिआ' ही है, यथा ८. १४, २.२९, ३.१, ५.१९, ५.४५, १२. ४०, १२.४९ । ३. अ. फ. चारि (चार–फ.) । ४. धा. अ. फ. गउ, ना. गय, म. उ. स. गौ ।

टिप्पणी—(५) आयास <आकाश । (६) जंप<जल्प् ।

[१२]

दोहरा— परत धरणि हरसिंघ[१] कहं[२] हरषि पंगु[३] दल सव्व[४] । (१)
मनहु जुद्ध[१] जोगिनि[३] पुरह तनु[४] मुक्यउ*[५] सब[६] गव्व[७] ॥ (२)

अर्थ—(१) हरसिंह के धरणी पर पड़ते—गिरते—ही सारा पंग (जयचन्द) दल हर्षित हो उठा, (२) [उसे ऐसा प्रतीत हुआ] मानो युद्ध में योगिनीपुर (दिल्ली) के गर्व ने ही [हरसिंह के रूप में] शरीर छोड़ा हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. हरिसंध, मो. हरसिंघ (< हरस्यंघ), अ. स. नरसिंघ, फ हरुसिंघ, म. उ. हरसिंघ, ना. हरिसिंह । २. मो. ना. कह, धा. अ. फ. कहु, म. कै, उ. स. कहुं । ३. धा. हरिख पंगु, ना. उ. हकिग पंगु, म. हकिय पंग, स हकिय गयंद । ४. धा. सव्व, उ. सव्व, म. स. अव्व ।

(२) १. धा. मनुह, ना. मनुहुं, फ. मनौह । २. मो. यूध, म. जुद्ध, ना. जुद्ध । ३. धा. म. स. जोगिन, ना. जुग्गनि । ४. धा अ. फ. तन, ना. म. उ. स. तिन । ५. मो मुक्यु (=मुक्यउ), अ. फ. मुक्यो, ना म. मुक्यौ, स. मुक्यौ । ६. म. अव । ७. ना. चव्व, म. प्रव, स. अब्ब ।

टिप्पणी—(२) मुक < मुच् । गव्व < गर्व ।

[१३]

दोहरा— फुनि[१] प्रथिराज अच्छि[२] देह[३] बलु[४] रट्ठिवर[५] नरेस । (१)
सिर सरोज चहुआंन कउ*[१] भमर[२] सस्त्र[२] सम भेस ॥ (२)

अर्थ—(१) तदनंतर पृथ्वीराज को आंखों से देखकर राठोर नरेश (जयचंद) घूम पड़ा । (२) चहुवान (पृथ्वीराज) का सिर सरोज [के सदृश हो रहा] था, और [उसके ऊपर मँडराने वाले] शस्त्र भ्रमर के सदृश वेश के [हो रहे] थे ।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. अ. फ. पुनि । २. मो. प्रथीराज अछि देह, धा. प्रिथिराजहि अस्यि, अ. ना. प्रिथिराजह अच्छि, फ. प्रिथिराजहि अच्छि, म. उ. प्रथिराज सु अच्छ, स. प्रथिराज सुपच्छ । ३. मो. देह, धा. दल, शेष सभी में 'दल' । ४. अ. दल, फ. वलि, म. उ. स. वर । ५. धा. राठोर, अ. फ. ना. राठौर, म. उ. स. रट्ठौर

(२) १. धा. के, अ. फ. को, ना. म. उ. कै । २. धा. भंवर सारि, अ. फ. सार भंवर, म. उ. स. भवर सस्त्र, ना. भ्रमरि शस्त्र ।

टिप्पणी—(१) अच्छि < अक्षि=आँख । देह < देक्ख < दृश् । बल < वल्=घूम पड़ना ।

[१४]

कवित्त— दिष्षि सुनहुं प्रथिराज[१] कनक नायो[२] बड गुज्जर[३] । (१)
हम तुम[१] दुस्सह मिलन तु§ स्वामि§[२] हूजइ*§[३] तु अप्पु*[४] घर§ । (२)
हउं*§[१] रविमंडल§ भेदि§ जीव§ लगि सत्त न छडहुं[२] । (३)
षंड षंड हुइ[१] तुंड[२] मुंड[३] हर[४] हार सु मंडहु[५] । (४)
इह बंसि भज्जि[१] जानइ*[२] न कोइ[३] हउ*[४] पति पंक अलुम्भयउ[५]* । (५)
इम जंपइ*[१] चंद विरद्दिआ[२] षट त[३] कोस चहुआन गयु[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) कनक बड़ गूजर झुका, और उसने कहा, "हे पृथ्वीराज [सारी परिस्थिति] देख कर सुनो; (२) हमारा और तुम्हारा [पुनः] मिलना दुस्सह (कठिन) है, [इसलिए] हे स्वामी तुम स्वयं तो अपने घर हो (पहुँच जाओ), (३) और मैं रवि-मंडल का भेदन करूँ—वीर गति प्राप्त करूँ; जीवन (प्राणों) के लिए सत्य नहीं छोड़ूँगा; (४) मेरा तुंड (मुख—सिर) खंड-खंड हो जाएगा, तो मैं [अपने] मुंड से हर-हार को तो मंडित करूँगा । (५) इस (मेरे) वंश में भागना कोई नहीं जानता है, मैं तो स्वामी के [लाज—] पंक में आरूढ़ हुआ हूँ ।" (६) चंद विरदिया कहता है, इस प्रकार [कह कर कनक बड़गूजर के जूझते-जूझते] चहुआन (पृथ्वीराज छः) कोस निकल गया ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
§ चिह्नित अक्षर और शब्द अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. देषि सुनहु प्रिथिराज, फ. दिष सुनहु प्रथिराज; ना. म. उ. स. भौ आयस (आइस—ना.) प्रथिराज । २. म. नांयौ । ३. धा. बर गुज्जर, मो. बड गूजर, शेष सभी में 'बड गुज्जर' ।

(२) १. ना. तुम्ह । २. फ. सि । २. ना. म. सामि । ३. मो. हूजि (=हूजइ), धा. हुइ जाइ, स. हुज्जै, म. न. उ. हुज्जै । ४. मो. तु अपु (<अप्पु), धा. अपन, ना. इव अप्प, म. उ. स. सु अप्प ।

(३) १. मो. हूं, धा. मो, ना. हुं (= हउं), म. हौं, उ. स. हौं । २ धा. छंडउं, मो. छंडहु, ना. छंडुं (=छंडउं), म. षंडौं, उ. स. षंडो ।

(४) १. धा. षंड षंड हु अ, फ. षंड षंड होइ, म. उ. स. षंड षंड करि, ना. षंडि षंड करि । २. मो. अ. तुंड, धा. रुंड, शेष सभी में 'रुंड' । ३. मो. मंड । ४. फ. हरि । ५. मो. हार सु मंडहु, धा. हार ज मंडउं, अ. फ. हारहि मंडौं, उ. स. हार सु मंडौ, म. हार सु मंडौ, ना. हारै सु मड्डु (= मंडौ)

(५) १. धा. इह वंस भाजि, अ. इह वंस भज्जि, म. उ. स. इह वंस भग्गि, ना. इहिं वंस भग्गि । २. मो. जानि (=जानइ), धा. जानइ, अ जाने, फ. थवरे, ना. म. उ. स. जानै । ३. फ. स. कोइ, ना. न कुइ, म. उ. स. न को । ४. मो. हू (= हउ), ना. हुं (= हउं), धा. हो, अ. दुरि, फ. जुरु, म. हौ, उ. स. हौं । ५. धा. पंक अलुज्झयउ, मो. पंक अलुक्षयु, अ. पंक अरूढयउ, फ. पंक असझयउ, ना. उ. स. पंक अलुज्झयौ, म. एक अलुज्झयौ ।

(६) १ मो. जंपि (= जंपइ), धा. जंपइ, शेष में 'जंपै' । २. मो. विरदीउ (= विरद्दिअउ), ना. विरद्दीया, शेष में 'वरद्दिया' । ३. धा षट सु, म. उ. स. षट्ट, ना. षड ति । ४. धा. अ. फ. गउ, म. ग्यौ, उ. स. गौ, ना. गयौ ।

टिप्पणी—(५) अलुज्झ < आरूढ (?) ।

[१५]

दोहरा— बड हथ्थह[१] बड गुज्जरह[२] जुज्झिझ[३] गयउ[४] वैकुंठि[५] । (१)

भीर सघन स्वामिहि[१] परत चषि[२] कबंध[३] अरि दीठि ॥ (२)

अर्थ—(१) बड़े हाथों वाला बड गूजर (कनक) जूझ कर वैकुंठ गया; (२) स्वामी पर सघन (घनी) भीड़ (आपदा) पड़ने पर उसे आँखों से [केवल] शत्रु [पक्ष] का कबंध दिखाई पड़ता था (उसको शत्रु का संहार करने के अतिरिक्ति कुछ नहीं सूझता था) ।

पाठान्तर—(१) १. धा, हथ्थहि, फ. हथ्थ, ना. हत्थी । २. मो. गूजरह, धा. गुज्जरह, अ. फ. गुज्जरत, ना. म. उ. स. गुज्जरह । ३. धा. अ. जुज्झि, मो. म. झुंझि (= झुज्झि), फ. रुज्झि, ना. झुझि । ४. मो. ना. फ. म. उ. स. गया (< गयउ), धा. अ. गयउ । ५. मो. वंकुठि, धा. वैकुठ, शेष सभी में 'वेकुंठ' ।

(२) १. मो. सुघन स्वामिहि, फ. सघन स्वामिह, ना. सघन सामिह, उ. स. सघन सामित, म. सघन सामित । २. मो. चप्य (< चष्य=चषि), अ. फ. चषि, ना. मा. उ. स. चख । ३. धा. अ. फ. कम धुज्ज (कम धज्ज-धा.), ना. कमंध, म. निडर, उ. स. निड्डूर । ४. धा. अरिभंद, अ. फ. स (सु—अ.) दिठ्ठ, ना. म. उ. अरि दिठ्ठ ।

[१६]

कवित— धर फुट्टइ[१] पुरखार[२] लार[३] तुट्टइ*[४] सिर[५] उप्परि । (१)

तब[१] नायउ*[२] रट्ठिवर[३] नृपति[४]‡ पृथिराज सामि छर[५] । (२)

षग्गह सीसु हनंत[१] षग्ग षुप्परिय[२] षरष्षर[३] । (३)

सोनित[१] बिंदु[२] परंत[३] पंक[४] विंभिय हि त गय धर[५] ॥ (४)

विरचिअउ*[१] लोह[२] वर सिंघ सुअ[३] षंडषंड‡ तन[४] षंडियउ*[५] । (५)

नीडर[१] निसंक जुज्झंत रण[२] अठ कोस चहुआंन गयु[३] ॥ (६)

अर्थ—(१) [जब] धरा घोड़ों के खुरों की धार से फूट रही थी, और उनकी लाला [सैनिकों के] सिरों पर टूट रही रही थी, (२) तब राठौर [निडर राय] स्वामी नृपति पृथ्वीराज के छल (छद्म) में झुक पड़ा । (३) खड्ग से सिरों को मारते (काटते) हुए उसने खोपड़ियों पर खड्ग खड़खड़ाई । (४) [उसके संहार से] जो शोणित बिंदु गिरे, उनके पंक में गज धरा में बिंध (फँस) गए । (५) वरसिंह के पुत्र निडर ने इस प्रकार लौह (तलवार) की रचना की, [तदनंतर] उसका तनु खंड-खंड होकर खंडित हुआ । (६) [इस प्रकार] निश्शङ्क होकर निडर के जूझते-जूझते चहुआन (पृथ्वीराज) आठ कोस चला गया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. फुटि (=फुटइ), धा. तुट्टइ, ना. फट्टै, फ. म. फुट्टै । २. मो. धा. धार, अ. ताल, फ. तालु, ना. म. उ. स. तार । ३. धा. लाल, अ. लाइर, फ. मूह, ना. धार, म. उ. स. सार । ४.

ा. फुट्टे, मो. तुटि (=तुट्टइ), अ. तुट्टइ, ना. तुट्टि (= तुट्टइ), फ. फूटे, म. उ. स. तुट्टैं। ५. ना. में यह शब्द नहीं है। ६. म. ऊपरि, धा. उप्पर, ना. उप्परि शेष में 'उप्पर'।

(२) १. फ. भव, म. उ. स. तहाँ। २. मो. नायु (= नायउ), धा. अ. म. उ. स. नायो, ना. निड्डर, फ. नग। ३. मो. म. रड्डवर, ना. रट्ठौर, धा. राठोर, अ. राठ्योर, फ. गतपरौ। ४. म. त्रिप। ५. धा. मो. अ. फ. स्वामि छर, म. सामि बरि, ना. सामि छर।

(३) १. मो. सीसह अंनत, शेष सभी में 'सीस इनंत' (सीसु इनंत–धा.)। २. मो. खूपरिय, धा. खुप्परिव।। ३. धा. अ. फ. घरष्षर (घरष्षर-फ.), मो. ना. म. उ. स. घनष्षन (घनंघन–ना.)

(४) १. धा. स्रोनित, अ. फ. उ. स. श्रोनित, ना. म. श्रोनति। २. धा. अ. ना. म. उ. स. बुंद, फ. बुंदहि। ३. फ. पत्तु। ४. म. उ. स. पग। ५. मो बिढियहित गय घर, धा. बिढ्ढिय गयंद धर, अ. बिढ्ढिया गयध्धर, फ. विंटिढा ज पधर, ना. बिढ्ढी हयगय तन, उ. स. बिढ्ढीय धरष्षन, म. किढ्ढिय धन धन।

(५) १. धा. अ. बिरचि, फ. बिहौपेषि, मो. बिरचिउ (= बिरचिअउ), ना. उ. स. बिरच्यौ, म. सहौ बिरचि। २. फ. साहि, म. घोलौ ३. ना. जय सिंध सुय। ४. ना. षड षड ततु, फ. षंडतु। ५. मो. षंडोव्यु (षंडिव्यउ), धा. अ. फ. षंडयउ, ना. षड्यो. म. उ. स. षंड्यौ।

(६) १. मो. अ. नीडर, धा. निडर, ना. म. उ. निड्डर, स. निड्डुर। २. मो. झुझंत रण, धा. जुझंत रन, अ. जुझ्झत रनह, फ. जुझ्झत रिण, म. झुझंत रिनि, उ. स. झुझ्झंत रन, ना. भलसंकि रण। ३. धा. अ. चहुवान गउ, फ. चहुवान गौ, ना. म. उ. स. नृप हिंड्यौ।

टिप्पणी—(१) कार < काला। (२) छर < छल। (३) भग्ग < खड्ग। (४) धर < धरा। (५) सुअ < सुत।

[१७]

दोहरा— सम रट्ठवरनि रट्ठवर[१] निडर[२] झुझ्झि गय[३] जांम। (१)
दिनिअर[१] दल प्रथिराज कउ[२] चंपि पंग सम[३] तांम॥ (२)*

अर्थ—(१) जब कि राठौरों (अपने सजातीयों) के साथ अडर (निडर) राठौर भी जूझ गया, तब याम (प्रहर) गत हो चुका था, (२) और पृथ्वीराज के दिनकर-दल को पंग (जयचंद) ने तमस् (अंधकार) के समान दबाया।

पाठान्तर—चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. सम रठुरनि (= रठउरनि) रठवर, धा. समर रठौरनि राठवर, अ. फ. ना. सम राठोरनि (राठोरन–फ.) राठवर (राठवरि–फ, रठ्ठवर-ना.), म. सम रट्ठौरन रिठवर, उ. सम रट्ठौरन रठ्ठवर, स. सम रट्ठौर रट्ठवर। २. मो. अडर, धा. निडर, अ फ. निडर, ना. उ. निड्डर, म. नियड्डर, स. निड्डुरि। ३. मो. झूझि (<झुझ्झि) गय, धा. अ. फ. जुज्झ गिरि, ना. द झुझ्झि गय, उ. स. झुझ्झिग, म. झुझ्झि गर (= झुझ्झि गर)।

(२) १. धा. अ. म. उ. स. दिनयर, ना. दिणयर, फ. दिनयरु। २. मो. कु (= कउ), धा. कूं, म. अ. फ. ना. कौ, उ. स. कौं। ३. धा. चंपिउ पंग सम, अ. फ. चंप्यौ पंगुस, म. उ. स. ना. राहु पंगु हुव, म. उ. स. राह पंग मय।

टिप्पणी(१)—गय < गत। (२) दिनअर < दिनकर। तांम < तमस।

[१८]

दोहरा— चंपत पिछ्छोरिय गति[१] चषह अपन[२] तन दिष्ष[३] । (१)
तन तुरंग तिलु ति तिलु कर[१] मयउ[*२] कन्ह[३] मन मिष्ष[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) दबाव के कारण पीछे की ओर ही [अपनी] गति होने पर [कन्ह ने] अपनी आँखों से अपने को देखा, (२) और अपने शरीर और तुरंग (घोड़े) को [कटाकर] तिल-तिल करने के लिए कन्ह के मन भिक्षा आकांक्षा (?) हुई ।

पाठांतर—* चिह्नित संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. चंप ति पिछोरिय गहि चखह, मो. चंपत पछिहर गति, अ. फ. चापंतह (चापंतिह-फ.) पिछ्छोर (पिछ्छोरि-फ.) दिसि (दिह्-फ.), ना. चंपित अच्छरि डिम लगि, म. उ. स. चपत अच्छरि रिढ (रिठ-उ.) लगि । २. धा. अ. फ. हय पट्टन, ना. म. उ. स. चषि (चष–ना. म.) अप्पन (आपन–ना.) । ३. मो. तन देषि, धा. तनु देख, अ. फ. तन दिष्ष, ना. तन दिष्षि, म. तर देष, उ. स. तन देषि ।

(२) १. धा. तुरंग तिल तिल करन, अ. फ. म. उ. स. तुरंग तिल तिल करन, ना. तरंग तिल तिल करण । २. मो. मयु (=मयउ), धा. मया, शेष में 'मयो' या 'मयौ' । ३. मो. कन, शेष सभी में 'कन्ह' । ४. धा. मनु भेष, मो. मन भषि, अ. ना. मन भिष्ष, फ. तिसति सिष्ष, म. उ. स. मन भेष ।

टिप्पणी—(१) चष < चक्षु । (२) भेषि < भैक्ष (?) भिक्षा ।

[१९]

कवित्त— सुनहि[१] बात[२] पषरैत[३] लोहि[४] उट्ठउ* दल रुक्कउ[५*] । (१)
चिहिरु होइ चंपइ* त[१] स्वामि चुटि महि न चुक्कउ[२*] । (२)
पहु पट्टन[१] पल्लानि हटकि हउ[*२] हनउं[*३] गयंदह[४] । (३)
समर[१] वीर[२] संघरउं[३] भीर नहि[४] परइ[*५] नरिंदह । (४)
रुक्कियउ[*१] छगन[२] जयचंद दलु सिर तुट्टइ[*३] असिवर कढउ[*४] । (५)
तब[१] लगि तिहि[२] दल रुक्कियउ[३] जब लगि कन्ह[४] हय[५] वर चढउ[*६] ॥[×] (६)

अर्थ—(१) [छगन से] कन्ह ने कहा, "हे पखरैत (पष्षर डालने वाले) [छगन], मेरी बात सुन; तू [शत्रु के] उठे (उमड़े) हुए दल को रोक । (२) चारों ओर से [शत्रु का] दबाव पड़ रहा है; स्वामी पर चोट पड़ते हुए [इस समय] मही पर मत चूक । (३) प्रभु पृथ्वीराज के [अश्व] पट्टन को पलान कर मैं गजेन्द्रों को भी दूर कर उन्हें मारूँगा । (४) समर में वीरों का संहार करूँगा, जिससे नरेन्द्र (पृथ्वीराज) पर भीड़ (संकट) न आए । (५) [यह सुनकर] छगन ने जयचंद की सेना को रोका; उसकी असि के निकलते ही सिर कटने लगे । (६) उसने तब तक शत्रु के दल को रोका जब तक कन्ह उस श्रेष्ठ अश्व (पट्टन) पर चढ़ा ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है ।

(१) १. फ. सुनिव, म. उ. स. सुनहु, ना. सुनीय । २. म. अ. वत्त, फ. इत्त । ३. मो. बपरेत, धा. विखरेत, अ. ना. बपरंत, फ. म. उ. स. पपरंत । ४. अ. फ. लेइ, ना. लोह, म. लेहु, उ. स. लेहु । ५. मो. उठ (< वठु=वठुउ) दल रुक, धा. वइठो दल रक्खिउ, अ. फ. वाढो दल (ढल–फ.) रक्खौ (रष्यौ–फ.), ना. उड्यो दल रुक्यौ, उ. स. ओढ़ौ दल रक्यौ, म. औढौ दल रुक्यौ ।

(२) १. मो. चिहिर दाइ चंपित (=चंपइत), धा. चिहुरे होइ चंपंत, अ. ना. चिहुर छोइ चापंत, उ.स. चिहूँ ओर चंपंत, म. चहुं ओरन चपत । २. धा. अ. फ. स्वामि अदवुद (अदभुत–अ. फ.) इहु (इहि–फ., यह–अ.) विक्खिउ (पिष्यौ–अ. फ.) मो. स्वामि त्रुटि महि न चुकुं (=चुकउ), ना. म उ. स. अंत ओटह किम चुकौ (चुक्यौ–म.) ।

(३) १. मो. पुहुपट्टन, ना. पुहपट्टनि । २. मो. हटकि हू (=हउ), धा. कटक उह, अ. हटकि हो, फ. हल्लह, ना. हटकि हुं (=हउं), म. उ. स. हटकि करि । ३. मो. हनु (=हनइ), ना. हनुं (हनउं), धा. हने, फ. ल्यौह, म. हनौ, शेष में 'हनौं' । ४. फ. नसुंदह ।

(४) १. म. अ. फ. ना. स वर । २. धा. धोर । ३. मो. संघरु (=संघरउं), म. घरयौ, ना. संधरौं, उ. स. संग्रहे । ४. धा. भोर वइ, म. उ. जिम धोर नह, स. भोरनइ । ५. धा. परौ, मो. परि (=परइ), अ. फ. ना. परं ।

(५) १. मो. रुकिय (=रुकियउ), धा. रुक्यो सु, अ. फ. ना. म. उ. स. रुक्यौ । २. फ. छन । ३. मो. तुटि (=तुट्टइ), धा. तुष्यो, अ. फ. छुट्टं, शेष में 'तुटं' । ४. मो. कढु (=कढउ), धा. कढ्यो, म. चढ्यौ, शेष में 'कढ्यौ' या 'कढ्य' ।

(६) १. धा. अ. फ. जब । २. धा. सहु, अ. फ. सुतिहु, ना. सुतहि, उ. स. सुतासं । ३. मो. रुकियु (=रुकियउ), धा. रुकियो, अ. फ. ना. उ. स. रुक्यो । ४. धा. फ. तत्र सुकन्ह, अ. तब सुकांन्ह ना. जब लगि सुकन्ह । ५. अ. स. हैं, फ. थ । ६. मो. चढु (=चढउ), धा. चढ्यो, शेष में 'चढ्यौ, या 'चढ्यो' ।

टिप्पणी—(३) पहु < प्रभु । (५) तुट्ट < त्रुट् ।

[२०]

दोहरा—चढत कन्ह[१] सामंत हय जय जय कहि सहु[२] देव । (१)
मनहु[१] कमल करि वर किरण[२] कुहर[३] पंगु दल सेव ॥ (२)

अर्थ—(१) सामंत कन्ह के उस अश्व [पट्टन] पर चढ़ते समय सब देवता 'जय जय' कहने लगे । (२) [ऐसा प्रतीत हुआ] मानो कमल कलिका पर [सूर्य की] श्रेष्ठ किरण [आसीन होकर] पंग (जयचंद) दल रूपी कुहरे (कुहासे) का सेवन कर रही हो ।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. कान्ह । २. मो. कहि (=कहइ) सु, धा. कहै सहु, अ. फ. कहि सव, ना. कहै सु, उ. स. करहि सु ।

(२) १. धा. मनो, फ. मनौह । २. ना. उ. करिवर भ्रमर, स. कलिमल भ्रमर । ३. ना. कहर ।

टिप्पणी—(२) करि < कलिका ।

[२१]

कवित—तब सु कन्ह[१] चहुआंन[२] तुरिय[३] पट्ट नु पल्लानउ[*४] । (१)
हिंसि कनकि वर उठउ[१] मरन अपराउ[*२] पहिचानउ[*३] । (२)

उहि करि[१] असिवर लिअउ*[२] गहिवि[३] गजकुंभ उपट्टइ[४] । (३)
उहु मारिहि लातहुं धाय[१] देखि[२] अरि दंतह[३] कट्टइ[४] । (४)
उहु[१] नक निसंकु[२] हइ*[३] वर रुयन[४] दिष्पहुं वित्तक बित्तयउ*[५] । (५)
उहुं[१] मुंडमाल हर संठयो[२] उहि रवि रथ लै[३] जुत्तयउ*[४] ॥[५](६)

अर्थ—(१) तब कन्ह चहुआन ने पट्टन घोड़े को पलाना। (२) वह श्रेष्ठ घोड़ा हींस और गिनगिना उठा, और उसने अपना मरण पहिचान लिया। (३) उस (कन्ह) ने श्रेष्ठ असि को पकड़ा, और उसको ग्रहण करके गज कुंभों को उत्पाटित करने लगा। (४) और वह (पट्टन) दौड़ते हुए लात मारने और शत्रु [—पक्ष के सैनिकों] को देख कर उन्हें दाँतों से काटने लगा। (५) वह निश्शंक नर (कन्ह) श्रेष्ठ घोड़े पर [उस रण—] धरा में था, जब कि देखो, यह बीतक बीता। (६) वह (कन्ह) हर के मुंडमाल में संस्थित हुआ और वह (पट्टन) लिया जाकर रवि रथ में जोता गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. तब कान्हो, अ. फ. तबहि कान्ह। २. फ. चौहुवानु, ना. चहुवान। ३. म. तुरी, ना. तुरीय। ४. मो. पलानु (=पलानउ), धा. पलान्यो, अ. फ. पलान्यो, म. ना. पलान्यौ।

(२) १. धा. हंस किरन किल उट्ठि, मो. हिंस कनकि उठु (=उठउ), अ. फ. हींस (हास-फ.) कंस करि उठ्यो, म. ना. उ. स. हिंसि (हंसि-म.) किनकि (कनकि-ना.) बर उठ्यौ। २. मो. अपणु (=अपणउ), धा. अप्पही, ना. अपनौ, म. उ. स. अप्पन। ३. मो. पहिचानु (=पहिचानउ), धा. अ. फ. पिछान्यो, म. ना. उ. स. पहिचान्यौ।

(३) १. धा. कह करि, फ. कह कर, म. वह कर, ना. उ. स. बहि कर, केवल मो. म. में 'उहि करि'। २. मो. लीउ (=लिअउ), धा. लयो, ना. उ. म. लयौ, स. लइयौ, अ. फ. गहै। ३. धा. गहव, मो. गहिवि, अ. फ. गहवि, ना. गहिग, म. उ. स. गहिव। ४. मो. उपटि (=उपटइ), धा. अ. उपट्टइ, फ. ना. उ. स. उपट्टै, म. उपटे।

(४) १. मो. उहु मारिहि लात हूं धाय, धा. वह मारइ हट्टु धाइ, अ. फ. वह मारे तहं (वहं-फ.) धाइ, म. वह मारैं लत्तनि धाय, स. मारैं लत्तनि धाय, ना. वह मारै लातनि धाइ। २. मो. धा. देषि, अ. फ. ना. म. उ. स. बुद्धि। ३. ना. म. उ. स. दंतनि। ४. मो. कटि (=कटइ), धा. अ. कट्टइ फ. कट्टहि, म. कटे, ना. कट्टै।

(५) मो. उह, धा. वह, शेष में 'वह'। २. ना. णिसंकु। ३. मो. हि (=हइ), धा. हय, अ. फ. है, ना. हैं, ना. है, म. हैं। ४. ना. सुघरु, म. उ. स. सुधर। ५. मो. दिष्षहुं वित्तक वित्तयु (= वित्तयउ), धा. अ. फ. पिष्षहु (पिषिहि-फ.) चित कुचित्तयो, ना. म. उ. स. पिष्षहु वित्तक (चित्तक-ना.) वित्तयौ।

(६) १. मो. वहुं, धा. म. अ. फ. वह, स. वर, ना. तह, उ. स. वर। २. मो. मुंड माल हर सुठयो, धा. म. रुंड माल हर संठयो, अ. फ. सोम हार हरउं थयो, ना. उ. स. मुंड माल हर संठयौ। ३. फ. रथ्थहि, अ. ना. रथ्थह। ४. मो. युतयु (=युत्तयउ), धा. जुत्तयो, ना. म. जुत्तयौ, शेष में 'जुत्तयो'। ५. मो में यहाँ और है: इम जंपिय चंद बिरदिउ दस कोस चहुआन गउ।

टिप्पणी—(३) उपट्ट < उत्पाटय्। (६) संठव < संस्थापय्।

[२२]

दोहरा— धरणी कन्ह परत प्रगट[१] उट्ठि[२] पंगु न्रिप हंकि[३]। (१)
मनु*[१] अकाल[२] धवली[०] जरल[०३] गहि[०] अतुहि[०४] धनु[०५] रंक[६] ॥ (२)

अर्थ (१) प्रकट रूप से कन्ह के धरती पर गिरते ही पंगु राज (जयचंद) [इस प्रकार] हुंकार उठे, (२) मानो अकाल में उस [रंक] अबल ने जो रो रहा हो अटूट धन प्राप्त किया हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. धरनइ कन्हइ परत ही, अ. फ. धरनी कन्ह परत्त हीं, ना. मा. उ. स. धरनि कन्ह परतइ प्रगट (प्रगटि–म.)। २. धा. अ. फ. प्रगट, मो. उठि, ना. म. उ. स. उठ्यौ। ३. धा ना. त्रिप हक, अ. फ. दल हंफ, म. उ. स. नृप हकि।

(२) १. धा. मन, मो. मनु, अ. फ. तनु, ना. मनुं (= मनउ ?), म. मनौ, उ. स. मनौं। २. यहाँ से 'रंक' के पूर्व तक का अंश धा. में नहीं है। ३. मो. अबला अरज, अ. फ. अबली जरल, ना. म. उ. स. संकरइ (सकइर–ना. संकर–उ.) हसि। ४. मो. गहिअ तुटि, अ. फ. गहहि तुट्टि, ना. गहे टूटि, म. उ. गहिय तुट्टि। ५ मो. धनु, शेष में 'निधि'। ६. मो. रफि, धा. रंक, शेष सभी में 'रंक'।

टिप्पणी—(२) रल < रट्=रोना, चिल्लाना।

[२३]

दोहरा— तब झुकित[१] अल्हन षग्ग गहि[२] भयउ[*३] अप्प[४] बल रूप[५]। (१)
सिर अप्पउं[*१] स्वामी कजह[२] हनउं[*३] गयंदन[४] जूप[५]॥ (२)

अर्थ—(१) तब अल्हन ! खड्ग ग्रहण करके झुका और स्वयं बल रूप हुआ; (२) [उसने कहा,] "मैं स्वामी के कार्य के लिए [अपना] सिर अर्पित करूँगा और हाथियों के यूप (धुर-अग्रभाग) को मारूँगा"।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. झुकित, शेष सभी में 'झुकि'। २. मो. षंगहि, शेष सभी में 'षग्ग गहि'। ३. मो. भयु (= भयउ), शेष में 'भयो' या 'भयौ'। ४. मो. ना. आप, शेष में 'अप्पु' या 'अप्प'। ५. ना. कोटि, म. उ. स. कोट।

(२) १. मो. अपु (= अप्पउ), म. अपौ, ना. अप्पौं। २. अ. फ. कर (करि–फ.) स्वामिकै, ना. कर स्वामि कह, म. कर सामिकौ, उ. स. कर स्वामि को (कौं—उ.)। ३. मो. हनु (= हनउ) नां. हन्यौ, शेष में 'हनौ'। ४. मो. गय धर, ना. अ. फ. गयंदनि, म. उ. स. गयंदन। ५. मो. अ. जूा (यूप–मो.), ना० जोटि, म. उ. स. जोट।

टिप्पणी— (१) षग्ग < खड्ग। (२) कज < कार्य।

[२४]

कवित—सिर तुट्टइ[*१] कंधइ[*२] गयंद कढ्ढउ[*३] कट्टारउ[*४]। (१)
तउ[*१] समरी[२] महामाय[३] देवि दीनउ[*४] हुंकारउ[*५]। (२)
अमिय कलस[१] आयास लिअउ[*२] अच्छरी[३] उछंगह[४]। (३)
तब सु भई परतषि[१] अरीत अरीत कहत कह[२]। (४)

अल्हन कुमार विभ्रम भयउ[*1] *रण*‡ *किहि*‡ *वानकि मनि मन्यउ*[*2] । (५)
तिम तिम[2] *तिलोयन*[2] *गंगधर तिम तिम संकर सिर धुन्यउ*[*3] ॥ (६)

अर्थ—(१) [अल्हन का] सिर जब टूटने (गिरने) लगा, उसने कटार निकाल ली और वह गजेन्द्रों का रुद्ध करने लगा। (२) तब उसने महामाया का स्मरण किया और [उसके स्मरण पर] देवी ने हुङ्कार दया (किया)। (३) आकाश में अमृत-कलश अप्सरा ने उसको क्रोड (गोद) में ले लिया, (४) और 'अरिक्त' 'अरिक्त' [अर्थात् अब अल्हन के आगमन से स्वर्ग की रिक्तता शेष नहीं रही] कहती हुई वह प्रत्यक्ष हुई। (५) [किन्तु] अल्हन कुमार को विभ्रम हुआ; [उसके] मन में वह विचार बना हुआ था कि रण किस वर्णक (रूप) में हो रहा था, (६) [अतः] ज्यों ज्यों वह यह विचार करता था, त्यों त्यों त्रिलोचन, गंगाधर, शंकर अपना सिर पीट रहे थे [कि वह वीर अब भी पृथ्वी की माया से अपने मुक्तकर उनकी मुंडमाल में स्थान नहीं ग्रहण कर रहा था]।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द ना. में त्रुटित हैं।

(१) १. मो. तुटि (=तुटइ), धा. म. उ. स. तुटै, अ. उट्टइ, ना. फ. इट्टै। २. मो. रुंधि (=रुंधइ), धा. रुंधयो, अ. फ. ना. घर धयौ, म. उ. स. रुध्यौ (रुध्यौ–म.) ३. मो. गयंद कढु (=कढउ), धा. ना. उ. स. गयंद कढ्यौ, म. करह कढ्यौ, अ. फ. गैद कढ्यिो। ४. मो. कटारु (=कटारउ), धा. कट्टारो, शेष में ना. कट्टारौ।

(२) १. मो. तु (=तउ), धा. तिह, अ. फ. तह, ना. तहँ, म. उ. स. तहाँ। २. अ. फ. सुमिरी, म. समरीय, उ. स. सुमरिय, ना. समरी। ३. मो. माहमाय, धा. फ. महामाइ, अ. उ. स. महमाइ, ना. म. महमाय। ४. मो. देवि दीनु (> दीनउ), धा. देवि दीन्हो, ना. देवदिन्नौ, अ. फ. देवि दिन्नै, म. उ. स. देवि दीनौ। ५ मो. हुंकारु (=हुंकारउ), धा. हुंकारो, म. ना. हुंकारौ, शेष में 'हुंकारौ'।

(३) १. फ. असी सकल, म. अमिय सद। २. मो. लीउ (=लिअउ), धा. लियो, फ. सियौ, ना. म. लयौ। ४. अ. फ. उछंग तह।

(४) १. धा. भयो परत तिहि सइ, मो. तव सुभई परतकि, अ. फ. भइ पर तिष्पि सु (सि–फ.) तथ्य, ना. म. उ. स. तहँ (तहाँ मनह–ना.) सुभई परतष्षि। २. धा. अ. फ. ना. रह जय जय सु कहकइ, म उ. स. अरित अरि कहत वहंगह।

(५) १. म. कुमार विभ्रम झयु (< भयउ), धा. अ. फ. कुमार विभ्रम, सुभौ (भो–धा.), उ. स. कुमार विभ्रम सुभ्यौ, म. कुंआर विभ्रम सुभौ, ना. कुमार झुझ्यौ रिषह। २. धा. रनक विमानहि मनु मथ्यो, मो. रण किहि वानकि मुनि (< मनि) मुन्यु (< मन्यउ), अ. फ. भौ कवि रन मान मन्यौ, म. उ. स. रनकि विमानह मनु (मन–म. नु–उ.) मन्यो (मन्यौ–म.), ना.–ति मन मन्यौ।

(६) १. धा. तिम थहि, अ. फ. तिम आहि, ना. तामीहि, म. उ. तिहि दरस; स. तिहि दससि। २ धा. सो लोयन, मो. लोयन, म. उ. स. ति (त्रि–म. उ.) लोचन। ३. मो. तिम तिम संकर सिर धुन्यु (धुन्यउ); धा. ना. म. अ. फ. तिम तिम संकर सिर धुन्यो (धुन्यौ–म.), उ. स. तिम संकर सिर धर धन्यौ।

टिप्पणी—(१) तुट्ट < त्रुट्। (२) समर < स्मरय्। (३) अमिय < अमृत। आयास < आकाश। अच्छरी < अप्सरा। उछंग < उत्संग। (४) परतक्खि < प्रत्यक्ष। अरित < अरिक्त। कह < कथा। (५) वानक < वर्णक। (६) तिलोयन < त्रिलोचन।

[२५]

दोहरा धुनि[1] सीस[×] इम सिर[2] अलहनह[3] धनि धनि[4] कहि[5] प्रथिराज (१)
सुनि कुप्पउ[1] अचलेस वर[2] सुहि वर देषिवि राज[3] ॥ (२)

अर्थ—(१) ईश (शिव) अल्हन के लिए सिर पीट रहे थे, [यह देखकर] पृथ्वीराज ने कहा, "अल्हन धन्य है, धन्य है।" (२) यह सुन कर अचलेश कुपित हुआ, और [उसने कहा,] "राजा मेरा बल देखें।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. ना. म. उ. धुनत, स. धुनित। २. ना. भिर। ३. मो. अलनंह। ४. मो. धिन धिन, धा. धन धन। ५. मो. किहि (< कहि)।

(२) १. धा. कुप्यौ, मो. कोप्यौ, अ. फ. कुप्पउ, ना. म. उ. स. कुप्यौ। २. म. मर, ना. अ. फ. नर। ३. धा. मह्यो वरन दिविराज, अ. फ. महिवर देव विराज, ना. म. उ. स. सुहि बल (बरु–ना.) देषिव (देखिसु–म., देषिव–उ.) राज।

टिप्पणी—(२) वर < बल।

[२६]

कवित— करि ज[1] पइज[*2] अचलेसु कुकित[3] चहुवान षग्ग गहि[4]। (१)
अरि दल बल संघरउ[*1] पूरि[2] धर‡ भरत[3] रुधिर दह[4]। (२)
मच्छ ति[1] हेवर[2] फुरहि[3] कच्छ गज कुंभ विदारहि[4]। (३)
उभर[1] हंस उडि[2] चलहि हंस[3] मुख कमल विराजहि[4]। ‡ (४)
चउसट्ठि[1] सद्द जय जय करहिं छत्रपति वरि[2] संचरिग[3]। (५)
बोहित्थ वीर बाहर तनउ[1] दिल्लिय पति चढि उत्तरिग[2] ॥ (६)

अर्थ—(१) जब अचलेश ने प्रतिज्ञा की और वह चहुवान (पृथ्वीराज) की खड्ग ग्रहण कर झुका, (२) उसने अरि-दल-बल का संहार किया और धरा में रुधिर के द्रह पूरित होकर भर गए। (३) [उस द्रह में] मत्स्य श्रेष्ठ अश्व थे, जो स्फुरित हो रहे थे, कच्छप वे गज कुंभ थे, जिनको वह विदीर्ण कर रहा था, (४) जो हंस (प्राण) ऊपर [निकल कर] उड़ रहे थे, वे ही हंस थे और जो मुख थे, वे ही उसके कमल थे। (५) चौसठ [योगिनियाँ] 'जय जय' शब्द कर रही थीं, और वे छत्रपतियों का वरण कर के संचरण कर रही थीं। (६) [इस द्रह से पार होने के लिए] बोहित (जहाज) वीर बाहर पुत्र अचलेश था, जिस पर चढ़ कर दिल्ली पति (पृथ्वीराज) उस द्रह से पार हुआ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द या चरण फ. में नहीं है।

(१) १. मो. करिज, धा. करिइ, अ. फ. करित, ना. करिय, म. करवि, उ. स. करिवि। २. मो पिज (पइज), धा. ना. म. पंज। ३. धा. झुकलि, मो. ना. झुकित, अ. झुकित, फ. धुकिनि, म. प्रबल, ऊमुछक, स. सुछल। ४ धा. गहि, मो. गिहि (< गहि), अ. फ. ना गह।

(२) १. धा. संप्परिग, मो. सिधुरं, अ. संवरिग, फ. संघरिग, म. संवरयौ, उ. स. संहरयो, ना. संघरो। २. फ. पूर। ३. धा. भरति, अ. भरिग, फ. भ्रंग, म. भिरत, ना. उ. स. भरित। ४. धा. ना. दह, म. उ. स. दहि।

(३) १. ना. मुरछित। २. धा हयवर, अ. फ. हयनर, ना. म. उ. हैवर (हैंवर–म.)। ३. मो. फुरैहि (< फुरहि), ना. फिरहिं, म. उ. स तिरहिं। ४. धा. ना. अ. फ. म. उ. स, विराजहि, मो. मात्र में 'विदारहि'।

(४) १. धा. उवर, अ. फ. उवरि। २. धा. अ. फ. उड, म. डिग। ३. अ. फ. तब्ब। ४. म. झुराजहि।

(५) १. मो. चुनठि (=चउसट्ठि), धा. चउसठिठ, ना. चोसठिठ, म. चवसठ, अ. फ. चवसठिठ। २. धा. छत्रपतिय परि, अ. फ. छत्रपति ति वइ (वर–अ.), ना. छत्रपतिन परि, उ. स. छत्रपत्ति परि, म. वन (> छत्र पतिपरि। ३. अ. संगरिग, फ. संभरिग, म. उ. स. संचरिय।

(६) १. मो. बाहर तनु (=तनउ), धा. बाहर भरिउ, ना. अ. बाहर तनों, फ. बाहरि तनौ, म. बारह (< बाहर) तनौ, उ. स. बाहर तनैं। २. धा. चढियउ तुरिग, म. उ. स. चढि उत्तरिय, फ. चचढि उत्तरिग।

टिप्पणी—(१) षग्ग < खड्ग। (२) दह < द्रह। (३) मच्छ < मत्स्य। है < हय। फुर < स्फुर्। (४) उअर < उपरि। (५) सद < शब्द।

[२७]

दोहरा— अचल अचेत ज[१] षेत हुअ[२] परी[३] पंग बहुराय[४]। (१)
पट्टनवइ पहु पट्ट छर[१] विंझ विरच्यहु धाय[२]॥ (२)

अर्थ—(१) जब [रण–] क्षेत्र में अचलेश अचेत हुआ, पंग (जयचंद) की सेना लौट पड़ी (उसने पुनः आक्रमण कर दिया); (२) [इस समय] पट्टन पति के पट्ट प्रभु को (?) छलने वाले विंझल ने दौड़ कर [युद्ध की] रचना की।

पाठान्तर—(१) १. धा. जु, अ. फ. म. उ. स. जु, ना. ति। २. ना. हुव। ३. मो. परी, शेष सभी में 'परिग'। ४. धा. बहुराइ।

(२) मो. पटनवर पुहु पठछर, धा. पट्टनवइ पहु पट्टछर, अ. पट्टन कलयउ पट्टछर, फ. पछा। कल्यउ पट्ट छर, ना. म. उ. स. पट्टनछर अह पट्टछर। २. मो. वहु (=वठउ) वीरच्युहु धाय, धा. विधु विरवर धाइ, अ. विझ विरछहु धाय, फ. विंझ वीर वहु धाय, म. उ. स. उठे (उठे–म.) विंझ विरुझाय, ना. उठै वीर विरुझाय।

टिप्पणी—(२) वइ < पति। पहु < प्रभु।

[२८]

आर्या कवित्त—कल[१] न कलउ*[२] अरियन[३] तुं[४] मिलउ*[५] मरहरि न[६] मग्गउ[७]। (१)
अजस न लिअउ*[१] जसहीन न भयउ*[२] अमग्ग न लग्गउ[३]। (२)
पहु[१] न लज्यउ[२] जीवत न गयउ[३] अपजस नहि[४] सुनयउ[५]। (३)
हयर[१] जिम[२] दव्वर[३]ग्गि रहउ*[४] गाहंत°[५] न° गहयउ°[६]। (४)

वलि गयउ[१] न मंदिर दिसि[०२] रहउ*[३] मरण जाणि झुझझउ[४] धनी[५] (५)
बिंझ[०] लगि[०१] दाग[०२] तिलक[०३] मिसि[०४] बहु[०] बहु‡[०] बहु‡[०] भग्गुलधनी[५] । (६)

अर्थ—(१) [विझ ने] कल (चैन) नहीं किया, वह शत्रुओं से नहीं मिला, और न भयभीत होकर [रण से] भागा। (२) उसने अयश नहीं प्राप्त किया, और वह यशहीन नहीं हुआ, न वह अमार्ग में लगा। (३) उसने प्रभु (स्वामी) को लज्जित नहीं किया, वह जीते जी [रण क्षेत्र से] नहीं गया और उसने अपयश नहीं सुना। (४) इतर जनों की भाँति वह दवैल नहीं रहा और पकड़े जाते हुए पकड़ा नहीं गया। (५) वह मंदिर (घर) की दिशा में लौटकर नहीं चला गया, वहीं बना रहा, और मरना जानकर सेना (युद्ध) में जूझा। (६) विझ का दाग लगा तो तिलक के मिस [अतः] हे भग्गुल धनी, तुम धन्य हो, धन्य हो, धन्य हो।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द फा. में नहीं है।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. अ. म. उ. स. कलि, मो. ना. कल, फ. कल्य। २. मो. कलु (=कलउ), धा. अ. कल्यउ, फ. कल्यय, ना. ए. स. कल्यौ, म. कलियं। ३. धा. अरिजन, म. अरिय, फ. अरियत, उ. स. असियन। ४. धा. मो. नु, शेष सभी में 'न'। ५. मो. मिलु (=मिलउ), धा. मिलिव, अ. फ. मिल्यउ, ना. उ. स. मिल्यौ, म. मिलिय। ६. धा. भरहर बिनु, अ. फ. भरहरि दिन, ना. हरि भरि नहि, म. भरहरि नह, उ. स. भरहरि नहि। ७. मो. भगु (=भगउ), अ. भग्गउ, धा. भग्यो, ना. म. उ. स. भग्गौ।

(२) १. मो. अजस्स न लीउ (=लिअउ), धा. अजस न लिय, अ. फ. अजसु न लयउ, ना. अजस न लयौ, म. उ. स. अजसु (अजसु–म.) न लयौ। २. मो. जसहिन भयु (=भयउ), धा. जसहीन भग्गयो, ना. जसहीन न भयौ, अ. फ. जसहीन न भयउ, म. जस वित भयौ, उ. स. जसवनि भयौ। ३. धा. अगमन लगयो, मो. अमग न लगु (=लगउ), अ. फ. आमग्ग (आसंग–फ.) न लग्यउ, ना. अमगि नहिन लग्यौ, म. उ. स. अमग्ग न लग्गौ।

(३) १. मो. पुहु, धा. पहु, शेष सभी में 'पहु'। २. मो. लीउ (=लिअउ), धा. लिअउ, अ. फ. लज्यउ, ना. लीयौ, म. उ. स. लयौ (< लयौ=लजौ)। ३. मो. जीवत न ग्यु (=गयउ), धा. जीवत गह्यो, अ. जीव न गहयउ, फ. जीव ना गहिउ, ना. म. उ. स. जोवत न गयौ। ४. फ. नाही, म. उ. स. नह। ५. धा. सुन्यो, मो. सुनयु (=सुनयउ), ना. म. उ. स. सुनयौ।

(४) १. मो. ईवार, धा. कायर, अ. फ. इयर, ना. अवरणि, म. उ. स. और न। २. मो. धा. ना. जिम, अ. फ. जेम, म. उ. स. ज्यों। ३. मो. –र, धा. दवरि, ना. दवर, फ. दज्जुरि, शेष में 'दवरि'। ४. धा. न रह्यो, मो. णि रहु (=रहउ), अ. न रह्यउ, फ. नहिउ, म. नयो, उ. स. न गयो, ना. णि रह्यौ। ५. म. ग्राह ग्राहंत। ६. ना. म. उ. स. न गह्यौ, अ. फ. न गयउ।

(५) १. धा. ना. चलि गयो, मो. चलि गयु (=गयउ), फ. बलि गयउ, अ. चलि गयउ शेष में 'चलि गयो' या 'चलि गयौ'। २. फ. मंदर दिसि, म. मंदिर दिसि, ना. मंदिर दिशह। ३. मो. रहु (=रहउ), धा. रह्यो, अ. रह्यउ; शेष में 'रह्यो' या 'रह्यौ'। ४. मो. जानि झुंझु (=झुझझउ), धा. जानि झुक्यो, अ. जानि जुझ्यौ, फ. जान जुझ्यौ, म. झुझ्यौ, उ. स. ना. झुझ्यौ। ५. धा. म. उ. स. अनिय।

(६) १. अ. फ. विझल, म. उ. स. विझदिय, ना. बीझदयौ। २. म. दा, ना. दागु। ३. अ. जिलक, फ. जलीक, म. तिलकहि, ना. उ. स. तिलकह। ४. ना. म. उ. स. मिसह, अ. मिस। ५. मो. बहुल भगि संभरि धनी, धा.—भग्गुल धविय, अ. बहु बहु बहु भग्गुल धनी, फ. बहु भगल धनी, म. बह

नइ नइ मगुर घनीय, उ. स. वइ मइ अइ मग्गल धनिय, ना. — हु मग समर घनी ।

टिप्पणी—(२) अभग्ग < अमार्ग । (३) पहु < प्रभु । (४) इयर < इतर । (५) वल < वलय्= लोट पड़ना । वह < वाह [फा.] ।

[२९]

दोहरा—परत देषि चालुक[१] धर[२] करिग्र[३] पंग दल कूह । (१)

जिम[१] सु[२] देव इंदहि परसि[४] रहे विंटि[५] अरि जूह[६] ॥ (२)

अर्थ—(१) चालुक विभ्रम को धरा पर गिरते देख कर पंग (जयचंद) के दल ने [इस प्रकार] कुहराम किया, (२) जिस प्रकार इंद्रदेव के पार्श्व में (पास) [आकर] अरि यूथ [राक्षस-दल] उन्हें वेष्ठित कर (घेर) रहे ।

पाठांतर—(१) १. मो. फ. चालूक । २. ना. रिण, फ. धर । ३ म. उ. स. ना. करिग ।

(२) १. धा. इम, अ. जिमि । २. फ. स. । ३ मो इंदिहि, ना. इंदह, म. उ. स. इंद्रह । ४. अ. फ. परसि । ५. मो. ना. अ. फ. विंट, धा. विरि, धा. विरि, म. वंद, उस. वींटि । ६. म. उ. स. अनजूह ।

टिप्पणी—(२) परस < पार्श्व । विंट < वेष्ठित ।

[३०]

कवित्त— राहु रूप[१] कमधुज्ज गज्जि[२] लग्गउ*[३] आयास कहु[४] । (१)

धार तित्थ उरि[१] जांनि फिरउ*[२] पंमार न्हान[३] तहं[४] । (२)

रुधिर[१] मधु[२] जव जीव करि तनु तिल मिलि पिंड उसि[३] । (३)

जु रत्त सीस अरि गहिग[१] पांनि[२] [सो]* गहे[३] केसि[४] कुसि[५] (४)

करि त्रिपति[१] सार नृप पंगु दल[२] अब्बू[३] पति जप सब्ब किय[४] । (५)

उग्गहउ*[१] ग्रहन[२] प्रथीराज रवि सलष अलष भुव[३] दान दिय[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) कमधुज (जयचंद) राहु रूप होकर गर्जन करके आकाश को जा लगा [और उसने रविरूप पृथ्वीराज को ग्रसना चाहा] । (२) [उस ग्रहण से अपने स्वामी को मुक्त करने के लिए] धारा-तीर्थ (रण-क्षेत्र) को हृदय में [अच्छा तीर्थ] जानकर [सलष] पमार उसमें स्नान करने के लिए मुड़ा (३) रुधिर का मधु था, जीवों का यव था, हाथियों के शरीर का तिल था इस प्रकार सब मिल कर उसका [दान का] पिंड बना; (४) शत्रुओं के रक्त सिर जो उसने पकड़ रक्खे थे, वही उसने हाथों में कुश-काँस पकड़ रखे थे; (५) सार (शास्त्रास्त्र) से पंग नृप (जयचंद) के दल को तृप्त कर आबूपति (सलष) ने सब जप किए, (६) तदनंतर सलष ने अलक्ष भुजदान (प्रहार) देकर पृथ्वीराज-रवि को उस ग्रहण से मुक्त किया ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. रहो रोपि, शेष सभी में 'राहरूप' । २. अ. फ. कमधुज्ज गज्ज, ना. कम धज्जगंजि । ३. धा. लग्यो, मो. लगु (= लगउ) अ. फ. लग्यउ, म. लग्गो, ना. उ. स. लग्यो । ४. धा. आयासहि,

अ. फ. आयास कइ, ना. आयास कई, उ. स. आकासइ, म. आसनइ ।

(२) धा. धारि तत्थं उर, फ. धार तिथ्थ उरि, अ. म. धार तिथ्थउर, ना. धार तिथ्थ तिसं । २. मो. फिरु (= फिरउ), धा. फिरिउ, अ. फ. फिर्‌यो, ना. म. उ. स. फिरयौ । ३. मो. पंमार कन्ह, धा. पांवारु नन्ह, शेष में 'पामार न्हान' । ४. धा. तहि, फ. तिह ।

(३) १. धा. रुधि, अ. फ. गुद्दसु (स-फ.) शेष में शेष में 'रुधिर' । २. ना. मद्धि । ३. धा. जब करि जीव तनु तिलमिलि पिंड बसि, अ. फ. जब (कन-फ.) जीव तिल सु (स-फ.) तन सीस पिंड उस, ना. जब जीव सतुत तिल मिलहि पिंड उस, म. उ. स. जब करिय जीव तनु (तन-म.) तिल जि पंड अस (पड असि-म.) ।

(४) १. धा. रत्तु सीस अरि गहिग, मो. जुरत सीस अरु गहिग, अ. फ. रत्त सुजल कर धग, म. उ. स. जुरित सीस अरि (अरि-म.) गहिय, ना. नचित सीस अरि गहहि । २. अ. फ. तहां, म. मानि, शेष में 'पानि' । ३. मो. गहे, धा. सुद्धियइ, अ. फ. सोहि यं, म. ना. उ. स. सोभियहि । ४. फ. हुसा । ५. मो. धा. कुसि, ना. कुश ।

(५) १. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. त्रिपति, केवल मो. में 'त्रिपति' । २. अ. फ. पंगह नृपति । ३. ना. अब्बुव, म. अबूझ । ४. मो. जप सब किमु (= कियउ ?), फा. जप सब्बु किय, अ. फ. ना. जस पुब्बु (पुब्ब.-ना.) किय, म. उ. स. जप सब्ब किय ।

(६) १. मो. उग्रहु (= उग्रहउ), धा. अउ ग्रह्यो. अ. ना. म. उ. स. उग्रह्यौ । २. धा. ग्रहति, ना. गहन । ३. मो. भुव, धा. भुज, शेष में 'भुअ' । ४. मो. दियु (= दियउ ?), धा. दिय, शेष में 'दिय' ।

टिप्पणी—(१) राइ < राहु । गज्ज < गर्ज । (२) तिथ्थ < तीर्थ । (५) त्रिपति < तृप्ति ।
(६) भुव < भुअ < भुज ।

[३१]

दोहरा—दिअउ दान जब्ब पंमार बलि[१] अरि पंगह सम[२] षेल । (१)
मरन[१] जानि[२] मन[३] सम्मझ तहु[४] लरिग लषन बघेल[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) जब [सलष] पमार ने [इस प्रकार] बलि का दान दिया, और शत्रु (जयचंद) के साथ उसने खेल किया, (२) मन में मरण का ही तत्व जानकर लखन बघेल लड़ गया ।

पाठान्तर—(१) १. धा. दीउ (=दिअउ) दान पावार जब, मो. दीउ (=दिअउ) दान जब पमार बल, अ. दिअउ (दियौ–फ.) दान पावार जब, ना. दीय दान पामार जब, म. उ. स. दियौ दाम पम्मार बलि (बल–म.) । २. धा. पंगह सन, म. उ. स. सारंगसम ।

(२) १. फ. परति । २. फ. मानि । ३. मो. मर (< मन), फ. म । ४. धा. मझ रिव, अ. मझ रन, फ. विझि रन; म. उ. स. मझि रव, ना. मझरत । ५. मो. लरिग लषन बघेलि, धा. गिरि लखिनह बघेल; अ. फिरि लष्षनह बघेल, फ. फिरि लष्षन बढ्ढौ, ना. म. उ. स. लरि लष्षन बघेल ।

[३२]

कवित—जिति समरि[१] लष्षन बघेल अरि हनिग[२] षग्ग वर[३] । (१)
ति घर तुट्टि[०१] बरनिहि[०२] परिग्ग[०३] निवरंति[०४] अघ्घ[०५] धर । (२)

तिहि गिध्धारव[1] रुलिग०[2] अंत्र०[3] गहि० अंतर लुकिग । (३)*
तरुणि[1] तेज रस वसिग[2] पवन पवनह घन वज्जिग[3] । (४)*
इहि नादि[1] ईश मथ्थउ धुनउ[2] अमिय बिंदु[3] ससि० उल्हसउ*[4] । (५)*
बिड्डरउ धवर[1] संकिय गवरि टरिग[2] गंग संकर हसउ[3] ॥ (६)*

अर्थ—(१) समर में जहाँ लखन बघेल ने श्रेष्ठ खड्ग से शत्रुओं का हनन किया, (२) [वहीं] उसका भी धड़ टूट कर धरणी पर गिर पड़ा और उसने आधे धड़ों को समाप्त कर दिया। (३) उसके [धड़ के] लिए गीधों का शोर होने लगा, और वे [उसकी] आँतों को लेकर अंतरिक्ष में लुक गए (अंतर्हित हो गए)। (४) [उसके सूर्य लोक में पहुँचने पर] तरणि (सूर्य) का तेज और रस (सौन्दर्य) [उसके तेज और रस (सौन्दर्य) के सामने] बासी पड़ गया; उसके पवन (प्राण) पवनों से भिड़ गए और घन बजने लगे—एक प्रचण्ड निनाद करने लगे। (५) उस निनाद को सुनकर [और ऐसे वीर का निधन जानकर] ईश (शिव) ने माथा पीट लिया, और [उनके मस्तक के] चन्द्रमा ने उल्लसित होकर अमृत बिंदु गिरा दिए; (६) [किंतु इस नाद से ही जब] उनका धवल बैल भड़क गया, गौरी शंकित हो गई, गंगा हट गई, और शंकर हँस पड़े।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ से हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में त्रुटित हैं।

(१) १. धा. जिते समर, मो. जिति (=जितइ ?) समरि, म. जिति (=जितइ ?) समर, अ. ना. जित समर, फ. जित समर, स. जीति समर। २. धा. आहनति, अ. फ. आहनिव, ना. मरि हने। ३. म. यंग (< पंग) बल।

(२) १. अ. धुकि, फ. धुंक, ना. ढुट्टि, स. तुट्टि। २. अ. धरि निह, फ. धरनिह, उ. स. धरनहि, म. ना. धरनिय। ३. अ. फ. परत, ना. ढुकंत, म. उ. स. धुकंत। ४. अ. ना. उ. स. निवरंत, फ. निवरति, म. निवरत। ५. म. कध अध।

(३) १. धा. तहाँ गिद्ध——, मो. तिहि गिधारवी, अ. रातइं अंतावलि, फ. तिह अंतरि पिन, म. उ. स. तहं (तहाँ—म.) गिद्धारव, ना. तिहि गिधारव। २. अ. ढलइ, फ. तुलिइ, ना. म. उ. स. रुरिग। ३. मो. अंत्र, अ. गिद्ध, फ. गद्धि, ना. म. उ. स. अंत। ४. धा. अंतर लगयो, मो. अंतर लूकागि, अ. अतर लग्गउ, फ. अंतर लिगउ, ना. अंतह लग्यौ, म. अंतह लगीय, उ. स. अंतर लग्गिग।

(४) १. मो. तरुणी, धा. फ. तरुन, अ. तरुनि, ना. तरुणि, म. उ. स. तरनि। २. धा. सब्बासु, अ. फ. गइ (गय—फ.) सुकि (सुकि—फ.), ना. म. उ. स. रसवसइ। ३. धा. पमुकि पावन घन च्चग्यो, मो. पवन पवनइ धन वज्जगि, अ. फ. लग्गि पवनाहत वग्गउ (हवगउ—फ.), ना. पमुकि पवन घन वज्यौ, उ. स. पवन पवना घन वज्जिग, म. पवन पन घन वगीय।

(५) १. धा. अ. फ. ना. तिहि (तिहिं—ना.) सद, म. उ. स. तिहिं नाद (नाइं—उ.)। २. मो. ईस मथु (=मथउ) धुनु (=धुनउ), धा. सीस संकर धुन्य, अ. फ. ईस मथ्थउ (मथ्थव—फ.) ढुण्यउ, ना. ईश मथ्थह धुन्यौं, म. उ. स. ईस मथ्यौ (मथौ—म.) धुन्यौ। ३. अ. फ. ना. म. उ. स. बुंद। ४. मो. उलसु (=उलसउ), धा. उल्हरयो, अ. फ. उल्हस्यउ, ना. म. उ. स. उल्हस्यौ।

(६) १. मो. बिडरु (=बिडरउ) धवर, धा. बिड्डर्यउ धवल, अ. बिड्डुरि वयल्ल, फ. बिडरीय व यल्ल, म. बिड्डुर्यौ धवल, ना. उ. स. बिडर्यौ धवल। २. धा. अ. फ. डरिग, ना. डरीय, म. उ. स. टरिय। ३. मो. संकर हसु (=हसउ), धा. सकर हस्यो, अ. संकरु हस्यउ, फ. ईशरु हस्यउ, उ. स. संकर हस्यो, ना. म संकर हस्यौं।

टिप्पणी—(१) खग्ग < खड्ग। (३) रूल < रोरूय्=खूब शोर करना। लुक=छिपना। (४) वसिअ< उषित्=वासी, पर्युषित। (५) मथ्थ < मस्तक। अमिअ < अमृत।

[३३]

दोहरा—परत[१] बघेल सुमेल[२] किय रन[३] राठउर*[४] सुमार। (१)
जब दस कोस ढिलिय रही[१] फिरि तोमर पाहार[२] ॥ (२)

अर्थ—(१) बघेल [लखन] के गिरते ही रण में राठौर (जयचंद) ने भारी मेला (हल्ला-धावा) किया। (२) जब दिल्ली दस कोस रह गई, तब तोंवर पहाड़ राय [युद्ध के लिए] लौटा।

*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

पाठान्तर—(१) १. फ. परित। २. धा. सुमेल। ३. धा. रठि, म. रिन, फ. राव। ४. मो. राठुर (=राठउर), धा. राठौर, अ. राठ्यौर, फ. राठौर, म. ना. उ. स. रट्ठौर।

(२) १. धा. मो. जब दस को दिली (दिलीय—मो.) रहिय (रही—मो.), अ. फ. ना. दस योजन ढिल्ली परहि (परहू—ना.), म. उ. स. कनवज ढिल्ली (ढिलीय, म. उ.) ककरह। २. धा. फिरि तोंवर त पहार, अ. फ, फिर तोंवर पाहार, ना. फिरि तूवर पाहार, म. उ. स. तोवर (तौवरि—म.) तिह पहार।

[३४]

कवित—दल पंगनि[१] रट्ठवर[२] फुनि ले[३] चंपिय ढिल्लिय धर[४]। (१)
तब जंपइ* प्रथिराज[१] पंड वंसह[२] पाहार नर[३]। (२)
हर हथ्थहि[१] हरि गहहि[२] वाम रष्षिहि[३] इनि वारहि[४]। (३)
सेस सीसु कंपियउ[१] दाड[२] डुल्लिय[३] भुवि[४] भारह[५]।× (४)
कहइ*[१] चंद अपुव्व[२] सुनु[३] नृप रष्षइ*[४] बिहु भुज[५] भरउ*[६]। (५)
फिरि कंपि संकि[१] जयचंद दल तोमर सिरि[२] टट्टर धरउ*[३] ॥ (६)

अर्थ—(१) राठौर पंग (जयचंद) के दल ने फिर दिल्ली की धरा को दबाया, (२) तब पृथ्वीराज ने कहा "पांडव वंश में पहाड़ [राय] नर [उत्पन्न हुआ] है।" (३) हरि ने हर का हाथ पकड़ा और कहा, "हे वामदेव इस बार तुम्हीं रक्षा करो।" (४) शेष का सिर काँप गया और उनकी डाढ भूमि के भार से डोल गई। (५) चंद कहता है, "यह अपूर्व [बात] सुनो, हे नृप, (पहाड़ राय) तुम [इस धरती को] दोनों भारी भुजाओं से रक्खो।" (६) तदनंतर जयचंद का दल काँप कर शंकित हो गया कि तोमर [पहाड़ राय] ने सिर पर टट्टर (शिरस्त्राण) धारण किया है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. सुपंग। २. धा. फ, राठोर, अ. राठ्यौर, ना. रट्ठौर, उ. स. रट्ठिवर, म. रवि किरनि। ३. धा. आनि आनि, मो. फुनि ले, अ. फ. चित्त (चित्ति—फ.), ना. म. उ. स. जाम। ४. मो

दिल्लिय धर, ना. ढिल्लीधर, फ. ढिल्लि धारत, म. ढिल्लीय भर, उ. स. ढिल्लिय भर।

(२) १. मो. तब जंपि (=जंपइ) प्रथीराज, धा. तब जंप्यो प्रिथिराज, अ. फ. तब जंपै पृथिराज, म. उ. स. तब जंपिय प्रिथिराज, ना. तूंअर तिहि पहार। २. ना. वंसीय। ३. धा. पहुरण हर, मो. म. उ. स. पाहर नर, अ. पहार नर, फ. पाहारत नर।

(३) १. धा. मो. हरि हथ्थवि, अ. हर हथ्थहि, फ. हर हथ्थहि, ना. हरि हतथइ, म. उ. स. हरि हथ्थौ। २. फ. गहि, स. गहिहि। ३. धा. बान रक्खहि, अ. फ. ना. बाम रष्षइ (रष्षै–फ. ना.), म. उ. स. बाम रष्षे (रषे–म.)। ४. धा. इनि बारह, अ. फ. इहि (इह–फ.) बारह, ना. वर बारह, म. इह बीरह; उ. स. इहि बीरह।

(४) मो. कंपीउ (=कंपियउ), धा. कंपियउ, अ. फ. ना. कंपियौ, उ. स. कंपियै। २. धा दाढ, अ. फ. ना. डाढ, उ. स. डढ्ढ। ३. धा. दिल्ली, मो. दिलीय, अ. फ. ढिल्लीय, ना. उ. स. ढुल्लिय। ४ धा. भई, ना. भुंइ, अ. फ. भूमि। ५. स. भीरह।

(५) १. मो. कहिहि, धा. कहै, अ. फ. म. उ. स. कवि, ना. कहि (=कहइ)। २. मो. अपूव, धा. इस अपुव, म. अ. फ. एह अपुव्व, ना. उ. स. एह आपुव्व। ३. धा. अ. फ. ना. सुनि। ४. रषि (=रषइ), धा. अ. फ. रक्खहि (रष्षहि–अ. फ.), म. उ. स. बीर मग्ग, ना. नृप रष्षन। ५. धा. बिहु भुव, अ. फ. बिहु (बेहू–फ.) भुव, ना. दुहुं भुअ, म. उ. स. उड्डर। ६. मो. भरु (=भरउ), धा. भरयो, अ. फ. म. उ. स. भरयौ, ना. भिरयो।

(६) १. अ. फ. फिरि (फिरु–फ.) कंपियो अंपि, उ. स. ठठुक्यो सेन, म. ठठुक्यो देषि। २. मो. फ. तोमर सिर, अ. तोमर सिरि, स. तोमर जए, उ. तोमर लब, म. तब तौंअर, ना. तिन सम छरि। ३. मो. दड्डर धरु (=धरउ), धा. टटडुर धरयो, अ. फ. म. उ. स. ढ्ढर धरयौ, ना. तूंवर परयौ।

टिप्पणी—(४) दाढ < दंष्ट्रा। भुवि < भूमि।

[२५]

कवित—वेद कोस[१] हर सिंघ[२] उभय[३] त्रियत[४] वड गुज्जर[५]। (१)

काम[१] बान हर नयन निडर[२] नीडर[३] सोइ[४] सुमभ्भर[५]। (२)

छगन पटन[१] पल्लानि कन्ह[२] षंची[३] दिग पालह[४]। (३)

अलहन द्वादस सकल[१] अचल विद्या गनि[२] कालह। (४)

सिंगार[१] विंभ्क[२] सलषह[३] सुकथ[४] लषन पाहार आहार सुउ[५]। (५)

इत्तनइ सूर भूभंति ही[१] ढिल्लियपति प्रथिराज भउ[२]॥ (६)*

अर्थ—(१) वेद [४] कोस हर सिंह [खींच ले गया], और उभय त्रियत [६] वड गूजर [कनक]; (२) काम-बाण [५] तथा हर नयन [३—अर्थात् आठ कोस—निडर नीडर उसी सीध में (सीधे दिल्ली की दिशा में) [खींच ले गया]; (३) छग्गन ने पट्टन [नामक घोड़े को] पलाना तो कन्ह ने [पृथ्वीराज को] दिग्पाल [१०] कोस खींचा, (४) अल्हन ने कुल द्वादश कोस [खींचा] और अचलेस ने काल की गणना कर (?) विद्या [१४] कोस खींचा, विंझ ने श्रृंगार [१६], सुकथ—पंचाक्षरान—[५ ?] सलष, लषन तथा पहाड़ राय ने आहार [१०, १० ?] कोस [खींचा], ऐसा मैंने सुना है। (६) इतने शूरों के जूझते ही पृथ्वीराज दिल्लीपति हुआ—अथवा दिल्ली पहुँच गया।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. फ. बेदे कोस। २. मो. हर संघ, धा. ना. हरि सिंघ, म. हरसिंह। ३ फ उभय ४

धा तिर्भाषिहि म गिम्मानि फ तियगुन ना उत य ५ मा गूजर धा गुज्जर, शेष में गुज्जर

(२) १. धा. अ. फ. इक्क, मो ना. म. उ. स. काम। २. फ. तिडर। ३. म. निभुर (< निड्डुर), ना. निड्डुर। ४. धा. भुइ, मो. सोइ, अ. फ. भय, ना. भौ, म. उ. स. भूमि। ५. मो. सुझर, धा. मज्झर, अ. फ. ६झ्झर, म. स. सुझ्झर, उ. सुद्धर, ना. डुब्भर।

(३) १. धा. छगन पत्त, अ. छगन पत्त, फ. छगन पति, ना. उ. स. छगन पट्ट, म. चाज पट्टन। २. मो. कंन, शेष सभी में 'कन्ह'। ३. धा. ना. पंचीय। ४. धा. अ. फ. म. ना. दूगपालह (दूगपालहि—फ.)।

(४) १. धा. अ. फ. अल्ह वाल (चाल—फ.) द्वादसनि, ना. म. उ. स. अल्ह (अल्हन—ना.) वाल द्वादसह। २. अ. विधा भनि, फ. विनं भनि।

(५) १. अ. फ. म. ना. श्रृंगार (श्रृगार—फ.)। २. ना. वीर। ३. मो. सिषिह, धा. सालष्ष, ना. सलषन। ४. धा. दिय, अ. फ. ना. लषन। ५. धा. अ. फ. पंगुराव फिरि गेह गउ, मो. लषन पाहार आहार सुउ, ना. सुकथ पहार तिदंच चौ, म. उ. स. लषन पहारति (पनपहाति—म.) पंच चय।

(६) १. धा. अ. फ. सामंत सत्त जुज्झे प्रथम, मो. इतनि (= इतनइ) सूर झुझंतिहि, म. उ. स. इत्तने सूर सथ झुझ्झे (झझ—म.) तह ना. इतन सूर झुर्भ्भ त रण। २. मो. धा. अ. फ. ढिल्ली (दिल्ली—मो. ढिल्लीय—अ. फ.) पति प्रिथिराज (प्रथीराज—मो.) भड, ना. म. उ. स. सोरौं (सोरं—म.) पुर (परि—ना) प्रथिराज अय (मो.—ना.)।

टिप्पणी—(२) सूझ < शुद्ध=सोध। (५) सुअ < श्रुत = सुना गया। (६) पत्त < प्राप्त।

[३६]

दोहरा— *दुहु नृपतिन रण धर कुसल[१] लभ्यु[२] सु कित्तिय[३] मूरु[४]। (१)*
जिहि गुनि[१] प्रगटत[२] पिंड किय तिहि संघरि गए[३] सूरु[४]॥ (२)

अर्थ—(१) दोनों नृपतियों का रण-धरा पर कुशल हुआ, और दोनों ने भूरि कीर्त्ति लाभ किया। (२) अपने जिस गुण से अपने पिंड प्रकट किए थे, उसी गुण से शूर संहार को प्राप्त हुए।

पाठांतर—(१) १. धा. म्रित धर कुसल न जेतु सह, अ. फ. राजन मृत घर (घरि—फ.) कुसर हुव, ना. राजाधृति घर कुशल हुव, म. उ. स. राजत म्रित (अत—म.) धर केलि सह। २. म. लाभ, ना. लब्ध। ३. मो. करत्तीय। ४. ना. नूर; म. उ. स. पूर।

(२) १. धा. तिहि मुख, अ. फ. ना. म. उ. स. जिहि गुन। २. धा. प्रगटस, फ. प्रगटिति, म. प्रगट। ३. धा. तिहि संघरि गय, अ. फ. ते संघरि गय, ना. तिहि संहारिग, उ. स. तिहि उत्तरि सुर, म. तिहि बतर सुर। ४. म. उ. स. मूर।

टिप्पणी—(१) धर < धरा।

९. पृथ्वीराज-संयोगिता का केलि-विलास
और
षड् ऋतु

[१]

अडिल्ल— ढिल्लिय[१] पति ढिल्लिय[२] संपत्तउ*[३] । (१)
फिरि पहु[१] पंग राय[२] घरि[३] जत्तउ*[४] । (२)
जिम राजन[१] संजोगि[२] सुरत्तउ*[३] । (३)
सुह दुह*[१] कहन[२] चंदु[३] हउं*[४] रत्तउ*[५] ॥ (४)

अर्थ—(१) दिल्ली पति (पृथ्वीराज) दिल्ली संप्राप्त हुआ—पहुँचा, (२) तदनंतर प्रभु पंगराज (जयचंद) घर कन्नौज गया । (३) जिस प्रकार राजा (पृथ्वीराज) संयोगी में अनुरक्त हुआ, (४) [उस] सुख-दुःख के कहने के लिए मैं चंद अनुरक्त हुआ ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. म. उ. स. दिल्लिय (दिलीय– मा. न.) ना. ढिल्ली । २. मो. दिल्लिय, म. दिल्ली, ना. ढिल्ली । ३. मो. संपतु (= संपतउ), धा. संपत्तउ, अ. फ. जु संपत्तउ (संपत्तौउ–फ.), म. उ. स. संपत्तौ, ना. सपत्तौ ।

(२) १. मो. पुदु ;शेष में 'पहु' । २. धा. रंगराउ । ३. धा. फ. उ. स. ग्रह, अ. ना. गृह, म. ग्रेह । ४. मो. जतु (= जत्तउ), धा. जत्तउ, अ. ना. उ. स. जत्तौ, म. जंतौ, फ. जुत्तउ ।

(३) १. मो. फिरि पुहु पंग राय, ना. जिम जिम राइ । २. मो. संयोग, शेष सभी में 'संजोगि' । ३. मो. सु रतु (= रत्तउ), धा. फ. सुरत्तउ, अ. म. उ. स. ना. सुरत्तौ ।

(४) १. मो. सुहु दुह (< दुहु), धा. फ. म. उ. सुहदुह, ना. दुह दुह । २. म. उ. स. करन । ३. मो. कंन्ह, म. चंदि । ४. मो. हु (= हउ), धा. मनु, अ. फ. न, म. उ. स. महि, ना. मन । ५. मो. रतु (= रत्तउ), धा. फ. रत्तउ, अ. रत्तउ, ना. म. उ. स. मत्तौ ।

टिप्पणी—(१) संपत्तउ < संप्राप्त । (३) रत्त < रक्त । (४) सुह < सुख । दुह < दुःख ।

[२]

दोहरा— दिव[१] मंडन[२] तारक[३] सयल[४] सर[×] मंडन[×] कमलांनु[×] । (१)
जस[×१] मंडन[×] नर[×] भर[×] सयल[×२] महि[३] मंडन महिलांनु[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) आकाश के मंडन (आभूषण) समस्त तारे होते हैं, और सर के मंडन (आभूषण)

कमल होते हैं, (२) [राजाओं के] यश के मंडन (आभूषण) समस्त भट जन होते हैं और मही के मंडन (आभूषण) महल होते हैं।

पाठांतर—× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. अ. दिवि। २ फ. मंडक। ३. म. तार। ४. मो. सथ, अ. सघन, फ. सयनु, ना. म. उ. स. सकल।

(२) १. अ. उ. स. रन, फ. रनु, म. रिन। २. मो. सय, धा. सयल, म. गहर, अ. फ. सुहरु, उ. स. सुभर; ना. में भी 'सयल' रहा होगा, जिस कारण उसमें प्रथम चरण के 'सयल' के बाद दूसरे चरणके 'सयल' तक की शब्दावली उसमें छूट गई। ३. मो. मिहि, ना. घर। ४. मो. मिहिलान, धा. महिलानु, फ. महिलाल।

टिप्पणी—(१)-(२) सयल < सकल।

[३]

दोहरा—महिलउ*[१] मंडन नृपति भिइ[२] कनक कंति[३] ललनानि[४]। (१)
तिहि[१] उप्परि[२] संजोगि नग[३] धरि रष्षउ*[४] वर वानि[५]॥ (२)

अर्थ—(१) महलों के भी मंडन (आभूषण) राजा (पृथ्वीराज) के रनिवास की कनक-कांतिवाली ललनाएँ थीं, (२) और उनके ऊपर [राजा ने] नग के समान वर वर्णी (अच्छे वर्ण वाली) संयोगिता को रक्खा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. मिहिल (< मिहिलउ), धा. अ. फ. महिलहि, ना. पहिलै, म. उ. स. महिलन। २. मो. नृपति भिहि, म. मंडन राजग्रिह, ना. मंड नृपति गृह। ३. मो. कन, शेष सभी में 'कंति'। ४. धा. अ. फ. उ. स. ललनालि, मो. म. ललनान।

(२) १. अ. फ. तिनि, ना. म. स. ता, उ. तात। २. मा. ऊपरि, धा. फ. म. ना. उप्परि, अ. उ. स. उप्पर। ३. मो. संयोगन, फ. संजोगि नासु, म. संजोगि नम, शेष में 'संजोगि नग'। ४. मो. धरि रषु (=रष्षउ), धा. धरि रक्खयो, अ. फ. विधि रष्यिय, ना. धनि राजन, म. उ. स. धरि राजन। ५. मो. म. उ. स. वलवान (बलवांत—म.), धा. वलिवान, अ. फ. वर वानि, ना. वलिवानि।

टिप्पणी—(१) कंति < कान्ति। (२) वानि < वर्णी।

[४]

दोहरा—सुभ[१] हरम्य[२] मंडिग[३] निपति दिपति[४] दीप[५] दिव लोक। (१)
मुकरु[१] मउष[२] अमृत[३] झरहि करहि[४] सु मनहि[५] असोक॥ (२)

अर्थ—(१) नृपति (पृथ्वीराज) ने शुभ (सुखदायक) हर्म्य बनवाया, जिसके दीप आकाश लोक तक प्रदीप्त होते थे। (२) उसके मुकुरों में [चंद्रमा की] मयूखों का अमृत झड़ा करता था, जो [दंपति के] मन को विशोक किया करता था।

पाठान्तर—(१) १. अ. सुभ्भ, फ. सुज। २. अ. फ. हुरम्मि। ३. धा. मंडिस, अ. फ. मंडिय। ४.

मो. दीपत, स. दीपति । ५. ना. दीव ।

(२) १. मो. मुकल्ल, धा. मुकल, अ. फ. मुकल, ना. मुकर, उ. स. मुकुर, म. मुकर । २. धा. मो. अ. मुष (=मउष), फ. मुषु, ना. म. मयूष, उ. स. मउष । ३. म. अकृति । ४. मो. करिहि, ना. करइ, ५. धा. जु मनुह, फ. म. ति मनहु ।

टिप्पणी—(२) मुकल < मुकुर । मउष < मयूख ।

[५]

*रासा—अगर धूम[१] सुष गउष[*२] उन्नयउ[३] मेघ जनु । (१)*
त[१] मोर मराल[२] निरखहिं रवहिं[३‡] मत्त[४] धुन[५] । (२)
सारंग साटिग[१] रंग पहक्क ति[२] पंषि रसि[४] । (३)
बिज्जुलिका कलसंति[१] झमंकहिं[२] जासु[३] मिसि[४] ॥ (४)

अर्थ—(१) [उस हर्म्य के] गवाक्षों के मुखों में अगुरु-धूम [शोभित] था, [जो ऐसा लगता था] मानो उन्नमित मेघ हो, (२) जिस [मेघ सदृश धूम] को देख कर मोर तथा मराल नृत्य करते और मत्त ध्वनि में शब्द करते थे, (३) सारंग (चातक) और सारिका क्रीड़ा करते थे और पक्षी गण आनंद पूर्वक चहकते थे, (४) और जिस मेघ सदृश धूम के मिस से [उस हर्म्य के] कलश बिजली [के सदृश] चमकते थे ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है
‡ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है ।

(१) ना. धूप, म. उ. स. धुम्म । २. मो. गुप्प (< गउष), धा. गोउष, अ. ना. गौष, फ. गौषि, म. उ. स. गोषह (गोषइ-म.) । ३. धा. उन्नय, मो. उनयन, अ. फ. कि उन्नय, ना. म. उनयौ, ना. उ. स. उन्नयो (उन्नयौ-ना. म.) ।

(२) १. मो. त, धा ना. अ. फ. में यह शब्द नहीं है, म. उ. स. तहय । २. म. उ. स. मल्हार । ३. मो. निरत्त टेरहि, धा. निरखहि रन्नहि, अ. फ. म. उ. स. निरतहि, ना. निरतहि रट्टहि । ४. धा. मित्त । ५. मो. धुर्न, धा. फ. धनु, अ. धुन, ना. म. उ. स. धनु (धन-उ. स.) ।

(३) १. मो. शारिग साट्गि, शेष में 'सारंग सारंग' । २. धा. ना. म. उ. स. पहुक्कहि, अ. पहक्कहि, फ. पहकरि । ३. मो. अ. फ. ना. पंष । ४. मो. रस, धा. रसि, म. रिस ।

(४) धा. अ. बिज्जल काक लसंति, मो. बिज्जुलि काक सति, फ. बिज्जलका कलसंत, स. बिज्जुलि कोकल सानि, म. उ. बिज्जुलिका काल सानि । २. धा. झनकहि, अ. झम घुहि, ना. झिमक्कहि । ३. मो. जास, धा. जासु, शेष सभी में 'जासु' । ४. मो. अ. ना. मिस, शेष में 'मिसि' ।

टिप्पणी—(१) गउष < गवाक्ष । उन्नयउ < उन्नमित । (२) रण्=शब्द करना । धुन < ध्वनि । (३) साटिग < सारिका । पंषि < पक्षी । (४) बिज्जुलिका < विद्युत् । कलस < कलश ।

[६]

रासा—दादुर सादुर[१+‡०] सोर नव नूपुर[२] नारि घन । (१)
मिलि सुरमध्धि[१] सधु[०] नत[२] माधुर[३] मंजुर्ख[४] मन । (२)
सावक[१] पंच पचीस[२] प्रजंक त[३] दून[४] तस[५] । (३)

तह तह[1] अथ्थि[2] सुवीन[3] प्रवीन ति[4] दासि[5] दस ॥ (४)

अर्थ—(१) [उस हर्म्य में] सघन नारियों के नव नूपुरों का रव दादुर तथा शार्दूल के शोर के सदृश था। (२) [उन नूपुरों के] स्वर के मध्य मधुव्रती और मधुर-प्रिय मधुकर मंजु मन से आ मिलते थे। (३) [उस हर्म्य में] पाँच-पचीस (अनेक) शालिकाएँ (सारियाँ) थीं, और उनमें उनकी दूनी पर्यङ्क (पलँगें) [प्रत्येक में दो-दो] थीं। (४) और उन [सारियों] में वीणा में प्रवीण दस-दस दासियों की अथाइयाँ थीं।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।
‡ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
¶ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. 'सादुर' शब्द धा. अ. फ. में नहीं है, पूर्ववर्ती शब्द से साम्य के कारण छूट गया है, ना. दादुर, उ. सारुर। २. मो. नव नूपपर, धा. जु नूपुर, अ. सु नूपुर, फ सुनूँपुर, ना. म. उ. स. नवन्पुर।

(२) १. मो. मिलि सूर मध्य, धा. मिमिलि सुर मध, अ. मिलिसुर मद्धि, फ. मिलि सुर मधु। २. धा. व्रत—कदाचित् पूर्ववर्ती 'मध' के साम्य के कारण 'मधु व्रत' का 'मधु' धा. में छूट गया है, फ. उ. स. मधुव्रत। ३. फ. माधुर, म. माधुरं, ना. मधुर। ४. मो. में यह शब्द नहीं है, अ. मंजि, फ. ना. मंज, म. उ. स. मझ्झि।

(३) १. मो. फ. सालुक। २. फ. पाविस, म. पचीस। ३. मो. प्रजंतक, अ. म. उ. स. प्रजंकति, फ. प्रयंकित, ना. प्रजंकति। ४. अ. फ. में यह शब्द छूटा हुआ है। ५. अ. दस, फ. विस, ना. रस, म. दस।

(४) १. धा. तह तह, मो. ताहां ताहां, अ. फ. ना. तह तह, उ. स. तहं, म. तहां। २. धा. म. अथि, अ. फ. इथ्थि, ना. अच्छि। ३. मो. सुचि, धा. सुरचीन्ह, अ. ना. सुवीन, फ. सुधान, उ. स. परवीन, म. प्रवी—। ४. म. स वीनति, उ. स. सुवीनति। ५. मो. अ. फ. दास, शेष में 'दासि'।

टिप्पणी—(१) सोर < शोर [फा.]। (३) सालक < शालिका=घर के कमरे। प्रजंक < पर्यङ्क। (४) अथ्थि < आस्थान = अथाई। वीन < वीणा।

[७]

रासा—के[1] जुव[2] जूथ[3] जि[4] वाद[5] प्रमादहिं[6] मंद[7] गति। (१)
के चल[1] अंचल[2] वायु[3] निरूपहिं[4] सद्द[5] रति[6]। (२)
के वर[1] भाष[2] पराक्रति[3] संक्रति[4] देव सुर। (३)
के गुन ग्यान सुजान[1] विराजहिं[2] राज वर ॥ (४)

अर्थ—(१) [उस हर्म्य में] या तो जुवती-यूथ, जो [वाद्यों का] वादन करता था, अपनी मंद गति से [राजा को] प्रमादित करता था, (२) या तो वह अपने हिलते हुए अंचल के वायु से शब्द-रति (ध्वनि प्रेम) का निरूपण करता था, (३) या तो वह श्रेष्ठ प्राकृत अथवा देव-स्वर (देव-वाणी) संस्कृत में संभाषण करता था (४) और या तो वह गुण-ज्ञान-सुजान श्रेष्ठ राजा का मनोरंजन (?) करता था।

पाठान्तर—(१) १. धा. कैव। २. मो. धुब, धा. ध्रुब, म. ध्रुअ, शेष सभी में 'ध्रुव'। ३. धा. बुध, म. ना उ. स. जुधष। ४. अ. फ. ना. म. उ. स. ज। ५. म. वाचि, ना. वादि, अ. फ. वाचि। ६. धा. प्रमादति, फ. प्रवाहरि, ना. प्रमादिहि। ७. मो. माद, शेष सभी में 'मंद'।

(२) १. म. उ. स. ना. वल, अ. वर, फ. उर। २. अ. फ. अंवर। ३. धा. वाद, अ. बाइ, फ. बीय, ना. वाम, म. बाय, ३. स. पाय। ४. धा. निरुप्पहि, अ. फ. तिरूपहि। ५. अ. जव, फ. अदि, ना. साद, म. उ. स. सरद। ६. म. रिति।

(३) १. म. तेवर। २. धा. भाषि, फ. माषु। ३. धा. पराक्रिति, अ. फ. पराक्रित, उ. स. ना. पराक्रत, म. पराक्रित। ४. धा. संक्रिति, अ. फ. राकृति; म. संसक्रित, उ. स. संकृत, ना. आकृत।

(४) १. अ. फ. ना. म. उ. स. वर बीन (वर बीन प्रवीन—फ.) (तु० पूर्ववर्ती छन्द का अंतिम-चरण)। २. अ. फ. विराजहि बीर बर, उ. स. विराजित राजहि वार वर, म. विराज्जत राज दरबार बर, ना. बिराजइ राजहि राव।

टिप्पणी—(२) सद < शब्द। (३) पराक्रति < प्राकृत। संक्रति < संस्कृत।

[८]

रासा—इह[१] विधि बिलसि बिलास असार सुसार[२] किय[३]। (१)
दइ*[१] सुष जोग संजोगि[२] सोइ[३] प्रथिराज जिय[४]। (२)
अहनिसि सुधि° न° जानहि[१] माननि[२] प्रौढ रति। ‡(३)
गुरु बंधव भृत[१] लोइ[२] भई[३] विपरीत[४] गति॥‡(४)

अर्थ—(१) इस प्रकार विलासों को विलस कर [पृथ्वीराज ने] सुसार (सामर्थ्य-शक्ति) को भी असार कर दिया; (२) वह संयोगिता को सुख-योग प्रदान करे, यही पृथ्वीराज के जी में रहा करता था; (३) मानिनी (संयोगिता) की प्रौढ़ रति में [पड़ कर] वह दिन और रात की भी सुधि नहीं जानता था—नहीं जानता था कि कब दिन होता है और कब रात; (४) परिणाम-स्वरूप उसके गुरु, बांधवों, भृत्यों और लोक (प्रजा) की गति विपरीत [उसके विरुद्ध] हो चली।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं।

(१) १. म. उ. स. इम। २. धा. फ. असार तिसार, अ. असार तसार, ना. असार संसार, म. म. आसर सुसार। ३. म. कीय।

(२) १. मो. दि (=दइ), धा. दिव, अ. फ. म. उ. स. छै। २. मो. योग सयोग, म. जोगि संयोगि, अ. फ. जोग संयोजन (संयोजनि—फ.) शेष में 'जोग संजोगि'। ३. धा. अ. फ. उ. स. प्रिथी, ना. प्रथी, म. भोगि। ४. म. प्रीय, ना. प्रिय।

(३) १. धा. अह निसि सुधि न जानत, म. अह निसि सुधि न जानिवे, ना. दै सुष सुष संजोग (तुल० चरण २)। २. धा. माननि, म. मानिय, ना. प्रमानी।

(४) १. धा. बंध भव भृति, ना. बंधौ।

म. में यह छंद ९.२४ तथा ११. १२० पर दो बार आता है। ९.२४ का पाठांतर ऊपर दिया जा चुका है और ११. १२० में इन चरणों का पाठ है:

ज्यौं रति सगम मार न आन रयन (रयनि—म.) दिन ।
केत कि कुसुम सुभाय रह्यौ मनु (मेनु—म.) भ्रमर मन ।

म. में यह छंद दो प्रसंगों में आता है; एक तो पृथ्वीराज के कन्नौज-प्रयाण के पूर्व (९.२४) और पुनः यहाँ पर । प्रथम स्थान पर पाठ धा. मो. का ही है, दूसरे स्थान पर पाठ उ. स. का है । अ. फ. में ये दोनों चरण नहीं है ।

टिप्पणी—(४) भूत < भूत्य । कोइ < कोक ।

[९]

साटिका —सामग्गं कलधूत नूत[२] सिक्वरा[३] मधुलेहि[४] मधु[५] वेष्टिता[६] । (१)
वाते[१] सीत सुगंध मंद सरसा[२] आलोल सा चेष्टिता । (२)
कंठी कंठ[१] कुलाहले मुकलया[२] कामस्य[३] उद्दीपनी[४] । (३)
रत्ते रत्त वसंत पत्त° सरसा°[१] संजोगि°[२] भोगाइते°[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) [जिस वसंत में वृक्षों के] शिखरों पर [पुष्पाभरण के कारण] नूतन कलधूत (सोने-चाँदी) की समग्रता हो गई है और मधुलेहिन (भ्रमर) मधु-वेष्टित हो रहे है, (२) वात (वायु) शीतल मंद और सुवासित तथा सरस हो गई है और वह चपलता के साथ चेष्टित हो गई है—बह रही है, (३) कंठी (कोकिल) के कंठ के कोलाहल से मुकुलों (कलियों) में काम का उद्दीपन हो रहा है, (४) तथा जो वसंत सरस [लाल] पत्तों के कारण लाल हो रहा है, संयोगिता ऐसे वसन्त में [पृथ्वीराज द्वारा] भोगायित हो रही है ।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द धा में नहीं है ।

यह छंद ना. में २९.८६ आ. तथा ४१.१० है । यहाँ पर ना. का पाठान्तर ४१.१० का दिया जा रहा है ।

(१) १. मो. सामंता, अ. फ. श्यामंग, ना. सामग्ग, म. उ. स. स्यामंगं । २. धा. अच्छ, मो. नू । ३. अ. सिषिरे, फ. ना. शिषरे, म. उ. सिखरे, स. सिषर । ४. धा. अ. फ. म. मधुरेहि, ना. मधुरेय, उ. स. मधुरे । ५. म. उ. समधू । ६. म. चेष्टिता ।

(२) १. अ. फ. वाता । २. धा. सरिसा । ३. म. स ।

(३) १. धा. अ. फ. कुल, मो. म. उ. स कंठ । २. धा. वकुलया, अ. फ. वकुल. कामानि, ना. कामाय । ४. धा. उद्दीप—'अ. फ. उद्दीपनो' म. उ. स. उद्दीपने, ना. उद्दीपनं ।

(४) १. धा. में 'रत्ते रत्त वसंत' के अनंतर की छंद नहीं शब्दावली का है । अ. फ. रे (रै—फ.) लेतें दिवसा तर्पति सरिसा, म. उ. स. रत्ते रत्त वसंत मत्त सरसा । २. मो. संजोग, अ. फ. म. उ. स. संजोग ना. संजोगि । ३. मो. भोगायनी, अ. फ. भोगाइते, ना. म. उ. स. भोगायते ।

टिप्पणी—(१) सामग्गं < सामग्र्य—सम्पूर्णता । (४) पत्त < पत्र ।

[१०]

साटिका—दीहा[१] दिव्य[२] सदंग[३] कोप[४] अनिला [५]आवर्त्त मित्ताकरं[६] । (१)
रेनं[१] सेन[२] दिसान[३] थान मलिना[४] गोमग्ग आडंबरं[५] । (२)

नीरे नीर[१] अपीन[२] छीन[३] छपया[४] तपया तरुणया तनं[६] । (३)
मलया चंदन[१] चंद मंद[२] किरणा[३] सु ग्रीष्म[४] आसेचनं[५] ॥ (४)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज से संयोगिता कहती है,] "[जिस ग्रीष्म में] दिन दिव्य (तप्त लौहादि) [के समान] हो रहे हैं, अनिल (वायु) शब्द करती हुई कुपित हो गई है, और मित्राकर (सूर्य की किरणों) से उत्पन्न आवर्त्त (बवंडर) उठने लगे हैं, (२) रेणु की सेनाओं से दिशाएँ तथा स्थान मलिन हो रहे हैं, [यथा] गो-मार्ग (गायों के खरिक में जाने-आने के मार्ग) में उठे हुए आडंबर (गर्द-गुबार) से हों, (३) जहाँ जो भी नीर था वह अपीन (क्षीण) हो गया है, रात्रि भी क्षीण हो गई है, और तप (गर्मी) का तनु तरुण हो गया है, (४) मलय [समीर], चंदन और चंद्रमा की मंद किरणें ही [ऐसे] ग्रीष्म में [मुरझाते हुए प्राणों का] आसेचन (सिंचन) करने वाले हो रहे हैं।"

पाठान्तर—[*]चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. मो. दिहा। २. धा. दव्व, मो. दिव्य, अ. फ. म. उ. स. दिव्व। ३. मो. शंदंस, धा. म. उ. स. सर्दंग, अ. फ. सुदग, ना. समंद। ४. धा. कूप। ५. मो. अनिलो, म. अनिलं, फ. अनिल। ६. मो. धा. अ. फ. मित्राकरं (=मित्ताकरं), ना. म. मिताकरे।

(२) १. धा. रेणे, अ. फ. रेने, ना. म. उ. स. रेनं (रेणं—ना. म.)। २ धा. सेणि। ३. धा. नदीस, मो. दि, शेष अंश शब्द का नहीं है, अ. फ. दिसेन। ४. ना. उ. मलिन, स. मिलनं, म. मलिने। ५. मो. आडंमरं, म. ना. आडंबरे।

(३) १. अ. फ. नीरे नीर, म. नीर नीर। २. धा. अवीन, फ. अपीर। ३. धा. छीनि, फ. चीन। ४. धा. म. छिपया। ५. स. तरुर्या। ६. फ. तमं।

(४) १. फ. चंदल। २. अ. फ. नंद। ३. धा. किरणा, मो. म. ना. किरणी, अ. फ. किरणे, म. उ. स. किरनं। ४. धा. अ. फ. म. ग्रीष्मे च, ना. ग्रीष्मे सु, उ. ग्रीष्मं च, स. ग्रीष्म च। ५. मो. असेमनं, धा. आसेवनं, अ. आषेचनं, उ. स. आषेवनं, म. आपिमनं, फ. में 'आ' के बाद अगले छंद के 'वसुंधरा' (चरण. ३) के 'व' तक का अंश नहीं है।

टिप्पणी—(१) दीहा < दिवस। सद < सद्द < शब्द। (२) रेन < रेणु। थान < स्थान। गोमग्ग < गोमार्ग। (३) छीन < क्षीण।

[११]

साटिका—आर्द्रे[१] वद्दल[२] मत्त मत्त[३] विषया[४] दामिनि[*५] दामायते ।[*](१)
दादुर्ल[१] दल[२] सोर मोर सरसा[३] पप्पीहान्[४] चीहायते ।[*](२)
श्रृंगाराय[*१] वसुंधरा[२] ललितया[३] सलिता[६] समुद्रायते[७] । (३)
यामिन्या[१] सम वासरे[२] विसरता[३] प्रावृट्[४] पश्यामि ते ॥ (४)

अर्थ—(१) "[जल से] आर्द्र बादल विषय में मत्त हो रहे हैं, और [उनकी प्रिया] दामिनी दमक रही है; (२) दादुरों का दल मोरों के साथ ही शोर कर रहा है और पपीहे चीत्कार कर रहे हैं; (३) लालित्यपूर्वक वसुन्धरा ने शृंगार किया है, और सरिता [बढ़कर] समुद्रायित हो रही (समुद्र बन रही) है (४) यामिनी के समान ही [अंधकार पूर्ण] होकर वासर (दिन) भी जा

रहे (व्यतीत हो रहे) हैं, वर्षा में ऐसा दिखाई पड़ रहा है ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

‡ चिह्नित अक्षर, शब्द और चरण फ. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित चरण अ. में नहीं है ।

(१) १. उ. अद्दे, म. स. अब्दे । २. मो. बादल, धा. अ. म. ना. उ. स. बद्दल । ३. यह शब्द ब. में नहीं है । ४. अ. दिसया, ना. दिशेया, उ. स. विसया । ५. मो. दामिनी; धा. अ. ना. उ. स. दामिन्य, म. दामन्य ।

(२) १. धा. दद्दुरे, मो. दादुले अ. फ. म. उ. स. दादूरं, म. दादूलं, ना. दादुलयं । २. उ. स. दर । ३. धा. उ. स. सरिसा, ना. करणं । ४. मो. पंपीहान (< पप्पीहान), धा. म. ना. उ. स. पप्पीह ।

(३) धा. अ. सिंगाराय, स. श्रृंगारीय । २. मो. चबुवरा । ३. धा. अ. फ. सुलकिता, म. ससकिता, स. मलिलता, उ. सलिलता । ४. मो. सालिता, म. उ. स. लीला । ७. म. समुद्राय, उ. मुद्रायते ।

(४) १. ना. जामर्म्य । २. उ. स. वासुरो, म. वासरो । ३. धा. अ. फ. विसरिता, मो. ना. बिसरजा (विशरजा–म.), म. विसुरता, उ. स. बिसरता । ४. मो. परवट, धा. अ. प्रावृट सु, फ. प्रावृस्य, ना. पुरपट्ठ, उ. स. पावरअ, म. पावस्य । ५. मो. पश्चामिते, ना. वस्थामिते, उ. स. पंथानते, म. पंथामही ।

टिप्पणी—(१) अलि < आर्द्र । (२) दादुल्ल < दर्दुर । चीह = चीत्कार करना । (३) सलिता < सरिता ।

[१२]

साटिका—पित्ते पुत्त[१] सनेह गेह[२] मुगता[३] युक्तानि दिव्या दिने[४] । (१)

राजा छत्रनि साजि[१] राजि[२] षितया[३] नंदाननब्भासने[४] । (२)

कुसमे[१] कातिक[२] चंद निम्मल[३] कला दीपांनि वर दायते[४] । (३)

मां मुक्कइ*[१] पिय बाल नाल[२] समया सरदाय दरदायते[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) "जो पिता-पुत्रादि के स्नेह और गृह का भोग कर रही है, [अथवा] जो युक्ता (संयोगिनी) है, उसके लिए दिन दिव्य है; (२) राजागण छत्रों को साजकर और [अपनी] क्षिति पर शोभित होकर आनंद युक्त आननों से भासित हो रहे हैं; (३) कुसुमों और चंद्रमा की कलाएँ कार्तिक में निर्मल हो गई हैं, और दीप वरदायी हो रहे हैं—दीप-दान से लोग वाञ्छित फल प्राप्त कर रहे हैं; (४) हे प्रिय, बाला को इस [कमल] नाल [के निकलने] के समय में न छोड़ [क्योंकि] शरद का दल दिखाई पड़ रहा है ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. पत्ते, पत्त मो. पित्ते पित्र, अ. फ उ. स. पित्ते पुत्त (पुत्र–फ.) म. पुते पित्रि, ना. पुत्रं पुत्रि । २. धा नेह, स्नेह । ३. धा. भुगतान, मो. युक्तान, अ. मुक्ता, फ. मुक्ताधि, ना. जुगतानि, उ. स. जुगतान, म. जुक्तान । ४ म. दिव्याइने, धा. ना. स. दिव्यादने, फ. दिव्यादन ।

(२) १. धा. अ. फ. साज । २. धा. अ. फ. म. राज । ३. धा. अ. फ. म. ना. छितया, उ. स. छितिया । ४. मो. निदाननभयासने, धा. निद्दादला भासिते, उ. फ. निंदाचला भासिते (भासितो–अ.), उ. स. निदायिनीवासने, म. नंदाननंभासने, उ. स. निदायिनी वासने, ना. नंदानित भ्भासते ।

(३) १. धा. कुसुम अ. म. उ. स. ना. कुसुमे। २. धा. अ. फ. कातिग, ना. स. कंतिक (=कत्तिक), उ. स. षंतन। ३. धा. निम्मल, शेष में 'निर्मल'। ४. धा. अ. फ. दीपान (दीपन—फ.) बरदायते (वायते—धा.), उ. स. दीपायं वरदायने, म. दीपा वरदाइने, ना. दीपायन वरदायते।

(४) १. मो. मूंकि (=मुक्कइ), धा. अ. फ. म. उ. स. मुक्के, ना. मूके। २. म. जाल। ३. फ. सरदाइ दरदाइते, उ. स. सरदाथ दरदायने, म. सरदावर दाइने।

टिप्पणी—(१) गेह < गृह। (२) चित < क्षिति। (३) मूक < मुच्। (४) दर < दल। दा अ < दर्शय् (?) = दिखलाना।

[१३]

साटिका—छीनं[१] वासर स्वास दीघ[२] निसया शीतं जनेतं[३] वने[४]। (१)
सज्ज[१] संजर[२] बान यौवन तया[३] आनंग[४] आनंगने[५]। (२)*
यउ बाला तरुणी निवृत्तपत्रा नलिणी[१] दीना न जीवा षिणे[२]। (३)*
मा कांत[१] हिमवंत[२] मत्त[३] गमने[४] प्रमदा[५] न आलंबने[६]॥ (४)

अर्थ—"(१) वासर श्वास के सदृश क्षीण हो रहा है, और निशा दीर्घ होने लगी है, बस्तियों और वनों में शीत व्याप्त हो रहा है, (२) यौवन के कारण शय्या संज्वर-कारिणी हो गई है, और अनंग ही अनंग [का अधिकार] हो गया है, (३) जो बाला तरुणी है, वह निवृत्त-पत्र (जिसके पत्ते झड़ गए हैं, ऐसी) नलिनी के सदृश इस प्रकार दीन हो गई है कि क्षण भर भी जीवित न रहेगी। (४) हे कान्त, मत्त हेमंत में गमन न करो, क्योंकि प्रमदा आलंबन (अवलंब) हीन हो जावेगी।"

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. फ. छीनं, म. च्छीनं, ना. उ. स. छिन्नं। २. मो. सास दीघ, धा. स्वास द्रिध्व, ना. म. दिग्ध दिग्व, उ. स. सीत दीघ। ३. धा. सीतं जीतं, अ. फ. सीते (सीत—फ.) न जीतं। ४. धा. अ. ना. बने, मो. वनं, फ. पिते, म. तने।

(२) १. धा. अ. फ. सज्जा, स. सेजं, उ. सेतं, म. सिज्जा। २. धा. साझर, म. सिज्जर, मो. अ. फ. ना. उ. स. सज्जर (< संजर)। ३. धा. वाण जुव्वन तया, अ. फ. वास जूह तनया, ना. बान या बनतया, म. उ. स. वानया वनितया (वनितया—म.)। ४. धा. आमंग। ५. धा. आनंदने, अ. आनंगते, फ. आनंगिते, उ. स. आलिंगने, म. आमंगने।

(३) मो. यु (=यउ) वाला तरुणी व्रतपत्त नलणी, धा. अ. फ. बाला तंतु निवृत्त पत्त (निवृत्ति पत्ति—फ.) नलिनी, उ. स. यौं बाला तरुणी वियोग पतनं, म. ज्यौं बाला नलिनी निवृत्ति पतिनी, ना. जे बाला तरुणी व्रतत्ति नलिनी। २. मो. दीनेश दीना न जीवा षिणे, धा. अ. फ. दीना नि (न—अ. फ.) जीव छिने, म. दीना न नाचांक्षने, उ. स. नलिनी दहते हिमं।

(४) १. धा. अ. फ. सा क्रांति, ना. मा कंते, प. माकं ते, ना. उ. स. मा मुक्के। २. मो. हिमवंत, ना. हिमवत्त। ३. धा. समंत, ना. वत्त। ४. अ. फ. गवने, ना. गहने। ५. मो. म. प्रमुदा। ६. धा. अ. निआलंबने, फ. निआलबिने, उ. स. निरालंबनं।

टिप्पणी—(२) सज्ज < शय्या। संजर < संज्वर। (३) षिण < क्षण।

[१४]

साटिका—रोमाली वन नीर निध्ध वर्ये[१] गिरि डंग[२] नारायते[३]। (१)

पव्वय[१] पीनर कुचानि[३] जानि सयला[४] फुंकार[५] झुंकारये[६] । (२)
शिशिरे सर्वरि[१] वारणो च[२] विरहा[३] मम[४] हृदय[५] विद्दारये[६] । (३)
मा कांत[१] मृगवध[२] सिंघ[३] गमने[४] किं देव[५] उव्वारये[६] ॥ (४)

अथ—(१) "[मेरी] रोमावली वन है, श्रेष्ठ स्नेह-नीर ही गिरि और द्रंग की जल की धारा है, (२) [मेरे] पीन कुच मानो समस्त पर्वत हैं, मेरी जो फुङ्कार (सीत्कार) है, वही मानो [पवन का] झकोर है, (३) शिशिर की शर्वरी (रात्रि) में विरह ही वह वारण (हाथी) है जो मेरे हृदय [की वाटिका] को तहस-नहस कर रहा है, (४) उस विरह रूपी मृग (वनचारी वारण) का वध करने वाले सिंह, हे कांत, तुम गमन मत करो; हे देव क्या, नारी के हृदय को इस विरह-वारण से उबारोगे ?"

पाठान्तर—(१) १. धा. रोमाली वन नील भूधरवरं, अ. फ. रोमाली घननील भूधर (भूधरि—फ.) धरं, ना. म. उ. स. रोमाली (रोमावली—म., रोमावलि—ना.) वन (ना. में यह शब्द नहीं है) नीर निद्ध (निद्धि—म.) वरणो (निवयो—उ., वरयौ—ना.) । २. धा. दंगु, अ. फ. डंगु (डंग—फ.), म. ना. स. दंग, उ. दंत । ३. धा. नारायते, मो. ररायते, म. नीरायते, ना. नाराइते ।

(२) १. मो. अ. फ. पव्वय, म. पव्वय । २. ना. पीर । ३. म. कुचानि । ४. अ. सिथिला, फ. सिथला, ना. सकला, म. उ. स. सउया । ५. अ. फ. कुंकार (कुंकाम—फ.), म. हुंकार, ना. कुंकार । ६ मो. झंकारये, धा. हूंकारया, अ. फ. झुकारया, ना. म. उ. स. झुंकारए ।

(३) १. मो. शशिरे सर्वनि, फ. शिशिरे सर्वनि, ना. ससिरे अव्वरि । २. धा. मा. वारणी च, अ. वारिणेयं, फ. वारणेय, म. वारणोच, उ. स. वारुनीय । ३. म. विरही । ४. धा. सा, मो. मम, शेष में 'मा' । ५. मो. हृदय, धा. हिंदं, अ. फ. हृष्ट, ना. उ. स. हद्द, म. सद्द । ६. धा. मुद्दारया, ना. मुव्वारए, उ. स. झुव्वारए, म. संवारए ।

(४) १. धा. कांति, अ. फ. कांति; ना. म. उ. स. कंते । २. धा. म्रिगवध्य, अ. फ. मृगवद्ध । ३. म. उ. स. सध्य, ना. सद्ध । ४. धा. गमणे, अ. फ. गवने । ५. मो. देइ अ. फ. दोव, उ. स. दव । ६. धा. धूव्वारया, अ. उज्ञारये, फ. उज्ञारया, ना. म. उ. स. उव्वारये ।

टिप्पणी—(१) रोमाल = रोमावली । निद्ध < स्निग्ध । दंग < द्रंग = नगर । नार < जल । (२) पव्वय < पर्वत । सयल < सकल । (३) वारण < वारण । (४) उव्वार < उद्+वर्तय (?) ।

१० : पृथ्वीराज का उद्बोधन

[१]

अड़िल्ल—सकल लोइ[१] पुच्छन[२] गुरु इच्छहि[३] । (१)
गुरु षट मास राज नहि[१] दिष्षहि । (२)
जब[१] (?) परजातु[२] प्रपंच[३] उपायउ[*४] । (३)
तब गुरु पुच्छन[१] चंदहि[२] आयउ[*३] ॥ (४)

अर्थ—(१) समस्त लोक (प्रजा गण) गुरु (राजगुरु) से यह पूछने की इच्छा करते थे, (२) "हे गुरु, राजा छः महीने से नहीं दीख रहा है।" (३) जब प्रजागण ने यह प्रपंच उत्पन्न किया, (४) तब गुरु (राजगुरु) चंद से पूछने के लिए [चंद के पास] आए।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. शा. लोक। २ मो. पुंछन (= पुच्छन)। ३. मो. गुरुच्छिहि (= गुरु [इ] च्छहि), शा. स. गुरु अच्छहि।

(२) १. धा. अ. फ. नन (अनु—फ.), शा. स. त्रिन।

(३) १. अ. फ. वह शेष, में 'तव' (< जब ?)। २. मो. परवान, धा. प्रजातु, अ. प्रजानै (< प्रजानि), फ. प्रधानै (< प्रधानि !), ना. शा. स. परजानि। ३, धा. परपंच फ. परचंड। ४. मो. उपाउ (= उपाअउ), धा. उपायो, फ. उठायो, शेष में 'उपायो'।

(४) १. धा. मो. पूछहन, अ. पुच्छन, फ. पूछतु। २. मो. चंदुहु, शा. चंदह, शेष में 'चंदहि'। ३. मो. आयु (= आयउ), धा. आयो, शेष में 'आओ' या 'आयौ'।

टिप्पणी—(१) लोइ < लोक = प्रजा। (३) उपाअ < उत्+पादय् = उत्पन्न करना।

[२]

दोहरा—आदर[१] चंद अनंद[२] किय ग्रिह[३] आवत[४] गुरुराज[५]। (१)
सम सुत त्रिय[*१] चरननि परिग[२] आगइ[*३] फिरिग[४] सब साज[५]॥ (२)

अर्थ—(१) चंद ने गुरुराज के गृह आने पर [उनका] आदर किया और आनंद मनाया; (२) [अपने] पुत्र तथा स्त्री के साथ वह [गुरुराज के] चरणों में गिरा और उसके आगे सब साज फिर गया (समस्त अभिप्राय स्पष्ट हो गया ?)।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. आदूर.। २. अ. फ. अनंत। ३. मो. ग्रिहि, धा. ग्रिह, शेष में 'ग्रिह'। ४. फ. आउति। ५. शा. गुरुराम।

(२) १. मो में यह शब्द नहीं है, धा. सतियनि, अ. फ. सत्रियणि, ना. त्रिय, शा न. त्रियनि सु, स. त्रियन सु। २. मो. चरणन परिग, धा. अ. शा. स. चरन (चरण—अ.) परि, फ. चरन परत, ना. चरननि परिग। ३ मो. आगि (= आगइ), धा अ. फ. सिर (सिरु—फ.), ना. अगें। ४. धा. अ. फ. ना. फेरिग। ५. शा. हाम।

[३]

सुडिल्ल—तब[१] गुरराज[२] राजकवि[३] बुम्फइ*[४] । (१)
तुहि[१] बरदाइ[२] तिन्न[३] पुर सुम्फइ*[४] ।‡ (२)
जिहि[१] अहनिसि[२] सेव देव[३] गुरु बानी[४] । (३)
तिहि[१] षटु मास मिले बिनु जानी[२] ।। (४)

अर्थ—(१) तब गुरुराज राजकवि (चंद) से पूछने लगे, (२) "हे बरदाई, तुझे तीनों पुर—आकाश पाताल और मर्त्य लोक – सूझते हैं; (३) अहर्निश (दिन-रात) देवता तथा गुरु की सेवा करना जिसकी बान थी, (४) उस [पृथ्वीराज] को [मुझसे] मिले बिना छः मास हुआ जानो।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित चरण ना. में नहीं है।

(१) १. धा. तिहि, ना. सुनि, शेष में 'तब'। २. ना. कविराय । ३. मो. ना. राजगुरु (राजगुर–ना.) शेष में 'राजकवि' । ४. मो. बूझि (= बूझइ), ना. बुझ्झहि, शा. सा. बुझ्झै, अ. फ. बुझ्यौ।

(२) १. अ. फ. तूं, शा. तोहि। २. शा. स. बरदाय, धा. बरदाई । ३. धा. तिन्नि, मो. तिन, आ. तिहूं, फ. तिहौं, शा. स. तीन। ४. मो. सुझि (= सुझइ), अ. सुझ्झउ, फ. सुझ्यौ, शा. स. सुझ्झै।

(३) १. धा. शा. स. में यह शब्द नहीं है, फ. जिह। २. अ. फ. अहिनिसि। ३. ना. शा. स. देव सेव, अ. सेव तेव। ३. धा. मानिय, ना. शा. बानीय, स. ठानिय।

(४) १. शा. स. सो। २. धा. ना. जा निय।

टिप्पणी—(३) बानि < वर्ण = आदत।

[४]

दोहरा— हसउ*[१] चंद गुरराज°[२] सउं*°[३] तुम जानहु[५] बहु भंति। (२)
जिहि* कामिनि°[२] कलहु किअउ*[६] सो*[४] जांमिनि[५] बिलसंति।। (१)

अर्थ—(१) चंद गुरुराज से हँस [कर कह–] ने लगा, "तुम बहुत सी भाँतें [अथवा बहुत भाँति से] जानते हो, (२) जिस कामिनी (संयोगिता) ने [जयचंद–पृथ्वीराज में] कलह [उपस्थित] किया, वही यामिनी में [पृथ्वीराज को] विलस रही है।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. मो. हसु (= हसउ), धा. हस्यउ, अ. ना. हस्यौ, फ. हस्यौउ। २. अ. फ. ना. बर बिप्र। ३. अ. स्यउं, मो. ना. सुं (= सउं)' स. सौं, फ. सौ, शा. स्यौं। ४. धा. तुम्ह। ५. मो जाणु (= जाणउ), धा. जानहु, फ. जानति, शेष में 'जानहु'।

(२) १. मो. तिहिं, शेष में 'जिहिं'। २. फ. कामिनु। ३. मो. कलहु (= कलहउ ?) कीउ (= कीअउ), धा. लोकलहु, फ. कलहि कियौ, कलह कियउ, ना. कलहसु कीयौ' शा. स. कलहौ कियौ। ४. मो. सु (= सो), शेष में 'सो'। ५. फ. धा. यामिनि (= जामिनि), ना. जामनि।

[५]

अडिल्ल— कहइ*[1] चंदु वर[2] विप्र न[3] मानइ*[4] । (१)
सिर धुनि धुनि कवि[1] बात न जानहि*[2] । (२)
जिहि[1] धन[2] त्रिय मरणु[3] त्रिनि[4] वरि जानइ*[6] । (३)
सो[1] काम देव[2] (१) त्रिय वसि करि[3] मानइ*[4] ॥ (४)

अर्थ—(१) चन्द कह रहा था परन्तु विप्र (राजगुरु) नहीं मान रहा था, (२) वह सिर पीट पीट [कर कह] रहा था, "हे कवि, तुम बात (तथ्य) नहीं जानते हो; (३) जो धन, स्त्री और मरण से तृण को श्रेष्ठ जानता है, (४) उसको कामदेव और स्त्री के वश में हुआ [कैसे] माना जाए ?"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. कहिं (= कहइ), धा. कहउ, ना. कही, शेष में 'कहिय'। २. धा. पर, ३. शा. सु। ४. मो. मानिं (= मानइ), धा. मानहि, शेष में 'मानिय'।

(२) १. अ. फ. रहि रहि कवि सोइ, ना. रहि रहि कवि तैं। २. मो. मानि (= मानइ), धा. जानहि, शेष में 'जानिय'।

(३) १. यह शब्द धा. अ. फ. में नहीं है। २. अ. फ. धनु। ३. फ. मर, शा. स. रन। ४. धा. अ. त्रिनं, ना. शा. स. त्रिन, फ. न्नतु। ५. धा. वरि, शेष में 'वर'। ६. मो. जांनि (= जानइ), धा. जान्यो, अ. फ. मानिय, ना. जानीय, शा. स. आनिय।

(४) १. धा. में नहीं है मो. अ. फ. शा. स. सु (= सो) ना. स। २. धा. किम देवी, मो. काम दे, म. किमि देव, फ. किम देउ, ना. क्युं देव, फ. किम देउ। ३. फ. त्रि वस्य कनइए। ४. मो. मांनि (= मानइ), धा. म. यो, अ. फ. जानिय, ना. शा. स. मानिय।

टिप्पणी—(१) वर < परन्। (२) वरि < वरन्।

[६]

दुडिल्ल— तुम[1] समदिष्ट[2] अरिष्ट[3] न देक्खउ*[4] । (१)
जब[1] असियं[2] लष्ष दल गहि गहि[3] भक्खउ*[4] । (२)
प्रान समांन परत दप[1] छोहउ*[2] । (३)
पइ*[1] मरनु छोडि[2] महिला मुष[3] मोहउ*[4] ॥ (४)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "तुम समदर्शी हो [इसलिए ऐसा सोचते हो]; तुमने उस अरिष्ट (संकट) को नहीं देखा (२) जब [उसने] [विपक्ष के] अस्सी लक्ष दल को पकड़ पकड़ कर खा डाला—नष्ट कर डाला, (३) अपने प्राणों के समान दर्प (अभिमान, बल, पराक्रम) को पड़ता (गिरता, नष्ट होता) देख कर वह [जब इस प्रकार] क्षुब्ध हुआ था, (४) किंतु [अब] वही [रण में] मरण छोड़कर महिला (संयोगिता) के मुख पर मुग्ध [हो रहा] है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. सम, ना. बाम, शेष में 'तुम'। २. धा. सम द्रिष्ट, अ. फ. सम द्रिष्टि। ३. फ अद्दष्ट, शा. अदिष्ट, स. अदिष्टि। ४. मो. देखु (= देक्खउ), धा. दिष्यउ, शेष में 'दिष्यौ'।

(२) १. मो. शा. स. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। २. शा. स. असी। असी। ३. ना. गह्यो, शा. गहि गहि। ४. मो. मक्षु (= मक्खउ), शेष में 'भष्यौ'।

(३) १. धा. पर, ना. दल। २. मो. छोडु (= छोडुउ), छोडयो, धा. अ. फ. छोड्यउ, शा. बोध्यौ, शेष में 'छोड्यौ'।

(४) १. मो. पि (= पइ), शेष में यह शब्द नहीं है। २. धा. छंड, अ. फ. छाडि, ना. शा. स. छंडि। ३. धा. ना. शा. मन, स. सुष। ४. धा. मोड्यो, शेष में 'मोड्यौ'।

टिप्पणी—(३) दप < दप्प < दर्प।

[७]

पद्धडि— तिहि[१] महिला महिला[२] विसराई। (१)
अरु[१] गुरु देव सेव सुनि साई[२]। (२)
विभउ[१]* भुम्मि[२] भ्रतु[३] जाउ[४] सु[५] जाई[६]। (३)
सुनि सुनि[१] समउ*[२] राज गुरु नाई[४]॥[५] (४)

अर्थ—(१) "उस महिला ने [अन्य] महिला [गण] को विस्मृत करा दिया (२) और [हे गुरुराज,] सुनो, उसने गुरु और देव-देव सेवा को भी [इस सीमा तक] अतिके साथ [विस्मृत करा दिया] कि उसका वैभव, उसकी भूमि और उसके भृत्य जाएँ तो जाएँ; (४) हे राजगुरु, राजा का वह समय (वृत्तान्त) सुनो और समझो।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. जिहि। २. मो. मिहिला, शेष में 'महिला'।

(२) १. ना. सेव सुधि नाहीं, मो. सेव सुनि साई।

(३) १. मो. विभू (= विभउ), धा. विभव, फ. भयो, शेष में 'विभौ'। २. मो. भवि (<भुमि) शेष में 'भूमि'। ३. ना. भ्रत सव। ४. धा. जान, ना. शा. स. जाहु। ५. ना. तु। ६. ना. शा. स. जाही।

(४) १. अ. फ. सुनि। २. ना. शा. स. सो। ३. धा. समो, मो. समु (= समउ), ना. समौं, शेष में 'समौसि'। ४. अ. राई, फ. साई, ना. ताहि, शा. स. नाही। ५. मो. में यहाँ और है : जानि गुरुराज रहाई। (तुल० बाद वाले दोहरे का प्रथम चरण)।

(२) साई < साति (= स+अति)। (३) भ्रतु < भृत्य। (४) ना < ज्ञा = जानना, समझना।

[८]

दोहरा— समउ[१] जांनि गुरुराज रहि[२] कहि कहि कविय सु[३] वत्त। (१)
किम[१] वय किम[२] रूपह[३] रवनि किम[४] राजन रस रत्त[५]॥ (२)

अर्थ—(१) उस समय (वृत्तान्त) को गुरुराज जान रहे [तो भी उन्होंने कहा,] "हे कवि

वह वार्ता कहो; (२) वह रमणी किस वय और किस रूप की है, और किस प्रकार उसके रस (अनुराग) में राजा रँगा हुआ है।"

पाठांतर—(१) १. मो. समु (= समउ), धा. समउ, ना. समौ, शेष में 'समौ'। २. अ. फ. कहि। ३. धा. कवि सह, फ. कवि इह, ना. कवि यह।

(२) १. मो. धा. किमि, अ. फ. किम, ना. किनि, शा. स. किहि। २. धा. किमि पूरन, शा. स. किहि रूपनि, अ. कम रूपह, फ. किम रूपहि। ना. किनि रूपह, ३. अ. फ. किम। ४. मो. रत्त। शेष में 'रत'।

टिप्पणी—(१) वत्त < वार्ता। (२) किम < कथम् = किस प्रकार। रवनि < रमणी। रत्त < रक्त।

[९]

दोहरा— जुब्बन[१] तनु तनु[२‡] मंडनउ[*३] सिसु[४] मंडन तन[५] डोल[६]। (१)
बालप्पण सहि[१] बिछुरनि[२] तिहि[३] चित चंचल झोल[४]॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा,] "(१) अब यौवन उसके शरीर का मंडन (आभरण) [हो रहा] है, और शैशव उसके शरीर का मंडन (आभरण) होकर [जाने के लिए] डोल रहा है (चंचल हो रहा है)। (२) बालपन की सखी—शिशुता—से उसका बिछुड़ना हो रहा है, इसीलिए उसका चित चंचल होकर झूल (झकोरे) रहा खा है।"

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।
‡ चिह्नित शब्द फ. ना. में नहीं है।

(१) १. मो. योवन (= जोवन), धा. ना. शा. स. जुब्बन, अ. फ. जोवन। २. धा. तन मन, फ. तन, ना. तना, शा. स. ज्यों (जों—शा.) तन। ३. मो. मंडनु (= मंडनउ), धा. मंडनो, शेष में 'मंडनो'। ४. मो. सस, फ. सिस। ५. धा. तछ। ६. ना. दोल।

(२) १. धा. अ. सहि, मो. फ. ना. सह। २. धा. अ. बिछुरन, फ. बिछुरत। ३. धा. यिहि, फ. तिह। ४. मो. झोल, धा. लोल, शेष में 'लोल'।

टिप्पणी—(१)–तनु = का। (२) सहि < सखि।

[१०]

गाथा— जं जोई संजोई[१] जोइत्तं[२] सिधि[३] जन्मांनि[४]। (१)
नं जोई[१] संजोई[२] गोइत्तं[३] सिधि[*४] जन्मांनि[५]॥ (२)

अर्थ—(१) "संयोगिता से योग (युक्तता) की जो दशा [प्राप्त हुई] है वह जन्मों की सिद्धि का योग [प्राप्त हुआ] है; (२) यदि संयोगिता से योग (युक्तता) की दशा न [प्राप्त] होती, तो जन्मों की सिद्धि गोपित [रह जाती]।"

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) धा. स सजोई, मो. संजोइ, अ. त्रिजोई। २. मो. जोयत्तं (= जोइत्तं), धा. जोईते, शेष में 'जोईत्तं'। ३. धा. संध, अ. फ. सि, ना. सिद्ध। ४. मो. जन्मनि, धा. समानि, अ. फ. जनमानि, शा. स. जन्माई।

(२) १. मो. नजोइ, ना. संजोई, शेष में, 'नंजोई, । २. मो. संजोई, शेष में 'संजोई' । ३. मो. गोइतं, धा. गोईतं, ना. गोईसं, शेष में 'गोईतं' । ४. धा. संध, मो. अ. फ. सिध, ना. सब्ब । ५. धा. जनमाभि, शा. स. जम्माई ।

टिप्पणी—(१) जोइत < योजित । (२) गोइत < गोपित ।

[११]

डंडमाल—

[१]संजोगि[२] जोवन[३] जं बनं[४] । (१)
सुनि श्रवण दे[१] गुरुराज नं । (२)
तर[१] चरण[२] अरुणति[३] अच्छनं[४] । (३)
जनु[१] श्रीय श्रीषंड लच्छनं[२] । (४)
नष कुंद मिलिय[१] सुमेसनं[२] ।‡ (५)
प्रतिबिंब श्रोणि[१] सुदेसनं । (६)
नग हेम हीर[१] जु[२] थप्पनं । (७)
गय हंस मग्ग[१] उथप्पनं । (८)
कसि[१] कासमीर सुरंगनं । (९)
विपरीत रंभ ति जंघनं । (१०)
रसनेव[१] रंज[२] नितंबिनी[३] । (११)
कुसुमेष[१] एष[२] विलंबिनी । (१२)
उर भार मध्य[१] विभंजनं[२] । (१३)
दिय रोम राइ स[१] थंभनं । (१४)
कुच कंज[१] परसन[२] अंजली[३] । (१५)
मुष* मउष*[१] दोष[२] कलक्कली[३] । (१६)
हिय अयन मयन[१] ति संथयउ*[२] । (१७)
भज* गहन गहन निरंथयउ*०[१] । (१८)
जानुं[१] हीन झीन[२] ति कंचुकी[३] । (१९)
भुज थोट*[१] चोट[२] ति पंचकी[३] । (२०)
नलिनाभ*[१] पांनि वियछूछयउ[२] । (२१)
जनु कुंद[१] कुंदन[२] संचयउ*[३] । (२२)
कल ग्रीव[१] रेह त्रिवल्लया[२] । (२३)
जांनु[१] पंचजन्न[२] सु ठिल्लया[३] । (२४)

अधर[१] पक्व[२] सु[१] बिंबनं । (२५)
सुक सालि[१] आलिन[२] पंडनं । (२६)
दसन दुत्ति*[१] सु[२] नंदनं । (२७)
प्रतिभास[१] सुदित[२] वंदनं[३] । (२८)
मधु मधुरया°[१] मधु सद्दया । (२९)
कल कंठ[१] कोकिल[२] वद्दया । (३०)
भ्रम[१] भवन[२] जीवन[३] नासिका । (३१)
नेसु अंजन[१] प्रिय[२] आसिका[३] । (३२)
झलमलति*[१] श्रवन[२] अटंकता । (३३)
रथ अंग[१] अर्क विलंबिता । (३४)
चखु°[१] इछ्छ इछ्छइ[२] बंकसी[३] । (३५)
कुछ[२] लज्ज सैसव[२] संकसी[३] । (३६)
सित[१] असित उररि[२] आंगयो[३] । (३७)
अभिसहि*[१] पंजन वछ्छयो[२] ।× (३८)
वरु[१] वरुणि[२] भुव[३] पर वरणनं[४] ।× (३९)
नव नृत्ति[१] अलि सुत[२] अंगनं[३] ।× (४०)
तस मध्य[१] मृग[२] मद विंदुजा । (४१)
जस[१] इंदु[२] नंद ति[३] सिंधुजा[४] । (४२)
कच बक्र[१] सर्प ति[२] कुंतलं । (४३)
तस[१] उपमा[२] नहि[३] भूतलं । (४४)
मणि बंध[१] पुष्प सु[२]दीसये[३] । (४५)
जंतु[१] कन्ह[२] कालीय[३] सीसये[४] । (४६)
त्रिसरावलि[१] वनि[२] वेनियं[३] । (४७)
अवलंबि[१] अलिकुल सेनियं[२] । (४८)
चित चित्ति[१]§ चित्रति[२] अंबरं । (४९)
रति कांन[१] वर्धति[२] संवरं[३] ॥[४] (५०)

अर्थ—(१) "संयोगिता का यौवन जैसा बना (सुन्दर) है, (२) उसे हे राज गुरु, श्रवण देकर सुनो। (४) उसके चरण-तल आधे अरुण हैं, (४) मानो श्रीखंड (चंदन) ने श्री (रोली) प्राप्त की हो। (५) उसके [चरण-] नख सुवेश (सुंदर) और मिले (सटे) हुए कुंद [सदृश] हैं। (६) जिनसे सुदेश (सुंदर) शोणित प्रतिबिंबित होता है (झलकता है)। (७) [उसके चरण] नग, स्वर्ण और हीरे को स्थापित करने वाले हैं (उसके चरणाभरण इनसे जटित हैं) (८) और [अपनी मंद गति से] गजों और हंसों के मार्गों को उत्थापित करने (उखाड़ने)

वाले हैं। (९) काश्मीर [की केशर] के सुंदर रंग को खींच कर [उनसे रँगे हुए] (१०) उलटे [रक्खे हुए] रंभा (कदली) के सदृश उसके जघे हैं। (११) उस नितंबिनी की रसना (मेखला) इस प्रकार रंजन करती है (१२) [मानो] कुसुम-शर (कामदेव) के शरों को विलंबित करने वाली [प्रत्यंचा] हो। (१३) उर (उरोजों) के भार को मध्य से विभाजित करने वाली (१४) उसकी रोम-राजि स्तंभ के समान दी हुई है। (१५) अंजलियों के स्पर्श के लिए उसके कुच कंज (कमल) [वत्] हैं और (१६) उनके म्यूख (प्रकाश की किरण) [सदृश गौर अथवा द्युतिमान] मुख पर जो दोष (कालिमा) है, वह कल-कलित (सुन्दर) है। (१७) उसके हृदय-अयन (मंदिर) में मदन संस्थित है, (१८) जो निरस होकर (निकाला जाकर) इस गहन-गहन (गहनतम स्थान) में रहने लगा है। (१९) उसकी कंचुकी (चोली) इतनी झीनी है मानो है ही नहीं। (२०) उसकी भुजाओं की ओट में पाँच [उँगलियों ?] का जोट (समूह) है। (२१) नलिनी की आभावाले उसके विशेष [या दो] स्वच्छ पाणि हैं; (२२) [जिनमें उँगलियों के नख इस प्रकार शोभा दे रहे हैं] मानों कुंदन के साथ कुंद संचित हों। (२३) उसकी सुन्दर ग्रीवा में त्रिबली (तीन बलवाली) रेखाएँ हैं, (२४) जिनके कारण वह ग्रीवा ऐसी लगती है मानो सुष्ठु (?) पांचजन्य [शंख] हो। (२५) उसके अधर पक्के बिंब [वत्] हैं, (२६) [कहीं] उन्हें [बिंब समझकर] शुक-सारिका हठ-पूर्वक खंडित न कर दें। (२७) उसके दाँत शुक्ति-नंदन (मोती) हैं, (२८) जो वंदन (रोली) [जैसे मसूड़ों] में मुद्रित (बिठाए हुए) प्रतिभासित होते हैं। (२९) उसके शब्द मधु [सदृश] मधुर हैं, (३०) और वह कोकिल कैसे कल कंठ से बोलती है। (३१) उसकी नासिका जीवन के भ्रमों का भवन है, और (३२) अंजन-प्रिय (रँगा जाना जिनको प्रिय है ऐसे) ओठों को त्रास देने वाली है। (३३) उसके श्रवनों में ताटंक (तरिवन) झलमलाते हैं (३४) [और ऐसे लगते हैं] मानो अर्क (सूर्य) के रथाङ्ग (रथ के पहिए) लटक रहे हों। (३५) उसके चक्षुओं में बाँकी इच्छाएँ-आकांक्षाएँ सी हैं, तथा (३६) तुच्छ (अल्प) लज्जा और शैशव की शंकाएँ सी हैं। (३७) इन चक्षुओं के अपांग (प्रान्त भाग) सित-असित (श्वेत और श्याम) उररि (बकरे) [के सदृश] हैं, (३८) वे चक्षु ऐसे लगते हैं मानो खंजन-वत्स [उड़ने का] अभ्यास कर रहे हों। (३९) उसकी बरौनियाँ श्रेष्ठ (सुन्दर) हैं और भौहें श्रेष्ठ वर्ण वाली अर्थात् सुंदर हैं। (४०) वे ऐसी लगती हैं मानो आँगन में [या अंग में] नव अलिप्लुत (नवजात भ्रमर) नृत्य कर रहे हों। (४१) उनके मध्य जो मृगमद (कस्तूरी) बिन्दु है, (४२) [वह ऐसा लगता है] जैसे सिंधु से उत्पन्न नव इन्दु में इन्दु-नंदन (मृग) हो। (४३) उसके वक्र कच-कुन्तल सर्प [सदृश] हैं, (४४) जिनकी [सुन्दरता की] उपमा भूतल में नहीं है। (४५) [उन कचों के ऊपर] मणि-बन्ध (मणि-ग्रथित) पुष्प (शीश-फूल) ऐसा दीखता है (४६) मानो कालीय नाग के सिर पर कृष्ण हों। (४७) उसकी त्रिशिरावली (तीन लटों वाली) बेणी ऐसी बनी हुई (सुन्दर) है, (४८) मानो अलि-कुल-श्रेणी अवलंबित हो रही हो (लटक रही हो)। (४९) उसका अम्बर (वस्त्र) चित्र-विचित्र प्रकार से चित्रित है। (५०) सम्पूर्ण रूप से [पृथ्वीराज के साथ वह ऐसी लगती है] मानो रति स्मर (कामदेव) का वर्धन (मंडन) कर रही हो।

* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

° चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

‡ चिह्नित चरण या शब्द फ. में नहीं हैं।

× चिह्नित चरण स. में नहीं हैं।

पाठांतर—(१) १. ना. स. में इसके पूर्व है:—

गुरपंच सुंत सुर्च [म] । कहु आ ति अपर धामरे । सतिपीक पिंगल वंपप । गीय मालती प्रदि छंदए।

२. धा. ना. संजोग, मों संयोग, शेष में संजोगि । ३. मो. योवन (= जोवन), (शा. पाठ) शेष में 'जोवन' । ४. अ. फ. जंमनं ।

(२) १. धा. मो. सर्वदा, अ. फ. श्रवण दे, शेष में 'सबंदा' (श्रब्बदा–ना., अबदा–शा.) ।

(३) १. मो. तर, फ. पलि, शेष में 'दल' । २. फ. चहलि । ३. मो. अरुण, धा. जहनलि, फ. अरुनित, शा. अरुन सु । ४. धा. अ. अर्धनं, शा. स. अद्धयं ।

(४) १. मो. जन, धा. जनु, फ. जनो, शेष में 'जनु' । २. मो. श्री पंडल घनं, धा. आरखंडल घनं, ना. श्रीफल लब्बनं, शा. स. श्रीषंड लब्वयं ।

(५) १. धा. मिलित, अ. फ. मलिल, ना. माल । २. मो. सुभेशनं (= सुभेसनं), धा. सुवेसनं, शेष में 'सुवेसनं' ।

(६) १. मो. श्रोणि, धा. सोणि, अ. फ. ना. श्रोन (श्रौन–फ.) ।

(७) १. मो. धा. ना. शा. स. 'नग हेम हंस' (तु० चरण ८), अ. नग हेम हीर, फ. क्रम हेम हीर
२. फ. ज ।

(८) १. धा. मय मग्ग हंस, मो. शा. स. गय मग्ग हंस, अ. गय हंस मग्ग, फ. हय हेम मग्ग ।

(९) १. धा. किसि, स. करि ।

(१०) १. फ. रंभसि भंजनं ।

(११) १. धा. रसनेय । २. धा. रुंज, शा. स. रंजि । ३. फ. नितंबनं, ना. नितंबनी ।

(१२) १. धा. कुसुमेसु, मो. कुसमेषु, ना. कुसुमेक । २. धा. अ. दप्प, मो. पक, फ. एष, ना. काम, शा. दप, स. दक्क ।

(१३) १. अ. फ. मद्धि । २. मो. विमंजनं (< विमंजनं), धा. ना. शा. स. विभंगनं ।

(१४) १. मो. रोम राजस, धा. रोमराइ सु, फ. रोज रोज जु, अ. रोम राजि जु, ना. शा. रोम राजीय, स. रोम राय सु ।

(१५) १. धा. कुंभ । . धा. परसत, फ. परसनि । ३. धा अ. फ. जंगली, शा. अंजुली, स. जंगली ।

(१६) १. मो. मो, धा. मोष, अ. फ. मौष, (< मुष = मउष), ना. स. शा. मयुष । २. धा. देषि । ३. धा. शा. स. कर्लकली, मो. किलिकली, अ. कलकली, फ. कली कली ।

(१७) १. धा. पैन नैन, अ. फ. अइन सइन, ना. अयन मयन, शा. स. अयन सयन । २. धा. संधयो, मो. संधयो, अ. मइनयउ, फ. संजयउ, ना. सिधयौ, शा. स. सिद्धयौ ।

(१८) १. धा. जुक गहन गहन''' ''', मो. लज (< मज ?) गहन गहन निरंधयो, अ. फ. तजि गहन जिय तह (तिह–फ.) रंजयो, ना. लजि गहन गहन सु रिंगयो, शा. स. भजि ग्रहन ग्रहन तिरिद्धयो ।

(१९) १. धा. '' नु, ना. शा. स. उर । २. मो. डीन (< झीन), धा. ना. झीन, शा. स. झील । ३. धा. कंचकी ।

(२०) १. मो. उद (= ओद), फ. वोद । २. मो. जोठ, धा. जोत । ३. धा. पुंचकी, मो. पंसुकी, अ. फ. पंचुकी, शा. स. पंचकी ।

(२१) १. धा. फ. नलनाभि, अ. अलिनाभि, ना. नलनील, शा. स. नलिनील । २. अ. फ. नाभिति अछुयउ (अछुयौ–फ.), ना. पालि विमच्छयो, स. पाणिव अछुयौ ।

(२२) १. अ. फ. कुंद । २. फ. कुंडन । ३. अ. सच्चयो, फ. संचयो, ना. संचयौ, शा. स. सुच्छयौ ।

(२३) १. फ. कलिग्रीव । ना. लग्गीव । २. धा. तिवल्लिया, अ. मिवलियो, फ. दल वलयौ, ना. त्रिवलया ।

(२४) १. मो. जानु, फ. जनौ, शेष में 'जनु' । २. मो. पंचजन, धा. पंचजन्य, फ. पंचजनु, शेष में

पंचजन्य । ३. धा. जुधल्लिया, अ. सुथल्लियो, फ. सुथल्यौ, ना. सुथलया, शा. सुथलया ।

(२५) १. मो. अधर, ना. अधरेव (< अधरेव), शेष में 'अधरेव' । २. धा. पक्क, मो. पक (= पक्क), फ. जकि । ३. मो. स ।

(२६) १. धा. मो. शा. साजि, अ. फ. सारि । २. अ. फ. आरिन, ना. आलिनि ।

(२७) १. धा. दसनस्य सुकति, मो. दसन पंति, अ. दसनेव मुक्ति, फ. दसनेउ मुक्ति, ना. दसनेव सिपि, स. दसनेव मुक्ति । २. फ. स ।

(२८) १. अ. फ. प्रतिवाल, ना. प्रतिभासि । २. मो. सुद्दित, अ. फ. सुरंकित, शेष में 'मुद्रित', (मुद्रत– शा.) । ३. मो. चंदनं, शेष में 'वदनं' ।

(२९) १. फ. माधुरजा ।

(३०) १. मो. कलि कंठ, अ. फ. कलयंठ, ना. कलयंठि, शा. कलकंठ, स. कलयंत । २. फ. काकिल ।

(३१) १. अ. फ. दुव । २. मो. भ्रमत, धा. अ. भवन, फ. भवनी, ना. भ्रम्म, शा. भुवन । ३. मो. जीमन, ना. दीपक, शेष में, जीवन' (जीउन–फ.) । ४ फ. नासका ।

(३२) १. धा. ना. स. शा. नसु अंजनी, मो. नयस अंजन, अ. नेसु अंजनी, फ. नेस अंजनी । २. फ. प्रय । ३. अ. फ. तासिका ।

(३३) १. मो. झलमलनि (< झलमलति) फ झलमलय, शेष में 'झलमलत' । २. फ. अवनि । ३. धा. अवं तटंकटा, फ. तिटंकता, ना. ताटकना, शा. ताटकता ।

(३४) १. मो. रथथंभि, धा. शा. स. रथ भंग, फ. रथ अंग, ना. रथचक्र, अ. फ. रथ अंग ।

(३५) १. म. चक्ष (= चक्खु), अ. फ. भ्रुव । २. धा. अ. फ. ना. इच्छ (ईछ–ना.) इच्छहि, शा. स. तुच्छ इच्छहि ३. मो. वकास (=वंकसी ?), धा. वंकनी, अ. वंकसी, ना. इंछसी, शा. स. इच्छसी ।

(३६) १. धा. तुल, अ. जनु, फ. जनौ, ना. शा. चप, स. चप । २. अ. फ. व्याप उया बन (उन–फ.) । ३. मो. संकसि (= संकसी ?), धा. संकनी शेष में 'संकसी' ।

(३७) १. फ.– मिल । २. अ. फ. रत तल, ना. उरसि । ३. धा. अपंगवै, अ. फ. अपंगयं, ना. अपंग ज्युं, शा. स. अपिगं ज्यौं ।

(३८) १. मो. अभिद्दो, धा. अभ्यसहि, अ. फ. अभिसरत, ना. अभिसाहि, शा. अभिसाह । २. धा. वंछवं (= बछ्छवै), अ. फ. बछूछयं, ना. वत्थ ज्यु, शा. अंग ज्यौं ।

(३९) १. अ. फ. ना. भ्रुव, शा. भुअ । २. फ. वरन्न, ना. बरन्नि । ३. मो. भु, धा. ना. शा. भुव, अ. फ. भूय । ४. अ. फ. बरन्नन (बरन्नयं–फ.) ।

(४०) १. धा. नव भ्रित्त, अ. नव निकसि, ब. नव निकसि, ना. शा. नव नृत्य । २. धा. अलसत, मो. अलिसति, अ. फ. अलिसुत, ना. अलिसत, शा. अलितस । ३. शा. में यहाँ और है; सित असित उर रिथ पंग ज्यौं । जनों सेव दंजर बंब ज्यौं । (तुलना० चरण ३७) । स. में शा. का प्रथम अतिरिक्त चरण नहीं है ।

(४१) १. मो. तस मध्य, धा. तसु मध्य, सु. फ. सुत इंदु, ना. शा. स. तसु मद्धि । २. धा. अग ।

(४२) १. धा. जव, अ. चष, फ. वष, ना. सुतौ, शा. द्युति, स. दुति । २. फ. रति । ३. धा. निश्चिय, मो. नंदति, अ. फ. निदइ, ना. शा. निदति, स. निंदत । ४. मो संभुजा, शेष में 'सिभुजा' ।

(४३) १. धा. चकचक्र, म. कच चक्र, अ. फ. कच चक्र । २. धा. सक्रति, अ. चक्रति, फ. स. चक्रति, ना. चक्रित, शा. चक्रत ।

(४४) १. मो. ना. तस, धा. न. म. तसु, अ. फ. तत । २. ना. शा. स. ओपमा । ३. शा. स. मह ।

(४५) १. धा. शा. स. मणि बंध, मो. ना. मणि बिंब, अ. मणि वृंद, फ. मनु वृंद । २. धा. पुष्पति, अ. पुहपति, फ. पुप्पति, ना. पहुपति । ३. अ. फ. दीसियो (सीस चौ–फ.)

(४६) १. मो. जांनु, फ. जानौ, शेष में 'जनु' । २. मो. कंन, शेष में 'कन्ह' । ३. मो. काकी' शेष में

कालिया ४ अ फ सीसया (सीसयौ—)।

(४७) १ धा तिरसूल बलि शा त्रिसलावली, स. त्रिसरावला । २. धा. वल, अ. फ. वेलि, ना. बिलि । ३. धा. वेनय, मो. वेन्वे, अ. शा, बेनियं, फ. वेलियं, स. वनियं ।

(४८) १. धा. शा. स. अविलंब, मो. ना. अविलाबि, अ. अवलंबि, फ. अवलंबि । २. मो. धा. सेनयं अ. फ. सैनियं, स. श्रिनियं, शा. श्रेनियं ।

(४९) १. धा. ना. चित्त, अ. चित, शा. स. चित्र । २. धा. अ. फ. चितति, ना. वृद्धति, शा. स. चित्रित ।

(५०) १. धा. अ. फ. जानि । २. धा. बद्धति, मो. ना. स. वृधति, (= वृध्यति), अ. बढ़ंति, फ. वधित, शा. वृद्धत । ३. धा. मो. अ. फ. संवरं, शा. स. सम्मरं, ना. संभरं । ४. शा. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

जनु सीस फूलति अच्छयौ । मनु कन्ह कालिय संच्छयौ ।

(तुल० चरण ४६) ।

टिप्पणी—(३) तर < तल । (४) लब्ब < लब्ध । (५) मिलिय < मिलित । (६) ओणि < शोणित । (१२) कुसंमय < कुसुमु । एप < एषु । (१४) राइ < राजि । थम < स्तंभ । (१६) मउख < मयूख । (१७) संथयो < संस्थित । (१८) निरंथयो < निरस्त । (१९) छीन < क्षीण । (२२) रेह < रेखा, लेखा । त्रिवलया < त्रिवली । (२४) पंचजन्न < पाञ्चजन्य । सुठिल्लया < सुष्ठु (?) । (२५) पक्ष < पक्ष । (२६) सालि < सारिका । (२७) सुत्ति < शुक्ति । (२८) मुदित < मुद्रित । (३२) नेसु < णेसु [दे.] = अधर । (३३) ताटंक < ताटङ्क । (३५) चष < चक्षु । (३७) उररि [दे०] = बकरा । अपंग < अपाङ्ग । (३८) अभ्भिस < अभ्यस् । वछ्छ < वत्स । (४०) त्रित्ति < नृत्य । (४८) सेनी < श्रेणी । (५०) संवर < स्मर ।

[१२]

दोहरा—समर स[१] मंडन समर ग्रिह[२] समर सुरप्पुर[३] भोग । (१)
समर सु[१] जित्तिय[२] पंग[३] नृप तिहि[४] वल्लहि[५] संजोग[६] ॥ (२)

अर्थ—(१) वह [रति के सदृश] स्मर (काम) का मंडन (आभरण) है, स्मर (काम) का निवास स्थान है और स्मर (काम) का सुरपुर का (स्वर्गीय) भोग है; (२) समर (युद्ध) में जिस (पृथ्वीराज) ने पंगराज (जयचंद) को जीता है, वह संयोगिता उस (पृथ्वीराज की वल्लभा है ।"

पाठांतर—(१) १. शा. समरसु । २. मो. ग्रिहि, फ. ग्रह, शेष में 'ग्रिह' । ३. ना. सुरपर, स. सुरप्पर ।

(२) १. धा. सि, मो. शा. स. सु, शेष में 'स' । १-२. ना. स जितिय । ३. फ. पग । ४. धा. अ. फ. तं । ५. धा. अ. फ. ना. ना. वल्लह, शा. चलन, स. चल्लन । ६. मो. संयोग (= संजोग) ।

टिप्पणी (१) समर < स्मर । (२) वल्लहि < वल्लभा । संजोग < संयोगिता ।

[१३]

दोहरा— किय अविरज तब[१] राजगुरु न्यायतु[२] राज रसरत्त ।[३] (१)
जस[१] भावी नर[२] भोगवइ*[३] तस विधि[४] अप्पइ*[५] मत्त[६] ॥ (२)

अर्थ—(१) तब राजगुरु ने आश्चर्य किया "[और कहा,] यह उचित ही है कि राजा। रस-रक्त (प्रेमानुरक्त) हो रहा है; (२) जैसी भावी मनुष्य भोगता (भोगने वाला होता) है, विधाता उसको उसीके अनुरूप मत (विचार) भी देता है।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. कीयो अचरज। २. धा. न्याइ। ३. मो. धा. के अतिरिक्त समस्त प्रतियों में पाठ है : मानि (मन्नि-ना स.) राजगुरुराज रस (रसि—फ.) तैं कबि (कबिवर—ना. स. ना.) बरनौ (बरनी—फ.) सत्ति। (२) १. ना. जं। २. ना. स. ब्रस। ३. मो. भोगवि (=भोगवइ), धा. ना. भुग्गवै, अ. भुग्गवे। ४. मो. बुद्धि। ५. मो. अपि (=अपइ), धा. अप्पहि, शेष में अप्पै'। ६. धा. मो. मत्त, शेष में 'मत्ति'।

टिप्पणी—(१) अचिरज < आश्चर्य। रत्त < रक्त। (२) अप्प < अर्पय्। मत्त < मत।

[१४]

दोहरा— उहि उहि उभय रस[१] उप्पनउ*[२] मिले चंद गुरुराज। (१)

कइ* बंधव संउ[×] मनसिनउ*[१] कइ[×] धन[२] निरष्षिपति[३] राज[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) [इस प्रकार] उसको उसमें और उसको उसमें रस (अनुराग) उत्पन्न हुआ। [अथवा उसको और उसको, दोनों को रस (आनन्द) उत्पन्न हुआ] जब चंद तथा गुरुराज मिले; (२) [उन्होंने निश्चय किया,] "या तो राजा बांधवों से मनस्विन् (बांधवों का ध्यान रखने वाला) होगा, और या तो राजा [अपनी] धनी (संयोगिता) को ही देखेगा।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. उहि उभय रस, धा. उभय उभय रिस, शेष में 'उभै उभै रस'। २. मो. उपजु (=उपज्जउ), धा. उप्पज्यो, अ. उप्पजो, फ. ना. स. उप्पज्यौ।

(२) १. मो. के (< कि = कइ) बंधव सु (= सउं) मनसिनु (= मन सिनउ), धा. के बयनन अयनन मिलहि, अ. फ. कै बिय बहि नवनिहि (अवनहि—फ.) मिलै, ना. केब बयन अपननि मिलहि, ना. स. कब बयनन (बैननि—ना.) आनन मिलिहि। २. धा. ना. स. नयन, मो. कि (= कइ) धन, ना. के धरिण, अ. के नैनि, फ. कै नैन। ३. मो. निरषियति; शेष में 'निरष्षहि'। ४. ना. आज।

टिप्पणी (२) मनसिन् = ध्यान रखने वाला।

[१५]

रासा— मिलिय[१] चंद गुरुराज[२] विराजवि[३] राज दर। (१)

जहां पंगानि प्रमान[१] कियउ*[२] प्रथीराज कर[३]। (२)

तिह अपुब्व रसरास[१] विलास ति[२] सुंदरिय। (३)

भृत[१] विन न्रिप[२] दरबार सु[३]नग बिनु सुंदरिय ॥ (४)

अर्थ—(१) चंद और गुरुराज मिले और वे राजद्वार पर जा विराजे, (२) जहाँ पृथ्वीराज का किया हुआ पंगानी (संयोगिता) का प्रमाण था (आदेश चलता था), (३) तथा उस सुन्दरी का अपूर्व रस-रास-विलास [चलता रहता] था; (४) [वहाँ पर] भृत्यों के बिना [पृथ्वीराज का] दरबार [इस प्रकार लगता] था, [जिस प्रकार] नग के बिना मुद्रिका हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. मिलिय शेष में 'मिले'। २. अ. ना. गुरराज, फ. गुरराजु। ३. मो. बिराजवि, शेष में 'विराजहिं'।

(२) १. धा. जहाँ पंग त्रिप पुत्ति आनि, मो. जिहि पंग नृप आन, अ. फ. तहाँ पंगान प्रमान, ना. जहाँ पंगानि प्रमानि, रा. स. जहाँ पंगानि (पंगा—स.) प्रमानु। २. मो. कीधु (> कीधु = कीयउ), धा. किय; शेष में 'कियो' या 'कियौ'। ३. धा. अ. कर, मो. धर, फ. करि, ना. शा. स. वर।

(३) १. धा. तिह अपुव्व रस रास, मो. तिहि अपूव वास सरस, अ. तहाँ अप्पुव रस वास, फ. ना. शा. स. तहाँ (तह—ना.) अपुव्व रस रास। २. अ. फ. बिलासहि, शा. बिलासत।

(४) धा. भ्रत, फ. भृत्य। २. मो. जिम, धा. भ्रप, शेष में 'नृप'। ३. धा. अ. फ. जु, ना. शा. ज्युं, स. जि।

टिप्पणी—(१) दर (फा०) = द्वार। (३) तिह < तथा।

[१६]

दोहरा— अप्पु कहि[१] कवि राज गुरु[२] कंपि कपाट निवार[३]। (१)
को गुदरे[१] नरेस कउं*[२] दिस[३] गज्जने[४] पुकार॥ (२)

अर्थ—(१) काँप कर (भयपूर्वक) कपाट का निवारण कर (किवाड़ खोल कर) कवि और राजगुरु ने आप (स्वगत) कहा, (२) "राजा को (के पास) गज़नी की दिशा की पुकार कौन गुदरे (पहुँचावे) ?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. अ. फ. जंपि कह्यो, मो. अपु कहि (=कहे ?), ना. शा. स. इम जंपै। २. धा. गुरु राज कर। ३. अ. फ. कंधि कपाट निवारि, शा. स. कंपिग पट्टन (पटन—शा.) वार।

(२) १. धा. को गुदराउ, अ. फ. कोइ गुदरै, ना. को गुदरौव, शा. को गुदरैव, स. को गुरदेव। २. मो. नरेसुं कुं (=कउं), धा. नरेस कूं, अ. फ. नरेस सौं, ना. शा. नरेस सुं। ३. मो. दिस, शेष में 'दिसि'। ४. धा. अ. फ. ना. गज्जने, शा. गज्जनीय, स. गज्जनी।

टिप्पणी—अप्पु < आत्म। (२) गुदरना < गुजारना [फा०] = पहुँचाना, पेश करना।

[१७]

रासा—तब कुडिल[१] भोंह*[२] चष सोंह*[३] ति[४] मोहन[५] दासि दस[६]। (१)
कछु हसि कछु[१] पय लग्गि[२] पयंपइ लीय रसि*[३]। (२)
तुम सरवग्गि[१] सु कव्वि[२] राज[x] गुरु[३] राज सम। (३)
तुम तन सुमन[१] निरष्षि गए पति[२] पाप[३] हम॥ (४)

अर्थ—(१) तब कुटिल भौंहों, और शोभायुक्त चक्षुओं वाली, मोहिनी दस दासियों ने, (२) कुछ हँसते और कुछ [राजगुरु तथा कवि के] पैरों में पड़ते हुए रस (सुख)-पूर्वक कहने लगीं, (३) "हे सुकवि, तुम सर्वज्ञ हो और राज गुरु राजा के ही समान हैं, (४) इसलिए सद्भाव से तुम्हारी ओर देखने से हमारे दोष-पाप चले गए।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. धा. कुडिल, ना. शा. स. तव कुटिल, फ. उटिल, शेष में 'कुटिल'। २. मो. भुह (=भोंह ?), धा. भोंह, शेष में 'भौंह'। ३. मो. चष तुह (= सोह), अ. चसु सोह, फ. चषु मोह, ना. चष सोह, शेष में 'चखसोह'। ४. मो. मूप, ना. फ. शेष में 'ति'। ५. शा. स. मोहनि। ६. मो. दस्य, फ. दश, शेष में 'दस'।

(२) १. ना. शा. स. कछुक हंसिय (हंसी—ना.)। २. मो. पय परो, धा. पय लग्ग, शा. स. पय लग्गिय, अ. फ. पँ लग्गि, ना. पय लग्गि। ३. मो. बोलिग बयन सुर नसि (< रस ?), धा. पयंपइ आलि रस, अ. पयंपइ अलीं रस, फ. पयंपय अलीय रसि, ना. पयंपी अलि अलस, शा. स. जंपिय लीय लसि।

(३) १. मो. तम (< तुम) मरवगइ (< सरवगि), धा. तुम सर्वग्य, अ. फ. तुम सरवग्गि, ना. शा. स. तुम सरबग्य। २. धा. सुकवी, ना. कवि। ३. फ. पृथी।

(४) १. मो. तुम हु, धा. अ. फ. तुम तन (तनि—फ.) सुमन (सुमनि—फ.), शा. स. तुम तन समुह। २. धा. ते। ३. धा. पाख, स. पाय।

टिप्पणी—(१) कुडिल < कुटिल। भोंह < भ्रू। (२) सुर < स्वर। (३) सरवग्गि < सर्वज्ञ।

[१८]

दोहरा— आसन आइस सुध्धि दिय[1] कच झारिय तह* रेनु। (१)
सुभ सिंगार[1] सुंदरिय[2] अंगे[3] आभरनेन॥ (२)

अर्थ—(१) उन्होंने आदेश (नमस्कार) – पूर्वक आसन दिया, और तब कच (बालों) से उन्होंने उनकी [चरण -] रेणु झाड़ी। (२) अंग (शरीर) में आभरणों के द्वारा उन सुन्दरियों का शृंगार शुभ हो रहा था।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. असन आइस सुध्धि दिय, धा. आयसु असु दिय चरन कं, अ. फ. आसन दिय असु चरन (चरनि—फ.) परि (क० 'पय लग्गि' पूर्ववर्ती छंद में), ना. आसन असु दिय चरण लिय, शा. स. आसन असु दिन चरन रजे। २. मो. कच झारीय ति (= तह) रेनु, धा० कच झारी सिर रेन, अ. फ. कच झारी तन रेन (रेनु—फ.), ना. कच झारी पग रेण।

(२) १. धा. सुभ सिंगारिय, मो. सुभ सिंगार, अ. फ. सुभहि सिंगारहि (सिंगारइ—फ.), ना. स. शा. सब्ब सिंगार जु (सु—ना. स.)। २. धा. सुंदरी। ३. मो. अंगे, धा. अ. फ. शा. स. आदर (आदरु—फ.), ना. अंगह। ४. धा. मो. आभरनेन, अ. फ. शा. सा. आभरनैन ना. आभरनेण।

टिप्पणी—आइस < आदेश। तह < तदा।

[१९]

दोहरा— आदर दर दिन्नौ तिनहि[1] आयसु सम पुछ्छउ[*2] दासि[3] । (१)
कहा[1] पयंपइ[2] न्रिपति सउं[*3] कहिय चंद गुरु भासि ॥ (२)

अर्थ—(१) उन्हें कुछ (?) आदर देकर आदेश (नमस्कार) के साथ दासियों ने पूछा, "राजा से क्या कहा जाय, हे चंद और गुरु, आप भासित कर कहें ।'

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) मो. आदर कतर दीयु स तिहि धा. आदर दर दिन्हा तिन्हे, अ. फ. आदर अति दिनौ तनहि, ना. श. स. आदर दर दिन्नौ (दिन्नों–ना.) कविहि । २. मो. वायसु (< आयसु) सम पुछु (= पुछउ), शेष में 'आइस (आयसु–ना.) मंग्यो (मंग्यौ–ना.)' । ३. फ. दास ।

(२) १. मो. का, शेष में 'कहा' । २. मो. पयंइपि (अयंइपइ), धा. फ. पयंपइ, अ. पयपहि, ना. श. स. पयंपहु । ३. मो. ना. सुं (= सउं), धा. सूं, शेष में सों' । ४. धा. कहो, मो. कहिय, फ. कहौहि, ना. कहौ, शेष में 'कहहु' ।

टिप्पणी—(१) दर=कुछ (?) । आयसु < आदेश । (२) पयंप < प्रजल्प् ।

[२०]

दोहरा—कग्गरु[1] अप्पिअ[2] राज[3] कर[4] मुष[5] जंपइ[6] आ[*7] वत्त । (१)
गोरी रत्तउ[*1] तुव धरा[*2] तूं[3] गोरी अनुरत्त[4] ॥ (२)

अर्थ—(१) [उन्होंने कहा,] "[यह] कागज (चिट्ठी) राजा के हाथ देना, और मौखिक रूप से यह बात कहना, "(२) गोरी (शहाबुद्दीन) तुम्हारी धरा पर अनुरक्त है, और तुम गोरी (संयोगिता) पर अनुरक्त हो !"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. कागद, मो. कग्गुरु, फ. कग्गरि, शेष में 'कग्गर' । २. मो. अर्पीअ, धा. ना. अप्पहि, अ. अप्पउ, फ. अप्पौ, श. अप्पहु, स. अप्पइ । ३. अ. फ. दासि । ४. ना. गुरु । ५. धा. मुषि । ६. अ. फ. जंपी, ना. जंपहि, श. जंपहु, स. जंपइ । ७. मो. अ. धा. इह, ना. यहय, शेष में 'यह' ।

(२) १. मो. गोरी रतु (=रतउ), धा. गोरी रत्तो, शेष में गोरीय (अथवा गोरिय) रत्तौ । २. मो. [तु] व धार (< धरा), फ. धनि, ना. धरणि, शेष में 'धरनि' । ३. मो. तुं, शेष में 'तूं' । ४. स. रत्तरत्त ।

टिप्पणी—(१) अप्प < अर्पय् । जंप < जल्प् । वत्त < वार्त्ता । (२) रत्त < रक्त ।

[२१]

दोहरा—अन्य महिल[1] दासी निरषि परषि पयंपन[2] जोगु[3] । (१)
उन्नत[1] मुष रुष[2] राज किय न्रिपति[3] संपत्तउ[4] लोगु[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) दासी ने [राजा को] अन्य महल (एकान्त मंदिर) में देखकर उससे कहने का

सुयोग परखा। (२) जब राजा ने [अपना] मुख उठा कर उसकी ओर किया [तो उसने कहा,] "हे राजा, लोग संप्राप्त हुए हैं—आए हैं।"

पाठान्तर—(१) १. मो. आइ निसिलइ, धा. अन्य महिल, शेष में 'अन्य महल'। २. मो. परषि अपनु (= अपनउ), धा. ना. शा. स. परषि पर्यंपन, अ. फ. परषि पजंपन। ३. धा. फ. जोगु, शेष में 'जोग'।

(२) १. धा. ना. उन्नित, फ. उन्नति। २. धा. दुख। ३. शा. भिपती। ४. धा. अ. फ. समत्तउ (समत्तौ–फ.), मो. सु मंतो, ना. सपत्तौ, शेष में 'संपत्तउ'। ५. धा. फ. लोगु, शेष में 'लोग'।

टिप्पणी—(१) पर्यंपन < प्रजल्पन। (२) संपत्त < संप्राप्त।

[२२]

दोहरा— इह[१] कहि दासी[२] अप्पि[३] कर[४] लिपि जु दिअउ[५] कवि[६] चंदु। (१)
पहली[१] आवलि*[२] बंचि करि[३] हिर धर[४] जाय[५] नरिंदु ॥‡ (२)

अर्थ—(१) यह कह कर दासी ने [राजा के] हाथों में वह [लेख] अर्पित किया जो कवि चंद ने लिख कर दिया था। (२) [उस लेख की] पहली अवली (पंक्ति) बाँच कर राजा लज्जित हुआ और भूमि पर जा पड़ा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

‡ फ. में यह १४. दो० १५ तथा १४. दो० १६ है। नीचे दिया हुआ पाठान्तर फ. १४. दो० १५ का है।

(१) १. अ. इक, फ. स. इय, ना. यह। २. अ. फ. ना. स. शा. दासिय। ३. धा. फ. ना. अप्प। ४. फ. ना. करि। ५. मो. दीइ (=दीअउ), धा. जु दियो, अ. जु दीयउ, फ. ज दियौ, ना. जु दीयौ। ६. फ. ना. शा. स. गुरु।

(२) १. मो. पहली, शेष में 'पहिली'। २. मो. अउरि, धा. ओलहि, अ. आवलि, फ. अवली, ना. ओवलि, शा. ओली, स. औली। ३. मो. बंचि करि, धा. अ. बंचियो, ना. वाचीयै, शेष में 'बंचियौ'। ४. मो. हिरि धर, धा. रे भुमि, ना. र भुमि, शा. भूमर, स. भूमिय, अ. रे भुगि, फ. रे भुग। ५. मो. जाय, शेष में 'जाइ'।

टिप्पणी—(१) अप्प < अर्पय्। (२) आउरि < अवली। हिरि < ही—लज्जित होना।

[२३]

कवित— गज्जनेस आयेसु[१] असंभु सह[२] सेन[३] सकल्लिअ[४]। (१)
दियो बाह[१] आदरु अनंद[२] ढिल्लिय[३] दिस[४] मिल्लिअ[५]*। (२)
दस हजार वारुणि[१] विलास[२] दस लष्ष[३] तुरंगम[४]। (३)
तहि*[१] अनेय[२] भर सुभर[३] भीर° गंभीर°[४] अभंगम। (४)
अप्पज्ज वान×[१] बहुभान[२] सुनि प्रान रषिक[३] प्रारंभ करि। (५)
सा मंत न ही[१] सामंत[२] करि जिनि[३] बोलइ*[४] ढिल्लिय[५] जु धरि[६] ॥[७] (६)

अर्थ—(१) [उस पत्र में था,] "गज्जनेश (शहाबुद्दीन) की आज्ञा से [उसकी] समस्त असंभ (अपूर्व) सेना एकत्रित हो गई है। (२) उसने उसे चारु आदर दिया है और वह आनन्द पूर्वक (उस आदर से प्रसन्न होकर) दिल्ली की दिशा में [चलकर] मिल रही है। (३) उसमें दस हजार हाथियों का विलास (वैभव) है, और दस लाख घोड़े हैं। (४) इसी प्रकार उसमें अनेक सुभट तथा योद्धा अमीर हैं जो गंभीर और अविचलित रहने वाले हैं। (५) हे चहुवान, सुन; बाण तो अपने अधीन है, [इसलिए यदि और कुछ तुझ से न हो सके तो उसके ही द्वारा] प्रारंभ ('उद्योग) करके [अपने] प्राणों की रक्षा कर; (६) सामंत नहीं तो भी वह मंत्र कर कि दिल्ली की धरा को तू डुबो न दे (तेरे कारण वह डूब न जाए)।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

° चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. मो. आये, धा. अ. फ. आइस (आइसु—फ.), ना. शा. स. आयो। २. अ. फ. सब। ३. ना. सयनु। ४. मो. शा. स. सकिल्लिअ (सकिल्लिय—शा. स.), धा. सकल्लिग, फ. सिकिल्लिगि, शेष में 'सकिल्लिग'।

(२) १. धा. अ. ना. दइ (दै—ना.) चादर (चादरि—अ., बादरु—फ.)। २. अ. फ. आदरिय आनि (आन—फ.)। ३. मो. ढिल्लीय, शेष में 'ढिल्लिय'। ४. धा. तनु, अ. फ. तन, ना. दिशि। ५. मो. शा. स. मिल्लिय शेष में 'मिल्लिग' (मिल्लिगि—फ.)।

(३) १. धा. धारन। २. मो. बिलास, शेष में 'बिसाल'। ३. अ. लाष। ४. ना. तरंगम।

(४) १. मो. ताह (< तहि ?) धा. तिहि, अ. फ. तइं, ना. तिहां, शा. स. तहाँ। २. धा. अनेय, शेष में 'अनेक'। ३. मो. धा. ना. सुभर, शेष में 'सुहर'। ४. फ. ना. भंगीर।

(५) मो. अपज वान, धा. फ. आवर्सवान, अ. आवर्त वात, शा. स. आवरन वान (?), ना. आवर्त। २. मो. चहुन, फ. चौवान। ३. मो. रषिक, शेष में 'रष्षि'।

(६) १. अ. फ. सावंत नहीं शेष में 'सामंत नहीं'। २. अ. सावंत, फ. साउंति, शा. स. सोमंत। ३. शा. स. जिन। ४. मो. बोलि (=बोलइ), फ. धोरहि, अ. ना. शा. स. बोरहि। ५. मो. ढिल्लीय, ना. ढिल्ली। ६. मो. जुधरि, अ. फ. शा. स. सुबरि, ना. सुधर। ७. धा. में इस चरण का पाठ है:—

इन बुल्ले भ्रप तुज्झ किसि पन सामंत नहि सामंत करि।

[ऐसा लगता है कि चरण का पूर्वार्द्ध ही बच रहा था, उसमें प्रारम्भ में कुछ और शब्द बढ़ाकर चरण-पूर्ति कर दी गई।]

टिप्पणी—(१) आयेसु < आदेश। असंभ < असंभाव्य ? सइ=समस्त (?)। (४) तहि < तथा=इसी प्रकार। भर < भट। (५) अप्पज्ज < अप्पज्झ [दे०] = आत्म-वश। (६) बोल < बोडय्=डुबाना। धरि < धरा।

[२४]

दोहरा—सुणि कग्गरु[1] पिट्टउ* सुकर[2] धर× रष्षइ*[3] गुर भट्ट। (१)

तरकि तोन[1] सजियउ*[2] स किरि[3] जिमि[4] वेष छंडि सु भट्ट[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने] उस लेख को सुनकर अपना हाथ पीटा और कहा "धरा (राज्य) की रक्षा गुरु तथा भट्ट करे [और मैं विलास-लिप्त रहूँ]। (२) उसने [तदनन्तर केलि-विलास

छोड़कर] तड़प कर तोन (तूणीर) [इस प्रकार] सजा हो, जिस प्रकार कोई सुनट [पूर्ववर्ती] वेष छोड़ [कर नवीन वेष धारण कर] ता है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित 'र' का अक्षर फ. में नहीं है।

(१) १. धा. कागर, फ. ना. कग्गद। २. धा. फिट्टउ सुकर, मो. पिट्ठक, अ. फ. कुट्यो सुकर (सुकरि–फ.), ना. कढ्यौ सुकर, शा. स. फाट्यो सुकर। ३. मो. रषि (=रषइ), धा. रक्खे, शेष में रष्षै' या 'रष्षै'।

(२ १. धा. तरकि तोन, मो. तरकि तोर (< तोन ?) स, अ. फ. नपकि तून, ना. शा. स. तरकि तान। २. मो. स सज्जिसु (=सज्जियउ), धा. सज्जिय, अ. फ. सिगिनि (सिगनि–फ.), ना. सज्यो, शा. स. सज्यो। ३. धा. अ. सुकर, फ. सुकरि, ना. नृपति, शा. स. अपति। ४. ना. शा. स. अनु। ५. मो. वेष छंडि सू नट्ट, शेष में 'बदल्यो रन (रसु–फ.) नट्ट'।

टिप्पणी—(१) कग्गद < कागज। (२) फिरि < फिल=ही–पाद पूर्ति के लिए प्रायः प्रयुक्त।

[२५]

कवित्त—कहु[१] सुप्रियह[*२] पउमिनिय[*३] कंत धन[४] धरउ[*४] तउ न[*५] धन[६]। (१)

सुष सुष मार[१] आरोहु[२] असर[३] संसार मरण मन। (२)

दिन दिनियर[१] दिन[२] चंद्र रयनि[३] दिन दिनह सी[४] आवहि[५]। (३)

जंतु जंतु इह रमनि[१] स्रवन[२] लग्गवि[३] समझावहि[४]। (४)

अरधंग धरा[१] अरधंग[२] हम[३] अरधंगी[०×] अरधंग[०] करि[०४]। (५)

वस[०१] हंस[०] हंस तह[२] हंसनी[३] सर सुकइ[*४] पंकयन परि[५]॥ (६)

अर्थ—(१) प्रिय (पति) से पद्मिनी (संयोगिता) ने कहा, "हे कान्त, यदि धन रक्खा रह गया तो वह धन नहीं है। (२) वही सुख सुख है जिसमें मार (कामदेव) का आरोह (उत्कर्ष) हो, स्मर (काम)–विहीन [जीवन] संसार में मानो मरण है। (३) प्रतिदिन दिनकर आता है, प्रतिदिन चंद्रमा आता है, रजनी और दिन भी प्रतिदिन आते हैं, (४) किन्तु जन्तु (जीव) [एक दिन] चला जाता है", यह रमणी (संयोगिता) [पृथ्वीराज के] श्रवणों में लगकर समझाती है। (५) "धरा तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी है तो मैं भी तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी हूँ; सुख अर्द्धाङ्गिनी को तुम [अपना] अर्द्धाङ्ग करो। (६) जिस प्रकार हंस हंस होता है, उसी प्रकार हंसिनी भी [हंसिनी होती] होती है [आजीवन दोनों साथ रहते हैं], सर सूखता है तो पंकज भी शेष नहीं रहता है [सर और पंकज भी अंत का साथ निभाते हैं]।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. मो. कहु (=कहउ), धा. कह, अ. फ. ना. कहै। २. धा. ना. शा. पीय, मो. सु प्रयह (< प्रियह), अ. सुप्रिय, फ. स प्रिय। ३. मो. पूमनीय (=पउमनीय), धा. पोमिनिय (<पोमिनिय),

अ पौमिना, फ. कामिनो, ना. पोमिनीय (< पोमिनीय), शा. स. पोमिनिय । ४. धा. मो. धनु, शेष में 'धन' । ५. मो. धरु (=धरउ), धा. धरिउ, शेष में 'धर्‌यौ' या 'धर्‌यो' । ६. मो. तु (=तउ), फ. तौ शेष में 'तो' । धा. धनु, शेष में 'धन' ।

(२) १. मो. सून सुषमार, धा. सुष समीर, अ. फ. सुष कुमार, ना. सक सुमार, शा. स. सुष कुमार । २. धा. आ रह्यो, मो. आरोहु, अ. आरुह्यो, फ. आरह्यौ, ना. शा. स. आरोह । ३. मो. असर, शेष में 'सार' ।

(३) १. मो. दनियर, धा. दिनयरु, शेष में 'दिनियर' । २. शा. निस, निसि । ३. ना. रैण । ४. मो. दिनहो, दिनसो, शेष में 'दनियर' । ५. धा. मो. आवहि, शेष में 'आवै' ।

(४) १. मो. इह रमनि, ना. वहा रवनि, शा. स. इह वरनि, अ. फ. यह वरन (वरनु—फ.) । २. मो. वन, धा. स्रुवन, शेष में 'स्रवन' या 'श्रवण' । ३. मो. कहो कहो, ना. लगियवि, शेष में 'लग्गवि' । ४. धा. मो. समझावहि, फ. समकावै, शेष में 'समझाव' ।

(५) १. मो. धा. धर, ना. फ. धार (धारु—फ.), धीर, शा. स. धरा । २. धा. अरधंगि । ३. ना. हेंइ, शा. स. हुअ । ४. धा अरधंगी अरधंग करि, अ. फ. अर अर धर अरधग करि, फ. अरि अर धर अरधग करि, ना.—अरंग करि, शा. अरि अंग रंग अरधंग करि, स. अरि अंग अंग अरधंग करि ।

(६) १. धा. दसु, अ. फ. जस, शा. स. जिय । २. अ. फ. हंस जस, (जस—अ. फ.), स. हंस तउ, ना. हंतु जस, शा. स. रहत तस । ३. अ. फ. हंसिनीय, ना. हंसिनीय । ४. मो. सरसुकि (=सुकइ), धा. अ. फ. सरहुकंभ (हुभ—अ. फ), ना. सुर सुक्कै, शेष में 'सर सुक्कै' । ५. मो. पंकन परि, धा. पंकजनि करि, अ. फ. पंकजनि परि, ना. शा. स. जिम पंक परि ।

टिप्पणी—(१) पउमिनिय < पद्मिनी । कंत < कान्त । (२) असर < अ+स्मर=काम-विहीन । मन=मानो । (३) दिनियर < दिनकर । रयनि < रजनी । (४) जंतु < 'या' से='जाता है' या 'जानेवाला' । (६) सुक < शुष् । परि=शेष ।

[२६]

दोहरा—सुनि प्रिय प्रिय[१] दिष्यौ[२] बदन[३] किय जिय निर्भय पाथ[४] । (१)
बाहु पुज्जउ[१] वरह तुह[२] कहि स° मुध्ध[३] रति नाथ[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) यह सुनकर प्रिय (पति) ने प्रिया का बदन (मुख) देखा, और जी को निर्भय (कठोर) पाथ (स्थान) बना लिया । (२) [उसने प्रिया से कहा,] "तुमने, हे श्रेष्ठ स्त्री, [मेरे] बाहुओं की पूजा की है, और वही तुम मुग्धा, [इस समय] रतिनाथ की [बातें] कह रही हो !"

पाठान्तर—° चिह्नित शब्द मो. में नहीं है ।

(१) १. धा. मो. सुनि प्रिय प्रिय, अ. सुप्रिय प्रिय, फ. सुप्रय प्रय, ना. सुप्रीय अप्रीय, शा. स. प्रिय अप्रिय । २. धा. देख्यो । ३. फ. वदति । ४. धा. जार प्रिय साधु, अ. फ. जिय निर्भय साथ, ना. जीय नृब्भय सथ्थ, शा. जिय नृप से सथ्थ, स. जिय भ्रप मौ सथ्थ ।

(२) १. धा. बहु पुज्जउ वय, मो. बाहु पुज्यो, अ. फ. बहु पूज्यो वय, ना. बहु पूजूं वर, स. हूं पूछों वर, शा. हुं पुछुंवर । २. अ. वनह तुह, फ. वनहि कहि, ना. वरहि तुहि, स. शा. वरह तुहि । ३. मो. कहि (=कहइ ?) मूछ (=मुच्छ), धा. कहि समदिउ, ना. कि समद्धौ, अ. शा. किहि समद्धो, स. कहि समधो, फ. समधो रतिधा । ४. ना. शा. रति नत्थ, स. रतिकत्थ ।

टिप्पणी—(२) तुह=तुम । मुध < मुग्धा ।

[२७]

दोहरा—तब[१×] कहइ[२] राजइ संजोगि[४] सुनि[५] सुकथह[६] कहत[७] अकथ्थ । (१)
श्रवन[१] मंडि कनवज्जिनी[२] ता[३] सुपनंतरि[४] तथ्थ[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) तब राजा [संयोगिता से] कहने लगा, "हे संयोगिता सुन, मैं एक अकथ्य सुकथा कह रहा हूँ; (२) हे कनवज्जिनी, स्वप्नांतर के उस तथ्य पर कान लगा।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। २. मो. किहि (< कहि), धा. कहइ, अ. कहि (=कहइ), फ. ना. शा. स. कहै। ३. अ. फ. राजा। ४. मो. सं[जो] ग, फ. संजोगु। ५. ना. सुं (=सउं)। ६. धा. कथ्यो, अ. सुपनह, फ. सुषनह। ७. अ. फ. कथ्थ, ना. कत्थह।

(२) १. धा. सुव्रन, फ. स्रवनि। २. अ. फ. कनवज्जिनी। ३. धा. स। ४. धा. फ. सुपनंतरि, शेष में 'सुपनंतर'। ५. ना. कत्थ, शा. स. अथ्थ।

टिप्पणी—(२) तथ्थ < तथ्य।

[२८]

कवित—सपनंतरि[१] सुंदरिय लग्गि आरंभ[२] परिरंभह[३] । (१)
तांह[१] तब संग[२] सुकीय तेज अच्छरिय[३] रवि गिंभह[*४] । (२)
तिन मिलि कै[१] करि झगुरु[२] गहइ[*३] करु बक बक[×४] जंपहि[५] । (३)
तहां[१] अदिष्ट[२] अरिष्ट[३] द्रिष्ट[४] ता दंतनु[५] चंपहि[६] । (४)
तेह न हुउं[*] न तह[१] अच्छरिय[२] हर हराह[३] सुर[४] उप्पयउ[*] । (५)
जानिय[*१] न देव दीवांन मह्[२] किहि निम्मान[३] काहा[*४] निम्मयउ[*५] ॥ (६)

अर्थ—(१) "स्वप्न में एक सुंदरी [मुझसे] आरंभ-परिरंभ करने लगी; (२) उस समय उसका स्वकीय (पति) भी संग था, जिसका तेज, हे अप्सरा, ग्रीष्म के रवि का था। (३) उस पुरुष ने [मुझसे] मिल कर झगड़ा किया, और [मेरा] हाथ पकड़ कर—अथवा हाथ से मुझे पकड़ कर—बड़ बड़ बकने लगा (बड़बड़ाने लगा)। (४) [इस प्रकार] वहाँ एक अदृष्ट अरिष्ट (संकट) [उपस्थित हो गया] और दिखाई पड़ा कि वह [रोष पूर्वक] दाँतों को दाब (कटकटा) रहा है। (५) तदनंतर न मैं था न उसी प्रकार वह अप्सरा थी, और 'हर हर' का स्वर उत्पन्न था। (६) पता नहीं कि देवताओं की सभा का क्या [अभि–]मत है, और किस निर्माण के लिए (उद्देश्य से) उन्होंने क्या निर्मित किया है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. धा. सपनंतरि, अ. फ. अज्ज सुपन, ना. सा सुपनंतरि, शा. स. सुपनंतरि। २. मो. लग्गि आरंभ, शेष में 'रंभ लग्गी (लग्गीय–ना.)'। ३. फ. परिरंभय।

(२) १. धा. ना. तह, अ. फ. स. तहं, शा. तहां। २. धा. मो. तब संग, अ. फ. तुष तीय, ना.

तुव गीय, शा. स. तुम संग। ३. मो. ते अजछरीय, धा. सैन अछिय, स. तेज अच्छिय, ना. तेज अछीय, शेष में 'तेज अछरिय'। ४. मो. विहंगइ, धा. बिस्वसइ, अ. ना. रवि गंमइ, फ. रवि मगय, शा. स. रवि गिम्मइ।

(३) १. धा. तिनि मिलि कै, मो. तिन मिली के, अ. फ. तिनि तुम मिलि, ना. स. तई तुम मिलि, शा. तहाँ तुम मिलि। २. धा. अग्गरिउ, अ. फ. अग्गरयउ, ना. अगरौ। ३. मो. गहि (=गहइ), धा. ना. शा. स. गहहि। ४. शा. स. करि बर कर। ५. मो. जंपिहि, अ. फ. जंपे।

(४) १. मो. तांहां, धा. वहाँ, अ. फ. शा. स. तहं, ना. तह। २. मो. अइष्ट, शेष में 'अदिस्ट' या 'अदिष्ट'। ३. अ. फ. आरिष्ट, ना. अरि दिष्ट। ४. धा. क्रष्टि, अ. द्रिष्टि, फ. द्रष्ट, ना. दिष्ट, शा. स. दुष्ट। ५. मो. ता दंतनु, धा. ता नंतनु, शेष में 'दानव तन'। ६. अ. फ. थंपे।

(५) १. धा. तह हेम तन तिनि, मो. तेह नहुं (=हुउं) नतह, अ. तहं हम तन नन, फ. तहं हुनत तनत, ना. शा. स. तहां तुम हून नन (नह—ना. शा.)। २. फ. अक्षरिय। ३. मो. हर हार हार, धा. हरि हहार, अ. फ. हर हराह, ना. हर हारा, शा. स. हर हर हर। ४. मो. स्वर, धा. सिर, शेष में 'सुर'। ५. धा. उप्पयो, मो. उपन्नु (=उपन्नउ), अ. उप्पज्यउ, फ. उप्पज्यौ।

(६) १. मो. जांन्य (<जानिय ?), धा. जानो, अ. जानई, फ. ना. जानौ, शा. स. जानै। २. धा. देव देवा मरन, अ. फ. देव देवान (देवानि—फ.) मलि, ना. देव देवान तुम। ३. मो. किहि निर्मानि (<निम्मनि); धा. कह निमान, अ. कहि भिमान, फ. कह तिमानु, ना. शा. स. कह भ्रिमान (भ्रिमान—ना.)। ४. धा. केहि, मो. कांहां, अ. तिहि, फ. तिहुं, शा. स. कह, ना. कहि। ५. मो. निर्मयु (=निर्मयउ), धा. निम्मयो, अ. निर्मयउ, फ. निर्मज्यौ, ना. शा. स. निपज्यौ।

टिप्पणी—(२) गिम < ग्रीष्म। (३) जंप < जल्प्। (५) तेह=तदनंतर (?)। उप्पय < उत्पद्। (६) देवान < दीवान [फ़ा०]=राज सभा।

[२६]

कवित्त—सुनि सुभग्ग प्रिय वचन[१] राज गुरु गुरु कवि[२] बोल्यउ*[३]। (१)
सोइ सपनंतर सुनवि[०] [१] तरुणि तिन प्रति मुष[२] खोल्यउ[३]।×(२)
सुवर मथ्थ तिन हथ्थ[१] अभय पंजर पढ़ि[२] दिन्नउ*[३]। (३)
कलस सहस भर षीर[१] अरघ[२] रवि ससि कहुं[३] दिन्नउ*[४]।+(४)
दस वारण वृष दान दस महिष ति मोति अनंत दिय[१]। (५)
तिहि दिवस[१] देव[०] प्रथीराज तब[२] संझ[३] सुभट[४] भट महल किय॥ (६)

अर्थ—(१) सुभग्गा (संयोगिता) ने प्रिय (पति) के वचनों को सुनकर राजगुरु और कवि गुरु (चंद) को बुलाया। (२) उस स्वप्नांतर की [घटना का फल] सुनने के लिए तरुणी (संयोगिता) ने उनके प्रति मुख खोला। (३) [पृथ्वीराज के] श्रेष्ठ मस्तक पर हाथ [रख कर उन्होंने] अभय-पंजर [मंत्र] पढ़कर दिया, (४) और सहस्र कलश भर कर क्षीर रवि-शशि को अर्घ्य-दान किया। (५) दस हाथी, [दस] वृष, दस महिष तथा मोती अनंत ही दान किए। (६) उसी दिन देव पृथ्वीराज ने तदनंतर संध्या समय सुभट-भटादि का महल (महल का दीवान) किया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।

० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण अ में नहीं है।

× चिह्नित चरण ना. में नहीं है।

(१) अ. फ. ना. सो सुपनंतर सुनिव (सुनवि–फ.), शा. स. सुपनंतर पुच्छनह। २. अ. फ. अनु कवि, ना. शा. स. कवि गुर। ३. मो. बोल्यु (= बोल्यउ), धा. बुल्यो, अ. बुल्यउ, फ. बुल्यौ, ना. शा. स. बुल्लिय।

(२) १. सुनिवि, अ. सुनिव। २. मो. तरुणि तिन प्रति सुष, शेष में 'तेन (तेनि–अ.) सुष तिन (तिनि–फ.) प्रति'। ३. मो. बल्यु (= बोल्यउ), धा. बुल्यो, अ. बुल्यउ, फ. बुल्यौ, शा. स. बुल्लिय।

(३) १. धा. सुवर मधे तन हथ्थ, अ. फ. सवर हथ्थ मनमथ्थ, ना. सुवर मत्थ तिहि हथ्थ, शा. स. सुवर हथ्थ दै मथ्थ। २. धा. पंजर परि, फ. पंजरि पढि। ३. मो. दि दिनु (= दिनउ), शेष में 'दिन्नो' या 'दिन्नौ'।

(४) १. ना. नीर। २. धा. धा. अरुय। ३. धा. ना. कई, मो. कहुं। ४. मो. दिनु (= दिन्नउ), धा. दिन्नो, शा. स. दीनौ, ना. किन्नौ।

(५) १. मो. दस वारण सुष दान दस मिहिव ति मोति अनन्त दिअ, धा. दस वर दिसान दस दस महिस इति अनन्त तिन दान दिय, अ. फ. ना. शा. स. दस (देस–फ.) बलि (बल–फ. ना.) दिसान दस (दिश–फ.) महिष अह (अहि–फ., इनि–ना. शा. स.) तिमत अनन्तक, (मुत्ति अनन्तत–ना., मित अनन्त मित–स., मित अनंत सब–शा.) दान दिय।

(६) १. फ. तिह देवस। २. मो. तव, धा. वर, अ. कर, फ. करि, ना. रवि, शा. स. दर। ३. मो. सिझ, शेष में 'सझ'। ४. धा. सुवर, अ. फ. सुहर। ५. धा. अ. फ. दिव।

टिप्पणी—(३) पंजर=यंत्र (जंतर)। (६) सुभर भर < सुभट भट।

११. शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज-युद्ध

[१]

दोहरा— सब्ब सेन[१] सत्तरि सहस घटि वधि[२] बरनत[३] वार । (१)
जे[१] भर भीर[२] सम्मुह चले*[३] ते[४] बत्तीस हजार ॥ (२)

अर्थ—(१) पृथ्वीराज की सब सेना [मोटे ढँग पर] सत्तर सहस थी; इससे [जो कुछ] कम-अधिक [रही होगी उस] का वर्णन करने में समय लगेगा । (२) इनमें से जो भट उस संकट के समय सम्मुख चले, वे बत्तीस हजार थे ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. ना. सवे (सबै–ना.) समनु, अ. फ. सब समन, शा. स. सबै (सबें–स.) सेन । २. मो. वधि, शेष सभी में 'वढि' । ३. फ. बर्त्तन, ना. शा. स. भनत ।

(२) १. मो. ना. जि (=जे), धा. शा. स. जे । २. फ. भार । ३. मो. समुह चलि (=चले), धा. समुह सहहि, अ. फ. ना. संमुह सहै, शा. समुह सधै, स. समुह सधै । ४. अ. फ. ने ।

टिप्पणी—(१) बध < वर्धय्, या वृध् , (२) सम्मुह < सम्मुख ।

[२]

दोहरा— सहहिं[१] भीर न्रिप पीर जिहिं[२] जिन सिर भरहि दुधार[३] । (१)
लाज धरहिं[१] तिन वरि गनहिं[२] ते पुहु[३] पंच[४] हजार ॥ (२)

अर्थ—(१) जो संकट को सहन करते थे, जिन्हें राजा की पीड़ा थी, जिनके सिर पर दुधारों का आघात होता था, (२) जो लज्जा धारण करते हुए [दुधारों के उन आघातों से] तृण को अधिक गिनते थे, ऐसे [योद्धा] पृथु (विस्तृत) पाँच हजार थे ।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. ना. सहै । २. धा. तिम, अ. फ. जिय, ना. जिन । ३. धा. अ. फ. जिनि (जिम–धा.) सिर झरहि (कारहि–फ.) दुधार, ना. शा. स. लज्जा (लज्या–ना.) धर (धरन–शा.) भर मार ।

(२) १. धा. लज्याधर, अ. फ. लज्जाधर, ना. शा. स. धरनि (भिरणि–ना.) धरणि । २. मो. तिन वरि गजिहिं, धा. तिणि वरि गणिहि. अ. फ. धर तिन (तिनु–फ.) गनै (गिनै–फ.), ना. शा. स. तिन बर गिनैं (गनत–स.) । ३. मो. पुहु, शा. स. भर, शेष में 'पहु' । ४. धा. अ. फ. पंच, मो. ना. शा. स. बीस ।

टिप्पणी—(१) पीर < पीड़ा । (२) वरि < वरम् । पुहु < पृथु ।

[३]

दोहरा— पंच[१] हजार ति[२] मझिफ दुइ[३] जे[४] ध्रग्या वर सामि[५] । (१)
कर वज्जइ[१] वज्जइ सहइ[२] ते से पंच[३] अछामि[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) उन पाँच हजार में से दो [हजार] ऐसे थे जो स्वामी की आज्ञा का वरण करते थे; (२) और जो अपने वज्र-कर से वज्र सहन करते थे, वे (ऐसे) उनमें पाँच सौ थे।

(१) १. मो. ना. शा. स. बीस, धा. अ. फ. पंच। २. धा. अ. फ. हजारह, ना. शा. स. हजारणि। ३. धा मंहि जुइइ, अ. फ. मंझि दुइ (दो-फ.), मो. ना. शा. स. मझि (मझि-ना. शा. स.) दस। ४. अ. फ. ते। ५. धा. अ. फ. स्वामि (स्वामु-फ.), मो. शा. साम, ना. सामि, स. स्याम।

(२) १. मो. करवजि (= वजइ), धा. कर वज्जो, अ. फ. कर वज्जिय, ना. कर वज्जी, शा. वर वज्रह, स. कर वज्रह। २. मो. सजि (= वजइ) सहि (= सहई), धा. वज्जह सहइ, अ. फ. वज्जिय सहन (सयनु-फ.), ना. वज्रह सहै, शा. स. वज्री सहै। ३. धा. ते सौ पंच, मो. तेह सह पंच, अ. फ. तै से पंच, ना. शा. स. ते षहु पंच। ४. धा. अ. अछामि, मो. इथाम, फ. अनाम, शा. स. हठाम, ना. इथान।

टिप्पणी—(२) वज्ज < वज्र। सं < सइ < शत।

[४]

दोहरा— तिन महिं सौ जे भयहरणु[१] सील सत्त जम जित्त[२] । (१)
तिन महिं दस वारुण दलणु[१] उप्पारहिं[२] गय[३] दंत ॥ (२)

अर्थ—(१) उनमें सौ ऐसे थे, जो भय का हरण करने वाले और शील और सत्य में यम को जीतने वाले थे; (२) उनमें भी दस हाथियों का संहार करने वाले थे, और वे हाथियों के दाँत उखाड़ लेते थे।

(१) १. मो. तिन मह सोभत दोइ गनीय, धा. अ. फ. तिन महि (मैं-फ.) सौ जे (सो-अ. फ.) भयहरन, ना. तिनमहि कवि गिन बीस से, शा. तिनमहि कवि गनि पंच से। २. धा. सील सत्त जम जित्त, मो. सील सत्त जिन जित्त, अ. सील सत्त सम जुत्ति, फ. सील सत्त समजुत्त; ना. सीलन सत्तत अंत, शा. सीलसत्त जिन जंत।

(२) धा. तिन महि दस वारुण दलण, अ. फ. तिन महि (रिन मैं-फ.) दस दारुण दहुन, मो. तिन मि (= मइ) दससि (= सइं) अरि दलन, ना. शा. तिनमहि (मैं-शा.) दस से अरि दलन। २. धा. उप्पारहि, अ. उप्पारण, फ. उप्पारनु, मो. उपारि (= उपारइ), ना. शा. जे कढ़ै। ३. ना. गज।

टिप्पणी—(२) वारुण < वारण। गय < गज।

[५]

दोहरा—तिनमहि पंच प्रपंच से[१] लखिय न गति तिन काज[२] । (१)
देवगति देषान[१] सउं*[२] तिनमहिं पहु[३] प्रथिराज ॥ (२)

अर्थ—(१) उनमें भी पाँच [विधाता के] प्रपंच की भाँति ऐसे थे कि उनके कार्यों की गत

देखी नहीं जा सकती थी; (२) वे देवगति वाली सभा के समान थे, और उनमें (उनके बीच) प्रभु पृथ्वीराज थे।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. अ. फ. तिन मद्धि पंच प्रपंच से, मो. तिननि (=नइ) कवि गनि पंच सि (सइ ?) हिं, ना. शा. स. तिनमद्धि कवि गनि (कवि गिन–ना., फिरि गिनि–शा.) पंच सें (सैं–ना.)। २. धा. अ. फ. लखिय न (त–फ.) गति तिन (तिन गति–अ. फ.) काज, मो. ना. शा. स. सायभाव दिठउ (दृढ़–ना. शा., द्रढ–स.) काज।

(२) १. मो. तिन मि (=मइ) दिवगति देवन। २. धा सूं (= सउं), अ. फ. सौ, मो. संमुह, ना. सुं (=सउं), शा. स. सों। ३. मो. तिनिमद्धि पुहु, फ. तिनमाहि।

टिप्पणी—(२) देवान < दीवान [अ.] = राजसभा। पहु < प्रभु।

[६]

दोहरा—पावस आगम धर अगम१ दल सज्जे[1] दुहु[2] दीन। (१)*
अंबर छाइउ[1] अम्भु* तिन[2] षिति छाही षित्रीन[3] ॥ (२)*

अर्थ—(१) पावस के आगमन से धरा अगम्य हो रही थी, [जब] दोनों दीनों (हिन्दू और मुसलमान) ने दल सजे। (२) आकाश में अभ्र (बादल) छा गए, [उसी प्रकार] क्षिति (पृथ्वी) को उन क्षत्रियों (योद्धाओं) ने आच्छादित कर लिया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. आगवर। २. मो. सज्जु (=सज्यउ), धा. सज्जहि, शेष में 'सज्जे'। ३. फ. दुहौ, ना. शा. स. दोउ।

(२) १. मो. छाइ (=छाइउ), शेष 'छायो' या 'छायौ'। २. मो. अदमु (=अम्भु) तिन, धा अभ्र तिन, अ. फ. अभ्रनु, ना. अम्भयनि, शा. स. अम्भरन। ३. धा. अ. फ. ना. छिति (छित–फ.) छायी छत्रीन (छत्तीन–अ. फ., छत्रीनि–ना.), मो. षिति छाहा षित्रीन, शा. स. बिति (छिति–स.) छाई (छाइय–स.) छत्रीन।

टिप्पणी—(१) छाइ < छादय्। अम्भ < अभ्र। (२) षिति < क्षिति। षित्री < क्षत्रिय।

[७]

कवित्त— सिंधु उतरि सुलतांन[1] कहइ षुरसान षान संउ*[2]। (१)*
षां तितारि[1] रुस्तमां[2] बुज्झि तुम कहु सच मुझ सउ[3]। (२)*
*भइ[1] आलम आलमां[2] सकिल्लि*० लिए०[3] हिंदु राइ+ पर। (३)*
जिहि हउं गहि छंडियउ*[1] वार सत हउ* अप्पउ* कर[2]। (४)*
तिहिं गहन हउं इच्छहुं[1] सुमन सच्च[2] करतार[3] कह। (५)*
मग्गहु[1] अगम्म[2] भूत[3] संग हउ[4] धरहुं लज्ज[5] लज्जहुं न भर[6] ॥ (६)*

अर्थ—(१) सिंधु [नद] पार करके सुलतान (शहाबुद्दीन) खुरासान खाँ से कहने लगा, "(२) तातार और रुस्तम खाँ से पूछ कर तुम मुझे बताओ; (३) मैंने आलम (दुनिया) के आलम (लोगों) को हिन्दू पति (पृथ्वीराज) के ऊपर [आक्रमण करने के लिए] सकेल लिया है (इकठा किया है), (४) [उस हिन्दू पति पर आक्रमण के लिए] जिसने मुझे पकड़ कर छोड़ा, और जिसे मैंने सात बार कर अर्पित किया [अथवा जिसने मुझे सात बार पकड़कर छोड़ा, और जिसे मैंने कर अर्पित किया]। (५) उसी को पकड़ने (बंदी करने) की मैं इच्छा कर रहा हूँ, मेरा वह मनोर्थ करतार सच करे; (६) मार्ग में भी अगम्य (अत्यधिक) भृत्यों का संग्रह करो; हे भटो, तुम लज्जा धारण करना, और मुझे लज्जित न करना।"

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. धा. सुरताण, अ. फ. सुरितान। २. मो. कहि (= कहइ) सुरतान षानसं (= सउं), धा. कहिउ सुरताज खान सं (= सउं), अ. फ. कह्यो सुरताण षान सौ (स्यौं–फ.), ना. कह्यो षान सुरतानसह, शा. स. बत्त कहि षां षुरसानह।

(२) १. मो. तितार, शेष में 'ततार'। २. धा. रस्तमा, शेष में 'रुस्तमा'। ३. मो. बुझि तुम कहु सच मुझ सं (=सउं), धा. षान मझार मान तूं, अ. गहहु सच्च मुसाफ तुम, फ. गहौ सबह औसाफ तुम, ना. छुवौ साच मुसाफ कहु, शा. स. छुओ तुम साफ मुसाफह (मुसाफह–शा.)।

(३) १. मो. मि (=मइ) धा. हूं, शा. वे, शेष में 'मैं'। २. शा. आमल आमल। ३. मो. सकिहि लीए, अ. फ. सकेलि हा, ना. संकिकिह हिंदु राइ धर, शा. स. सकल हिंदू राउप्पर।

(४) १. मो. जिहि हूं (=हउं) गहि छडियु (=छंडियउ), धा. जिहि गति छंड्यौ सात, अ. फ. जिहि गहि छंड्यौ सत्त, शा. स. जिहि ग्रहि छंड्यौ बार, ना. जिहि गहि छंड्यौ षट्ठ। २. मो. बार सत हूं (=हउं) अपू (=अप्पउ) कर, धा. अ. फ. बार हूं (हौं–अ. फ.) अप्पु अप्पु (अप्प अप्प–अ. फ.) कर, ना. बार अप्प अप्प कर, स. बेर सो आप अप्प कर, शा. बार से आप अप्प कर।

(५) १. मो. तिहि गहन हुं (=हउं) इछइं, धा. तिहि गहन हुं (=हउं) ति इच्छउं सुमन, अ. फ. ता गहन हौं (हो–फ.) त अछ्छं सुमन (सुम–फ.), ना. म. उ. स. तिहिं गहन हैत इंछौ (इछौ–शा., इंछयौ–ना.) सुमन। २. धा. अ. फ. सुमनु (सुम–फ.) संचु, ना. शा. स. साच झूंठ। ३. मो. किर तार, शेष में 'करतार'।

(६) १. धा. अ. मग्गहु, ना. मंगहु, फ. मग्गौ। २. धा. अ. फ. ना. अभंग। ३. धा. ना. अ. शा. फ. भृत, स. मत। ४. धा. संगहहु, अ. संग्रहो, फ. संग्रह्यौ, ना. शा. स. संग्रहै। ५. मो. धरहुं लाज, धा. धरहु लज्ज, शेष में 'धरहु लज्ज'। ६. मो. लज्जइ न भर, धा. भग्गौ न भर, अ. फ. भज्जहु न भर, ना. जनि डुलहु भर, शा. स. निज डुलन भर।

टिप्पणी—(४) अप्प < अर्पय्। (६) भृत < भृत्य। भर < भट।

[८]

कवित्त—तब‡ षांन षुरासान ततार षांन[२] रुस्तम‡ कर°‡ जोरइ°‡[२] ।[×] (१)
आन°‡[१] साहि°‡ मरदान°‡[२] थान°‡[३] सु° बिहान°[४] बिछोरहि। (२)
हउं*[१] हमीर हिंदू न°[२] दीन‡° रोजा°[३] रमजानहि[४]। (३)
पंच[१] निवाज‡[२] बिकाज[३] करि न[४] गोरी गुम्मानहिं[५]। (४)

सुरतान आन चहुआन सउ*[१] जउ*[२] न[३] चाल बंधिवि[४] भिरहि। (५)
दे[१] हथ्थ[२] हथ्थ दे[१] अज्जु हम[३] नहिं दुरोग[४] दोजक[५] परहि[६] ॥ (६)

अर्थ—(१) तब खुरासान खाँ, तातार खाँ और रुस्तम खाँ हाथ जोड़ [कर कहने] लगे, "(२) शाह (शहाबुद्दीन) की आन (शपथ) है, कल सुबह हम [शत्रु-पक्ष के] मर्दों (योद्धाओं) की आन छुड़ा देंगे। (३) हे अमीर, हम हिन्दू नहीं हैं, हमारा दीन (धर्म) रोज़ा और रमज़ान [का] है; (४) हमारी पाँच नमाज़ें बेकार हों; [यदि इससे विपरीत हो]; हे गोरी, तू [हमारे संबंध में] गुमान (बुरी धारणा या संदेह) न कर। (५) सुलतान की आन (शपथ) है, यदि हम [कल] चहुआन से चाल बाँध कर न भिड़ें। (६) [तुम्हारे] हाथ में आज हम हाथ दे रहे हैं—तुमसे प्रतिज्ञा करते हैं: हम न दरोग (झूठ) [कहेंगे] और न दोज़ख़ (नर्क) में पड़ेंगे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित चरण ना. में नहीं है।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
‡ चिह्नित शब्द अ. में नहीं हैं।
§ चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं।

(१) धा. तबहि षान पुरसाण षान, अ. फ. ना. स. षां। (फुनि—ना., पुनि—स.) षुरसान ततार (ततारु—फ.) षान। २. मो. कर जोरी (= जोरइ), फ. कर जोरेहि, ना. स. जोरहि।

(२) १. फ. अन्य। २. फ. हमीदानु, ना. सुरतान। ३. पान। ४. ना. स. चहुआन। ५. धा. विच्छोरहि, मो. विछोरिहि, अ. फ. विछोरे, ना. विछोरहि, स. विछोरही।

(३) १. मो. हुं (= हउं), धा. अ. हा, फ. हौ, ना. हं, ना. स. है। २. मो. हिंदुआन, धा. हिंदू—अ. फ. हिंदून। ३. अ. फ. गोजा। ४. धा. अ. फ. रंजानहि, ना. रोजानहिं, ना. स. नहि जानहि।

(४) १. अ. फ. पंचि। २. धा. मयाजि। ३. मो. धा. विकाज, अ. ना. स. बेकाज, फ. विकाइ, धा. मेकाज। ४. मो. करिज, धा. अ. फ. जाइ, ना. जोन, ना. स. जाय। ५. मो. गुरू मानहि, धा गुम्मानइ, शेष में 'गुम्मानहि'।

(५) १. मो. चहुआन सु (= सउ), धा. चहुवान सूं, अ. फ. चहुवान (चौहवान—फ.) सौं, ना. चहुआन सुं (=सउं)। २. मो. जु (= जउ), धा. जउ, अ. फ. जे, ना. जौ, ना. स. जो। ३. फ. नु। ४. मो. बंधिय, धा. बंधवि, फ. बंधिवि, फ. बंधुवि, ना. बंधव, ना. स. धंधे।

(६) १. मो. धा. ना. दे, शेष में 'दै'। २. ना. स. मथ्थ। ३. मो. दे अजू हम, धा. दे आज हम, अ. फ. अजहू (अजहौ—फ.) मनहि, ना. दे अप्पु मह, ना. स. सिर अज्ज हम। ४. मो. नहीं दु रोज़, धा. नेहिं दुरोग, अ. जो दरोग, फ. जौ दयौ रोज, ना. नह दरोग, ना. स. नहि दरोग। ५. धा. दोजग। ६. मो. परिहि, शेष में 'परहि'।

टिप्पणी—(२) मरदान < मर्दां [फा०] = मर्दों की। (३) हमीर < अमीर [अ०]। रोजा < रोज़ः [फा०]। रमजान < रम्ज़ान [अ०] (४) निवाज < नमाज़ [फा०]। गुम्मान < गुमान [फा०] = शंका, संदेह। (६) दुरोग < दरोग [फा०] = झूठ। दोजक < दोज़ख़ [फा०] = नर्क।

[६]

दोहरा— मेछ्छ[१] मसूरति सत्ति[२] किय[३] बंचि[४] कुलांन[५] कुरांन[६]।
वीर° विरुझ्झत तिहि कियउ*[१] दियउ*[२] मिलांन मिलांन[३] ॥

अर्थ—(१) म्लेच्छों (मुसलमानों) ने सच्ची मशवरत (सलाह–परामर्श) क -ने कुरान बाँची (बाँचकर शपथ ली); (२) तथैव उन वीरों ने बातें थोड़ी [करके] पड़ाव पर पड़ाव किए।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. मो. मछ, शेष में 'मेछ' या 'मेच्छ'। २. मो. शा. स. सस्य, शेष में 'सत्ति' ा. विच्छि। ५. मो. कुरानि, धा. ना. कुराण, अ. फ. कुरान, शा. उरान, स. उराम।
(२) १. मो. चिकुवत (=चिवकुवत्त) तिह किंयु (=कियउ), शेष में 'वीर विचार (रत्ति– धा. शा. स.) हुअ। २. मो. दीउ (= दिअउ), धा. दीह, अ. फ. दि। ३. धा. मिल्हाण मिल्हाण, स. मेलान मिलान।
टिप्पणी—(१) मेछ < म्लेच्छ। मसुरति < मशवरत [अ०] (२) चिक्क < स्तोक ं। तिह < तथा।

[१०]

पध्धडी—सजि[१] चलउ*[२] साहि[३] आलमु असंभु[४]। (१)
उप्पटउ*[१] जानि[२] सायरनु अंभु[३]। (२)
जल थलति थलति जल होत दीस[१]। (३)
उनयउ*[१] मेछ्छर बल बइर*[३] रीसि। (४)
बज्जहि[१] विसाल[२] घन जिम[३] निसांन[४]। (५)
दामिनिय तेग[१] वर कर[२] कमांन। (६)
वारुन[१] वहंत[२] मद गंध बुंद[३]। (७)
सुभ्भइ[१] न मान दिसि विदिसि[२] धुंध[३]। (८)
धुंमलिय[१] मिलिय°[२] कल+ कलन[३] सद[४]। (९)
भुंभजीअ[१] भाम[२] महि माल मद[३]।+x[४] (१०)
चकीय चक्क[१] सुकिवि[२] चलंति[३]। (११)
रस सरस दरस सारस[१] मिलंति[२]। (१२)
प्रतिबिंब[१] अंभ अंबरन[२] तार। (१३)
मुगतइ*[१] न मुगति[२] मंजरि सिवार[३]।[४] (१४)
चकित सु+ चित्त[१] मन मित्त[२] मित्त[३]। (१५)
सर[१] उभय[२] भमिय[३] आनंद चित्त। (१६)
दप्प आदप्प[१] आलोल[२] नयन। (१७)
विसरीय[१] कोक[२] सुरमग्ग[३] वयन।[४] (१८)
हसि चक्क चकिय[१] सम कहिग[२] छंद। (१९)

माननिय मान[१] यामिनिय चंद[२] । (२०)
असपति असंभ धर[१] गहन हिंदु[२] । (२१)
कोपियउ मल्ल[१] गोरी नरिंदु । (२२)*
प्रज्जलहि[१] पंथ पट्टनइ[२] सिंधु[३] । (२३)*
मिलि चलिग[१] अग्ग[२] आरंभ[३] गिध्धु[४] ।[५] (२४)
अखुहइ[१] सुरेणा[२] पंखी[३] पुकार । (२५)*
अमावसि संक्रमइ सन्निवार । (२६)
रवि घरहि[१] राहु अरु[२] केत[३] गत्ति । (२७)
जानियइ चंदु संग्रहन मत्ति[१] ॥[२] (२८)*

अर्थ—(१) शाहे आलम (दुनिया का बादशाह) [शहाबुद्दीन] अपूर्व रूप से [सेनादि] सज कर चला; (२) [ऐसा ज्ञात हुआ] मानो [सातो] सागरों का जल उमड़ पड़ा हो । (३) जल स्थल और स्थल जल होते दीख पड़े, (४) म्लेच्छ सेना वैर और रिस (क्रोध) पूर्वक उन्नमित हो पड़ी । (५) विशाल धौंसे बादलों के जैसे बज रहे थे । (६) तेगें (तलवारें) दामिनी तथा हाथ में ली हुई कमानें [इंद्र-धनुष के समान] थीं । (७) वारण (हाथी) गंध युक्त मद की बूँदे बहा रहे थे । (८) भानु दिशाओं-विदिशाओं के धुँधली पड़ने के कारण सूझ नहीं रहा था । (९) उस धुँधलेपन में [सेना का] कोलाहल का शब्द मिल रहा था । (१०) मर्दित होकर मही पर बाग-बगीचे मुरझा और झुलस गए थे । (११) [अँधेरा होने के कारण रात्रि का आगमन समझ कर] चकवी और चकवा एक दूसरे से छूट (बिछुड़) रहे थे, (१२) और [पारस्परिक] दर्शन के सरस रस में [सिक्त होकर] सारस-युग्म मिल रहे थे । (१३) अंबर (आकाश) के तारागणों का प्रतिबिम्ब [सरोवरादि के] अंभ (जल) में पड़ने लगा था, (१४) यद्यपि वह [किंचित् प्रकाश के कारण] शैवाल-मंजरी से मुक्ति का भोग नहीं कर पा रहा था (उनके प्रतिबिंबों के साथ-साथ शवाल-मंजरी भी दिखाई पड़ रही थी) । (१५) [किंतु] पुनः मित्र (चकवे) के मित्र (सूर्य) [के दर्शन] से चकवी मन में सुचित्त हो रही थी (१६) और दोनों (चकवा-चकवी) आनंदयुक्त चित्त से सरोवर [के किनारे] पर भ्रमण कर रहे थे । (१७) कोक (चकवे) के नेत्र दर्प से आदर्प [किन्तु] चपल हो रहे थे, (१८) उसको [अपने] स्वर-मार्ग का (सुरीला) बोल विस्मृत हो रहा था । (१९) हँसकर चकवे ने चकवी से यह छंद कहा, (२०) "हे मानिनी, सूर्य मानो यामिनी का चन्द्र हो रहा है, [इसलिए हम आज उस यामिनी का सुख क्यों न उठाएँ जो हमें अप्राप्य रहता है ?] (२१) [यह अपूर्व अवसर तो हमें इसलिए प्राप्त हो रहा है कि] धरा पर के असंभ (अपूर्व) हिंदू अश्वपति [पृथ्वीराज] को पकड़ने के लिए (२२) मल्ल (योद्धा) गोरी बादशाह (शहाबुद्दीन) कुपित हुआ है ।" (२३) पत्तन (दिल्ली) की सीध (दिशा) के पथ प्रज्वलित हो रहे हैं, (२४) होने वाले आरंभ (मुठभेड़) के आगे ही (पहले ही) गिद्ध-गण मिल (जुड़) कर चलने लगे हैं । (२५) पक्षी [परस्पर] पुकार रहे हैं कि "रजनी [हो गई] है, (२६) [अथवा] शनि के द्वार पर अमावास्या ने संक्रमण किया है, (२७) अथवा रवि के घर में राहु और केतु का गमन हुआ है, (२८) अथवा इसे चंद्रमा के संग्रहण की मति (युक्ति) जानिए ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
० चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित शब्द या चरण फ. में नहीं है।

× चिह्नित चरण अ. में नहीं है।

(१) १. अ. फ. सहि। २. मो. चलु (=चलउ), धा. चल्यो, ना. चल्यौ, शेष में 'चल्यो' या 'चल्यौ'। ३. धा. मही। ४. फ. संभ।

(२) १. मो. उपटु (=उपटउ), धा. अ. फ. उप्पटिय, ना. स. शा. उप्पट्यौ। २. धा. आनु। ३. मो. सयरनु अंस, अ. साइरनि अंभ, फ. साइरु अंभ।

(३) १. फ. जलति थल होति दीस, ना. थल जल होत दीस, शा. स. थलति सेना सुदीस।

(४) १. मो. उनयु (=उनयउ), धा. उट्ठिय, अ. फ. उनए, ना. स. शा. उनयो। २. अ. फ. मेघ। ३. मो. विरख, शेष में 'बैर' या 'बयर'।

(५) १. मो. शा. स. वाजहि, शेष में 'बज्जहि'। २. शा. दिसान, स. निसान। ३. धा. जिमि। ४. स. दिसान।

(६) १. धा. तेज, अ. तेक, फ. ते। २. धा. सम वकछ, अ. फ. ना. बरबर, स. बरबक।

(७) १. मो. वारुणीय, धा. अ. फ. वारुणि, ना. वारुण। २. धा. फ. वहंति, शेष में 'बहंत'। ३. मो. गंध बंधु, धा. गंध बुंध, अ. गंध बंध, फ. गंधु अंधु, ना. स. बुंद गंध, शा. गंध बुंद।

(८) १. मो. झुझि (=झुझइ), अ. फ. झुझइ, शेष में 'झुझे'। २. ना. विदिश। ३. मो. सिंधु, शा. बुंद, शेष में 'धुंध'।

(९) १. मो. फ. धुंमलिय, शेष में 'घुम्मिलिय'। २. धा. मलत, फ. धुमलिय। ३. धा. कलमलित, अ. कलकलय, फ.—कलय, ना. कलमंनि, स. शा. कलमनिग। ४. शा. स. संद।

(१०) १. धा. झझुझकिथि, ना. स. शा. झंझलिग। २. धा. डास, ना. शा. स. सूर। ३. धा. महि माल मह, मो. हिमराल मंद, ना. महिमाल मंद, शा. स. सुह सुरिग मंद। ४. मो. ना. शा. स. में यहाँ और है : रिधि राय (रघुरहि—ना.) धरिणि (धरणि—ना.) संचरि (संचरहि—ना.) सांन।

सुनिये स वयन ते (सह—ना.) दूरि (दुरिग—ना.) कांन।

(तुल० प्रथम अतिरिक्त चरण की आगे आए हुए चरण २५ से)।

(११) १. धा. चक्कीय चहूं, फ. चक्कीव चक्कि। २. मो. ना. शा. स. भुक्कवि, शेष में 'भुक्किवि'। ३. शा. स. कलंत, अ. फ. ना. चलंत।

(१२) १. मो. सरिस, शेष में 'सारस'। २. अ. फ. ना. शा. स. मिलंत।

(१३) १. शा. प्रतिब्यंब। २. मो. अंस असरन, धा. अंभ अवरन, अ. फ. ना. अंब अंबरनि (अंबरिति—फ., अंबरणि—ना.)।

(१४) १. धा. भुगती (< भुगति=भुगतइ), मो. भुगते (< भुगति=भुगतइ), शेष में 'भुगतै'। २. धा. भुक्ति, मो. भुगति, शेष में 'भुकतिं'। ३. फ. मंजसि सिंचारि। ४. ना. शा. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

झुंकार झुनति गाजहि सिहंग। दस दिग्ग धरा पूरे समंग।

(१५) १. मो. चकित चित, धा. चकतु सुचित्त, फ. चकित चित्त, शेष में 'चक्कित सुचित्त'। २. धा. मातंगि, फ. मित्ति। ३. धा. मत्त।

(१६) १. मो. शर, शेष में 'रस'। २. धा. अमय। ३. अ. अमिये, फ. अमियौ, शा. स. अम्म।

(१७) १. धा. अ. फ. दर्पंक अदर्प, ना. दर्प आदर्प, शा. स. दीपंः अदृप्प। २. मो. आलोय, शेष में 'आलोक'।

(१८) १. ना. विस्सरिय, अ. विसरियै। २. फ. को। ३. मो. सुमग्ग, धा. सुरगाल, फ. सुरगैन, अ. सुरगैन, ना. सुगमग्ग, शा. स. सुरमग्ग। ४. धा. मो. ना. शा. स. में यहाँ और है :

निखुरिय डाक डरहरिय कोक। संचिय सुसाक संभरिय लोक (तर भरिय लोक—धा.)।

(१९) १. धा. चकिम चकवि, मो. चक्क चकिय, अ. फ. चक्र चक्र, ना. चक्क चक्कि, शा. स. चक्क चकी। २. मो. सम कढ्ढिग, धा. मुक्कलिग, अ. मुक्कढिग, फ. गुळढि, ना. सुं कढ्ढिग, शा. स. सौं कढ्ढिग। ३. फ. नरिंद।

(२०) १. अ. फ. ना. जानि। २. मो यामिनिय चंदु, धा. जामिनिनु चंद, अ. फ. जामिनि (जामिनु–फ.) अनंद।

(२१) १. मो. असमधर, असंभु धर, अ. अंभुभ धर, फ. अंभु भर, शा. स. असंभ धर। २. धा. अ. फ. गहन हिंदु, मो. गहिनी हिंदु, ना. गह नरिन्द, स. गहन हिन्द।

(२२) १. मो. कोपीयु (=कोपियउ) मत्त, धा. कोपिय कमाल, अ. फ. कुप्पौ (कुप्पौ–फ.) सुजालि (सुजोलि–फ.), शा. स. कोप्यौ कमाल, ना. कोप्यौ सुकमल।

(२३) १. धा. प्रजालहि। २. मो. पटनि (=पट्टनइ), धा. अ. स. पट्टननि, फ. पटनन, शा. पट्टननि, ना. पट्टनति। ३. धा. सिद्धि, मो. सिद्धु, अ. फ. ना. सिद्ध, शा. स. सिध।

(२४) १. अ. फ. चलहि। २. ना. शा. संग, स. सिंगि। ३. मो. अरंभ, ना. आरंग, शेष में 'आरंभ'। ४. धा. गिद्धि, शेष में 'गिध्ध' या 'गिध्धु'। ५. मो. धा. ना. शा. स. में यहाँ और है:—

दिय दिवस साल एक करहि फेर (बार फिक्करहि फेर–धा.)।
योगनि अनंद अछरिय (जुग्गणि अहद अच्छर–धा.) सुमेर।
बहु फल (कुहि कलि–धा.) किसान बिसतरहि वीर।
तरफरइ (तप्फरहि–धा.) मीन धर गगन नीर।

(२५) १. मो. अछि (=अछइ), धा. अ. फ. अच्छी, ना. अग्गो, शा. अगि, स. अग्गैं। २. मो. रेणु, ना. रमण। ३. धा. पच्छहिं, फ. पंपौं, ना. शा. स. पछुं।

(२६) १. धा. शा. स. मावसिअ संकवणु (संक्रमन–शा. स.) सनिवार, मो. अनावसि संक्रमइ सिनवार, अ. फ. माव सत्तु संक्रमन (संक्रमन–फ.) सनिवार (सत्ति वार–फ.), ना. माव रस सक्रमन सनिवार।

(२७) १. धा. मो. फ. धरहि, शेष में 'धरइ'। २. अ. अन, फ. अनि। ३. फ. केहि।

(२८) १. धा. जानिय न चंद ग्रह ग्रहण गत्ति, मो. जानीइ (=जानियइ) न चंद संग्रहन मत्ति, ना. शा. स. जानी न चंद ग्रह ग्रहन मत्ति (गत्ति–ना., मत्त–शा.), अ. फ. जानें सु (स–फ.) चंद ग्रह गहनि (ग्रहनि–फ.) गत्ति (गत्त–फ.)। २. मो. ना. में यहाँ और है:—

उच्चरै चंद वर भरम (मर मरन–मो.) काज।
रप्पइत (रायीयु–मो.) आप (आज–मो.) प्रिथिराज राज।

टिप्पणी—(१) असंभु < असंभूत (?)। (२) उप्पट < उत्+पद्। अंभु < अम्भस्। (४) मेछ < म्लेच्छ (७) वारन < वारण। (९) सद्द < शब्द। (१०) झुंझलिय [दे०] = मुर्झाए हुए। झाम [दे०] = दग्ध। माल [दे०] = आराम, बाग। मद्द < मृद् = मसलना। (११) मुक्क < मुच्। (१४) मुत्तति < मुक्ति। सिवार < शैवाल। (१५) मित्त < मित्र। मित्त < मित्र = सूर्य। (१६) भम < भ्रम्। (१७) दप्प < दर्प। आदप्प < आदर्श। (१८) सुर मग्ग < स्वर-मार्ग। वयन < वचन। (२१) असपति < अश्वपति। असंभ < असंभूत (?)। धर < धरा। (२४) अग्ग < अग्र। (२५) रेण < रजनी। पंछी < पक्षिन्।

[११]

दोहरा—दरसइ[1] *दनु वद्दल विषम लागुड*[*] *लग्गि*[2] *निसान*[3] *। (१)*
मिले पुब्ब[1] *पछ्छिम*[2] *हुति*[3] *पातिसाह चहुआंन*[4] *॥ (२)*

अर्थ—(१) [दोनों] दल विषम बादलों के समान [अथवा दोनों विषम दल–बादल]

ाई पड़े, और धौसों पर लकड़ी लगी; (२) पूर्व और पश्चिम से पातशाह (...
ान (पृथ्वीराज) [के दल] मिले।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
(१) १. मो. दरसि (=दरसइ), धा. दरस, अ. फ. दोऊ, ना. शा. स. दरसे।
धा. राग लाग अलि. अ. फ. लागरु (लागुरु–फ.) लाग, ना. शा. स. रागरु ला
.. तिसानु।
(२) १. मो. पूरव, शेष में 'पुब्ब'। २. शा. पच्छिन। ३. मो. हुति, धा. हुती (
ते, स. हते। ४. मो. पातिसाह चहुआन, शेष में 'चहुवान सुरताण' (अथवा–'सुरत
टिप्पणी—(१) दरस < दर्शय्। वद्दल < [दे० वार्दल]=बादल। लागुर < लकुट
< पूर्व। पातिसाह < पादशाह (फा०)।

[१२]

भुजंग— मिले जाय[1] चहुआन सुरताण[2] धग्गे[3] । (१)
मनउ*[1] वारुणी छकि वे वार[2] लग्गे[3] । (२)
उठे हंकि हंकं[2] कहंकह[3] कालं । (३)
जुरे[1] जोध जोधा[2] तुटे[3] लाल[4] तालं । (४)
बढे सो* ओलग्गी*[1] बजी[2] धार धारं । (५)
भयौ[1] सेन दुम्पइ*[2] दुहु मार मारं[3] । (६)
मिले सहर सउं* पहर जुरे जंग तेगं[1] ।° (७)
भयौ सेन मिल्ले[1] अनी एक मेगं[2] ।[3] (८)
छुटे[1] बान चहुआन आवध्घ राजं[2] । (९)
लगे* मेछ अंगं[1] मनउ*[2] बज्ज बाजं[3] । (१०)
तुटे संग संनाह के[1] अंग[2] अंगं । (११)
उठे स्रोन छिछे*[1] जुरे जान[2] दंगं ।[3] (१२)
चढे*[1] वीर नंदीस सूली[2] अनंदी । (१३)
नचइ*[1] भूत[2] भइरव[3] बकइ*[4] जान[5] वंदी[6] ।[7] (१४)
चबइ*[1] स्रोन संगं[2] किलिकार घुट्टे*[3] । (१५)
महे मेछ भग्गे[1] जुरे[2] सूर छुट्टे*[3] । (१६)
भिरे*[1] जाम दोइ[2] जुध्ध[3] हींदू हमीर[4] ।×‡ (१७)
परे*[1] पंच पंचास चामंड[2] वीरं ।×‡ (१८)
[1]परे×‡ घाइ×‡ चालुक×‡ ते×‡ साठि[2]×‡ दूने[3] । (१९)
मुरे[1] मोरिआ सब्ब भये जात*[2] सूने[3] । (२०)
परे सहस छ सूर[1] कूरंम बाला[2] ।[3] (२१)

परे पोचिश्रा षग्ग षेलै सुखाला[१] ।° [१](२२)
परइ* जइत* पंमार[१] श्रब्बू जु राया[२] ।×‡ (२३)
करी श्रप्प[१] चहुश्रांन° प्रथिराज[२] छाया[३°] ।×‡ (२४)
परे पांच सै पांच[१] चहुश्रांन चढ्ढे[२] ।×‡ (२५)
रहे सात श्रर सात[१] प्रथिराज ठढ्ढे[२] ।×‡ (२६)
परे सहस सोरह सह[१] सेन गोरी ।° (२७)
रहे जानि हिंदू तुरक खेलि[१] होरी । (२८)
भिरे[१] देव° दानव्व° जिम° वैर*°[२] चीतउ*[२] । (२९)
मुरे[१] सेन चहुश्रांन सुरतान जित्तउ*[२] ॥[३](३०)

अर्थ—(१) चहुआन (पृथ्वीराज) और सुल्तान (शहाबुद्दीन) [के दल] खड्ग युक्त होकर [इस प्रकार] जा मिले, (२) मानो वारुणी (मदिरा) में छककर दो समूह या यूथ लग (भिड़) रहे हों। (३) उस कुद्दराम के काल में वे हाँकें लगा उठे; (४) योद्धा से योद्धा भिड़ गए और उनका ललकारना और ताल ठोकना टूटने (समाप्त होने) लगे। (५) ओलग्गि (सेवक—भृत्य) आगे बढ़े और धार से धार बजने लगी। (६) सेनाएँ दुर्मदि हो उठीं और दोनों में मारा-मारी होने लगी। (७) सुभट प्रहार करते हुए [परस्पर] मिले और जंग (युद्ध) में तेग जुड़ (टकरा) गए, (८) सेनाओं के मिलने से अनीकें एकमेक हो गईं। (९) चहुआन (पृथ्वीराज) के बाण छूटे, जो आयुध-राज थे; (१०) वे म्लेच्छों के अंगों में [इस प्रकार] लग रहे थे मानो वज्र चल रहे हों। (११) सन्नाह के संग उनके अंग (शरीर) [अतः] टूट रहे थे, (१२) और उनसे शोणित के छींटे [ऐसे] उड़ रहे थे, मानो द्रंग (बड़ा नगर) जल रहा हो। (१३) शूली (महादेव) वीर नन्दी पर आनन्द युक्त होकर चढ़े; (१४) [उनके साथ] भूत नाच रहे थे और भैरव इस प्रकार बक रहे थे जैसे बन्दी (भाँट) हों। (१५) [योद्धाओं के शरीरों से] शोणित चू रहा था, और वे (भूतादि) किलकार के संग उसे घूँट रहे थे; (१६) म्लेच्छ (मुसलमान) [अपने] घरों को भागने लगे, और जो शूर एकत्रित हुए थे वे छिटकने लगे। (१७) दो प्रहर तक हिन्दू और अमीर (पृथ्वीराज तथा शहाबुद्दीन के सैनिक) भिड़े, (१८) [इस युद्ध में] पाँच पचास (ढाई सौ) चामंड वीर खेत रहे। (१९) चाव (उत्साह) पूर्वक लड़ते हुए साठ के दूने (एक सौ बीस) चालुक्य योद्धा गिरे। (२०) वे [कटकर] शून्य हुए जा रहे थे, जब कि वे मुड़ (लौट) पड़े और [उन्होंने शत्रुओं को] मोड़ (पिछड़ा) दिया। (२१) बाल (तरुण) कूरंभ शूर छः हजार गिरे, और (२२) खीची [शूर] गिरे जो सुख से खड्ग खेलते थे। (२३) जैत पँवार गिरा, जो आबूराज था, (२४) [और उसके गिरने पर] आप पृथ्वीराज चहुआन ने [उस पर] छाया की। (२५) पच्चीस सौ चहुआन गिरे, जो चढ़े (युद्ध में सम्मिलित हुए) थे; (२६) [केवल] सात और सात (चौदह) [सौ ?] योद्धा और पृथ्वीराज खड़े रहे। (२७) गोरी (शहाबुद्दीन) के सोलह सहस्र सैनिक गिरे। (२८) [ऐसा लगा] मानो हिन्दुओं और तुर्कों ने होली खेली हो, [अथवा] जैसे देवों और दानवों ने [प्राचीन] वैर का स्मरण कर युद्ध किया हो। (३०) चहुआन (पृथ्वीराज) की सेना मुड़ गई—लौट पड़ी—और सुल्तान (शहाबुद्दीन) विजयी हुआ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित चरण या शब्द ना. में नहीं है।

‡ चिह्नित चरण या शब्द फ. में नहीं हैं।

◊ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

० चिह्नित चरण या शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. जाइ मो. जाय, अ. फ. चाहि, ना. चाइ, शा. स. चाय। २. मो. सुसार, धा. सुरताण, शेष में 'सुरतान' अथवा 'सुरितान'। ३. ना. पगं, शा. स. पग्गं।

(२) १. मो. मनु (=मनउ ?), ना. शा. मनुं (=मनउं ?), शेष में 'मनो'। २. मो. छ'त के वार, धा. छवे वारुणी, अ. फ. वृत्ति वे मत्त (सत्त), ना. छित्ति वे वारु, शा. स. छक्कि बे वार (वार–शा०)। ३. ना. शा. स. लग्गे।

(३) १. मो. उठे हंकि, धा. अ. फ. उठी हक, ना. शा. स. उठे हथ्थ। २. मो. [हंकं=हक्कं ?], ना. हंकं, शेष में 'हक्कं'। ३. अ. फ. कूहू कूह, ना. कई कूर, शेष में 'कई कूह'।

(४) १. मो. जुरे, धा. ना. शा. स. जुटे, अ. फ. करे। २. मो. जोधा, शेष में 'जोध'। ३. मो.—टे, धा. तुटे, अ. फ. तुटे। ४. ना. ताल।

(५) १. मो. वढे सू (=सो) उलग्गी (ओलग्गी), धा. स. शा- स. वढी संग लज्जी (लागी–शा., लग्गी–स.), अ. फ. बढ़ी अंग लग्गी, ना. बटी सिंग लग्गी। २. धा. व, शेष में 'वजी'।

(६) १. धा. भमी, मो. भयौ, अ. फ. ना. शा. स. भए। २. मो. सेन दुंमि (=दुम्मइ), धा. सेन दुन्नी, अ. फ. सेन दूनं (दूनुं–फ.), ना. सेन मेलं, शा. स. सेल सेलं। ३. मो. फ. ना. शा. स. में यहाँ और है (मो. पाठ):—

फुटे अध्ध अध्धं कबंधं कबंधं। गिरे धाय अध्धाइ के कान सुधं।

(७) १. मो. मिले सहर सुं (=सउं) पहर जुरे जंग तेगं, शेष में 'सुभट्ट' जु (सु–ना. स. शा) थट्ट ज सूरं स एकं (सुरांसं समेकं–ना. शा. स.)।

(८) १. मो. भयी सेन मिल्ले, धा. शा. स. भई सैन मेलं, अ. फ. भए सेल मेलं, ना. भरे सास सत्रास। २. धा. शा. स. अनी एक एकं, अ. फ. अनी एक येकं, ना. कंसेल एकं। ३. मो. फ. ना. शा. स. में यहाँ और है (मो. पाठ):—परे सूर मइझं उतंगं जु धारं। भमइ विच्चि विमान आरंभ हारं।

(९) १. धा. वजे, अ. फ. बढे, ना. शा. स. छुटे। २. अ. फ. वासं (बीसं–फ.)।

(१०) १. मो. लगि (=लगे) मेछ अंग, धा. लजे मेछ अगे, अ. फ. ना. शा. स. कगें (लगे–ना. शा. स.) मेछ अंगं। २. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, ना. मनुं, शेष में 'मनो' या 'मनौ'। ३. धा. बज्जवान, मो. ना. बज्र वाजं, अ. फ. बज्र तासं (तीसं–फ.)।

(११) १. मो. छडे संग सेनं हंके, शेष में 'तुटे' (टुटे–अ. फ. स.) संग (सार–धा. संध–अ. फ., सगि–ना.) सनाह के। २. ना. अंगि।

(१२) १. मो. उठे सेन सीसं, शेष में 'उठे' (उढे–ना.) श्रोन (सोनि–ना.) छिछी (छिछे–शा. ना. स.)। २. मो. जुरे षान, धा. ना. जरे (जरै–ना.) जानु, अ. फ. जरे जानि। ३. मो. फ. ना. शा. स. में यहाँ और है (मो. पाठ): हने राज प्रथिराज सामंत सत्तं। भए मेछ अध्धं जनइ राह केसं।

(१३) १. मो. वढे (< चढे), धा. चढ़ी (< चढि=चढे), शेष में 'चढ्यो'। २. धा. सूरी, ना. सारी, शेष में 'सूली'।

(१४) १. मो. नचि (=नचइ), धा. नचे, शेष में 'नचै'। २. मो. ना. शा. स. भूत, शेष में 'रंग'। ३. धा. मेरं, ना. भैरूं। ४. मो. बकि (=बकइ), धा. बके, शेष में 'बकै'। ५. ना. जान। ६. धा. वदी (< वंदी), फ. चंदी (< वंदी)। ७. मो. फ. ना. शा. स. में यहाँ और है (मो. पाठ):

भरइ जूथ जानीय जूथान जूथं। गहइ गिद्ध सेवाल लूथान लूथं

(१५) १. मो चवि (=चवइ), धा. चुवे, ना. चलो, शा. स. चुवें, अ. फ. चव। २. मो. श्रोन संगं, धा. अ. फ. सट्ठि चौसट्ठि, ना. सस्थि चौसट्ठि, स. श्रोन सठ्ठी। ३. मो. किलिकार घुटि (घुटे), धा

ते स्रोन छुट्टं, अ. फ. ना. ते श्रोनबुंदे (बूंदे--फ.), शा. स. किलकांत छूटैं ।

(१६) १. मो. गहे मेछ भगे, धा. ग्रिहे सोइ भग्गा, अ. फ. ग्रहै मोह भग्गा, ना. ग्रसे मेछ भग्गे, शा. स. ग्रहं मेछ लागे । २. अ. फ. जनौ, ना. शा. स. जुरैं । ३. मो. छूटि (=छूटे), धा. छुट्टे, अ. ना. छुट्टे, फ. छूटै ।

(१७) १. मो. भरि (=भरे), धा. ना. भिरे, शा. स. भिरं । २. मो. दोइ, धा. दुइ, शा. स. दुअ । ३. मो. युव (=जुव्व), ना. सु । ४. मो. हींदू हमीरं, धा. माझुव्व नारं, शा. स. हिंदू सुमीरं ।

(१८) १. मो. परि (=परे), धा. ना. परे, स. परैं, शेष में 'परं' । २. शा. स. चावंड । ३. मो. ना. शा. स. में यहाँ और है (मो. पाठ):—

परे दाहिया बागरी हाक दूने । परे देवरा दून दून वधानं (जोद्ध ते दून ऊने--ना. शा. स.) ।
परे सांपुला सव्व भट्टी सुराने । परे हंस माल्हन मिल्ले सथाने ।
परे राय राठुर रनभूमि दूरे । मनु सार संसार समर्मथ तोरे ।

(१९) १. अ. फ. में इसके पूर्व है (अ. पाठ है) :—

परे मेछ पुंडीर मिलिया सुभारे । गडे गात गोरी जरे हिंदु गोरे ।

२. धा. निने नृप सावुप्र भाखेल, शेष में 'परे चाइ चालुक्क (चालुक--मो.) ते सार (साठि--मो.)' । अ. फ. में यह पूरी शब्दावली छूटी हुई है, और धा. में भरती की और निरर्थक है। ३. धा. अ. फ. दूने, शेष में 'ऊने' ।

(२०) १. ना. परे । २. मो. जये जस (< जात ?), धा. ना. शा. स. भए जाति, अ. भइ जाति, फ. भइ जानि । ३. धा. सूने ।

(२१) १. मो. ना. शा. स. सहस छ (छोह--ना. षट--शा. स.) सूरं, धा. साहसी दुइ (< दुइ) जाति, अ. फ. सहस सै दून । २. मो. शा. स. वाला, ना. बाली, धा. अ. फ. बाले । ३. धा. ना. शा. स. में यहाँ और है :—परे गज्ज सिंदूक (गज्झ सिंदूख--धा.) ते ढाल (ये दो शब्द धा. में नहीं हैं) ढाला (ताले--धा.) ।

(२२) मो. ना. शा. स. परे चींचोआ वग्ग षेत्तं सुकाला, (सुकालौं--ना., सुषाला--शा. स.), अ. फ. रूरे जथ्थ जग झुंड सड विहाले । २. मो. ना. शा. स. में यहाँ और है (मो. पाठ) :—परे राव चंदेल पंडीर माला । सहइ भीर रण रंग रण तग लाला । ना. शा. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—चले मल्ल हस खुले मुक्ति माला ।

(२३) १. मो. ना परे (< परि=परइ), शा. स. परे । जित (=जइत) (जैत--ना. शा. स. पमार), धा. पर्‍यौ जैतु पावार । २. मो. अब्बू जु राया, धा. आबू सु राऊ, ना. अब्बू स राया, शा. स. आबू सु राया ।

(२४) १. मो. शा. स. अप्प, धा. ना. दौरि । २. ना. पृथिराज आयौ । ३. यह दर्शनीय है कि यद्यपि यह अर्द्धाली अ. फ. में नहीं है, इसी भाव का निम्नलिखित दोहा अ. फ. ना. शा. स. में है:—

पर्‍यौ राउ जैतह सुरण पति अब्बू घन घाइ । सूर राज सोमेस सुत करी अप्प सिर छाँय ॥ (स. ६६. १२४५) धा. ना. में यहाँ पर और है: भिरे दौरि भट वीर पुंडीर भारी । परे सहस दुइ षेत झुझार भारी । इनमें से प्रथम चरण धा. में नहीं है, दूसरा उसमें भी है ।

(२५) १. धा. अ. फ. स. पंच सै पंच, ना. पांच सै पांच । २. ना. कढ्ढे ।

(२६) १. मो. सात सर सात, धा. सत्त अर सत्त, ना. सत्त सामन्त, स. सत सर सत्त । २. धा. कढ्ढे, ना. कढ्ढे ।

(२७) मो. सहस पंचीस लह, अ. फ. सहस सोरह सबै, ना. सहस पंचास सब, शा. स. सहस पच्चीस सब ।

(२८) १. मो. रहे हिंदू जा तुरक षेलंत, ना. स. रहे मनो (मनु--ना.) हिंदु तुरक खेलि ।

(२९) १. मो. भरे, शेष में 'भिरे' । २. मो. विर (= वैर) । ३. मो. चीतु (= चीतउ), धा. बीत्यो, ना. शा. स. वित्यो, शेष में 'चीत्यो' ।

(३०) १. मो. मुरे, धा. मुरयो, शेष में 'मुरयौ' । २. मो. जितु (= जितउ), ना. जित्यौ शेष में

'चीरयो' । ३. मो. ना. शा. स. में यहाँ और है (मो. पाठ) :—

मले षांन सुरतान रणभूमि पेषु । तिहाँ एक देवार सम देव देषु ।

धा. ना. शा. स. में यहाँ और भी है—परी लच्छ (लच्छि—धा. लुथि—ना. शा. स.) अगणित जानू म (जानौं न—ना) संख्या । लयौ (रहे—ना.) जानु नागेन्द्र (जोगेन्द्र—ना.) सामूह (मुष—ना) दख्या । [किंतु चरण २७ में 'सहस सोलह' या 'सहस पचीस' की संख्या दी हुई है]

टिप्पणी—(१) खग्ग < खड्ग । (२) बे < द्वय । वार = समूह, यूथ । (४) लाल = ललकार । ताल = ताली (ताल ठोंकना) । (५) ओलगी < ओलग्गि < अवलागिन् = सेवक, भृत्य । (६) दुम्मह < दुर्मति । (७) सहर < सुहर < सुभट । पहर < प्रहार । (८) एकमेग < एकैकं । (९) आवध < आयुध । बाज् > व्रज् = गमन करना । (१२) श्रोन < शोणित । जुर < ज्वलम् । दंग < द्रङ्ग = महानगर । (१७) हमीर < अमीर [अ०] । (२४) अप्प < आत्म । (२७) सह = समस्त ।

[१३]

दोहरा— देषउ*१ देवर२ सम दयतु३ रनि ठढ्ढउ*४ चहुआन५ । (१)
फिरि*१ घेरो२ गोरी३ सयन जिम* नक्खत्तनु*४ भान५ ॥ (२)

अर्थ—(१) [उस समय] पृथ्वीराज को [गोरी के सैनिकों ने] इस प्रकार [रणक्षेत्र में खड़ा] देखा जैसे दैत्यों ने देवल (देवमूर्त्ति) को देख लिया हो; (२) फिर सो उसे गोरी की सेना ने इस प्रकार घेर लिया जैसे नक्षत्रों ने भानु (सूर्य) को घेर लिया हो ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. देषु (= देषउ), धा. अ. फ. दिष्यो, ना. शा. स. देष्यौ । २. अ. देवल, फ. देउल । ३. स. समदयत । ४. मो. न. ठढु (= ठढउ), धा. अ. रण ठढ्ढौ फ. रनि टढ्ढौ, ना. रन ठढ्यो, स. रन ठढ्ढौ । ५. धा. फ. चहुआनु ।

(२) १. मो. फेरि (< फिरि), धा. अ. शा. स. फिरि, फ. फिर । २. मो. घेरो, शेष में 'घेरयो' । ३. धा. गोरिय, शेष में 'गोरी' । ४. मो. जि (< जिम ?), नक्षत्रहि (= नक्खत्तहि), शेष में 'मनहु (मनोह—फ.) नछत्रनि (नछत्रनु—धा., छत्रनि—फ., नछित्रनि—ना. नछत्रन—स.) । ५. धा. भानु ।

टिप्पणी—(१) देवर < देवल = देव प्रकृति का मनुष्य । कई पौराणिक व्यक्तियों का यह नाम भी मिलता है । दयत < दैत्य । (२) सयन < सेना ।

[१४]

दोहरा— कहहि१ मेछ्छ२ मुह३ अग्गरे रे कुफार४ फरजंद । (१)
बांह षांन षुरसांन की१ सिंगनि२ डारि३ नरिंद४ ॥ (२)

अर्थ—(१) म्लेच्छ [पृथ्वीराज के] मुख के आगे कह रहे थे, "रे काफिरों के पुत्र ! (२) रे राजा, तू [अब] खुरासान खाँ की बाँह में [अपनी] सिंगिनी (सींग का बना धनुष) डाल दे ।"

पाठान्तर—(१) धा. कहिहि, मो. कहहि, शेष में 'कहै' । २. अ. फ. मुछ्छ, शेष में 'मेछ' ।

१. ना. सुव । मो. शा. स. काफर (कफर–ना.), धा. अ. फ. कुफार (कुपार–धा.), ना. वे कफर ।

(२) १. ना. सुरतान कुँ । २. धा. सिंगणि, मो. सिंगनि, अ. सिंगिनि, फ. संगुनि, ना. संगनि, शा. सिंगल । ३. मो. डारि, ना. अप्प, शेष में 'अप्पि' (अप्फि–धा.) । ४. मो. नरेन्द (< नरिंद), शेष में 'नरिंद' ।

टिप्पणी—(१) अग्गर < अग्र । कुफार < कुफ्फार ('काफ़िर' [अ०] का बहुवचन) । फ़रजंद [फ़ा०] = पुत्र, संतान ।

[१५]

दोहरा—सहउ*१ न बोल समुहु हन्यउ*२ बान३ षांन षुरासान । (१)
दुहु दुज्जन पूजिय घरी१ दिन पलटउ*२ चहुआन ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने] उसका बोल न सहा और खुरासान खाँ को उसने सम्मुख ही बाण मारा, (२) दुःख और दुर्जन (शत्रु) की घड़ी पूरी हो आई, और चहुआन (पृथ्वीराज) के दिन पलट (बदल) गए ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. सहु (=सहउ), धा. सह्यो, अ. फ. सहि, ना. शा. स. सह्यौ । २. मो. हन्यु (=हन्यउ), ना. हयो, शेष में 'हन्यो' या 'हन्यौ' । ३. शा. स. बांह ।

(२) १. मो. दुहु दूजन (< दुजन) पूजीअ, धा. दुह दुज्जी दुज्जी घरी, अ. फ. दुहु दुजी पुजी (दूजी पूजी–फ.) घरी, ना. शा. स. दह (दह–ना.) अपुब्ब संजोगि (संजोग–शा.) सुनि । २. मो. पलट (< पलटु=पलटउ), धा. पछर्‌यो, शेष में 'पलट्यो' या 'पलट्यौ' ।

टिप्पणी—(१) संमुहु < संमुख । (२) दुह < दुःख ।

[१६]

दोहरा—दिन पलटउ*१ पलटउ*२ न मनु भुज बाहत सब शस्त्र । (१)
अरि भिटइ*१ विट्यउ*२ न कोइ३ लपउ* विघाता४ पत्र ॥ (२)

अर्थ—(१) उसके दिन तो परिवर्तित हो गए, किन्तु मन नहीं परिवर्तित हुआ, उसकी भुजाएँ [अब भी] समस्त शस्त्र चला रही थीं, (२) शत्रु से भेंट—भिड़ने—में भी किसी ने विधाता के पत्र के लेखों को [कभी] वेष्टित नहीं किया है—ढँका नहीं है ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. पलटु (=पलटउ), धा. पलट्यौ, अ. पलटत, फ. पलटनु, ना. स. पलट्यौ, शा. पलटे । २. मो. पलटु (=पलटउ), धा. ना. शा. स. पलट्यौ, अ. पलट्यां, फ. लट्यो । ३. धा. शा. स. बाहै, अ. फ. ना. बाहै ।

(२) १. मो. भिडि (=भिटइ), धा. भिर्‌यौ, ना. भिट्टत, शा. स. भिटन, शेष में 'भिट्यौ' । २. मो. बीट्यु (=बीट्यउ < विट्यउ ?), धा. ना. शा. स. भिट्टै, अ. फ. भिटे । ३. मो न कोइ, धा. न को, अ. फ. कनतु । ४ मो लषु (=लषउ) विधाता, धा अ फ लष्यो (लिष्यो–अ फ) जु धाता, ना शा स.

लिख्यौ विधाता।

टिप्पणी—(२) विट < वेष्टय्।

[१७]

श्लोक— विधात्रा[१] लिषितं[२] यस्य न तं[३] मुंचंति[४] मानवाः[५] । (१)
म्लेच्छं मूर्धं हस्ते[१] साहनं दिल्लीश्वरं[२] ॥ (२)

अर्थ—(१) विधाता का जो-कुछ लिखा होता है, उससे मानव मुक्त नहीं हो सकता है; (२) [देखो,] म्लेच्छ सरदार के हाथ में दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) साधन हुआ।

पाठान्तर—(१) १. मो. पत्रहि, धा. अ. फ. विधात्रा, ना. शा. स. विधाता। २. मो. लक्षतं, शेष में 'लिषितं'। ३. धा. तेन, ना. ते, शेष में 'तं'। ४. धा. मुच्चंति, मो. मुंचति, शेष में 'मुंचति'। ५. मो. मानव, धा. मानवा।

(२) १. मो. म्लेच्छ मुर्ध हस्तीय, धा. म्लेच्छं मुर्धं हस्तं च, फ. म्लेच्छ मूर्खेन हस्तेन, ना. म्लेच्छाना मूर्द्ध हस्तं, शा. स. म्लेच्छानां बंधनं हस्ते। २. मो. साइनं दिलीश्वरं, धा. साहनं दिल्लियं सरं, अ. फ. ग्रहणं पृथिवी (पृथवी) पते, शा. साहायं ढिल्लीश्वरं, शा. स. सुविहानं दिल्लीश्वरः।

टिप्पणी—(२) साहन < साधन।

[१८]

कवित—जिहि करवर°[१] अरि जरहिं[२] जरउ*[३] करु गिाय[४] तेह[५] कड्ढित[६] । (१)
जिहि सकत्ति[१] मुहु[२] सकति सकति पंषित°[३] सक°[४] छंडित°[५] । (२)
जिहि बानावलि[१] बांन[२] प्राण कंपइ*[३] मद[४] सिंधुर[५] । (३)
तिहि[१] मद[२] सिंधुर सुंड दंड[३] सिर[४] छत्र नृपति[५] पर। (४)
जिहि मुह[१] साह×[२] सम्हउ*[३] सहि न तिहि मुह+ जंपइ*[४] गहु[५] गहन[६] । (५)
प्रथिराज देव दूवन[१] गहउ*[२] रे छत्रिअ[३] कर षग गहु न[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) जिस श्रेष्ठ कर से शत्रु जल जाते थे, वह कर उसी प्रकार शत्रु को [देश से] निकालने में जल गया; जिसकी शक्ति मुख (आदेशों) की शक्ति थी, [जिसके द्वारा वह जिसे चाहता] खींच (पकड़) या छोड़ सकता था, (३) जिसकी बाणावली के बाणों से मद-मत्त सिंधुरों के प्राण काँपते थे, (४) और इसी से मद-मत्त सिंधुर अपने शुण्ड दण्ड में उस राजा के सिर पर छत्र धारण करते थे, (५) जिसके मुख को शाह (शहाबुद्दीन) संमुख सहन नहीं कर सकता था, उसी के लिए अपने मुख से [शाह] 'गहन रूप से पकड़ो' कह रहा है ! (६) पृथ्वीराज देव को दुर्जन ने पकड़ लिया ! हे क्षत्रियो, [अब] हाथ में तलवार न पकड़ो !

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं।
× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. करि, फ. करवरि, अ. करिवर, शेष में 'करवर'। २. मो. अरि जरिहि, ना. असि झरहि, शेष में 'अरि जरहि'। ३. मो. जरु (=जरउ), धा. जरिउ, अ. फ. जन्यो, ना. जरइ, शेष में 'जर्‌यो'। ४. मो. कर णिय, धा. कह निय, अ. फ. निय करि, ना. करणी, शा. स. तिह कर। ५. मो. तेह, धा. अ. शा. स. तिहि, फ. जनु, ना. कर। ६. मो. फ. कढिल, धा. कर, अ. शा. महुत, ना. स. कढ्ढति।

(२) १. शा. स. संकति। २. मो. सुइ, शेष में 'सुप'। ३. शा. स. पंचिल, ना. पंचति। ४. अ. फ. छक। ५. शा. स. छंडिति।

(३) १. ना. बानावर, शा. स. बानावरि। २. स. मान। ३. मो. कपि (=कपइ), शेष में 'कपहि'। ४. फ. मधु। ५. मो. सिंघ नर, शेष में 'सिंधुर'।

(४) १. मो. धा. तिहि, अ. फ. जिहि, ना. शा. स. तिन। २. ना. मदन। ३. धा. सुंड रुंड, अ. फ. सुंडि दंडि, ना. सुंडा डंड, शा. स. सुंड डंड। ४. अ. फ. किय, शेष में 'सिर'। ५. शा. स. त्रिपति। ६. धा. वर, फ. परि।

(५) १. स. जि सुह, ना. जिहि सुष। २. धा. सुहि मसाह, मो. सुह साह, शेष में 'सुख सद्दाव'। ३. मो. समहु (=समहउ), शेष में 'संमुह'। ४. मो. सुह जपि (=जंपइ), धा. जपे, ना. सुष जंप, शा. स. सुष जंपत, अ. फ. जंप्यौ। ५. मो. ना. गहु, धा. फ. शा. स. गहे, अ. गहि। ६. धा. गहन, शेष में 'गहन'।

(६) १. मो. दूवन, धा. दुवननि, अ. ना. दूवननि, फ. दुवनि, शा. दुसनन, स. दुवनन। २. मो. गहु (= गहउ), शेष में 'गह्यो'। ३. धा. षग्गो, मो. अ. फ. छगिअ (छगिअ--मो.)। ४. मो. कर षग गहु न, धा. गुर अब्बहु न, फ. उर गब्बहि नि, ना. गुर अब्बाहन जिन, स. शा. गुर अब्ब हन।

टिप्पणी—(१) णिय = निज, ही। (५) संमहट < संमुख। जंप् < जल्पय्। (६) षग < षग्ग < खड्ग।

१२. शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज का अन्त

[१]

कवित— गहि चहुआन नरिंद गयउ*[१] गज्जने साहि घरि[२] । (१)
सा[×] ढिल्ली[१] हय हय भंडार[२] तेहि[३] तनय[४] अप्पि[५] धर[६] । (२)
बरस एक[१] तिहि अध्ध[२] मुध्ध किन्हउ*[३] नयन[४] बिनु । (३)
जंम[१] जंम जुग[२]‡ अवरुध्ध[३] जाइ[४] प्रथिराज[५] इक[६] पिनु[७] । (४)
सुनत श्रवनतु धरि परउ*[१] हरि हरि हरि हरि[×] देव सु कह[२] । (५)
तजि पुत्र मित्र माया सकल[१] गहिग[२] चंद गजनेव रह[३] ॥ (६)

अर्थ—(१) चहुआन नरेन्द्र(पृथ्वीराज) को पकड़ कर ग़ज़नी का शाह (शहाबुद्दीन) घर गया। (२) उसने दिल्ली के हय, गज, भांडार, तथा धरा (राज्य) को उसके पुत्र को अर्पित किया। (३) एक वर्ष के आधे (छः महीने) में उस मूर्ख ने [राजा को] नयन-विहीन कर दिया, (४) [फलतः] पृथ्वीराज को एक-एक क्षण जन्म-जन्म या एक-एक युग की भाँति अवरुद्ध होकर बीत रहा था। (५) कानों से यह सुनते ही [चन्द] धरा पर गिर पड़ा, और 'हरि, हरि, हरि, हरि देव' उसने कहा। (६) [तदनंतर] पुत्र-मित्रादि समस्त माया [के बन्धनों] को छोड़ कर चन्द ने ग़ज़नी की राह पकड़ी।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।
‡ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. गयु (< गयउ), धा. गयो, अ. गयउ, फ. गजउ (< गयउ), शेष में 'गयो' या 'गयौ'। २. मो. घर, धा. ना. घरि, शेष में 'घर'।

(२) १. मो. ना. दिल्ली, धा. ढिल्ली, अ. फ. ढिल्लिय, शा. स. दिल्लिय। २. ना. शा. स. द्रव्य। ३. मो. तेहि, धा. अ. तिहि, फ. तिह, ना. स. शा. ताहि, । ४. धा. तनँ, ना. शा. स. तन (तिन—ना.) इह (यह—ना.) सु। ५. अ. फ. अप्पिय, ना. अप्प। ६. फ. धर।

(३) १. मो. एक, धा. अध्ध, शेष में 'अद्ध'। २. मो. तिहि अधी, धा. ना. तिहि अद्ध, अ. फ. तिहि अद्ध, शा. स. तस अद्ध। ३. मो. किन्हु (= किन्हउ), धा. किन्हा, अ. किन्नौ, फ. शा. कीनौ, ना. कीयौ। ४. मो. शा. स. नयन, धा. नयननु, अ. फ. नैननि, नयननि।

(४) १. ना. जाम। २. मो. पुग (< युग = जुग), धा. जुअ। ३. धा. रुद्ध, अ. फ. वर रुद्ध (रुद्धि—फ.), ना. अवर, शा. स. अवरु। ४. मो. जाअ, धा. तथा शेष में 'जाइ'। ५. मो. प्रथिराज, अ. फ. पृथिराज, शेष में 'प्रिथिराज'। ६. धा. एकु। ७. मो. धा. पिनु, अ. फ. छिन, ना. शा. स. छिन।

(५) १. मो. सुनत श्रवनतु धर पर (= परउ), धा. सुनि स्रवण स्रवण सुनि धरि परयो, अ. फ. सुनि

अवननि धरनिय (धरनिय–फ.) परिग (परिगु–फ.), ना. शा. स. सुनत श्रवन धरनिय (धरनिहि–ना.) परिग । २. मो. हरि धी हरि देव सु कह, धा. हरि हरि हरि हरि देव कहि, अ. फ. हरि हरि हरा सुनारि कह (कहि–फ.), ना. हरि हरि रसना सु कह, शा. स. हरि हरि हरि मुख जंपि ।

(६) १. शा. स. उठ्यौ मनह विश्राम करि, धा. तथा शेष में 'तजि पुत्र मित्र माया सकल' । २. मो. गहिय, शा. स. भयौ, धा. तथा शेष में 'गहिय' । मो. गजनेव रह, धा. गज्जनइ रह, अ. फ. गज्जन हुरह, शा. स. भयौ विभ्रिन (विभ्रम–फ.) मन कंदि ।

टिप्पणी—(२) अप्प < अर्पय् । धर < धरा । (३) मुध्ध < मुग्ध=मूर्ख । (४) धिन < क्षण । (६) रह < राह [फा॰] ।

[२]

दोहरा— *गहिय[१] चंदु रह गजने[२] जहां सजन जु[३] नरिंद*[४] । (१)*
कब हउं नयन निरष्षिहउ*[१] मनहु रवि[२] अरविंद ॥ (२)*

अर्थ—(१) चंद ने गजनी की राह पकड़ी जहाँ [उसका] स्वजन नरेन्द्र (पृथ्वीराज) था; (२) [मार्ग में वह सोचता जाता था,] "कब मैं उसे नेत्रों से [इस प्रकार] देखूँगा, मानो रवि (सूर्य) को अरविंद [देखता हो] ?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. ना. शा. स. गहिग, शा. गही । २. ना. रह गज्जनै, शा. स. गज्जन सुरह । ३. मो. जाहां सजन जु, धा. जह सजन मूं, ना. जह सज्जन सु, शा. जहां सार्जन, अ. फ. जहं (जहां–फ.) सज्जन स्वामि । ४. मो. नरेन्द (< नरिंद), शेष में 'नरिंद' ।

(२) १. धा. कि बहु नयन निरष्षियै, मो. कब हूं (= हउं) नयन निरषिहूं (= निरषिहउं), अ. कबहि नयननि पिष्षिहौं, फ. कबहौं नयननु पिष्षियौं, ना. कब हुं (= हउं) नयन निरष्षिहु (= निरष्षिहउं) शा. स. कब हौं (हुं–शा.) नयननि (नैंन–स.) निरषिहौं (निरष्षिहौं–स.) । २. धा. मनहु नवइ (< नवि < रवि), मो. मनहु रवि, अ. फ. मनहु नयौ, ना. शा. स. मनो (मनहु–ना.) सूर ।

टिप्पणी—(२) रह < राह [फा॰] । सजन < स्वजन ।

[३]

दोहरा—वपु विभूति[१] बहु[२] विहुयउ[३] जट बंधी[४] जम जूट[५] । (१)*
मनु माया मुक्कइ गहइ*[१] सु कथ्थ जाय[२] अवधूत ॥ (२)*

अर्थ—(१) उसने वपु (शरीर) में बहुत-सी विभूति (राख) लपेट ली और यम के जूट (केश-कलाप) [जैसी] जटा बाँध ली । (२) जिसका मन माया को [कभी] छोड़ता [कभी] पकड़ता था, ऐसा अवधूत कहाँ जा रहा था ?

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. वप विभूति, फ. वपि विभूत । २. मो. बह, शेष में 'बहु' । ३. मो. विहयु (= विहुयउ), धा. ब—, अ. फ. विहुई, ना. बहुयौ, शा. स. विट्यौ, अ. फ. विहुई । ४. मो. जट बंधी, धा. अ. जट

बधी, फ. तब बंधी, ना. तब बधी । ५. मो. उम जूत, धा. जिम जूत, अ. फ. जने (जमु—फ.) जूट, ना. शा. स. जम जूत ।

(२) १. मो. मनु माया मुंकि (= मुकइ) गहि (= गहइ), धा. मनु मायहि मुक्के गहे, अ. फ. माया मुक्के मन गहे, ना. शा. स. मन माया मुक्किय (मुक्किय—ना.) गह्यौ । २. मो. सु कह (= कथ्थ ?) जाय, धा. तथा शेष में कथौ (को—अ. शा. स., किम—ना., कै—फ.) पुज्जइ (पूजै—फ, पुज्जै—अ. फ. ना. शा. स.) ।

टिप्पणी—(१) बिद्ध् < वेद्य । (२) मुक्क् < मुच् । कथ्थ < कुथ ।

[४]

दोहरा—सरसइ[*१] *बल अरु कंठ बल*[२] *अरु हिइंइ*[*३] *वरु वीर ।*
हिंदू कहइ[*१] *हम देव हइ*[*२] *मेछ कहइ*[*३] *हम पीर ॥*

अर्थ—(१) उसे सरस्वती का बल था और अपने कण्ठ का बल था, और हृदय में भी वह श्रेष्ठ वीर था, (२) [इसलिए उसे देखकर] हिन्दू कहते "यह हमारा देवता है" और म्लेच्छ कहते "यह हमारा पीर है" !

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. सरसि (= सरसइ), धा. सरसइ, ना. सरसं, शेष में 'सरसं' । २. मो. गंठिवर, धा. कंठवरु, ना. कंठवर, शेष में 'कंठवरु' । ३. मो. हइंइ (< हिदंइ), धा. हिइवरु, अ. हियवर, ना. स. सु हियें, शा. सु हियौ ।

(२) धा. हींदु कहहि, मो. हिंदू कहि (= कहइ), शेष में 'हिंदु कहै' । २. मो. देव हिं (= हइ), धा. देव वर, शा. दीन है, शेष में 'देव ह' । ३. मो. कहिं (= कहइ), धा. कहहि, शेष में 'कहै' । ४. ना. पीर ।

टिप्पणी—(१) सरसइ < सरस्वती । वर < बल । हिअय < हृदय । (२) मेछ < म्लेच्छ । पीर [फ़ा०] = महात्मा, सिद्ध ।

[५]

दोहरा—इह[१] *विधि पत्तउ*[*२] *गज्जने*[३] *जहाँ*[४] *गोरिअ*[५] *सुलतान*[*६] *। (१)*
तपइ×[१] *मेछु*×[२] *इछ अप्पनी*×[३] *मनउ*[*४] *भान*[५] *मध्यान ॥ (२)*

अर्थ—(१) इस प्रकार वह ग़ज़नी पहुँचा जहाँ गोरी सुल्तान (शहाबुद्दीन) था, (२) [जहाँ] वह म्लेच्छ अपनी इच्छा पूर्वक [इस प्रकार] तप रहा था मानो वह मध्यान्ह का भानु हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. धा. इह, शेष में 'इहि' । मो. पत्तु (= पत्तउ), धा. पिहुत, अ. फ. पत्तउ, ना. शा. स. पत्तौ । ३. मो. गर्जन, धा, गज्जने, मो. गर्जन, शेष में 'गज्जनं' । ४. मो. जाहां, धा. जिह, अ. जह, फ. जहाँ । ५. धा. अ. फ. गोरी । ६. धा. सुरताण, फ. सुलतान ।

(२) १. मो. तपि (= तपइ), धा. तपै। २. धा. म्लेच्छु, मो. तथा शेष में 'मेछ'। ३. मो. अप्पनी, धा. अप्पनिय, फ. अप्पन, शेष में 'अप्पनी'। ४. मो. मनु (= मनउ), धा. अ. मनहु, फ. मनौ, शा. स. मनौं। ५. ना. भिस।

टिप्पणी—(१) पत्त < प्राप्त। (२) मेछ < म्लेच्छ।

[६]

दोहरा—हय[१] गय[२] अभ्भु[*३] ति सुभ्भ[४] गति नट नाटक बहु सार[५]। (१)
इह[१] चरित्त दीषत[२] नयन गयउ[*३] चंद दरबारि[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) [वहाँ] हय-गजादि अभ्र (आकाश) की (जैसी) शुभ्र गति के थे, और [रंग-] शालाओं में बहुत-से नट तथा नाटक (नट्टक < नर्तक) थे; नयनों से यह चरित्र देखता हुआ चंद [शहाबुद्दीन के] दरबार में गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. जय, शेष में 'हय' या 'है'। २. मो. सय (< गय), शेष में 'गय' या 'ग'। ३. मो. अभूनि, धा. अभ्रनि, अ. नभति, फ. उभ्रति, ना. सुभ्रत, स. अभूत, शा. अभ्रन। ४. मो. ना. सुभ (= सुभ्भ) धा. अ. फ. सुभ्र, स. सुभ्रत, शा. सुभ्रन। ५. मो. ना. सार, शा. स. बार।

(२) १. अ. यह। २. मो. दीषत, धा. दिखिलय, अ. ना. शा. दिषत, फ. दिष्यौ, स. दिषान। ३. मो. गयु (= गयउ), शेष में 'गयो' या 'गयौ'। ४. ना. दरबार।

टिप्पणी—(१) अभ्भ < अभ्र = आकाश। सुभ्भ < शुभ्र। नाटक < णट्टक < नर्तक (?)। सार < शाला।

[७]

वस्तु[१]— तह[२] सु अग्गइ[*३] चलि[४] गयउ[*४] दिरपिदर बान[५]। (१)
कनक लकुटि[१] रतन[२] जडित[३]। (२)
रटित सुभ जब सुभ[१] दिट्ठउ[२]। (३)
तुच[१] अंबर[२] संबल[३] नही[४]। (४)
अहित चित्त बोलइ[*१] तु[२] मिट्ठउ[३]। (५)
बपु[१] विभूति पाषंड घन[२] धूत धूत[३] सिर[४] पट्ट। (६)
भवन भोग रहि[१] छंडि करि[२] किमि[३] तइ[४] जोगी भयु[५*] भट्ट[६] ॥ (७)

अर्थ—(१) इस प्रकार वह आगे चला गया, और उसने दरबान (द्वारपाल) को देखा। (२) [उस दरबान की] लकुटि (लकड़ी) रत्नजटित थी। (३) उसने शुभ (या शुभ्र) [चन्द] को देखा, तो शुभ चिल्लाकर कहा, (४) "[तेरी] त्वचा पर अंबर (वस्त्र) नहीं है, [साथ में] संबल (पाथेय) नहीं है, (५) तेरे चित्त में अहित है, [यद्यपि] तू मीठा बोलता है; (६) तेरे शरीर पर विभूति है, [किन्तु] तेरा मन पाखंड है, तू धूर्तों का भी धूर्त है और सिर पर पट्ट [धारण कर

रहा] है। (७) (आगा-पीछा बिना सोचे हुए) भवन के भोगों को छोड़कर तू, हे भट्ट, किस प्रकार योगी हुआ ?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित शब्द अ. में नहीं हैं।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. मो. शा. स. कवित, धा. वस्तुबंध, अ. में छन्द का नाम नहीं है, फ. खंडित है, ना. विथुवा। २. धा. तिहि, मो. अ. तह, ना. तहँ। ३. मो. सू (= सु) अगि (= अगइ), धा. सु अग्गे, अ. सु अग्गे, ना. सु अग्ग। ४. मो. चलि गयु (= गयउ), धा. निहि सु अग्गे, ना. गयौ। ५. मो. दरवान वल, धा० दरबार, अ. दरवान।

(२) १. अ. कनक काल कुटि, ना. कनक कुटि। २. धा. रतनतु, अ. रजननि मनि। ३. मो. जडित, धा. अ. ना. जटित।

(३) १. मो. सुभ जव सूभ (= सुभ ?), धा. सुभ जब भट्ट, अ. सुभ तब दुभ, ना. सुभ जवा सुभ। ३. मो. दिठु (= दिठउ), धा. दिठ्ठउ, अ. ना. दिट्ठौ।

(४) १. मो. तुच (< तुच्च), धा. तुच, अ. ना. तुछउ। २. मो ना. अंमरु, धा. अ. अंबर। ३. ना. संमर, धा. संबर, अ. संबल। ४. धा. त हिय (< न हिय)।

(५) १. मो. बोलि (= बोलइ), धा. बोलहि, अ. बुल्यो, ना. बुल्लै। २. मो. धा. ना. सु, अ. तु (< तु)। ३. मो. मिठु (= मिठउ), धा. मिठ्ठउ, अ. ना. मिठ्ठौ।

(६) १. मो. वप, धा. वपु। २. मो. वार्षड धन, पाषंड धन, धा. बहु विटियो, बहु बुठ्ठयो। ३. धा. धुत्त, दुत्त। ४. मो. धा. ना. सिर, अ. पर।

(७) १. रहि, धा. रहु, अ. ना. रह। २. धा. कै, शेष में 'करि'। ३. धा. किम, ना. जिम। ४. मो. ति (= तइ), शेष में नहीं है। ५. मो. जोगी भय, (< भयु), धा. जोगे (< जोगि < जोगी ?) रहु, अ. जोगी रह, ना. जोगी भयौ। ६. शा. स. में छन्द का पाठ इस प्रकार है :

तहँ अग्गैं (अगं—शा.) गय निरषि कनक कुटीय नग जड्डित।
हय गय नर असरान (असुरांन—शा.) थान इंद्रासन (इंद्रासन—शा.) थट्टित।
गज्जनवै सुरतान मान सम तेज सु दिट्ठौ।
तुझ (तुछ—शा.) अंमर संमर न अहित चित्त बुज्झि सु मिट्टौ (मिठौ—शा.)।
बुझ्यौ (बूझ्यौ—शा.) विभूति वपु भंति बहु नंद धूत सिर पंथि पद।
भव भोग भवन रहि छंडि कै किम जोगी भय भट्ट नट (शा. में 'नट' नहीं है)।

स्पष्ट है कि मो. परंपरा के 'कवित' शीर्षक को देख कर इसे 'छप्पय' वाची 'कवित्त' बना दिया गया है।

टिप्पणी—(१) तह < तथा = इस प्रकार। दरवान [फा०] = द्वारपाल। (२) जडित < जटित। (३) रट् < रट् = चिल्लाना। सुभ < शुभ या शुभ्र। (४) तुच < त्वचा। अंमर < अंबर। संवर < शम्बल। (६) धुत < धूर्त। (७) रह < रभस = पूर्वापर का अविचार।

[८]

वस्तु[१]— हउँ* सु जोगिय हउ[१]*‡ सु‡ जोगिय[२]‡ वसन परदार[३]। (१)
ति×[१] जथ्थ वमु[२]‡× जोगिनि[३] पुरंदर[४]। (२)
जतव गन* गुरु यति सकल।०[१] (३)

कल कवित्त जानउ* सब छंदर ।°[१] (४)
रसन[१] रसायन भायन[२] पुनि[३] गीय[४] गाह गुन[५] ग्यांन[६] । (५)
सकल इच्छि[१] पुछुछे[२]* कहहुं जउ* गुदरइ* सुरतांन ॥ (६)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा] "हे यवन (मुसलमान) पहरेदार, मैं वह (ऐसा) योगी हूँ, (२) यथा यम योगियों का इन्द्र होता है। (३) जिसने गण, गुरु, यति आदि छन्दों के अंग होते हैं, (४) उन सबको तथा कविता के सम्पूर्ण सुन्दर छन्दों [की रचना] को मैं जानता हूँ। (५) रसीले रसों, भावों, और फिर गीतों तथा गाथाओं के गुणों का ज्ञान [रखता हूँ]। (६) इन सब को इच्छा करके [सुल्तान] पूछने पर कह सकता हूँ, यदि तू जाकर सुल्तान से निवेदन करे।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।
° चिह्नित चरण धा. में नहीं है।
‡ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

(१) १. मो. कवित्त, धा. वस्तुबंध, अ. में नाम नहीं है, फ. खण्डित है, ना. शा. स. विथूवा। २. मो. तव पेष्यु (= पेष्यउ), धा. बहु संजोगी बहु संजोगी, अ. हम सुजोगीय, शा. स. हौं (<हुं = हउं ?) सुजोगिय हौं सुजोगिय, ना. तव पिष्षे। ३. मो. यमन (= जमन), धा. अ. ना. शा. जमन, स. जवन। ४. मो. शा. स. परदार, धा. परदारु, अ. ना. परिदार।

(२) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। २. मो. जथ मम, धा. जथ्थ जमु, अ. जथ्थ, शा. स. जोग जम (जमन-शा.)। ३. मो. योगिनो (< योगिनि), धा. योगिन, अ. जुग्गनि, शा. स. जोगिनि। ४. ना. पुरंदह।

(३) १. मो. जतव गुन (गन) गुरु यति, अ. सरस सवैति पारसि त्रिविधि, शा. स. सुरस त्रिविधि, ना. जति गननि अरु अरु।

(४) १. मो. सकल राग गीय जानुं (= जानउं) छंदर, अ. कल कवित्त जानौ सुछंति हर, ना. सकल सुदयौ गीय छंदह, शा. कवित्त जानौ सब छंदर, स. कल कवित्त जानौ सब छदर।

(५) १. ना. रस रास, शा. स. सरस। २. मो. मायन, धा. भाय, अ. भाइ, ना. भाइनह। ३. मो. गुन, धा. पुनि (< पुनि ?) अ. नहि। ४. मो. गीत, धा. तथा शेष में 'गीय'। ५. अ. गुरु। ६. धा. गाम, ना. जान।

(६) १. धा. अ. शा. सयल इच्छ, मो. सकल इछ, स. छैल इच्छ, ना. जो पुच्छै। २. मो. पुछि (= पुछछे) कहहु, धा. पुच्छइ कहहु, अ. पुच्छै कहौं, शा. अच्छी कहुं (= कहउं), स. अच्छी कहौं, ना. सो सह कहुं (= कहउं)। ३. मो. जु (= जउ) गुदरीं (=गुदरइ), धा. जे गुदरइ, अ. ना. जौ (जो-ना.) गुदरं, शा. स. जौ पूछं (पुछ-शा.)।

टिप्पणी—(१) जमन < यवन। परदार < पहरादार [फ़ा०]। (२) जथ्थ < यथा। जम < यम। (४) छंदर < छंद। (५) गीय < गीत। गाह < गाथा। (६) गुदर < गुज़ार=निवेदन करना, पेश करना।

[६]

दोहरा— हसउ*[१] जमन पर दार× तव× तुहि[३] जानउ*[४] कवि चंदु। (१)
बिखन*[१] इक दरहि बिलंबियइ*[२] कवि न करइ*[३] मनु मंदु ॥ (२)

अर्थ—(१) तब यवन (मुसलमान) पहरेदार हँसा, [और उस ने कहा,] हे कवि चन्द, मैं तुझे जानता हूँ। (२) एक क्षण द्वार पर विलम्ब करो [रुको] और मन को मन्द (हतोत्साह) न करो।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द या चरण अ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. हसु (= हसउ), धा. तथा शेष में 'हस्यौ'। २. अ. परि— [शेष नहीं है]। ३. धा. सोहि। ४. मो. अ. ना. जानुं (= जानउं), धा. जान्यो, फा. जानौ, स. जानौ।

(२) मो. छिनु (= छिनु), धा. छन, शेष में 'छिन'। २. मो. बिलंबाइ (= बिलंबियइ), धा. बिलंबिय, ना. बिलंबाये। ३. मो. करि (= करइ), धा. करिय, ना. कराहि, शा. स. करहु।

टिप्पणी—(१) परदार < पहरादार [फ़ा०]। (२) दर [फ़ा०] = द्वार।

[१०]

दोहरा— तह[१] बिरंभ[२] कवियन[३] करिग[४] रुचित[५] अप्पनी[६] इच्छ। (१)
सह सहाब दर[२] दिप्पियइ*[३] जु[४] कछु[५] भुमि*[६] पर मिछ्छ॥ (२)

अर्थ—(१) तथा (तदनुसार) कविजन (चन्द) ने विराम किया—वह रुका रहा, जो उसे अपनी इच्छानुसार रुचा [भी], (२) [क्योंकि उसने सोचा,] "शहाबुद्दीन के द्वार पर वह सब देखना चाहिए जो कुछ म्लेच्छ की भूमि पर है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. तह, धा. तिहि, अ. तहँ, शा. तहाँ, स. तब। २. मो. बिरमि, धा. ना. बिरंभ, अ. बिरंभु, शा. स. बिरम्भ (बिरम—शा.)। ३. मो. कविअन। ४. अ. करिय, शेष में 'करिग'। ५. मो. रुचि, धा. अ. सुरुचि, ना. शा. स. रुचित। ६. मो. अप्पनी, धा. अप्पनिय, अ. अप्पनी।

(२) १. ना. सर। २. अ. सुर। ३. मो. दिप्पीइ (= दिप्पियइ), धा. शा. स. दिक्खियै, अ. दिप्पहि। ४. मो. जु, धा. अ. शा. जु, ना. जि। ५. मो. कछू, अ. कुछु, शेष में 'कछु'। ६. मो. भमि (< भुमि), धा. तथा शेष में 'भूमि'। ७. धा. पर मिच्छ।

टिप्पणी—(१) कविअन < कविजन। (२) सह = समस्त। दर [फ़ा०] = द्वार। मिछ्छ < म्लेच्छ।

[११]

भुजंग— मोहंमी मोहंगी[१] कहेलै[२] सुरंमी[३]। (१)
सुहवी सबनी[१] सुहक्के करंमी[२]। (२)
घरैंते तरंते सुघारे सुमेलै[१]।[२] (३)
तुरक्की[१] ममक्की[२] मनक्के[३] जलेलै[४]। (४)
हबस्सी हकम्मे रहन्ने सुहन्ने[१]। (५)
पबंगे पबंगी पबन्नै सुपन्नै[१]। (६)

मिथाजी विराजी सकज्जे हसल्ले[१] । (७)
समक्की सुसुक्की सुमल्ले मसल्ले[१] ।[२] (८)
सुभ[१] सेषजादे अवादे[२] पठाणे ।[३] (९)
दिपे साहि गोरी गरज्जे सु[१]ठाने[२] ।।[३] (१०)

अर्थ—(१)—(८) रोहंमी आदि उल्लिखित विभिन्न जातियों के (९) शुभ शेखज़ादे और अवध पठान (१०) गोरी शाह के स्थान पर गरजते हुए दीख रहे ।

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. ना. शा. स. कहम्मी रहुंगी (रहंगी—अ. ना.); २. अ. वहिल्ले, शा. स. सुहिल्ली, ना. सुदिल्ली । ३. स. सुरोंगी, स. शा. सुहन्नो कुरोमी ।

(२) १. अ. अवन्नी वसन्नी, ना. सुहन्नी मवन्नी, शा. स. मकन्नी तियाजी । २. धा. सहवके करम्मी, अ. सहका ररम्मी ।

(३) १. धा. अ. धरंतो (धरत्तो—अ.) धरत्ता (धरत्तो—अ.) धरत्ते (धरत्ता—अ.) सुमल्ले (सुमल्ले—ना.) । २. शा. स. में यहाँ और है : हरम्मी सबेची सरते सुसल्ले ।

सकन्नी तिषन्नी मुरन्नी सुवेसी । फरब्बान मट्टी तिलंगार बोसी ।
धरन्नी धरंती समल्ले मुसल्ली ।

(४) १. धा. अ. शा. स. तुरक्का, ना. तुरक्की । २. धा. ममक्का, अ. ममक्का, शा. स. मचिदं, ना. ममक्की । ३. धा. अ. ततत्ता (ततंता—अ.), शा. स. चिगने, ना. मसुले । ४. धा. अ. जल्ले, शा. स. सुसल्ली, ना. जमल्ले ।

(५) १. धा. हबस्सी हसम्मी हहंसे सहन्नी, अ. हबस्सी हहम्मी दवन्ने सुपन्नी, शा. स. हबस्सी सुगोरी सुकब्बी सुपन्नी, ना. हमस्सी हकंमे रहन्ने सुहन्नी ।

(६) १. धा. पवके सगे पवन्ने सुपन्ना, अ. कुरेसी रेषी बलूचे सुरन्नी, शा. स. प्रकारं प्रधानं प्रधानी सिववी, ना. पवगे पवंगी पवन्ने सुपन्नी ।

(७) १. धा. निवाजी विराजी सकाजी हुसल्ले, अ. नियाजी वियाजी सुकाजी कुसल्ले, शा. स. नियाजी सुवाजी सुकाजी कुसल्ले, ना. निवाजी विराजी सकज्जे हसल्ले ।

(८) धा. अ. सवानो मसानी (मसानी—अ.) सुमल्ले मुसल्ले, ना. सुमन्नी मसन्नी सुमल्ले मुसल्ले, शा. स. सजे जम्म तेगं करं वज्र झल्ले । २. शा. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

तुरक्की ममक्की सनन्ने जल्ले । पवगे पवन्ने षनवार गल्ले ।

(९) १. ना. सुभे । २. ना. अवद्दे । ३. शा स. में यहाँ और है:

महा मंत्र जुद्धंग सुद्धंग जाने ।
निमाजं सुरोजं नमो पंचवानं । पढे अंथ कोरान सोरान जानं ।
सिपारा खिवारी पढे तीस तामं । धरै राह अप्पं सुतप्पं सुधामं ।
चलै अग्गि सा सामि अप्पं सुराहं । लिने गाह लब्धे दई जीव गाहं ।
जहीं ग्रेह माया निरायामं विरागं । दिनं गाह बंछे धरंतीय तागं ।
बसे देस देसे सुवेसं सुरेसं । दिष्षौ साहि गोरी दरब्बार सेसं ।
अनेक धरं धन झंने वियाने ।

(१०) १. ना. दिठे । २. मो. इठाने, धा. सुठाने, अ. सुथाने, ना. सुठन्ने । ३. मो. ना. शा. स. में यहाँ और है : (मो. पाठ) :—

चली जिल्लदानी पवी विरज लावी । तुरंगा इरासे हरंमी सुतावी ।
गने कौन इच्छे जिते मेछ जाती । महे आइ जानं दरं दिष्षि भाती ।

टिप्पणी—ठान < स्थान = निवास ।

[१२]

दोहरा—त[१] इनि[२] विधि जाम दोइ[३] बीति गए[४] भयउ त्रतिय पहुरन[५] । (१)
इदफ साह षेलन[१] चढउ*[२] मनुहु[३] उदयु (=उव्यउ) अरुणांन ॥ (२)

अर्थ—(१) इस प्रकार से दो पहर बीत गए, और तीसरा पहर हुआ; (२) [इस समय] शाह (शहाबुद्दीन) इदफ़ (लक्ष्य-वेध) खेलने के लिए [इस प्रकार] चढ़ा (निकल पड़ा), मानों अरुण [सूर्य] उदित हुआ हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है । २. मो. इनि, धा. ना. इह, शेष में 'इहि' । ३. मो. दोइ, धा. अ. दु., ना. दुइ, शा. स. दु । ४. मो. बीति गए, धा. बित्ति गयो, अ. वित्तयौ, ना. बित्त गय, शा. स. बित्ति गय । ५. मो. त्रतिय पहुरंन, धा. भयो तीहि पहरान, अ. भयो तीयो पहरान, ना. शा. स. भयो तृतीय पहरान ।

(२) १. मो. षेलन, धा. तथा शेष में 'खिल्लन' । २. मो. चढु (= चढउ), धा. अ. ना. चढ्यो, शा. स. चढन । ३. मो. मनुहु, धा. मनहु, शा. स. दियौ, शेष में 'मनहु । ४. मो. उदयु अरुणंन, धा. अ. फ. ना. उदधि अररान (उरराण—ना.), शा. स. आप फुरमान ।

टिप्पणी—(१) जाम < याम = प्रहर । पहर < प्रहर । (२) इदफ़ [फ़ा०] = निशाना । उदय < उदय ।

[१३]

पध्धडी— सह[१] सलाम[२] मग्गह त[३] मीर । (१)
रहे बंधि फिरि फौज तीर[१] । (२)
अंगुलिय धरणि धरि करि मसंद[१] । (३)
सिर नांइ[१] भयौ नव[२] नजरि[३] मंद । (४)
पारस सहस्स[१] लकरीय[२] लाल । (५)
वरण सोभि ति पवंरि मनउ* प्रवाल[१] । (६)
अग्गे[१] सुहंति[२] नसुरत्ति[३] षांन । (७)
दस[१] पंच हथ्थ उतसे[२] विहान ।[३] (८)
आसने हंस[१] ताजी[२] सु[३] साहि । (९)
नग जडित[१] जीन[२] रवि ससि चाहि[३] । (१०)
कंचन सुहल्ल किरणीय वगंम[१] । (११)

नउ* लषह* तुरिय तहि अलिय रंग[१] ।+ (१२)
सिरताज साहि सोभिय* सदीस[१] । ×§ (१३)
गुरु दनुज उदइ* किअउ* दनुजसीस[१] । ×§ (१४)
कटि कसैं° साहि° सर सत्त तौन[१] । (१५)
जमनेस मेल धनुशक्ति[१] द्रोन[१] । (१६)
सिंगिनी सु अनिअं रज्जइ* सुहथ्थ[१] । §× (१७)
जिम सेत वज्र साजिअउ* पथ्थ[१] । §×[२] (१८)
रंग तीय तीय[१] अंबर[१] सुरंग । (१९)
दिष्षअउ* इक्कु[१] चंदह विरंग[१] । (२०)
आलंम अदब्ब देक्खौ*[१] न जाय । (२१)
रक्कयउ* मग्ग कवि चंद धाय । (२२)
तन बिभूति[१] अवधूत दीस । (२३)
कर अन्यन[१] दीधी[१] असीस ।। (२४)

अर्थ—(१) उसके मार्ग में समस्त अमीर सलाम करते हुए [खड़े] थे; (२) फिर (उनके पीछे), उनके तीर निकट फौज बँध रही थी (पंक्ति बद्ध बनी हुई थी); (३) धरती पर उँगलियाँ रखकर मसन्दों (?) ने (४) उसे सिर नवाया, जब उन्हें उसकी नजरबन्दी हुई (उसका दर्शन प्राप्त हुआ)। (५) फारस के सहस्रों लाल लकरी (लकुटि धारण करने वाले) (६) किनारे-किनारे इस प्रकार शोभित थे मानों प्रवालों की पवँरि (पंक्ति) हो। (७) आगे आगे नसरत खाँ शामित हो रहा था। (८) [उससे] पन्द्रह हाथ तक उत्त्रस्त करने का विधान था—अर्थात् इस पन्द्रह हाथ की सीमा के भीतर आने वाले को त्रस्त (पीड़ित) करने का विधान था। (९) शाह (शहाबुद्दीन) हंस (सूर्य) [के समान दीप्तिमान] ताज़ी पर आसीन था, (१०) उसकी नग-जटित जीन रवि-शशि के समान दिखाई पड़ती थी। (११) उस घोड़े का मुहुल (मुहड़ा) सोने का था, [जिससे] किरणें अवगमन (अपसरण) कर रही थीं; (१२) वह नौलखा घोड़ा था, और उसका रंग अलि (भौंरे) का था। (१३) शाह (शहाबुद्दीन) के सिर पर ताज शोभित दीख पड़ता था। (१४) [वह ऐसा लगता था, मानो] दनुज के शीश पर दनुज-गुरु (शुक्र) ने उदय किया हो। (१५) कटि में शाह (शहाबुद्दीन) सौ (या सात) शरों का तूणीर कसे हुए था, (१६) वह ऐसा लग रहा था मानो यवनेश (यवनराज) के वेष में धनुष-पति द्रोण हो। (१७) सिंगिनी से अन्वित (युक्त) उसका हाथ [इस प्रकार] शोभित था। (१८) जैसे पार्थ ने श्वेत वज्र साजा हो। (१९) [दर्शिका] एक-एक स्त्री के अंबर का रंग सुरंग था, (२०) एक मात्र चंद विरंग (रंग-हीन, बदरंग) दिखाई पड़ता था। (२१) [शाह-ए] आलम (शहाबुद्दीन) का अदब (आतंक) ऐसा था कि [उसे] देखा नहीं जाता था, (२२) [किन्तु] कवि चंद ने दौड़कर उसका मार्ग रोका। (२३) तन पर उसके विभूति (राख) थी, और वह अवधूत दिखाई पड़ता था; (२४) अन्य (बाएँ) हाथ से उसने आशीर्वाद दिया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित चरण अ. में नहीं है।
× चिह्नित चरण स. में नहीं है।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
§ चिह्नित चरण शा. में नहीं है।

(१) १. शा. स. में इसके पूर्व है :

चढि चल्यो साहि गोरी प्रमान। आने कि अंब ओखम्म भान।

२. ना. साहि सलाम, शा. स. तर तख सलाम। ३. मो. मंगइ (= मग्गइ) त, धा. मंगन (= मग्गन) सु, ना. मंडहि, शा. स. मंडहि त, अ. मग्गइ सु।

(२) १. धा. ग्रहे रवि फिरि फौज तीर, मो. रहे बंधि फिरि फौज तीर, अ. तहं रहे बंधि फिरि फौज तीर, ना. शा. स. फिरि बंधि (बंधि फिरि–ना.) फौज रहे तीर नीर।

(३) १. मो. ना. थरि (थर–ना.) करि मसंद, धा. थक्कं मयंद, अ. थर थर मसंद, शा. स. करि करि मसंद।

(४) १. मो. शा. सिर नाइ (नाय–शा.), धा. अ. सिर नयो, ना. स. सर णाइ (नाइ–स.)। २. धा. अ. जवहि भई। ३. शा. नजरि, स. निजर।

(५) १. अ. सहस्र। २. धा. लक्करिय, अ. लक्षुरिय।

(६) १. मो. वरण सोभिनि पखेरि मनु (= मनउ) प्रवाल, धा. अवन सुभनि (सुभहि–अ.) पखारिनु (पखारी–अ.) मनहु माल, ना. शा. स. वरनंत (वरणत–ना.) मानहु (मनुवन–ना.) प्रवाल।

(७) १. अ. अगं। २. मो. सुहति, धा. अ. सुबंधु, ना. सुहंत। ३. मो. नसुरति पान, धा. निसुरत्ति पान, ना. निसरत्ति पान, शेष में 'नसुरत्ति' पान।

(८) १. स. दरस। २. मो. ना. उतसे (उतसं–ना.), धा. अमोल, अ. उतसु। ३. मो. ना. शा. स. में यहाँ और है (मो. पाठ) :—

गोरी वास सोहि तर पाहि। पुछ नि वात चढि साहि ताहि।
को गनि पान ल्याउसु असंधि। किंमिय साहब जुग जगत अंधि।

(९) १. धा. आसन रस, अ. आसनह हंस, स. आसनह अंस। २. ना. तेजी। ३. धा. स।

(१०) १. मो. जडित, धा. तथा शेष में 'जटित'। २. अ. नीम। ३. मो. रवि ससि थाहि, धा. अग्गे सुभाहि, अ. अग्गे जु ताहि, ना. शा. स. रवि ससिय (मिसो–ना.) चाहि (चाय–शा. स.)।

(११) १. मो. कंचन मुहुल किरणीय यव गम, धा. कंचन मुहल्ल फिर मन थग्ग, अ. कंचन मुहाल चारु अंझि थग्ग, शा. स. कंचन लाज करनीय अग्ग, ना. कंचन महल्ल किरणीया जग्ग।

(१२) मो. धा. नु (= नउ) कलइ, (मनु कलय–धा.) तुरिय नहि (नहि–धा.) अलिय (अलय–धा.) रंग (थग्ग–धा.), ना. चित रहीय चोंपि मन भ्रमय लग्ग।

(१३) १. धा. सिरताज साहि सुभइ (=सुभ्भइ) सदीस, मो. सिरताज साहि सोभीइ (=सोभिय ?) सुदेसि, अ. सिरताज साहि सुभे सुदीस, ना. सुरताज सहित सोभा सुदीश।

(१४) १. मो. गुरु दनुज उदि (= उदइ) कीउ (= कियउ) दनुजु सीस, धा. गुरु दनुजु उदय किय दिनज सीस, ना. गुरुदेव दनु किवो उद सीस, अ. गुरु दनुज उदे किय ननुज सीस। २. मो. ना. में यहाँ और है (मो. पाठ) :—

राग पीत पग सेत थाल। परसि अगड़ मोंतु नचित लाल।

(१५) १. मो. कढ्ढ साहि सरसरु तोन, धा.—सरसस तोन, अ. कढि करै साहि सरसरु तोन, ना. कढि कसै आसुर तंडीरतोन, शा. स. कढि किलल सूर सब वार तोन।

(१६) १. धा. अमरषि। २. अ. दोन।

(१७) १. मो. लीगनो सुं अंतीलं साजि (= सज्जइ) सुहथ, धा. अ. चिचिनि सुचंग करि अप्प हथ्थ,

[१४]

दोहरा— देषत[१] असीस न[२] सिर नायउ*[३] विन अछिक्त[४] फुरमान । (१)
दुसह भट्ट देषित[१] नयन× बे× पुछ्छइ×[२] सुरतान×[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) आशीर्वाद देते समय [चंद ने] सिर नहीं झुकाया, और वहाँ विना फर्मान के वह [उसके मार्ग में आ पड़ा] था। (२) सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने नेत्रों से उस दुस्सह [लगने वाले] भट्ट को देखकर उससे [उसका परिचय] पूछा।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।
× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. धा. दश्त, मो. देअत, शेष में 'देत'। २. ना. असीसति, शा. स. असीसह। ३. मो. नायु (= नायउ) धा. तथा शेष में 'नयो'। ४. धा. वन अकछ्यो, शा. सा. विन अच्छन, अ. विन अछ्छे।

(२) १. मो. देषित, धा. अ. दिष्यौ. ना. स. दिष्यौ। २. धा. वे पूछ्यो, मो. बय पुछि (= पुछ्छइ), अ. बे पुछ्छे (< पुछ्छि)। ३. अ. सुरितान, शा. स. सुलतान।

टिप्पणी—(२) बय < बे [फा०] = बिना।

[१५]

पद्धडी— [१] विन बोलत[२] बोलयउ*[३] छंद । (१)
हउं*ज[१] साहि वर भट्ट चंद । (२)
अवतार लीन प्रथिराज साथि[१] । (३)
उटि गह्हु[१] अस[२] अछ्छइ*[३] अनाथ[४] ।[५] (४)
मइ* सुनउ*[१] साहि[२] विन[३] थांपि कीन । (५)
तजि भोग[१] जोग मइ*[२] तित्थ[३] लीन ।[४] (६)
मइ तवयउ*[१] तप[२] वदरीय[३] थान । (७)
थिर रहउ*[१] तथ्थ[२] सुनि सुरतान[३] ।[४] (८)
बे[१] चंद अंध मइ*[२] रित ज[३] कीन । (९)
वर वंक[१] दीठ[२] छंडइ*[३] न भीन[४] ।‡ (१०)
विहान‡[१] थान‡ रषि‡ जं‡[२] अदब्बु । (११)
किरतार[१] हथ्थ करिअ तु[२] गब्बु[३] । (१२)
हम[१] चंद जायि[२] पिछ्छइ*[३] हदप्पु[४] । (१३)
दोइ[१] गल्ह कल्ह करि[२] चलहि[३] तप्पु । (१४)
[१] फिरि[२] साहि तेहिं फुरमांन दीन । (१५)
तिहि बहुत[१] चंद महिमान कीन ॥ (१६)

अर्थ—(१) उस (बादशाह) के [इस प्रकार] बोलते हुए [चन्द ने] छन्द में कहा, (२) "हे शाह मैं श्रेष्ठ भट्ट चन्द हूँ। (३) मैंने पृथ्वीराज के साथ अवतार (जन्म) लिया है, (४) उसे तुमने पकड़ लिया, तो मैं आप अनाथ हो गया। (५) [फिर] मैंने सुना कि शाह (तुम) ने उसे बिना आँख का कर दिया, (६) [तो] मैंने भीग छोड़कर तीर्थ में योग [का मार्ग] लिया, (७) और मैंने बदरी स्थान (बदरिकाश्रम) में तप करना ताका (निश्चित किया)।" (८) यह सुन कर सुल्तान वहाँ स्थिर हो (रुक) रहा [और उसने कहा,] (९) "हे चन्द वह (पृथ्वीराज) अंधा इसलिए हुआ कि मैंने उस पर रिस (रोष) किया, (१०) किन्तु [फिर भी] वह [अपनी] भिन्न वक्र दृष्टि छोड़ नहीं रहा था। (११) [इसलिए] विधान के अनुसार मैंने अदब (क़ायदे) की दृष्टि से उसको (नियंत्रण में) रख दिया; (१२) मनुष्य कर्त्तार के हाथ में है, [उसे] गर्व न करना चाहिए। (१३) हे चन्द, हम जाकर हदफ़ (लक्ष्यवेध) खेलेंगे, (१४) तुम [यदि चाहो तो] कल [मुझसे] दो बातें करके तप के लिए जा सकते हो। (१५) फिर (तदनंतर) शाह ने उसे फ़र्मान दिया, और उसने चन्द का बहुत आतिथ्य किया।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

† चिह्नित चरण या शब्द अ. में नहीं हैं।

(१) १. शा. स. में इसके पूर्व और है :

सुरतान षान सहेति मीर। तहां बोलियंद मन मंद वीर।

२. मो. ना. बिन (बिनु—ना.) बोलत, धा. बलि सुललित, अ. बिन दुलत। ३. मो. बोलयु (= बोलयउ), धा. बोल्यो सु, अ. बुल्यौ सु, ना. बोल्यो।

(२) १. मो. हूं (= हउं ?) ज, धा. हम स, अ. हम सु, ना. हुं (= हउं) सु, शा. स. सुनौ।

(३) १. धा. साथि, ना. साथ शेष में 'सथ्थ'।

(४) १. धा. अ. न. शा. स. वह गह्यौ, मो. उहि गहुहु। २. मो. अप, धा. हमत, अ. होत, ना. शा. हुं (हउं) व, स. होंव। ३. मो. अछि (= अछ्इ), धा. अच्छ, अ. शा. स. अच्छौं, ना. अच्छुं (= अच्छउं)। ४. धा. ना. अनाथ, शेष में 'अनथ्थ'। ५. शा. स. में यहाँ और हैं (स. पाठ):—

संग्राम धाप मोकलि बसीठ। जालंधरराव हम्मीर पीठ।
निद्दि होत वीर सुरतान संधि। जालध धान मो चंद बंधि।
संग्राम राज भारथ्थ कीन। सुरतान बंधि जस जीत लीन।
सुल्तान बंधि सुविहान सार। आहुट्ठ समर खग खीन धार।
हिंदवान थंभ दोउ असत वीर। रुध्यो जु काम तहिन सरीर।

(५) १. मो. मि (= मइ) सुन (< सुनु—सुनउ), धा. तथा शेष में 'मैं सुन्यौं'। २. [illegible] साह, धा. तथा शेष में 'साहि'। ३. मो. बिन, धा. तथा शेष में 'बिनु'।

(६) १. धा. सोग, मो. तथा शेष में 'भोग'। २. मो मि (= मइ), शेष में 'मैं'। ३. [illegible] थ्य, धा. बिस्थ (< तिस्थ), शा. स. तप्प शेष में 'तिथ्थ'। ४. शा. स. में और है (स. पाठ):—

वह पत्तग विष सुरतान जानि। मै अट्ठ राज मस अनत पान।
हूं मंत्र जंत्र पारकै न जाउं। वैराग राग छुअ वेगि पाउं।
सुरतान आन तप भषन काज। अस भट्ट सज्जि जोगिंद राज।

(७) १. मो. मि (= मइ) तक्यु (तक्यउ), धा. मैं तक्यो, शेष में 'मैं तक्यौ'। २. अ. [illegible] मो. ना. बदरीय, धा. बद्रीक, अ. बद्रिका, शा. स. बद्री सु।

(८) १. मो. रहु (= रहउ), शेष में 'रह्यो' या 'रह्यौ'। २. धा. तप्प, ना. शा. [illegible]

३. धा. मो. सुनि सुरतान, अ. सुनि सुबिहान, ना. शा. स. सुरतान कान। ४. शा. स. में यहाँ [illegible]

धरि एक सोचि बोल्यो सु साहि। रिस अंग अग्गि पज्जी बुझाइ।

(९) १. मो. वय, धा. वे, ना. वे, शेष में 'वे'। २. मो. मि (= मइ), धा. तथा शेष में 'मैं'। ३. मो. रिस ज, धा. रिसउ (< रिसनु), शेष में 'रिसन'।

(१०) १. ना. चंदक, शेष में 'बरबंक'। २. मो. दीठ, शेष में 'दिष्ट' या 'दिस्ट'। ३. मो. छंडि (= छंडइ), धा. तथा शेष में 'छडे'। ४. मो. मीन, धा. मीन, ना. शा. स. मीन।

(११) १. मो. विहान, धा. तथा शेष में 'सुविहान'। २. मो. रषि ज, धा. रक्ख, ना. न रषे, शा. स. रषे।

(१२) १. मो. किरतार, धा. तथा शेष में 'करतार' (करतार—ना.)। २. धा. न करियइ, मो. करिअ न, ना. जन करहि, शेष में 'न करिअ'। ३. शा. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

करतार केलि जानी न जाइ। वितवै आज आनद्द सु पाइ।
बज्जिराइ कीन जीतन सुईद। बंध्यौ विधान थानद्द पुनिद।
धरि अद्ध रह्यो तिनवार सब्ब। सुरतान बोलि वर कहिग सब्ब।

(१३) १. अ. अब। २. ना. आहि। ३. मो. पिलि (= पिल्लइ), धा. पिल्ले, ना. पेलंन, शेष में 'पिल्लं'। ३. मो. हदफु, धा. हदफु, शेष में 'हदफक'।

(१४) १. मो. हाइ, धा. ना. हुइ, अ. है। २. अ. कालिह, धा. कल्ह ना. कलि, शेष में 'कल्ह'। ३. धा. अ. चलहु, मो. चलहि, शेष में 'चलहि'।

(१५) १. शा. स. में इसके पूर्व है (स. पाठ) :—

बुल्यौ सुबीर सुबिराग जान। दरसा स बोलि सुविहान थान।

२. धा. फिर, मो. फिरि। ३. मो. तेहि, धा. साहि, अ. जाहि, ना. शा. स. ताहि।

(१६) १. धा. जिहि बहुत, ना. तिन बहुत, शा. स. इम बहुत।

टिप्पणी—(४) अप्प < आत्मन्=आप। (६) तित्थ < तीर्थ। (७) (११) थान < स्थान। (८) तथ्थ < तत्र=वहाँ। (१०) बंक < वक्र। दीठ < दृष्टि। मीन < भिन्न। (११) विहन < विधान। अदब [अ०] = कायदा। (१३) हदफ < हदफ़ [अ०] = निशाना। (१४) गल्ह < गल या गल्ल (?) = बात। कल्ह < कल्य = कल। (१६) महिमान < मेहमान [फ़ा०] = पाहुना।

[१६]

दोहरा— करिग[१] चंद महिमान तब[२] अगर धूप दिअ[३] देह। (१)
भिदइ[१]* न तेह[२] सुष दुष्ष मन[२] [३]मृतक वरांगन[४] नेह॥ (२)

अर्थ—(१) उसने चंद का तब आतिथ्य किया, और उसके शरीर में अगुरु-धूप [आदि सुगंधित द्रव्य] दिये (लगवाए)। (२) किन्तु उसे (चंद को) वह सुख नहीं भेद पा रहा था, [क्यों कि] उसके मन में दुःख था, [उसी प्रकार जिस प्रकार] मृतक को वर (श्रेष्ठ) अंगना [अथवा वाराङ्गना] का स्नेह नहीं भेद पाता है।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. करिग, धा. करहि, अ. करहि, शा. स. करत। २. मो. तंब, धा. तथा शेष में 'तब'। ३. मो. दीअ, धा. दिन, अ. दिवि, ना. शा. स. दिय।

(२) १. मो. भिदि (= भिदइ) न तेह, धा. भइद (< भिद) न तिहि, अ. भेदहि न तिहि, ना. शा. स. भिदैन सुष। २. ना. शा. स. तन (तिहि—ना.) दुष्ष बढ़ि (बढ़ै—शा., मन—ना.)। ३. शा. स. में यहाँ 'ज्यौं' है, जो और किसी में नहीं है। ४. धा. वरंगिन, अ. ना. वरंगन।

टिप्पणी—(१) महिमान > मेहमान [फ़ा०] = पाहुना। (२) वरांगन > वर+ अंगना अथवा वाराङ्गना

[१७]

दोहरा— दह भट हदफ करि[1] खिल्यो[2] घर[3] आयो[4] सुरतान। (१)
झषत चंदु मन महि तब[1] सुइ अच्छोत विहान॥ (२)

अर्थ—(१) दस भटों को [लक्ष्य बना ?] कर उसने हदफ (निशाने) का खेल खेला, और सुल्तान घर आया। (२) चंद तब मन में झषने (सतत होने) लगा कि शुचि (पवित्र) प्रभात होता।

पाठान्तर—(१) मो. दह भट हदफ करि, धा. अ. हदफ हरषि (हरष—अ.) करि, ना. हद करि हदफ, शा. है हदक कारि, स. है हदक्ष कारि। २. स. षेदयौ। ३. धा. अ. ग्रहि (गृह—अ.), ना. घरि। ४. मो. आयौ, धा. आयो।

(२) १. मो. मिहि तब, धा. मरन सूं, अ. महि मरन, ना. मह सुनिसि, शा. स. मैं सुनिसि। २. मो. मो. सुइ अछोत, धा. इम इच्छयो, अ. इमि इच्छे सु, ना. इम अछ्यौ त, स. इमि अर्षं सु।

टिप्पणी—(१) दह < दश। हदफ [अ.]=निशाना, लक्ष्य-वेध। (२) झख=संतप्त होना। सुइ=शुचि। विहान प्रभात।

[१८]

दोहरा—भयु[1] विहान सुरितान°[2] दर बज्जि+[3] निसांन+[4] निसांन+। (१)
तमचूरन+ चूरण+[1] किरणि+ त+[2] प्रगटि+ दिसांन+ दिसांन[3]॥ (२)

अर्थ—(१) प्रभात हुआ और सुल्तान के द्वार पर धौंसे ही धौंसे बजने लगे; (२) ताम्रचूड़ों को कष्ट देने वाली [सूर्य की] किरणें दिशाओं-दिशाओं में प्रकट हुईं।

पाठान्तर—+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. भउ, अ. भौ, ना. शा. स. भय। २. मो. ना. शा. स. सुविहान (पूर्ववर्ती शब्द की पुनरावृत्ति)। ३. मो. बाजि, धा. बजे, ना. शा. स. बजि (बज्जि)। ४. धा. तादव्व, मो. निसान, ना. नौबत्ति, शा. स. नवदत्ति।

(२) १. मो. तम बीर चरण, धा. तम चूरन पूरन, शा. स. तम चूरन जूरन, ना. तामचूर चूरण। २. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी में नहीं है। ३. धा. दिसा न निसान, मो. तथा शेष में 'दिसान दिसान'।

टिप्पणी—(१) विहान = प्रभात। दर [फा.] = द्वार। तमचूर < ताम्रचूड़ = मुर्गा। जूर < जूर् = झुरना, सूखना।

[१९]

चउपई— इम चिंतत[1] चित्यो[2] सुरतांन[3]। (१)
के[1]+ कहां[2] भट निसुरत्ति बांन। (२)

बइराग[1] राज[2] बनि थाइ[3] चंदु । (३)
दोइ[1] कहहि[2] गल्ह[3] दुनिया सु[4] दंदु ॥ (४)

अर्थ—(१) इस प्रकार [कवि के] चिंता करते समय सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने भी [भट्ट की] चिंता की [और निसुरत खाँ से पूछा,] (२) "रे निसुरत खाँ, वह भट्ट (चंद) कहाँ है ? (३) विरागियों का राजा चंद बन में हो रहे, (४) [और इसके पूर्व, जैसा वह चाहता है] संसार के द्वंद्व की दो बातें [मुझसे] कह ले।"

पाठांतर— ‡ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

(१) धा. अ. चिंतित, फ. ना. चिंतति। २. मो. चिंत्यौ, धा. चिंत्यो। ३. धा. फ़ुरमान, शेष सब में 'सुरतान'।

(२) १. धा. अब, मो. वेय, ना. शा. स. वे। २. मो काहां।

(३) १. मो. विराग (= बइराग), धा. तथा शेष में 'बराग'। २. अ. राग, ना. रज। ३. मो. बनि जाय, धा. बन थाइ, ना. वजाइन, शेष में 'बन जाइ'।

(४) मो. शा. स. दोइ, धा. दुइ, अ. द्वै, ना. दुइ। २. धा. मो. फ. कहहि, ना. कह, अ. करहि, शा. स. करै। ३. धा. मो. गल्ह, शेष में 'गल्ल'। ४. धा. स. स, मो. ना. शा. सु, अ. थ, फ. न।

टिप्पणी—(२) वे = वह। (४) गल्ह < गल्प अथवा गल्ल।

[२०]

दोहरा— तब ततारषांन[1] अरदास करि[2] वे आदमी सुविनांन[3] । (१)
नट नाटक[×] डंमी डमरु[1] नहि[2] बुझिझय सुरतांन[3] ॥ (२)

अर्थ—(१) तब तातारखाँ ने निवेदन किया, "वह आदमी सुविज्ञानी (सुचतुर) है; (२) नट, नर्तक, पाखंडी और डमरू को सुल्तान न पूछें—इनका विश्वास न करें [क्यों कि जिस प्रकार डमरू ध्वनि बहुत करता है किन्तु अन्दर से खोखला होता है उसी प्रकार वे भी ऊपर से बने हुए होते हैं, अंदर से सर्वथा रिक्त होते हैं]।"

पाठान्तर— × चिह्नित अक्षर फ. में नहीं है।

(१) १. मो. तब ततार षांन, धा. ततार षां, अ. षां ततार, ना. फुनि ततार, शा. भी ततार, फिरि ततार। २. मो. ना. शा. स. करि, धा. कर, अ. किय। ३. मो. बै (< वे) आदमी सुविनांन, धा. वे आदमी सुविहान, अ. फ. वे अदब्भ (अदब्भु—फ.) सुरितान, शा. स. वे आलम सुविहान, ना. वे आदम सुलितान।

(२) १. मो. डंमी डमरु, धा. अ. डंकिनि डउर (डवरु—अ. फ.), ना. शा. स. डिंभी डमर। २. ना. ना.। ३. मो. बुझिय सुविहान, धा. पुच्छइ सुरतान, अ. पुछछे सुविहान, ना. शा. स. बुझ्झहि सुलतान।

टिप्पणी—(१) अरदास < अर्ज़ दाश्त [अ०] निवेदन। सुविनान < सुविज्ञान। (२) डंमी < दंभिन्।

[२१]

दोहरा—वे[१] फकीर अरु[२] जाय तप[३] हम करामाति[४] सुरतांन[५] । (१)
जउ कहहुं[१] गल्ह[×२] दोइ[३] पुछ्छयइ[*४] अरु जु लियइ[*५] कछु[६] दांन ॥ (२)

अर्थ— (१) [शहाबुद्दीन ने कहा,] "वह फकीर है और तप के लिए जा रहा है और हम करामाती (अद्भुत कार्य करने वाले) [अथवा करामातियों के] सुल्तान हैं [इसलिए उससे बातें करने में कोई हानि नहीं है] । (२) यदि वह कहे (पूछे) तो दो बातें [मुझ से] पूछ ले, और यदि ले तो कुछ दान ले ले ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है ।

(१) १. मो. शा. स. वे, धा. इह, अ. फ. यहु, ना. वह । २. फ. अर, शेष में 'अरु' । ३. मो. जाय तप, धा. जाइ तप, ना. जाय (< जाय) त, शेष में 'जाय । जाइ तप' । ४. मो. करामात, धा. करीम, अ. शा. स. करामाति, फ. करामातु । ५. मो. सुरतान, धा. अ. इविहान, शा. स. सुलतान ।

(२) १. मो. तुं (= तउ) कहहुं, धा. जउ कहु, अ. कहहु, ना. जौ कहहि, शा. स. कहिग । २. मो. धा. गल्ह, शेष में 'गल्ह' । ३. मो. दोइ, धा. दुइ, अ. दे । ४. मो. पुछीइ (= पुछिछयइ), धा. पुच्छियइ, अ. फ. बुझियहि, ना. शा. स. पुच्छियै । ५. मो. जु लीइ (=लियइ), धा. जुलेहि, अ. जुलेइ, फ. ज लेइ ना. लिए । ६. शा. कछु ।

टिप्पणी—(१) फकीर [अ०] = भिक्षुक, विरागी । करामत [अ० करामत का बहु०] = अद्भुत व्यापार । (२) गल्ह < गल अथवा गल्ल ।

[२२]

दोहरा—तब[१] सहाब[२] सन उचरयउ[*३] मियाँ[४] मलिक जु+[५] षांन । (१)
धाइ[१] चंद संमुहि[२] चले[३] वे[*४] बोलइ[*५] सुरतान[६] ॥° (२)

अर्थ—(१) तब मियाँ, मलिक, और खानों ने शहाबुद्दीन से कहा, (२) "हे सुल्तान अब हम दौड़कर चंद के सम्मुख उसे बुलाने के लिए जा रहे हैं।"

पाठान्तर—° चिह्नित चरण धा. में नहीं है ।
+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. मो. ना. शा. स. तब, धा. इह, अ. फ. यह । २. मो. साहब, फ. सहाउ, शेष में 'सहाब' । ३. मो. सन ऊचर्यु (= ऊचर्यउ), धा. संमुह कह्यो, अ. फ. मुष उच्चरिय, ना. मुष उच्चर्यौ, शा. स. मुष चवइ इम । ४. फ. माया (< मीया) । ५. मो. जू (= जू), शा. जे, स. जै, शेष में 'जु' ।

(२) १. ना. शा. स. दौरि । २. मो. समहि (< संमुहि), शेष में 'संमुह' । ३. अ. बले शेष में 'चले' । ४. मो. वो (< वे), ना. वे, शेष में 'वे' । ५. मो. बालि (= बोलइ), ना. बुल्ले, शेष में 'बुल्लै' । ६. अ. फ. सुरितान ।

टिप्पणी—(१) संमुह < सम्मुख ।

[२२]

पद्धडी— [१]बोलउ*[२] ति[३] चंद हज्जूर[४] साहि[५] । (१)
बुज्झइ* त[१] वत्त[२] अप[३] पातसाहि[४] । (२)
वइराग[१] चंदु तुम जोग[२] सत्ति[३] ।× (३)
जोगहि[१] विरुद्ध हम मिलन[२] मत्ति[३] ॥×४ (४)

अर्थ—(१) [इस प्रकार] शाह (शहाबुद्दीन) ने चन्द को अपने हुजूर (समक्षता) में बुलाया, (२) और बादशाह आपही उससे यह बात पूछने लगा, (३) "हे चन्द [यदि] तुम विरागी हो और तुम मे योग की शक्ति है, (४) तो हमसे मिलने की तुम्हारी मति योग के विरुद्ध है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित चरण ना. में नहीं है।
(१) १. मो. ना. शा. स. में इसके पूर्व है:
कही सु बात परदार ताहि। हित अहित चित्त देख्यौ सु साहि।
आलंम कहि सु करहि तथ। आवंन दिष्षि फिर कहि कथ।
२. मो. बोलु (= बोलउ), धा. बोल्यौ, शेष में 'बुल्यौ'। ३. मो. ति, धा. तथा, शेष में 'सु'। ४. फ. सु सूर। ५. धा. गाहि, शेष में 'साहि'।
(२) १. मो. बुझि (= बुझइ) त, धा. पुच्छियइ सु, अ. फ. बूझी सु (स—फ.), ना. बूझंत, शा. बुझन्त। २. मो. बात, शेष में 'वत्त'। ३. मो. धा. अप, अ. फ. अपु, शा. स. अनु। ४. मो. पातसाहि, धा. पातिसाहि, शेष में 'पत्तिसाहि'।
(३) १. मो. विराग (= वइराग), धा. वइराग, शेष में 'वैराग'। २. मो. फ. योग (= जोग) धा. तथा शेष में 'जोग'। ३. मो. धा. सत्ति, धा. तथा शेष में 'सत्त'।
(४) १. मो. अ. फ. योगहि (= जोगहि), धा. जोगहि, शा. स. जोगह। २. धा. मिलण, मिलनि। ३. मो. धा. मत्ति, शेष में 'मत्त'। ४. ना. शा. स. में यहाँ और है (स.—पाठ):—

संमह्यौ षान षानह हुजाव। तुम चल्यौ चंद बुल्ले सहाव।
लै रष्षि मद्धि ठट्ठौ महल्ल। सुव्वास रास अंदर चहल्ल।
बैठक सुरंग सुभ चित्तसाल। सोहति अत्ति उज्जास माल।
बिस्साल महल वर रंग भोम। प्रासाद उच्च मंडप सिरोम।
वातायनि जाल प्रति मत्ति नूर। हिम थंभ जोति जगमग सरूप।
झलकंत कनक कुंदन सुभाल। एकेक रूप रंजत रसाल।
जम्माहि सजोति नग जटित जाम। राजंत रवनि दसकंध वाम।
त्रय काल रूप तरुनी महल्ल। दह इक भुम्मि रोचित रहल्ल।
जालीय वार छजि मुत्तिदाम। नग जसु बद्द सज्जे सुकाम।
सत पत्र उंच साला छपक। तहाँ मयन सयन सुष सेज नेक।
बनि गौष पट्ट सज्जे दुशाल। आह्लादि साम आसन्न उछार।
मूढा व गादि मंडी सुथान। बैठा सुसाहि आसन उतान।
दस पंच हथ्थ अभि चित्रसाल। सम फिरत मंडि सहमत्त जाल।
उमरा ष मीर बैठे सुतथ्थ। कुलवंत सूर संग्राम हथ्थ।

वंचे उतान बों अनूप। षविधिज्ज मनहु मंडे सरूप।
ठह्यौ हु किधौ कवि चद आनि। उम्मरा मीर सब अहि मानि।

टिप्पणी—(१) हुजूर [अ०] = समक्षता। (२) बत्त < वार्ता। अप < आत्म। (३) सत्ति < शक्ति। (४) मत्ति < मति।

[२४]

दोहरा— हमहि मिलइ*[1] जि[2] चंद सुनि चरह[3] दलिद्दी लोभ[4]। (१)
अरु जि*[1] दुनी महि[2] संचरइ*[3] हम सउं* मिलत न[4] सोभ॥ (२)

अर्थ—(१) "हमसे वह मिलता है जो, हे चन्द सुनो, चर (दूत), दरिद्री या लोभी होता है (२) और वह जो दुनिया में संचरण करता है, [तुम] हमसे मिलते हुए नहीं शोभा पाते हो।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. मिलि (= मिलइ), धा. ना. मिलहि, शेष में 'मिलै'। २. मो. जि, ना. जे, सा. श. जै, धा. वे (< वे), अ. फ. वं। ३. मो. चरह, धा. विरहि, अ. फ. ना. विरह। ४. मो. दलिद्दी लोभ, धा. अ. फ. दलिद्र (दरिद्र–अ. फ.) स लोभ, ना. श. स. दरिद्राय लोभ।

(२) १. मो. जे (< जि), धा. जउ, अ. फ. जै, ना. श. स. जु। २. मो. ना. श. स. दुनी (= दुनी) महि, धा. दुनिअहि, अ. फ. दुनियह। ३. मो. संचरि (= संचरइ), ना. संचहि, श. स. सचरहि, धा. अ. फ. अहरहि (अहरे–अ. फ.)। ४. मो. हम सू (= सवं) मिलत न, श. स. हमसौं मिलत न, ना. तिन सुं (= सउं) मिलित न, धा. हय गय गहि न, अ. फ. हय गय महि तन।

टिप्पणी— (२) दुनी < दुनिया [अ०] = संसार।

[२५]

दोहरा— तबहि[1] चंद्र कवि उच्चरयउ* भल पुच्छउ*[3] सुरतान[4]। (१)
जोग भोग रह[1] रीति सह[2] सब जानउ[3] सुविहान॥ (२)

अर्थ—(१) तब चंद कवि ने कहा, "हे सुल्तान, तुमने अच्छा पूछा; (२) योग और भोग को उनकी गोप्य रीतियों के साथ सब तुम कल जानोगे।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. फ. तब सु। २. मो. चंद कवि उचर्‌यु (= उचरयउ), ना. श. स. चंद कवि उच्चर्‌यौ, धा. चंद अरदास कर, अ. फ. चंद अरदासि (अरदास–फ.) किय। ३. मो. भल पुछु (= पुछउ), धा. भल पुच्छ्यो, अ. फ. भल पुच्छिछय, ना. श. स. तुम पुच्छहु (पुच्छे–ना.)। ४. धा. सुलतान, अ. फ. सुविहान।

(२) १. मो. ना. यह, श. स. इह, धा. अ. फ. रह। २. मो. सह, धा. सब. अ. फ. हौ, ना. जौ, श. स. सौं। ३. मो. सब जानुं (= जानउं), धा. सब जाणउ, अ. फ. सब जानौ, ना. साहि जानै। ४. मो. सवि जांन, धा. श. स. सुविहान, ना. सुलतान, अ. फ. सुरितान।

टिप्पणी—(२) रह < रहस् = प्रच्छन्न, गोप्य।

[२६]

दोहरा— बालपणाइ[१] प्रथिराज सह[२] अति मित्तत्तन[३] कीन्ह ।[४] (१)
जि*[१] कछु सध्य[२] मन मइ*[३] भइ* सब[५] इछूछारस दीन्ह[७] ॥ (२)

अर्थ—(१) ["इस समय तो यही निवेदन करना चाहता हूँ कि] बालपन में पृथ्वीराज के साथ मैंने अत्यन्त मित्रता की । (२) [उस समय] जो कुछ भी आकांक्षाएं-अभिलाषाएँ मन में हुईं, उन समस्त इच्छाओं का रस (आनंद) पृथ्वीराज ने दिया ।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।

(१) १. मो. बालापन, धा. बाळपणइ, अ. फ. ना. बालप्पन, शा. स. बालपनै । २. धा. ना. संगि, अ. फ. संग (संगु–फ.), शा. स. सम । ३. मो. मचित्तन, धा. अ. फ. मित्तत्तन, ना. मित्रातिन, शा. स. मित्रंतन । ४. अ. फ. कीन ।

(२) १. मो. जे (< जि), धा. तथा शेष में 'जु' । २. मो साध, धा. सद्ध, अ. फ. सद्ध, ना. सुध, शा. स. स्वाद । ३. मो. मि (= मइ), धा. मंझि, अ. फ. मद्धि ना. मैं । ४. मो. भइ, धा. अ. फ. भयी, शा. स. भयौ । ५. ना. तब, शा. सो, स. संगि । मो. ईछा, धा. तथा शेष में 'इछछा' । ७. अ. फ. रस दीन, शा. संगि लीन ।

टिप्पणी—(१) मित्तत्तन < मित्रत्व । (२) सध्ध < श्रद्धा ।

[२७]

दोहरा— इकु दिन[१] प्रथीराज रस सुष[२] कह्यी तिह[३] वार । (१)
सिंगिनि[१] सर वर अग्र विन[२] सत्त हनन[४] घरिआर ॥ (२)

अर्थ—"एक दिन पृथ्वीराज ने रस (आनन्द) में उसी बेला (बालापन) में मुख से [यह बात] निकाली, (२) 'सिंगिनी से [मेरे] शर श्रेष्ठ (तीक्ष्ण) अग्र भाग के बिना भी सात घड़ियालों को मार (बेध) सकते हैं।'

पाठान्तर—(१) १. मो. इकु दिन, धा. एकै दिन, अ. फ. ना. इक्क स दिन, शा. स. इक सु दिन । २. धा. मुषि, मो. तथा शेष में 'सुप' । ३. मो. कही तिह, धा. कह्‌ढी किहुं अ. कढ्डिय तिहि, फ. करीय तिहि, ना. कह्यौ तिहि ।

(२) १. धा. सिंगन, ना. स्यंगन, शेष में 'सिंगिनि' । २. मो. ना. शा. स. सरवर इखि (इच्छि– ना. शा. स.) बिन, धा. सर कर अग्नि बिन, अ. फ. सर कर (कुर–फ.) अग्र बिनु । ३. मो. सतत, शेष में 'सत्त' । ४. फ. हनं ।

टिप्पणी—(१) वार = बेला । इखि < ईक्षी अथवा 'ईक्षा' = देखने की क्रिया ।

[२८]

दोहरा— तिहि आयउ* तुहि आस करि तुहि तु पास पहुआंत[१] । (१)
सोइ दुरोग[१] लग्गहुं मनह कहन कउ*[२] सु विहान ॥ (२)

अर्थ—(१) "इसी से तुम्हारी आशा करके आया हूँ कि चहुआन तुम्हारे पास [अथवा पाश] में है; । (२) वही बुरा रोग मन में लगा है, और उसे इस प्रभात में निकालना है।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. ना. तिहि आयु (= आयउ, ना. आयौ), तुहि (तुह–ना.) आस करि तुहितु पास (पास–ना.)चहुआन, धा. अ. फ. अप्रमान (वर सुनत–शा. स.) कंप्यो (कखरो–धा.) हिया (हियौ–अ. फ.) दिल न रहौ (रहै–धा.) थिरु थान (काम–धा.)।

(२) १. धा. कुरोग, मो. सोइ कुरोग, अ. फ. सुज दरोग, ना. सोइ दरोग, शा. स. सुद्ध रोग। २. मो. लग्गहुँ मनह, धा. अ. फ. शा. स. मन रोग सो, ना. लग्गं मनह। ३. मो. कढन कु (= काउ), धा. कढ़न करूं, अ. कढ्ढन कौं, फ. कढिन कौं, ना. कढ्ढन को।

टिप्पणी— (१) पास < पार्श्व या पाश।

[२९]

त्रोटक[१]— [१]कढ्ढन कउ*[२] पतिसाहि तुही[४]। (१)
मन मम्भ[१] रहउ[२] कवि साल[३] जु ही[४]। (२)
गयउ* जु[×] आज करि पइजु* तुही[१]। (३)
बनि जाउं[१] साहि सुरतांन सही[२]। (४)

अर्थ—(१) "हे बादशाह, तू ही उसे निकालने को है—निकाल सकता है, (२) कवि के मन में जो यह शल्य रहा है, (३) [वह शल्य] आज गया ही है, यदि तू [उसके निकालने की] प्रतिज्ञा करे (४) और [तदनंतर] हे सुल्तानों के बादशाह, मैं बन अवश्य ही चला जाऊँ।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. मो. में छंद का नाम नहीं है, धा. छंद, अ. फ. त्रोटक, ना. चौपई, शा. स. अरिल्ल। २. धा. अ. फ. में यहाँ 'तिहि' भी है। ३. मो. कु (= कउ), धा. कूं, अ. फ. कौं, ना. को, शा. कुं। ४. मो. तुहि, शेष में 'तु ही'।

(२) १. मो. मझ, धा. अ. फ. ना. मझि। २. मो. रहु (= रहउ), धा. अ. फ. ना. शा. स. रहयौ। ३. फ. लासु। ४. मो. जेहि, शेष में 'जु (सु–फ.) ही।'

(३) १. मो. ना. शा. स. गयु (= गयउ) जु (आयौ सु–शा. स., आयौ–ना.) आज (अज्जु–ना.) करी पिजु (= पइजु, पैज–ना. शा. स.) तुही (तही–मो.), धा. अ. फ. दे अज्जु किधौं करि है (करिहुं–अ. कहिहौं–फ.) जु (कि–अ., के–फ.) नहीं।

(४) १. ना. जाइ। २. मो साहि सुरतान सहा, धा. अ. फ. सही पतिसाह (साहि–फ.) गही, शा. सुसाहि सहाब गही, ना. साहि साहाबदी।

टिप्पणी—(२) साल < शल्य। (३) पइज < प्रतिज्ञा। (४) ही < हृदय।

[३०]

दोहरा— सुनि सहाब गह गह हसौ[१] बे बे भट्ट सु मुट्ठ[२]। (१)
अंषि हीन बल[१] हीन भयु[२] कह मग्गइ*[३] मति नठ्ठ॥ (२)

अर्थ—(१) [चंद की यह बातें सुनकर] शहाबुद्दीन जोरों से हँसा, [और उसने कहा,], "अबे भाट, यह बात झूठी है, (२) वह आँख हीन और बल हीन हो गया है, [ऐसी दशा में] ऐ नष्टमति, तू मुझसे [यह] क्या माँग रहा है ?"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. ना. शा. स. सुनि साहब गह गह हसो (हस्यो—ना. शा. स.), धा. तब सहाब साहि उच्चरइ, अ. फ. सुनि सहाब हसि (हसु—फ.) उच्चरिय। २. मो. सु जुठु (= जुट्ठ ?), ना. शा. ह झुट्ठ, धा. अ. फ. विनट्ठ।

(२) १. शा. स. मति। २. मो. मयु, धा. तउ (< मउ), शेष में 'भो'। ३. मो. कह मगि (= मगइ), धा. कौ मग्गइ, अ. फ. का मंगै, ना. कहा मग्गौ, शा. कह मंगै, स. कहा मंगै।

टिप्पणी—(१) झुट्ठ [दे०] = झूठ। (२) नट्ठ < नष्ट।

[३१]

दोहरा— *अंषि विनट्ठी[१] बल घटउ*[२] मति नट्ठी[३] सुरतान। (१)*
जि[१] कछु मोहि अप्पण कहउ*[२] सु बोलु रहउ*[३] परवांन[४] ॥ (२)*

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "[तुम्हारा यह कथन,] हे सुल्तान, [ठीक है कि] उसकी आँखें विनष्ट हो चुकी हैं, बल घट गया है, और उसकी मति भी नष्ट हो चुका है, (२) [किंतु] जो कुछ तुमने मुझे अर्पण करने के लिए कहा है, वह बोल (वचन) तो प्रमाण रहना ही चाहिए।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. फ. अंषि विनट्ठे, स. अंष हीन सौं। २. मो. घट्ठ (=घटउ), अ. फ. घटे, शा. घटउ, शेष में 'घटियौ'। ३. अ. फ. नट्ठें।

(२) १. मो. जे (< जि) कछु, धा. तथा शेष में 'जु कछु (जु किछु—अ., जुकिछ—फ.)। २. मो. कहु (= कहउ), फ. गह्यो, शेष में 'कह्यो'। ३. मो. रहु (= रहउ), अ. फ. रहै, ना. होइ, धा. तथा शेष में 'रह्यो'। ४. मो. जु विहान, फ. परमानु, शेष में 'परवांन'।

टिप्पणी—(१) विनट्ठ < विनष्ट। नट्ठ < नष्ट। (२) अप्पण < अर्पण। परवांन < प्रमाण।

[३२]

पद्धडी— *सुरतान जमन[१] फुरमान[२] दीय[३]। (१)*
पुर पुरह[१] छोरि[२] घरिआर लीय[३]।[४] (२)
मोकलउ[१] चंदु तब राज[२] पास। (३)*
तुहि मंगहि नृपति हम[१] दिषइं[२] तमास ॥ (४)*

अर्थ—(१) [यह सुनकर] यवन (मुसलमान) सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने फ़र्मान दिया, (२) और पहले ही [समस्त पुर] के घड़ियाल छीन मँगवाए; (३) तब चंद को राजा के पास भेजा, (४) [और कहा,] "तुम राजा से [उसकी स्वीकृति] माँगो तो हम वह तमाशा देखें।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. जान, धा. जमन, अ. फ. साहि, ना. थान, शा. स. जाम। २. मो. फरमान, शेष में 'फुरमान'। ३. मो. दीय धा. अ. फ. दीन (दीन्ह-फ.), स. किन्न।

(२) १. मो. पुर पुरह, धा. अ. फ. ना. तब नयर। २. क. छोह। ३. मो. लीय, धा. अ. फ. ना. लीन (लीन्ह-फ.)। ४. शा. स. में चरण का पाठ है: हुज्जाब षान तिहि सथ्थ दिन्न (दीन-शा.)।

(३) १. मो. मोकलु (=मोकलउ), धा. मुक्किलिइ, अ ना. मुकल्यो, फ. मुकल्योह, शा. स. ले जाहु। २. मो. तब राज, धा. अ. फ. ना. राजनह, शा. स. प्रथिराज (पृथिराज-शा.)।

(४) १. मो. ना. तुंह (तु-ना.) मंगहि नृपति हम, धा. तुम गहहु हम, अ. फ. तूं मंगि (मंगु-फ.) हम सु (मि-फ.), शा. स. तु मंगि हम। २. मो. दिपि (=दिषंइ), धा. अ. फ. दिक्खहि (दिषिहि-फ.), ना. शा. स. दिष्षैं।

टिप्पणी—(१) फुर्मान [फ़०] = राजादेश। (२) पुर < पुरस् = पहले। (३) मोकल [दे०] = भेजना, प्रेषित करना। (४) तमास < तमाशः [अ०] = मनोरंजक व्यापार, खेल।

[३३]

पधेडी—

[१]गयउ*[२] चंद तब तेहि ठाहि[३]।° (१)
नृप मित्त वयट्ठउ* जहां चाहि[१४]।° (२)
फुरमान साहि साहाब ईस[१]। (३)
दस हथ्थ रषि दीनी असीस[१]।[२] (४)
घर बंधु[१] राय अज्जान बाहु[२]। (५)
हुज्जने[१] राउ[२] वन वइर*[३] दाहु[४]।[५] (६)
चालुक्क राय[१] पर[२] पइज*[३] पारि[४]। (७)
पंगुरे राय जगि जग्य[१] हारि[२]।[३] (८)
धनुष धारि[१] अर्जुन नरेस। (९)
अरि बंधि बंधि किए तीय भेस[१]। (१०)
मनमथ्थराय अवधूत धुत्त[१]। (११)
संभरिय राय सोमेस[१] पुत्त[२]।[३] (१२)
जगि[१] रषि नाम[२] जज्जर[३] सरीर। (१३)
चक्रि संग संग[१] आयउ*[२] सु मीर[३]। (१४)
राजा सु दान हइ*[१] सुरति[२] इक्कु। (१५)
[१]घरिआर सत्त सर[×] वघन निक्कु[२]।[३] (१६)
विप्र देह नवतनह सुभग्ग[१]। (१७)
आंषि पांनि[१] मनु चितह[२] लग्ग[३]। (१८)
पहिचांनि[१] चंदु वर धुनिग सीस। (१९)
सिर नयो नही मन[×] भई रीस[१]॥ (२०)

अर्थ—(१) चन्द तब उस स्थान पर गया, (२) जहाँ पर उसने [अपने] राजा [और] मित्र पृथ्वीराज को बैठा देखा। (३) शाह शहाबुद्दीन का फरमान ऐसा था, [उसके अनुसार पृथ्वीराज से] दस हाथ [का अन्तर] रख कर [चन्द ने] पृथ्वीराज को आशीर्वाद दिया, [और कहा,] (५) "हे धरा के बन्धु राजा, हे आजानुबाहु, (६) हे दुर्जन राजाओं के वन (समूह) को वैर द्वारा दग्ध करने वाले, (७) तुमने चालुक्य राज (भीम) पर (के विरुद्ध) अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, (८) जग (संसार) में पंगुराज (जयचन्द) के यश को नष्ट किया, (९) तुम धनुषधारी अर्जुन हो, (१०) जिसने शत्रुओं को बाँध-बाँध कर स्त्री के वेष में [होने के लिए विवश] कर दिया; (११) तुम मन्मथराज हो, अवधूत हो, और [शत्रुओं के लिए] धूर्त [भी] हो, (१२) तुम साँभर-नरेश और सोमेश्वर के पुत्र हो; (१३) जग में नाम (कीर्ति) रखकर अजर शरीर से (१४) एक संग (यात्री-समूह) के संग में संकट [की परिस्थितिओं] में [मैं यहाँ] आया हूँ; (१५) हे राजा, क्या तुझे एक दान की स्मृति है—एक दिया हुआ वचन स्मरण है ? (१६) वह सात घड़ियालों को [एक] शर से बधने (बेधने) का था।" (१७) [यह सुन कर] उसका व्यग्र देह [मानों] सुभग नव तन [हो गया], (१८) और आँखों तथा हाथों में मानो चेतना आगई। (१९) [किन्तु पुनः] चन्द को पहचान कर उसने सिर पीट लिया, (२०) उसका सिर [नैराश्य से] झुक गया; और उसके मन में [शत्रु के प्रति] रिस नहीं हुई।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

० चिह्नित चरण धा. अ. फ. में नहीं है।

(१) १. ना. शा. स. में यहाँ 'तब' भी है। २. मो. गयु (= गयउ), ना. शा. स. गयौ। ३. ना. नृप सत्थ तप थाहि, शा. स. नृप तथ्थ थाह।

(२) १. नृप मित्त बयठु (= बयठउ) जांहां चाहि, ना. शा. स. जहां (नृप—ना.) मित्र बयट्ठो दिठ्ठ (दिष्षि—ना.) चाहि (ना. में यह शब्द नहीं है)।

(३)–(४) १. इन दो चरणों के स्थान पर धा. मो. ना. शा. स. में है (धा. पाठ):—

दस हथ्थ (तबते दस हथ्थ—मो.) रषि दीनी असीस।

सिर नयो नयो नहि माने (सिर नाइ नही तिहि धरीय—मो., सिर नम्यौ नहीं मनि धरीय — ना.) रीस। किंतु इस पाठ का दूसरा चरण समस्त प्रतियों में छन्द का अंतिम चरण है। २. धा. में यहाँ और है :

राजन है सुरति इक्क। धरियार सत्त सर विद्ध नेक्क।

किन्तु ये चरण समस्त प्रतियों में स्वीकृत चरण (१५)-(१६) के रूप में आए हैं।

(५) १. मो. धर पांध, धा. अ. धर बंध, फ. धर बंधु, ना. धरि बंध, शा. धर ‌‌‌थ, स. पर पंथ। २. धा. फ. शा. स. आजानबाहु (आजानबाहु—धा.)।

(६) १. मो. दुर्जने, धा. अ. फ. दुज्जने, ना. दुर्जनिनि, शा. स. दुरजन। २. मो. राउ धा. अ. फ. राइ, शा. स. तरि, ना. नरइ। ३. मो. वन वीर (< विर=वइरा), धा. ना. वर वीर, अ. फ. वर वैर, शा. स. धर राय। ४. फ. वाहु। ५. ना. में यहाँ और है :

अरि बहुन कहुन तू तुच्छ हारि।

(७) १. मो. चालुकराय, धा. तथा शेष में 'चालुक्कराइ'। २. अ. फ. फिरि (फिर—फ.), ना. परि, धा. तथ शेष में 'पर'। ३. मो. पिज (= पइज), धा. तथा शेष में 'पैजु' (पेज—अ. शा. स.)। ४. शा. स. पार।

(८) १. मो. जगि जग्य, धा. जग जग्यु, अ. जग जग्य, फ. जव जग्य, ना. जगि जगित। २. शा. स. हार, फ. हाल। ३. शा. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

बर बीर जिग्गि समिवृत्त जिन्नि । कम कज्जराय सिरदार किन्नि ।
सुर बंधि बंध जिहि कियौ मेन । संभरे वत्त भंभरि नरेस ।
रन थभ थंभ जस मंडि पान । चालुक्क चंपि जालौर थान ।

ना. में यहाँ और है : संजोगि भोग व्रत पेज पारि ।

(९) १. मो. धनुषधारि, धा. धर धरनि धार, अ. फ. धनु धर्म धीर (धार–फ.), शा. स. धनुष धरि (धार–शा.), ना. धनुर्द्धार ।

(१०) १. अरि बंधि बंधि ति (= तइ) कीए मेस, धा. सुर बंध विद्धि जिहि कियउ केस, अ. फ. जिहि (जिह–फ.) असु (आसु–फ.) बंधि किद (किव–फ.) तिय (ति–फ.) मेस, ना. अरि बंधि बंधि तै कीय असेस, शा. स. जित्तिया बीर दष्षिन सु देस ।

(११) मो. अ. फ. ना. पूत ।

(१२) १. मो. शा. स. संभरिय (संभरी–शा.) राय (राव–स.) सोमेस, धा. संभरे रा. संमेषु, अ. फ. ना. संभरे राइ सोमेस । २. अ. फ. पूत । ३. ना. में यहाँ और है :

सक सूर श्री संग्राम धीर । अद्भुत सुभंग दीर्घ शरीर ।
सावंत सूर सो लहै न साथ । दतषत भुकति ढूँ रहै हाथ ।

(१३) १. मो. जगि, धा. छुग, अ. फ. जुग, ना. शा. स. जग । २. धा. राखु तास, शेष में 'रष्षि नाम' । ३. मो. जर्जर, धा. अ. फ. जज्जर, ना. जर्जरि ।

(१४) १. ना. चलि संगि संगि । २. मो. आयु (= आयउ), धा. आयो, शेष में 'आयौ' । ३. मो. सु भीर धा. तथा शेष में 'स धीर' ।

(१५) १. मो. राजा जानहि, धा. राजन् सुदान है, अ. फ. राजनह दान है, ना. राजदान दय, शा. स. राजदलह । २. धा. सुरत, मो. तथा शेष में 'सुरति' । ३. अ. फ. एक, ना. शा. स. मेक ।

(१६) १. ना. में 'नै' और है । २. मो. सर वधन तिक्कु, धा. सिर विधन इक्क, अ. सर विधव मेक, फ. इन सरि विमेकु, ना. विधि एक, शा. स. सर बंधन नेक । ३. मो. ना. में यहाँ और है (मो. पाठ) :

अषियान मनु चितह लग । होइ सुजस तुअ नृपति सुभग । (तुल० चरण १८)

(१७) १. मो. विग्र देह नव तनह सुभग, धा. विग्रार देहि उत्तर सुभग्ग, अ. फ. विघारि (विचारि–फ.) देहि (देहु–फ.) उत्तर सुभग्ग, ना. विग्रह सुतेह नव तनह भग्ग, शा. स. विग्रह सुदेव नव तनह अग्गि ।

(१८) १. मो. अंथि पांन, धा. अच्छहि त आन, अ. फ. यह सुनि श्रवन्न, ना. शा. स. हरि अंषि पानि । २. धा. अ. फ. चित्त । ३. शा. स. लग्गि ।

(१९) १. मो. पिढ्ढिचानि । २. अ. फ. सुनि, ना. बढ्ढिक ।

(२०) १. मो. सिर नाइ नह्वी मन भई रीस, धा. अ. फ. सिर (सिरि–अ., सिरु–फ.) नयो नयो नहि पान रीस, ना. शा. स. सिर नयो नहीं मन करिय (नहीं करिग–ना.) रीस (रीस–ना.) ।

टिप्पणी—(१) ठाह < स्थान । (२) चाह < वांछ् । (३) ईस < ईदृश्=ऐसा । (५) अज्जानबाहु < आजानबाहु । (७) पइज प्रतिज्ञा । पार < पालय् । (१५) सुरति < स्मृति । (१७) विग्र < व्यग्र । नवतन < नूतन ।

[३४]

दोहरा— सुनि कवित्त[१] चल चित्त किअउ*[२] दिसि दिसि[३] भूमय पाल*[४] । (१)
रिस[१] धुनि सीसु निषेधु*[२] करि[३] जिहुं[४] लुम्भिअ* चंद सुहाल ॥ (२)

अर्थ—(१) [चंद की] कविता सुनकर भूमिपाल (पृथ्वीराज) ने चित्त को दिशा-दिशा में चलाया; (२) किन्तु फिर रिस (रोष) से अपना सिर पीट कर निषेध किया [इस भाव से] जैसे चंद एक मुहाल (अलभ्य) वस्तु पर लुब्ध हुआ हो।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. ना. चित्त चिंतै। २. मो. धा. शा. स. चल चित किय (कीउ = किअउ–मो.) अ. फ. बल (बलि –फ.) चंद किय, ना. इत मित बयन। ३. अ. फ. दस दिस, ना. इह दिस, स. दह दिस ४. मो. धा. भूप पयाल, ना. भूप पयाल, अ. फ. भूपयपाल, स. भूम पयाल।

(२) १. म. सिर। २. मो. निषिधु (= निषेधु), अ. निषिद्ध, फ. रिषिद्ध, ना. निषद्ध। ३. धा अ. फ. किय। ४. धा. जिय, ना. जिम, अ. फ. शा. स. में यह शब्द नहीं है। ५. मो. लभी अ. धा लुभि, ना. लब्भै, शा. स. लुब्भै, अ. फ. लोभी।

टिप्पणी (१) कवित्त < कवित्व। भूमय < भूमि। (२) लुब्भ < लुभ्। मुहाल [अ०] = असंभव।

[३५]

कवित्त— संभरि नरेस करि रीस सीस[१] धुनहि न[२] धनु सज्जहि[३]। (१)
इह[१] मित्तत्त निमित्त[२] चित्त चिंतन सोइ कज्जहि[३]। (२)
निकट सुनइ*[१] सुरतांन[२] वांम दिसि उच्च हथ्थ[३] सउ[४]। (३)
जम अवसर सतु नंचि[१] अथ्थ[२] लुट्टिय[३] न करिय भउ[४]। (४)
दइ[१] दानु[२] जांनि[३] संभरि[४] धनिय उहु° गड्डउ*° तुंहि° जल्लियहि°। (५)
दिति अदिति[१] वंस[२] दोउ[३] हंस उडि× इह[४] उप्पर कहा* करहि× कवि[५]॥[६] (६)

अर्थ—(१) हे साँभरनरेश, तू [शत्रु पर] रिस कर, सिर न पीट, धनुष साज। (२) यह मित्रता के निमित्त (नाते) [मैंने कहा है], और मेरे चित्त में उसी कार्य की चिंता है। (३) निकट ही सुल्तान बाईं दिशा में सौ हाथ की ऊँचाई पर सुन रहा है। (४) जैसे सो अवसर [एक साथ] नाच उठे हों, [ऐसे समय में] अर्थ (प्रयोजन) लूट और भय न कर। (५) हे साँभर पति, तू जानकर यह [वचन] दे कि तू उसे [मारकर] गाड़ेगा और तू [स्वयं] भी जलेगा। (६) दिति और अदिति (दैत्य और देव) वंश के दो हंस (प्राण) उड़ चले, [इतना ही कवि कर सकता है,] इससे अधिक कवि क्या कर सकता है?"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित शब्द धा. म. स. नहीं है।
× चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. मो. शा. स. संभरि नरेस करि रीस, धा. संभरीस धरि रीस, अ. फ. संभरेस धरि रोस, ना संभरि रिस धरि रीस। २ म. धुनिहि न, धा. अ. धुनहि न, फ. धुनिह, शा. स. धुंनि न। ३. ना. सब्भहि।

(२) १. अ. यह, शा. स. ईहि। २. मो. मितत्तन मित्त, धा. मित्तत्तनु मित्त, ना. नित्ततंत्र निमित्त, शा. स. मित्ततन चित्त। ३. मो. चित्त न सोइ छज्जहि, धा. चिंतहि सो छज्जहि, अ. फ. चिंता तुव कज्जहि, स. चिंता सोइ सज्जहि, ना. चिंतत सोइ छज्जहि, शा. चिंता सोइ सज्जहि।

(३) १. मो. सुनि (= सुनइ), धा. सुनहि, अ. फ. सुनै। २. अ. फ. सुरिसान। ३. अ. उच्च हथ, फ. उच्च हथ्थ। ४. मो. सुं (= सउ) धा. सउ, शेष में 'सौ'।

(४) १. मो. अवसर सतु संचि, धा. अवसर तसु संचि, अ. फ. अवासरत नंच, ना. शा. स. अवसर सत नंचि। २. मो. अछिया, अ. फ. अरिथ, ना. शा. अत्थ। ३. धा. लुहुअ, मो. लुदिय, शा. लुट्टहि। ४. मो मु (=मड), धा. भड, अ. तौ, फ. सौ, ना. शा. सा. भौ।

(५) १. मो. दि (= दइ), धा. दइ, ना. दे, शेष में 'दं'। २. मो. दांनु, शेष में 'दानु' या 'दान' (दानि–फ.)। ३. मो. जांनु, धा. ना. जान, शेष में 'जानि'। ४. मो. संभरि, धा. सिंभर। ५. मो. वहु गाडु (= गडउ) तुहि जलिकदवि, अ. फ. वहु गड्डिय तु जरहि अब, ना. शा. स. उरि गड्डहि, तुहि जलहि हवि।

(६) १. मो. दित अदित, धा. तथा शेष में 'दिति अदिति'। २. शा. स. हंस। ३. धा. दुइं, मो. शा. स. दोउ, अ. फ. द्वै, ना. दो। ४. ना. बढ़ि चलहि, शा. स. बढहिं चलि। ५. मो. इह पुर काहा (<कहा) कवि, धा. इह उप्परि का कहुं (= कहउं) कवि, अ. फ. यहु उपाव (उपाउ–फ.) हौं करौं कब, ना. शा. स. इह उप्पर कह करहि (करै जु–ना.) कवि। ६. मो. में यहाँ निम्नलिखित चरण और है :

सोभ अटल वइ उचयु दिउयु दिउदि उपर काहा करहि कवि।

यह चरण अंतिम का पाठांतर लगता है।

टिप्पणी— (२) मित्तत्त < मित्रत्व। (४) अथ्थ < अर्थ। भउ < भय।

[३६]

दोहरा— तव[१] सुनि कविरा[२] चल चित्तु किय अदभुत[३०] सुभित[०४] सरीर। (१)
मोह[१] अलुझ्यउ[*२] जानि कै[३] चित चरचउ[*] रणधीर[४]॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] "तुम्हारी कविता सुन कर मैंने चित्त को चलायमान (क्रियाशील) किया, तो शरीर में अद्भुत [रस] शोभित होने लगा; (२) तुमने मोह [पंक] में आरूढ़ हुआ जान कर [ठीक ही] मेरे चित्त को रण-धीरता (वीररस) से चर्चित किया है।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) मो. के अतिरिक्त किसी में यह शब्द नहीं है। २. मो. कवि, शेष में 'कवित्त'। ३. मो. अधभूत, अ. अजहूँ, फ. अज्जह। ४. मो. सुभित, अ. फ. चित्त, ना. सुभट, शा. स. भट्ट।

(२) १. मो. धा. मोह, शेष में 'मोहि'। २. मो. उलंघ्यु (= उलंघ्यउ), धा. उलझ्यौ, अ. फ. अलुझ्यौ. ना. शा. स. टलंघ्यौ। ३. मो. जान के, धा. जान कवि, अ. फ. जानि (जानु–फ.) जिय, ना. शा. स. जानि कै। ४. मो. चित चरचु (= चरचउ) रणधीर, धा. तत्त अबोधन वीर, अ. फ. तात (तातु–फ.) प्रबोधन वीर, ना. चित चरच्यौ रण धीर, शा. स. चितत प्रवुधन।

टिप्पणी—(२) अलुझयउ < आरूढ़।

[३७]

दोहरा—अंधिहीन दोऊ भयउं[*१] तुं[*०] वहु अंधिन चूक[२]। (१)
असुर[१] वद्धु[२] किम[३] विन सुरह[४] मइ[*] सुर बंधउ[*] अलूक[५]॥ (२)

अर्थ—(१) "[किन्तु] मैं दोनों आँखों से हीन हो गया हूँ, तू चार—दो शरीर और दो बुद्धि की—आँखों से भी [यह देखने में] चूक रहा है ! (२) असुर-वध सुर के बिना कैसे संभव है ? मैं सुर तो बंदी उल्लू [हो रहा] हूँ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. मो. अंषिहीन दोउ भउ (= भयउ), धा. वे अखिन सुकवि, अ. फ. तू बिहुं अंषिनि अनुसरहि (अनुसरहि–अ.), ना. अंषिहीन बहु दुख भयौ, शा. स. वे अंषिनहीनौ सु हौ। २. मो. तु (< तुं) चहु अंषिन चूक, धा. चहु अंषिन चूक, अ. फ. हौं विहु (विहौं–फ.) अंषि उलूक (अलूक–फ.), ना. तुं चव अंषिन चुक्क।

(२) १. मो. असू, शेष में 'असुर'। ना. वहौं, शा. वंधौं, स. वधौं। ३. मो. अ. फ. किमि, शेष में 'किम'। ४. अ. फ. करि करौं। ५. मो. मि (= मइ) सुरबधु (< बंधउ) अलूक, धा. मैं सुर वध्यो उलूक, अ. फ. सुबंधत अचूक, ना. मैं सुर विध्यौ उलूक, शा. स. उर सुर बध्यौ उलूक।

टिप्पणी—बंधउ उलूक : प्रसिद्ध कथा है कि कौओं और उल्लुओं में अनबन हो गई, जिससे रात्रि में उल्लू कौओं के बच्चों को खा जाते। कौओं ने मित्रता का स्वाँग करके उन्हें अपना राजा मान लिया और अपने घोंसले उनके कोटरों के पास बनाने का बहाना करके वहाँ लकड़ियाँ इकट्ठा कीं। एक दिन उस काष्ठ-समूह में उन्होंने आग लगा दी। दिन में उल्लुओं को कुछ सूझ नहीं पड़ा और वे सब जल मरे।

[३८]

कवित्त— अरे*[१] नरिंद[२] वा बंध°[३] पिंड कच्चउ*[४] सुर° सच्चउ*[५] । (१)
अप्पु[१] तेज संमीर धरा[२] आयास[३] ज[४] पंचउ*[५] । (२)
जरा जाल बंधियउ*[१] काल आनन महि खिल्लइ*[२] । (३)
हं तुह* तुं तुह*[१] अजप[२] जपि सम वह[३] करि[४] मिल्लइ[५] । (४)
जिम चलइ*[१] हंस हंसी सरिस[२] छंडि मोह[३] तन पंजरहि[४] । (५)
प्रथीराज आज तिहिं मत्ति करि[१] करि[२] नरिंद जिते[३] उब्बरहि[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "अरे नरेन्द्र अथवा बंधु [पृथ्वीराज], पिंड (शरीर) कच्चा है, और [उस शरीर में निवास करने वाला] सुर (चेतन जीव) सच्चा है। (२) आप (जल), तेज, समीर, धरा, आकाश—इन पाँच [से वह पिंड बना है]। (३) यह जरा (वृद्धता) के जाल में बँधा हुआ है, और काल के आनन (मुख) में खेलता [रहता] है। (४) 'अहंत्वं', 'त्वं त्वं' ('मैं तुम हूँ', 'तुम तुम हो') का अजपा जाप और समानता (सम भाव) करके तू [ब्रह्म में] मिल जा। (५) जिस प्रकार हंस हंसिनी के साथ मोह और तन-पंजर को छोड़कर चल पड़ता है—हंसिनी के साथ वह भी प्राण-त्याग कर देता है, (६) तू भी पृथ्वीराज, आज वही बुद्धि कर और [ऐसा कुछ] कर कि जिससे तू उबर जावे—मुक्त हो जावे।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. मो. अरि (= अरे), अ. फ. रे, शेष में 'अरे'। २. ना. अब्ब। ३. मो. पावंध, अ. फ.

वा अन्ध (अन्धु–फ.), ना. श्रा. वासंभ । ४. मो. काचु (= काचउ), धा. कच्चो, अ. फ. कच्चउ, ना. कच्चौ । ५. मा. साच (साचु=साचउ), धा. अ. संचा (संचौ–अ.) फ. ना. शा. स. सच्चौ।

(२) १. मो. अपु (= अप्पु), धा. अ. फ. आप, शा. स. अंग । २. ना. धर्‍ा । ३. मो. अ. फ. आयस, ना. आयासु, शा. स. आकास । ४. मो. ज, धा. ना. स. ग, अ. गये, फ. थ । ५. मो. पंचु (= पंचउ), धा. तथा शेष में 'पंचो' या 'पंचौ'।

(३) १. मो. बंधीयु (= बंधियउ), धा. बंधियउ, अ. फ. बद्धयउ (बद्धयौ–फ.), ना. शा. स. बिद्धयौ । २. मो. मुख पीलु (= पीलउ), धा. मुह खिलइ, अ. फ. पर (पउ–फ.) खिल्ल, ना. स. महि पिल्लहि (पिल्ल–ना.), शा. महि पिल्लय पय ।

(४) १. मो. हलुइ (< हलुह < हंतुह) तुतुइ (< तुंतुह), धा. हंत हेतु, फ. हंत हंत, अ. हंतं तह, ना. हतं तहं, स. हत्तं पषिहं । २. ना. अजपा । ३. मो. सरुचर, धा. सरुवस, अ. फ. स. सरवर, ना. सरुवर । ४. मो. करि कर, ना. कर, शेष में 'करि'। ५. मो. मीलेहि (< मीलिहि = मिल्लिहि), धा. मिल्लइ, अ. फ. ना. मिल्लै, शा. स. मिल्लहि ।

(५) १. मो. जिम चलि (= चलइ), धा. जुथ चले, अ. फ. चलि (= चलइ), ना. जिम चलै, शा. स. उड़ चल । २. मो. हसि (= हंसइ) सरस, धा. हसहि सरिस, अ. हंसह सहित, फ. हंसइ साहित, शा. स. हसह सरिस, ना. हंसह सरिस । ३. मो. माह, शेष में 'मेह' । ४. धा. पंजरे, मो. ना. पंजरहि, अ. फ. यंजरहि (जजरहि–फ.)।

(६) १. मो. आज तिहि मत्ति करि, धा. आउ सब मुत्तिकर, अ. आज तुव कर मुकति, फ. आज तुव कति कति, ना.–आज कर मुत्ति तव, शा. स. सो मंत करि । २. धा. कह, फ. वह, शा. चिह, स. जस । ३. मो. जिनि, धा. जेहि, अ. जिहि, फ. वर, ना. जिम, शा. जग । ४. धा. उब्बरे, फ. उब्बरहि ।

टिप्पणी—(१) बंध < बन्धु । (२) आयास < आकाश ।

[३९]

चउपई[1]— तुं राजा सामथंह धीर। (१)
सर्ग अर्थ जानइ* तह वीर[2]। (२)
अथ्थी[1] दोष° न° प×ख्यै°[2] राय[3]। (३)
बकसि[1] नरिंद बोलव्यउ*[2] साहि ॥(४)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा] "हे राजा, तू सामर्थ्य का धीर (सामर्थ्यवान) है। (२) सर्ग (मोक्ष) तथा अर्थ—सभी, हे वीर, तू जानता है: (३) हे राजा, अर्थी (अर्थाकांक्षी, याचक) [बार-बार माँगने में भी] दोष नहीं देखता है; (४) [इसलिए मैं तुझ से पुनः याचना करता हूँ,] तू [वचन] बख्श (दे); शाह ने बुला भेजा है।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
× चिह्नित अक्षर अ. में नहीं है।

( )–(१) १. मो. चुपी (= चउपई), धा. चउपई, अ. फ. छन्द, ना. स. चौपई, शा. चौपाई । २. इन दो पंक्तियों का पाठ विभिन्न प्रतियों में निम्नलिखित है :

मो. ना. : तुं (तू–ना.) राजा सामथंह वीर (समरथ अरु धीर–ना.) ।
सर्ग अर्थ जानहि (जानि = जानइ–मो.) सह (साहि–ना.) वीर ।

धा. : अर्थ धर्म तू ... ... न।
सुर्ग अर्थ जिम अर्थ लीन।
शा. स. : तू राजा समरथ्थ सुजान।
सुरग अरथ जानहि सज्ञान।
अ. फ. : राज दान समर्थ सु (स–फ.) किन्नौ।
स्वर्ग अर्थ जस रु जु लिन्नौ।

(३) १. मो. अथ्थी, धा. अस्ति, अ. फ. अर्थी, ना. अर्थ, शा. स. अरथी। २. अ. यति, फ. पश्यति ना. देखै, शा. स. पुछिय। ३. धा. राइ, अ. रावो, फ. राओ।

(४) १. म. बगसि। २. धा. मो. बुल्यो बोलीउ (= बोलिअउ), अ. बोलव्यव, फ. बोलविउ (< बोलव्यउ), ना. बुलायौ, शा. स. बुलाऊं। ३. मो. ना. शा. स. साहि (साह–शा.), धा. साइ, अ. सायौ, फ. साओ।

टिप्पणी—(२) सह=समस्त। (३) अथ्थी < अथिन्। (४) बकस < बख्श [फ़ा०] = दे।

[४०]

कवित— तबहि[१] चंदु विरदिआ*[२] साहि अग्गइ[३] कर[४] जोडइ। (१)
क्रपन[१] गंठि जिम साहि[२] राज अब[३] गंठि न[४] छोरइ[५]। (२)
नट[१] नकार नहि करइ[२] जाउं जिहि[३] आस छोडि[४] तप[५]। (३)
अदभुत[१] रस[२] सुरतांन[३] जाय मुक्कि न बहु अरप[४]। (४)
छंडउ*[१] सु लोभ[२] जिअ जंमु कहु[३] अब अतीव[४] अंतर रहउ*। (५)
फुरमान साहि सत्तहु वधउ*[१] विन फुर मानन सर[२] गहउ*[२]॥ (६)

अर्थ—(१) तब बिरदिया चंद शाह (शहाबुद्दीन) के आगे हाथ जोड़ [कर कह] ने लगा, "(२) कृपिण की गाँठ के समान, हे शाह, राजा अब [मन की] गाँठ नहीं खोल रहा है। (३) वह नट-नकार (अस्वीकार) भी नहीं करता है, कि जिससे मैं [उसकी] आशा छोड़कर तपस्या के लिए चला जाऊँ। (४) एक अद्भुत रस [उपस्थित] है, जिसको बहुत अल्प भी छोड़ते नहीं बन रहा है। (५) उसने जीव और जन्म (जीवन) का लोभ छोड़ दिया है, [इसलिए] अब [पहले की तुलना में] अतीव अंतर पड़ गया है; (६) [वह कहता है,] कि शाह के फरमान से ही वह सातो घड़ियालों को वधेगा (वेधेगा), और बिना [शाह के] फ़ुरमान के शर भी नहीं ग्रहण करेगा।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. शा. स. तब सु। २. मो. बरदीआ, धा. तथा शेष में 'बरदाइ'। रचना में अन्यत्र बिरदिया ही आया है, यथा, २. २९, ३. १, ५. १९, ८. ११, ८. १४। ३. मो. आगि (= आगइ), धा. 'अग्गइ' शेष में 'अगौ'। ४. फ. करि। ५. मो. जोडि (= जोडइ), धा. जोरइ, शेष में 'जोरै'।

(२) १. धा. फ. ना. क्रिपन। २. धा. दान जिम साहि, मो. गंठि जिम साहि, अ. दान निमि गंठि, फ. दान निम गंठि, ना. कंठि जिमसाहि। ३. अ. फ. हिय। ४. मो. गंठ न, ना. गंठनि। ५. मो. छोरि (छोरइ), शेष में छोरै।

(३) १. धा. अ. फ. नटि, मो. तथा शेष में 'नट'। २. मो. करि (= करइ), धा करइ, ना.

टिप्पणी—(५) जंम < जन्म=जीवन।

करहि, शेष में 'करै'। ३. फ. यिह। ४. मो. छोरि, धा. छोडि, अ. फ. ना. छंडि। ५. शा. स. तब।

(४) १. धा. मो. अद्वुद, शेष में 'अद्भुत'। २. मो. रिस, शा. सस, शेष में 'रस'। ३. ना. शा. स. असमान। ४. मो. जाय मुकि न बहु अरप, धा. ना. जाइ मुक्यो (मुक्यौ–ना.) न बहु अप, अ. फ. सु (सो–फ.) जु मुक्यौ न जाइ अप, शा. स. जाइ मुक्यौं न धन अब।

(५) १. मो. छंडू (< छंडुं = छंडउ?), धा. छड्यो, ना. शा. स. छड्यौ, अ. फ. छंडे। २. मो. ना. शा. स. सुलोभ, धा. सलोभ, अ. न मोह। ३. मो. जसु कहुं, धा. जनम को। ४. मो. अव अंब, धा. अब अमेव, अ. फ. अवै तेव, ना. अब अतीव, शा. स. अबर (और–स.) अतिव। ५. मो. रहु (= रहउ), धा. अ. फ. रहै, ना. रहुं (= रहउ)।

(६) १. मो. सतहु बधु (= बधउ), धा. सत्त बधइ, अ. फ. सतौ (सातौ–अ.) विधे, ना. सत्तहि बधु (= बधउ), शा. स. सत्तहि बधौं (बेंधौ–स.)। २. ना. निकरि, ३. मो. गधु (< गहुं = गहउ), धा. अ. फ. गहै, ना. स. गहै, ना. गहुं (= गहउं), शा. स. गहौं।

टिप्पणी—(५) जंम < जन्म।

[४१]

कवित्त— झुकि ततार षां उटउ*१ भट्ट जीअन पर रूठउ*२। (१)
पातसाहि१ गोरी नरिंद अग्गइ२ भयु३ जुठउ*४ ।‡(२)
तस१ सुभरि२ घटिआल अग्र बिन इकु३ न विंधिइ४। (३)
मरद सु मुष उच्चरइ*१ जि कछु२ अग्गइ*३ सब सधिइ*४। (४)
फुरमान साहि तुहि१ तिन्न दिय२ जउ*३ चहुआनइ*४ होइ कल। (५)
एह१ बान एह* सिंगिनि धरिय२ इह३ घरियार न विंधि× बल४॥ (६)

अर्थ—(१) ततार षां [यह सुनकर] झुक उठा—रुष्ट हो उठा, [और कहने लगा,] "हे भट्ट तुम अपने जीवन पर रूठ गए हो। (२) [ऐसा लगता है], तुम बादशाह गोरी नरेंद्र के आगे झूठे पड़े हो, (३) क्यों कि अग्र (बाण के अग्रभाग) के बिना एक भी सुभर घड़िआल नहीं बिंधेगा; (४) मर्द वह है जो मुख से जो कुछ उच्चारण करे आगे उस सब को साध सके। (५) शाह ने तुझे तीन फरमान दिए, यदि चहुआन (पृथ्वीराज) को [इतने से भी] कल (इतमीनान) हो; (६) यह बाण है और यह सिंगिनी [भी] रक्खी हुई है; [वास्तविकता यह है कि] इन घड़ियालों को बेधने का बल [पृथ्वीराज में] नहीं है।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।
× चिह्नित शब्द शा. में नहीं है।

(१) १. मो. झुकि ततार षान ऊठु (ऊठउ), धा. अ. फ. झुकि ततार षां कह्यो, ना. शा. स. तब ततार झुकि (झषि–ना.) उठ्यौ। २. मो. भट्ट जीअन पर रूठ्यु (= रूठ्यउ), धा. भट्ट जीवन पर तुट्ठउ, अ. फ. भट्ट जीवन (जीउधु–फ.) असुरत्तौ, ना. शा. स. भट्ट जीवन पर रूठौ (परि रुठ्ठौ–ना.)।

(२) १. बादिसाह, मो. पातसाहि। २. मो. आगइ, धा. अग्गइ, शेष में 'अग्ग'। ३. मो. भयु, धा. भउ, शेष में 'भयौ'। ४. मो. जुठु (= जुठउ), धा. जुट्ठउ, शा. जुठौ, शेष में 'झुट्ठौ'।

(३) १. मो. तस, धा. ना. शा. स. सत, अ. फ. तउ। २. मो. सुमरि धरिआल, अ. फ. सुभट धरियार धा. तथा शेष में 'सुभट धरियार'। ३. धा. ऐकु, ना. अग्ग, मो. तथा शेष में 'इक्कु'। ४. मो. सिधीइ धा. सिद्धइ, अ. फ. सिद्धें, ना. संधीय, शा. स. सिद्धिय।

(४) १. मो. सुमुष उच्चरि (उच्चरइ), धा. ज सुषि उच्चरहि, अ. फ. जु सुष उच्चरें, ना. जेह सुष उच्चरहि, शा. स. सु सुष उच्चरे। २. मो. ति कछु, धा. अ. जु कछु, फ. जु कुछ, ना. शा. स. होइ। ३. मो. आगि (=आगइ), शा. अग्ग धा. तथा शेष में 'अग्गे'। ४. मो. सव सधीइ, धा. सव सिद्धइ, अ. फ. सव सिद्धें, ना. शा. स. सो सिद्धिय।

(५) १. ना. तुइ। २. मो. तिन दीध (=दिय), धा. तिन्न दिय, अ. फ. तीन दियें, ना. शा. स. तौ नहीं। ३. मो. जु (= जउ), धा. जइ, ना. जं, शेष में 'जउ'। ४. मो. चहुआनि (= चहुआनइ), धा. फ. शा. स. चहुआनहि, अ. चहुवान नहि, ना. चहुवान न।

(६) १. मो. एह, धा. अ. फ. इय, ना. शा. स. इह। २ मो. ना. शा. स. पेह (एह—ना. शा. स.) सीगनि (सिगिनि—ना. शा. स.) धरिय, धा. इयं सिगिनिय धरि, अ. फ. इय (इयं—फ.) धर सगिनि (सिगुनि—फ.)। ३. म. इह, धा. इन, अ. फ. वेनि, ना. ए। ४. मो. न विधि वल, धा. न विधहि वल, अ. फ. निविद्ध तल (वल—फ.), ना. स. न विद्धे (विद्ध—ना.) वल।

टिप्पणी— (४) मरद < मर्द [फा०] = पुरुष।

[४२]

कवित्त— भयउ*[१] चंदु मुष[२] चंदु दंदु[३] गयु*[४] काम सपत्तउ*[५]। (१)
पातिसाहि[१] गोरी नरिंद दिन्नउ*[२] बोल निरत्तउ*[३]। (२)
बहुरि[१] चंद बरदाइ[२] फिरिव[३] राजन प्रति आयउ*[४]। (३)
जु[१] कछु तंतु कउ*[२] मंतु अंत कहि कहि समुझायउ[४]। (४)
मइं[१] दियउ*[२] दान चिंता म करि[३] जा*[४] होइ चंदु सहइ*[५] निरति[६]। (५)
फुरमान काजि[१] अग्गइ[२] षरउ[३] देहि साहि मंगइ[४] नृपति। (६)

अर्थ—(१) चन्द बरदाई का मुख [प्रसन्नता से] चंद्रमा [के समान] हो गया, [उसका] द्वन्द्व चला गया और [उसकी] कामना संप्राप्त हो गई, (२) [क्यों कि] बादशाह गोरी नरेन्द्र ने स्पष्ट वचन दे दिया। (३) तदनन्तर चन्द बरदाई लौट कर राजा (पृथ्वीराज) के पास आया, (४) और जो कुछ तत्व का मंत्र था, उसका अन्त (रहस्य या मर्म) कह-कह कर समझाया। (५) [राजा से उसने कहा,] "मैंने [तेरी ओर से बिना तेरे कहे ही वचन का] दान दे दिया है; तू चिन्ता न कर; चन्द के शब्द (वचन में) तुझे यावत (निश्चयपूर्वक) निरति (ममता, तल्लीनता) हो (६) फुरमान देने के लिए [शाह] आगे खड़ा है; तू, हे राजा, माँगे तो शाह दे।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मयु (=मयउ), शेष में 'भयो' या 'भयौ'। २. अ. फ. मन। ३ दद्दु फ. इंदु, शेष में 'दंदु'। ४. मो. ग्यु (< गयु=गयउ), धा. गउ, अ. फ. गय, ना. गौ। ५. ना. सपत्तु (= सपत्तउ), धा. सपत्तउ, शेष में 'सपत्तौ'।

(२) १. धा. पातिसाहि, मो. पातसाह, शेष में 'पातिसाहि'। २. मो. दीउ (= दिन्नउ), धा. अ. फ. शा. दिय, स. दियौ, ना. तव। ३. निरत्तु (= निरत्तउ), धा. निरत्तउ, अ. फ. ना. निरुत्त (निरत्तौ—अ.)।

(३) १. मो. बहुरि, धा. ना. शा. स. तबहि, अ. फ. फिरिब। २. मो. बरदाय। ३. मो. फिरत, धा. फिरिवि, अ. फ. बहुरि। ४. मा. आयु (= आयउ), धा. आयो, शेष में 'आयौ'।

(४) १. मो. जु, ना. जो, धा. तथा शेष में 'जु'। २. फ. कुछ। ३. मो. कु (= कउ,) धा. को, शेष में 'कौ'। ४. मो. समुझाउ (= समुझायउ), धा. समुझायो, फ. समझायौ, शेष में 'समुझायौ'।

(५) १. मो. मिं (= मइं), धा. मइं, शेष में 'मैं'। २. मो. दीयु (= दियउ), धा. दियो, शेष में 'दियौ'। ३. मो. म करि, धा. न कर शेष में 'न करि'। ४. मो. या (= जा), यह शब्द और किसी में नहीं है। ५. मो. सद्धि (= सद्दइ), धा. ना. स. शा. सद्दे (सद्दें—ना. स. शा.), अ. फ. सद्दह। ६. मो. नरति, धा. ना. शा. स. निरति, अ. फ. अरति (अरितु—फ.)।

(६) १. मो. धा. ना. काजि, अ. काज, फ. कज, शा. स. कज्ज। २. मो. आगइ, धा. अग्गइ, शेष में 'अग्गैं'। ३. मो. धरु (= धरउ) धा. धरउ, शेष में 'धरौ'। ४. मो. मंगि (= मंगइ), धा. मगइ, शेष में 'मंगे'।

टिप्पणी— (१) दंदु < द्वन्द्व। सपत्त < संप्राप्त। (२) निरत्त < निरक्त (?) = स्पष्ट। (४) तंत < तत्व। मंत < मंत्र। (५) जा < यावत्। सद < शब्द।

[४३]

दोहरा— सपत धात[1] घरिआर[2] घन[3] पंच धत्त[4] हनि जांन[5]। (१)
कठिन कम्म[1] गोरी हनन[2] अप्प देत[3] फुरमांन[4] ॥ (२)

अर्थ—(१) [चंद ने पृथ्वीराज से कहा,] "सप्त धातु के सघन घड़ियालों को यदि तुमने मार (वेध) दिया, तो [अपने] पंच-धातु (पंच तत्वों) को मानो मार दिया [और तुम मुक्त हो गए]; (२) [यह जान लो कि] गोरी को मारना कठिन कर्म है; वह स्वयं फ़रमान दे रहा है।"

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. धत्त, ना. धात। २. मो. घरिआल, शेष में 'घरियार'। ३. अ. फ. बित (बितु—फ.), ना. घन। ४. अ. फ. तत्त, ना. शा. स. धात (धातें—ना.)। ५. अ. फ. जाम।

(२) १. धा. कम्म, शेष में 'काम'। २. धा. गोरिय गहन, मो. ना. शा. स. गोरी हनन, अ. फ. गोरी बहन। ३. मो. ना. शा. स. देत, धा. देइ, अ. फ. देहि। ४. मो. फरमान।

टिप्पणी—(१) धत्त < धातु। (२) कम्म < कर्म्म। अप्प < आत्म = आप।

[४४]

दोहरा— सुणित राय[1] कहि चंद सउं*[2] गत्त रष्षि तुंहि प्रांन[3]। (१)
हनउं*[1] साहि घरिआर सउं[2] जउ[4] अप्फइ[5] बिय बांन ॥ (२)

अर्थ—(१) यह सुनकर राजा ने चंद से कहा, "[शाह के वध तक] गात्र में प्राणों को तुम रखना—प्राणों की रक्षा तुम करना; (२) यदि [शाह] दो बाण अर्पित करे (दे), तो मैं शाह को घड़ियालों के साथ मार दूं।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. सुणित राय, धा. फुनि राजन, अ. फ. फुनि राजा, ना. फुनि पृथिराज, शा. स. फेरि

रान। २. मो. कहि चंद सं, धा. कह चंद पं, अ. फ. कहि चंद सौ, ना. कहि चंद सुं (=सउं), शा. स. इह वत कहि। ३. मो. गत (=गात्त) रषि (=रक्खि) तुंहि प्रांन, धा. सत रक्खियहि प्रान, अ. फ. सत रष्यौ हिय प्रान, ना. गनि रषिहि यह प्रवान, शा. स. वरक्खिय दे वर कान।

(२) १. मो. हनुं (हनउं), धा. ना. शा. स. हनौं, अ. हन्यौ, फ. हनौ। २. धा. अ. फ. रिपू, शेष में 'साहि'। ३. धा. घरियार सउं, मो. घरिआल सुं (=सउं), अ. फ. घरियार सौं (स्यौं–अ.), ना. घरियार सुं (=सउं), शा. स. घरियार सौं। ४. मो. जु (=जउ), धा. जउ, शेष में 'जौ'। ५. मो. अफि (=अफइ), धा. अप्पइ, अ. अप्फै, फ. ना. अप्पै, शा. स. अप्पौ।

टिप्पणी—(१) गत्त < गात्र। (२) सउं < समन्=साथ। अफ्फ < अर्पय्।

[४५]

कवित— एक बांन चहुआंन[१] राम[२] रावन उथ्थप्पउ*[३] ।+(१)
एक बांन चहुआंन करन[१] सिर अरजन[२] कप्पउ*[३] ।(२)
एक बांन चहुआंन त्रिपुर सिर संकर वध्धी[१] ।(३)
एक बांन चहुआंन ममर[१] लष्षन[२] पारध्धी[३]।[४](४)
सोइ एकु* बान संभरिधनी[१] बिअउ* बांन नह संधियै*[२] ।(५)
घरिआर एक लग मोगरिअ[१] एक बार नृप दुक्कियै[२] ॥(६)

अर्थ—(१) "[चंद ने कहा,] एक ही बाण से, हे चहुवान, राम ने रावण को उत्थापित (समाप्त) किया; (२) एक ही बाण से, हे चहुवान, कर्ण के सिर को अर्जुन ने काट दिया; (३) एक ही बाण से, हे चहुवान, त्रिपुर के सिर को शंकर ने वेधा; (४) एक ही बाण से, हे चहुवान, भ्रमर का लक्ष्मण ने शिकार (संहार) किया; (५) इसी प्रकार एक ही बाण, हे साँभरपति, तुम्हें मिला है, दूसरे बाण का संधान न करो; (६) एक घड़ियाल पर मुँगरी पड़ रही है; एक बार, हे राजा, भागो (प्रयत्न करो)"।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
+ चिह्नित चरण अ. में नहीं है।

(१) १. धा. ना. इक्क बाण चहुवाण, मो. शा. स. एक बान चहुआन, अ. फ. ना. इक बान चहुवान [और इसी प्रकार बाद के चरणों में भी]। २. मो. रामि, शेष में 'राम'। ३. मो. उथपु (=उथपउ), धा. उथ्थप्पिय, अ. उथ्थप्यौ, फ. सिर थप्यौ, ना. उथ्थप्पे।

(२) १. मो. करन, धा. करण, अ. फ. कर्ण, शा. स. कन्न। २. मो. अरजन, धा. तथा शेष में 'अर्जुन'। ३. धा. कप्पिय, मो. कपु (=कपउ), अ. फ. कप्यौ, ना. कप्पे।

(३) १. मो. ना. शा. स. त्रिपुर सिर संकर (संकरि–मो.) वधी (विद्धिय–ना. शा. स.), धा. कन्ह सिर बहुर न संधिय, अ. फ. ति (तिषि–फ.) संकर जिम सद्धिय।

(४) १. अ. मवर, फ. मउर, शा. स. भ्रमर। २. ना. लषमण। ३. मो. पारधी, धा. तथा शेष में 'पारध्धिय'। ४. मो. में यहाँ और है। एक बान बाना संकन सर बहुरिन संधी। (तुल० चरण ३)।

(५) १. मो. सोइ एको (< एकु), (सो इक—धा. अ. फ. शा. स.) बान संभरि धनी (धणिय–धा.), ना. सो संधाण बाण तुम कर चढ़े। २. मो. बीउ (=बिअउ) बान नइ संधीइ (=संधियइ), धा. अ. फ. बीउ (=बिअउ, बियो–अ. फ.) बार नहु जंपियइ (जंपियै–अ., जंपियौ–फ.), शा. स. बियौ बान नहि दुक्कियो, ना. सुकवि चंद सच्चो च [वं]।

(६) १. मो. परिआर एक लग मोगरिअ, धा. अ. फ. परिहार इक्क इक मुग्गरिय, ना. चहुआन राण सँभरि धनी। २. मो. एक बार नृप ढुकीयै (< ढुकिय), धा. इक बार त्रिप ढुकयइ, शा. स. इक्क बान नृप ढुक्किय, ना. मम चुक्कसि मोटै तवं।

टिप्पणी—(२) कप्प < कृप्=काटना, छेदना। (३) बधना=वेधना। (४) पारद्धि < पापर्द्धि=शिकारी। (५) मोगर < मग्गर < मुद्गर। (६) ढुक्क < ढाक्=लगना, प्रवृत्ति करना।

[४६]

कवित— प्रथमि राज[1] कंमान[2] बांन[3] द्रिढ मुट्ठि गहहि कर[4]। (१)
जिन[1] विसमउ*[2] मन[3] करहि करहि+[4] भुअपत्ति अप्पु बर। (२)
जि[1] कछु[2] दिअउ*[3] कयमास*[4] किअउ*[5] अप्पनउ सु पायउ*[6]। (३)
सोइ[1] संभरी नरेसु[2] तुंहि ज[3] अम्मरपुर[4] आयउ*[5]। (४)
विधना[1] विधान मेटइ*[2] कवन दीन मान दिन[3] पाइयइ[4]। (५)
सर एक[1] फोरि[2] संभरिधनी[3] सत्तहि सबुद[4] गमाइयइ[5]॥ (६)

अर्थ—(१) "हे पृथ्वीराज, हाथों में कमान (धनुष) और बाण दृढ़ मुट्ठी करके ग्रहण कर; (२) तू मन में विस्मय न कर; हे भूपति, तू आत्म बल कर; (३) कैमास को जो कुछ (प्राणदंड) तू ने दिया था, वह अपना किया तुझको भी मिल गया; (४) वही अमरपुर (स्वर्ग), हे साँभर-नरेश, तुझे भी प्राप्त हो रहा है। (५) विधाता का विधान कौन मेट सकता है? दिए हुए के बराबर (अनुसार) ही दिन (जीवन) में [मनुष्य को] मिलता है। (६) हे साँभरपति, एक शर से फोड़ कर शत्रु के शब्दों को नष्ट कर दे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. प्रथमि राज, धा. प्रिथीराज, अ. फ. पुथियराज, ना. प्रथम राज। २. धा. कम्मण, फ. चहुवान। ३. धा. पान। ४. मो. अ. फ. शा. स. द्रिढ (ढिढ—अ. फ.) मुठि (सुठ्ठ—फ.) गहहि (गहिय—शा. स.) कर, धा. मुठि बाण गहे करि, ना. दिढ मुठि गहहि करि।

(२) १. धा. जिणि, मो. जिन, ना. जनि। २. धा. विसमउ, मो. विशमु (=विशमउ), शेष में 'विसमौ'। ३. अ. फ. न। ४. धा. करइ करइ, मो. ना. शा. स. करहि करहि, अ. धरइ (धरैं—फ.)।

(३) १. मो. अ. जि, धा. ना. ज, फ. शा. स. जु। २. अ. किछु। ३. मो. कहिअ (=कहिअउ), धा. तथा शेष में 'दियौ'। ४. मो. किमास (=कयमास), धा. कैमास, शेष में 'कैमास' या 'कैबास'। ५. मो. कीउ (=किअउ), धा. कर्‌यो, शेष में 'कियो' या 'किया'। ६. मो. आपनु (= आपनउ) सु पाउ (= पायउ), धा. अ. फ. अप्पणो (अप्पनो—अ. फ.) जु पायो, ना. अपनो सोइ, शा. स. अप्पनो सु।

(४) १. अ. फ. हुनि, शा. सोव। २. ना. सहाय। ३. अ. फ. ताहि। ४. ना. अमरापुरि। ५. मो. आयु (= आयउ), धा. आयो, शेष में 'आयो' या 'आयौ'।

(५) १. मो. विधिना, धा. तथा शेष में 'विधना'। २. मो. मेटि (= मेटइ), फ. ना. शा. स. मेटै, धा. अ. मिट्टै। ३. मो. रिन, धा. स. दिन, अ. फ. फल, शा. द्रिन। ४. मो. पाइई, (= पाइअइ < पाइयइ), धा. फ. शा. स. पाइयै, अ. पाइयइ।

(६) १. मो० ना. एक, धा. अ. फ. ना. इक्क। २. स० फौज। ३. धा. सिंभर धणिय, शेष में 'संभरि धनी'। ४. मो. सत्तहि सबुद, धा. सत्त, अ. फ. रात्त, ना. मध्य, शा. स. जुग्ग। ५. मो. गमाइ्ह (= गमाइइइ < गमाइयइ), धा. गमाइयै, अ. गवाइयंह, फ. गंवाइयें, शा. स. रहाइयैं।

टिप्पणी—(१) प्रथमि < पृथ्वी। (३) विसमउ < विस्मय। भुअपत्ति < भूपति। अप्प < आत्म। (६) सत्त < शत्रु। सबुद < शब्द।

[४७]

दोहरा— इलि घसि[१] पांनि पविष्ट[२] किय सिंगिनि[३] सर गुन[४] बंधि। (१)
चरचि[१] चंद मुख[२] चंद भयु[३] मलिय[४] राज मन[५] संधि॥ (२)

अर्थ—(१) इला (भूमि) पर [पृथ्वीराज ने] हाथों को घिसकर [जिससे उनकी चिकनाहट दूर हो जावे और सिंगिनी और बाण कसकर पकड़े जा सकें] उनमें सिंगिनी और शर को प्रविष्ट किया और गुण (ज्या) बाँधी; (२) [यह देखकर] चन्द का मुख चर्चित हो कर चन्द्र [का-सा] हो गया, और राजा के मन की संधि (शंका) मलिन हुई।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. तवहि ज़ु। २. अ. फ. ना. प्रविष्ट, धा. पविस्ट, मो. पविष्ट। ३. मो. सींगनि, फ. संगन, शेष में 'सिंगनि'। ४. मो. गुरु, धा. गुण, शेष में 'गुन'।

(२) १. धा. बरजि, मो. चरचि, फ. चरवि। २. धा. मुखि, मो. मुख अ. फ. मन। ३. मो. भयु, धा. भउ, अ. फ. भौ, ना. शा. स. भय। ४. धा. अ. फ. मिली, मो. मलिय, ना. शा. स. मिलिय। ५. अ. मनि, ना. मनु।

टिप्पणी—(१) इल < इला = पृथ्वी, भूमि। पविष्ट < प्रविष्ट। (२) मलिअ < मलित = मलिन। संधि = छिद्र, विवर (शंका)।

[४८]

कवित— भयउ*[१] एक[२] फुरमान[३] एक बानह ×गुन×[४] संधउ*[५]×। (१)
सोइ सबद अरु बांन अग्ग× अग्गइ* खल बंधउ[१]*। (२)
भयउ*[१] बीअ[२] फुरमान षंचि रष्षिअउ* श्रवन पर[३]। (३)
तीअउ* ×सबद× सुनंत×[१] सुनउ सुरतान परउ* धर[२]। (४)
लगि दसन रसन[२] दस रुंधिअउ*[३] विहु× कपाट× बंधे× सघन×[४]। (५)
धरि परउ* साहि पां पुकरउ*[१] भयउ*[२] चंद राजहि[३] मरन×॥ (६)

अर्थ—(१) एक (प्रथम) फ़रमान हुआ तो [पृथ्वीराज ने] एक बाण गुण (ज्या) से साँधा; (२) उसी शब्द और उसी बाण ने आगे-आगे [चलकर] खल (शहाबुद्दीन) को बाँध दिया। (३) दूसरा फ़रमान हुआ तो पृथ्वीराज ने [बाण को] कानों पर खींच कर रक्खा। (४) तीसरा शब्द (फ़रमान) सुनते ही सुना गया कि सुल्तान धरा पर गिरा। (५) रसना दाँतों से लग गई, [शरीर के] दस द्वार रुँध गए (अवरुद्ध हो गए), दोनों कपाट (ओष्ठ) सघन रूप से बँध

गए, (६) उन्होंने पुकारा कि शाह धरती पर गिर पड़ा है [इसके अनन्तर] चन्द कहता है राजा का मरण हो गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. भयु (= भयउ), धा. भयो, शेष में 'भयौ'। २. मो. ना. शा. स. एक, धा. अ. फ. इक। ३. मो. फरमान, धा. तथा शेष में 'फुरमान'। ४. मो. एक बानह गुन, धा. इक बान जिगुन, अ. फ. इक बानहि गुन, ना. तो इक–, शा. स. इक जोगिनपुर। ५. मो. संधु (=संधउ), धा. सज्जिउ, शेष में 'संध्यौ'।

(२) १. मो. अग्र अधि (अग्रह) चलु बधुं (= बंधउ), धा. अ. फ. अग्ग (अग्र–अ. फ.) अविचल करि वज्जिउ (बंध्यौ–अ. फ.), ना.–गगह चलु बंध्यौ।

(३) १. मो. भयु (= भयउ), धा. भयो, शेष में 'भयौ'। २. धा. मो. ना. बीअ, (बीअ–धा.), ना. णीक, शेष में 'बियौ'। ३. मो. रषीउ (= रष्षअउ) श्रवन पर, धा. अ. फ. पंचि रष्यो श्रवणनि (श्रवननि–अ. फ.) वर (वरु–फ.), ना. पंचि रष्यौ श्रवननि पर, शा. स. पंचिरष्यो श्रवनंतरि (श्रवनतर–शा.)।

(४) मो. तीउ (= तीअउ) सबद सुनत, धा. तीय सबद सुणि निसुणि, अ. फ. भयौ तियौ फुरमानु, शा. स. भयौ तियौ अनभयौ (न भयौ–शा.)। २. मो. सुन (< सुनु=सुनउ ?) सुरतान परु (= परउ) धर, धा. हुण्यो सुल्तान परयो धर, अ. फ. परयौ सुरितान आनि (आनु–फ.) धर (धरि–फ.), ना. हन्यौ सुरतान परयौ धर, शा. स. परयौ पातिसाहि धरतरि (धरंतर–शा.)।

(५) १. मो. े (< लि = लइ), धा. लइ, अ. फ. लगि, ना. लै। २. धा. दसण रसण, शेष में 'दसन रसन'। ३. मो. दस रुंधीउ (= रुन्धिअउ) भयु (= भयउ), धा. दस रंध्र हुइ, अ. फ. बहु ंध (रंधु–फ.) हुव, शा. स. तालुअ सघन, ना. रस रुन्धियौ। ४. मो. छहू (< बिहू) कपाट बंधि (=बंधे) सघन, धा. बहु कपट बिधिग सघण, अ. फ. बिहु (बिहौ–फ.) कपाट रुन्ध्यौ सरन, शा. स. सीस फट्टि (फुटि–शा.) दह दिसि गवन।

(६) १. मो. धरि परु (= परउ) साहि पां पीकरौ (< पुकरु=पुकरउ), धा. अ. फ. सुलताण (सुरितान–अ. फ.) परयो पां पुकरयो (पुक्करयौ–अ. फ.), ना. शा. स. सुलतान (सुरतान–ना.) परयो पां पुकरै। २. भयु (= भयउ), धा. तदिन, अ. फ. शा. स. भयौ। ३. मो. राजहि, शेष में 'राजन'।

टिप्पणी—(३) बीअ < द्वितीय। (५) बि < द्वि। रुन्ध < रुध्।

[४६]

कवित— मरन चंद बिरदिआ[१] राज धुनि साह हन्यउ सुनि[२]। (१)*
पुहपंजलि[१] असमान[२] सीस छोड़ी[३] त देवतनि[४]। (२)
मेछ अवध्धित[१] धरणि धरणि+ नवत्रीय[२] सुहस्सिग[३]। (३)
तिनहि तिनहि[१] सं जोति जोति जोतिहि[२] संपत्तिग[३]। (४)
रासउ[१] असंभु नवरस सरस छंदु[२] चंदु किअ अमिअ सम। (५)*
शृंगार वीर करुणा बिभछ[१] भय अदभुत्तह संत सम[२]॥[३] (६)

अर्थ—(१) चंद बिरदिया कहता है, राजा के मरने और शाह के मारे जाने की ध्वनि सुनकर (२) देवताओं ने आकाश से [राजा के] सिर पर पुष्पांजलि छोड़ी। (३) जो धरणी म्लेच्छों से

आबद्ध हो गई थी, अब नव स्त्री के समान हँस पड़ी। (४) तुग (शरीर के भौतिक तत्व) तुणों (भौतिक तत्वों) को तथा ज्योति (जीव) ज्योति (परमात्मा) को सप्राप्त हुए। (५) यह अपूर्व 'रासो' नव रसों से सरस है, इसके छन्दों को चंद ने अमृत के समान किया (बनाया) है। (६) यह [प्रमुख रूप से] शृंगार, वीर, करुणा, वीभत्स, भय, अद्भुत और शान्त रसों से युक्त है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. बरदीआ, अ. फ. धा. स. बरदाइ, ना. विरदीय। २. मो. साह इन्युं (=इन्यउ) सुनि, अ. फ. सुनिय साहि हनि (हनु–फ.), ना. साहि हन्यौ सुनि।

(२) १. मो. पुष्पांजलि, अ. फ. धा. स. पुहपंजलि। २. ना. असनान। ३. मो. छोड़ि, ना. छोड़िय, शेष में 'छोड़ो'। ४. अ. फ. सुदेवतनि (सुदेवति–फ.), ना. देवदत्तनि।

(३) १. फ. ना. अवधति। २. अ. फ. नव नृप्प, ना. नव छत्र, धा. स. सब भीय। ३. अ. फ. सोहसिग।

(४) १. मो. तिह्नी, शेष में 'तिनहि'। २. मो. योति योति योतिहि (=जोति जोति जोतिहि), ना. फ. जोति जोति जोतिहि, अ. जोति ज्योति ज्योतिहि। ३. धा. स. संपात्तिग।

(५) १. मो. रासु (=रासउ), शेष में 'रासौ', ना. सौ। २. मो. अ. ना. चंद, शेष में 'छंद'।

(६) १. मो. विभक्ष। २. मो. भअ (?) रुद्द सूत हसंत सम, ना. भय रुद्र अद्भुत संत श्रम। ३. धा. में इस पूरे छंद के स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं :—

सा ... ... भरण हु चंद नरिंद।
रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद॥

टिप्पणी—(२) पुहपंजलि < पुष्पांजलि। असमान < आसमान [फा.] (३) मेछ < म्लेच्छ। (६) विभछ < वीभत्स। संत < शांत। सम < समन् = साथ, युक्त।

अनुक्रमणिका
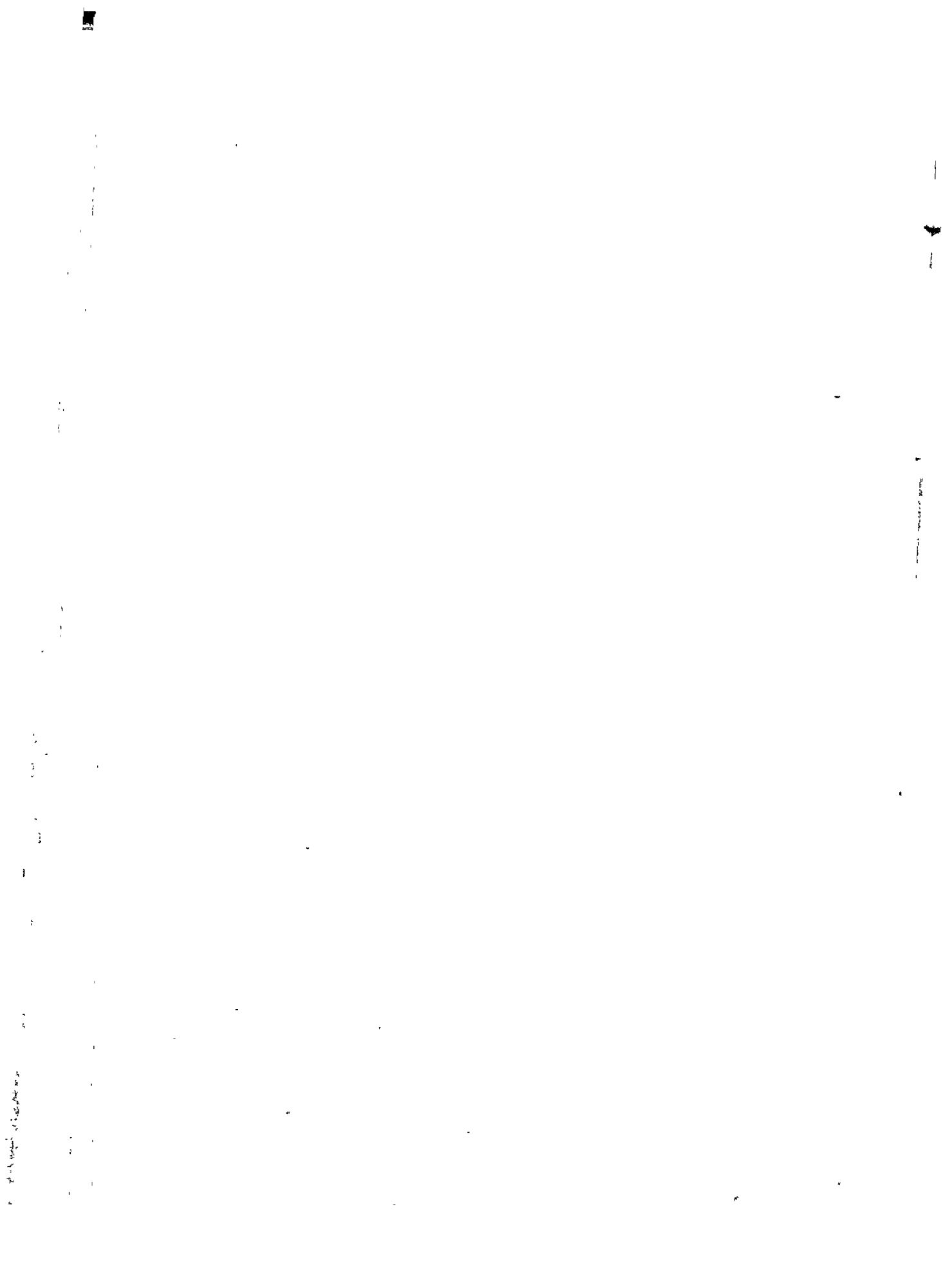
शब्दानुक्रमणिका

इसमें केवल उन्हीं शब्दों को सम्मिलित किया गया है जिन पर ग्रन्थ में टिप्पणियाँ दी गई हैं। संख्याएँ क्रमशः सर्ग, छन्द तथा चरण का निर्देश करती हैं।

अपु <आप=जल ४.२१.७

अपुव्व <अपूर्व ३.३३.१, ६.२२.२

अपूठ <अपुष्ट ३.१७.३३

अप्प <अर्पय्=अर्पित करना २.२१.३,३.३७.१

१०.१३.२,१०.२०.१,

१०.२२.१,११.९.४,१२.१.२

अप्प <आत्म १०.३६.१,१२.४३.२,१२.४६.२

अप्प <आत्मा ११.१२.२४

अप्पज्ज <अप्पउज्झ=आत्म-वश १०,२३.५

अप्पुव्व <अपूर्व ६.५.२७

अप्फ <अर्पय=अर्पित करना १२.४४.२

अब्भ <अभ्र=आकाश १२.६.१

अब्भिस् <अभ्यस्=अभ्यास करना १०,११.३८

अमग्ग <अमार्ग ८.२८.२

अमलत्तन <अमलत्व ४.११.१३

अमिअ <अमृत ८.३२.५

अमिय <अमृत ८.२३.३

अमीए <अमृत २.२०.१

अमु=उसको ६.१२.३

अम्भ <अभ्र=आकाश ५.३४.१,८.९.४,११.६.१

अय <अय्=आना २.२२.२

अयान <अज्ञान ३.१,१८

अयास <आकाश २.५,२४,३.११,१६,८.९.१६.

अरत्ति <अरति ८.९.१५

अरीत <अरिक्त ८.२२.४

अरेन <करेण=कर से ८.८.२

अरोह <अरुढ=मुक्त ४.२०.१८

अलष्ष <अलक्ष्य ५.३८.२५

अलुष्षि <अलक्ष्य ३.१०.१

अलुझ्झ <आरुढ ४.२०.२२,८.१४.५

अवगमन=अपसरण १२.१३.११

अवध्धि <आयुध ४.२४.३१

अवर <अपर २.१२.२

अवास <आवास ३.११.६,५.२९.२

असंभ <असंभूत=अपूर्व १०.२३.१,११.१०.२१

असंभु <असंभूत=अपूर्व ११.१०.१

असपत्ति <अश्वपति ११.१०.२१

असमान <आसमान [फा०]=आकाश १२.४९.२

असर <अ+स्मर=काम विहीन १०.२५.२

अस्तमन <अस्तमयन=अस्त होना ७.३.२

अस्सि <अश्व ८.१०.२५

अहारा <अक्खाडग <अक्ष+वाटक=अखाड़ा ६.५.१

अहिरम <अभि+रम्=क्रीड़ा करना २.२७.३

अहुट्टिय <अधिस्थित ७.२२.२

आ=वह २.१६.२

आइस <आदेश १०.१८.१

आउध <आयुध ६.५.६

आउरि <आवलि=पंक्ति १०.२२.२

आएस <आदेश ८.८.१

आगर <आगल <आ+कलय्=आकलन करना

२.१९.१

आप्त <आप्त=ज्ञानी पुरुष ६.२९.१

आदप्प <आदर्प=दर्पयुक्त ११.१०.१७

आन <अन्य ४.३३.४

आनि <अन्य ५.१० ४

आप <अर्पय्=अर्पित करना ३.४३.१.५.१३.११

आयस <आदेश ५.४.१,७.१२.२६,१०.१९.१,

आयास <आकाश ७.१७.२,८.११.५,८.२३.३

आयेसु <आदेश १०.२३.१

आर <आरओ <आरतस्=समीप में, पास में २.३.३

आलि <अड्ड [दे०]=अड़, हठ २.१३.१

आल <काल ६.३२.१

आल <आर्द्र ९.११.१

आवद्ध <आयुध ८.१०.१२

आवध्ध <आयुध ७.३०.२, ११.१२.९

आवर <आ+वृ=आच्छादन करना २.२०.४

आविधि <आयुध ७.३१.१५

आस <अश्व ६.५.१८

आहुट्ठ <अधिस्थित ७.२१.४

इंद <इन्द्र ३.३६.५,४.७.२,५.३१.२,६.२०.२,

६.१५.२

इस <अत्र=यहाँ ४.७.९

इतउ <इयत्=इतना २.११.१

इत्ती <इत्तिय <इयत्=इतनी २.१०.३

इयर <इतर ८.२८.४

इल <इला=पृथ्वी, भूमि १२.४७.१

उअर < उपरि=ऊपर ८.२९.४

उक <उक्क <उक्त=कथित ७.३१.२१

उक्कंठ <उत्+कण्ठा ३.१६.२

उक्ख [दे०]=हीन ७.१५ ५

उक्खको <उत्खिव> उत्खण्डित=उन्मूलित, उत्पाटित ७.१२.५
उक्खिलिय<उत्खण्डित=खिली २.५.३७
उग्ग<उत्+गम्=निकलना ५.३१.२
उच्च<उच्च=उत्तम ५.३४.१
उच्चाल=ऊँची या तीव्र चाल २.७.१०
उच्चासु<उच्चाश्व ७.६.६
उच्छ<तुच्छ=ओछा ३.१७.१३, ३.४१.२
उच्छह<उत्साह २.६.३
उछ<उच्छ<तुच्छ ४.११.६
उछंग<उत्सङ्ग=क्रोड, बाहुपाश ६.१५.८,८.२४.३
उज्जय<उद्यत ७.१०.१
उड्ड<ओड्र=उड़ीसा देश का ५.३८.१०
उण<पुण<पू=पवित्र करना १.३.८
उतस<उत्+आसय्=उत्पीड़ित करना १२.१३.८
उतिठ्ठ<उत्थित=उठी हुई २.१७.२
उत्त<उक्ति ५.१८.२
उत्तंग<उत्तुङ्ग ७.६.४७
उनव<उण्णअ<उद्+नम्=उन्नमित होना, उमड़ना ७.१२.२
उनहारि<अनुकार ५.१८.२,५.४८.२
उनिंद<उन्निद्र ७.६.१९
उन<ऊन=हीन ४.५.२
उन्नयउ<उन्नमित=उठा हुआ ९.५.१
उपट्ट<उत्पाटय्=उखाड़ना ८.२१.३
उपाअय्<उत्+पादय्=उत्पन्न करना १०.१.३
उप्पट<उत्+पत्=उमड़ना ११.१०.२
उप्पय<उत्पद्=उत्पन्न होना १०.२८.५
उभ<उब्भ<उर्ध्व=उठा हुआ ६.२०.१
उब्भ<उब्भ<ऊर्ध्व=उठा हुआ ६.११.१
उररि=चकरा १० ११.३७
उव्<उदय=उदय होना ५.१७.१
उवय<उदय ४.८.१,१२.१२.२
उविठ्ठ<उद्वेष्टित=बन्धन से मुक्त २.३.४०
उव्वार<उद्+वर्त्तय्(?)=उबारना ९.१४.४
उसासि<उच्छ्वास २:१०.७
एक मेग<एकमेक ११.१२,८
एग<एक ६.२२.९
एव<एवं=इस प्रकार २.७:२०
एर्=ग्रास करना, ग्रास कराना ५,७.४
एष<एषु=शर १०.११.१२
एस<ईदृक्=ऐसा ३.२६.१, ६.१०.२
ओलग्गी<ओलग्ग<अवलगिन्=सेवक, भृत्य ११.१२.५
कइ<कदा=कभी ८.३.६
कउतिग<कौतुक ७.४.१२, ७.२८.५
कंष<काङ्क्ष्=चाहना ५.२५.१
कंत<कान्त ३.४.४, १०.२५.१
कंति<कान्ति ५.१६.१, ९.३.१
कन<कंद ५.१९.४
कष्ष<कक्ष ३.२७ २
कग्गर<कागज़ [फा०]=पत्र १०.२४.१
कच्छ<कक्षा ४.१४.८
कज<कार्य ८.२३.२
कतान=क्षौम ४.२५.१६
कत<कति<कियत्=कितना ७.१७.३६
कत्त<कृत्=काटना, छेदना २.१७.१
कत्तरि<कर्तरी=कतरनी ४.१८.२
कथ्थ<कुत्र=कहाँ १२.३.२
कथ्थि<कथ्य=प्रशंसनीय ५.२२.२
कपट<कर्पट=कपड़ा ५.३४.१
कप्प<कल्प=काटना, छेदना १२.४५.२
कब्ब<काव्य ३.११.५, ३.२३.१, ३ २६.२, ४.१६.२
कमन<क्रमण=गमन ५,४१.२
कमलिय<कवलित ३.३३.६
कम्म<कर्म ३.३३.५, १२,४३.२
कयंद<कलिंद ३.१७.५
करवत्त<करपत्र=आरा २,५.३९
करार<कराल ४.४.१
करि<कलिका ५.२०.२
करेन<करेणु=हथिनी ६.१५.१२
कलत्र<कलत्र=स्त्री ३.३०.३
कलयंठ<कलकण्ठ=कोकिल २.५.१९
कलयंठि<कलकण्ठ=कोकिल २,५,२९
कलस<कलश ९.५.४
कलिंदी<कालिन्दी ४.२०,१७
कल्ह<कल्य=कल १२.१५.१४
कवित्तण<कवित्व ८ ८.६
कवियन=कविजन ४.१३.१,१२.१०.१

कविर<कपिश=भूरा, मटमैला १.६.१
कव्व<काव्य १.४.१५,२.१.१०
कह<कथा ८.२४.४
कहल<केलि ३.९.२
कहा<कथम्=क्या ६.३०.२
कहि<क्व, कुत्र=कहाँ ५.२६.१
काउ<कापोत=कपोत के रंग का ३.३४.१
काँदल<कन्दल=युद्ध ७.८.१९
कार<काल ६.५.७
किति<कीर्ति २.३.१६,३.२५.१,७.३१.२२
किन्न<किण्ण<कीर्ण ४.१.५
किम<कथम्=किस प्रकार १०.८.२
किरि<किल=ही १०.२४.२
किल<केलि ३.३६ ३
कीत<क्रीत ४.२० ३८
कुंज<कंचुकी ४.२५.११
कुडिल<कुटिल १०.१७.१
कुल्ल<कूल ७.१२.१३
कुफार<कुफ्फार [फा०]='काफिर' का बहु० ११.४४.२
कुसमेष<कुसुमेषु=कुसुम-शर १०.११.१२
कुहाव=गुथाना ४.२५.३९
केरी<केलि ७.६ ५०
केलि<कदली ७.६.२
केवि<कतिपय २.५.३,२.७.१९
केसी<केशी ५.७.३
कोडि<कोटि ६.३३.५
कोह<कोध ७.२८.३
षंजरिअ<खंजरीट २.५.१८
षग<षग्ग<खड्ग ११.८.६
षग्ग<खड्ग ७.१७.४, ८.१६.३ ८.२३.१
८.२६.१ ८.३२.१ ११.१२.१
षटभाषा : प्राकृत, संस्कृत, मागधी शौरसेनी, पशाचिका, अपभ्रंश १.४.११
षत्त<क्षत्रिय ५.१०.३
षद<खाद्य=भोजन १.३.११
षल<स्खलित ७.३०.५
षिण<क्षण ९.१३.३
षित<क्षिति ९,१२.२
षिति<क्षिति २.९.२, ११.६.२
षित्त<क्षेत्र २.१.२
षित्री<क्षत्रिय २.३.२५, ११.६.२
षिन<क्षण ३.३८.१, १२.१.४
षिल्ल<खेल २.५.४
षी<क्षि=क्षय होना ४.२३ ८
षीन<क्षीण २.२८.४
षुंद<क्षुंद=आक्रमण करना ६.२२.१
षुत्त<क्षिप्त=निमग्न, डूबा हुआ ५.३८.८
षुर<खुड्ड<तुड=खंडित करना ४.२.२
षोडसा<षोडश २.१.३६
गउष<गवाक्ष ३.५.१
गंठ<ग्रन्थि ६ १५.१४
गंठि<ग्रन्थि ६.१६.१
गध्रव<गन्धर्व ८.११.४
गजगाह<गजग्राह ६.५.१२
गज्ज<गर्ज्=गर्जन करना ८ ३०.१
गण<गणय्=गिनना २.११.१
गत्त<गात्र १२.४४.१
गन<गणय्=गिनना ३.११.५
गब्ब<गर्व २.३.२३,८.१२.२
गब्भ<गर्भ ३.३२.१,४.१०.२४
गम=मार्ग ४.७.१४
गय<गत ८.१७.१
गय<गज २.८.१,३ ४.६,४.२१.१,६.३१ २,
७.१०.१,११.४.२
गयंद<गजेन्द्र ४ २०.२५,५ ४८.४,८ ९.२४
गया<गताः २ २ १ १.२.२
गयन<गगन ५.१७.१,७.१७.१०
गरिट्ठ<गरिष्ठ ५.३.५
गुरुआर<गुरुतर ३.४२ २
गरुव<गुरु २.५ ३४
गल्ह<गल्ल या गल=बात १२.१५.१८
गवष्य<गवाक्ष ६.२८ ३
गव्व<गर्व ८.२.२
गहगह [दे०]=हर्ष से भर जाना ६.३४.१
गहिल्ल<ग्रहिल [दे०]=भूतग्रस्त, पागल, उद्भ्रान्त १.६.३
गाज<गर्ज्=गर्जन करना ७.६.१८,७.१७.८
गाड<गड्डु<गर्त्त=गड्ढा ३.२७.४
गामिनी<ग्रामणी=गाँव का मुखिया २.३.४०

जाम <याम=प्रहर ३.४.१, १२.१२.१

जाय <जाती=जाही ४.२५.७

जाल <ज्वालय्=जलाना ३.११.१, ८.१०.३

जिमन <यमुना ७.६.१५

जिह <यथा ४.३.२

जीह <जिह्वा २.१५.२

जुग < गैल ४.११.११

जुर <ज्वल् ११.१२.१२

जुलन <ज्वलन ३.३३.३

जूव <यूप ३.१७.९

जूह <यूथ ७.२५.२

जेम=यथा, जैसे, जिस तरह से २.२.१०

जोइत <योजित १०.१०.१

जोर <ज़ोर [फ़ा०](?) ५.४७.२

जोव=बाट देखना ४.२५.२३

झंकुलिय=झंखाड़ २.५.४३

झंप<भ्रम् (?)=घूमना फिरना, २.७.७

झड <शद्=गिरना २.३.३२

झाम=दग्ध ११.१०.१०, २.५.४३

झिल्ल=ऊपर से गिरती हुई वस्तु को थामना ६.५.३

झीन <क्षीण १०.११.१९

झुंझलिय [दे०]=मुर्झाया हुआ ११.१०.१०

झुट्टित [दे०]=प्रवाहित ५.३८.८

झीर=झुंड ६.१५.१८

ठय <स्था ५.३१.२, ५.४५.२

ठान <स्थान=निवास १२.११.१०

डंग <द्रङ्ग=नगर ९.१४.१

डड्ढ <दग्ध ३.२२.३

डाडिम्म <दाडिम ५.७.१

डुल्लभ <दुर्लभ ३.२२.२

ढाक <डाल [दे०] ७.१०.२६

ढुंक <ढौक्=लगना, प्रवृत्ति करना १२.४५.६

णारी <नालीक=एक प्रकार का भाला ७.१०.१३

णिय=निज, ही ११.१८.१

त <तु=तो २.१.११

तइ <तदा=तब १०.१८.१

तउ <तदा=तब ३.२४.२

तंषिन <तत्क्षण ३.४.५

तंत <तत्त्व १२.४२.४

तंमोर=ताम्बूल ६.७.३

ततषिन <तत्क्षण ३.८.४

तत्त <तत्त्व ५.३५.१

तत्तानि <तद्+तानि २.१८.४

तथ्थ <तत्र=वहाँ, तब २.२.१०, ३.४३.२, ६.३३.२, १०.२७.२, १२.१५.८

तनु=का १०.९.१

तमोर <ताम्बूल २.५.१०, ५.४७.१

तमोरि <ताम्बूल ६.१५.२६

तर <तल १०.११.३

तर <वेग, बल ७.१०.११

तराइन <तारागण ७.४.१६

तलप <तल्प=पर्यङ्क ६.२५.३

तह <तथा=इस प्रकार ६.३३.४, ७.५.४, ८.३.५, ८.७.२, १२.७.१, ५.४१.३

तहि <तथा=इसी प्रकार १०.२३.४

ताम <तमस् ८.१७.२

ताजे <तर्जित ७.१७.५

तान=वे वस्त्र जो तानापाई कर के बनाये गये हों ४.२५.१६

तार <ताल=ताली २.१३.३, ५.३३.२, ५.३७.२, ६.५.६

तारय <तारक ५.२४.११

ताल=ताली ११.१२.४

तिलोयन <त्रिलोचन ८.२३.६

तिथ्थ <तीर्थ ३.४१.३, ८.३०.२, १२.१५.६

तिह <तथा १०.२५.३, ११.९.२

तीय <तृतीय २.६.१

तुच <त्वचा १२.७.४

तुज्ज <तुल्य (?)=तौला जाना वाला पदार्थ ४.२५.२७

तुट्ट <त्रुट्=टूटना २.७.९, ७.५.३, ८.१९.५, ८.२४.१

तुरंग <तुर्य ६.१५.२२

तुरा <त्वरा ५.४१.२

तुह <तुम १०.२६.२

तूर <तूर्य=तुरही ३.३०.२

तेजि <ताजी [अ०]=ताजी जाति का घोड़ा ६.१५.१५

तेह <तदनंतर (?) १०.२८.५

धा < ध्यै = ध्यान करना, चिन्तन करना ३.१६.४
धाट < गाढ = बाहर निकला हुआ, उमड़ा हुआ ४.२५.२९
धीठ < धृष्ट ८.१०.१५
धीय < दुहितृ = कन्या २.१३.२
धुत्त < धूर्त २.३.१४
धुन < ध्वनि ८.९.२,९.५.२
धुर < ध्रुव ४.२.२,६.५.२०
धूत < धूर्त ११.७ ६
धूमर < धूम्र ३.१७.४
नइ = निश्चय-सूचक अव्यय ७.६.५०
नंष < नश् = लुप्त होना, भागना ५.२५.२
नंष < नश् = फेंकना, समाप्त करना ३.१८.४
नंगा < नग्न ४.२३.२
नक्ख < लंघ् = लाँघना ६.५.१८
नष < नश् = काटना, बिताना ६.२६.४
नजरिमंद < नजर-बंदी [फा०] = दर्शन १२.१३.४
नठ्ठ < नष्ट २.५.५०,३.४.१,४.१०.१६
नथ्थ < न्यस्त = स्थापित ८.८.४
नय < नत ७.१२.२
नयर < नगर ४.१६.२ ४.२४.१, ५.८.२, ६.६.१
नरिंद < नरेन्द्र ६.१०.२
नरेसर < नरेश्वर ८.१.१
नसित < नष्ट ३.११.६
ना < ज्ञा = जानना, समझना १०.७.४
नाष < नंष < नश् = गिराना ७.३१.२२
नाटक < णट्टक < नर्त्तक १२.६ १
नार < जल ९.१४.१
निअ < निज = अपना ७.१०.२५, ८.६.२
निअ < नीअ < नीच ४.११.१३
निंद < निन्द् = निंदा करना ६.३२.१
निग्गह < निग्रह = निरोध, अवरोध ३.१७ ४
निठु र < निष्ठुर ७.१२.१९
निद्धर < निर्झर (?) ८.२०.१३
निति < नित्य २.९.२
नित्त < नित्य ५.३५.२
निरारे कर = जिसके करों में तीर न हो ३.२.२
निद < निद्रा ३.५.१,७.२१.३
निद्धाडल < निद्धाडिय < निर्धाटित = निष्कासित ५.४.२२

निधि < स्निग्ध
निध्य < स्निग्ध
निनार < णिण्णार < निर्नगर = नगर से
निव्वीर < निर्वीर
निमट्ट < निवृत्त
निम्म < निर् + मा = निर्माण करना
निय < णिव < निज १.४
निरत्त < निरुक्त (?) = स्पष्ट
निरथ्थयो < निरस्त = निकाला हुआ
नर्मोली < निर्माल्य
निवाज < नमाज् [फा०]
नीचाल < णिच्चाल = गिराना, टपका
नीर < निअर < निकट
नु < णु = व्यंग्य, समान अथवा अधम
नेहु < णेहु [दे०] = अधर
नैक [न + एक] = बहुत
न्त्रित < नृत्य
न्रित्ति < नृत्य
पइ < परि < पक्खे < पक्षे = से
पइट्ठ < प्रविश् = प्रवेश करना
पउमिनिय < पद्मिनी
पंषि < पक्षिन्
पंग = ग्रहण करना
पंचजन्न < पाञ्चजन्य = कृष्ण का शंख
पंछी < पक्षिन्
पंजर = यंत्र (जंतर)
पंडिय < पंडित
पक्क < पक्क
पष < पक्ष ७.१५.४,७.१
पषर < पक्षधर = रक्षी
पक्खइ < प्रकृत = स्वाभाविक
पच्छ < पक्ष
पट्टरागिनीअ < पट्टराज्ञी
पट्टा < पट्टिया [दे०] = पाद-प्रहार
पठ्ठिअ < प्रस्थित
पठ्ठिय [दे०] = विभूषित, अलंकृत ७.
पत्त < पत्र २.७.६,४.७.१,०,१ ८

पत्त<प्राप्त ३.१७.२०,६.२८.३,८.३५.६, १२.५.१
पत्थ<पार्थ=अर्जुन १.३.२०,७.१७.३, १२.१३.१८
पमुक्क<प्रमुच्=छोड़ना ३.३२.६, ३.४३.४
पय<पद १.१.२
पयप<प्रजल्प्=कहना, बोलना १०.१३.२
पयंपन<प्रजल्पन=कथन १०.११.१
पयाल<पाताल ७.४.१२,७.११.९
पर<पट ४.३.२
परंभ<आरभ्=गले या हृदय से लगाना ५.३८.११
परजाल<प्रज्वाल २.७.१३
परट्ठिअ<पट्ठिविय<परिस्थापित अथवा प्रतिष्ठापित ७.१४.१
परतग<प्रतिज्ञा ७.२९.१
परतक्खि<प्रत्यक्ष ८.२३.४
परतष्षि<प्रत्यक्ष ३.१५.२,३.१६.१
परदार<पहरादार १२.८.१,१२.९.१
परवांन<प्रमाण २.२६.१,३.१.२
परस<पार्श्व ८.२९.२
परसंग<प्रसंग ४.११.३
पराकति<प्राकृत ९.७.३
परि=शेष १०.२५.६
परिट्ठ<परि+स्थ ३.२९.१
परिठ्ठु<प्रति+स्थापय् [दे०] २.१३.१
परिठ्ठवण<परिस्थापना २.३४
पलम<पल [क]=मांस ७.३५.१
पविठ्ठ<प्रविष्ट १२.४९.१
पव्वइ<पर्वत ६.४.२,७.९.२,९.१४.४
पहट्ट<पहट्ठ<प्रहृष्ट ७.२६.१
पहर<प्रहर १२.१२.१
पहार<प्रहार ७.१०.६,११.१२.७
पहारे<प्रहृत=अपहृत ६.५.२
पहु<प्रभु २.३.१,३.३७.२,४.७.१५,६.३३.५
पहु<प्रभु ८.१९.३,८.२७.२,८.२८.३,११.५.२
पांन=एक प्रकार की छींट ४.२५.१७
पाखर<पक्षधर ६.४.१
पातिसाह<बादशाह [फ़ा०] ११.११.२
पान<पर्ण २.५.४१,४.२५.२४
पाय<पाद<किरण ३.३०.१
पायक<पदातिक=प्यादा ४.१०.६
पायस<प्रादेश ७.१२.२५
पायाल<पाताल ७.६.२१
पारंभ<प्रारंभ ८.१०.२२
पारट्ठ<परिस्थापित ७.१५.१४
पारद्धि<पापर्द्धि=शिकारी १२.४४.४
पारस<पार्श्व ७.२९.१,५.४८.६
पालथ<बलद्ध (?) ७.१५.१३
पासि<पाश ६.१५.२०
पिष्ष<प्र+ईक्ष्=देखना ३.१२.१,५.४८.१
पिय<प्रिय २.५.२२
पीर<पीड़ा ११.२.१
पीर [फ़ा०]=महात्मा, सिद्ध १२.४.२
पील<पीलु=हाथी (तुल० फ़ा० 'फ़ील') २.५.३२
पुच्छि<पुच्छ ६.३४.४
पुठ्ठि<पृष्ठ ६.८.१,६.३४.३
पुब्ब<पूर्व ११.११.२
पुप्फंजलि<पुष्पाञ्जलि ५.३६.४
पुरयवन<प्रद्युम्न ७.६.११
पुले<प्रलय=सृष्टि का अन्त १.३.१३
पुहपंजलि<पुष्पांजलि १२.४९.२
पुहवि<पृथ्वी २.३.२६
पुहु<पृथु ११.३.२
पुहुमी<पृथ्वी २.३.२०,३.२७.१
पूठि<पृष्ठ ३.११.३,४.३०.२
पेक्ख<प्र+ईक्ष्=देखना ६.५.२७
पेष<पेक्ख<प्रेक्ष्=देखना ३.३३.२,४.१.१
पोति<पोती [दे०]=काँच, शीशा ६.१५.४
पोलि<प्रतोली=मुख्यद्वार २.३.५२
प्रजंक<पर्यङ्क ९.६.३
प्रथमि<पृथ्वी १२.४६.१
प्रयण<प्रकीर्ण ३.४.६
प्रलय<प्रलय=सृष्टि का अन्त ३.२७.६
प्रवत्त<प्रवर्तय्=लगाना ७.१२.१५
प्रसरुन<प्रसरण ७.१२.२०
प्रहा<झड़ना ७.१४.३
प्रहा<प्रभा २.२४.३
फरजंद<फ़रज़न्द [फ़ा०]=पुत्र, संतान ११.२४.१
फुणि<पुनर ३.११.५
फुणिंद<फणीन्द्र ६.२२.१

फुर <स्फुर् =स्फुरित होना ८.२६.३
फुल्ल=खिला हुआ ३.२४.३
बंक <वक्र २.२०.२, ५ ४६.१,५ ४७.१
बंभ <ब्रह्मन् २.३.६४
बय <बे=बिना १२.१४.२
बर <बल ६.३३.३,८.२५.२
बरज <वर्यं ४.११.१२
वल <वेल्=चलना, जाना, घूम पड़ना ६.९.१,
८.१३.१
बलिय=पीन, मांसल, स्थूल, मोटा २.५.११
बाज <व्रज्=गमन करना ११.१२.९
बाज <वाद्य ४.२३.२०
बार<बाला ६.१५.३
बिअ <द्वितीय ५.३६.४
बिंब <बंब=धमक, शोर ७.२६.२
बिनान <विज्ञान ४.१४.२६
बिबि <द्वय ५.४६.१
बिय <द्वितीय ५.४५.४
बिलंग <विलग्न ४.११.३
बिसमउ <विस्मय १२.४६.२
बीअ। बीय <द्वितीय २.३.६४,२.५.२,३.२७.३,
१२.४८.३
बूझ <बुद्धि ८.९.६
बे <द्वय ११.१२.२
बेकत <व्यक्त ६.५.११
बोल <ब्रोडय्=डुबाना १०.२३.६
ब्यंब <बिम्ब २.३.६२,२.७.१५,५.७.२
भंग <भिग <भृङ्ग ८.१९.१
भख <भक्ष्य ४.२५ ३४
भग्ग <भग्न=टूटा हुआ ७.३१.१९
भद्द <भाद्र=भादों १.३.१५
भद्दव <भाद्रपद=भादों ७.३.२
भम <भ्रम ३ १.१,३.४.३,११.१०,१६
भर <भट=योद्धा ५.३०.१,६.२९.१,७.४.२,
७.१२.१,७.२५.२,१०.२३.४,११.७.६
भर <भार ७.५.६
भर <भृ=धारण करना ५.३०.२
भरह <भरत १.५.२
भान <भञ्=तोड़ना ३.५.२,३.८.३
भासिन=द्युतिमान् १.६.४
भित्थुर <विस्थूल ७.१२.१९
भिय <भीत ५.१३.६
भीच <भिच्च <भृत्य ८.१.४
भीन <भिन्न १२.१५.१०
भीव <भीम २.१.१६
भुअ <भुजा ३.३९.४
भुअदंड <भुजदण्ड ४.१०.५
भुअपति <भूपति ५.४८.५,१२.४६.२
भुव <भुअ <भुज ६ ३३.३,६.३३.६,८.३०.६
भुव <भू <भ्रू ४.२०.७
भुवि <भूमि ८.३४.४
भूज <भूर्ज=भोजपत्र ३.४.४
भूभ्रत <भूभर्तृ=भूपति ३.५.१
भूम <भूमि ३.३१.४
भृत <भृत्य ६.२३.७,९.८.४,११.७.६
भेषि <भैक्ष्य (?)=भिक्षा ८.१८.२
भोआल <भूपाल ७.३१.२१
भोह <भ्रू १०.१७.१
भ्रतु <भृत्य १०.७.३
मउष> मयूख=किरण ९.४.२,१०.११.१६
मउष्ष <मयूख=किरण ७.४.१८
मउर <मुकुल=बौर २.५.२५
मऊष <मयूख=किरण ८.९.९
मगूल=मंगोल ७.१०.९
मंत <मंत्र १.४.४,२.१.९,५ ३५.१,८.७.१
मंथ <मस्तक ६ ३१.१
मगन <मग्न २.३ ६३
मग्ग <मार्ग २.५.२५,२ १० १,८.१.२,८.५.२
मग्ग <मार्गय्=माँगना ८.१.१
मच्छ <मत्स्य ८.२६.३
मच्छर <मात्सर्य ७.४.२१
मझ <मध्य २.३.६
मत्त <मत्त १०.१३.२
मथ्थ <मस्तक ८.३२.५
मद्द <मृद्=मसलना ११.१०.१०
मधुलिहि <मधुलेहिन्=भ्रमर २.५.२१
मधुवलीय <मधुवासित=मधु वैश्य की बस्ती (मधुपुरी)
२ ३.६३
मनं=मनु, मानो ७.१०.१८,१०.२५.२
मनसिन्=ध्यान रखने वाला १०.१४.२

मन्थ <मथ् २ २ १
मय <मत्=मेरा २ १४ ‹ २ १५ १
मयंक <मृगाङ्क ५.४६.२
मयंद <मृगेन्द्र ४.२०.२६,५.२०.२
मयन <मदन ६.१५.२०
मयमत्त <मदमत्त ७,९.२,८.२.२
मरद <मर्द [फ़ा०]=पुरुष १२.४१.४
मरदान <मरदाँ [फ़ा०]=मर्दों की ११.८.२
मर्ग <मार्ग ४.१० ८
मलिअ <मलित=मलिन १२.४७.८
मसूरति <मशवरत [फ़ा०]=परामर्श ११.९.१
महिमान <मेहमान [फ़ा०]=पाहुना १२.१५.१६,
१२.१६.१
माल [दे०]=आराम, बाग ११.१०.१०
मालइ <मालती ४.२५.५
मिठ [दे०]=महावत ७.१०.९
मिगी <मृगी ५.७.३.
मिछ्छ <म्लेच्छ १२.१०.२.
मित्त <मित्र=सूर्य ७.४.१८,७.२२.१,११.१०.१५
मिलान <मिलन २.६.३
मिलिय <मिलित १०.११.५
मीच <मृत्यु ८.८.२
मीर <अमीर [अ०] १२.१३.१
मुकल <मुकुर ९ १८.२
मुक्क <मुच्=छोड़ना २.५,१५,२.१०.२,२.१०.७,
२.१३.१,२.१५.४,२.२६.२,३.२७.१,
३.३३.६,६.२.२,६.३.१,८ १२.२,
११.१०.११,१२.३.२
मुक्ति <मौक्तिक ४.१२.२,४.२०.३
मुगति <मुक्ति ११.१०.१४
मग्ग <मार्ग ३.३३.२
मुच्च <मुच्=छोड़ना ५.२३.१
मुच्छ <श्मश्रु=मूँछ ७.४.२१,७.२७.३
मुच्छ <मूर्च्छ्=मूर्च्छित होना २.१३.५,३.३.२,
३.२०.१
मुच्छार <मूर्च्छालु ६ १८.२
मुद्द <मुद्रय्=मुद्रित (बन्द) होना ३.३२.२
मुदित <मुद्रित=बन्द ५.३२.१
मुद्द <मुद्रय्=बंद करना, मूँदना ६.२७.३,७.६.२२
मुद्दित <मुद्रित=मूँदा हुआ १०.११.२८

मुद्धा <मुग्धा ३ ५ २
मुध्ध <मुग्ध । मुग्धादि १३.३,७.२२.४,१०.२६.२,
१२.१.३
मुनिंद <मुनीन्द्र ६.१०.१
मुर्=विलास करना ७.१७.३७
मुल्ल <मूल्य ४.१४.२०
मुहुल <मुखभाण्डक=मुखड़ा १२.१३.११
मूक <मुच्=छोड़ना ६.२३.८,८.१०.१८,९.१२.३
मूग <मुच्=छोड़ना ६.७.२
मेछ <म्लेच्छ ११.१०.४,१२.४.२,१२.५.२,
११.९.१,१२.४९.३
मैन <मयण <मदन ६.११.१
मेर <मेरु ७.१०.१२
मेह <मेघ ७.१७.८
मैन <मदन ४.१४.६
मोकरे <मुक्त ३.१७.५
मोकल [दे०]=भेजना, प्रेषित करना २.३.७
मोगर <मोग्गर <मुद्गर १२.४९.५
यम: ऋग्वेद की कुछ रिचाओं आदि के रचयिता
१.४.२
युगम <युग्म ५.३.१
यूह <युद्ध ७.३०.५
येम <इभ=हाथी ७.१०.२०
रंक <रङ्क=भूखा ६.१५.१९
रषत <रक्षित=भृत्य ६.३३.५
रषत्त <रक्षित=भृत्य ७.४.५
रषि <ऋष ३.३९.५
रष्षत <रक्षित=भृत्य ५ २९.१
रष्षस <राक्षस ७.८.१
रग्ग <राग २.३.२
रच <रञ्ज=रचना, अनुराग करना १.३.१८
रट <रट्=चिल्लाना १२.७.३
रण्=शब्द करना ९.५.२
रति <ऋतु ६.२६.४
रत्त <रक्त=लाल, अनुरागपूर्ण १.६.१,२.३.४४,
२.२३.१,४.२२.५,५ ६.१,५.८.१,
६.२८.४,५.४.७,७.१०.२,७.१०.१५,
८.१०.१४,९.१.३,१०.८.२,
१०.१३.१,१०.२०.२
रत्तिअ <रात्रि ३.४.३

रत्तिरी <रत्रि ३.१९.५
रद्ध=राँधा हुआ, पक्व ३.३३.४
रन्न <रणम्=शब्दायमान करना २.१७.१
रमजान <रम्ज़ान [अ०] ११.८.३
रय <राजा ८.३.६
रयणि <रजनी=रात्रि ३.४.१
३.५.१,७.२१.१,१०.२५.३
रवनि <रमणी ५.७ २०,१०.८.२
रवनि <रमणीय ४.४३.१
रल <रट्=रोना, चिल्लाना ८.२२.२
रसा <जिह्वा २.२०.४
रह <रथ ८.७.२
रह <राह [फा०]=मार्ग १२.२.१, १२.१.६
रह <रभस्=उत्साह, पूर्वापर का अविचार ७.२६.२,
१२.७.७
रहिय <रहित ७.६.५
रा <राज २.१७.२
राइ <राजि १०.१२.१४
राइस <राएस <राजेश २ १६.२,८.८.२
राग=दाँतों का कवच ६.५.११
रागवे <रागवइ <रागवती ५.३६.२
राठवय <राष्ट्रपति ५.१३,२४
रावत <राजपुत्र ८.३.६
रास <राशि ६.१५.१७
राह <राहु ८.३०.१
राह <राधा=प्रिय ७.१५.३
राह <राधित=प्रसन्न, अनुरक्त ५.१३.२
रिंद [फा०]=मस्तमौला २.३.२१
रीस <सदृश् ४.२०.१०,७,१०.२२
रुंझ <रुंज <रु=आवाज़ करना ६.१५.२२
रुंध <रुध १२.४८.५
रुष <रुख़ [फा०]=मुँह ७.१.१
रुहय <रुद्=रोना ७.१२.२
रूल <रोरूय्=शोर करना ८.३२.३
रूव <रूप १.४.९,३.१७.१४,४.१०.२,४.१७.१
रेण <रेणु ६.२२.१,६.१८.१,७.१२.१७,९.१०.२
रेण <रजनी=रात्रि ८.९.१०,११.१०.२५
रेस रेसमिष <रेशमीरेशः ७.१०.१३
रेह <रेखा । लेखा १०.११.२२
रोजा <रोज़ः [फा०] ११.८.३
रोम <रुद्ध ६.२०.१

रोमाली <रोमावलि ९.१४.१
रोर <रोल=कलह ५.१३.२१
रोह <रुध्=रोकना ७.२१.६
लष <लक्ष्य ५.३८.२५
लग्ग <लग्=लगना ३.३२.२
लग्ग <लग्न ३.४३.२
लछ्छी <लक्ष ६.५.२१
लध्ध <लग्=पाना ७.१६.२
लध्ध <लब्ध १०.११.४
लध्धी <लब्ध ७.६.४०
लह <लभ्=पाना ३.१२.१
लहु <लघु २.१६.२,७.१३.२
लागुड <लकुट=लकड़ी ११.११.१
लार <लाला ८.१६.१
लाल <ललकार ११.१२.४
लिप्त <लिप्त ८.९.१२
लिह <लिख्=लिखना ३.४.४
लीह <लेखा २.५.१५
लुक्क [दे०]=छिपना ८.३२.३
लुट्ट <लुण्ट्=लूटना २.५.२३
लुध्ध <लुब्ध ७.२२.४
लुर <लुठ्=लोटना ५.७.१
लुहअ <लघुक २.१६.२
लोइ <लोक=प्रजा ९.८.४,१०.१.१
लोर <लोल ५.१३.२२
लोह <लोभ २.१.१८
वइ <पति ८.२७.२
वंक <पङ्क ६.७.४
वंक <वक्र ७.१०.९,१२.१५.१०
वंच <वाच <वाच्=बाँचना ३.७.२
वंद <वन्द्=वंदन करना, प्रणाम करना ३.७.३
वग <वग्ग <वाक्य ८.१०.९
वग्ग <वल्गा=लगाम ७.१७.२
वच्छ <वत्स २.४.१
वच्छी <वत्सिन्=बछड़ेवाली गौ २.१०.२
वच्छ <वक्ष ६.१४.४
वच्छ <वत्स १०.११.३८
वछ <वाञ्छ्=चाहना ३.३५.१
वज <व्रज्=जाना ७.३१.१५
वज्ज <व्रज्=जाना ७.१४.२८,११.३.२
वज्ज <वाद्य ७.७.१,५.११.१

विहान<विशान १२.१३.८,१२.१५.११
बिहि<विधि ४.१८.२
बीज<विद्युत् ७.१०.२४
बीन<वीणा ९.६.४
बीह<वीथि=श्रेणी, पंक्ति ७.५ २
वुट्ठिय<व्युत्थित ६.५.७
वुठे<व्युत्थित ७.४.६
वैनिय<वैणिक=वीणा से उत्पन्न ५.७.३
श्रोणि<शोणित ४.२२.५,१०.१ .६,११.१२.१२
सशान<सशान २.१३.४
सइंभरि<शाकंभरी २.३.३३
सउं<समन्=साथ १२.४४.२
संकुर<संकुड<संकुट्=सिकुड़ना २.३.१२
संकूरि<संकुटित=सिकुड़ या सिकोड़ा हुआ, कम किया हुआ ३.४.३
संक्रति<संस्कृत ९.७.३
संच<सत्य ३.४२,१,९.९.४
संजर<संज्वर २.५ ३५,९.१३.२
संझ<संध्या ७.२९.१
संठव<संस्थापय् ८.२१.६
संठा<संस्थान=रचना, संगठन ५ ४८.३
संत<शांत ७.६.२५,१२,४९.३
संथयउ<संस्थित १०.११.१७
संथुत्त<संस्तुत १२.४७.२
संधि=छिद्र,विवर (शंकर) १२.४७.२
संनेह<संनिभ ४.३०.२८
संपत्त<संप्राप्त ५.५.१,८.१०.११, ९.१.१,१०.२१.२
संभर<स्मरण ७ १५.५
संभर<संस्मृ=स्मरण करना ६.११.२
संभरिवइ<शाकंभरी पति=पृथ्वीराज ३.३४.२
संमुह<संमुख ३.३९.२,७.९.१,११.१५.१, ११.१८.५
संवर<स्मर=कामदेव १०.११.५०
संवर<शम्बल १२.७.४
सकार<सकार<सत्कार ५.४५.५
सकिलिअ<संकीलिअ<संकीलित=कील लगा कर जोड़ा हुआ, दृढ़तापूर्वक गाड़ा हुआ २.१४.२
सक्क<ष्वष्क्=चलना, जाना ४.१४.७
सक्रि<शक्र ४.२०.३७

सजन<स्वजन १२.२.१
सज्ज<शय्या ९.१३.२
सत्त<शत्रु ११.४३.६
सत्त<सत्व ७.३०.३
सत्त<शत या सप्त २.५.२,१२.१३.१५
सत्ति<शक्ति ५.३९.१
सत्थ<सार्थ=प्राणि-समूह, सभा ५.३.२,५.३२.४
सद<सद्<शब्द २.३.५७,२.१०.३,३.५.१, ४.२०.३१,८ ९.२१,८.२६.५,९.७.२, ९.१०.१,११.२०.३
सद्द<शब्द १२.४२.५
सद्दूर<शार्दूल ८.१०.१८
सन्नाह<सन्निधि=संग्रह ८.१०.७
सपत्त<संप्राप्त १२.४१.१
सबल<शबल २.१८.१
सबुद<शब्द १२.४६.६
सम<समन्=साथ, युक्त १२.४९.६
समष्य<समक्ष ५.४४.२,५.४५.१,६.३४.१
समथ्थ<समर्थ ६.३३.१
समप्प<समर्पय्=समर्पित करना ५.२८.२
समयि<समिइ<समिति ५.२२.२
समर<स्मृ ८.२४.२
समर<स्मर=कामदेव १०.२२.१
समव<सम्+अव=लगाना,प्रयुक्त करना ६.२८.१
समाइ<समाहित=भली भाँति व्यवस्थापित ५.१३.१
समान=साथ २.१.७,२.१.१७,५.२३.२
समुद्द<समुद्र ७.४.१
समूरव<समुल्लव<समुत्+लप्=बोलना, कहना ८.८.१
स ेव<स ेअ<समेत ५.४३.२
सम्मुह<सन्मुख ११.१.२
सय<शत २.१५.२,३.४३.१,८.९.१०
सयन<संकेत ३.४.६
सयन<सेना ११.१३.२
सयन्न<सेना ३.८.१
सयल<सकल २.१.८,३.२२.१,५.४२.२,७.८.१ ८.१०.१८,९.२.१,९.२.२,९.१४.२
सयान<सज्ञान ३.४०.२
सरण<शरण ४.१९.१
सरवंग्गि<सर्वज्ञ १०.१७.३

सोर<शोर [फ़ा०] ९.६.१
सोवन<स्वर्ण २.३.५१
सोह<सौध=प्रासाद, मंदिर ४.२२.१
स्याल<शृगाल ८.५.१
हदप<हदफ़[फ़ा०]=निशाना, लक्ष्यवेध १२.१५.१३
हदफ [फ़ा०]=निशाना, लक्ष्यवेध १२.१२.२
हउ<भउ ८.२.१
हमीर<अमीर [अ०] ११.८.३,११.१२.१७
हर<ग्रह्=ग्रहण करना २.२०.३,४.१९.१
हलुअ<लघुक=हलका ३.४२.२
हलिगना=हिलगना, पास आना ७.११.२
हिअअ<हृदय १२.४.१
हिर<ह्री=लज्जित होना १०.२२.२
हीर<हेलः=अनादर, तिरस्कार २.१.६
हे<अहो ६.१.१
हे<हय ८.२६.३
होम<अहं (?) ७.१७.३

छंदानुक्रमणिका

[नीचे दी हुई संख्याएँ क्रमशः सर्गों और छंदों की है।]

परिशिष्ट

अ. स्वीकृत के अतिरिक्त
धा० की
पाठ-सामग्री

मो०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
खं०	—[1]	—	१.६	१.१	१.२
,,	२. पद्ध० २	२. पद्ध० १-२	१.८१	१.१०१	१.२८२-३०५
,,	२. अडि० १	२. दोधक	१.८२	१.१०२	१.३०७
,,	२. दो० १	२. दो०	१.८३	१.१०३	१.३०८
,,	२. भुजं० ३	२. भुजं०	१.८५	१.१०५	१.३१०-३१४
,,	२. कवि० २	२. कवि०	१.९३	१.११९	१.५२०
,,	२. दो० ३	२. दो० १	—	१.१२०	१.५२१
,,	२. दो० २	२. दो०	१.९४	१.१२१	१.५२२
,,	२. कवि० १	२. कवि०	१.९५	१.१२२	१.५२४
,,	२. दो० ४	२. दो०	२.१०५	१.१२३	१.५२५
,,	२. त्रो० ४	२. त्रो०	२.१०६	१.१२४	१.५२७-५३१
,,	२. पद्ध० ५	२. पद्ध०	२.१०९	१.१२७	१.५३४-५३७
,,	२. साट० १	२. साट० १	२.११४	१.१३०	१.५४३
,,	२. दो० ५	—	२.११७	१.१३३	१.५४८
,,	२. त्रो० ६	२. मो०	२.११९	१.१३५ अ	१.५५२-५५३
२१	२. पद्ध० ७	२. पद्ध०	२.१२०	१.१३६	१.६०५-६१५
२२	२. दो० ६	२. दो० ४	२.१२२	१.१४३	१.६८५
२३	२. दो० ७	२. दो० ६	२.१२२ अ	१.१४७	१.७०३
२६	२. दो० १०	२. दो० ८	१.१७	—	१.९०
३२	२. दो० ११	२. दो० १	६.१६	८.२१	२४.१
३५	२. दो० २	२. दो०	१२.२७	२०.२३	१८.९६
३६	२. दो० २२	२. दो० २	१२.२८/१	२०.२४	१८.१०४
३४	२. दो० २२	—	१२.२८/२	१.१४५	१.६९४
७६	७. दो० ३	—	२९.२१	३१.१९	५७.५६
—	७. दो० ४	८.१०	२९.३२ अ	३१.३२	५७.७८

[1] यह छन्द फ० में है और अ० फ० २. भुज० १ के पूर्व आता है।

धो०	मो०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
६९	८४	७. अहु० १	८.१९	२९.४१	३१.४२	५७.८८
७९	९४	७. राता ३	८.३१	२९.५०	३१.५३	५७.१७६
८०	९५	७. मो० २	८.३२	२९.५१	३१.५४	५७.१७७-१९०
८१	९६	७. गाथा ३	८.३३	२९.५२	३१.५५	५७.१९१
८२	९७	७. दो० १५	—	२९.५३	३१.५६	५७.१९४
११३	१३०	८. दो० १	१०.३२	३१.१ आ	३३.३	६१.१०२
११४	१३१	—	—	३१.४	३३.१	६१.७८
१२५	१४४	८. साटं० १	१०.१३१	३१ अ.३४	३३.३२	६१.३२०
१२६	१४२	८. मो० ४	—	—	—	—
१४०	१५९	८. नारा० १०	१०.१७१	३१ अ. ६७	३३.६१ अ	६१.४३२-४३४
१४३	१६२	—	१०.१८६	३२.२	३३.६५	६१.४५८
१४४	१६३	९. दो० २	१०.१८८	३२.३	३३.६७	६१.४६०
१४५	१६४	९. दो० ३	१०.१८९	३२.४	३३.६७ अ	६१.४६१
१५०	—	९. अडि० २	१०.२२३/१	३२.१७/१	३३.७९/२	६१.४९९/१
१५६	—	९. मुडि० ३	१०.२२३/१ १०.२२३.२ १०.२३४/१	३२.१७/२	३३.७९/२ ३३.८२	६१.४९९/१ ६१.४९९/२ ६१.५१०/१
१५७	—	—	—	—	—	—
१९४	२१८	९. अहु० २	१०.४५०	३२.१५१	३३.११६	६१.९२१
२०८	—	९. दो० ५८	११.९१/२ क	३३.२९	३३.२३७/२	६१.११५९/२
२२४	—	९. अनु० ३	११.१५५	३३.७५	३३.२६३	६१.१२५५
२४३	—	१०. दो० १	१२.१४	३४.१४	३३.२९६	६१.१३४१
२९१	३१९	११. दो० १	३५.१८/२	३५.१६/१ ३५.१८/१ ३५.१८/२	३३.४००	६१.१७७१/१ ६१.१७७३/२
२९२	३२०	११. कवि० ४	१२.२४६	३५.१९	३३.४०१	६१.१७७५
३०८	३६८	—	—	३८.१२	३३.५२९	६१.२४९४
३४३	४१८	१४. दो० १		४१.८१ ४२.९३	३६.८५	६६.३८६
३४४	४२३	१४. दो० ३३		४२.१३०	३६.१२३	६६.३९६
३४५	४२४	१४. कवि० १४		४२.१३३	३६.१२४	६६.३९७
३५६	४४७	१५. दो० २३		४३.८१	३६.२७०	६६.८४५
३५७	४४९	—		४३.१०७	३६.२८९	६६.९४९
३५९	४५३	—		४३.१०३	—	—
३६१	—	—		—	३६.२९१	६६.९३१
३९०	५०६	१९. दो०		४६.९०	३७.१४०	६७.३१५
३९६	—	१९. दो० २८		४६.१०८	३७.२२१	६७.३६५
४०३	५२२	१९. पद्ध० १४/१		४६.१२५	३७.१९१	६७.३८८

मा०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
५२३	१९ द ० ३३		४६ १२९	३७.१९०	६७.३८९
—	१९. फवि० ११		४६.१७५	३७.२८०	६७.५५३

: कवित्त—सघन पत्त घन थट्ट वेलि पसरी प्रथाक्क घर।
तहाँ कमल उग्गयो मूल बिन रह्यो फुल्ल घर।
कंदल थंभ तिहु गहहि सिंध तिहि रह्यो मंडि घरि।
तिहि गज संक न काइ निरखि सिखि रहिडरंक अरि।
जैचन्द राय सुजान गिरि राठोर राय गुन जानिहै।
कीर चुनहि मुगता फलहि इह अपुब्ब को मानिहै॥

में निम्नलिखित गद्य-वार्त्तायें भी आती हैं जो प्रायः अन्य प्रतियों में नहीं हैं:—

पूर्व : अथ आदि साटक।
,, : हिव कनवज का राजा की बात कहइ छइ।
,, : चूलिका प्रबोध। चूलिका नाम सालिका सुमंलिका सहचरिका मनहरिका यंग
रांचि परठ वासि किसी परठ वासि।
,, [1]: अत्र सामंत वर्णनम्।
,, : वार्ता। राजा ग्रिह आइ राजा की पटरानी पंवारि चित्रसाली दिखावन लागी
तिहां कर्णाटी दासी के महल कैवास के कछू सो सो भोग जानियइ।
गन गंधर्व सुमिथ...किन्नर कहत की कैवास हि कह लम्बई वेग ही
उतरइ।
,, : वार्ता। एक बाण तो राजा चूक्यो बांह नै कांख विचि आघात भयो कइमास पान
डारि दिये कइवासेनोकं।
,, : वार्ता। दूसरउ बाण आन दियउ।
,, : वार्ता। राजा देखतो दाहिमो कयमास परयो है देखड दासी के निमित्त कैमासहि
अहमिति होइ भविष्यहुन मिरै।
,, : वार्ता। पांचहु तत्व की देवता हुइ चांद न मानइ।
,, : अथ राजा प्रिथीराज की वार्ता।
,, [2]: वार्ता। राजा महिल आरंभे नकीब टौर ठौर प्रारंभे सुरता सामंत बोले जीमखानै
दुलीचा प्रवानैन खोले छत्रइपत जीन सिंहासन कीने गादी मूढ़ा सामंतन्कूं
आसन दीने।
,, : वार्ता। कैंवास कलत्र चांद पासि आइ ठाढी रही देखि चांद तूं महावीर वरदायी
हुनार औ राजा पै वम पग्राउ चांद राजा पहि चलिवे को उद्यम कियउ
चांद की स्त्री पेट पकरी देखि चंद।
,, : वार्ता। हिव चंद वरदायी कहै।
,, : वार्ता। तब चांद बोल्यउ।
,, : वार्ता। हिव राजा प्रिथीराज चांद सूं कहतु हुइ।
के बाद: एवं षट् ऋतु वर्णनं।

[1] मो० में भी यह वार्ता है किंतु इसका प्रथम शब्द उसमें नहीं है।
[2] मो० में भी यह वार्ता है।

धा० ११५ के पूर्व : वार्ता। सावंत हाथियान लागे कुण कुण।
धा० ११६ ,, : वार्ता। राजा प्रिथीराज चालंता शकुन होइ तहइ।
धा० १२१ ,, : वार्ता। राजा कूँ इह उत्कंठा भयी। सावंतन की पाहली आस गई। राजा ने आइस दीनौ जे ठाकुर पंगराय प्रगट है ताकी आधीन हुइ के रूपो दुरावो वाकी कैसा रूप ही। साथि आवउ सामंतशु मानिया निसा जुग एक रजनी।
धा० १२५ ,, : वार्ता। राजा गंगा जाइ देषी।
धा० १२७ ,, : वार्ता। राजा स्नान कीयो। सामंतन ने स्नान कीयो तब राजा गंगा को समरन करत है।
धा० १२८ ,, : वार्ता। तब लगि अवलोकय भयो। गंगोदक भरिवे के निमित्त आनि ठाढी भयी मानो सुकृति तीरथ लोक संकीरन भये यौं जानियतु है।
धा० १३० ,, : वार्ता। ते किसी एक पनिहारी है।
धा० १३८ ,, : वार्ता। संदेह देवी वर्णन छै।
धा० १४० ,, : वार्ता। अबहि नगर देषत है।
धा० १४६ ,, : वार्ता। चांद राजा के दरबार ठाढो रह्यो।
धा० १५० ,, : वार्ता। राजा ने पूछो इंह आडंबरी भेष धारी सुकवि च्यारि प्रकार भट्ट प्रवर्तंतु है। देखौ धौं जाइ इनमें को है।
धा० १५१ ,, : वार्ता। इहै आपा मो रस चांडु कहतु है।
धा० १५२ ,, : वार्ता। अब चांद भाट राजा जैचंद को वर्णवतु है।
धा० १५३ ,, : वार्ता। देख्यो ए भविष्यत् दरिद्र को छत्रु लिये फिरै। चौहान को बोल याकै मुहि क्यौं निकसै।
धा० १६५ ,, : वार्ता। राजा पूछइ ते चंद उत्तर देत हइ।
धा० १६६ ,, : वार्ता। देखे भलो भाट है। जाको लूनि पानि खात है ताको पुरष बोलत है। राजा मनि चिंतवत है।
धा० १६७ ,, : वार्ता। पुनः चंद वाक्यं।
धा० १७१ ,, : वार्ता। ता रनवास की दासी सुगंधादिक घनसार म्रिगमद हेम संपुट।
धा० १८० ,, : वार्ता। राजा अनेग हास्य करन लागे। अनेग राजन के मान अपमान लगि अंबा जो दिनयर अदरसै।
धा० १८१ ,, : वार्ता। अरु निसा तो राओ जोगवी वहि निसा पंगुरहि को जाति है।
धा० १८७ ,, : वार्ता। राजा कइसी नींद विसारि।
धा० १८८ ,, : वार्ता। रात्र गते ये राजा अर्क सो देखयतु है।
धा० १९२ ,, : वार्ता। राजा अ इसु ते गौज सांधा चहुवान को भट्ट आयो है ताहि इतनो दउ्यो।
धा० २०० ,, : वार्ता। राजा प्रिथीराज कनवज्जहि फिरि आवतु हइ। इतनै सामंतन सूं पंगु राजा को कटकु लज्ज हाइ रहु है।
धा० २१४ ,, : वार्ता। ए तो राजा कूं सुख प्रापत भय। सामंतन की कुण अवस्था हुइ।
धा० २१७ ,, : वार्ता। तब तूं राजा आव देखइ जैसो मदमत्त हस्ती होइ।
धा० २२४ ,, : वार्ता। राजा वहै संग्राम विसै को विवर्जित है।

धा० २३९ के पूर्व : वार्ता । राजा प्रिथीराज फोज बांधत है । भुमरावली छंद इही बांचीइ ।
धा० २८७ ,, : वार्ता । पहिली सामंत सूहू से जिनके नाउ अर वरणनु कहतु है ।
धा० ३४६ ,, : वार्ता । राजा पृथ्वीराज के सेना कहतु है ।
धा० ३६९ ,, : वार्ता । ए सिंघावलोकन कवितु जाणिज्यो ।
धा० ३७९ ,, : म्लेच्छ वर्णन ।
धा० ३८१ ,, : पातिसाह वर्णन ।
धा० ३८२ ,, : वार्ता । विरदावली किसी दीन्ही । साहि भार साहिब सार बरिश साहि कथै कुदार । सबर साहि मान मर्दन । निबर साहि थापराचार । हुरी साहि थाटी तरक्क । नारी साहि मस्तक त्रिसूल । लोली साहि पूर्व साहि पश्चिम साहि दखनी साहि । च्यारि पाहि वेल वीथालित वलेश्वर ।
धा० ३८७ ,, : वार्ता । इतने बात करत गोरी सुरतान जानि महल्ल आय ।
धा० ३८८ ,, : वार्ता । इतनी बात सुणते ततारखां रुस्तमखां मावखां विहंदखां ए च्यारि खान सबर वजीर आनि खरे होइ अरदास करी ।
धा० ३८९ ,, : वार्ता । तबहि सुलतान इस्या—बे ।
धा० ३९० ,, : वार्ता । तबहि वजीर बहुरे ठहुर से अरदास करी ।
धा० ३९१ ,, : वार्ता । बे बोल्यो ।
धा० ४०४[१] ,, : वार्ता । हम तमासगीर हा भाइ बे हुजब खा हवसी इसके साहिब कूं दस हथ राखि गढ्ढो करोउ राजा छइ दिखाउ किस्यो देख्यो ।
धा० ४०५ ,, : वार्ता । राजा हे समस्या माहि आसीर्वाद दीनहु ।
धा० ४१५ ,, : वार्ता । सुरतान जलाल साह की होहि तीन फुरमान मइं दिउंगा ।
धा० ४१७ ,, : वार्ता । चंद बरदिया कहतु हइ । अरे ।
धा० ४१८ ,, : वार्ता । चांद अचरिज जाण्यउ तेन पुनः उक्तः ।
धा० ४२० ,, : वार्ता । चंद फुरमाण मांगिवेकूं जाइ गोरी बादसाहि प्रिथीराज फुरमाण मागइ । तबहि फुरमाण देवे कूं बादिसाहि हजूर हूउ । तब चांद राजा सूं कह्यो प्रिथीराज सबदेस्वर सुरताण सइं मुख फुरमाण देता हइ ।

—:*:—

[१] यह वार्ता मो० में भी है ।

आ. स्वीकृत तथा धा० के अतिरिक्त मो० की पाठ-सामग्री

मो०	अ० फ०	स०	ना०	द०	स०
१—२०[1]					
२४	२. दो० ८	२. दो० ७	२.१२३	२.१४८	१.७५९
२८	—	—	—	२.७१	२.५६४
३७	६. दो० १	खं०	२८.२	२८.४	४८.६
४४	—	—	२८.१९	२८.२०	४८.१०४
४५	—	—	२८.२४	२८.२५	४८.१२५
४६	—	—	२८.२५	२८.२६	४८.१२६
५५	—	—	—	—	—
७३	[७. साट० १]	८.२ आ	२९.२	३१.२	५७.१८
१२२	८. अनु० १	—	३१.१	३३.२	६१.५
१२९	—	—	३१.२	—	—
१५६	—[2]	१०.३५८	३१.६४	३३.५९	६१.४००
१५८	८. दो० २४	१०.१७०	३१.६६	३३.६१	६१.४३१
१६६	—	—	३२.६ अ	—	—
१६७	९. दो० ७	१०.२०५	३२.२ अ ३२.८	३३.७२	६१.४७७
१७०	९. गाथा १	१०.२१०	३२.११	३३.७५	६१.४८२
१७१	९. दो० ८	१०.२१६	३२.१२	३३.७६	६१.४८८
१७७	—	१०.२३५	३२.२६	३३.८३	६१.५११
१७९	—	१०.२३६	३२.२७	३३.८४	६१.५१२
१९०	९. कवि० ३	१०.३१९	३२.८१	३३.१३७	६१.६५५
२०३	—	१०.३५२	३२.९६	३३.१५०	६१.७२८

[1] मो० के प्रारम्भ में खण्डित होने के कारण जो छन्द नहीं रह गए हैं, अनुमान है कि वे लगभग बीस की संख्या में रहे होंगे (दे० भूमिका में मो० प्रति का परिचय)। ये छन्द कौन से रहे होंगे, कहा नहीं जा सकता है।

[2] यह छन्द फ० में ८. भुजं० ८ के बाद अतिरिक्त है।

मौ०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
२१९	—	१०.४४६	३२.१४९	३३.१९४	६१.९१७
२२१	—	१०.४५१	३२.१५२	३३.१९७	६१.९२२
२२४	—	११.७	३३.८	३३.२०५	६१.१००९
२२५	—	११.४३	—	—	६१.१०५८
२२९	—	११.२३	३३.९	३३.२०६	६१.१०२६
२३०	९. कवि० ९	११.४४	३३.१४	३३.२११	६१.१०५९
२३१	९. कवि० १०	११.४५	३३.१५	३३.२१२	६१.१०६०
२३२	९. दो० १३ (?)	११.४९	३३.१९	३३.२१६	६१.१०६४
२३३	९. कवि० १२	११.५१	३३.२०	३३.२१७	६१.१०७३
२३६	—	११.८८	३३.२७	३३.२२४	६१.११३४
२५१	९. दो० ६२	११.१४६	३३.६३	३३.२५६	६१.१२४५
२५२	९. अनु० ५	११.१८४	३३.१००	३३.२८२	६१.१२८४
२६७	९. कुंड० १	११.१७५	३३.८९	३३.२७७	६१.१२७५
२७०	—	११.१८०	३३.९३	३३.२८०	६१.१२८०
२७१	९. कवि० १४	११.१८३	३३.९४	३३.२८१	६१.१२८३
२७२	९. अनु० ५	११.१८४	३३.१००	३३.२८२	६१.१२८४
२७६	९. दो० ७४	१२.१०	३४.५	३३.२९२	६१.१३३७
२७७	९. दो० ७५	१२.११	३४.६	३३.२९३	६१.१३३८
२७८	९. दो० ७६	१२.१२	३३.१०८	३३.२९४	६१.१३३९
२७९	९. अनु० ६	१२.१६	३४.७	३३.२९७	६१.१३४३
२८०	९. दो० ७७	१२.१७	३४.८	३३.२९८	६१.१३४४
३०३	१०. राधा २	१२.४१८	३४.६१ ३६.५	३३.४५७	६१.२०९४
३०४	—	१२.१८४	३४.८९	३३.३७०	६१.१६२१
३२४	११. दो० १/१	१२.२४२	३५.१६	३३.४००	६१.१७७१
३२५	—	१२.२४३	३५.१७	३३.३९९	६१.१७७२
३२८	—	—	—	—	—
३२९	१२. दो० २	१२.४२२	३६.९	३३.४६१	६१.२१००
३३०	१२. दो० ४	१२.४३०	३६.११	३३.४६३	६१.२१०९
३३८	१२. दो० ९	१२.४७१	३६.२१	३३.४७३	६१.२२०५
३४५	१२. दो० १४	१२.५१४	३६.३०	३३.४८१	६१.२२८४
३५८	१२. दो० ५	१२.४२१	३६.८	३३.४६०	६१.२०९९
३५९	११. दो० २६	—	३५.७२	३३.४५२	६१.२०८९
३६०	१२. दो० १	१२.४१४	३६.१	३३.४५३	६१.२०९०
३६१	१२. दो० ३	१२.४२९	३६.१०	३३.४६२	६१.२१०७
३६२	१२. दो० २७	१२.५१२	३७.१७	३३.५१५	६१.२४६३
३६४	—	४.१६	—	—	४९.४३
३६७	१३. प्रवा० [ ]	१२.६१४	३८.१४	३३.५३३	६१.२५१४-२१

मो०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
३६८	१३. साट० १	१२.६१७	३८.२०	३३.५३४	६१.२५२२
३७६	१४. कवि० १		४२.५	३६.४[१]	६६.११९
३७७	—		४२.६	—	—
३७८	—		४२.७	—	—
३७९	—		४२.८	—	—
३८०	१४. अनु० १		४२.१२	३६.६ आ[१]	६६.१२४
३८१	१३. दो० १९		४२.१७	३६.११[१]	६३.१३२
३८२	१४. गाथा २		४२.१६	३६.१०[२]	६६.१२९
३८३	१४. गाथा १		४२.१०	३६.६[२]	६६.१२१
३८४	१४. दो० १		४२.२५	३६.१९[२]	६६.१४०
३८५	१४. दो० १ (?)		४२.२७	—	६६.१४२
४०४	—		४२.६३	—	—
४१३	[१४. दो० १८](?)		४२.७७	३६.७१	६६.२५०
४१५	—		४२.७५	३६.६९	६६.२४८
४१९	—		४२.१२०	३६.१११	६६.३८०
४२०	१४. दो० २२		४२.१२१	३६.११३	६६.३८१
४२१	१४. दो० २७		४२.१२३	३६.११४	६६.३८३
४२३	१४. दो० ३३		४२.१३०	३६.१२३	६६.३९६
४२५	१४. दो० ३४		४२.१३६	३६.१२६	६६.४०१
४२६	१४. दो० ३५		४२.१३७	३६.१२७	६६.४०२
४२७	[१४. दो० ८](?)		४२.९४	३६.८६	६६.२८७
४२८	—		४३.२		
४२९	१५. दो० १		४३.४	—	६६.६३२
४३०	१५. दो० ४		४३.५	३६.१९९	६६.६३३
४३१	१५. दो० ५		४३.८	३६.२०२	६६.६४६
४३२	१५. दो० १		४३.९	३६.२०४	६६.६४८
४३३	१५. मस० [ ]		४३.५	३६.१९९	६६.६३३
४३४	१५. दो० २		४३.६	३६.२००	६६.६३४-६४२
४४०	१५. दो० १६		४३.७	३६.२०१	६६.६४३
४४४	१५. कवि० १७		४३.१६	३६.२३७	६६.७६७
४५१	—		४३.५५	३६.२४६	६६.७७१
४५६	—		४३.१०२	—	—
४५७	—		—	—	—
४५८	४ कवि० १०	खं०	—	—	—
४५९	१२. दो० १८	१२.५३७	१५.२९ ३६.३८	१४.२० ३३.४८८	१३.६५ ६१.२३४९

[१] द० यहाँ पर खंडित है, यह छन्द-संख्या टोंक संग्रह की प्रति सं० १५७ की है।

मो०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
४६०	१६. रसा० ४		४३.१५८	३६.३४५	६६.११८८-९९
४६१	—[१]		४३.१५९	३६.३४६	६६.१२०२
४६२	१६. रसा० ५		४३.१६६	३६.३४७	६६.१२०५-११
४६३	—		४३.१३२	३६.३१८	६६.१०१३
४६४	—		४३.१३३	३६.३१९	६६.१०१४-१९
४७२	१८. दो० १२		४६.६	३७.१३[४]	६७.१७
४७३	१८. दो० १३		४६.८	३७.१४[४]	६७.१८
४७७	१९. दो० ५		४६.२५	३७.४४[४]	६७.१०८
४७८	१९. दो० ६		४६.२९	३७.५२[४]	६७.११७
४७९	१९. दो० ७		४६.३०	३७.५३[४]	६७.११८
४८०	१९. दो० ८		४६.३३	३७.५४[४]	६७.१२१
४८१	१९. दो० ९		४६.३४	३७.५५[४]	६७.१२७
४८२	१९. दो० १०		४६.३५	३७.५६[४]	६७.१४०
४८३	१९. दो० ११		४६.३७	३७.५७[४]	६७.१०७
४९५	१९. दो० ६ (?)		४६.५४	३७.९२[४]	६७.२३८
४९७	१९. दो० [ ]		४६.७३	३७.११५[४]	६७.२७६
४९८	१९. भुजं० ७		४६.७४	३७.११६[४]	६७.२७७-८६
४९९	१९. दो० [ ]		४६.७५	३७.१२६[४]	६७.२८७
५०५	—		४६.८१	३७.१३८[४]	६७.३०६
५०८	—		४६.९१	—	६७.३२०
५०९	१९. भुजं० ८		४६ ७६	३७.१३०[४]	६७.२८८-९४
५२०	—		—	—	—
५२५	—		४६.१२९	३७.२०४[४]	६७.४०१
५३०	१९. दो० ३४/१		४६.१३५	३७.२१०[४]	६७.४०८
५३१	—		४६.१३६	३७.२११[४]	६७.४०९
५३६	[२]		४६.१४०	३७.२२०[४]	६७.४२३
५४०	[३]		४६.१४८	३७.२४६[४]	६७.४४०
५४१	—		४६.१४९	३७.२४७[४]	६७.४५४
५४५	१९. कवि० ८		४६.१६६	३७.२२६[४]	६७.५१९
५४६	१९. अनु० १		४६.१६९	३७.२५१[४]	६७.५१२
	१९. अनु० २				
५४७	१९. कवि० २		४६.१७०	३७.२१८[४]	६७.५२३
५४९	१९. द० ३७		४६.१७२	३७.२५४[४]	६७.५१६
५५०	—		४६.१७३	३७.२७७[४]	६७.५२७

[१] यह छन्द फ० में अ० १६ कवि० २ के बाद है।

[२] यह छन्द फ० में अ० १९. दो० ३६ के बाद है।

[३] यह छन्द फ० में अ० १९ कवि० ५ के बाद है।

[४] यह छन्द-संख्या टॉड संग्रह की प्रति द० के अनुसार है, द० में यह सर्ग नहीं है।

मो० के उपर्युक्त छन्दों में से उनका पाठ जो स० में नहीं हैं, निम्नलिखित

मो० ५५ : दोहरा—तब सबनि मिलि मंत्र कीउ दूती पठावहु च्यारि।
जिनही ग्यान रिपु घृतजि श्रुउ मूझ विप्रयार॥

मो० १२९ : श्लोक—षटरितु द्वादस मासा ग्रहे तिष्ठती राजय।
कृत्वा विचार कनवजें गंतव्य सूभटो युतं॥

मो० १६६ : दोहरा—सुनत हेत हेंजम कठित किहि चंद कवि आवउ।
बलि समान बलिकरन सुत जिहि भूमि मंनन राउ॥
[ना० में स्वीकृत ५.२ इस दोहे का 'पाठांतर' कहकर दिया गया

मो० ३२८ : दोहरा—षोडश सुधा अवगणित तेरह पिहिल छडि।
अवर कहु तु अवर दल परठीऊ राउ सूदिठ॥

मो० ३७७ : दूहा—चलिग दूत समहाय तब जिहि जंगलवै चहुआन।
दरस भेस तिहि संचरि लीइ साह फुरमांन॥

मो० ३७८ : दूहा—दूतन दिन भये अति घने पूछहि सूर सुजांन।
अजहूं तिन कछु सुधि नही मनु जांनि गहे सुरतान॥

मो० ३७९ : अरिल—तब्ब पातिसाह ततार षान पुह सूजीअ।
भरी दीली ते कछू षबरि अजहू अनसूझीअ।
तब ततारषांन अरदास ज बूलीअ।
हे कछू कछु पूब जून दूत कहुं पकरी लीय॥

मो० ४०४ : [दोहरा]—सुणत बोल दासीअ उठित आइ नृप दरबार।
कहि चंद गुरराज इही स्वांमि जणावहु सार॥

मो० ४५१ : [दोहरा]—मरण चिंत चितहि सुदिनु भर भर सूक हि भट।
आज ग्रहन अरु ग्रहन नृपति निलाटहिं पट॥

मो० ४५६ : दोहरा—ताहां फिरु सलष पमार तांहा सिर नांइ प्रथीराज।
जय जय देव ति सवि करहि भइ दुहु दल गाज॥

मो० ४५७ : दोहरा—बोलि सलष प्रथीराज सुनि सो मोमहि इन दिसु।
सवि सूर सामंतहि तिन लगु तुंब छसु॥

मो० ५२० : दूहरा—तब सा साहिब फुरमांन दीअ मुहे पांह सरीस।
इल इथ रक्ष ज्याय नृपति सू जा दे आव असीस॥

उपर्युक्त के अतिरिक्त मो० में निम्नलिखित वियत या वित (वार्ताएँ) आर्त प्रतियों में नहीं मिलती हैं :—

मो० ३० के पूर्व : पुन

मो० ४२ में २० चरणों के बाद : वसंत वर्णन।

मो० ५६ के पूर्व : दूतिका नाम।

मो० १२३ के पूर्व : वियतु। किरणाटी राणी कि आवासि राजा विदा मांगन गयु।

मो० १२४ के पूर्व : वियत। पछि राजा परमारि आवासि विदा मांगन गयु। तब

मो० १२५ के पूर्व : वित। पछि सुषुला आवासि विदा मांगन गयु। तब सांषुली

मो० १२६ के पूर्व : वित। पछि राजा षावेली के अपास विदा मांगन गयु। पछि

मो० १२७ के पूर्व : वित। पछइ राजा कछवाही कइ आवासि विदा मांगन ग
इह कही।

मो० १२८ के पूर्व : वित। षछइ राजा भहिआनी के औंवासि विदा मागन गयु। षछइ भहिआनी इह कही।
मो० १८३ ,, : विरदावली।
मो० २०९ ,, : पान्ननमां।
मो० २११ ,, : संगीत नांम।
मो० २१६ ,, : दांन।
मो० २३५ ,, : अश्व वर्णन।
मो० २८४ के अंतिम १८ चरणों के पूर्व : बाजे के मांम।
मो० ३६३ के पूर्व : कोस गनन।
मो० ३७६ ,, : दूतचार।
मो० ३८१ ,,[1] : वात। तब वर्मान कायथ दिल्ली माहि दूतन कि षवरि दीनी। इतने कहति दूत आये। पातसाहि जिरीध।
मो० ३८५ ,,[2] : असूरी वचनिका। भजी मीसुल तार सुलतान जलालदीन जाया। फुरमांन सिर फुरमांन केदल वास केलास रोह पंधार गषर गिवार वार गिवान षुरासान मूलतान भटनेर भषरषांन। फुरमांन पेसि पूरपेशि वूसमन ओरी आइ हथाइ। सितावी वर परवर राय चामुंड वेरी मरे। सव सामंतन के मन जरे। रायजितसी पासि भेहरा छूटु। वंडीर लाहुर लूटु। देवरा दीवान छंडु। जावुवे विर वडु। राय भुहा गयु देस मुकी। राय माल दे मोति चूकी। षलक आलम अलोय। जीव लिहां चहुआन पोई। हजरत षोदा हि षेल। आस मरदान लेन ठाई। सिंधुआ सुरतांन साहाब दिल्ली सूहि चादर उठाई।
मो० ४२१ के पूर्व : वत। इहि विधि देष्यौ तव सव सामंत चले चुंडराय की वेरी कुटन। तव चुंडराज कहुं।
मो० ४२५ के पूर्व : वत। तव राजा तरवारि छोडि चुंडराय के आगि धरी।
मो० ४७७ ,, : चंद पयांनु।
मो० ४९० ,, : म्लेच्छ वर्णन।
मो० ४९६ ,, : वत। तव चंदु डेरि आयु।
मो० ४९८ ,, : वीर मंत्र।
मो० ५०० ,, : आगलि नीत वर्णन।

—:*:—

[1] यह अ० फ० १४. वार्त्ता २, ना० ४२.११ तथा स० ६६-१२ अ/१ है।
[2] यह अ० फ० १४. वार्त्ता ३४, ना० ४२.२४ तथा २६, स० ६६.१२९ अ तथा १४० अ है।

इ. स्वीकृत, धा० तथा मो० के अतिरिक्त
अ० की
पाठ-सामग्री

अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
१. विरा० २ १. विरा० ४	१. विरा०	३.१-५	२.४	२.३-६७
१. भुजं० ३	१. भुजं०	३.६-२६	२.५	२.६८-७८
१. साट० ३	१. साट०	३.२७	२.५ अ	२.७९
१. दो० १	१. दो० १	३.२९	२.६	२.८०
१. दो० २	१. दो० २	३.३५	२.१२	२.३२४
१. दो० ३	१. दो० ३	३.३६	२.१३	२.३२५
१. नारा० ५	१. नारा०/१	३.३७/१	२.१४/१	२.३२६-३१
१. नारा० ६	१. नारा०/२	३.३७/२	२.१४/२	२.३३२-३५
१. गाथा १	१. गाथा ३	३.३८	२.१५	२.३३६
१. दो० ४	१. दो० ४	३.३९	२.१६	२.३४१
१. त्रो० ७	१. त्रो०	३.४०	२.१७	२.३४२-४६
१. दो० ५	१. दो०	३.४२	२.१९	२.३५४
१. मो० ८	१ मो०	३.४३	२.२०	२.३५५-६५
१. दो० ६	१. दो० १	३.४९	२.२६	२.४२७
१. विरा० ९	१. विरा०	३.५१	२.२८	२.४२९-५५
१. दो० ७	१. दो० १	३.५२	२.२९	२.४५६
१. दो० ८	१. दो० २	३.५३	२.३०	२.४५७
१. दो० ९	१. दो० ३	३.५४	२.३१	२. ४५८
१. विरा० १०	१. विरा०	३.५५	२.३२	२.४५९-६७
१. दो० १०	१. दो०	३.५६	२.३३	२.४६८
१. भुजं० ११	१. भुजं०/१	३.५७-५८	—	—
१. भुजं० १२	१. भुजं०/२	३.५९	२.३४	२.४६९-७८
१. दो० ११	१. दो० १	३.६०	२.३५	२.४७९
१. दो० १२	१. दो० २	३.६२	२.३७	२.४८१
१. दो० १३	१. दो० ३	३.६३	२.३८	२.४८३
१. त्रो० [१३]	१. त्रो०	४३.६	२.३९	२.४८४-८७

अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
१. दो० १४	१. दो० १	३.६५	२.४०	२.३०३
१. दो० १५	—	३.६६	२.४१	२.४८८
१. दो० १६	१. दो० २	३.६७	२.४२	२.४८९
१. दो० १७	१. दो० ३	३.६८	२.४३	२.४९०
१. दो० १८	१. दो० ४	३.६९	२.४४	२.४९१
१. दो० १९	१. दो० ५	३.७०	२.४५	२.४९२
१. दो० २०	१. दो० ६	३.७१	२.४६	२.४९३
१. भुजं० १४	१. भुजं०	३.७२	२.४८	२.४९४
१. दो० २१	१. दो० १	३.७३	२.४९	२.४९६-५०६
१. भुजं० १५	१. भुजं०	३.८२	२.६०	२.५०७
१. त्रिभं० १६	१. त्रिभं०	३.८३	२.६१	२.५१८-१९
१. दो० २२	१. दो० १	३.८४	२.६२	२.५२०-३३
१. रसा० १७	१. रसा०	३.८५	२.६३	२.५३४
१. दो० २३	१. दो० ७	३.८६	२.४७	२.५३५-४१
१. अड़ि० १	१. मुड़ि० १	३.९०	२.६६	२.४९५
१. अड़ि० २	१. मुड़ि० २	—	२.६७	२.५४५
१. दो० २४	१. दो० १	३.१०८	२.७०	२.५४६
१. दो० २५	१. दो० २	—	२.७२	२.५६३
१. [विरा० १८][1]	१. विरा० १	३.११०	२.७३	२.५६५
१. [दो० २६][1]	१. दो० १	३.१११	२.७४	२.५६६-७०
१. विरा० [१९]	१. विरा०	३.११२	२.७५	२.५७१
२. साट० २	२. साट० २	—	१.१३१	२.५७२-८४
२. दो० १ (?)	२. दो० १	२.११८	१.१३५	१.५४४
२. दो० १२	२. दो० २	—	८.९३ अ	१.५५०
२. दो० १३	—	६.७५	८.९४	२४.३७०
२. दो० १४	२. दो० ३	६.७८	८.९७	२४.३७३
२. दो० १५	२. दो० ४	६.७९	८.९८	२४.३७६
२. कवि० ३	२. कवि०	६.८०	८.९९	२४.३८१
२. दो० १६	२. दो०	६.८५	८.१०४	२४.३८३
२. कवि० ४	२. कवि०	६.१०६	८.१४३	२४.३८७
२. दो० १७	२. दो० १	१२.९	२०.१	२४.४८३
२. साट० ४	२. साट० १	१२.१०	२०.२	१८.१
२. दो० १८	२. दो० १	१२.११	२०.३	१८.२
२. कवि० ५	२. कवि० १	१२.१२	२०.४	१८.३
				१८.६

[1] ये छंद अ० की कुछ प्रतियों में नहीं हैं, किन्तु दो० २६ की संख्या बाद में आने वाले १. विरा० [१९] के बाद उनमें भी रक्खी हुई है; भा० (भागचन्द वाली प्रति) तथा फ० में ये छन्द हैं।

अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
२. दो० १९	२. दो० १	१२.१३	२०.१९	१८.३५
२. दो० २०	२. दो० २	१२.१४	२०.२०	१८.४०
२. उधो० ८	२. अघू०	१२.१५	२०.२१	१८.४१-५६
२. कवि० ७	२. कवि० १	१२.१६	२०.२२	१८.५७
२. दो० २ (?)	२. दो० १	४.२१	३.२०	—
२. दो० २ (?)	२. दो० २	४.२२	३.२१	३.४४
३. कवि० १	३. कवि० १	१३.१	२५.१	४५.२०२
३. कवि० २	३. कवि० २	१३.२	२५.२	४५.२०३
३. दो० १	३.१	१३.३	२५.३	४५.२०४
३. दो० २	३.२	१३.४	२५.४	४५.२०५
३. दो० ३	३.३	१३.५	२५.५	४५.२०६
३. नारा० १	३.४	१३.६	२५.६	४५.२०७-०९
३. दो० [४]	३.५	१३.७	२५.७	४५.२१५
३. चौ० १	३.६	१३.८	२५.८	४५.२१६
३. दो० ५	३.७	१३.९	२५.९	४५.२१७
३. कवि० ३	३.८	१३.१०	२५.१०	४५.२१८
३. दो० ६	३.९	१३.११ अ	२६.११	४६.२८
३. दो० ७	३.१०	१३.१२	खं०	४७.२९
३. दो० ८	३.३१	१६.११	२७.१	४७.१
३. दो० ९	—	—	२७.२	४७.२
३. दो० १०	३.१६	१३.१९	२६.१४	४६.३२
३. दो० ११	३.१५	१३.१८	२६.१३	४६.३०
३. दो० १२	३.१७	१३.२१	२६.३६	४६.५६
३. दो० १३	३.१८	१३.२१ अ	२६.३७	४६.५७
३. चौ० २	३. चौ०	१३.२२	२६.३८	४६.५८-६५
३. दो० १४	३. १९	१३.२३	—	४६.६६
३. दो० १५	३.२०	१३.२४	—	४६.६७
३. रछु १	३.२१	१३.२५	२६.३९	४६.६८
३. मोद० ३	३.२२	१३.२६	२६.४०	४६.६९-७१
३. कवि० ४	३.२३	१३.२७	२६.४१	४६.७२
३. रासा [१]	३. [२४]	१३.५३	२६.७२	४६.१०७
३. मुडि० १	३.२५	१३.५४	२६.७३	४६.१०८
३. कवि० ५	३.२६	१३.५५	२६.७४	४६.१०९
३. दो० १६	३.११	१३.१३	—	—
३. कवि० ६	३.१४	१३.१६	२४.३	४५.५१
३. अनु० १	३. श्लो०	१३.१७	२४.४	४५.५२
३. पद्ध० ५	३. २८	१६.३३	२६.[illegible]	४६.१०-२६
३. कवि० ७	३.२७	१३.५६	२६.७६	४६.११[illegible]

अ. फ.	म.	ना.	द.	स.
३. अनु० २	३.२९	१३.५७ / १६.३४	२६.१०	४६.२७ / ४८.१०१
३. दो० १७	३.३०	१३.५८ / १६.३०	१५.२६ / १५.२८	४६.११२ / १४.१६३
४. कवि० १	३.३२	१४.१	१३.१ / २६.७८	१२.१
४. कवि० २	३.३३	१४.१३	१३.२३	१२.५४
४. दो० १	३.३४	१४.१४	१३.२४	१२.५५
४. दो० २	३.३५	१४.१५	१३.२५	१२.५६
४. कवि० ३	३.३६	१४.१४ अ	१३.२६	१२.५७
४. कवि० ४	३.३७	१४.५२	१३.७८	१२.१५४
४. दो० ३	३.३९	१४.५४	१३.८०	१२.१५६
४. कवि० ५	३.४०	१४.५७	—	१२.१६५
४. कवि० ६	३.४१	१४.५८	१३.८३	१२.१६६
४. कवि० ७	३.४२	१४.६१	१३.८६	१२.१६९
४. कवि० ८	३.४३	१४.६२	१३.८७	१२.१७०
४. कवि० ९	खंडित	१५.६	१४.७	१२.३५ / १२.१७१
४. दो० ४	,,	१५.१७	१४.१८	१३.६२
४. सुजं० १	,,	१५.१८	१४.१९	१३.६३-६४
४. कवि० ११	,,	१५.२०	१४.२१	१३.६६
४. कवि० १२	,,	१५.२१	१४.२२	१३.६७
४. दो० ५	,,	१५.२२	१४.२३	१३.६८
४. अडि० १	,,	१५.३३	१४.३८	१३.१२९
४. दुमि० २	,,	१५.३४	१४.३९	१३.१३०-३२
४. कवि० १३	,,	१५.४२	१४.५०	१३.१५४
४. कवि० १४	,,	१५.४१	१४.४९	१३.१५३
४. अडि० २	,,	१५.४३	१४.५१	१३.१५५
४. दो० ६	,,	१५.३५	१४.४० / १४.४८	१३.१५२
४. कवि० १५	,,	१५.४४	१४.५२	१३.१५६
५. चौ० १-१०	,,	१४.७०	१३.९७	१२.२१७-२७
५. साट० १	,,	१४.७१	१३.९९	१२.२३०
५. गाथा १	,,	१४.७३	१३.१००	१२.२३२
५. नारा० १	,,	१४.७२	१३.९८	१२.२२८
५. त्रिभं० २	,,	१४.८३	१३.१११	१२.२५१-५६
५. अडि० १	,,	१४.७५	१३.१०२	१२.२३८
५. त्रिभं० ३.* दो	,,	१४.८४	१३.११४	१२.२६३

अ. क.	म.	ना.	द.	स.
५. दो० १	ख०	१४.८५	—	१२.२३९
५. कवि० १	,,	१४.८६	१३.११५	१२.२७२
५. भुजं० ४	,,	१४.९१ अ	१३.१२१	१२.२७८
५. साट० २	,,	१४.९२	१३.१२२	१२.२७९
५. साट० ३	,,	१४.९३	१३.१२३	१२.२८०
५. साट० ४	,,	१४.९४	१३.१२४/१	१२.२८१
५. साट० ५	,,	१४.९५	१३.१२४/२	१२.२८२
५. चूर्णिका १	,,	१४.९५ अ	१३.१२१ अ	१२.२७८ अ
५. दो० २	,,	१४.१०३	१३.१३८	१२.३०४
५. दो० ३	,,	१४.१०४	१३.१३९	१२.३०५
५. भुजं० ५	,,	१४.१०५	१३.१४०	१२.३०६
५. कवि० २	,,	१४.१०६	१३.१४१	१२.३०७
५. भुजं० ६	,,	१४.११४	१३.१४९	१२.३१८
५. कवि० ३	,,	१४.११५	१३.१५०	१२.३१९
५. दो० ४	,,	१४.११६	१३.१५१	१२.३२०
५. भुजं० ७	,,	१४.११७	१३.१५२	१२.३२१
५. कवि० ४	,,	१४.११९	१३.१५४	१२.३२३
५. कवि० ५	,,	१४.१२०	१३.१५५	१२.३२४
५. दो० ५	,,	१४.१२१	१३.१५६	१२.३२५
५. कवि० ६	,,	१४.१४७	१३.१८३	१२.३५५
५. कवि० ७	,,	१४.१४८	१३.१८४	१२.३५६
५. दो० ६	,,	१४.१४९	१३.१८५	१२.३५७
५. भुजं० ८	,,	१४.१५०	१३.१८६	१२.३६३
५. वेली० ९	,,	१४.१५० अ	१३.१८७	१२.३६६-७३
५. दो० ७	,,	१४.१५१	१३.१८९	१२.३८५
५. दो० ८	,,	१४.१५२	१३.१८८	१२.३८४
५. दो० ९	,,	१४.१५३	१३.१९०	१२.३८६
५. दो० १०	,,	१४.१५४	१३.१९१	१२.३८७
५ कवि० ८	,,	१४.१५५	१३.१९२	१२.३८८
५. रसा० १०	,,	१४.१५६	१३.१९३	१२.३८९-९१
५. कवि० ९	,,	१४.१५७	१३.१९४	१२.३९२
५. भुजं० ११	,,	१४.१५८	१३.१९७	१२.३९५-९७
५. दो० ११	३.३८	१४.५३	१३.७९	१२.१५५
५. दो० १२	खं०	१६.२९	१५.२७	१४.१६४
६. अनु० १	,,	१६.३५	२८.३	४७.३
६. नारा० [३]	,,	२८.१ / ३०.०	२८.३ अ	४८.२-५
६. दो. ६	५.३२	२८.५८	२९.१७	५०.३५०

अ. क.	म.	ना.	द.	स.
६. गाथा ३	खं०	२८.८	२८.१०	४८.७६
६. गाथा ४	,,	२८.१०	२८.१२	४८.८०
६. गाथा ५	५.१७	२८.५३ अ	२९.१२	५०.२१
६. दो० ९	५.४०	२८.६६	२९.२६	५०.४४
६. दो० १०	५.३९	२८.६५	२९.२५	५०.४३
६. गाथा ६	खं०	२८.१४	२८.१६	४८.८६
६. दो० ११	—	२८.५५	२९.१४	—
६. दो० १२	५.१४	२८.५१	२९.१०	५०.१५
७. कवि० १	८.२	२९.१	३१.१	५७.१७
७. अनु० [ ]	८.८	२९.३२	३१.२९	५७.७२
७. दो० ६	८.१३	२९.३५	३१.३५	५७.८२
७. दो० ७	८.१४	२९.३६	३१.३६	५७.८३
७. दो० ८	८.१५	२९.३७	३१.३७	५७.८४
७. दो० ९	८.१६	२९.३८	३१.३८	५७.८५
७. दो० १०	८.१७	२९.३९	३१.४०	५७.८६
७. गाथा ४	८.४०	२९.६१	३१.६४	५७.२३५
७. गाथा ५	८.४२	२९.६५	३१.६६	५७.२३८
८. भुजं० १	१०.३८	३१.५ आ	३३.६	६१.१०९-३२
८. दो० २	१०.५८	३१.१७	३३.१३	६१.१७८
८. दो० ३	१०.५७	३१.१६	३३.१२	६१.१७७
८. दो० ४	१०.५९	३१.१८	३३.१४	६१.१७९
८. दो० ५	१०.६०	३१.१९	३३.१५	६१.१८०
८. दो० ६	१०.४८ १०.५०	३१.७	३३.८	६१.१४२ ६१.१४४
८. कवि० २७	१०.५१	३१.८	३३.९	६१.१४५
८. दो० ३ (?)	१०.५३	३१.९ ३१.१३	३३.१०	६१.१५५
८. दो० ८	१०.५६	३१.१५	३३.११	६१.१७६
८. दो० १५	१०.१२९	३१ अ. २८ ३१ अ. ३७	३३.२९	६१.३१८
८. दो० १६	—	३१ अ. २९	३३.३०	६१.३११
८. मुडि० [१]	१०.१२८	३१ अ. ३०	३३.३१	६१.३१४
८. मुडि० २	१०.१३२	११ अ. ३५	३३.३३	६१.३२१
८. दो० १७	१०.१३५	३१ अ. ३६	३३.३४	६१.३२५
९. दो० १	१०.१७६	२१ अ. ७०	३३.६४	६१.४४८
९. दो० ४	१०.१९९	३२.७	३३.७१	६१.४७१
९. अनु० १	१०.१९६	३२.५	३३.६९	६१.४६८
९. दो० ५	१०.१९८	३२.६	३३.७०	१.४७०

अ. फ.	म.	मा.	द.	स.
९. भुजं० १	१०.२२०	३२.१४	३३.७८	६१.४९२-९
९. छन्द २	१०.२२४-२७	३२.१८-२१	३३.७९	६१.५००-१
९. दो० ९	१०.२४८	३२.३३	३३.९१	६१.५५०
९. दो० १०	१०.२६३	३२.३४	३३.९२	६१.५६७
९. कवि० १	१०.२६६	३२.३५	३३.९३	६१.५७०
९. दो० १८	१०.२७९	३२.४६	३३.१०२	६१.५९०
९. दो० १९	१०.२८०	३२.४७	३३.१०३	६१.५९१
९. पद्ध० ४	१०.२८१	३२.४८	३३.१०४	६१.५९२-९
९. दो० २०	१०.३१६	३२.७८	३३.१३४	६१.६५२
९. दो० २१	१०.२६९	३२.४३	३३.९६	६१.५७९
९. दो० २२	१०.३३३	३२.८४	३३.१४०	६१.६८९
९. दो० ३३	१०.३८९	३२.११८	३३.१७०	६१.८१५
९. मुडि० ६	१०.३९०	३२.११९	३३.१७१	६१.८१६
९. मुडि० ७	१०.३९१	३२.१२०	३३.१७२	६१.८१७
९ मुडि० ८	१०.३९२	३२.१२१	३३.१७३	६१.८१८
९. मुडि० ९	१०.३९३	३२.१२२	३३.१७४	६१.८१९
९. मुडि० १०	१०.३९४	३२.१२३	३३.१७५	६१.८२०
९. मुडि० ११	१०.३९५	३२.१२४	३३१.१७६	६१.८२३
९. दो० ३४	१०.३९८	३२.१२६	—	६१.८२५
९. दो० ३५	१०.४०२	३२.१२९	३३.१७९	६१.८३०
९. दो० ४४	१०.४४९	३२.१५०	३३.१९५	६१.९२०
९. दो० ४९	—	३३.१३	३३.२१०	—
९. कवि० ६	११.१	३३.१	३३.२०१	६१.९८१
९. कवि० ७	११.२	३३.२	३३.२०२	६१.९८२
९. कवि० ८	११.५	३३.६	३३.२०३	६१.१००७
९. कवि० ११	११.४६	३३.१६	३३.२१३	६१.१०६१
९. दो० ५१	११.५२	३३.२१	३३.२१८	६१.१०७१
९. [कवि०] १३	११.५३	३३.२२	३३.२१९	६१.१०७५
९. दो० ५२	११.५४	३३.२३	३३.२२०	६१.१०७६
९. गाथा ३	११.११६	३३.५९	३३.२५२	६१.१२०९
	११.१२३			६१.१२१६
९. गाथा ४	११.११७	३३.६०	३३.२५३	६१.१२१०
९. दो० [ ]	११.१६१	३३.७७	३३.२६६	६१.१२६१
९. मुडि० १६	११.१६८	३३.८२	३३.२७१	६१.१२६८
९. दो० ६७	११.१६९	३३.८३	३३.२७२	६१.१२६९
९. दो० ६८	११.१७०	३३.८४	३३.२७३	६१.१२७०
९. दो० ६९	११.१७१	३३.८५	३३.२७४	६१.१२७१
९. कवि० १५	११.१८५	३३.१०१	३३.२८३	६१.११८५

अ. क.	म.	ना.	व.	स.
९. कवि० १६	१२.१९६	३३.१०३	३३.२८५	६१.१२९६
९. गाथा ४	१२.१	३४.१	३३.२८८	६१.१३२८
९. दो० ७१	१२.२	३४.२	३३.२८९	६१.१३२९
९. दो० ७२	१२.३	३४.३	३३.२९०	६१.१३३०
९. दो० ७३	१२.९	३४.४	३३.२९१	६१.१३३६
१०. कवि० १	१२.३९	३४.२२	३३.३११	६१.१३९९
१०. दो० ५	१२.४२	३४.२४	३३.३१३	६१.१४०२
१०. दो० ६	१२.४४	३४.२५	३३.३१४	६१.१४०४
	१२.४५	३४.२६	३३.३१५	६१.१४०५
१० दो० ७	१२.४७	३४.२७	३३.३१६	६१.१४०७
१० कवि० २	१२.४८	३४.२८	३३.३१७	६१.१४०० ६१.१४०८
१०. दो० [ ]	१२.५०	३४.२९	३३.३१८	६१.१४१०
१०. दो० ८	१२.५१	३४.३०	३३.३१९	६१.१४११
१०. दो० ९	१२.५२	३४.३१	३३.३२०	६१.१४१२
१०. दो० २ (?)	१२.१११	३४.४९	३३.३३८	६१.१५३०
१०. कवि० ३	१२.५६	३४.३५	३३.३२४	६१.१४२३
१०. कवि० ४	१२.११३	३४.५२	३३.३४१	६१.१५३२
१०. कवि० ६	१२.११७	३४.५४	३३.३४३	६१.१५३३
१०. दो० ११	१२.१२३	३४.५८	३३.३४७	६१.१५४६
१०. कवि० ८	१२.१२९	३४.६३	३४.३५१	६१.१५५२
१०. दो० १२	१२.१३३	३४.६४	३३.३५२	६१.१५५७
१०. कवि० ९	१२.१३४	—	३३.३५३	६१.१५५८
१०. कवि० १०	१२.१४५	३४.७१	३३.३५६	६१.१५६९
१०. कवि० ११	१२.१४६	३४.७२	३३.३५७	६१.१५७०
१०. दो० १३	१२.१४७	३४.७३	३३.३५८	६१.१५७१
१०. मुक्ति० १	१२.१८८	३४.९१	३३.३७२	६१.१६२९
१०. कवि० १२	१२.१९८	३४.९८	३३.३७९	६१.१६५८
१०. कवि० १३	१२.१९९	३४.९९	३३.३८०	६१.१६५९
१०. कवि० १४	१२.२०१	३४.१००	३३.३८१	६१.१६६४
११. मोती० १	१२.२३२ १२.२३७/२	३५.१०	३३.३९३	६१.१७३५-४३ ६१.१७५३-५४
११. कवि० ५	१२.२३८	३५.११	३३.३९४	६१.१७५६
११. दो० २	१२.२३९	३५.१२	३३.३९५	६१.१७५७
११. पद्ध० २	१२.२४०	३५.१३	३३.३९६	६१.१७५८-६९
११. दो० ४	१२.२४७	३५.१५ ३५.२०	३३.३९८	६१.१७७६
११. कवि० ६	१२.२४८	३५.२१	३३.४०२	६१.१७७७

अ क्र०	म०	ना०	द०	स०
११. छंद ३	१२.२४९	३५.२२	३३.४०३	६१.१७७८-८९
११. दो० ५	१२.२५०	३५.२३	३३.४०४	६१.१७८८
११. दो० ६	१२.२५१	३५.२४	३३.४०५	६१.१७८९
११. कवि० ७	१२.२५२	३५.२५	३३.४०६	६१.१७९०
११. कवि० ८	१२.२७७	३५.२६	३३.४०७	६१.१८३०
११. कवि० ९	१२.२७८	३५.२७	३३.४०८	६१.१८३१
११. छंद ४	१२.२७९	३५.२९	३३.४१०	६१.१८३२-४८
११. कवि० १०	१२.२८०	३५.३०	३३.४११	६१.१८४६
११ कवि० ११	१२.३१४	३५.३१	३३.४१२	६१.१९१७
११. दो० ७	१२.३१५	३५.३२	३३.४१३	६१.१९१८
११. त्रोट० ५	१२.३१६	३५.३३	३३.४१४	६१.१९१९-२३
११. दो० ८	१२.३२२	३५.३६	३३.४१६	६१.१९३४
११. दो० ९	१२.३२३	३५.३७	३३.४१७	६१.१९३५
११. दो० १०	१२.३२४	३५.३८	३३.४१८	६१.१९३६
११. कवि० १३	१२.३२५	३५.३९	३३.४१९	६१.१९३७
११. कवि० १४	१२.३२६	३५.४०	३३.४२०	६१.१९३८
११. कवि० १५	१२.३२७	३५.४१	३३.४२१	६१.१९६१
११. दो० ११	१२.३४१	३५.४९	३३.४३०	६१.१९७१
११. कवि० १६	१२.३४२	३५.५०	३३.४३१	६१.१९७२
११. कवि० १७	१२.३४३	३५.५१	३३.४३२	६१.१९७३
११. दो० १२	१२.३४८	३५.५२	३३.४३३	६१.१९८५
११. दो० १३	१२.३५०	३५.५३	३३.४३४	६१.१९८७
११. दो० १४	१२.३४४	३५.५४	३३.४३५	६१.१९७४
११. दो० १५	—	३५.५५	३३.४३६	—
११. कवि० १८	१२.३६३	३५.५६	३३.४३७	६१.२००८
११. दो० १६	१२.३६४ अ	३५.५७	३३.४३८	६१.२०१०
११. कवि० १९	१२.३७६	३५.५८	३३.४३९	६१.२०३६
११. कवि० २०	१२.३७८	३५.५९	३३.४४०	६१.२०३८
११. भुजं० ७	१२.३७९	३५.६०	३३.४४१	६१.२०३९-४१
११. कवि० २१	१२.३८०	३५.६१	३३.४४२	६१.२०४२
११. दो० १७	१२.३८१	३५.६२	३३.४४३	६१.२०४३
११. दो० १८	१२.३८२	३५.६३	३३.४४३ अ	६१.२०४४
११. दो० १९	१२.४१५	३६.२	३३.४५४	६१.२०९१
११. दो० २०	१२.४१७	३६.३	३३.४५६	६१.२०९३
११. त्रो० ८	१२.४१९	३६.६	३३.४५८	६१.२०९५-
११. दो० २१	१२.४२०	३६.७	३३.४५९	६१.२०९८
११. कवि० २८	१२.४०६	३५.६४	३३.४४४	६१.२०७९
११. कवि० २९	१२.४०७	३५.६५	३३.४४५	६१.२०८०

स	ना.	द.	स.
१२.४०८	३५.६६	३३.४४६	६१.२०८१
१२.४०९	३५.६७	३३.४४७	६१.२०८२
१२.४१०	३५.६८	३३.४४८	६१.२०८३
१२.४११	—	३३.४४९	६१.२०८४-८६
१२.४१२	३५.७०	३३.४५०	६१.२०८७
१२.४१३	३५.७१	३३.४५१	६१.२०८८
१२.४७०	३६.१४	३३.४६६	६१.२२०४
१२.५६४	३७.४	३३.५०४	६१.२४०२
१२.५७६	३७.७	३३.५०५	६१.२४३४
१२.५७०	३७.८	३३.५०६	६१.२४३५
१२.५६२	३६.४४	३३.४९४	६१.२४०१
१२.५७२	३७.१	३३.५००	६१.२४३०
१२.५७३	३७.२	३३.५०२	६१.२४३१
१२.५८०	३७.९	३३.५०७	६१.२४३८
१२.५७४	३७.३	३३.५०३	६१.२४३३
१२.५८१	३७.११	३३.५०८	६१.२४३९-५२
१२.५८७	३७.१३	३३.५१०	६१.२४५८
१२.५८९	३७.१३ अ	३३.५११	६१.२४६०
१२.५९०	३७.१४	३३.५१२	६१.२४६१
१२.५९१	३७.१५	३३.५१३	६१.२४६२
१२.५८३	३७.१६	३३.५१४	६१.२४५४
१२.५८५	३७.१८	३३.५१६	६१.२४५६
१२.५८६	३७.१०	३३.५१७	६१.२४५७
१२.६०७			६१.२४८९
१२.५९९	३७.२१	३३.५२०	६१.२४८०
१२.५९८	३७.१९	३३.५१९	६१.२४६९-७९
१२.५९६	३८.१	३३.५१८	६१.२४६७
१२.६००	३८.२	३३.५२१	६१.२४८१
१२.६०१	३८.३	३३.५२२	६१.२४८२
१२.६२२	३८.५	३३.५२४	६१.२५३७
१२.१३७७[1]	३८.४७	३३.५३५	६१.२५४६
१२.१३८१[2]	३८.५१	३३.५४०	६१.२५५०
१२.३८४[3]	३८.५५	३३.५४३	६१.२५५३
१२.६२६	३८.१८	३३.५४४	६१.२५४१
९.४	३९.४	३५.५	६२.१

छन्द-संख्याएं पूरे कन्नौज-प्रकरण की सम्मिलित छन्द-संख्याएँ लगती है।

अ. फ.	म.	ना.	द.	स.
१३. [ ]	९.३	३९.५	३४.४	६६.२०२ ?
				६१.२१-२४
१३. [ ]	९.७	३९.११	३४.११	६१.३१
१३. [ ]	९.८	३९.१२	३४.१२	६१.३२-३४
	९.१२	३९.१५	३४.१४ अ	६१.४३-४५
		४१.२		
१३. कवि० १		३९.१७	३४.१५	६४.९
१३. कवि० २		३९.१८	३४.१६	६४.१०
१३. कवि० ३		३९.१९	३४.१७	६४.२७
१३. कवि० ४		३९.१६	३४.१९	६४.३४
		३९.२१		
१३. कवि० ५		३९.२०	३४.१८	६४.२८
१३. दो० ११		३९.२२	३४.२०	६४.३५
१३. भुजं० [ ]		३९.२३	३४.२१	६४.३६-३८
		३९.२५	३४.२३	६४.४०-४२
१३. कवि० [ ]		३९.६७	३४.६१	६४.१४८
१३. दो० १२		३९.२६	३४.२४	६४.५१
१३. कवि० ६		३९.२७	३४.२५	६४.४५
१३. कवि० ७		३९.२८	३४.२६	६४.५०
१३. कवि० ८		३९.३३	३४.२८	६४.७७
१३. कवि० ९		३९.३६	३४.३०	६४.८७
१३. दो० १३		३९.३७	३४.३१	६४.९२
१३. कवि० १०		३९.३९	३४.३३	६४.१०६
१३. कवि० ११		३९.४०	३४.३४	६४.१०७
१३. कवि० १२		——	३४.३५	६४.११०
१३. कवि० १३		३९.४१	३४.३७	६४.११५
१३. कवि० १४		३९.४३/१	३४.३८	६४.११६
१३. कवि० १५		३९.४३/२	३४.३९	६४.११८
१३. दो० १४		३९.६३	३४.५९	६४.१४६
१३. अनु० १		३९.६५	३४.६०	६४.१४७
१३. कवि० १६		३९.४५	३४.४१	६४.१२२
१३. कवि० १७		३९.७०	३४.६६	६४.१५५
१३. कवि० १८		३९.८१	३४.७५	६४.१८५
१३. दो० १५		३९.८५	३४.७९	६४.१९१
१३. कवि० १९		३९.८९	३४.८१	६४.१९३
१३. कवि० २०		३९.९३	३४.८४	६४.१९६
१३. कवि० २१		३९.१०७	३४.९७	६४.२२३
१३. छंद [ ]		३९.११३	३४.१०५	६४.२३९-४५

अ. क.	म.	ना.	द.	ष.
१३. छंद [ ]		३९.१२१	३४.११२/१	६४.२८३-३०१
१३. [कवि० २२]		३९.१२३	३४.११४	६४.३३५
१३. छंद [ ]		—	३४.११४	६४.३४२-४५
१३. [कवि० २३]		३९.१२४	—	६४.३४६
१३. दो० १६		३९.१३८	—	६४.३६३
१३. दो० १७		३९.१४०	३४.१३०	६४.३६४
१३. दो० १८		३९.१४२	३४.१३१	६४.३६६
१३. कवि० २४		३९.१४४	३४.१३४	६४.३७१
१३. [ ]	९.१५	४१.५	३४.१७३	६१.५४-५९
१३. [ ]	९.१९	४१.८	३४.१७७	६१.६५-७१
१३. [ ]	९.२२-२३	४१.१२	३४.१८०	६२.१२९-४०
१४. कवि० ६		४२.१०३	३६.८७	६६.३२२
१४. कवि० ७		४२.१०४	३६.९७	६६.३५४
१४. कवि० ८		४२.१०८	३६.१०१	६६.३६०
१४. कवि० ९		४२.१०९	३६.१०२	६६.३६२
१४. कवि० १०		४२.११०	३६.१०३	६६.३६४
१४. कवि० ११		४२.११४	३६.१०७	६६.३७२
१४. दो० १ (?)		४२.११६	—	६६.३७५
१४. दो० २ (?)		४२.११५	—	६६.३७४
१४. कवि० १२		४२.११७	३६.१०८	६६.३७६
१४. दो० २१		४२.११८	३६.१०९	६६.३७८
१४. दो० २३		४२.११९	३६.११०	६६.३७९
१४. दो० २४		४२.१२५	३६.११७	६६.३८८
१४. दो० २५		४२.१२४	३६.११६	६१.३८५
१४. दो० २६		४२.१३८	३६.१२८	६६.४०३
१४. दो० २८		४३.१३४	३६.१२५	६६.३९९
१४. दो० [ ]		४२.१३९	३६.१२९	६६.४०५
१४. दो० २८ (?)		४२.१४०	३६.१३०	६६.४०६
१४. दो० २९		४२.१३२	३६.११८	६६.३९०
१४. दो० ३०		४२.१२६	३६.११९	६६.३८६
१४. कवि० १३		४२.१२७	३६.१२०	६६.३९१
१४. दो० ३१		४२.१२८	३६.१२१	६६.३९२
१४. दो० ३२		४२.१२९	३६.१२२	६६.३९४
१४. दो० ३६		४२.१४१	—	६६.४११
१४. भुजं० २		४२.१४२	—	६६.४१३-१५
१४. दो० ३७		४२.१४३	—	६६.४२१
१४. कवि० १५		४२.१४५	—	६६.४२४
१४. कवि० १६		४२.१४६	३६.१३१	६६.४२५

अ. फ.	म.	ना.	द.	स.
१४. रसा० ३		४२.१४७	३६.१३६	६६.४२६-३२
१४. कवि० १७		४२.१४८	३६.१३७	६६.४३३
१४. कवि० १८		४२.१४९	३६.१३८	६६.४३४
१४. कवि० १९		४२.१५०	३६.१३९	६६.४३५
१४. कवि० २०		४२.१५१	३६.१४०	६६.४३६
१४. कवि० २१		४२.१५२	३६.१४१	६६.४३७
१४. दो० ३८		४२.१५३	३६.१४२	६६.४४०
१४. भुजं० ४		४२.१५८-५९	३६.१४६	६६.४४६-५८
१४. दो० ३९		४२.१६०	३६.१४७	६६.४५९
१४. दो० ४०		४२.१६१	३६.१४८	६६.४६१
१४. दो० ४१		४२.१६२	३६.१५०	६६.४६२
१४. दो० ४२		४२.१६७	३६.१५५	६६.४७४
१४. कवि० २२		४२.१६९	३६.१५७	६६.४७८
१४. कवि० २३		४२.१७०	३६.१५८	६६.४७९
१४. कवि० २४		४२.१७१	३६.१५९	६६.४८०
१४. दो० ४३		४२.१७२	३६.१६०	६६.४९०
१४. कवि० २५		४२.१७३	३६.१६१	६६.४८१
१४. कवि० २६		४२.१७४	३६.१६२	६६.४८२
१४. कवि० २७		४२.१७५	३६.१६३	६६.४८७
१४. कवि० २८		४२.१७६	३६.१६४	६६.४८८
१४. कवि० २९		४२.१७७	३६.१६५	६६.४८९
१४. कवि० ३०		४२.१७८	३६.१६६	६६.४९१
१४. कवि० ३१		४२.१८१	३६.१६९	६६.४९५
१४. कवि० ३२		४२.१८३	३६.१७१	६६.४९६
१४. कवि० ३३		४२.१८२	३६.१७२	६६.४९७
१४. कवि० ३४		४२.१८४	३६.१७३	६६.५०१
१४. कवि० ३५		४२.१८७	३६.१७५	६६.४९९
१४. छंद ५		४२.२०३	३६.१८९	६६.५७९-८२
१४. दो० ४४		४२.१८०	३६.१६८	६६.४९४
१४. दो० ४५		४२.१७९	३६.१६७	६६.४९३
१४. कवि० ३६		४२.१८८	३६.१७६	६६.५०४
१४. कवि० ३७		४२.१८९	३६.१७७	६६.५०६
१४. कवि० ३८		४२.१९३	—	६६.५१६
१५. कवि० १		४३.१	३६.१९७	६६.६१२
१५. मोती० १		४३.३	—	६६.६१४-३०
१५. दो० ३		४३.१०	३६.२०३	६६.६४७
१५. दो० ६		४३.११	३६.२०५	६६.६५६
१५. कुंड० १		४३.१२	३६.२०६	६६.६५८

ना.	द.	स.
४३.१४	३६.२०८	६६.६६४
४३.१५	३६.२०९	६६.६६६
४३.१६	३६.२१०	६६.६७०
४३.१८	३६.२११	६६.६७१
४३.१९	३६.२१२	६६.६७३
४३.२०	३६.२१३	६६.६७६
४३.२१	३६.२१४	६६.६७७
४३.२२	३६.२१५	६६.६७९
४३.२३	३६.२१६	६६.६८०
४३.३०	३६.२२३	६६.७००
४३.३१	३६.२२५	६६.७०१
४३.३२	—	६६.७०३
४३.२४	३६.२१७	६६.६८७
४३.२५	३६.२१८	६६.६८८
४३.३३	३६.२२६	६६.७१२
४३.३४	३६.२२७	६६.७१३
४३.३५	—	६६.७१५
४३.३७	३६.२२९	६६.७२५
४३.३८	३६.२३०	—[1]
४३.३९	३६.२३१	६६.७६१
४३.४१	३६.२३३	६६.७६२
४३.४२	३६.२३४	६६.७६३
४३.४३	—	६६.७६४
४३.४४	३६.२३५	६६.७६५
४३.४५	३६.२३६	६६.७६६
४३.१२६	३६.३१४	६६.१००८
४३.१०५	३६.२९३	६६.९२९
४३.१११	३६.२९९	६६.९५२
४३.११२	३६.३००	६६.९५३
४३.१२७	३६.३१५	६६.१०१०
४३.१३४	—	६६.१०२१
४३.१३५	३६.३२२	६६.१०५७
४३.१३६	३६.३२३	६६.१०६७-७३
४३.१५०	—	६६.१३२५
४३.१५१	३६.३३८	६६.११७५
४३.१५३	३६.३४०	६६.११७७

१ उसका ६३.३८५ है।

अ. क.	म.	ना.	द.	श.
१६. कवि० ९		४३.१५२	३६.३३९	६६.११७६
१६. दो० १		४३.११०	३६.२९८	६६.९९४
१६. कवि० १०		४३.१६०	३६.३४८	६६.१२१३
१६. कवि० ११		४३.१५५	—	६६.११८२
१६. दो० १२ (?)		४३.१५६	३६.३४२	६६.११८४
१६. कवि० १२		४३.१५७	३६.३४४	६६.११८५
१६. कुंड० १		४३.१७२	३६.३५०	६६.१२४६
१६. दो० ४		४३.१७१	३६.३४९	६६.१२४५
१६. दो० ५		४३.१६२	३६.३५१	६६.१३२२
१६. दो० ६		४३.१७३	३६.३५२	६६.१३२३
१६. दो० ७		४३.१७४	३६.३५३	६६.१२४८
१६. मुडि० १		४३.१५४	३६.३४१	६६.११७८-७९
१६. कवि० १३		४३.१८३	—	६६.१४४८
१६. कवि० १४		४४.२	—	६६.१४३९
१६. कवि० १५		४३.१७५	—	६६.१४४९
१६. रसा० ६		४३.१७६	३६.३५४	६६.१४१७-२२
१६. कवि० १६		४१.१७७	—	६६.१२५८
१६. कवि० १७		४३.१७८	३६.३५६	६६.१२६८
१६. कवि० १८		४३.१७९	३६.३५७	६६.१२९०
१६. कवि० १९		४३.१८०	३६.३५८	६६.१४२३
१६. कवि० २०		४३.१८१	३६.३५९	६६.१४२४
१६. कवि० २१		४३.१८२	३६.३६०	६६.१४२५
१६. कवि० २२		४३.१८४	३६.३६१	६६.१४५०
१६. कवि० २३		४३.१८५	३६.३६२	६६.१४५३
१७. कुंड० १		४४.१	—	६६.१४५४
१७. कवि० १		४४.३	—	६६.१४३८
१७. त्रोट० [१]		४४.७	३६.३६९	६६.१४४३-४७
१७. कुंड० २		४४.८	३६.३७०	६६.१४२६
१७. कवि० २		४४.१३	३६.३७५	६६.११२७
१७. कवि० ३		४४.१४	३६.३७६	६६.११२८
१७. कवि० ४		४४.१५	३६.३७७	६६.११२९
१७. विज्जु० [२]		४४.१७	—	६६.११३०-३२
१७. कवि० ५		४४.१८	३६.३७९	६६.११३५
१७. कवि० ६		४४.३२	३६.३९३	६६.१३२९
१७. कवि० ७		४४.३४	३६.३९५	६६.१३४९
१७. साट० १		४४.२२	३६.३८३	६६.१४७१
१७. साट० २		४४.२३	३६.३८४	६६.१४७२
१७. साट० ३		४४.२४	३६.३८५	६६.१४७३

अ. क.	म.	ना.	द.	स.
१७. साट० ४		४४.२५	३६.३८६	६६.१४७४
१७. साट० ५		४४.२६	३६.३८७	६६.१४७५
१७. साट० ६		४४.२७	३६.३८८	६६.१४७६
१७. साट० ७		४४.२८	३६.३८९	६६.१४७७
१७. कवि० ८		४४.२९	—	६६.१३२६
१७. कवि० ९		४४.३०	३६.३९१	६६.१३२७
१७. कवि० १०		४४.३१	३६.३९२	६६.१३२८
१७. कवि० ११		४४.३३	३६.३९४	६६.१३३०
१७. दो० १		४४.३५	३६.३९६	६६.१४०६
१७. दो० २		४४.३६	३६.३९७	६६.१४०७
१७. भुजं० ३		४४.३७	—	६६.१४०८-१२
१७. कवि० १२		४४.३८	३६.३९८	६६.१४७८
१७. कवि० १३		४४.३९	३६.३९९	६६.१४७९
१७. कवि० १४		४४.४०	३६.४००	६६.१४८०
१७. मोती० ४		४४.४२	—	६६.१४८१-८३
१७. कवि० १५		४४.१९	३६.३८०	६६.१४५६
१७. कुंड० ३		४४.२०	३६.३८१	६६.१४५७
१७. त्रो० ५		४४.२१	३६.४०१	६६-१४५८-६४
१७. दो० ३		३८.२०	३५.७	६२.९
१७. मुद्रि० १		३८.२१	३५.८	६२.८
१७. मुद्रि० २		३८.२२	३५.९	६२.१०
१७. कुंड० ४		३८.७०	३५.४९-५०	६२.१०३
१७. दो० ४		४४.४४	३६.४०१	६६.१४८४
१७. दो० ५		४४.४५	३६.४०२	—
१७. दो० ६		४४.४६	३६.४०३	६६.१५००
१७. दो० ७		४४.४७	३६.४१४	६६.१५०१
१८. दो० १		४४.४८	३६.४०५	६६.१५०२
१८. कवि० १		४५.१	३६.४०६	६६.१५०३
१८. भुजं० [१]		४५.२	३६.४०७	६६.१५०४-०७
१८. कवि० २		४५.३	३६.४०८	६६.१५१३
१८. कुंड० १		४५.४	३६.४०९	६६.१५२३
१८. कवि० ३		४५.८	३६.४११	६६.१५२५
१८. कवि० ४		४५.८ अ	३६.४१२	६६.१५२६
१८. कवि० ५		४५.१३	३६.४१७	६६.१५३५
१८. कवि० ६		४५.१४	३६.४१८	६६.१५३७
१८. कवि० ७		४५.१५	३६.४१९	६६.१५३६
१८. कवि० ८		४५.१६	३६.४२०	६६.१५३९
१८. दो० २		४५.१७	—	६६.१५४०

अ. फ.	म.	ना.	द.	स.
१८. दो० ३		४५.१८	३६.४२१	६६.१५४१
१८. छंद २		४५.१९/१	३६.४२२/१	६६.१५४२-४३
१८. छंद [३]		४५.१९/२	३६.४२२/२	६६.१५४४-४७
१८. दो० ४		४५.२०	३६.४२३	६६.१५४८
१८. दो० ५		४५.२१	३६.४२४	६६.१५४९
१८. कवि० ९		४५.२२	३६.४२५	६६.१५५०
१८. छंद ४		४५.२३	—	६६.१५५१-५४
१८. हनि० ५		४५.२४	३६.४२६	६६.१५६४-६५
१८. कवि० १०		४५.२५	३६.४२७	६६.१५६६
१८. कवि० ११		४५.२८	३६.४३२	६६.१५९५
१८. त्रो० ६		४५.२९	३६.४३३	६६.१५९६-९८
१८. कवि० १२		४५.३०	३६.४३४	६६.१५९९
१८. गाथा १		४५.३४	३६.४३८	६६.१५५६
१८. कवि० १३		४५.३५	३६.४३९	६६.१५५७
१८. कवि० १४		४५.३६	३६.४४०	६६.१५५८
१८. कवि० १५		४५.३७	३६.४४१	६६.१५५९
१८. कवि० १६		४५.३८	३६.४४२	६६.१५६०
१८. कवि० १७		४५.३९	३६.४४३	६६.१५६१
१८. कवि० १८		४५.४०	३६.४४४	६६ १५६२
१८. कवि० १९		४५.४१	३६.४४५	६६.१५६३
१८. कवि० २०		४५.४२	३६.४४६	६६.१६०४
१८. कवि० २१		४५.४३	३६.४४७	६६.१६०५
१८. कवि० २२		४५.४४	३६.४४८	६६.१६०६
१८. कवि० २३		४५.४५	४६.४४९	६६.१६०७
१८. कवि० २५		४५.४६	३६.४५०	६६.१६०९
१८. कवि० २६		४५.४८	३६.४५२	६६.१६११
१८. कवि० २८		४५.४९	३६.४५६	६६.१६१७
१८. गाथा २		४५.५०	३६.४५४	६६.१६१९
१८. त्रो० ८		४५.५७ अ	—	६६.१६७१-७४
१८. दो० १०		४५.६६	—	६६.१६७५
१८. कवि० २९		४५.६७	३६.४६५	६६.१७०५
१८. कवि० ३०		४५.६८	३६.४६६	६६.१७०६
१८. दो० ११		४५.६९	३६.४६७	६६.१७११
१८. कवि० ३१		४६.१	३७.१[1]	६७.२
१९. दो० १		४५.७३	३६.४७१	६७.१४
१९. मुक्ता० १		४६.१९	३७.२५-२८[1]	६७.५८-६३

[1] ये छंद संख्यायें डॉब संग्रह की प्रति ६० की हैं। द० में यह खण्ड नहीं है।

ा	ना	द	स
	४६.२०	३७.२९.३३[1]	६७.६४-७५
	४६.४०	३७.६०-६५[1]	६७.१६६-७१
	४६.९९	३७.१७०-७२[1]	६७.३४३-४४
	—	३७.२५१[?]	६७.५२२/२
	४६.१८	३७.२४[1]	६७.५४
	—	—	६८.२२१

्क्त छंदों में से उनका पाठ जो स० में नहीं हैं, अ० के अनुसार नीचे दिया

कहूं बग्ग भारी निहारे बिहारे।
कहूं कोइलं बोल सोहै सहारे।
मनो लाल पेरोज पुकंत गोरे।
कहूं जाइ जंभीरि तालं तमालं।
कहूं मालती सेवती पुष्प जालं।
कहूं बर्र केलि कुल्लंद थोरं।
कहूं बग्ग पप्पीह सोहंति सोरं।
कहूं मोर सावक्क ते बोल खंडे।
कहूं दाष बिज्जौर हेलें ति मंडे।
कहूं नारि वेल्ली सुफूली सुहायं।
कहूं मालती माल हालं ति घायं।
कहूं केतकी कूज अरु वेल फुल्लं।
कहूं पूब गुल्लाब केली ति हल्लं।
कहूं चौर सी मौर लागं सुहायं।

अनंगपाल पुच्छै नृपति कहहु भट्ट धरि ध्यान।
किहि संवत मेवार पति बंधि लियो सुरतान॥
सहु नि अष्षि निरष्षि जहं तहं तरु इक्कु सहार।
गंध्रव गंध्रव केलि सुनि जिहि रस उदिम मार॥
पुच्छन हारि सु पुच्छयो धाइ सुउत्तर देइ।
जिमि द्विज कह सु पंजरै घट घट उत्तर लेइ॥
जानि पंगु चहुवान कौ मुष जंप्यौ यह बेनु।
बोलि सूर सामंतह्यौ करौ एक ठौ सेनु॥
तब प्रसन्न गिरिजा भई मंगि मंगन हार।
पुत्री ते यह पुत्र करि धन कुल रष्षन हार॥
दिय कपाट चहु कोद चंद देवल महि मुक्यो।
इच्छ न सूझइ इच्छ सच्छ सब ठाठा सक्यो।
मिलि आनौ सुलतान कियौ सुलतान लिषाई।
दौं पर्वत कौ राज धरन पंजाब सुधाई॥

में टॉड संग्रह की प्रति ६० की है। द० में यह खण्ड नहीं है।

एक रज्ज रभ अज्ज मो कम्म दुराज लगाइयौ।
बजीय डंक डंकिनि पुरीय रहि हमीर फिर लाइयौ॥

१७. दो० ५ : हूं जब तू वड गिद्धिनी रौ गिलि हड्डु रमंस।
बीर विरुद्धिय जुग्गिनीय उडत बन मुक्यो हंस॥

इसी प्रकार एक वार्ता भी है :—

१४. कवि० २ के पूर्व : कागर बच्यउ।

—:※:—

ई. स्वीकृत, धा० मो० तथा अ के अतिरिक्त फ० की पाठ-सामग्री

फ.	म.	ना.	द.	स.
		[अ० १. साट० १ के पूर्व]		
१	—	२.१२७	१.१५१	१.७६२
२	—	२.१२८	१.१५२	१.७६३
३	—	२.१३०	१.१५४	१.७६७
४	—	२.१३१	१.१५५	१.७६८
५	—	२.१३२	१.१५६	१.७८१
६	—	२.१३४	१.१५७	१.७८२
७	—	२.१३५	१.१५८	१.७८३
८	—	—	—	—
[illegible]	—	—	—	—
		[अ० १. विरा० १ के अनंतर]		
१३	१. अहि०	—	२.२	२.२
१४	—	—	—	२.८१
		[अ० १. विरा० २ के अनंतर]		
१७	—	—	—	२.८३-९१
१८	—	—	—	२.१०५
१९	—	—	—	२.१०६-१०९
२०	—	—	—	२.११०
२१	—	—	—	२.१११
२२	—	—	—	२.११२
२३[1]	—	—	—	२.११३-१२९
		[अ० २. भुजं० १ के पूर्व]		
[illegible]	—	१.६	१.१	१.२

[1] यह छन्द समाप्त नहीं हुआ है तभी फ० का कुछ अंश खंडित हो गया है।

क.	म.	ना.	द.	स.
[अ० २. भुजं० १ के अनंतर]				
[ ]	—	—	१.९३	१.२५२
१	—	—	१.९४	१.२५३
[ ]	२. कवि०	—	१.९६	१.२५५
[ ]	२. दो०	१.७६	१.९७	१.२५६
[ ]	२. कवि०	—	१.९९	१.२८०
१	—	—	—	—
२	—	—	—	—
[अ० २. पद्ध० १ के अनंतर]				
[ ]	२. दो०	२.८२	—	१.४९१
[अ. २. दो० १० के अनन्तर]				
११	—	१.३	—	१.६९
[अ. २. दो० १६ के अनन्तर]				
२०	२. अ. मुडिं० १	—	—	—
[अ. ३. कवि० १ के पूर्व]				
[ ]	—	१२.३१	२१.४	१९.२८
[ ]	—	१२.३२	२१.५	१९.२९-३४
३	—	१२.३३	२१.६	१९.३५
[ ]	—	१२.३४	२१.७	१९.३६
[ ]	—	१२.३५	२१.८	१९.३७-४२
१	—	१२.३६	२१.९	१९.४३
[ ]	—	१२.३७	२१.१०	१९.४४
[ ]	—	१२.३८	२१.११	१९.४५-५८
१	—	१२.४०	२१.१३	१९.९१
६	—	—	—	—
१	—	१२.४२	२१.१५	१९.९३
२	—	१२.४३	२१.१६	१९.९४
३	—	१२.४४	२१.१७	१९.९५
७	—	१२.४५	२१.१८	१९.९६
[ ]	—	१२.४६	२१.१९	१९.९७
४	—	१२.४७	२१.२०	१९.१०२
[ ]	—	१२.४८	२१.२१	१९.१०३
[अ. ३. कवि० ३ के अनन्तर]				
५	—	१२.२९	२१.२	१९.२५
[अ. ७. अनु० १ के अनन्तर]				
१३	८.४	२९.१९	३१.१७	५७.४७

फ.	म.	ना.	द.	स.
		[अ. ९. दो० ३ के अनन्तर]		
१	१०.१८७	३२.१	३३.६६	६१.४५९
		[अ. ९. भुजं० ७ के अनन्तर]		
५३	११.५५	३३.२४	३३.२२१	६१.१०७७
		[अ. ९. दो० ५८ के अनन्तर]		
[ ]	—	३३.४४	३३.२४२	६१.११६९
		[अ. १३. कवि० १५ के अनन्तर]		
१६		३९.४४	३४.३६	६४.११२
		[अ. १३. कवि० १६ के अनन्तर]		
१७		—	—	—
१८		३९.५१	३४.४८	६४.१२४
१९		३९.५२	३४.५८	६४.१३३
२०		३९.६१	३४.५६	६४.१४४
२१		३९.५३	३४.५०	६४.१३१
२२		३९.५४	३४.५१	६४.१३२
		[अ. १३. कवि० १७ के अनन्तर]		
[ ]		३९.५५	३४.५२	६४.१३८
२४		३९.५८	३४.५३	६४.१३९
२५		३९.५६	३४.५४	६४.१४३
२६		३९.६८	३४.६४	६४.१५३
२७		३९.६०	३४.६५	६४.१५४
२८		३९.७२	३४.६७	६४.१५६
२८ अ		३९.७४	३४.७२	६४.१६०-६४
		[अ. १३. कवि० २२ के पूर्व]		
३०		३.७५	३४.७३	६४.१६५
३१		३९.७६	३४.७४	६४.१८४
३२		३९.८२	३४.७६	६४.१८६
३४		३९.८३	३४.७७	६४.१८७
३५		—	३४.७८	६४.१८९
३६		—	—	६४.२१४
३९		४०.१६	३४.१५८	६४.४३४
४०		३९.९१	३४.८३	६४.१९५
४१		३९.१०८	३४.९९	६४.२२५
४२		३९.११४	३४.१०६	३४.२४८
४		३९.११५	३४.१०७	६४.२५१-५९
[ ]		३९.११८	—	६४.२७२
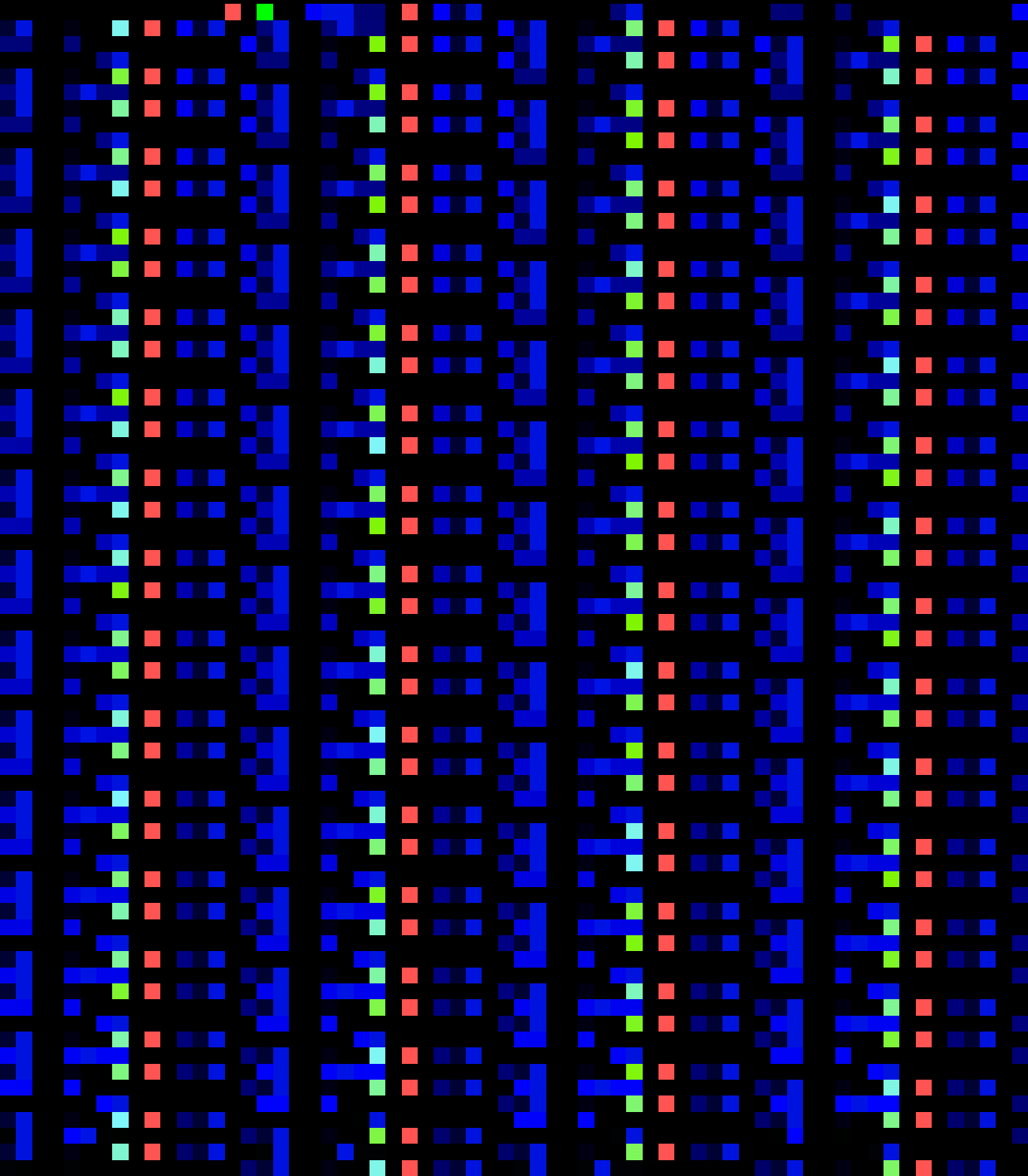
फ.	म.	ना.	द.	स.
[ ]		३९.११९	—	६४.२७३-७६
[ ]		३९.१२०	३४.११०	६४.२८२
		[अ. १४. दो० ६ के अनन्तर]		
१		४२.५७	३६.५३	६६.२२५
२		४२.५८	३६.५४	६६.२२६
		[अ. १४. कवि० १० के अनन्तर]		
२		४३.११३	३६.१०६	६६.३७१
		[अ. १५. कवि० ११ के अनन्तर]		
४३		४३.२८	३६.२११	६६.६९८
[ ]		४३.२९	३६.२२२	६६.६९९
		[अ. १७. कवि० २ के अनन्तर]		
१		४३.१५९	३६.३४६	६६.१२०२
		[अ. १८. दो० ६ के अनन्तर]		
१		—	—	६६.१४८९-९७
		[अ. १९. दो० ३६ के अनन्तर]		
१		३६.१४०	३७.२२०[1]	६७.४२३
		[अ. १९. कवि० ५ के अनन्तर]		
१		४६.१४८	३७.२४६[1]	६७.४४०

फ० के उपर्युक्त छन्दों में से जो स० में नहीं हैं, उनका पाठ निम्नलिखित है :—

अ० १. साट० १ के पूर्व : दोहा—मछ कछ सुनि पंगहरि चवको पति पीत्रन ।
सगुन विचारीय चंद् चित धरी पिमा महिमन्न ॥८॥

„ : दोहा—सीय जोगन संभोगु सजि मंडल आड अबुद ।
दमौ उमौ उमड् डरि आभरनु जड् मंडन जडजुद्द ॥

अ० २. भुजं० १ के अनन्तर : कवित—सहस अठवासी रिपि होम कीयौ आबूतल ।
तह दानउ उछलीय संक नही मानै रवितल ।
आहवान तिन कीयौ रिषि जोवंता सारैं ।
अनलकुंड झलहलीय पुरष उपनौ स पीयारौ ।
कर पग्ग गहबिनक अंतरहि जैमाला दीन्ही सुरह ।
पमार वपंन्न ता दिवसु कुल पैंतीसौ उपरह ॥१॥

„ : कवित—होम बोम अर्बुद सयल पसटी गहणगाह ।
अनल कुंड झलहलयौ झलकि झालियलि सुरिंदह ।
दिश दिगंत मारवीय वे सुन्दर अप्पौ ।
पग्ग अप्पाणी जाइ आइ शिहासन थप्पौ ।

[1] ये संख्याएँ टॉड संग्रह की प्रति ६० के वानबेध खंड की हैं, यह खंड द० में नहीं है ।

कामंडल इम रिष रजीय अक्स धुरिधर बिमलमैंइ ।
सिर काढि मलक वीसल तणौ धोम राइ म... ॥२॥

अ० २. दो० १९ के अनन्तर : अडिल—राजा प्रथीयराज चौहुवानं ।
बूझ्यौ काइथ भीमं दीवानं ।
अरु कैवास कान्ह आलोचं ।
दिल्ली राज लैनं करो सोचं ॥१०॥

अ० ३. कवि० १ के पूर्व : दोहा— चाले तब द्विजीय दिसा कीयौ ताहि फुरमान ।
वेष स सोफी यति सज्यौ चिलइ चित्त इमांनु ॥६॥

अ० १३. कवि० १६ के अनन्तर : कवित—वे हिंदू वाकोल बोल बोलै सिरहिता ।
किन अंबरुह कीयौ समुद किन सैमुषरित्ता ।
किनी जिमी अंजारु मारकट्टै भुज हिल्लै ।
किन शिषारा संसारु हारु मुरली मुर लिल्लै ।
किन असम पान पतीय पहरु किनु सुरतान जुसद्ध भड ।
गामी गवारु पुंडीर कुलु सेर न संकरु षढीयौ ॥१७॥

उपर्युक्त के अतिरिक्त निम्नलिखित वार्त्ताएँ भी इसी प्रकार की हैं—

अ० ७. अनु० १ के अनन्तर : वान लागत कैवास मूइ आइ परयौ ।
" : वात । राजा इस प्रकार करि कैवास मार्‌यो सु तोहि पूछैगौ सुपनै आइ भवानी कह्यौ ।

अ० १४. दो० ९ के अनन्तर : वचनिका । इतै बीच इच्छनि पामारि का दासी आइ ठाढी रही ऐसै कह्यौ जष राजा कै डोल बराबर है । तब तै कवि सौ गुरु सौं मनौं हारि करिन लागी ॥

अ० १४. दो० १९ " : तब दासी हाथ परु कागद लै राजा कै सामुहो ठाढी रहै ।

—:*:—

उ. स्वीकृत धा० मो०, अ० तथा फ० के अतिरिक्त म० की

पाठ-सामग्री

छंद[1]	ना.	द.	स.
अ. १. नारा० ६ के अनंतर (गाथा लक्षण)	—	—	—
,,	—	—	—
अ. १. दो० ४ के अनंतर (त्रोटक लक्षण)	—	—	—
अ. १. दो० ५ के अनंतर (मोतीदाम लक्षण)	—	—	—
अ. १. भुजं० १४ के अनंतर	३.७३	२.४९	२.५०७
,,	३.८२	२.६०	२.५१८-१९
,, त्रिभं०/१ (त्रिभगी लक्षण)	—	—	—
,, त्रिभं०/२	३.८३	२.६१	२.५२०-२३
अ. २. भुजं १ के अनंतर	—	१.२७/२	१.९४
,,	१.३१	१.४८	१.१३६-१४३/१ १.१४६/२ १.१४७/१
,,	१.३२	१.४९	१.१४८
,,	१.३३	१.५०	१.१४९-५२
,,	१.५४	१.५१	१.१५४
,,	१.५४ अ	१.५२	१.१५५-६७
,,	१.३५	१.५३	१.१६८
,,	१.३६	१.५४	१.१६९
,,	१.३७	१.५५	१.१७०
,,	१.३८	१.५६	१.१७१
,,	१.३९	१.५७	१.१७२
,,	१.४०	१.५८	१.१७३-७६

[1] ग्रंथ के प्रारम्भ से खंड ३ के प्रथम कुछ छंदों तक म० में छंदों की क्रम-संख्या नहीं दी गई है, इसलिए ऐसे छंदों का स्थान अ० फ० के पाठ-क्रम में कहाँ आता है यह बताया गया है। शेष छन्दों की म० की क्रम-संख्या दी गई है।

छंद[1]	ना.	द.	स.
अ. २. भुजं० १ के अनंतर	१.४१	१.५९	१.१७७
,,	१.४२	१.६०	१.१७८
,,	१.४३	१.६१	१.१७९
,,	१.४८	१.६६	१.१९२
,,	१.५१	१.६९	१.१९८
,,	१.५३	१.७२	१.२०१
,,	१.५५	१.७४	१.२०३-१२
,,	१.५९	१.७६	१.२१७
,,	१.६०	१.७७	१.२१८
,,	१.६२	१.७९	१.२२१
,,	१.६४/१	१.८१/१	१.२२६-३४
,,	१.६८	१.८४	१.२४३
,,	१.६९	१.८८	१.२४७
,,	१.७०	१.८९/१	१.२४८
,,	१.७३	१.८८	१.२४७
,,	१.७४	१.८९/२	१.२४८/२-४९
,,	१.७४ अ	१.९०	१.२५०
,,	१.८०/१	१.९८/१	१.२५७-६८
अ. २. साट० २ के अनंतर दो० १	—	१.१३५	१.५५०
अ. २. पद्ध० ७ ,, दो० १	—	—	—
,, ,, २	—	—	—
,, ,, ३	—	—	—
अ. २. दो० ६ ,, दो० ५	—	—	—
अ. २. दो० १० के अनंतर दो० ५	—	—	—
अ. २. दो० १० ,, कुंड०	—	—	—
,, ,, दो०	—	—	—
,, ,, कवि०	—	—	—
अ. ३. दो० १६ के अनंतर दो० १२	१३.१४	२४.१	४५.१
,, ,, दो० १३	१३.१५	२४.२	४५.५०
म. ४. २	—	—	४९.१८-२१
४. ५	—	२९.७/२	४९.२९-३१
४. ६	—	—	४९.३२
४. ७	—	—	४९.३३
४. ७ अ	—	—	४९.३४

[1] ग्रंथ के प्रारम्भ से खंड ३ के प्रथम कुछ छंदों तक म० में छंदों की क्रम-संख्या नहीं दी गई है, इसलिए ऐसे छंदों का स्थान अ० फ० के पाठ-क्रम में कहाँ आता है यह बताया गया है। शेष छंदों की म० की क्रम-संख्या दी गई है।

म.	ना.	द.	ब.
४.८	—	—	४९.३५
४.९	—	—	४९.३६
४.१०	—	—	४९.३७
४.११	—	—	४९.३८
४.१२	—	—	४९.३९
४.१३	—	—	४९.४०
४.१४	—	—	४९.४१
४.१५	—	—	४९.४२
४.१६	—	—	४९.४३
५.२	—	—	५०.२
५.३	—	—	५०.३
५.४	—	—	५०.४
५.५	—	—	५०.५
५.६	—	—	५०.६
५.७	—	—	५०.७
५.८	—	—	५०.८
५.९	—	—	५०.९
५.१०	—	—	५०.१०
५.११	—	—	५०.११
५.१२	—	—	५०.१२
५.१३/१	—	—	५०.१३
५.१३/२	—	—	५०.१४
५.१९	—	—	५०.२३
५.२०	—	—	५०.२४
५.२१	—	—	५०.२५
५.२२	—	—	५०.२६
५.२५	—	—	५०.२९
५.२८	—	—	५०.३१
५.२९	—	—	५०.३२
५.३१	—	—	५०.३४
५.३६	—	—	५०.३९
५.३७	—	—	५०.४०
५.४२	—	—	५०.४६
५.४४	—	—	५०.४८
५.४६	—	—	५०.५०
५.४७	२८.७०	२९.२९	५०.५१
५.४९	—	—	५०.५३
५.५०	—	—	५०.५४

म.	ना.	द.	स.
५.५१	—	—	५०.५५
५.५३	—	—	५०.५७-६४
५.५४	—	—	५०.६५
म. खंड ६	—	—	स. खंड ५१[2]
म. खंड ७	—	—	स. खंड ५२
अ. ७. भाट० १ के अनंतर[1]	२९.४४ अ	—	—
अ. ७. दो० १२ ,,[1]	—	—	—
अ. ७. कवि० ६ के पूर्व[1]	२९.६८	३१.७१	५७.२४२
म. ९.२	३९.३	३४.२	६१.२०
९.६	३९.७	३४.६	६१.२९
९.९	४१.१	३४.१३	६१.४०
९.११	३९.१४	३४.१४	६१.४१
९.१४	४१.४	३४.१७२	६१.५३
९.१७	—	३४.१७५	६१.६४
९.१८	४१.६	३४.१७६	६१.७३
९.२१	४१.११	३४.१७९	६१.१०
९.२५	—	—	६६.९९
१०.१	—	—	६१.७३
१०.२	—	—	६१.७४
१०.३	—	—	६१.७५
१०.४	—	—	६१.७६
१०.५	—	—	६१.७७
१०.७	३१.५	—	६१.७९
१०.८	—	—	६१.८०
१०.९	—	—	६१.८१
१०.१०	—	—	६१.८२
१०.११	—	—	६१.८३
१०.१२	—	—	६१.८४
१०.१५[3]	—	—	६१.८५
१०.१६	—	—	६१.८६
१०.१७	—	—	६१.८७
१०.१८	—	—	६१.८८
१०.१९	—	—	६१.८९

[1] म० में इन छन्दों की क्रम-संख्या नहीं दी गई है, इसलिए इन छन्दों का स्थान अ० फ० के पाठ-क्रम में कहाँ आता है यह बताया गया है। शेष छन्दों की म. की क्रम-संख्या दी गई है।

[2] स० का केवल ५१.५७ म० में नहीं है।

[3] म० में यहाँ से क्रम-संख्या में दो की वृद्धि हो गई है।

म.	ना.	द.	ह.
१०.२०	—	—	६१.९०
१०.२१	—	—	६१.९१
१०.२२	—	—	६१.९२
१०.२३	—	—	६१.९३
१०.२४	—	—	६१.९४
१०.२५	—	—	६१.९५
१०.२६	—	—	६१.९६
१०.२७	—	—	६१.९७
१०.२८	—	—	६१.९८
१०.२९	—	—	६१.९९
१०.३०	—	—	६१.१००
१०.३१	—	—	६१.१०१
१०.३२	३१.५ आ	—	६१.१०३
१०.३३	३१.३ आ	३३.४	६१.१०४
१०.३५	—	—	६१.१०६
१०.३६	—	—	६१.१०७
१०.३७	—	—	६१.१०८
१०.३९	—	—	६१.१३३
१०.४०	—	—	६१.१३४
१०.४१	—	—	६१.१३५
१०.४२	—	—	६१.१३६
१०.४३	—	—	६१.१३७
१०.४४	—	—	६१.१३८
१०.४५	—	—	६१.१३९
१०.४६	—	—	६१.१४०
१०.४७	—	—	६१.१४१
१०.४९	—	—	६१.१४४
१०.५२	—	—	६१.१४६-४४
१०.५४	३१.१४	—	६१.१५७
१०.५५	—	—	६१.१५८-७५
१०.६४	३१ अ. १८	३३.१९	६१.१८४
१०.६५	—	—	६१.१८५
१०.६६	३१.१०	—	६१.१८६
१०.६७	३१.१२	—	६१.१८७
१०.६८	—	—	६१.१८८
१०.६९	—	—	६१.१८९
१०.७०	—	—	६१.१९०
१०.७१	—	—	६१.१९१/१ ६१.१९२/२

स.	ना.	द.	स.
१०.७२	—	—	६१.१९३
१०.७३	—	—	६१.१९४-९७
१०.७४	३१ अ. १५	—	६१.१९८
१०.७५	३१ अ. १६	—	६१.१९९
१०.७६	—	—	६१.२००
१०.७७	—	—	६१.२०१
१०.७८	—	—	६१.२०४
१०.७९	—	—	६१.२०५
१०.८०	—	—	६१.२०६
१०.८१	३१ अ. १९	—	६१.२०७-१७
१०.८२	—	—	६१.२१८
१०.८३	—	—	६१.२१९
१०.८४	—	—	६१.२२०
१०.८५	—	—	६१.२२१-२८
१०.८६	—	—	६१.२२९
१०.८७	३१ अ. १	—	६१.२३०
१०.८८	३१ अ. २	—	६१.२३१-४२
१०.८९	"	—	६१.२४३
१०.८९ अ	—	—	६१.२४४-५६
१०.९०	—	—	६१.२५७
१०.९१	—	—	६१.२५८
१०.९२	—	—	६१.२५९
१०.९३	३१ अ. ३	—	६१.२६०
१०.९४	३१ अ. ४	—	६१.२६१
१०.९५	३१ अ. ५	—	६१.२६२
१०.९६	३१ अ. ६	—	६१.२६३
१०.९७	३१ अ. ७	—	६१.२६४
१०.९८	३१ अ. ८	—	६१.२६५
१०.९९	३१ अ. ९	—	६१.२६६
१०.१००	३१ अ. १०	—	६१.२६७
१०.१०१	३१ अ. ११	—	६१.२६८
१०.१०२	३१ अ. १२	—	६१.२६९
१०.१०३	३१ अ. १३	—	६१.२७०
१०.१०४	३१ अ. १४	—	६१.२७१
१०.१०६	—	—	६१.२७३
१०.१०७	—	—	६१.२७४
१०.१०८	३१ अ. २१	३३.२२	६१.२७५
१०.१०९	—	—	६१.२७६

म.	ना.	द.	स.
१०.११०	—	—	६१.२७७
१०.१११	—	—	६१.२७८
१०.११२	—	—	६१.२७९-८४
१०.११३	—	—	६१.२८५
१०.११४	—	—	६१.२८६
१०.११५	—	—	६१.२८७
१०.११६	—	—	६१.२८८
१०.१२१	—	—	६१.३००
१०.१२४	—	—	६१.३०२
१०.१२५	—	—	६१.३०४
१०.१२७	—	—	६१.३१३
१०.१३०	—	—	६१.३१९
१०. [१३१]	—	—	६१.३२२
१०.१३१ अ. (वचनिका)	—	—	६१.३२२ अ
१०.१३३	३१.४०	३३.३७	६१.३२३
१०.१३७	३१ ३९	३३.३६	६१.३३०
१०.१३७ अ. (वचनिका)	—	—	६१.३३० अ
१०.१३८	—	—	६१.३३१-३४
१०.१४०	—	—	६१.३३६
१०.१४२	३१.४५	३३.४१	६१.३४८
१०.१२७[1]	३१.४८	३३.४४	६१.३५१
१०.१३०[1]	३१.५१	३३.४७	६१.३५४
१०.१३२[1]	३१.५३	३३.४९	६१.३५६
१०.१३४[1]	—	—	६१.३७०
१०.१३५[1]	—	—	६१.३७१
१०.१३६[1]	—	—	६१.३७२
१०.१३७[1]	—	—	६१.३७३
१०.१३८[1]	३१.५६	३३.५१	६१.३७४
१०.१३९	—	—	६१.३७५
१०.१४०	—	—	६१.३७६
१०.१४१	—	—	६१.३७७
१०.१४२	—	—	६१.३७८
१०.१४३	—	—	६१.३७९
१०.१४४	—	—	६१.३८०
१०.१४५	—	—	६१.३८१
१०.१४६	—	—	६१.३८२

[1] ये संख्याएँ दुबारा उठी हैं। ये पहले आ चुकी हैं।

म.	ना.	ह.	श.
१०.१४७	—	—	६१.३८३
१०.१४८	—	—	६१.३८४
१०.१४९	—	—	६१.३८५
१०.१५०	—	—	६१.३८७
१०.१५१	—	—	६१.३८९
१०.१५३	३१.५९	३३.५४	६१.३९५
१०.१५४	३१.६०	३३.५५	६१.३९६
१०.१५५	३१.६१	३३.५६	६१.३९७
१०.१५६	३१.६२	३३.५७	६१.३९८
१०.१५७	३१.६३	३३.५८	६१.३९९
१०.१५९	—	—	६१.४०१
१०.१६०	—	—	६१.४०२
१०.१६१	—	—	६१.४०३-०७
१०.१६२	—	—	६१.४०८
१०.१६३	—	—	६१.४०९
१०.१६४	—	—	६१.४१०
१०.१६५	—	—	६१.४११-१४
१०.१६६	—	—	६१.४२२
१०.१६७	—	—	६१.४२३
१०.१६८	—	—	६१.४२४
१०.१७५	—	—	६१.४४७
१०.१७७	—	—	६१.४४९
१०.१७८	—	—	६१.४५०
१०.१७९	—	—	६१.४५१
१०.१८०	—	—	६१.४५२
१०.१८१	—	—	६१.४५३
१०.१८२	—	—	६१.४५४
१०.१८३	—	—	६१.४५५
१०.१८४	—	—	६१.४५६
१०.१८५	—	—	६१.४५७
१०.१९०	—	—	६१.४६२
१०.१९१	—	—	६१.४६३
१०.१९३	—	—	६१.४६५
१०.१९४	—	—	६१.४६६
१०.१९५	—	—	६१.४६७
१०.१९७	—	—	६१.४६९
१०.२००	—	—	६१.४७२
१०.२०१	—	—	६१.४७३

म.	ना.	द.	स.
१०.२०२	—	—	६१.४७४
१०.२०३	—	—	६१.४७५
१०.२०४	—	—	६१.४७६
१०.२०७	—	—	६१.४७९
१०.२०८	—	—	६१.४८०
१०.२११	—	—	६१.४८३
१०.२१२	—	—	६१.४८४
१०.२१३	—	—	६१.४८५
१०.२१४	—	—	६१.४८६
१०.२१५	—	—	६१.४८७
१०.२१७	—	—	६१.४८९
१०.२१९	—	—	६१.४९१
१०.२३०	—	—	६१.५०६
१०.२३१	—	—	६१.५०७
१०.२३२	—	—	६१.५०८
१०.२३३	—	—	६१.५०९
१०.२३८	३२.२८	३३.८६	६१.५१४
१०.२३९	—	३३.८७	६१.५१५
१०.२४०	३२.२९	३३.८७ अ	६१.५१६-२३
१०.२४२	—	—	६१.५२५
१०.२४३	—	—	६१.५२६
१०.२४५	—	—	६१.५२८
१०.२४७	—	—	६१.५२९-४८
१०.२४९	—	—	६१.५५१
१०.२५०	—	—	६१.५५२
१६.२५१	—	—	६१.५५३
१०.२५२	—	—	६१.५५४
१०.२५३	—	—	६१.५५५
१०.२५४	—	—	६१.५५६
१०.२५५	—	—	६१.५५७
१०.२५६	—	—	६१.५५८
१०.२५७	—	—	६१.५५९
१०.२५८	—	—	६१.५६०
१०.२५९	—	—	६१.५६१
१०.२६० (बचनिका)	—	—	६१.५६१ अ
१०.२६१	—	—	६१.५६२
१०.२६२	—	—	६१.५६३-६६
१०.२६४	—	—	६१.५६८

म.	ना.	द.	स.
१०.२६५	—	—	६१.५६९
१०.२६९	३२.३७	३३.९७	६१.५८०
१०.२७०	३२.३८	—	६१.५८१
१०.२७१	३२.४०	३३.९८	६१.५८२
१०.२७२	—	—	६१.५८३
१०.२७३	३२.३९	—	६१.५८४
१०.२७४	३२.४१	३३.९९	६१.५८५
१०.२७५	—	—	६१.५८६
१०.२७६	—	—	६१.५८७
१०.२७८	३२.४५	३३.१०१	६१.५८९
१०.२८२	—	—	६१.५९७
१०.२८३	३२.४९	३३.१०५	६१.५९८
१०.२८४	३२.५०	३३.१०६	६१.५९९
१०.२८५	३२.५१	३३.१०७	६१.६००
१०.२८६	३२.५२	३३.१०८	६१.६०१
१०.२८७	३२.५३	३३.१०९	६१.६०२
१०.२८८	३२.५४	३३.११०	६१.६०३-०७
१०.२८९	३२.५५	३३.१११	६१.६०८
१०.२९०	३२.५६	३३.११२	६१.६०९-१८
१०.२९१	३२.५७	३३.११३	६१.६१९
१०.२९२	३२.५८	३३.११४	६१.६२०
१०.२९३	३२.५९	३३.११५	६१.६२१
१०.२९४	३२.६०	३३.११६	६१.६२२
१०.२९५	३२.६१	३३.११७	६१.६२३
१०.२९६	३२.६२	३३.११८	६१.६२४
१०.२९७	३२.६३	३३.११९	६१.६२५
१०.२९८	३२.६४	३३.१२०	६१.६२६
१०.२९९	३२.७४	३३.१२१	६१.६२७
१०.३००	३२.६५	—	६१.६२८
१०.३०१	३२.६६	३३.१२२	६१.६२९-३०
१०.३०२	३२.६७	३३.१२३	६१.६३१
१०.३०३	३२.६८	३३.१२४	६१.६३२
१०.३०४	३२.६९	३३.१२५	६१.६३३
१०.३०५	३२.७०	३३.१२६	६१.६३४-४२
१०.३०६	—	—	६१.६४३
१०.३०७	३२.७१	३३.१२७	६१.६४४
१०.३०८	३२.७२	३३.१२८	६१.६४५
१०.३०९	—	—	६१.६४६

म.	ना.	द.	श.
१०.३१०	३२.७३	—	—
१०.३११	३२.७५	३३.१३१	६१.६४७
१०.३१३	—	—	६१.६४९
१०.३१५	—	—	६१.६५१
१०.३२०	—	—	६१.६५६
१०.३२२	—	—	६१.६५८
१०.३२३	—	—	६१.६५९
१०.३२४	—	—	६१.६६०
१०.३२५	—	—	६१.६६१
१०.३२६	—	—	६१.६६२
१०.३२७	—	—	६१.६६३
१०.३२८	—	—	६१.६६४
१०.३२९	—	—	६१.६६५-८५
१०.३३०	—	—	६१.६८६
१०.३३२	—	—	६१.६८८
१०.३३४	३२.८५	३३.१४१	६१.६९०
१०.३३७	—	—	६१.७१३
१०.३३९	—	—	६१.७१५
१०.३४०	—	—	६१.७१६
१०.३४२	—	—	६१.७१८
१०.३४३	—	—	६१.७१९
१०.३४४	—	—	६१.७२०
१०.३४५	३२.८९	३३.१४५	६१.७२१
१०.३५०	—	—	६१.७२६
१०.३५४	३२.९५	३३.१५१	६१.७३०
१०.३५५	—	—	६१.७३१
१०.३५६	३२.९७	३३.१५२	६१.७३२
१०.३५७	३२.९८	३३.१५३	६१.७३३
१०.३५८	३२.९९	३३.१५४	६१.७३४
१०.३५९	३२.१००	३३.१५५	६१.७३५
१०.३६०	३२.१०१	३३.१५६	६१.७३६-४१
१०.३६१	३२.१०२	३३.१५७	६१.७४२
१०.३६२	३२.१०३	३३.१५८	६१.७४३
१०.३६३	३२.१०४	३३.१५९	६१.७४४
१०.३६४	३२.१०५	३३.१६०	६१.७४५
१०.३६५	—	—	६१.७४६
१०.३६६	—	—	६१.७४७-५०
१०.३६७	—	—	६१.७५२

म.	ना.	द्र.	स.
१०.३६८	—	—	६१.७५३
१०.३६९	—	—	६१.७५४
१०.३७०	३२.१०६	३३.१६१	६१.७५५-६५
१०.३७१	३२.१०७	३३.१६२	६१.७६६
१०.३७२	३२.१०८	३३.१६३	६१.७६७-७९
१०.३७३	—	—	६१.७८१
१०.३७४	३२.१०९	३३.१६४	६१.७८२
१०.३७५	३२.११०	३३.१६५/१	६१.७८३
१०.३७६	३२.१११	३३.१६५/२	६१.७८४
१०.३७७	३२.११२	३३.१६५/३	६१.७८५
१०.३७८	३२.११३	३३.१६५/४	६१.७८६
१०.३७९	३२.११४	३३.१६६	६१.७८७
१०.३८०	३२.११५	३३.१६७	६१.७८८
१०.३८१	३२.११६	३३.१६८	६१.७८९
१०.३८३	—	—	६१.७९१
१०.३८४	३१.३२	—	६१.७९२
१०.३८५	३१.३३	—	६१.७९३-८०७
१०.३८६	—	—	६१.८०८
१०.३८७	—	—	६१.८०९
१०.३८८	—	—	६१.८१४
१०.३९४	—	—	६१.८२२
१०.३९६ (वा.ता)	—	—	६१.८२३ अ
१०.३९९	—	—	६१.८२६
१०.४००	३२.११८	३३.१७८	६१.८२७
१०.४०१	—	—	६१.८२९
१०.४०३	—	—	६१.८३१
१०.४०५	—	—	६१.८३३
१०.४०६	—	—	६१.८३४
१०.४०७	—	—	६१.८३५
१०.४०७ अ	—	—	६१.८३६-४३
१०.४१०	—	—	६१.८४६
१०.४११	—	—	६१.८४७
१०.४१४	—	—	६१.८६०
१०.४१७	—	—	६१.८६३
१०.४१८	—	—	६१.८६४
१०.४२०	—	—	६१.८६६
१०.४२१	—	—	६१.८६७
१०.४२२	—	—	६१,६८-७६

	ना.	द.	स.
१०.४२३	—	—	६१.८७७
१०.४२४	—	—	६१.८७८
१०.४२५	—	—	६१.८७९
१०.४२६	—	—	६१.८८०
१०.४२७	—	—	६१.८८१
१०.४२८	—	—	६१.८८२
१०.४२९	—	—	६१.८८३-८६
१०.४३१	—	—	६१.८८८
१०.४३२	—	—	६१.८९०-९८
१०.४३३	—	—	६१.८९९
१०.४३५	—	—	६१.९०१
१०.४३६	—	—	६१.९०२
१०.४३७	—	—	६१.९०३
१०.४३८	—	—	६१.९०४-०७
१०.४३९	—	—	६१.९०८
१०.४४०	—	—	६१.९०९
१०.४४१	—	—	६१.९१०
१०.४४१ अ	—	—	६१.९११
१०.४४१ आ	—	—	६१.९१२
१०.४४३	—	—	६१.९१४
१०.४४४	—	—	६१.९१५
१०.४४५/१	—	—	६१.९१६/१
१०.४४७	—	—	६१.९१८
१०.४४८/२	—	—	६१.९१९/२
१०.४५२	—	—	६१.९२३
१०.४५३	—	—	६१.९२४
१०.४५४	३२.१४७	—	६१.९२५
१०.४५५	३२.१५४	३२.१९८	६१.९२६
१०.४५७	३२.१५५	—	६१.९२८
१०.४५८/१	३२.१५६	—	६१.९२९
१०.४५८/२	३२.१५७	—	६१.९३०
१०.४५९	३२.१४३	—	६१.९३१
१०.४६०	—	—	६१.९३२
१०.४६१	३२.१४४	—	६१.९३३
१०.४६२	३२.१४५	—	६१.९३४
१०.४६३	३२.१४६	—	६१.९३५-७३
१०.४६४	३२.१५८	—	६१.९७४
१०.४६५	—	—	६१.९७६

म.	ना.	ह.	स.
१०.४६५ (?)	३२.१६०	—	६१.९७७-७९
१०.४६७	३२.१६१	—	६१.९८०
११.३	३३.४	—	६१.९८३-१००४
११.४	३३.५	—	६१.१००५
११.५	३३.३	—	६१.१००६
११.६	३३.७	३३.२०४	६१.१००८
११.८	—	—	६१.१०१०
११.९	—	—	६१.१०११
११.१०	—	—	६१.१०१२
११.११	—	—	६१.१०१३
११.१२	—	—	६१.१०१४
११.१३	—	—	६१.१०१५
११.१४	—	—	६१.१०१६
११.१५	—	—	६१.१०१७-१८
११.१६	—	—	६१.१०१९
११.१७	—	—	६१.१०२०
११.१८	—	—	६१.१०२८
११.१९	—	—	६१.१०२२
११.२०	—	—	६१.१०२३
११.२१	—	—	६१.१०२४
११.२२	—	—	६१.१०२५
११.२४	—	—	६१.१०२९
११.२५	—	—	६१.१०३०
११.२६	—	—	६१.१०३१
११.२७	—	—	६१.१०३२
११.२८	—	—	६१.१०३३
११.२९-३०	—	—	६१.१०३४-४१
११.३१	—	—	६१.१०४२-४५
११.३२	—	—	६१.१०४६
११.३३ अ	—	—	६१.१०४८
११.३४	—	—	६१.१०४९
११.३७	—	—	६१.१०५२
११.३८	—	—	६१.१०५३
११.३९	—	—	६१.१०५४
११.४०	—	—	६१.१०५५
११.४१	—	—	६१.१०५६
११.४२	—	—	६१.१०५७
११.४३	—	—	६१.१०५८

म.	ना.	द.
११.४७	३३.१७	३३.२१४
११.४८	३३.१८	३३.२१५
११.५०	—	—
११.५८	—	—
११.५९	—	—
११.६०	—	—
११.६१	—	—
११.६२	—	—
११.६३	—	—
११.६४	—	—
११.६५	—	—
११.६६	—	—
११.६७	—	—
११.६८	—	—
११.६९	—	—
११.७०	—	—
११.७१	—	—
११.७२	—	—
११.७६		
११.७३	—	—
११.७४	—	—
११.७५	—	—
११.७७	—	—
११.७८	—	—
११.७९	—	—
११.८०	—	—
११.८१	—	—
११.८२	—	—
११.८३	—	—
११.८५	—	—
११.८७	—	—
११.८८	—	—
११.८९	—	—
११.९१	—	—
११.९२	—	—
११.९५	—	—
११.९६	—	—
११.९७	३३.३४	३३.२३१

स.	म.
६१.१०६२	११.९८
६१.१०६३	११.९० (?)
६१.१०६५-७२	११.९२ (?)
६१.१०८८	११.९३ (?)
६१.१०८९-९०	११.९४ (?)
६१.१०९१	११.९५ (?)
६१.१०९२	११.९७ (?)
६१.१०९३-११००	११.९२ (?)
६१.११०१	११.९३ (?)
६१.११०२	११.९७ (?)
६१.११०३-०४	११.९८ (?)
६१.११०५	११.९९
६१.११०६	११.१००-१०१
६१.११०७	११.१०२
६१.११०८	११.१०३
६१.११०९	११.१०४
६१.१११०	११.१०५
६१.१११५	११.१०६
	११.१०७
	११.१०८
६१.११११	११.१०९
६१.१११२	११.११०
६१.१११३-१४	११.१११
६१.१११६	११.११२
६१.१११७-२३	११.११४
६१.११२४	११.११८
६१.११२५	११.११९-२२
६१.११२६-३१	११.१२३
६१.११३२	११.१२४
६१.११३३	११.१२५
६१.११३५	११.१२६
६१.११३७-४१	११.१२७-३५
६१.११४२	११.१३५ (?)
६१.११४३	११. [ ]
६१.११४५	११. [ ].
६१.११४६	११.१३७
६१.११४९	११.१३८
६१.११५०	११.१३९
६१.११५१	११.१४०

ना.	द.	स.
३३.३५	३३.२३२	६१.११५२
३३.३६	३३.२३३	६१.११५३-५७
३३.४०	३३.२३८	६१.११६०-६४
३३.४१	३३.२३९	६१.११६५
—	—	६१.११६६
३३.४२	३३.२४०	६१.११६७
—	—	६१.११७०
—	—	६१.११७२
—	३३.२४४	६१.११७३
३३.५५	३३.२४९	६१.११८६
—	—	६१.११८७
—	—	६१.११८८
—	—	६१.११८९-९२
—	—	६१.११९२
—	—	६१.११९३
—	—	६१.११९४
—	—	६१.११९५
—	—	६१.११९६
—	—	६१.११९७
—	—	६१.११९८
—	—	६१.११९९
—	—	६१.१२००
—	—	६१.१२०१
—	—	६१.१२०२-०५
—	—	६१.१२०७
—	—	६१.१२११
—	—	६१.१२१२-१५
—	—	६१.१२१६
—	—	६१.१२१७
—	—	६१.१२१८
—	—	६१.१२१९
—	—	६१.१२२०-२८
—	—	६१.१२२९
—	—	६१.१२३०
—	—	६१.१२३१
—	—	६१.१२३२
—	—	६१.१२३३
—	—	६१.१२३४-३८
—	—	६१.१२३९

म.	ना.	द.	स.
११.१४१	—	—	६१.१२४०
११.१४२	—	—	६१.१२४१
११.१४३	—	—	६१.१२४२
११.१४८	—	—	६१.१२४७
११.१५१	३३.६७	३३.२६०	६१.१२५०
११.१५७	—	—	६१.१२५७
११.१५८	—	—	६१.१२५८
११.१५९	—	—	६१.१२५९
११.१६५	—	—	६१.१२६५
११.१६६	—	—	६१.१२६६
११.१७४	—	—	६१.१२७४
११.१७६	—	—	६१.१२७६
११.१७७	—	—	६१.१२७७
११.१७८	३३.९१	३३.२७८	६१.१२७८
११.१८०	३३.९३	३३.२८०	६१.१२८०
११.१८१	३३.९६	—	६१.१२८१
११.१८२	३३.९७	—	६१.१२८२
११.१८६	—	—	६१.१२८६
११.१८७	—	—	६१.१२८७
११.१८८	—	—	६१.१२८८
११.१८९	—	—	६१.१२८९
११.१९०	—	—	६१.१२९०
११.१९१	—	—	६१.१२९१
११.१९२	—	—	६१.१२९२
११.१९३	—	—	६१.१२९३
११.१९४	—	—	६१.१२९४
११.१९७	—	—	६१.१२९७
११.१९८	—	—	६१.१२९८
११.१९९	—	—	६१.१२९९
११.२००	—	—	६१.१३००
११.२०१	—	—	६१.१३०१
११.२०२	—	—	६१.१३०२ ०३
११.२०३	—	—	६१.१३०४
११.२०४	—	—	६१.१३०५
११.२०५	—	—	६१.१३०६
११.२०६	—	—	६१.१३०७
११.२०७	—	—	६१.१३०८
११.२०८	—	—	६१.१३०९

म.	ना.	द.	स.
११.२०९	—	—	६१.१३१०
११.२१०	—	—	६१.१३११
११.२११	—	—	६१.१३१२
११.२१२	—	—	६१.१३१३
११.२१३	—	—	६१.१३१४
११.२१४	—	—	६१.१३१५
११.२१५	—	—	६१.१३१६-१७
११.२१६	—	—	६१.१३१८
११.२१७	—	—	६१.१३१९
११.२१८	—	—	६१.१३२०
११.२१७ (?)	३३.१०९	३३.२८७	६१.१३२१
११.२२१	—	—	६१.१३२३
११.२२२	—	—	६१.१३२४
११.२२३	—	—	६१.१३२५
११.२२४	—	—	६१.१३२६
११.२२५	—	—	६१.१३२७
१२.४	—	—	६१.१३३१
१२.५	—	—	६१.१३३२
१२.६	—	—	६१.१३३३
१२.७	—	—	६१.१३३४
१२.८	—	—	६१.१३३५
१२.१९	—	—	६१.१३४२
१२.२१	—	—	६१.१३५७
१२.२२	—	—	६१.१३५८
१२.२३	—	—	६१.१३५९
१२.२४	—	—	६१.१३६०
१२.२५	३४.११	३३.३०२	६१.१३६१
१२.३३	—	—	६१.१३८७
१२.३४	—	—	६१.१३८८-९२
१२.३५	—	—	६१.१३९३
१२.३६	—	—	६१.१३९४-९५
१२.३७	—	—	६१.१३९७
१२. [३८]	—	—	६१.१३९८
१२.४६	—	—	६१.१४०६
१२.४९	—	—	६१.१४०९
१२.५७-६२	—	—	६१.१४२४-२९
१२.६३	—	—	६१.१४३०-३५
१२.६४-६७	—	—	६१.१४३६-३९

म.	ना.	द.	ध.
१२.६८	—	—	६१.१४४०-४४
१२.६९-७०	—	—	६१.१४४५-४६
१२.७१	—	—	६१.१४४७-४९
१२.७२	—	—	६१.१४५०
१२.७३	—	—	६१.१४५१
१२.७४	—	—	६१.१४५२
१२.७५	—	—	६१.१४५३
१२.७६	—	—	६१.१४५४
१२.७७	—	—	६१.१४५५
१२.७८	३४.१५	३३ ३१६	६१.१४५६ ६१
१२.७९	—	—	६१.१४६२
१२.८०	—	—	६१.१४६३
१२ ८१	३४.३७	३३.३२६	६१.१४६४
१२.८२	३४.३८	३३.३२७	६१.१४६५-८२
१२.८३	३४.३९	३३.३२८	६१.१४७३
१२.८४	—	—	६१.१४७४
१२.८५	३४.४०	३३.३२९	६१.१४७५
१२.८६	३४.४१	३३.३३०	६१.१४७६
१२.८७	३४.४२	३३.३३१	६१.१४७७-७२
१२.८८	—	—	६१.१४८३
१२.८९	—	—	६१.१४८४
१२.९०	३४.४३	३३.३३२	६१.१४८५
१२.९१	३४.४४	३३.३३३	६१.१४८६
१२.९२	३४.४५	३३.३३४	६१.१४८७
१२.९३	—	—	६१.१४८८
१२.९४	३४.४६	३३.३३५	६१.१४८९
१२.९५	३४.४७	३३.३३६	६१.१४९०
१२.९६	—	—	६१.१४९१
१२.९७	—	—	६१.१४९२
१२.९८	—	—	६१.१४९३
१२.९९	—	—	६१.१४९४
१२.१००	—	—	६१.१४९५-१५००
१२.१०१	—	—	६१.१५०१
१२.१०२	—	—	६१.१५०२
१२.१०२ अ	—	—	६१.१५०३
१२.१०३	—	—	६१.१५०४-०८
१२.१०४	—	—	६१.१५०९
१२.१०५	—	—	६१.१५१०

म	ना	द्	सु
१२.१०७	—	—	६१.१५२२
१२.१०८	—	—	६१.१५२३
१२.१०९	३५.४८	३३.२३७	६१.१५२४
१२.११०	—	—	६१.१५२५-२९
१२.११६	३४.१२	३३.२७३	६१.१५३५
१२.११८	—	—	६१.१५३७
१२.११९	—	—	६१.१५३८-४२
१२.१२१	३४.५६	३३.२४५	६१.१५४४
१२.१२२	३४.५७	३३.२४६	६१.१५४५
१२.१२४	—	—	६१.१५४७
१२.१२८	—	—	६१.१५५१
१२.१३०.१	—	—	६१.१५५३
१२.१३०/२	—	—	६१.१५५४
१२.१३१	—	—	६१.१५५५
१२.१३२	—	—	६१.१५५६
१२.१३५	—	—	६१.१५५९
१२.१३६	—	—	६१.१५६०
१२.१३८	—	—	६१.१५६२
१२.१३९	—	—	६१.१५६३
१२.१४१	—	—	६१.१५६५
१२.१४२	—	—	६१.१५६६
१२.१४४	—	—	६१.१५६८
१२.१४९	—	—	६१.१५७३
१२.१५२	—	—	६१.१५७६
१२.१५३	—	—	६१.१५७७
१२.१५४	—	—	६१.१५७८
१२.१५५	—	—	६१.१५७९
१२.१५६	—	—	६१.१५८०
१२.१५७	—	—	६१.१५८१
१२.१५८	—	—	६१.१५८२
१२.१५९	—	—	६१.१५८३
१२.१६०	—	—	६१.१५८४
१२.१६१	—	—	६१.१५८५
१२.१६२	—	—	६१.१५८६
१२.१६३	—	—	६१.१५८७
१२.१६५	—	—	६१.१५८९
१२.१६६	—	—	६१.१५९०
१२.१६७	—	—	६१.१५९१

[७ चित्र

म.	ना.	द.	स.
१२.१६८	—	—	६१.१५९२
१२.१६९	—	—	६१.१५९३
१२.१७०	३४.७८	३३.३६३	६१.१५९४
१२.१७१	—	—	६१.१५९५
१२.१७२	—	—	६१.१५९६
१२.१७३	—	—	६१.१५९७
१२.१७४	—	—	६१.१५९८
१२.१७४ अ	३४.७९	३३.३६४	६१.१५९९
१२.१७५	३४.८०	—	६१.१६००
१२.१७६	३४.८१	३३.३६५	६१.१६०१
१२.१७७	३४.८३	३३.३६६	६१.१६०२
१२.१७८	३४.८४	—	६१.१६०३
१२.१७९	३४.८५	—	६१.१६०४
१२.१८०	३४.८६	—	६१.१६०५
१२.१८१	३४.८२	३३.३६७	६१.१६०६
१२.१८२	३४.८७	३३.३६८	६१.१६०७-१९
१२.१८३	३४.८८	३३.३६९	६१.१६२०
१२.१८४	३४.८९	६३.३७०	६१.१६२१
१२.१८५	—	—	६१.१६२२-२४
१२.१८६	—	—	६१.१६२५-२७
१२.१९०	३४.९४	३३ ३७५	६१.१६३२
१२.१९१	—	—	६१.१६३३-३६
१२.१९२	—	—	६१.१६३७
१२.१९३	—	—	६१.१६३८
१२.१९४	३४.९६	३३.३७७	६१.१६३९
१२.१९६	—	—	६१.१६५०
१२.१९७	३४.९१	—	६१.१६५१-५७
१२.२००	—	—	६१.१६६०-६३
१२.२०२	३४.१०१	३३.३८२	६१.१६६५
१२.२०३	—	—	६१.१६६६
१२.२०४	—	—	१६.१६६७
१२.२०५	—	— .	६१.१६६८
१२.२०६	३५.१	३३.३८३	६१.१६६९
१२.२०७	—	—	६१.१६७०
१२.२०८	—	—	६१.१६७१-७६
१२.२०९	३५.२	३३.३८४	६१.१६७७
१२.२१०	—	—	६१.१६७८
१२.२११/१	—	—	६१.१६७९

म.	ना.	द.	श.
१२.२११/२	—	—	६१.१६८०
१२.२१२	—	—	६१.१६८१
१२.२१३	—	—	६१.१६८२
१२.२१४	—	—	६१.१६८३-९३
१२.२१५	—	—	६१.१६९४
१२.२१७	—	—	६१.१७०५
१२.२१९	—	—	६१.१७०७
१२.२२१	—	—	६१.१७०९
१२.२२२	—	—	६१.१७१०-१६
१२.२२३	—	—	६१.१७१७
१२.२२६	—	—	६१.१७२०
१२.२२७	—	—	६१.१७२१
१२.२२८	—	—	६१.१७२२
१२.२२९	—	—	६१.१७२३-३२
१२.२३१	—	—	६१.१७३४
१२.२३३	—	—	६१.१७४४
१२.२३४	—	—	६१.१७४५
१२.२३५	—	—	६१.१७४६
१२.२३६	—	—	६१.१७४७
१२.२३७/१	—	—	६१.१७४८-५२
			६१.१७५५
१२.२४२/२	—	—	६१.१७७१/२
१२.२४४/१	—	—	६१.१७७३/१
१२.२४५	—	—	६१.१७७४
१२.२५३	—	—	६१.१७९१
१२.२५४	—	—	६१.१७९२
१२.२५५	—	—	६१.१७९३
१२.२५६	—	—	६१.१७९४
१२.२५७	—	—	६१.१७९५
१२.२५८	—	—	६१.१७९६
१२.२५९	—	—	६१.१७९७-९८
१२.२६०	—	—	६१.१८००
१२.२६१	—	—	६१.१८०१
१२.२६२	—	—	६१.१८०२
१२.२६३	—	—	६१.१८०३-१०
१२.२६४	—	—	६१.८११
१२.२६५	—	—	६१.१८१२
१२.२६६	—	—	६१.१८१३-१९

साठ

म.	ना.	द.	स.
१२.२६७	—	—	६१.१८२०
१२.२६८	—	—	६१.१८२१
१२.२६९	—	—	६१.१८२२
१२.२७०	—	—	६१.१८२३
१२.२७१	—	—	६१.१८२४
१२.२७२	—	—	६१.१८२५
१२.२७३	—	—	६१.१८२६
१२.२७४	—	—	६१.१८२७
१२.२७५	—	—	६१.१८२८
१२.२७६	—	—	६१.१८२९
१२.२८१	—	—	६१.१८४७
१२.२८२	—	—	६१.१८४८
१२.२८३	—	—	६१.१८४९
१२.२८४	—	—	६१.१८५०
१२.२८५	—	—	६१.१८५१
१२.२८६	—	—	६१.१८५२
१२.२८७	—	—	६१.१८५३
१२.२८८	—	—	६१.१८५४
१२.२८९	—	—	६१.१८५५
१२.२९०	—	—	६१.१८५६
१२.२९१	—	—	६१.१८५७-६२
१२.२९२	—	—	६१.१८६३
१२.२९३	—	—	६१.१८६४
१२.२९४	—	—	६१.१८६५
१२.२९५	—	—	६१.१८६६
१२.२९६	—	—	६१.१८६७
१२.२९७	—	—	६१.१८६८
१२.२९८	—	—	६१.१८६९
१२.२९९	—	—	६१.१८७०
१२.३००	—	—	६१.१८७१
१२.३०१	—	—	६१.१८७१अ
१२.३०२	—	—	६१.१८७२
१२.३०३	—	—	६१.१८७३
१२.३०४	—	—	६१.१८७४
१२.३०५	—	—	६१.१८७५-९८
१२.३०६	—	—	६१.१८९९
१२.३०७	—	—	६१.१९००
१२.३०८	—	—	६१.१९०१

म.	ना.	द.	स्.
१२.३०९	—	—	६१.१९०२
१२.३१०	—	—	६१.१९०३-१३
१२.३११	—	—	६१.१९१४
१२.३१२	—	—	६१.१९१५
१२.३१३	—	—	६१.१९१६
१२.३१७	—	—	६१.१९२४
१२.३१८	—	—	६१.१९२५
१२.३२१	३५.३५	३३.४१५	६१.१९३३
१२.३२७	३५.४२	३३.४२२	६१.१९३९
१२.३२८	३५.४३	३३.४२३	६१.१९४०
१२.३२९	३५.४४	३३.४२४	६१.१९४१-४७
१२.३३०	—	—	६१.१९४८
१२.३३१	३५.४५	३३.४२५	६१.१९४९
१२.३३२	३५.४६	३३.४२६	६१.१९५०-५६
१२.३३३	—	—	६१.१९५७
१२.३३४	—	—	६१.१९५८
१२.३३५	—	—	६१.१९५९
१२.३३६	—	—	६१.१९६०
१२.३३८	३५.४७	३३.४२८	६१.१९६२
१२.३३९	—	—	६१.१९६३-६९
१२.३४०	३५.४८	३३.४२९	६१.१९७०
१२.३४५	—	—	६१.१९७५-८२
१२.३४६	—	—	६१.१९८३
१२.३४७	—	—	६१.१९८४
१२.३४९	—	—	६१.१९८६
१२.३५१	—	—	६१.१९८८
१२.३५२	—	—	६१.१९८९-९०
१२.३५३	—	—	६१.१९९१-९९
१२.३५४	—	—	६१.२०००
१२.३५५	—	—	६१.२००१
१२.३५६	—	—	६१.२००२
१२.३५७	—	—	६१.२००३
१२.३५८	—	—	६१.२००४
१२.३५९	—	—	६१.२००५
१२.३६०	—	—	६१.२००६
१२.३६१	—	—	६१.२००७
१२.३६४	—	—	६१.२००९
१२.३६५	—	—	६१.२०११

म.	ना.	द.	स.
१२.३६६	—	—	६१.२०१२
१२.३६७	—	—	६१.२०१३
१२.३६८	—	—	६१.२०१४-२२
१२.३६९	—	—	६१.२०२३
१२.३७०	—	—	६१.२०२४
१२.३७१	—	—	६१.२०२५
१२.३७२	—	—	६१ २०२६
१२.३७३	—	—	६१.२०२७
१२.३७४	—	—	६१.२०२८
१२.३७५	—	—	६१.२०२९-३५
१२.३७७	—	—	६१.२०३७
१२.३८३	—	—	६१.२०४५
१२.३८४	—	—	६१.२०४६
१२.३८५	—	—	६१.२०४७
१२.३८६	—	—	६१.२०४८
१२.३८७	—	—	६१.२०४९
१२.३८८	—	—	६१.२०५०
१२.३८९	—	—	६१.२०५१
१२.३९०	—	—	६१.२०५२
१२.३९१	—	—	६१.२०५३
१२.६९२	—	—	६१.२०५४
१२.३९३	—	—	६१.२०५५
१२.३९४	—	—	६१.२०५६
१२.३९५	—	—	६१.२४५७
१२.३९६	—	—	६१.२०५८
१२.३९७	—	—	६१.२०५९
१२.३९८	—	—	६१.२०६०-६६
१२.३९९	—	—	६१.२०६७
१२.४००	—	—	६१.२०६८
१२.४०१	—	—	६१.२०६९
१२.४०२	—	—	६१.२०७०-७५
१२.४०३	—	—	६१.२०७६ ७८
१२.४२१	—	—	६१.२०७९
१२.४२४	—	—	६१.२१०२
१२.४२५	—	—	६१.२१०३
१२.४२६	—	—	६१.२१०४
१२.४२७	—	—	६१.२१०५
१२.४२८	—	—	६१.२१०

म.	ना.	द.	सु.
१२.४३१	—	—	६.१२११०
१२.४३२	—	—	६.१२१११
१२.४३३	—	—	६१.२११२
१२.४३४	—	—	६१.२११३
१२.४३५	—	—	६१.२११९
१२.४३६	—	—	६१.२१२०
१२.४३७	—	—	६१.२१२१
१२.४३८	—	—	६१.२१२२
१२.४३९	—	—	६१.२१२३
१२.४४०	—	—	६१.२१२४
१२.४४१	—	—	६१.२१२५
१२.४४२	—	—	६१.२१२६
१२.४४३	—	—	६१.२१२७-३२
१२.४४४-४५	—	—	६१.२१३३-३४
१२.४४६	—	—	६१.२१३६
१२.४४७	—	—	६१.२१३७
१२.४४८	—	—	६१.२१३८
१२.४४९	—	—	६१.२१३९-४२
१२.४५०	—	—	६१.२१४३
१२.४५१	—	—	६१.२१४४
१२.४५२	—	—	६१.२१४५
१२.४५४	—	—	६१.२१४७
१२.४५५	—	—	६१.२१४८
१२.४५६	—	—	६१.२१४९
१२.४५७	—	—	६१.२१५०-६०
१२.४६१	—	—	६१.२१६५
१२.४६२	—	—	६.१२१६६
१२.४६३	—	—	६१.२१६७
१२.४६४	—	—	६१.२१६८-७७
१२.४६६	—	—	६१.२१७९
१२.४६७	३६.२०	३२.४७२	६१.२१८१-९५
१२.४६८	—	—	६१.२१९६
१२.४६९	—	—	६१.२१९६-२२०३
१२.४७२	—	—	६१.२२०६
१२.४७५	—	—	६१.२२०९
१२.४७६	—	—	६१.२२१०
१२.४७७	—	—	६१.२२११
१२.४८०	—	—	६१.२२१४

म.	ना.	द.	स.
१२.४८१	—	—	६१.२२१६
१२.४८२	—	—	६१.२२१८-३०
१२.४८३	—	—	६१.२२३१
१२.४८४	—	—	६१.२२३२
१२.४८५	—	—	६१.२२३३
१२.४८६	—	—	६१.२२३८
१२.४८७	३६.२८	३६.४७८	६१.२२३९-४६
१२.४९९[1]	—	—	६१.२२४८
१२.५००	—	—	६१.२२४९-५१
१२.५०१	—	—	६१.२२५२
१२.५०२	—	—	६१.२२५३
१२.५०३	—	—	६१.२२५४-६१
१२.५०४	—	—	६१.२२६२
१२.५०५	—	—	६१.२२६३-६५
१२.५०६	—	—	६१.२२६६
१२.५०७	—	—	६१.२२६७-७१
१२.५०८	—	—	६१.२२७२
१२.५०९	३६.२६	—	६१.२२७३
१२.५१०	—	—	६१.२२७४
१२.५११	—	—	६१.२२७५
१२.५१२	—	—	६१.२२७६-८१
१२.५१५	—	—	६१.२२८५
१२.५१६	३६.३१	—	६१.२२८६-९७
१२.५१८	—	—	६१.२२९८
१२.५२०	—	—	६१.२३००
१२.५२१	—	—	६१.२३०१
१२.५२२	—	—	६१.२३०२
१२.५२३	—	—	६१.२३०३
१२.५२४	—	—	६१.२३०४-१२
१२.५२६	—	—	६१.२३१३
१२.५२८	—	—	६१.२३१५
१२.५२९	—	—	६१.२३१६-२३
१२.५३०	—	—	६१.२३२४
१२.५३१	—	—	६१.२३२५-४२
१२.५३२	—	—	६१.२३४३
१२.५३३	—	—	६१.२३४४

[1] प्रति में भूल से १० की संख्या वृद्धि हो गई है।

म.	नी.	द.	स.
१२.५३५	—	—	६१.२३४७
१२.५३६	—	—	६१.२३४८
१२.५३८	—	—	६१.२३५०-५८
१२.५३९	—	—	६१.२३५९
१२.५४०	—	—	६१.२३६०
१२.५४१	—	—	६१.२३६१
१२.५४४	—	—	६१.२३६४
१२.५४५	—	—	६१.२३६५-७१
१२.५४७	—	—	६१.२३७३
१२.५४८	—	—	६१.२३७४
१२.५४९	—	—	६१.२३७५
१२.५५१	—	—	६१.२३७७
१२.५५२	—	—	६१.२३७८
१२.५५३	—	—	६१.२३७९
१२.५५४	—	—	६१.२३८०
१२.५५५	—	—	६१.२३८१
१२.५५६	—	—	६१.२३८२
१२.५५८	—	—	६१.२३८४
१२.५५९	—	—	६१.२३८५-९१
१२.५६०	—	—	६१.२३९२
१२.५६१	—	—	६१.२३९३-९८
१२.५६२	—	—	६१.२३९९
१२.५६३	—	—	६१.२४००
१२.५६३ [?]	—	—	६१.२४०० [?]
१२.५६३ [?]	—	—	६१.२४०१ [?]
१२.५६६	—	—	६१.२४०४
१२.५६७	—	—	६१.२४०५
१२.५६८	—	—	६१.२४०६-२०
१२.५६९	—	—	६१.२४२१
१२.५७०	—	—	६१.२४२२-२७
१२.५७१	—	—	६१.२४२८-२९
१२.५७५	—	—	६१.२४३२
१२.५७८	—	—	६१.२४३६
१२.५७९	—	—	६१.२४३७
१२.५८२	३५.३	३३.३८६	६१.२४५३
१२.५८४	३७.१२	३३.५०९	६१.२४५५
१२.५८८	—	—	६१.२४५९
१२.५९३	—	—	६१.२४६४

म.	ना.	द.	स.
१२.५९४	—	—	६१.२४६५
१२.५९५	—	—	६१.२४६६
१२.५९७	—	—	६१.२४६८
१२.६०२	—	—	६१.२४८३
१२.६०३	—	—	६१.२४८४
१२.६०४	—	—	६१.२४८५
१२.६०६	—	३३.५२६	६१.२४८८
१२.६०७	—	—	६१.२४८९
१२.६०८	—	—	६१.२४९०
१२.६०९	—	—	६१.२४९१
१२.६१२	३८.१२	३३.५२९	६१.२४९४
१२.६१३	—	—	६१.२४९५-२५०५
१२.६१४	—	—	६१.२५०६
१२.६१५	—	—	६१.२५०७-१३
१२.६१८	—	—	६१.२५२३
१२.६१९	—	—	६१.२५२४-३४
१२.६२०	—	—	६१.२५३५-३६
१२.६२३	—	—	६१.२५३८
१२.६२४	—	—	६१.२५३९
१२.१३७८	३८.४८	—	६१.२५४७
१२.१३७९	३८.४९	३३.५३८	६१.२५४८
१२.१३८०	३८.५०	३३.५३९	६१.२५४९
१२.१३८२	३८.५२	३३.५४१	६१.२५५१
१२.१३८३	३८.५३	३३.५४२	६१.२५५२

म. के उपर्युक्त छन्दों में से जो छन्द स. में नहीं पाए जाते है, उनका पाठ निम्नलिखित है:—

अ. फ. १. नारा० ६ के अनन्तर : अथ गाहां—पढमो बारहमत्ते बीयो अठार साहिणा अट्ठो ।

जहां पढमंतर्हां तीयौ दहपंचमि भूसीयं गाहा ॥१॥

जां पढम ताय पंचम सतम असेस होइ गुरुहुण ।

गुरिवणी विण पाईणा गाहा दोस पयासई ॥२॥

[तुलना० प्राकृत पैंगल १.५४,६५]

अ. फ. १. दो० ४ के अनन्तर : त्रोटक— सगुणा जिह च्यारि पढंत परी ।

रचि सोलह मत्त विसासु करी ।

सुणि प्यंगलि णाजहि बीरहयं ।

यह तोटय जाणहु पायडियं ॥१॥

[तुलना० प्राकृत पैंगल १.१२६]

अ. फ. १ दो० ५ के अनन्तर : मोतीदाम— पयोहर च्यारि पसिदय ताम ।

ति सोलह मत्तह सुत्तीय दाम ।

नपुथइ हारु मरे इथ अन्त।
ति अठइ अगक छपण मंत।

[तुलना० प्राकृत पैंगल २.१३३]

तुर गय आडस माऊहु किज।
कला ससि संघ धते गुरु दिज।
अगणिहि होइ पचास विसाय।
सगुर पर्थपै मुत्तीव दाम॥

८ के अनन्तर : त्रिभंगी—पढमं दह हरणं अहसहहरणं पुनि वसुहरणं पटुहरणं।
अंते गुर सोहैं सतहुचन सोहै सिढि सरोहै पारोहै।
जय परय पयोहर हरई मरोहर सास करं।

अनन्तर : दोहा— भूपति सोमेसर भलौ कही बिहद दीवान।
दुनियारी पै दाहिवौ दाह राव प्रधान॥१॥
ग्यारै सै तीडोतरै चोडा पहीयो वेथ।
सोमेसुर राजातरै कीया यगनह वेब॥२॥
सोमेसुर बाह्यो सहह प्रिथीपुर दीयौ नाम।
कीकी उकीली तै भई नागपुर परनाम॥३॥

नन्तर : दोहा— ग्यारे सै चवदोतरै आसुस दिठ विजाण।
प्रिथीयराज सु जनमीयौ वंस चहवाणां भाण॥५॥

अनन्तर : कुंड०—ग्यारह सै पंदरोत्तरै अहिपुर वसीयौ वास।
माहाराज पीथल मही कही मंत्र कैवास॥
कही मंत्र कैवास माह सुदि आठमि आर्षा।
दीपै वुपि नषत्र अनै रविवार जदाषा।
भीम अनै कैवास बिहु जगि लीयौ जसवास।
ग्यारै सै पंदरोत्तरे अहिपुर वसीयौ वास॥

" दोहरौ—ग्यार नै बीसअठ पाटू कीयो दुरंग।
सोहागिनि सुहविदि सोहै महल सुचंग॥

" कवित— मैगल इक मदमसत मस बेडी ज वयठौ।
आना सागर माधि वा वढि भीव वयठो।
माथुर बुधि विचारि लीह चिहुंदीस ज कारीय।
बाहरि गज निकालि भई रज कंकर भारीय।
वरदाई चंद इण परि भणै राजा रीझे मुज्रीयौ।
कायथ भीम मच्छीहक सुतन इण परि हाथी तुजीयौ॥

नन्तर : साटक—मंत्री देसव निसूवंसे वं विलंवन वता।
विन गानर मंत न सुपररया निरषीयसं चिता।
त्रिक्याधन नरषीय दिवसा सुमइं पाचारि द्वारेतिहं।
आवास वासीय सघनं अहनिर सर पचासं॥१॥

नन्तर : गाथा—निदाधीस रथयो इसमि दिवु आइस धतं पासि।
अंधामि जामि निसया सरले संपति सुकवि अचाई॥१८॥

म. ३१० : दूहा— छुटि रिधि सुलतान की अठ सहस हय छंडि ।
सिर कीन्हौ सुलतान कै नव दीन्हौ सो छंडि ॥

उपर्युक्त के अतिरिक्त इसी प्रकार निम्नलिखित वार्त्तायें भी म. में ऐसी है, जो स. में नहीं हैं:—

म, २. दो० १० के कुछ अनन्तर : वचनिका—एक दिवस राजा प्रिथीराज आनासागर झूलण जल क्रीड़ा करण आयौ तठै चंद नै राजा पूछै जु औ हाथी कितना मण छै ।

—:*:—

क. स्वीकृत, घा०, मो०, अ०, फ० तथा म० के अतिरिक्त ना० की

पाठ-सामग्री

ना.	द.	स.
१.४	१.१०	१.६८
१.७	१.२	१.३
१.९	१.५	१.४३
१.१०	१.६	१.४४
१.११	१.१२	१.७६
१.१२	—	१.७७
१.१३	१.१३	१.७८
१.१४	१.१४	१.७९
१.१५	१.१५	१.८०
१.१८	१.१७	१.८२
१.१९	१.१८	१.८३
१.२०	१.१९	१.८४
१.२१	१.२०	१.८५
१.२२	१.२१	१.८६
१.२२ अ	१.२२	१.८७
१.२३	१.२३	१.८८
१.२४	१.२४	१.८९
१.२५	१.२५	१.९१
१.२६	१.२६	१.९२
१.२८	१.९२	१.२५१
१.२९	—	—
१.३०	—	—
१.४४	१.६२	१.१८०
१.४५	१.६३	१.१८१-८७
१.४६	१.६४	१.१८९
१-४७	१.६५	१.१९०
१.४९	१.६७	१.१९३-९६
१.५०	१.६८	१.१९७
१.५२	१.७०	१.१९९
१.५६	१.७५/१	१.२१३
१.५७	१.७५/२	१.२१४
१.५८	१.७५/३	१.२१५-१६
१.६१	१.७८	१.२१९
१.६३	१.८०	१.२२२
१.६६	१.८२	१.२४१
१.६७	१.८३	१.२४२
१.७० अ	१.८५	१.२४४
१.७१	१.८६	१.२४५
१.७२	१.८७	१.२४६
१.७८	१.९१	१.२७९
१.७९	१.१००	१.२८१
१.८४	१.१०४	१.३०९
१.८६	१.१०६	१.३१५
१.८७	१.१०७	१.३१६
१.८८	१.११२	१.३२१-२३
१.८९	१.११३	१.३२४
१.९०	१.११४	१.३२५
१.९१	१.११६	१.३२७
१.९२	१.११७	१.३२८
२.१	—	१.३२९
२.२	—	१.३३०
२.३	—	१.३३२

ना.	द.	स.	ना.	द.	स.
२.४	—	१.३३३	२.४३	—	१.४१०
२.५	—	१.३३४	२.४४	—	१.४११
२.६	—	१.३३५	२.४५	—	१.४१२
२.७	—	१.३३६	२.४६	—	१.४१३
२.८	—	१.३३७	२.४७	—	१.४१४
२.९	—	१.३३८	२.४८	—	१.४१५
२.१०	—	१.३३९	२.४९	—	१.४१६
२.११	—	१.३४०	२.५०	—	१.४१७
२.१२	—	१.३४१-४४	२.५१	—	१.४१८
२.१३	—	१.३४५	२.५२	—	१.४१९
२.१४	—	१.३४६	२.५३	—	१.४२०-३२
२.१५	—	१.३४७	२.५४	—	१.४३३
२.१६	—	१.३४८	२.५५	—	१.४३४-३७
२.१७	—	१.३४९-६०	२.५६	—	१.४३८
२.१८	—	१.३६१	२.५७	—	१.४३९-४८
२.१९	—	१.३६२	२.५८	—	१.४४९
२.२०	—	१.३६३	२.६०	—	१.४५०-६०
२.२१	—	१.३६४-६९	२.६१	—	१.४६१
२.२२	—	१.३७०	२.६२	—	—
२.२४	—	१.३७१-८३	२.६३	—	१.४६२
२.२५	—	१.३८४	२.६४	—	१.४६३
२.२५ अ	—	१.३८५	२.६५	—	१.४६४
२.२६	—	१.३८६	२.६६	—	१.४६५
२.२८	—	१.३८७-९४	२.६७	—	१.४६६
२.२९	—	१.३९५	२.६८	—	१.४६७
२.३०	—	१.३९६	२.६९	—	१.४६८
२.३१	—	१.३९७	२.७०	—	१.४६९
२.३२	—	१.३९८	२.७१	—	१.४७०
२.३३	—	१.३९९	२.७२	—	१.४७१
२.३४	—	१.४००	२.७३	—	१.४७२
२.३५	—	१.४०१	२.७४	—	१.४७३
२.३५ अ	—	१.४०२	२.७५	—	१.४७४-७७
२.३६	—	१.४०३ ४	२.७६	—	१.४७८
२.३७	—	१.४०५	२.७७	—	१.४७९
२.३८	—	१.४०६	२.७८	—	१.४८०
२.३९	—	१.४०७	२.७९	—	१.४८३
२.४०	—	१.४०८	२.८०	—	१.४८४
२.४१	—	१.४०९	२.८१	—	१.४८५-९०

ना.	द.	स.	ना.	द.	स.
२.८३	—	१.४९४	३.४१	२.१८	२.३५३
२.८४	—	१.४९५	३.४४	२.२१	२.३६६
२.८५	—	१.४९२	३.४५	२.२२	२.३७५
२.८६	—	१.४९३	३.४६	२.२३	२.३८१
२.८७	—	१.५०६	३.४७	२.२४	२.३८८
२.८८	—	१.५०७	३.४८	२.२५	२.३९०
२.८९	—	१.५०८	३.५०	२.२७	२.४२८
२.९०	—	१.५०९	३.६१	२.३६	२.४८०
२.९१	—	१.५१०	३.७४	२.५०	२.५०८
२.९२	—	१.५११	३.७५	२.५१	२.५०९
२.९३	—	१.५१२	३.७६	२.५२	२.५१०
२.९४	—	१.५१३	३.७७	२.५३	२.५११
२.९५	—	१.४१४	३.७८	२.५६	२.५१२
२.९६	—	१.५१५	३.७९	२.५७	२.५१३
२.९७	—	१.५१६	३.८०	२.५८	२.५१४
२.९९	—	१.५१७	३.८१	२.५९	२.५१७
२.१००	—	१.५१८	३.८७	२.६४	२.५४३
२.१०१		—	३.८८	२.६५	२.५४४
२.१०२		—	३.९१	२.६८	२.५४७
२.१०३		—	३.९२	—	२.५४८
२.१०४		—	३.९३	—	२.५४९
२.१०७	१.१२५	१.५३२	३.९४	—	२.५५०
२.१०८	१.१२६	१.५३३	३.९५	—	२.५५१
२.११०	१.१२८	१.५३८	३.९६	—	२.५५२
२.१११	१.१२९	१.५४२	३.९७	—	२.५५३
२.११५	१.१३१अ	१.५४६	३.९८	—	२.५५४
२.११६	१.१३२अ	१.५४७	३.९९	—	२.५५५
२.११८	१.१३४	१.५४९	३.१००	—	२.५५६
२.१२१	—	१.५७०	३.१०२	—	२.५५७
२.१२५	१.१५०	१.७६०	३.१०३	—	२.५५८
२.१२६	—	१.७६१	३.१०४	—	२.५५९
२.१२९	१.१५३	१.७६६	३.१०५	—	२.५६०
३.२८	२.१	२.१	३.१०६	—	२.५६१
३.३०	२.७	२.३०२	३.१०७	२.६९	२.५६२
३.३१	२.८	२.३०४-०६	३.१०९	२.७६	२.५८५
३.३२	२.९	२.३०७	३.१०९ अ	२.७७	२.५८६
३.३३	२.१०	२.३०८	३.१११	—	—
३.३४	२.११	२.३०९-२०	४.२	३.२	१७.७८

ना.	द.	स.
४.३	३.५	३.४
४.४	३.३	३.३
४.५	—	—
४.६	३.६	३.९
४.७	३.७	३.१०
४.८	३.८	३.२०
४.९	—	३.१२
४.१०	—	३.१६
४.११	४.९	३.२१
४.१२	४.११	३.२३
४.१३	४.१०	३.२२
४.१४	४.१२	३.२४
४.१५	३.१३	३.२५
४.१६ अ	३.१५	३.२७-४०
४.१७	३.१६	३.४१
४.१८	३.१७	३.४२
४.१९	३.११	३.४३
४.२०	३.१८	३.४५
४.२३	३.२२	३.४६
५.१	—	—
५.२	१६.१	९.१
५.३	—	—
५.४	१६.२	९.२
५.५	१६.३	९.३
५.६	—	९.५
५.७	१६.४	९.६
५.८	१६.७	९.९
५.९	१६.८	९.१०
५.१०	१६.९	९.११
५.११	१६.१०	९.१२
५.१२	१६.११	९.१३
५.१३	१६.१३	९.१८
५.१४	१६.१४	९.२१
५.१५	१६.१५	९.२२
५.१६	१६.१७	९.२३
५.१७	१६.१७ अ	९.२४
५.१८	१६.१८	९.२५
५.१९	१६.१९	९.२६
५.२०	१६.२३	९.२९-३८
५.२१	१६.२४	९.३९
५.२२	१६.२६	९.४०
५.२३	१६.२५	९.४१
५.२४	१६.२७	९.४२
५.२५	१६.२८	९.४३-४५
५.२६	१६.२९	९.५६
५.२७	१६.३०	९.५७
५.२८	१६.३१	९.५८
५.२९	१६.३२	९.५९
५.३०	—	९.६०
५.३१	—	९.६१
५.३२	१६.३३	९.६२
५.३३	१६.३४	९.६३
५.३४	१६.३५	९.६४
५.३५	१६.३७	९.६६
५.३६	१६.३८	९.६७-७५
५.३७	१६.३९	९.७६
५.३८	१६.४०	९.७७
५.३९	१६.४२	९.७९
५.४१	१६.४३	९.८०-९०
५.४२	१६.४४	९.९१
५.४३	१६.४५	९.९२
५.४५	१६.४६	९.९३-१०४
५.४६	—	९.१०५
५.४९	—	९.१०८
५.५०	—	९.१०९-१२
५.५१	—	९.११३
५.५२	—	९.११४
५.५३	—	९.११५-१९
५.५४	—	९.१२०
५.५५	—	९.१२१-२९
५.५५ अ	—	९.१३०
५.५६	—	९.१३१
५.५७	—	९.१३२
५.६०	—	९.१३४
५.६१	—	९.१३५
५.६२	—	९.१३६

ना.	द.	स.
५.६३	—	१.१३७
५.६४	—	१.१३८
५.६५	—	१.१३९-५४
५.६६	—	१.१५५
५.६७	—	१.१५६
५.६८	—	१.१५७
५.६९	—	१.१५८
५.७०	—	१.१६७
५.७१	—	१.१६८
५.७२	—	१.१६९
५.७३	—	१.१७०-८८
५.७४	—	१.१८९
५.७५	—	१.१९०
५.७६	—	१.१९१
५.७८	—	१.१९२-२०२
५.७९	—	१.२०३
५.८०	—	१.२०४
५.८१	—	१.२०५
५.८२	—	१.२०६
५.८३	—	१.२०८
५.८४	—	१.२०९
५.८५	—	१.२१०
६.१	८.२	१७.१
६.२	८.४	१७.१३-२०
६.३	८.५	१७.२१
६.४	८.६	१७.२५
६.५	८.८	१७.२६
६.६	८.९	१७.२७
६.७	—	१७.२८
६.८	८.१०	१७.३०
६.९	—	१७.३६
६.१०	८.१३	१७.३८
६.११	८.१४	१७.३९
६.१२	८.१५	१७.७१
६.१३	८.१९	१७.७५
६.१५	८.२०	१७.७६
६.१७	८.२२	२४.२
६.१८	८.२३	२४.३
६.१९	८.२४	२४.४
६.२०	८.२५	२४.५
६.२१	८.२६	२४.७
६.२२	८.२८	२४.१८
६.२३	८.२९	२४.१९
६.२४	८.३०	२४.२०
६.२५	८.३१	२४.२१
६.२६	८.३२	२४.२२
६.२७	८.३३	२४.२३
६.२८	८.३४	२४.२४
६.२९	८.३५	२४.२५
६.३०	८.३६	२४.२६
६.३१	८.३७	२४.२७
६.३२	८.३८	२४.२८-३३
६.३३	८.३९	२४.३६
६.३४	८.४०	२४.३७
६.३५	८.४१	२४.३८
६.३७	८.४२	२४.३९
६.३७ अ	८.४३	२४.४०
६.३८	८.४४	२४.४१
६.३९	८.४५	२४.४२
६.४०	८.४६	२४.४३
६.४१	८.४७	२४.४४
६.४२	८.४८	२४.४५
६.४२ अ	८.४९	२४.४६
६.४३	८.५०	२४.४७
६.४४	८.५१	२४.४९
६.४५	८.५२	२४.५०
६.४६	८.५३	२४.५१
६.४७	८.५४	२४.६०
६.४८	८.५५	२४.७२
६.४९	८.५६	२४.७७-८२
६.५०	८.५७	२४.९९
६.५१	८.५८	२४.१०१
६.५२	८.५९	२४.१२४
६.५३	८.६०	२४.१०९-१२
६.५४	८.६१	२४.११३
६.५५	८.६२	२४.११४

ना.	द.	सं.	ना.	द.	सं.
६.५६	८.६३	२४.१२५	६.९७	—	२४.४३१
६.५७	८.६४	२४.१३७	६.९८	८.१२५	२४.४३६
६.५८	८.६५	२४.१३८	६.९९	८.१२६	२४.४३७
	८.६६	२४.१४४	६.१००	८.१२७	२४.४३८
६.५९	८.७६	२४.१८१	६.१०१	८.१२८	२४.४४०-४५
६.६१	८.७७	२४.१८३-९६	६.१०५	८.१३६	२४.४६०
६.६२	८.७८	२४.१९७	६.१०७	८.१३९	२४.४६४-६६
६.६३	८.७९	२४.१९८	६.१०८	८.१४०	२४.४६७
६.६४	८.८०	२४.१९९	६.१०९	८.१४२	२४.४६९
६.६५	८.८२	२४.२०१	६.११०	—	२४.४७०
६.६६	८.८३	२४.२०२	६.१११	१.१४४	१.६९६
६.६७	८.८४	२४.२०३	७.१	—	७.३
६.६८	८.८५	२४.२०४	७.२	—	७.२
६.६९	८.८६	२४.२०५	७.३	४.३	७.९-११
६.६९अ	८.८७	२४.२०६	७.४	४.४	७.१२
६.७१	८.८८	२४.२५६-६३	७.५	४.५[१]	७.१४
६.७२	८.९०	२४.३५५	७.६	—	७.१५
६.७३	८.९१	२४.३६६	७.७	४.८[१]	७.२१
६.७४	८.९२	२४.३६७		४.१०[१]	
६.७६	८.९५	२४.३७४	७.८	४.९[१]	७.२७
६.७७	८.९६	२४.३७५	७.९	४.११[१]	७.२९
६.८१	८.१००	२४.३८३	७.१०	४.१२[१]	७.३१
६.८२	८.१०१	२४.३८४	७.११	४.१५	७.३४
६.८३	८.१०२	२४.३८५	७.१२	४.१६	७.३५-५४
६.८४	८.१०३	२४.३८६	७.१३	४.१७	७.५५
६.८६	८.१०५	२४.३८८	७.१४	४.१८	७.६८
६.८७	८.१०६	२४.३८९	७.१५	४.१९	७.६९
६.८८	८.१०७	२४.३९४	७.१६	४.२५	७.९४-१०१
६.८९	८.१०८	२४.३९५-९९	७.१९	—	७.४७
६.९०	८.१०९	२४.४००	७.२०	४.२६	७.१०७
६.९१	८.११०	२४.४०२-०८	७.२१	४.२७	७.११३
६.९२	८.१११	२४.४०९	७.२२	—	७.११४
६.९३	८.११९	२४.४१०	७.२३	४.२८	७.११५
६.९४	८.११३	२४.४११	७.२४	४.२९	७.११६
६.९५	८.१२२	२४.४२४	७.२६	४.३०	७.११७-२५
६.९६	८.१२३	२४.४२९	७.२७	४.३१	७.१२८

१ ये छन्द-संख्याएँ टॉड १० की हैं, खण्ड-संख्याएँ मात्र द० की हैं, द० में यह अंश त्रुटित है।

ना.	द.	स.	ना.	द.	स.
७.२८	४.३३	७.१३७	९.३	२४.७	४५.५५
७.२९	४.३५	७.१६६	९.४	२४.८	४५.५६
७.३०	४.३६	७.१४२	९.५	२४.९	४५.५७
७.३१	४.३७	७.१४३	९.६	२४.१०	४५.५८
७.३२	४.३८	७.१४४	९.७	२४.१७	४५.६७
७.३३	४.३९	७.१४६	९.८	२४.१८-२०	४५.६८-७०
७.३४	४.४०	७.१४७	९.९	२४.२१	४५.७१
७.३५	४.४१	७.१४८	९.१०	२४.२४	४५.७४
७.३६	४.४२	७.१४९	९.११	—	—
७.३७	४.४३	७.१५०	९.१२	२४.३२	४५.९०
७.३८	४.४४	७.१५१	९.१३	२४.११	४५.५९
७.३९	४.४४ अ	७.१५२-५६	९.१४	२४.२२	४५.७२
७.४०	४.४५	७.१५९	९.१५	२४.२३	४५.७३
७.४१	४.४९	७.१६८	९.१६	२४.३३	४५.९२
७.४२	४.५३	७.१७२-७५	९.१७	२४.३४	४३.९३
७.४३	४.५४	७.१७७	९.१८	२४.३५	४५.९४
७.४४	४.५५	७.१७८	९.१९	२४.३६	४५.९५
७.४५	४.५६	७.१७९	९.२०	२४.३७	४५.९६
७.४६	४.५७	७.१८०	९.२१	२४.३८	४५.९७
७.४७	—	७.१८२	९.२१ (?)	२४.१२	४५.६०-६४
७.४८	४.५९	७.१८५	९.२२ (?)	—	४५.१५६
८.१	९.१	८.१७	९.२३	२४.१३	४५.६५
८.२	९.२	८.२१-२३	९.२४	२४.१६	४५.१५७
८.३	९.३	८.२७	९.२६	२४.२५	४५.७५
८.४	९.४	८.२८	९.२७	२४.२७	४५.७७
८.५	९.५	८.२९	९.२९	२४.२८	४५.७८-८६
८.६	९.६	८.३७-४१	९.३०	२४.६७	४५.१५१
८.७	९.७	८.४२ अ	९.३१	२४.७०	४५.१५४
८.८	९.९	८.४४	९.३२	२४.७१	४५.१५५
८.९	९.१०	७.१८६	९.३३	२४.७४	४५.१६०
८.१०	९.१२	८.५४	९.३४	२४.७३	४५.१५९
८.११	९.११	८.५०-५२	९.३५	२४.७५	४५.१६१
८.१२	—	८.५३	९.३६	२४.७७	४५.१६३
८.१३	९.१३	८.६१-६८	९.३७	२४.७८	४५.१६४-६८
८.१४	९.१४	८.६९	९.३८	२५.११	४५.२१९
९.१	२४.५	४५.३३	खंड१०	—	खंड ५[1]
९.२	२४.६	४५.५४	११.१	—	—

[1] स० के ५.४६, ५.८१, ५.९५-९७ के अतिरिक्त उसके खंड ५ के सभी छन्द ना० में खंड १० में हैं और ना० के १०.५१ के अतिरिक्त ना० के खंड १० के सभी छन्द स० के खण्ड ५ में हैं।

ना.	द.	स.
११.२	—	६.१
११.३	—	६.२
११.४	—	—
११.५	—	६.३-१०
११.६	—	—
११.७	—	६.१३
११.८	—	६.१४
११.९	—	६.१५
११.१०	—	६.१६
११.११	—	६.१७
६१.१२	—	६.१९
११.१३	—	६.२०
११.१४	—	६.२१
११.१५	—	६.२२
११.१६	—	६.२३
११.१७	—	६.२५
११ १९	—	६.२६
११.२०	—	६.२७
११.२१	—	६ २८
११.२२	—	—
११.२३	—	६.२९
११.२४	—	६.३०
११.२५	—	६.३१
११.२६	—	६.३२
११.२७	—	६.३३
११.२८	—	६.३४
११.२९	—	६.३५-४८
११.३०	—	६.६१
११.३२	—	६ ६२
११.३३	—	६.५०
११.३४	—	६.५१
११.३५	—	६.५२
११.३६	—	६.५३
११.३७	—	६.५४
११.३८	—	६.५५
११.३९	—	६.५६
११ ४०	—	६.५७
११.४१	—	६.५८
११.४२	—	६.५९
११.४३	—	६.६०
११.४४	—	६.६३
११.४५	—	६.६४
११.४६	—	६.६५
११.४७	—	६.६६-९२
११.४८	—	६.९३
११.४९	—	६.९४
११.५०	—	६.९५
११.५१	—	६.९६
११.५२	—	६.९७
११.५३	—	६.१०४
११.५४	—	६.१०५
११.५६	—	६.१०६
११.५७	—	६.१०७
११.५८	—	—
११.५९	—	६.१०८-०९
११.६०	—	६.१२१
११.६१	—	६.१२२
११.६२	—	६.१२३
११.६३	—	६.१२४
११.६४	—	६.१२५
११.६५	—	—
११.६६	—	६.१२६
११.६७	—	६.१२७
११.६८	—	—
११.६९	—	६.१२९
११.७०	—	६.१३०
११.७१	—	६.१३१
११.७२	—	६.१३२-३६
११.७३	—	६.१३७
११.७४	—	६.१३८
११.७५	—	६.१४०
११.७६	—	६.१४१
११.७७	—	६.१४२
११.७८	—	—
११.७९	—	६.१४३
११.८०	—	६.१४४

ना.	द.	स.
११.८१	—	६.१४५
११.८२	—	६.१५०
११.८३	—	६.१६७-६९/१
११.८४	—	६.१६९/२
११.८५	—	६.१७०
११.८६	—	६.१७१
११.८७	—	६.१७२
११.८८	—	६.१७६
११.८९	—	६.१७८
१२.०	—	१९.२५१
१२.१	२०.६	१८.११
	२१.७६	
१२.२	२०.७	१८.१२
१२.३	२० ७अ	१८.१३
१२.४	२०.१५	१८.२१
१२.५	२०.१५अ	१८.२२-३०
१२.६	२०.१६	१८.३१
१२.७	२०.१७	१८.३२
१२.८	२०.१८	१८.३३
१२.१७	—	१८.५८-७६
१२.१८	—	१८.७९
१२.१९	—	१८.८०
१२.२०	—	१८.८१
१२.२१	—	१८.८२
१२.२२	—	१८.८३-९१
१२.२३	—	१८.९२
१२.२४	—	१८.९३
१२.२५	—	१८.९४
१२.२६	—	१८.९५
१२.३०	२१.३	१९.२६
१२.३९	२१.१२	१९.७८
१२.४१	२१.१४	१९.९२
१२.४९	२१.२२	१९.१०४
१२.५०	२१.२३	१९.११३
१२.५१	२१.२४/१	१९.११४/१
१२.५० (?)	२१.२४/२	१९.११४/२
१२.५१ (?)	२१.२५	१९.११५-१७
१२.५२	२१.२६	१९.११८

ना.	द.	स.
१२.५३	२१.२७	१९.११९
१२.५४	२१.२८	१९.१२०
१२.५५	२१.२९	१९.१२१
१२.५६	२१.३०	१९.१३८
१२.५७	२१.३१	१९.१३९
१२.५८	२१.३२	१९.१४०
१२.५९	२१.३३	१९.१४१-४६
१२.६०	२१.३४	१९.१५४
१२.६१	३१.३६	१९.१५५
१२.६२	२१.३७	१९.१५६
१२.६३	२१.३८	१९.१५७
१२.६४	२१.३९	१९.१५८
१२.६५	२१.३४	१९.१४८-५३
१२.६६	२१.४१	१९.१६०
१२.६७	२१.४२	१९.१६३-६५
१२.६८	२१.४३	१९.१६६
१२.६९	२१.४४	१९.१६७
१२.७०	२१.४५	१९.१६८-७०
१२.७१	२१.४६	१९.१७२
१२.७२	२१.४७	१९.१७३
१२.७३	२१.४८	१९.१७४
१२.७४	२१.४९	१९.१७५
१२.७५	२१.५०	१९.१७६
१२.७६	२१.५१	१९.१७७
१२.७७	२१.५२	१९.१७८
१२.७८	२१.५३	१९.१८३
१२.७९	२१.५४	१९.१८४-८९
१२.८०	२१.५५	१९.१९०
१२.८१	२१.५६	१९.१९३
१२.८१ अ	२१.५७	१९.१९४-९८
१२.८२	२१.५८	१९.१९९
१२.८३	२१.५९	१९.२००-०४
१२.८४	२१.६०	१९.२०५
१२.८५	२१.६१	१९.२०६-११
१२.८६	२१.६२	१९.२१२
१२.८७	२१.६३	१९.२१३-१७
१२.८८	२१.६४	१९.२१८
१२.८९	२१.६५	१९.२१९-२४

ना.	द.	स.
१२.९०	२१.६६	१९.२२५
१२.९१	२१.६७	१९.२२६-३९
१२.९२	२१.६९	१९.२४१
१२.९३	—	१९.२४२
१२.९४	२१.७०	१९.२४३
१२.९५	२१.७१	१९.२४४
१२.९६	—	१९.२४७
१२.९७	२१.७२	१९.२४५
१२.९८	२१.७३	१९.२४६
१२.९९	२१.७५	१९.२५०
१३.११	२६.६	४६.७
१३.२०	—	४६.५५ अ
१३.२७ अ	२६.४२	४६.७३
१३.२८	२६.४३	४६.७४
१३.२९	२६.४४	४६.७५
१३.३०	२६.४५	४६.७६
१३.३१	२६.४६	४६.७७
१३.३२	२६.४७	४६.७८
१३.३३	२३.४८	४६.७९
१३.३४	२६.४९	४६.८०
१३.३५	२६.५०	४६.८१
१३.३६	२६.५१	४६.८२
१३.३७	२६.५६	४६.८८
१३.३८	२६.५७	४६.८९
१३.३९	२६.५८	४६.९०
१२.४०	२६.५९	४६.९१
१३.४१	२६.६०	४६.९५
१३.४२	२६.६१	४६.९३
१३.४३	२६.६२	४६.९४
१३.४४	२६.६३	४६.९५
१३.४५	३६.६४	४६.९६
१३.४६	२६.६५	४६.९७
१३.४७	२६.६६	४६.९८
१३.४८	२६.६७	४६.९९
१३.४९	२६.६८	४६.१०३
१३.५०	२६.६९	४६.१०४
१३.५१	२६.७०	४६.१०५
१३.५२	२६.७१	४६.१०६

ना.	द.	स.
१४.२	१३.२	१२.२
१४.३	१३.३	१२.३
१४.४	१३.४	१२.४
१४.५	१३.५	१२.६
१४.६	१३.७	१२.९
१४.७	१३.८	१२.१०
१४.८	१३.९	१२.१२
१४.९	१३.११	१२.१४
१४.१०	१३.१२	१२.१५
१४.११	१३.१३	१२.१६
१४.१२	१३.१५	१२.१८-२२
१४.१५ अ	१३.२० / १३.२७	१२.४१
१४.१६	१३.२८	१२.५८
१४.१७	१३.२९	१२.५९
१४.१८	१३.३०	१३.६०
१४.१९	१३.३१	१२.६१
१४.२०	१३.३२	१२.६२-६५
१४.२१	१३.३३	१२.६६
१४.२२	१३.३४	१२.६७
१४.२३	१३.३६	१२.६९
१४.२४	१३.३७	१२.७०-७५
१४.२५	१३.३८	१२.७६
१४.२६	१३.४०	१३.७८-८४
१४.२७	१३.४१	१२.८५
१४.२८	१३.४२	१२.८८
१४.२९	१३.४३	१२.८९
१४.३०	१३.४४	१२.९१
१४.३१	१३.४५	१२.९२
१४.३२	१३.४६	१२.९५
१४.३३	१३.४९	१२.१०४-०६
१४.३४	१३.५१	१२.१०७
१४.३५	१३.५३	१२.११०
१४.३६	१३.५४	१२.११२-१४
१४.३७	१३.५५	१२.११७
१४.३८	१३.५७	१२.११९
१४.३९	१३.५८	१२.१२०
१४.४०	१३.५९	१२.१२१

ना	द	स
१४.४१	१३.६०	१२.१२३
१४.४२	१३.६३	१२.१२८
१४.४३	१३.६२	१२.१२६
१४.४४	१३.६४	१२.१२९
१४.४५	१३.६७	१२.१३२
१४.४६	१३.६८	१२.१३४
१४.४७	१३.६९	१२.१४४
१४.४८	१३.७०	१२.१४६
१४.४९	१३.७१	१२.१४७
१४.५०	१३.७२	१२.१४५
१४.५१	१३.७५	१२.१५०
१४.५५	१३.८१	१२.१५७-५९
१४.५६	१३.८२	१२.१६०
१४.५९	१३.८४	१२.१६७
१४.६०	१३.८५	१२.१६८
१४.६३	१३.८८	१२.१७२
१४.६४	१३.८९	१२.१७३-८१
१४.६५	१३.९०	१२.१८४
१४.६६	१३.९१	१२.१८५-९१
१४.६७	१३.९४	१२.२१०
१४.६८	१३.९५	१२.२१३
१४.६९	१३.९६	१२.२१४
१४.७४	१३.१०१	१२.२३७
१४.७६	१३.१०३	१२.२४१
१४.७७	१३.१०४	१२.२४२
१४.७८	१३.१०५	१२.२४३
१४.७८ अ	१३.१०६	१२.२४४
१४.७९	१३.१०७	१२.२४५
१४.८०	१३.१०९	१२.२४७
१४.८१	१३.११०	१२.२४८
१४.८२ अ	१३.११२	१२.२५९
१४.८३ अ	१३.११३	१२.२६१-६२
१४.८७	१३.११६	१२.२७३
१४.८८	१३.११७-१८	१२.२७४
१४.९०	१३.११९	१२.२७६
१४.९१	१३.१२०	१२.२७७
१४.९६	१३.१२५	१२.२८३
१४.९७	१३.१२७	१२.२८६

ना	द.	स.
१४.९८	१३.१२८	१२.२८७
१४.९९	१३.१३०	१२.२८९
१४.१००	१३.१३१	१२.२९०
१४.१०१	१३.१३३	१२.२९२
१४.१०२	१३.१३४	१२.२९३
१४.१०१ अ	१३.१३५	१२.२९४
१४.१०२ अ	१३.१३७	१२.३०२
१४.१०७	१३.१४२	१२.३११
१४.१०८	१३.१४३	१२.३१२
१४.१०९	१३.१४४	१२.३१३
१४.११०	१३.१४५	१२.३१४
१४.१११	१३.१४६	१२.३१५
१४.११२	१३.१४७	१२.३१६
१४.११३	१३.१४८	१२.३१७
१४.११८	१३.१५३	१२.३२२
१४.१२२	१३.१५७	१२.३२६
१४.१२३	१३.१५८	१२.३२७
१४.१२४	१३.१५९	१२.३२८
१४.१२५	१३.१६०	१२.३२९
१४.१२६	१३.१६२	१२.३३१
१४.१२७	—	—
१४.१२८	१३.१६४	१२.३३३
१४.१२९	१३.१६५	१२.३३४
१४.१३०	१३.१६६	१२.३४१
१४.१३१	१३.१६७	१२.३३७
१४.१३२	१३.१६८	१२.३३८
१४.१३३	१३.१६९	१२.३३९
१४.१३४	१३.१७०	१२.३४१
१४.१३५	१३.१७१	१२.३४३
१४.१३६	१३.१७२	१२.३४४
१४.१३७	१३.१७३	१२.३४५
१४.१३८	१३.१७४	१२.३४६
१४.१३९	१३.१७५	१२.३४७
१४.१४०	१३.१७६	१२.३४८
१४.१४१	१३.१७७	१२.३४९
१४.१४२	१३.१७८	१२.३५०
१४.१४३	१३.१७९	१२.३५१
१४.१४४	१४.१८०	१२.३५२

ना.	द.	स.
१४.१४५	१३.१८१	१२.३५३
१४.१४६	१३.१८२	१२.३५४
१५.१	१४.१	१३.१
१५.२	१४.५	१३.५
१५.३	—	१३.६
१५.४	—	१३.७, १२
१५.५	१४.६	१३.३४
१५.७	१४.९	१३.३७
१५.८	—	१३.३८
१५.९	१४.१०	१३.३९
१५.१०	१४.११	१३.४०
१५.११	१४.१२	१३.४१-४२
१५.१२	१४.१४	१३.५५
१५.१३	१४.१५	१३.५६
१५.१४	१४.१५ अ	१३.५७
१५.१५	१४.१६	१३.५८
१५.१६	१४.१७	१३.५९-६१
१५.२३	१४.२४	१३.६९
१५.२३ अ	१४.२६	१३.७१-७८
१५.२४	१४.२७	१३.७९
१५.२५	१४.२८	१३.८२-९५
१५.२६	१४.२९	१३.९६
१५.२७	—	१३.११०
१५.२८	१४.३२	१३.११२-१७
१५.२९	१४.३३ १४.३४	१३.११८
१५.३०	१४.३५	१३.११९
१५.३१	१४.३६	१४.१२५-२७
१५.३२	१४.३७	१३.१२८
१५.३६	१४.४१	१३.१३३
१५.३७	१४.४२	१३.१३४
१५.३८	१४.४३	१३.१३५
१५.३९	१४.४४	१३.१४७-४८
१५.४०	१४.४५	१३.१४९
१५.४५	१४.५५	१३.१५९
१६.१	१५.१	१४.१
१६.२	१५.२	१४.२
१६.३	१५.३	१४.३

ना.	द.	स.
१६.४	१५.४	१४.४
१६.४अ	—	—
१६.५	१५.५	१४.८
१६.६	१५.६	१४.९
१६.७	१५.७	१४.१०
१६.८	१५.८	१४.१३
१६.९	१५.९	१४.१५
१६.१०	१५.१०	१४.१६
१६.११	१५.११	१४.१८
१६.१२	१५.१२	१४.२२
१६.१३	१५.१३	१४.२५
१६.१४	१५.१४	१४.२७
१६.१५	१५.१५	१४.२८-२९
१६.१६	१५.१६	१४.४८
१६.१७	१५.१७	१४.४९-५१
१६.१८	१५.१८	१४.५३
१६.१९	१५.१९	२१.६८-९२
१६.२०	१५.२०	१४.६०
१६.२१	१५.२१	१४.६१
१६.२२	१५.२२	१४.६२-६३
१६.२३	१५.२३	१४.६४
१६.२४	१५.२४	१४.६५
१६.२५	१५.२५	१४.६६ ६९
१६.२६	—	१४.१०२
१६.२७	—	१४.१३७
१६.२८	१५.२६	१४.१३९, ३-५८
१२.३५अ	२७.४	४७.४-६
१६.३६	—	४७.८
१६.३७	—	४७.३६
१६.३८	—	४६.३७
१६.४०	—	४७.३८
१६.४१	—	४७.३९
१६.४२	—	४७.४१
१६.४३	—	४७.४०
१६.४४	—	४७.४२
१६.४५	—	४७.४३
१६.४६	—	४७.४४
१६.४७	—	४७.४६

ना.	द.	स.	ना.	द.	स.
१६.४८	—	४७.४७	१९.१७	१२.१६	३१.१५७
१६.४९	—	४७.४८	१९.१८	१२.१७	३१.१५८
१६.५०	२७.४९	४७.४९-५६	१९.१९	१२.१८	३१.१६१
१६.५१	२७.५०	४७.५७	१९.२०	१२.१९	३१.१६२
१६.५२	२७.५१	४७.७७	१९.२१	१२.२०	३१.१६७
१६.५३	२७.५२	४७.७८	१९.२२	१२.२१	३१.१६८-७१
१६.५४	२७.५२ अ	४७.८८	१९.२३	१२.२२	३१.१७२
१६.५५	२७.५३	४७.८९	१९.२४	१२.२२ अ	३१.१७३
१६.५६	२७.५४	४७.१००	१९.२५	१२.२३	३१.१७४
१६.५७	२७.५५	४७.१०१	१९.२६	१२.२४	३१.१७५
१६.५८	२७.५६	४७.१०२	१९.२७	१२.२५	३१.१७६
खंड १७	खंड १०	खंड ३८	१९.२८	१२.२६	३१.१७८
१८.१	११.१	१५.१३/२-१७	२०.१	३०.१	५५.१
१८.२	११.२	१५.१८	२०.२	३०.२	५५.२
१८.३	११.३	१५.१९	२०.३	३०.३	५५.३
१८.४	११.४	१५.२०	२०.४	३०.४	५५.४
१८.५	११.५	१५.२१	२०.५	३०.५	५५.५
१८.६	११.६	१५.२२	२०.६	३०.६	५५.६
१८.७	११.७	१५.२३-३०	२०.७	३०.७	५५.७
१८.८	११.८	१५.३१	२०.८	३०.८	५५.८
१८.९	११.९	१५.३४-३५	२०.९	३०.९	५५.९
१८.१०	११.१०	१५.३६	२०.१०	३०.१०	५५.१०
१९.१	१२.१	३१.१	२०.११	३०.११	५५.११
१९.२	१२.२	३१.२-७	२०.१२	३०.११ अ	५५.१२-१५
१९.३	१२.३	३१.१३	२०.१३	३०.१२	५५.१६
१९.४	१२.४	३१.१४	२०.१४	३०.१३	५५.२०
१९.५	१२.५	३१.१५-४६	२०.१५	३०.१४	५५.२१
१९.६	१२.६	३१.१२९	२०.१६	३०.१५	५५.२२
१९.७	१२.७	३१.१३०	२०.१७	३०.१६	५५.२४
१९.८	१२.८	३१.१३१	२०.१८	३०.१७	५५.२५
१९.९	१२.९	३१.१३२-३९	२०.१९	३०.१८	५५.२६
१९.१०	१२.१०	३१.१४०	२०.२०	३०.१९	५५.२७
१९.११	१२.११	३१.१४१	२०.२१	३०.२१	५५.२८-३१
१९.१२	१२.१२	३१.१४२-४५	२०.२२	३०.२२	५५.३८
१९.१३	१२.१३	३१.१४६	२०.२३	३०.२३	५५.३९
१९.१४	१२.१३ अ	३१.१४७	२०.२४	३०.२४	५५.४०
१९.१५	१२.१४	३१.१४८	२०.२५	३०.२५	५५.४१-४४
१९.१	१२.१५	३१.१५४	२०.२६	३०.२६	५५.४५

ना.	द.	स.
२०.२७	३०.२७	५५.४६
२०.२८	३०.२८	५५.४८
२०.२९	३०.२९	५५.५२
२०.३०	३०.३०	५५.५३
२०.३१	३०.३१	५५.५४-५८
२०.३३	३०.३२	५५.७१
२०.३४	३०.३३	५५.७२
२०.३५	३०.३४	५५.७३
२०.३६	३०.३५	५५.७४
२०.३६ अ	३०.३६	५५.७५-८४
२०.३७	३०.३७	५५.९४
२०.३८	३०.३८	५५.९६
२०.३९	३०.३९	५५.११०
२०.४१	३०.४१	५५.१२३
२०.४२	३०.४२	५५.१२४
२०.४३	३०.४३	५५.१२५
२०.४४	३०.४४	५५.१२६
२०.४५	३०.४५	५५.१२७
२०.४६	३०.४६	५५.१२९
२०.४७	३०.४७	५५.१३३
२०.४८	३०.४८	५५.१३४-४०
२०.४९	३०.४९	५५.१४१
२०.५०	३०.५०	५५.१४२
२०.५१	३०.५१	५५.१४३-४९
२०.५२	३०.५२	५५.१५०
२०.५३	३०.५३	५५.१६९
२०.५४	३०.५४	५५.१७०
२०.५५	३०.५५	५५.१७१
२०.५६	३०.५६	५५.१८८
२०.५७	३०.५७	५५.१८९
२०.५८	३०.५८	५५.१९१
२०.५९	३०.५९	५५.१९२
२०.६०	३०.६०	५५.१९३
२०.६१	३०.६१	५५.१९४
२०.६२	३०.६२	५५.१९५
२१.१	२२.१	५६.१
२१.२	२२.२	५६.२-४
२१.३	२२.३	५६.५
२१.४	२२.४	५६.६
२१.५	२२.५	५६.७
२१.६	२२.६	५६.८
२१.७	२२.७	५६.९
२१.८	२२.८	५६.१०
२१.९	२२.९	५६.११
२१.१०	२२.१०	५६.१२-१४
२१.११	२२.११	५६.१५
२१.१२	२२.१२	५६.१६
२१.१३	२२.१३	५६.१८
२१.१४	२२.१४	५६.१९
२१.१५	२२.१५	५६.२०
२१.१६	—	५६.२१
२१.१७	२२.१६	५६.२२-२९
२१.१८	२२.१७	५६.३०
२१.१९	२२.१८	५६.३२
२१.२०	२२.१८ अ	५६.३३
२१.२१	२२.१९	५६.३३-४२
२१.२२	२२.२०	५६.४३
२१.२३	२२.२१	५६.४५
२१.२४	२२.२२	५६.४६
२१.२५	२२.२३	५६.५०
२१.२६	२२.२४	—
२१.२७	२२.२५	—
२१.२८	२२.२६	५६.५१
२१.२९	२२.२७	५६.५२
२१.३०	२२.२८	५६.५३
२१.३२	२२.२९	५६.५४-६०
२१.३३	२२.३०	५६.६१
२१.३३ अ	२२.३१	५६.६२-६७
२१.३४	२२.३२	५६.६८
२१.३५	२२.३३	५६.६९
२१.३६	२२.३४	५६.७०-७३
२१.३७	२२.३५	५६.७४
२१.३८	२२.३६	५६.७५
२१.३९	२२.३७	५६.७६
२१.४०	२२.३८	५६.७७-८३
२१.४१	२२.४०	५६.८६

ना	द	स
२१.४२	२२.४१	५६.१००
२१.४३	२२.४२	५६.१०१
२१.४४	२२.४३	५६.१०२-०५
२१.४५	२२.४४	५६.१०६
२१.४६	२२.४५	५६.१०७
२१.४७	२२.४७	५६.१०९
२२.१	२३.१	३०.५
२२.२	२३.२	३०.६-९
२२.३	२३.३	३०.१०
२२.४	२३.४	३०.११-२३
२२.५	२३.५	३०.२४
२२.६	२३.६	३०.२५
२२.७	२३.७	३०.२६-३२
२२.८	२३.८	३०.३३
२२.९	२३.९	३०.३४-३९
२२.१०	२३.१०	३०.४०
२२.११	२३.११	३०.४१
२२.१२	२३.१२	३०.४२
२२.१३	२३.१३	३०.४३
२२.१४	२३.१३ अ	३०.४४
२२.१५	२३.१४	३०.४५-४८
२२.१६	२३.१५	३०.४९
२२.१७	२३.१६	३०.५०
२२.१८	२३.१७	३०.५१-५६
२३.१	१७.१	३१.२-७
२३.२	१७.२	३१.८
२३.३	१७.३	३१.९
२३.४	१७.४	३१.१४
२३.५	१७.५	३१.१५-२७
२३.६	१७.६	३१.२८
२३.७	१७.७	३१.३०
२३.८	१७.८	३१.३१
२३.९	१७.९	३१.३२
२३.१०	१७.१०	३१.३३
२३.११	१७.११	३१.३४
२३.१२	१७.१२	३१.३५

ना	द	स
२३.१३	१७.१३	३१.३८
२३.१४	१७.१४	३१.४३-४६
२३.१५	१७.१५	३१.४७
२३.१६	१७.१६	३१.४८
२३.१७	१७.१७	३१.४९
२३.१८	१७.१८	३१.५०
२३.१९	१७.१९	३१.५१
२३.२०	१७.२०	३१.५३-५७
२३.२१	१७.२१	३१.५८
२३.२२	१७.२२	३१.६०
२३.२३	१७.२३	३१.६२
२३.२४	१७.२४	३१.६४-६७
२३.२५	१७.२५	३१.६८
२३.२६	१७.२६	३१.६९
२३.२७	१७.२७	३१.७२-७६
२३.२८	१७.२८	३१.७८
२३.२९	१७.२९	३१.७९
२३.३०	१७.३०	३१.८०
२३.३१	१७.३१	३१.८१-८३
२३.३२	१७.३२	३१.११६
२३.३३	१७.३३	३१.११७
२३.३४	१७.३४	३१.११८
२३.३५	१७.३५	३१.११९
२३.३६	१७.३६	३१.१२०
२३.३७	१२.३७	३१.१२१
२३.३८	१७.३८	३१.१२२
२३.३९	१७.३९	३१.१२३
२३.४०	१७.४०	३१.१२४
२३.४१	१७.४१	३१.१२५
२३.४२	१७.४३	३१.१२९-३३
२३.४३	१७.४४	३१.१३४
२३.४४	१७.४५	३१.१४१
२३.४५	१७.४६	३१.१४४
२३.४६	१७.४७	३१.१५०
२३.४७	१७.४८	३१.१५१
२३.४८	१७.४९	३१.१५२

ना.	द.	स.
खंड २४[1]	खंड १८[1]	खंड ४४[1]
२५.१	६.१	२५.८१
२५.२	६.२०	२५.१०९
२५.३	६.२१	२५.११०
२५.४	६.२२	२५.११४
२५.५	६.२३	२५.११५
२५.६	६.२४	२५.१२५
२५.७	६.२५	२५.१२६
२५.८	६.२६	२५.१२७
२५.९	६.२७	२५.१२८
२५.१०	६.२८	२५.१२९
२५.११	६.२९	२५.१३०
२५.१२	६.३०	२५.१३१-५२
२५.१३	६.३१	२५.१५३
२५.१४	६.३२	२५.१६५-७०
२५.१५	६.३३ / ३३.७	२५.२३८
२५.१६	६.३४	२५.२३९
२५.१७	६.३७	२५.२४१
२५.१८	६.४०	२५ २४५
२५.१९	६.४३	२५.२४७-५६
२५.२०	६.४४	२५.२६४
२५.२१	६.४९	२५.२९३
२५.२२	६.५०	२५.२९७
२५.२३	६.५३	२५.३०९
२५.२३अ	६.५२	२५.३०२-०५
२५.२४	६.५४	२५.३१०-१७
२५.२५	६.५६	२५.३४१
२५.२६	६.५७	२५.३५६
२५.२७	६.५८	२५.३५८-६८
२५.२८	६.६४	२५.३७३

ना.	द.	स.
२५.२९	६.६५	२५.३७४
२५.३०	६.७०	२५.३८६-९४
२५.३१	६.७४	२५.३९७
२५.३२	६.७५	२५.४००-०९
२५.३३	६.७६	२५.४१९
२५.३४	६.७७	२५.४५३
२५.३५	६.७८	२५.४५४
२५.३६	६.६९	२५.३८५
२५.३७	—	२५.३३३
२५.३८	—	२५.७५७-७३
२५.३९	६.११४	२५.७८९
खंड २६[2]	खंड ५[2]	खंड २१[2]
२७.१	१९.१	३६.२०
२७.२	१९.२	३६.१०७
२७.३	१९.४	३६.१३१
२७.४	१९.५	३६.१३२
२७.५	१९.६	३६.१३३
२७.६	१९.७	३६.१३४
२७.७	१९.८	३६.४८-५४
२७.८	१९.९	३६.१३८
२७.९	१९.१०	३६.१३९
२७.१०	१९.११	३६.१४०
२७.११	१९.१२	३६.१४१
२७.१२	१९.१३	३६.१४३
२७.१३	१९.१४	३६.१४४
२७.१४	१९.१५	३६.१४५-४७
२७.१५	१९.१६	३६.१४८
२७.१६	१९.१७	३६.२२४
२७.१७	१९.१८	३६.२२५-३०
२७.१८	१९.१९	३६.२३१
२७.१९	१९.२०	३६.२३२

[1] ना० द० में स० के केवल निम्नलिखित छन्द नहीं हैं: ४४.२-२०, ४४.२६-२८, ४४.३०-४७, ४४.५०-५२, ४४.५७, ४४.५९-६१, ४४.६३-७८, ४४.८०, ४४.८७, ४४ ९८-१११, ४४.११३, ४४.१३९-४०, ४४.१४७, ४४.१५६, ४४ १५७, ४४ १५९ ४४.१६२-७४, ४४.१७६-८९, ४४.१९२, ४४.१९३, ४४.१९५, ४४.१९६, ४४.२०३-२०५।

[2] द० में ना० २६.२१ (=स० २१.९४-९९) नहीं है तथा ना० में स० २१.२, २१.५-७, २१.१०-२५, २१.२७-६५, २१.६७-९४, २१.९८-९२, २१.१००-२०२ नहीं है। स० में ना० तथा द० के सभी छन्द हैं।

ना	द	स
२७.२०	१९.२१	३६.२३४
२७.२१	१९.२२	३६.२३६
२७.२२	१९.२३	१६.२३७
२७.२३	१९.२४	३६.२३८
२७.२४	१९.२६	३६.२४०
२७.२५	१९.४१	३६.२५१
२७.२६	१९.४२	३६.२५२
२७.२७	१९.४३	३६.२५३
२८.४	—	४८.७०
२८.७	२८.९	४८.७५
२८.१२	२८.१४	४८.८३
२८.१७	२८.१८	४८.१०२
२८.१८	२८.१९	४८.१०३
२८.२०	२८.२१	४८.१०९-२०
२८.२१	२८.२२	४८.१२२
२८.२२	२८.२३	४८.१२३
२८.२३	२८.२४	४८.१२४
२८.२३ अ	२८.२५	—
२८.२७	२८.२८/२	४८.१२८-५०
२८.२८	२८.२९	४८.१५१
२८.२९	२८.३०	४८.१५९-६८
२८.३०	२८.३१	४८.१७३
२८.३१	२८.३२	४८.१७४
२८.३२	२८.३३	४८.१७८
२८.३३	२८.३४	४८.१८०-८१
२८.३४	२८.३४ अ	४८.१८२
२८.३५	२८.३५	४८.१८३
२८.३६	२८.३६	४८.१८४
२८.३७	२८.३७	४८.१८६
२८.३८	२८.३७ अ	४८.२०४-२८
२८.३९	२८.३८	४७.२३३
२८.४०	२८.३९	४८.२३४
२८.४१	२८.४०	४८.२७३
२८.४४	२९.३	४९.२
२८.४६	२९.५	४९.२-१४
२८.४७ अ	—	—
२८.५० अ	२९.१०/१	५०.१४

ना	द	स
२८.५२	—	—
२८.५२ अ	—	—
२८.६० अ	—	—
२८.७२ अ	—	—
२९.४	३१.४	५७.१
२९.५	३१.५	६७.२
२९.६	३१.६	५७.३
२९.७	३१.७	५७.१६-२६
२९.८	३१.८	५७.२७
२९.९	३४.१०३	६४.२३७
२९.१०	३४.१०४	६४.२३८
२९.११	—	५७.३१
२९.१२	३१.१०	५७.३५
२९.१३	३१.११	५७.३८
२९.१४	३१.१२	५७.३९
२९.१५	३१.१३	५७.४३
२९.१६	३१.१४	५७.४१
२९.१७	३१.१५	५७.४२
२९.२०	३१.१८	५७.४९-५२
२९.२२	३१.२०	५७.५३
२९.२३	३१.२१	५७.५४
२९.२४	३१.२२	५७.५७
२९.२५	३१.२३	५७.५९
२९.२७	३१.२५	५७.६४
२९.२८	३१.२६	५७.६९
२९.४४	३१.४६	५७.९१
२९.४४ इ	—	—
२९.४८	३१.५१	५७.१७०
२९.५० अ	—	—
२९.६३ अ	—	—
२९.६६	३१.६९	५७.२५१-५८
२९.६९	३१.७२?	५७.२६३
२९.७०	३१.७३	५७.२६५
२९.७१	३१.७४	५७.२६६
२९.७२	३१.७५	५७.२६६
२९.७६	३१.७९	५७.२७२
२९.८६ अ	—	—

ना.	द.	स.
२९.८७	३१.८९	५७.३१४-२१
खंड ३०[1]	खंड ३२[1]	खंड ५८[1]
३१.१ अ	—	—
३१.३	—	—
३१.६	६.३३ / ३३.७	२५.२३८ / ६१.१४३
३१.७ अ	—	—
३१अ. २२	३३.२३	६१.२८९अ
३१अ. २४	३३.२५	६१.२९९
३१अ. ३१	—	—
३१अ. ४३	—	—
३१अ. ५४	—	६१.३५७
३२.४ अ	—	—
३२.२३	—	—
३२.३५ अ	—	—
३२.४४ अ	—	—
३२.१२५	३३.१७६	६१.८२३ अ
३२.१४६	—	६१.९३५-७३
३३.३०	—	—
३३.३७	३३.२३४	—
३३.३८	३३.२३५	—
३३.४८	३३.२४६	६१.११७५
३३.४९	२.३८ / ३३.१४७	६१.११७६
३३.५१	खं०	४७.३६
३३.५२	—	—
३३.५३	—	—
३३.५४	—	—
३३.५७	—	—
३३.६८	—	—

ना.	द.	स.
३३.६९	—	—
३३.७०	—	—
३३.८६	—	—
३३.८९ अ	—	—
३३.९०	—	—
३३.९५	—	—
३३.९८	—	—
३३.९९	—	—
३३.१०४ अ	—	—
३३.१०५	—	—
३४.२८	३३.३०७	६१.१३७०
३४.५२ अ	—	—
३४.६८	—	५२.६८
३४.६९	—	५२.६९
३६.४	—	—
३६.२५	—	—
३७.५	—	—
३७.६	—	—
३८.४	३३.५२३	—
३८.४ अ	—	—
३८.६	—	—
३८.१५	—	—
३८.१९	३५.३-६अ	६२.३-७
३८.२३	३५.९ अ	६२.११
३८.२४	३५.१०	६२.१५
३८.२५	३५.११	६२.१६
३८.२६	३५.१२	६२.२२-२५
३८.२७	३५.१३	६२.२६
३८.२८	३५.१४	६२.२८
३८.२९	३५.१५	६२.२९

[1] ना. ३०.४७ स० ५८.२३८ द. में नहीं है, द० के निम्नलिखित ना. में नहीं हैं द. ३२.५ (=स. ५८.५), ३२.२३ (=स. ५८.१७९), ३२.३२ (=स. ५८.१८८), ३२.३३ (=स. ५८.१९८), ३२.३७ (=स. ५८.१९८), ३२.४५ (=स० ५८.२१३); ३२.५५ (=स. ५८.२५९), ३२.५९-६० (=स. ५८.२६३-६७) और स. के निम्नलिखित छन्द ना. द. में नहीं हैं। स. ५८.३, ५८.२४-५०, ५८.५३-५९, ५८.६२-७२, ५८.७४-७६, ५८.७८-७५, ५८.९४-१३०, ५८.१४५-५२, ५८.१५४-५६, ५८.१५९, ५८.१६१-७६, ५८.१९२-९४, ५८.१९६-९७, ५८.२०२, ५८.२१४-१५; ५८.२१७/२-२२०/१, ५८.२२२-२३, ५८.२२५-३७, ५८.२४६-४८, ५८.२५८।

ना.	द.	श.
३८.३०	३५.१६	६२.३०
३८.३१	३५.१८	६२.३१
३८.३२	३५.१९	६२.३२
३८.३३	३५.२०	६२.३३
३८.३४	३५.२१	६२.३४
३८.३५	३५.३२	६२.३५
३८.३६	३५.२३	६२.३६
३८.३७	३५.२४	६२.३७-४०
३८.३८	३५.२५	६२.४२
३८.३९	३५.२६	६२.४४
३८.४०	३५.२७	६२.४५
३८.४१	३५.२८	६२.४६
३८.४२	३५.२९	६२.४७
३८.४३	३५.३०	६२.६७-७०
३८.४४	—	६२.७३
३८.४५	—	६२.७४
३८.४६	—	६२.७५
३८.५४	३५.३४	६२.७६-७८
३८.५६	३५.३५	६२.७९
३८.५७	३५.३२	६२.७२
३८.५८	३५.३७	६२.८३-८७
३८.५९	३५.३८	६२.९०
३८.६०	३५.३९	६२.९१
३८.६१	३५.४०	६२.९२
३८.६२	३५.४१	६२.९३
३८.६३	३५.४२	६२.९८
३८.६४	३५.४३	६२.९५
३८.६५	३५.४४	६२.९६
३८.६६	३५.४५	६२.९७
३८.६७	३५.४६	६२.९८
३८.६८	३५.४७/१	६२.९९
३८.६९	३५.४७/२	६२.१००
३८.७१	३५.५० अ	६२.१०२
३८.७२	३५.५१	—
३९.१	—	—
३९.८	३४.७	६४.११
३९.९	—	६४.१३
३९.१०	३४.९	६४.१४-२२
३९.२४	३९.२२	६४.३९
३९.२९	—	६४.२१७
३९.३०	—	६४.२२०
३९.३१	—	—
३९.३२	३४.२७	६४.७४
३९.३४	—	—
३९.३५	३४.२९	६४.७८
३९.३८	—	—
३९.४२/१	—	—
३९.४२/२	—	६४.१३७
३९.४६	३४.४२	६४.१२५
३९.४७	३४.४३	६४.१२६
३९.४८	३४.४४	६४.१२७
३९.४९	३४.४५	६४.१२८
३९.५०	३४.४६	६४.१२९
३९.५७	३४.५५	६४.१४०
३९.६२	३४.५७	६४.१३५
३९.६४	—	—
३९.६६	—	—
३९.६९	३४.६३	६४.१५२
३९.७१	—	—
३९.७३	३४.६८	६४.१९०
३९.७७	३४.६९	६४.१५७
३९.७८	३४.७०	६४.१६६
३९.७९	३४.७१	६४.१५९
३९.८०	—	—
३९.८४	—	—
३९.९२	—	—
३९.९४	३४.८५	६४.१९७
३९.९५	३४.८६	६४.१९८
३९.९६	३४.८७	६४.१९९
३९.९७	३४.८८	६४.२००
३९.९८	३४.८९	६४.२०१
३९.९९	३४.९०	६४.२०२
३९.१००	३४.९१	६४.२०३-०८
३९.१०१	—	६४.२०९
३९.१०२	—	६४.२१०
३९.१०३	—	६४.२११

ना.	द.	स.
३९.१०४	—	६४.२२२
३९.१०५	३४.९६ ३४.९८	६४.२२४
३९.१०६	—	—
३९.१०९	३४.१००	६४.२२६
३९.११०	३४.१०१	६४.२२७
३९.१११	३४.१०२	६४.२२८-२९
३९.११२	—	—
३९.११६	३४.१०८	६४.२७८
३९.११७	३४.१०९	६४.२६४-७१
३९.१२२	—	६४.३३६
३९.१२५	३४.११७	६४.३४७
३९.१२६	३४.११८	६४.३४८
३९.१२७	३४.११९	६४.३४९
३९.१२८	३४.१२०	६४.३५०
३९.१२९	३४.१२१	६४.३५१
३९.१३०	३४.१२२	६४.३५२
३९.१३१	३४.१२३	६४.३५३
३९.१३२	३४.१२५	६४.३५५-५६
३९.१३३	३४.१२४	६४.३५४
३९.१३४	३४.१२६	६४.३५७
३९.१३५	३४.१२८	६४.३५९
३९.१३६	३४.१२९	६४.३६१
३९.१३७	३४.१२ अ	६४.३६२
३९.१३९	—	—
३९.१४१	—	—
३९.१४३.१	—	—
३९.१४५	३४.१३३	६४.३७१
३९.१४६	३८.१३०	६४.३७३
३९.१४७	३४.१३८	६३.३७२ अ
३९.१४८	३८.१३६[1]	६३.३७५
३९.१४९	३४.१३९	-६४.३७४
३९.१५०	३४.१४०	६४.३७५
३९.१५१	३४.१०४	६४.२३८
४०.१	३४.१४३	६४.३९५
४०.२	३४.१४४	६४.३९६

ना.	द.	स.
४०.३	३४.१४५	६४.४१०
४०.४	३४.१४६	६४.४११
४०.५	३४.१४७	६४.४१३
४०.६	३४.१४८	६४.४१४
४०.७	३४.१४९	६४.४१९
४०.८	३४.१५०	६४.४२१
४०.९	३४.१५१	६४.४२५
४०.१०	३४.१५२	६४.४२७
४०.११	३४.१५३	६४.४२८
४०.१२	३४.१५४	६४.४२९
४०.१३	३४.१५५	६४.४३०
४०.१४	३४.१५६	६४.४३१
४०.१५	३४.१५७	६४.४३३
४०.१७	३४.१५८	६४.४३५
४०.१८	३४.१५९	६४.४४१
४०.१९	३४.१६०	६४.४४३
४०.२०	३४.१६१	६४.४४५
४०.२१	३४.१६२	६४.४४७
४०.२२	३४.१६३	६४.४४८
४०.२३	—	६४.४४९
४०.२४	३४.१६६	६४.४५०
४१.७	—	—
४१.१३	३६.१	६६.१००
४१.१४	—	—
४१.१५	—	—
४१.१६	—	—
४१.१७	—	—
४१.१८	—	—
४१.१९	—	—
४१.२०	—	—
४१.२१	—	—
४१.२२	—	—
४१.२३	—	—
४१.२४	—	—
४१.२५	—	—
४१.२६	—	—

[1] यह छन्द-संख्या ग्रॉ॰ इ॰ के वानखेम खंड की है, वानखेम खंड द० में नहीं है।

ना	द	स	ना	द	स
४१.२७		५८.५३ १७.१	४२.३९	३६.३४	६६.१९०
४१.२८	—	—	४२.४०	—	६६.१९१
४१.२९	—	—	४२.५५	३६.५०	६६.२२०-२३
४१.३०	—	—	४२.५६	३६.५१	६६.२२४
४१.३१	—	—	४२.६६	३६.६१	६६.२३८
४१.३१ अ	—	—	४२.६८	३६.६३	६६.२४०
४१.३२	—	—	४२.७४	—	—
४१.३४	—	—	४२.८२	—	—
४१.३५	—	—	४२.८३	—	६६.२५६-२६५/१
४१.३६	—	—	४२.८४	३६.७६	६६.२७०
४१.३७	—	—	४२.८५	३६.७७	६६.२७२
४२.१	३६.१	६६.१००	४२.८६	३६.७८	६६.२७३
४२.२	३६.२	६६.१०१	४२.८७	३६.७९	६६.२७४
४२.३	३६.३	६६.१०२	४२.८८	३६.८०	६६.२७५
४२.४	—	—	४२.८९	३६.८१	६६.२७७
४२.९	—	—	४२.९०	३६.८२	६६.२८०
४२.१३	३६.७[1]	६६.१२५	४२.९१	३६.८३	६६.२८१
४२.१४	३६.८[1]	६६.१२७	४२.९२	३६.८४	६६.२८५
४२.१५	३६.९[1]	६६.१२८	४२.९५	—	६६.२८९-९६/१
४२.१८	३६.१३[1]	६६.१३३	४२.९६	३६.८८	६६.२९७
४२.१९	३६.१६/१[1]	६६.१३५.१	४२.९७	३६.८९	६६.२९९
४२.२०	३६.१४/१[1]	६६.१३७/२	४२.९७अ	३६.९१	६६.३०२-२०
४२.२१	३६.१४/२[1]	६६.१३७/१	४२.९८	३६.९२	६६.३२४
४२.२२	३६.१६/२[1]	६६.१३५/२	४२.९९	३६.९३	६६.३२५-३४
४२.२३	—	—	४२.१००	—	६६.३३८
४२.२८	—	६६.१४४	४२.१०१	३६.९४	६६.३३७
४२.२९	—	—	४२.१०२	३६.९५	६६.३३९-५०
४२.३०	—	६६.१८०	४२.१०५	३६.९८	६६.३५७
४२.३१	३६.२५	६६.१८१	४२.१०६	३६.९९	६६.३५८
४२.३२	३६.२६	६६.१८२	४२.१०७	३६.१००	६६.३५९
४२.३३	३६.२७	६६.१८३	४२.१११	३६.१०४	६६.३६६
४२.३४	३६.२९	६६.१८४	४२.११२	३६.१०५	६६.३६७
४२.३५	३६.३१	६६.१८५	४२.१२२	—	६६.३८२
४२.३६	—	६६.१८६	४२.१३५	—	—
४२.३७	३६.३२	६६.१८७	४२.१४४	—	—
४२.३८	३६.३३	६६.१८८	४२.१५४	३६.१४३	६६.४४३

[1] ये छन्द-संख्याएँ रॉठ ह० की हैं, खंड-संख्या मात्र द० की है, स० यहाँ खंडित है।

ना.	द.	स.	ना.	द.	स.
४२.१५५	३६.१४४	६६.४४४	४३.५९अ	—	६६.७८३-९०
४२.१५६	३६.१४५	६६.४४५	४३.६०	३६.२५१	६६.७९१
४२.१५७	—	४४.७३	४३.६१	३६.२५२	६६.७९६
४२.१६३	३६.१५१	६६.४६३	४३.६२	३६.२५३	६६.७९७
४२.१६४	३६.१५२	६६.४६४	४३.६३	३६.२५४	६६.७९८
४२.१६५	३६.१५३	६६.४६६-७१	४३.६४	३६.२५५	६६.७९९
४२.१६६	३६.१५४	६६.४७२	४३.६५	३६.२५६	६६.८००
४२.१६८	३६.१५६	६६.४७७	४३.६६	३६.२५७	६६.८०१
४२.१८५	३६.१७३	६६.५०३	४३.६७	३६.२५८	६६.८०२
४२.१८६	३६.१७४	६६.५०९	४३.६८	३६.२६०	६६.८०३
४२.१९०	३६.१७८	६६.५७८	४३.६९	३६.२६१	६६.८०४
४२.१९१	३६.१७९	६६.५८३	४३.७०	३६.२६२	६६.८०५
४२.१९४	—	६६.६०९	४३.७१	३६.२६३	६६.८०६
४२.१९५	३६.१९१	६६.६११	४३.७२	—	६६.८०७-१५
४२.१९६	—	६६.५१९	४३.७३	३६.२६४	६६.८२१
४२.१९७	—	६६.५२०-२८	४३.७४	३६.२६५	६६.८२२-२५
४२.१९८	३६.१८४	६६.५३२	४३.७५	३६.२६६	६६.८२६
४२.१९९	३६.१८५	६६.५४८-६५	४३.७६	३६.२६९	६६.८२७
४२.२००	३६.१८६	६६.५६६	४३.७८	—	—
४२.२०१	—	६६.५६७-७६	४३.८०	३६.२९२	६६.९२८
४२.२०२	३६.१८८	६६.५७७	४३.८२	३६.२७१	६६.८४६-५२
४२.२०४	३६.१९०	६६.५३३	४३.८३	३६.२७२	६६.८५३
४२.२०५	३६.१९१	६६.५३४	४३.८४	३६.२७३	६६.८५४
४२.२०६	३६.१९२	६६.५३५-४५	४३.८५	३६.२७४	६६.८५५
४२.२०७	३६.१९३	६६.६०८	४३.८६	३६.२७५	६६.८५६
४२.२०८	३६.१९४	६६.६१०	४३.८७	३६.२७६	६६.८५७
४२.२०९	३६.१९१	६६.६११	४३.८८	३६.२७७/१	६६.८५८
४३.१३	—	—	४३.८९	३६.२७७,२	६६.८५९
४३.१७	—	६६.९४९	४३.९०	३६.२७८	६६.८६०
४३.२६	३६.२१९	६६.६९४	४३.९१	३६.२७९	६६.८७१
४३.२७	३६.२२०	६६.६९६	४३.९२	३६.२८०	६६.८७२
४३.३६	—	६६.७१८-२४	४३.९३	३६.२८१	६६.८७३
४३.४०	३६.२३२	६६.७२८	४३.९४	३६.२८२	६६.८७४
४३.५३	—	—	४३.९६	३६.२८३	६६.८८७-९८
४३.५६	३६.२४७	६६.७८०	४३.९७	३६.२८४	६६.८९९
४३.५७	३६.२४८	६६.७८१	४३.९८	—	६६.९०० २७
४३.५८	३६.२४९/१	६६.७८२/१	४३.९९	३६.२८६	६६.९४६
४३.५९	३६.२४९/२	६६.७८२/२	४३.१००	३६.२८७	६६.९४७

ना.	द.	स.	ना.		स.
४३.१०१	३६.२८८	६६.९४८	४३.१६७	—	—
४३.१०८	३६.२९६	६६.९८८	४३.१६८	—	६६.१२३४
४३.१०९	३७.२९७	६६.८६१-७०	४३.१६९	—	६६.१२३५
४३.११३	३६.३०१	६६.९५४	४३.१७०	—	६६.१२३६-४४
४३.११४	३६.३०२	६६ ९५५	४४.४	—	६६.१४४०
४३.११५	३६.३०३	६६.९५६	४४.५	३६.३६७	६६.१४४१
४३.११६	३६.३०४	६६.९५७	४४.६	३६.३६८	६६.१४४२
४३.११७	३६.३०५	६६.९५८	४४ ९	३६.३७१	६६.१४२७
४३.११८	३६.३०६	६६.९५९	४४.१०	३६.३७२	६६.१४२८
४३.११९	३६.३०७	६६.९६०	४४.११	३६.३७३	६६.१४२९
४३.१२०	—	६६.९६१	४४.१२	—	—
४३.१२१	—	६६.९७२-८६	४४.१६	—	—
४३.१२२	३६.३१०	६६.९९६	४४.४१	—	६६.१५१४-२०
४३.१२३	—	६६.९९७-१००५	४४.४२	—	६६.१५२२
४३.१२४	३६.३१२	६६.१००६	४५.५	—	—
४३.१२५	३६.३१३	६६.१००७	४५.६	—	—
४३.१२८	३६.३१६	६६.१०११	४५.२६	३६.४२९	६६.१५६९
४३.१२९	३६.३१७	६६.१०१२	४५.२७	३६.४३०	६६.१५७०-८९
४३.१३०	३६.३२०	६६.१०३५	४५.३१	३६.४३५	६६.१६००
४३.१३१	३६.३२१	६६.१०४१	४५.३२	३६.४३६	६६.१६०१
४३.१३७	३६.३२४	६६.१०७४	४५.३३	३६.४३७	६६.१६०२
४३.१३८	३६.३२६	६६.१०७५	४५.५२	—	—
४३.१३९	—	६६.१०७६ ७९	४५.५३	—	—
४३.१४०	३६.३२७	६६.१०८०	४५.५४	—	—
४३.१४१	३६.३२८	६६.१०८२-९६	४५.५५	—	—
४३.१४२	३६.३२९	६६.१०९७	४५.५६	३६.४३६	६६.१६०१
४३.१४३	३६.३३०	६६.१०९८	४५.५७	४६.४३७	६६.१६०२
४३.१४४	३६.३३१	६६.१०९९-१११५	४५.५८	—	६६.१६७६
४३.१४५	३६.३३२	६६.१११७	४५.५९	३६.४५८	६६.१६८७
४३.१४६	३६.३३३	६६.१११८-२०	४५.६०	३६.४५९	६६.१६८८-९८
४३.१४७	३६.३३४	६६.११२६	४५.६१	३६.४६०	६६.१७००
४३.१४८	३६.३३५	६६.११२५	४५.६२	३६.४६१	६६.१७०१
४३.१४९	३६.३३६	६६.११२६	४५.६३	३६.४६२	६६.१७०२
४३.१६१	—	—	४५.६४	३६.४६३	६६.१७०३
४३.१६२	—	६६.१२००	४५.६५	३६.४६४	६६.१७०४
४३.१६४	—	—	४५.७०	३६.४६८	६६.१७१२
४३.१६५	—	—	४५.७१	३६.४६९	६६.१७१३

ना.	द.	स.	ना.	द.	स.
४५.७२	३६.४७०	६६.१७१४	४६.६८	३७.१११	६७.२७१
४६.२	३७.२-९[1]	६७.३-१०	४६.६९	३७.११२	६७.२७२
४६.३	३७.१०	६७.११	४६.७०	—	—
४६.४	३७.११	६७.१५	४६.७२	३७.११३	६७.२७४
४६.७	—	—	४६.७९	३७.११६	६७.२९८
४६.१०	३७.१६	६७.२०	४६.८४	—	६७.३०९
४६.११	३७.१७	६७.२१	४६.८५	—	६७.३१०
४६.१२	३७.१८	६७.२२	४६.८६	—	६७.३११
४६.१३	३७.१९	६७.४२	४६.८७	—	६७.३१२
४६.१४	३७.२०	६७.४३	४६.८८	—	६७.३१३
४६.१५	—	६७.८२	४६.८९	—	६७.३१४
४६.२२	३७.३५	६७.९४	४६.९३	३७.१४३	६७.३२१
४६.२३	३७.३६	६७.९०	४६.९४	३७.१४७	६७.३२२
४६.२४	३७.३७-४३	६७.९६-१०५	४६.९५	३७.१४८-५५	६७.३२३-३०
४६.२६	३७.४५	६६.१०९	४६.९६	३७.१५६	६७.३३१
४६.२७	३७.४६	६६.१०९-१५	४६.९८	३७.१६९	६७.३४२
४६.२८	३७.५१	६७.११६	४६.१००	३७.१७३	६७.३४५
४६.३१	२४.६५	४५.१४९	४६.१०१	३७.१७४	६७.३४६
४६.३२	—	—	४६.१०२	३७.१७५	६७.३४८
४६.४३	३७.६८-७३	६७.१७६-८१	४६.१०३	३७.१७६-८०[2]	६७.३४९-५३
४६.४६	—	—	४६.१०४	—	६७.३५५
४६.५२	—	—	४६.११३	—	—
४६.५५	३७.९३	६७.२४२-४५	४६.११७	३७.११८	६७.३७८
४६.५६	३७.९६	६७.२४६	४६.११८	३७.१८९	६७.३८१
४६.५७	३७.९७	६७.२४७	४६.११९	३७.१९५	६७.३८२
४६.५८	३७.९८-१००	६७.२४९	४६.१२०	३७.१९६	६७.३८३
४६.५९[1]	—	६७.२५०	४६.१२१	३७.१९७-९८	६७.३८४-८५
४६.६०	—	६७.२५१	४६.१२२	३७.१९९	६७.३८६
४६.६१	—	६७.२५२	४६.१२३	३७.२००	६७.३८७
४६.६२	—	६७.२५३	४६.१२४	—	—
४६.६३	३७.१०१-१०७	६७.२५९-६५	४६.१३०	—	—
४६.६४	—	६७.२६६	४६.१३४	३७.२०९	६७.४०७
४६.६५	३७.१०८	६७.२६८	४६.१३९	—	—
४६.६६	३७.१०९	६७.२६९	४६.१४१	३७.२२३	६७.४२९
४६.६७	३७.११०	६७.२७०	४६.१४२	३७.२२४	६७.४३०

[1] ये ऊपर द० खंड ३७ में दिखाई गई समस्त छन्द-संख्याएँ डॉ० द० के खंड ३४ की हैं, द० में यह खंड नहीं है।

द	स	ना	द	स
३७.२२७[1]	६७.४३१	४६.१५८	३७.२४३	६७.४७३
३७.२२८-३७	६७.४३२-३४	४६.१५९	—	६७.४७४
—	६७.४५६-६२	४६.१६०	३७.२५५-६५	६७.४७५-८४
३७.२३८	६७.४६३	४६.१६१	३७.२६६	६७.४८५
—	६७.४२१	४६.१६२	—	६७.४८६
—	—	४६.१६३	—	६७.४८७
३७.२४०	६७.४७०	४६.१६८	—	६७.५२९
३७.२४१	६७.४७१	४६.१७७	—	६७.५६६
३७.२४२	६७.४७२	४६.१७८	—	—

वे छंद और वचनिकाएँ ना स० में नहीं हैं, निम्नलिखित हैं:—

दोहा—चतुरानन चिंति जग्य कजि सजि मंडप सुरथान ।
तहुं आसुर अनुसंकिसह की उच्चिट्ठ उत्थान ॥

कवित्त—चतुरानन मन चिंति असुर वधि अवनि विचारीय ।
जगि जीव उच्चिट्टक··· ···क्रित हारीय ।
रवरनि अस संग्रहै हत्थनह हत्थउ वच्चह ।
सो उपाय सज्जिय··· ···असुर सह ।
निम्मौं स सूरसंग्राम भर अरि असंख खंडै सुखल ।
समधरै जग्यि कारणिसकल विमल सुद्दि सुध्यै सकल ॥

दूहा—हौं वीसल धर्माधि सुत मोहि इष्ट गुरु सिद्धि ।
राजधर्म चालै इहै मात करौ फिरि सुद्ध ॥

पद्धडी—सत पुत्र नाम दस जीवितास । पुहमी सजात दस्सी उद्दास ।
जुरि ज्येष्ट अरालन रजुवन्न । वर संगरीय राय वाणु सवन्न ।
दुति देवराज मूरत्तिदेव । हुव चंपराय हरिसिंघदेव ।
सोलिगराय नरसिंघ जेम । नौभाग कीव वसुधा वनैन ।
जुरि ज्येष्ट सुबल साहस समत्थ । महसिंघ सिंघ संग्राम पत्थ ।
सुवचंद सुपत साचंद रुव । प्रति प्रसंग राय आरेन भूप ।

दोहा—रहै राज सारंगदे सारंग सारंग हत्थि ।
गौरी गव्व अरनिल क्यौ सारंग हीकै सत्थि ॥
तो पिता सारंगदे सैंभरि रह्यौ नरिंद ।
सहस सवर असवार मिलि सौगुन तीस गयंद ।
अनिल कुंड आबू शिखर आदि ब्रह्म कौ अंस ।
कै तुम्ह वंश चलाइहे कै करिहै निरवंश ॥

दोहा—सुद्ध मत्ति कीनी सुकवि कहत कथ पृथीराज ।
सत्त सहस रासौ रसिक बरवानी पुनिराज ॥

दोहा—सोवत ही मति जगत है इह आनन्द सु चीन्ह ।
के जुगनीपुर जुग्गनीय सुहत्थि हत्थि तिन दीन ।

[1] द० खंड २७ में दिखाई गई समस्त छंद-संख्याएँ टॉड ६० के खंड २४ की हैं; द० में यह

ना० ५.१ : दोहा—सुजी पयंपहि प्रति दुजहि सुमन मनोहर मिष्ट।
सुनत कथा पत्थारिवर आनंदीय मन इष्ट ॥

ना० ५.३ : दोहा—आनंदी गंध्रब्ब तब अहो सुनहि द्विग एवि।
अति विस्थारि कथा विवरि कहुं तोहि विचरेनि ॥

ना० १०.३ : दूहा—धन चालुक्क नरिंद भर जिन रखी रज लाज।
इते बिसासीय कहनवर लिख्यो कुवर प्रथीराज ॥

ना० ११.१ : दोहा—सुकी कहै सुक संभरी कहो कथा निसि प्रन्न।
किम वरदाई चंदगुरु हुइ स बीर प्रसन्न ॥

ना० ११.४ : दूहा—विधिना नल अवतार कीय त्रेता कलिजुग साज।
मिथिराज सोमेस कुवर चढ़ि आखेटक राज ॥

ना० ११.६ : दूहा—तबै एम पिरथह कुमर अमर किचि कविराज।
इक्कसमैं आखेटवर चढ्यौ चित्त महाराज ॥

ना० ११.२२ : दूहा—दह निरमल नदनूत तर तातरि सिला सुभाइ।
ता उप्परि कवि चंदवर डेरा कीन सुआय ॥

ना० ११.५८ : दूहा—चल्यौ राज निजथान वर कहि परिहार सुमंत।
अंगजाइ सुमजंत क करी को गोठि सुभसंत ॥

ना० ११.६५ : दूहा—जगिराज पृथिराजवर अकलित नैंन अैदालि।
वीररूप वीराधिवर अति सरूप नित गात ॥

ना० ११.६८ : गाथा—सुभ दिनं सुभ कर्म शैल लभे सुसौ मत्तानं।
कच्छूय चोर सुमध्यं धवलं वछेरपं प्रसवं ॥

ना० ११.७८ : दूहा—प्रसन हुवै कवि वीरसह बर दिन्हौ तिन बीर।
जयति राज जुद्धह सजै तहां करौ हम भीर ॥

ना० १४.१२७ : दोहा—अंत दंत पय फडिरह बहर रूप धावै अछग
पग पग ति स्वयंभु पग पग मुकति सुगति लभ्य कित्तो सुजग

ना० १६.४ अ : वार्त्ता—सोलंकी पत्तनाधीश पमार सलष तस्य पुत्र जैलष पुत्री इन्छनि
भीमंगदेव परनयनार्थं याचिता न दत्ता अर्बुदाचलंत्यक्त्वा
पार्श्वे आगतः तेन विरोधेन भीमंगदेव पृथ्वीराज सार्द्धं युद्धं
हारितः पश्चात्सलषेन निज भगिनी इच्छनि पृथीराजस्य
तद्विवाह वर्णनं लिख्यते।

ना. २४.२६ : दूहा—तब अच्चूवे राय कहि सभी कहै असि दंद।
एक किलै करि दुख्य है एक मिलैं बहु दंद ॥

ना. २४.२७ : कवित्त—कहिय समर वर सिंघ अगस्ति करि दुख्यन सागर।
काली कर दुख्योयन रगत बीजह अगणित वर।
हुंत हत्थ दुख्योयन पंख परवत पहारत।
राह हत्थ दुक्खैन चंद तारक रवि भारत।
दुक्खैन हाथवर करणि स्वंध मंत्र काजि त्रिभूति वर।
संग्राम काम साईं सुकृत थक्कहि न रण रजपूत कर ॥

ना. २८.२३ अ : वचनिका—श्री राजा प्रथीराज दिल्ली मैं यो सुन्यौ जु साढे तीन सै
पृथीराज द्वारपाल करि राख्यौ है आपुन राजा जयचन्द।

करि राजसू जग्य आरम्भौ है तब यह बात राजा पृथ्वीराज सुनी सैन्या आपुनी बुलाई ब्यास बोलि दिन पुछ्यौ पंडित सूर व्यास रंग ज्योति को पुत्र तासूं राजा पूछतु है।

वचनिका—कनवज्ज मद्धि पुकार भई कैसी पृथिराज राजा दल साजि आयौ कनवज्ज थपित भई।

दोहा—नृपति विचारयौ बहुत मन अब कहि कीजै साजु।
सुमति सबै मिलि संचरहु जिहि सरयौ जग्य को काजु॥

वचनिका– तब सब मंत्रिनि मिलि मंत्र विचारयौ दूती पठाइ जै संजोगिता कुं समझावते तै दूती है राजा यु आदेश दीनौं संजोगिता कुं ले आवौ दुर्बुद्धि दूरि करौ दूती आइस ले संयोगिता कै ढिग चली॥

: ए बात दूती ने कही तेरे पिता ने ऐते राजा जीते इन मैं तूं कहै ताकौं ब्याहै तब संजोगिता बोली।

: इह बात पृथीराज सुनी तब सामंत सूर मिलि मंत्र दीनौं राजा जयचन्द कै भै तैं पृथीराज आषेटक व्रत लीनौं।

वचनिका—राज पृथीराज कइमास मंत्री मारयौ तब सारदा देवी जाइ चन्द सुं कह्यौ कि पृथीराज कइमास मंत्री सर सु मारि कै महल कै आंगन मे गाड्यौ है तो ति बुझे तब बताइये तब चन्द भट्टै कह्यौ मोहि परतीत तौ होइ जौ माता कुं परतिच्छ देखुं॥

: वचनिका—अथ राजा सभा सावंत सोरह सूर बठे तिनकौ आसीस दीनी॥

: वचनिका—यह बात सुनत ही राजा प्रिथीराज उठि भीतरि पधारे सब सभा बहु-राइ उठि चली आप आपहुं अब घारे राजा ने भीतरि कोई आवने न दीयै आपु राजा चलिके रानी पधारि करनाटी कै महल आए राजा कुं जानि रिसाइ सब सभा बहुराइ भाट चन्द बरदाई एक सभा मैं बैठि रह्यौ कि राजा बोलेंगे ताथे धीरजु रह्यौ॥

: वचनिका—श्री राजा पृथीराज कइवास चन्द कौं दीनौं स तिनि ले भरतार सहगवनु कीनौं राजा पृथीराज चंद पैं बोल लीनौ कह्यौ कि मोहि पंगुरे कौ जग्य देषन कुं मन भीनौं इतनी बात भई राज पृथीराज कै करनाट कै करनाट कै राजा की बेटी पटरागिनी पधारि तापैं राजा सीष मांगन गए तब रानी राजा सुं बिनती करतु है अहो नरेस्वर एच्छह मास षट ऋतु ऐसे मैं चलियै नाही।

वचनिका—ऐसी रीति कर्णाटी राजा पृथीराज कनवज्ज चलने कुं आतुर भए। सेना सावधान भई॥

दूहा—तब प्रथिराज नरिंद कइ किम प्रिनौं प्रिय आजु।
सब सुभट ले संमुहौ पंगु राय जग्य काजु॥

(तुलना० ना० ३१.४२=स० ६१.७८)

वार्त्ता—कंक शक्ति देव्या ईदशं अर्ध नारी नाटेश्वरं रूपं कृत्वा दर्शितं। सो कैसी नारी अचरिज रूप मिली।

: : दोहा—जब छिप्यौ गंगा हरस जप्यौ नृपति पृथीराइ।
सु कविचंद तुम्ह सुं कहुं कछु जस बरन सुनाइ॥

अ. ४३ : वचनिका—श्री गंगा जी के टटीन कनवज्ज की पनिहारी पानी भरतु है। तिनकौ वर्ननु चंद वरदाई पृथीराज आगे करतु है।

३२ ४ अ : वचनिका—तीन लाख जन चौकीदार दिन का ३ लाख राति का चौकीदार मिल्या देखि पृथीराज सामंत चकित हुइ हथियार संबाहयर ॥

३२.२३ : उत्तरी शुक भाषा च हंस भाषा च पश्चिमी।
दक्षिणी मयूर भाषा च काक भाषा च पूरबी॥
मध्ये शुक भाषा च कंठी उलूक मेवच॥

३२.३५ अ : विरुदावली राजा जैचन्द की कहै।

३२ ४४ अ : वचनिका—जैचन्द कहे छे। उणरा मां मारे ने म्हारो पितारै प्रेम हूंतौ। ऊए म्हारा पितारी चाकरी कीधी तिम तिम बध्या राजा सोमेस दिल्ली परण्यो। ताइरां म्हारा बड़े रा सुं बात करी घणों धन मांगि लीवौ॥

३३.३० : वचनिका—श्री राजा प्रथीराज कनवज देषन कौ चलु लियो। श्री गंगाजी के कूल जहा संजोगिता कुवरी कौ। धवलग्रह कीनो ता अस्थान क प्रथीराज आनि घोरे कुं पानी प्यावन लागे इतनो करी माछरी टटि आई घोरे। आगे तिनकों राजा मुगता हारु है। सु तोरी गंगा जी कुं समरपन लागौ। मानों फल दानता प्रस्तावि संजोगिता की नजरि परयौ। दिष्टि आगै तब संजोगिता जान्यौ। यहै राजा प्रथीराज होइ परीछया कीनै। तब दूती बिचच्छन कुं बुलाइ आदेस दीनौं। बड़े बड़े मोतीय हाथन के कंठमाल के ले सब एक ठौर करि के थार भरि कै जहां राजा पृथीराज है तहा ले जाहु। जौ राजा पृथीराज होइ है तौ फिरि हाथ करेंगे तब तू मूठी भरि के देत जइए। बोलै जनि बोलैं तै रोस धरेंगे।

३३.३७ : दोहा— मच्छ उछंगनि मुत्तिकर रसनह संग्रिन द्रिष्ट।
प्रीति बचरचै रूप रस अब सु फिरीय तन पिट्ठि॥

३३.३८ : दोहा— वर सफर पुच्छिय सषी बुधिवर सुवर महेश।
गनक सुजषि गंधर्व दिव किन सुहि सुइ नरेश।

३३ ५२ : दोहा— तबहिं दासी विचारकीय इह पृथीराज नरिंद।
जाइ कह्यौ संजोगि सुं तिन सुं कीयौ आनंद॥

३३.५३ : दोहा— पंगु पुत्ति सुनि बैन इत गइ जहां संभरि वार।
निरषि नयन भौ कामबसि भूलौ चारु बिचारु॥

३३.५४ : दोहा— सुंदरि कहै मैं पंगुकीय मरन जीय तुम सत्थ।
सुनत मंगहीय सालि तव नृप नारी गहि हत्थ॥

३३.५७ : दोहा— निचहि वर गंग थार कहुं मधु सजन तन मार।
उकति उतंग सुरंग मुष सरसैं भरि लीय सार॥

३७.९ : दोहा— उनतीस सहस आप भर भिरत बलपति राजु।
कहै गहै चहुवान कौं इत मंगह छुट्यो बाजु॥

३७.६ : कवित्त—मंगर मेर मरह हह दुंदभि धुच किन्हौ।
सिबति पति सम्मही बाह पलचर दुंद बिन्हौ।

मर दह थिर हुट्टलि मंत दोहूं भर भल्ले ।
स्वामि तहन छुट्टति देव दुहलि मिलि चल्ले ।
छुल राज सुरयो दच्छिन तनौं हय रच्यति सिंह हंक सुनि ।
जैचन्द राय दुख रूपतो दुपी किन्ह पृथीराज फुनि ॥

दोहा— इय गय रथ कनवज प्रयसु मिलि ढिल्लो धर अग्ग ।
रथ रथ सह सु ब्रह्मरिषि ब्याह बिद्धि कीय जग्ग ॥

वचनिका—राजा पृथीराज सुं महा जुद्ध भयौ । राजा जैचन्द फिरि डेरा दिया दश कोश ढिल्ली था तहां से घेरा कीनौं । जैचन्द राजा कुं सब मंत्रिनि मिलि मंत्र दीनौं कि राजा जैचन्द जू अब राजा पृथीराज न पकर्यौ जाइ । न वासौं जीति गौ ता उपरान्त सजोगिता कौं ब्याहकै पानि गहि सौंपिगो । तब राजा जैचन्द नै मानी ब्याह बिधि सौं ज सर पढ़ाई । आपु कनवज की ओड चलिबै की बुद्धि ठाई ॥

दुहरा— उभय सहस मैंगल सुचित बारह सहस तोषार ।
सौमन सोपन रजक करि मनिमोती दश भार ॥

वचनिका—राजन महल आरंभे । संजोगित शृंगार प्रारंभे । कि शृंगाराय कि आभूषणाय ॥

: दोहा— इति रस तिथि दह पंच निशि समुष असम सर थात ।
कुल ग्रीषम ग्रीषम सुषम पावस प्रसव प्रभात ॥

कवित्त—तोला सहस कपूर सेर बत्तीसह आभन ।
चौवा बावन सेर नित संजे सिर कामनि ।
बीस पान के बीस सहस बोला सौ बीरा ।
एक सहस इकलक्ष सुतो इक बरनै चीरा ।
फुलेल तेल चारीस मन नित चराक सहजै जरै ।
इतनो रज सुं ज संजोगि के नित्त नेम नेमी भरै ॥

वचनिका—राजा प्रिथीराज आगै धीर पातिसाह पकरिवे की पैजु करी जालंधर आदि माता की जात चलिवे कुं मन धरी । चावंडराइ जैतराइ पातिशाह सु पकरि दिवाई । भाइलौं नै कपट करि धीर पकराई ॥

वचनिका— झामदेव गष्षर कपट करि जालंधर नगरकोट आयौ । आठ हजार गष्षरु फकीर कौ भेष बनायौ । धीर के पकरिबे कुं झामदेव धायौ । भुगति धीर षांड प्रित मांगि बोलि सुनायो ॥

[व]चनिका— झामदेव गष्षर धीरकौ पकरि ल्यायो । आनि पातिसात कै हजूर गुदरायौ । सिंघ पलें पार मेले सब धीर सुं पातिसाह झूठा त हजूरि पूछि तब ।

वचनिका— तब पातिसाहजी कहतु है । धीर तूं जीवकै लालचि झूठा बोल है । तब धीर कह्यो पातिसाह जी हुं झूठ न बोल्यो । झूठ मैं सुरता आउगो तलै ।

[व]चनिका— तब पातिसाह साहाबदीन च्यारि बड़े उजीर बुलाए । तिनके नाउं ततारषांन १ षुरसानष २ रुस्तमषां ३ दरियाषां ४ ए च्यारि

सुरतान कै ढिग आए। साहि कह्या वे दरीयाखां अदब करि बात कहि इस धीरकुं क्या दीजीयें। तब ष्यारूं ने कह्या कि पातिसाह जी इसहि निवाजीयै ॥

ना० ३९.६६ : वचनिका— तब साहबदी सुरतान कह्यौ जे बीसा सौ घोरे बीसा सौ कबाइ दोइ मदकै हाथी ल्यावौ। पूब षूब कपरे हथ्यार आनि इसहि पहिनावौ। तब धीर बोल्यौ अबे कछु न लेउं। जिस दिन पातिसाहिजू को पकरूंगौ तिस दिन पातिसाह की मोज कबूल करूंगो॥

ना० ३९.७१ : वचनिका— तब सुरतान फेरि धीरसुं कही। मेरी कही तू जानीये सही। जिस दिन तुमै दिल्ली में जावनों मरद लगी होइ तौ सबाहि लरन आवना॥

ना० ३९.८० : दूहा— चंल्यौ बल सुरतान भौं जालंधर भेटि पंधार।
बदकसान सेच्छान सह हबस हवसि गंधारि॥

ना० ३९.८४ : वचनिका— तब धीर पौंडीर राजा पृथीराज कै दरीबाने आए। इहां राजाजू ने लड़ाई कौ सूर सामंत सब लोक बुलाए। और बेर धीर आवत भया जीवमें धरते। तादिन धीर आवत देषि राजाजू नजरि नीची कीनी। बैठै हीं हाथ पसारि अंबवारि दीनी। चावडराय जैतराय बैठै देषि धीर राजा आगै नीची नजरि ठाढे हैं। धीरमन मैं महा अनराव। इतने में चामंडराय जैतराय हसे है।

ना० ३९.९२ : वचनिका— चामंडराव जैतराय गारी दे बोलि सुनायौ। तब धीर माथौ उंचौ उठायौ। कह्यो काल्हि सुरताल की फौज जीति जस लेउं। पातिसाह कुं पकरि प्रथीराज कै हाथ देउं।

ना० ३९.१०६ : वचनिका— इतनों कहि धीर डेरो आए। रजपूत सामदेव करि चढ़ाए। धीर पुंडीर राजा आगै पेज करि दल मामिवों कीयो। आठ हजार पुंडीर गिनती हुए मुहला लीयो॥

ना० ३९.११२ : वचनिका—राजा पृथीराज साहाबदीन सुरतान दोउ सुद मिलि लरन चढे। झुझाऊ निसान बज्जे। पातिसाह धीर बै डर निवारइ पातिसाह करे। हस्ति तुंग पयदल सबल की ढिग सबनिकै सिर छत्र धरे।

ना० ३९.१३९ : वचनिका—बीज लषबाइ धीर सौ कहतु हैं पातिसाह जी कुं पकरि ले जातु हौं। चामत्र छत्र रषत रषत धीर जु युग्ह कुं निहोरो जो लोक लूटतु है तषत॥

ना० ३९.१४१ : वचनिका—राजा पृथीराज जूल राई जीति ठाढे भए। चामंडराय जैतराय ए बंचन मए। धीर लराई में थैं भाजि गयौ। तब राजा कुं दुष भयौ। तब साहि के चाकर पातिसाह कुं देखन आए। सुरतान साहाबदी देषतैं में न पाये तब उनि राजा पृथीराज सुं षबरि बूझी। पातिसाह जू नहिं देषियत। अलोप भए भई एक घरी॥

ना० ३९.१४२/१ : वचनिका—तब राजा पृथीराज धीर कै घरि चले। सूर सामंत साथि लिए मेल चले। धीर कै दरबार जाइ ठाढे भए हैं। तब बीजुल षवास भीतरि जाइ षबरि दए हैं। धीर जू राजा जू आछु है। तब धीर

रिसानो। कह्यौ गुलाम ए तेरे काम। षांडौ काढि मारन दौर्‌यौ। मैं तेरी कहां हुं रायौं साम। तब बीजल धीर प्रति कहत है। राजा की ब्यार......तिम इया ररिवै को परत है। यह विचार सुद्ध पहुपास। पाछ चलि धीरइ धीर आए।

कवित्त— मंद किरण दिनीयरह हीम मज्जरै कमल बन।
जबहि धीर नहि धरति काम जब आइ गहै तन।
पति बिहून परचंड कवन जीवन अब जंपहि।
बचन एक सम लोह लहीयौ इस कररह।
सुनि धरनि सिखावहि सिखवहि चित्र हरन चंदह बदनि।
नन करहु कंत पर देश गम ससिर मास बहुँ रयणि॥

रासा—क्रीडति काम सुठान मनहु रति राग।
मिलि तरणी रसराज सुभ जिस राज अग।
छिर कंत एक सुएकह दंपति प्रेम बग।
केईम जक्ष सुरम्यि प्रपूरित तास बग॥

दोहा— जाम एक नृप तरणि सम क्रीडत रंग सुसल्ल।
तजि बासन आवरीय आवत मंझ महल्ल॥

पद्धरि— आर्वत महल पृथीराज राज। सिंघासण आसण रजक साज।
सिरसेत छत्र रजि हेम दंड। रज्यु सुथान धूभ जिम्र अषंड।
सिर ढरहि चमर जुगपच्छिसेत। आवत महल पुथिराज हेत।
आसन अप्प भूरी सुगाद। थानक्क रोहिनिम्न निम्न सादि।
मंडलीय रचीय सामंत सूर। बालवह सभ्भ जहु देव भूर।
बिधि बिद्धि नाद तंतो सुनाल। कौतिग्ग बिवधि भजि करहिं माल।
गावहि सुविध गुन फागरंग। वढ्यौ सुहास रसरास अंग।
घट पंच अगर रसपूरि तार। केसरि सुघट्ट दह सत्त सार।
भरि द्रोण पंच गुल्लाल भार। अब्बीर भास सम ससुर भास।
आलेपि सब्ब सामंत भट्ट।
कम धज्ज वद्धि निट्ठुरहि ताम। भिज्यौ सुअंग पृथीराज साम।
समघट्ट एक पत्तंग रंग। पूरे सुराज प्रति प्रति अंग।
चौसट्ठि पन्न बीटक अनेड। कप्पूर कत्थूरी जुत्त तेड।
दीनौ सुलब्ब सामंत सूर। सोभी सुभापति नाकनूर।
बोलाइ मद्धि दासी सुराज। सय दून आए सिंगार साज।
गावंत आयत कहे चिसूर। वढ्यौं सुहास रसरास भूर।
दिन प्रति केलि इम करत राज। आमेक निरष्षत देव साज॥

दोहा— बारी बन्न विहारथल करत राजवर केलि।
रचत फाग नर नारि मिलि सम नारी रसबेलि॥

कवित्त— इह विधि आय हलाल विप्रवर चवि वेदसर।
श्रीफल संपनि तास गनिक को गनिदत्त नर।
पूजीय विप्रहु तास पूजि भर सामंत सूरह।
पूजे हय गय सद्ध विविधि वर प्रीति सपूरह।

श्रुति विप्र वेद आयस लगि श्रीफल लये जुग सहस ।
माहनीय उवाल अप्पे नृपति विवह आहारीय अन्नरस ॥

T० ४१.१९ : दोहा— रज उच्छव राजन करीय क्रीडा विविधि कलाउ ।
रज उच्छव मातहि नृपति गमन चित चित चाउ ॥

T० ४१.२० : कवित्त— करि भोजन दिल्लीश सयन सुष ध्यान रपत्तौ ।
बंध बल संभरी साइ मन्त्री गुर घत्त ।
चढ्यौ अप्प चहुवान बोलि जद्दव जामानं ।
तोअर राय पहार सुभर बलिभद्र समानं ।
कुम्मार रयण बंधव बरण लिव सतअथ तइ सत्थ सजि
सेनाह संग कीनीय सकल क्रम्मु सु आतुर अप्प गजि

T० ४१.२१ : अवर सेन सामंत जाहु पहु पुट्ठि रपत्ते ।
सहस पंच असवार मिले रघराज सुरत्ते ।
इक जोजन नव थान दक अमर करहु रथानं ।
मध्य इक धक जिनल देखि दंपति सम्मानं ।
संभाषि वध इन संद करि आहारि वद्दनि सुनर
... ...,

T० ४१.२२ : निज भयौ गज हाकि अप्प आरूढ्यौ दिल्लीसुर ।
भर विट्टे चिहुं पासि विट्ठि पयदल्लह बानवर ।
सुपनधारि निकास मुष्य रप्पये सुचेतं ।
चर कूकर करे जिहि रप्पये सुचेतं ।
चहुवान चल्यौ सामंत सम भल सुभर जुद्धहि परै
चहुवान मान सोमेस की विन सुबात भय्या जुरै

T० ४१.२३ : नीसाणी—सुनिअ राह कूकर कुलाह उठ्यौ ओझक्की ।
मनु पल कहे पान अप्प विन्नौ रण हक्की ।
को बर्रभन बुद्धि बल जनु बाव तनकी ।
चर त्रिशाक तुअ नैन जनि जुअ भूमि झलक्की ।
सकल सेन उद्धनि परी जनु सोस सरक्की ।

T० ४१.२४ : कवित्त—सुनि अवाज केसरि सुगाज कूकर कर छुट्टे ।
के भगो केई लगे भाय सनमुष सजुट्टे ।
पय पसारि वर नारि देषि दल कुंच सगज्जं ।
उभय व'''असवार अरघ्य आरुज्यौ सुरज्जं ।
छंडेव मुष्य साहप्प भर हनि पसारि कूकर कह
करि गात गजि सम गजि पर क्रम्यौ अप्प उप्पारि कर

T० ४१.२५ : आवत ईवै राज संव उप्पारि पुच्छ कर ।
इयौं खचिकर बर आरोह निद्दयौ पुट्ठि पर ।
करिग बान औरान सीस जुट्टयो सु गज्जं ।
परिग झारि पृथीराज धरणि नचयौ सुधज्जं ।
लगो सुभंत गज दंत बर फूटि उदर कटारी कक ।
फिरि गह्यो गज नव पानिधर मंदि उहद्दीय इकधक ॥

सा बाधनि ता समय आइ कवि पुहि लपत्ती ।
सूर अगा जो सनी मिठी संभली सुभत्ती ।
चढ्यो हंस कुम्मार रयण दिखि दविण सोई ।
जाम इकि मिथुसून ताम लग्गी असि रोहं ।
परयौ अश्व असर्म्नि पंर हाय हाय सब सुर हुअ ।
ठेलि ··· ··· परीय आंणि दोय टूक हुव ॥
सबसेन चहुवान आयौ पर कुमारं ।
जय जय सद्द सुजपि अथि नषी सुरत्तारं ।
फिरयौ ताम दिल्लीस करत आखेट असमानं ।
इय बराह दह अट्ठ बाग उत्तरे सुथानं ।
जंत्र सुभर जल उभ्भरंहि भरहि दीघं कूप उद्धरहि ।
उंच अनोपम रिद्धि भर सुरबलास सा चक्करहि ॥
बाग निरष्प जल बिमल कूप विचित्र बिहार ।
मन उनमोदन सुष्पजन पेष्न पेष्षे लार ॥
तहां सघन दिल्लीसवर मधि धारा गृह थान ।
जलपूरण जल दीर्घिका वत्तर सुभर समान ।
फिरि वनराज विराजं साज अनेक वल्लि नी भारं ।
सारं दुजकुल सारं मारं नमणु दिणे सारं ॥
माधव साधव तरुणी रज्जे मज्जेव अप्प सुपसारं ।
मारं घण घनमारं दर दरिसि हीयणो पहिणो ।
मधवन रितु बर मरीयं भरीयं लोप लोप आमोदं ।
उर पुलकि दह अट्ठ सच्चो समीर दषित दषिपन ॥
— प्रविश्वित माधव मद्द सुरंभ्भ । प्रफुल्लित पादप लोपय रुषिप ।
मिसलित मालत कोस निरुत्त । दिसा मिलि मंजर जानि अहित्त ।
उमहित उहित गावहि लोइ । छिरक्कहि कुंकुम केशर सोइ ।
गुलाल सुगुंज अबीर सहीर । करै मिलि केलीय बंधि सुनीर ।
कपक्कय पूरि सुगंध सुमंत । ओरंचीय मोदीय जात बसंत ।
आरुगंहि सूरत कथांहि हु तास । सुमक्कइ चंदन श्रीफल तास ।
करी जुग पर सु अबुज केलि । बपट्टनु पट्ट सु सोरह पेलि ।
सुनीपक काम्म सहचारि काम । आयौ दल सज्जि सुसंगीय बाम ।
हकोरल कुपल नौत सु बात । पक्काइन पीत मनुगुर बात ।
प्रफुल्लीय बल्लीय मिरलीय सीस । अलीगुन पंतीय चाय सरीस ।
सुमक्कइ मद्धि मधू मत राज । मनुं सर पुंघ मन मथ साज ।
मनमथ सायक मंजरि भास । मनुं छिदपक्क पथि पिय जास ।
लहक्कहि लत्त पवन्न परास । सजिहय थाय जनु रति ईश ।
पहं लगि दीघं पजूरि अभार । मनुं सजि छत्र धूम्मिर मार ।
वनं भरि श्रीफल नोप विहंग । करि जनु अंग आवाने अचंग ।
बरणीय अब विहल्लति बात । मनुं कर हार पलाषीय भात ।
करणि कणारि कुसुम्भहि रोहि । मनु मूत हेम भषणहु सोहि ।

.. ... स उछ उहास। जनु जन नव भूअप्पति आस।
मधू मध किंसुकि केशरि नष्ष। विदारण दुष्म ससीर अमष्ष।
लता वर मूरति हल्लति दीश। दरै जनु चौंर सुमद्धव सीस।
कुसम्मित बल्लीय पिल्लीय साल। सुराजहि सूर सुजस्सहि माल।
तमालह पंत सुमग्ग सुबान। अभूत सुसंत सुमंत्रीय जान।
करुणीय फुलीय रत्तीय रास। नरज्जन उच्च किरणीय भास।
विहस्सीय मन्न मिली वर रोह। सुरिद्दह आगम सज्जन सोह।
हिमं जति फुल्लीय सिल्लीय राजि। मनु पहु पत्र सिंगारनु साजि।
कुसम्मह केतकि अग्ग उधारि। बियोगनि सल्लीय काम कटारि।
पुहप्पह पूरित चंपक मात। सिंगारीय भीप प्रलिप्पीय जात।
बनं मह सोभ तरुणीय भास। फल छल उच्च जंभीरी आस।
दशन्नह बासन बंधु अजीव। किरन्नह कल्ल दशन्नह कीव।
दुती पम कुंद कली डस जानि। असो कह पल्लव अगुलि पानि।
कुसुम्मह बोलसिरी नकफुल्लि। भ्रन भ्रन बासन सम्मन तुल्लि।
पुक्कदर पानि सु हल्लह जानि। सब बिधि सोभ सजातिय जानि।
पके फल पूर बसु भ्रन सोहि। मधू कजि बासन आसव रोहि।
सरोहीय पादप बल्लीय लीय। मिली जनु त्रीय पयक्कहि प्रीय।
रह शिर फूल तबक्कह दीश। सज्यौ जनु माधव सौ हर सीस।
अली अति गाइन राग अलाप। पुराण कली रवि दुंजन आप।
बंदी सुर कोइल मागध मोर। मसिग्गर सारि करूवर रोर।
समीरह आप सुरम्भर बग्ग। उरल्लय सीत मिर्च्चरि अग्ग।
बिच्चु रह जान गवन्नह काज। भई गति मंद प्रदच्छिन साज।
सुरंतन आप सुरंतर मद्धि। त्रिगुन्नह बान मनुं सु परिद्धि।

१.३५ : गाथा—वर जूट जूट बिराज मानं मून रषि तप साजं।
फन संभके बिभ्राजं चूवे भूपाल सोभि गुण जाजं।

४१.३६ : धीरण फके विपक्की रक्की दुजने कजिसि कुल चक्की।
फुल्लरु कोरण रत्ते प्रानं लव पंति चंडिणो पहिणो॥

४१.३७ : कवित्त—तहां उतरि प्रथीराज सुभट सामंत सूरि सदि।
अवर सत्थ समकीय दिषि बन राज मन मदि।
करीय गोठ रुचिर सात मिष्ठान बिबह भति।
मंस गात रस अंत्ति मुनि भूलि बास मति।
संजुत्त साथ भोजन करीय आहारे तंबोर बर।
अभ्यंग अंग उप्पट सुमति आरोह परजंक भर।

४२.४ : वचनिका—राजा प्रथीराज छम्मास लों गौर महल रहे। संजोगिता कै कामंध होइ रहे और षबरि छाड़ी और रानी छारी दई। प्रधान कौ जिउ अति चिंतवनु भयौ तब गढ़ गजनै तै साहाबदीन गोरी दूत देषन पठाए सो दूत दिल्ली आए।

४२.९ : मुडिल्ल—कर कग्गर दुज्जर दिल्ली धर। भूमि कंपि अरु कंपि उवरवर।
बाल वृद्ध अरु ज्वान सवानह। रहे दगदगी चित्त बिसानह।

गाथा—राजनद्दर कुरबार सवार बहल सेस ।
ता कन्नद्द हट्ट बार हक्के चाँ गोरीय साहि ॥

पाधड़ी—सुभ्रम साह श्रीधर सुसाह । धनवंत साह कुब्बेर राह ।
अमरेस सेठ अवनी अबीर । केलन साह रूपक बजार ।
आगम जान बिनान बुद्धि । जे रहे अभु देसंनि सुध ।
ताकहै क्रम्म छाया बिचार । कोटिक्क धज्ज बंधी अपार ।
मिली एक सकल एक तहाँ महाजन्न । बुझंति केस रतिवस राजन्न ।

दोहा—भिदर तेज तरकस सुकति भौ अग्गी सगमग्गि ।
मनु गोरी दल बहन कुं जनु दावानल लग्गि ॥

वचनिका—राजा पृथीराज संजोगित के महल मास छह कामंध वस्य रहे । ता प्रस्थाव या बात सुरतान साहाबदी सुनित है । सुनत ही राजा राजा पृथीराज परि दल मेलि चले । सिंध नदी कै वराहै डेरा हुए । तब चंद बरदाई गुरुराज आनि पृथीराज सुं कही । तब पृथीराज जू सुहला दीनों सही । तब राजा पृथीराज जैतराउ बग्गरी कछवाहौ बलिभद्र पुंडीर जैतराउ इनसौं कह्यो । चलौ समरसी रावल की बिदा करै ज्यु वे गढ़ चितोर जाइ राज करै संजोगिता कुं साथि ले श्री राजा पृथीराज जू समरसिंघ रावल के पधारे ।

वचनिका—तब पृथीराज तरवार छोरि चामंडराय के अग्गे धरी । तब पायन रै बेरी का ढंत पैज करी ।

वचनिका—जमुना जी मैं एक सिला हुती । तिहाँ राजा पृथीराज रावर समर सिंघ सब सामंत चंद भाट्ट तहां जाइ मते बैठे । तहाँ बीर जाग्यौ सो बीर कहा रहतु हैं ।

वचनिका—तब पावस पुंडीर दोउ हाथ जोरि राजा पृथीराज सुं बीनती करी हौं बार हजार असवार लै राजा के काम कौ संग्राम करन आयो । मोसुं राजि की नजरि फेरि कुमया धरी ।

वचनिका—इतनौं सैनु राजा पृथीराज कौ एकठौ भयौ दोइ हजार असवारनि क्यारि क्यारि तरवारि बांधि पैज करी । उतैं पातिसाइ कै कटक मसूरति सति कि सिंधू नदि उतरी ॥

दोहा—चढ्यौ साहि साहाब रव निसक हिंदू बन जानि ।
पंथ लियो पृथिराज दल भई पलानि पलानि ॥
चवद सहस असवार अरि बिज्जि मरे गज ठंड ।
तीन घरी तिनु सिर लर्यौ रमह राइ चामंड ॥

कवित्त—पर्यो पुहमि चामंड उरहि सबसेन जैत परि ।
सुभर लष्ष सारद्ध मीर अनभंग अंग करि ।
स्वामि काज गुरुलज्ज भज्ज मानि न भग्ग भर ।
सुबर गस तिम मत्त तिग्ग सारुन्नि धनुर्द्धर ।
चलिल चाल बंधी बहसि रहसि टहरि पम्मार परि ।
अधसे लोक कहुन उभय छोड़ सुलग्गे स्वामि छरि ॥

[भु]ग प्रयात—दिपी दुज्जिवी जैत अग्गी सुजीतं । नृप सेत छत्रं सरेभी दिमीतं ।

कहै साहि साहाबदी सुनहु मान अगिवान।
गहहु चंपि पृथीराज कुं वह ठह्यौ चहुवान ॥

कवित्त— द्वै सहस असवार धीर पुंडीर भयंकर।
सोक सहस कंगरह मीर सिल्लार पयंकर।
... ... खग्ग खनक्कै।
पिक्खर धार धसमसिग तेज झन झन झनक्कै।
इय चंदन री दारुन दुलह अत तजु तजु तप्पयौ।
झुझभो न धीर सुव सहसह्वै बिलष बदन चहुवानयौ॥

दोहा— बिलष वदन चहुवान कौ तब दिष्यौ चहुंपास।
सावंत सूर सु डभे नकौ मन चिंतन उदास॥

सोरठी— लिहु नर है बंधान लिखत बंभ कपार पर।
भमुर भइयौ प्रथिराज सुनि संजोगि परंत घर॥

दोहा— समर गहन परबल परन नर दिष्षे बहु हथ्थ।
रुप्ह न आइ कंत तुम बीरह बस हम सथ्थ॥

[स]ंजोगिता बात निवेदनं—

त्रोटक— परीजु संजोगि पुच्छियरं। नहि सास उसासति अंग हरं।
नर नारीय सारीय पानि गहै। नन स्वेद प्रस्वेदति पूरवहै।
जतनं बहु बिद्धि सखी सुकरै। असुवाननि नैन प्रवाह ढरै।
को चंदन मलय झकोरहि गातु। को अंचल वलय झकोरहि गातु।
इक बिपर सौटि ति लावहिं दौरि। इक कर अेंठहि दाबहि सौर।
बहु बुद्धि करहि बुलावहि बैनु। संजोगि अचेतन पोलहि नैनु।
चेत निचेत अचेत सही। सुतौ सास भुयंगम डाइगही।
दुष करैहि सबै मिलिनारि। उठैह न सुन्दरि चीर सम्हारि।

अरिल्ल— मंजन करहु संवारहु केश। अंग संवारहु ... ... ।
... ... अवतांहि अवास। छंडि छंडि तन भग उदास॥

[व]चनिका— चंद बरदाई जालंधर माता की जात सिधाए हुते। पाच्छै राजासुं इह भई चद घर आयौ स्त्री सुं पुच्छयौ राजा जू कहा करतु है। तब पतीव्रता अस्त्री कहै॥

कवित्त— मेघ मोर ज्युं मिले चंद ज्युं मिले चकोरह।
हंस मानसर मिले रैनि जानिक मिलि चोरह।
भमर कुसम रस मिले अमक ज्युं मिले भुवंगह।
तरुणि बाम रत मिले नाद चित मिले कुरंगह।
इतने नाइ पै सब रस मिले भनौ चंद आयो जब नहि।
सोउ नाजु हम तुम्ह जपंत जिम सुरंक पायौ रतन॥

[व]चनिका— साहाबदी सुरतान गोरी के दरीषाने इतनी जाति पठान म्लेच्छ हैं। गोरी गारते उतपन्न भए है। साहाबदी सुरतान की उत्पत्ति चंदबरदाई कही सति। गढ गजनी मांझ कोई एक लीलगर की जोरू महीना नौ के अधीन सुं मुई सो गाडी गोर के ऊपर पटौआ दे राषी। ऊपरि सुनि लई केतुक बरष बीते सुरतान जलालदीन राज

करे है। एकहि दयौस जलाल दीन ठाढ़े रहि चल्यौ है। मन मैं कह्यौ कोई छिद्र है। तब बालक बहुरि दिषाई दई। तब उजीर नैं पूछ्या। सुरतान क्या ठाढ़े रहे। तब पातिसाह उनसूं कहै है। अबे इस गोरस्तान मैं किस ही कापुं गड्डा गड्या क्या सूरति पाक है। तब उजीर बोले दीवान चलो इस कु देषीये नाहीं न कोऊ बल देवत है। तब पातिसाह कह्या। नां बे इह बनि आदम है सही। तब पातिसाह··· ··षोदि देषे तो क्या कालबूत ऊपरि पुंगरे देइ दुराई तब कह्या कि गांम माहि षबरि करो। यह गोर किसकी है। तब उनका कोऊ आया तिनें कह्या। दीवान यह हमुं जोरू पेट आधान सहेत गाडी थी। तब पातिसाह उस लड़के कै ताईं उहां थी निकासि घोड़े परि चढ़ाया। कह्या आज पीच्छै तूं मेरा पूत है। तेरा नाम साहाबदी गोरी सुलतान है। तुझे षुदाइ ने सहाउ रष्या। गोरी पठान है। अद्भुत साहब दीन गोरी को राजु। दरी षानै सभा मैं म्लेच्छ वर्नन साजु॥

४६.५२ : श्रीपातिसाहिब जू बोले। तब पीछे चंद बरदाइ बोले।

४६.७० : गाथा—देवी दरसन दीय आप रूप सतेर्ज।
प्रफुलित मन चंदो हुवो दूरं दह दिशिन॥

४६.११३ : दोहा—बुद्धि मन मैं रह्यौ सालु इह देह आजु कै कह जाहि।
बन जाउं सहौ पति साहि साहि मिलुं जोग जोगेंद्रनि माहि।

४६.१२४ : बचनिका—तब पातिसाह हजाब जा हबसी कुं फुरमान दियौ ले जाउ।
इसके साहिब सेती दश हाथि राषि इसे गल्हा कराउ।
तब हुजाब षांहबसी चंद कुं राजा पै ले चल्यौ।
कवेंद्र ··· ··· ··· ··· हबसी आनन उच्छल्यौ।

४६.१३० : दोहा—लछि सहुन बर अगनि मैं अरि पकरयौ सुनि पीउ।
ता मैं एक संजोगिता हाकहि तजयो जीउ॥

४६.१३९ : कवित्त—संभरि नाथ कमान बान गहि गहि सरु संधहि।
सलि महल भट सथ्थ मन चित चितइ सो इच्छहि।
··· ··· ··· ··· ··· ··· गुरु अष्षर चंद भनिय।
सुदहि न सरवरु सत कहा तुहि सामंत इकह गनीय।
उत पंग आस निस भूप दिय नयय धुनित भंगह सही।
लाग्यौ न तरह नरिंद सुनि षान सुरतान घर ग्यान गहि॥

४६.१५४ : दोहा—मीर न करि कम्मान सक बहु तोरी पृथीराज।
नृप कीही हुस्सेन हथ सो दीनी सजि साज॥

४६.१७८. : सत्त सहस रासौ रसिक कह्यौ चंद बिरदाय।
पढ़त सुनत श्रीपति जयौ अटजु परसति माय॥

—:*:—

ए. स्वीकृत, धा०, मो०, अ०, फ०, म० तथा ना० के अतिरिक्त द्रु० की

पाठ-सामग्री

द.	स.	द.	स.	द.	स.
१.४	१.४२	१.१११	१.३२०	४.४८	७.१६७
१.२७/१	१ ९३	१.११५	१.३२६	४.५०	७.१६९
१.२९	१.१०८	१.११८	१.५११	४.५१	७.१७०
१.३०	१.१०९	१.१३२	१.५४५	४.५२	७.१७१
१.३१	१.११०	१.१३७	१.६१६	४.५८	७.१८३
१.३२	१.१११	१.१३९	१.६५६	५.२	२१.२
१.३३	१.११२	१.१४०	१.६४९-५२	५.७	२१.८/३
१.३४	१.११३	१.१४१	१.६६९	५.९	२१.१४
१.३५	१.११४-१५	१.१४२	१.६७०	५.१७	२१.५०-५४
१.३६	१.११६	१.१४६	१.७०४	५.२५	२१.६८-९२
१.३७	१.१२१-२२	४.१	७.४	५.२७	२१.९४-९९
१.३८	१.१२३	४.२	७.८	५.२८	२१.१००
१.३९	१.१२४	४.६[1]	७.१७	५.२९	२१.१०१
१.४०	१.१२५	४.७[1]	७.१८	५.३५	२१.२१२
१.४१	१.१२६	४.१३	७.३२	५.३६	२१.२१३
१.४२	१.१३०	४.१४	७.३३	६.२	२५.८३
१.४३	१.१३१	४.२०	७.७०	६.३	२५.८४
१.४४	१.१३२	४.२१	७.७१	६.४	२५.८५
१.४५	१.१३३	४.२२	७.७२	६.५	२५.८६
१.४६	१.१३३ अ	४.२३	७.७४	६.६	२५.८७
१.४७	१.२२०	४.२४	७.७३	६.७	२५.९८
१.७१	१.२००	४.३२	७.१२९-३३	६.८	२५.८९
१.१०८	१.३१७	४.३४	७.१३९-४१	६.९	२५.९०
१.१०९	१.३१८	४.४६	७.१६०	६.१०	२५.९१-९४
१.११०	१.३१९	४.४७	७.१६२	६.११	२५.९५

[1] द्रु० का पाठ यहाँ त्रुटित है, ये छन्द दाँ० १५७ से हैं।

द.	स.
६.१२	२५.९६
६.१३	२५.९७
६.१४	२५.९८
६.१५	२५.९९
६.१६	२५.१००
६.१७	२५.१०६
६.१९	२५.१०७
६.१९ अ	२५.१०८
६.३५	२५.२२६-३५
६.३६	२५.२४०
६.३८	२५.२४२
६.३९	२५.२४३
६.४१	२५.२४५
६.४२	२५.२४६-५६
६.४५	२५.२८८
६.४६	२५.२८९
६.४७	२५.२९१
६.४८	२५.२९२
६.५१	२५.३०१
६.५५	२५.३१८
६.५९	२५.३५१
६.६०	२५.३५२
६.६१	२५.३५३
६.६२	२५.३५४
६.६३	२५.३१९
६.७१	—
६.७२	२५.३९५
६.७३	२५.३९६
६.७९	२५.४५५
६.८०	२५.४५९
६.८१	२५.४६०
६.८२	२५.४७४
६.८३	२५.४९१
६.८४	२५.४९२
६.८५	२५.४९३
६.८६	२५.४९४
६.८७	२५.४९५
६.८८	२५.४९६

द.	स
६.८९	२५.४९८
६.९०	२५.४९९
६.९१	२५.५००
६.९२	२५.५०१
६ ९३	२५.५०२
६.९४	२५.५०३
६.९५	२५.५०५-१८
६.९६	२५.५२०
६.९७	२५.५२७
६.९८	२५.५२८ ३६
६.९९	२५.५४६
६.१००	२५.५४८
६.१०१	२५.५५३-५८
६.१०२	—
६.१०३	२५.५६८
६.१०४	२५ ५७४
६.१०५	२५.५७५
६.१०६	२५.५७६
६.१०७	२५.५७७
१८.३५	४४.१२१
६.१०८	२५.५८४
६.१०९	२५.५८५
६.११०	२५.७७४
६.११२	२५.७७५
६.११३	२५.७७६
७.१	२६.१
७.२	२६.२
७.३	२६.१५-२०
७.४	२६.२२
७.५	२६.२३
७.६	२६.२४
७.७	२६.२५
७.८	२६.२७-३८
७.९	२६.२९-४३
८.२	१७.८
८.३	१७.९
८.११	१७.३१
८.१२	१७.३७

द.	स.
८.१६	१७.७२
८.१७	१७.७३
८.१८	१७.७४
८.२७	२४.७
८.६५	२४.१२८
८.६६	२४.१४४
८.६७	२४.१४५ ४७
८.६८	२४.१४८
८.६९	२४.१४९
८.७०	२४.१५०
८.७१	२४.१५१
८.७२	२४.१५२
८.७३	२४.१५३-५७
८.७४	२४.१५८
८.७५	२४.१५९-६६
८.८१	२४.२००
८.८९	२४ २६४
८.९३	२४.३६८
८.१०१	२४.३८४
८.१०२	२४.३८५
८.१०३	२४.३८६
८.११४	२४.४१३
८.११५	२४.४१६
८.११६	२४.४१७
८.११७	२४.४१८
८.११८	२४.४१९
८.११९	२४.४२०
८.१२०	२४.४३९
८.१२१	२४.४२१-२३
८.१२४	२४.४३२
८.१२९	२४.४४६
८.१३०	२४.४४७
८.१३१	२४.४४८
८.१३२	२४.४५६
८.१३३	२४.४५७
८.१३४	२४.४५८
८.१३५	२४.४५९
८.१३७	२४.४६१

द	स
८१३८	२४४६३
८.१४१	२४.४६८
८.१४४	—
१३.६	१२.८
१३.१०	१२.१३
१३.१४	१२.१७
१३.१६	१२.२८
१३.१७	१२.३४-३७
१३.१८	१२.२६
१३.१९	१२.३८
१३.२१	१२.५२
१३.२२	१२.५३
१३.३५	१२.६८
१३.३९	१२.७७
१३.४७	१२.९७
१३.४८	१२.९८
१३.५२	१२.१०९
१३.५६	१२.११८
१३.६१	१२.१२४
१३.६५	१२.१३०
१३.७३	१२.१४८
१३.७४	१२-१४९
१३.७६	१२.१५२
१३.७७	१२.१५३
१३.९२	१२.१९४
१३.९३	१२.१९५-२०९
१३.१०८	१२.२४६
१३.१२६	१२.२८५
१३.१२९	१२.२८८
१३.१३२	१२.२९१
१३.१६१	१२.३३०
१३.१६३	१२.३३२/२
१३.१९५	१२.३९३
१३.१९६	१२.३९४
१४.२	१३.२
१४.३	१३.३
१४.४	१३.४
१४.८	१३.३६

द	स
१४.१३	१३.५४
१४.३०	१३.१०९
१४.३१	१३.१११
१४.४६	१३.१५०
१४.४७	१३.१५१
१४.५३	१३.१५७
१४.५४	१३.१५८
१६.५	९.६
१६.६	९.८
१६.१२	९.१४
१६.२०	९.२७
१६.२१	१०.६
१६.४७	
१६.२२	९.२८
१६.३६	९.६५
१६.४१	९.७८
१६.४७	१०.६
१६.२१	
१६.४८	१०.७
१६.४९	१०.८
१६.५०	१०.९
१६.५१	१०.१०
१६.५२	१०.११
१६.५३	१०.१३
१६.५४	१०.१५
१६.५५	१०.१६
१६.५६	१०.१७
१६.५७	१०.१८
१६.५८	१०.२५
१६.५९	१०.२६
१६.६०	१०.२७
१६.६१	१०.२८
१६.६२	१०.२९
१६.६३	१०.३०
१६.६४	१०.३१
१६.६५	१०.३२
१६.६६	१०.३३
१६.६७	१०.३९

द	स
१७.४२	३९.१२७
१७.५७	४४.११३
१९.२५	३६.२३९
१९.२६	—
१९.३४	—
१९.३९	—
१९.४०	—
२०.५	१८.७
२०.८	१८.१४
२०.९	१८.१५
२०.१०	१८.१६
२०.११	१८.१७
२०.१२	१८.१८
२०.१३	१८.१९
२०.१४	१८.२०
२१.१	१९.१
२१.४०	१९.१६१
२१.६८	१९.२४०
२१.७४	१९.२४८
२२.७६	५६.१०८
२४.१४	४५.६६
२४.१५	४५.६६ (१)
२४.२९	४५.८७
२४.३०	४५.८८
२४.३१	४५.८९
२४.३९	४५.९८
२४.४०	४५.९९
२४ ४१	४५.१००
२४.४२	४५.१०१
२४.४३	४५.१०२
२४.४४	४५.१०३
२४.४५	४५.१०४
२४.४७	४५.१०५-१७
२४.४८	४५.११८
२४.४९	४५.१२०
२४.५०	४५.१२१
२४.५१	४५.१२२
२४.५२	४५.१२३

द.	ख.	द.	ख.	द.	ख.
२४.५३	४५.१२४	२४.९८	४५.१९९	२८.२	—
२४.५४	४५.१२५	२४.९९	४५.२००	२८.६	४८.८
२४.५५	४५.१२६	२६.१	४६.२	३१.९	५७.३१
२४.५६	४५.१२७	२६.२	४६.३	३१.३०	५७.७३
२४.५७	४५.१२८	२६.३	४६.४	३१.३९	—
२४.५८	४५.१२९	२६.४	४६.५	३२.५	५८.५
२४.५९	४५.१३०-४२	२६.५	४६.६	३२.२३	५८.१७९
२४.६०	४५.१४३	२६.७	४६.८	३२.३२	५८.१८८
२४.६१	४५.१४४	२६.८	४६.९	३२.३३	५८.१८९
२४.६२	४५.१४५	२६.१५	४६.३३	३२.३७	५८.१९८
२४.६३	४५.१४६	२६.१६	४६.३४	३२.४५	५८.२१३
२४.६४	४५.१४७	२६.१७	४६.३५	३२.५५	५८.२४९
२४.६६	४५.१५०	२६.१८	४६.३६	३२.५८	५८.२६३
२४.६८	४५.१५२	२६.१९	४६.३७	३२.५९	५८.२६५
२४.६९	४५.१५३	२६.२०	४६.३८	३२.६०	५८.२६७
२४.७२	४५.१५८	२६.२१	४६.३९	३५.३१	६२.७१
२४.७६	४५.१६२	२६.२२	४६.४०	३५.२६	६२.८०-८१
२४.७९	४५.१६९	२६.२३	४६.४१	३४.८	६४.१२
२४.८०	४५.१७०	२६.२४	४६.४२	३४.१०	६४.२५
२४.८१	४५.१७१	२६.२५	४६.४३	३४.४०	६४.१२०
२४.८२	४५.१७२	२६.२६	४६.४४	३४.४७	६४.१३०
२४.८३	४५.१७३	२६.२७	—	३४.८०	६४.१९२
२४.८४	४५.१७४-७८	२६.२८	४६.४५	३४.८२	६४.१९४
२४.८५	४५.१७९	२६.२९	४६.४६	३४.११३	६४.३३४
२४.८६	४५.१८०	२६.३०	४६.४७	३४.१२७	६४.३५८
२४.८७	४५.१८१	२६.३१	४६.४८-५१	३४.१३२	६४.३६८
२४.८८	४५.१८२	२६.३२	४६.५२	३४.१३३	६४.३७०
२४.८९	४५.१८३	२६.३३	४६.५३	३४.१३५	६४.३८३
२४.९०	४५.१८४	२६.३४	४६.५४	३४.१४१	६४.३७६-८२
२४.९१	४५.१८५	२६.३५	४६.५५	३४.१४२	६४.३८४-९३
२४.९२	४५.१८६-९०		४७.५९	३४.१७०	६१.४३
२४.९३	४५.१९१	२६.५२	४६.८३	३६.५[1]	६६.१४५
२४.९४	४५.१९२	२६.५३	४६.८४	३६.१२[1]	६६.११२अ
२४.९५	४५.१९३	२६.५४	४६.८५	३६.१५[1]	६६.११६अ
२४.९६	४५.१९४-९७	२६.५५	४६.८६	३६.१७	६६.११६(?)
२४.९७	४५.१९८	२८.१	४८.१०१	३६.२२	६६.१४३

[1] ये छन्द-संख्याएँ टाब १५७ की हैं, द० में यह अंश त्रुटित है।

स	द	स	द	स
६६.१४६	३७.१४६	६७.३१४	३७.२७४[1]	—
६६.१४२	३७.१८१[1]	६७.३५४	३७.२७५[1]	६७.५३७
६६.३८२	३७.२०२[1]	६७.३१३	३७.२७६[1]	६७.४८६
६६.५११	३७.२०५[1]	—	३७.२७८[1]	—
६६.६०१	३७.२११[1]	६७.३७२	३७.२८१[1]	६७.५५४
६६.९८७	३७.२१२[1]	६७.५००	३७.२८२[1]	६७.५५५
६६.९७१	३७.२१४[1]	६७.४१७	३७.२८४[1]	—
—	३७.२१७[1]	६७.४२०	३७.२८५[1]	६७.५६८
६६.१६१७	३७.२३१[1]	६७.३५७	३७.२८६[1]	६८.२४०
६७.१०८	३७.२६७[1]	६७.५३०		
६७.२१६	३७.२६८-७३[1]	६७.५३१		

द जो स० में नहीं हैं, निम्नलिखित हैं :—

: कवित्त— परयो धार जहाँ नरचंद निरति कमधज्ज न दीनौ।
धनि साहस वर पुंज बाग कापनि पवि लिनौ।
सुनी बीर तिहिं बेर राज तामस गुन भीनौ।
बल दुर्जन बसि करहु नहीं तन धन रन छीनौ।
तन त्रोसु बंधि वर मोह तजि केसरि बसलर गहीं।
बरबरनि बीर बरनीय बरन सुबर बीर तो रन गहीं॥

: कवित्त— तब छहह पुह पुंज छत्रु दोय डारि बिहत्थं।
भइ सुमरण बरु बेरु अप्पिय स्वामिहि जुहीं सत्थं॥
इसु धर्म छत्रा प्रमान नृपति त्रिपित भर सुझै।
ता छत्री कौ दोसु स्वामि हमै आलुझ्झ।
इहि वंस को न भज्यौ सुन्यौ अरु किहि न दोष कुल लगायो।
मो तात भीम अंजन' सहर भान जु छल बल भगायो॥

: कवित— लिरि जि राज आहुटि रंजि रजवि प्रिह आईय।
बर गोरी सुरतान रहि बज्जी बधाईय।
रविवार वीर पंचम सु भइ ढिल्ली धाम सु आइयां।
लिखि प्रत दूत बर चलैं सत्तम बार सुपाइयां॥

: गाहा— मोडी अंदर दिठो अरु गीरावो मेर सतंव।
तुम सुंड मंड तेडो गजियं नेय पंच सतंमि॥

: पिय वैणे मा रैणे तु स्वास हिए जीह अंकुइयो।
चित्तं तेरह पुडए सुत्वा जिथा गुणं मगुडए॥

: एणी रह गुठडीय कुण्ण एक नाईं वडी हगिहं।
सुध मुहंगुलि गहियं थाहं ति पिम दहणेयं।

: नैनह नेह पविसं हं हं हं ता कथा कथयामि।
मसं गोत्तण सपीयं हंसा पव मोचि सिंगार॥

[1] ये छंद-संख्याएँ खंड ६० की हैं, द० में यह खंड नहीं है।

२६.२७ : गाहा— अरवै तंतु प्रकार जै कंथ्या मध्य ब्रिधिनी।
मंझे न आंग त्याह ॥

२८.२ : त्रिसि कोटि वृस कप्पंर सत्या कीति सहथकं।
एतानि हि गुणी कृत्य भार संख्या मुनो वर्वास्य ॥

३१.३१ : चौपई— आनति अच्छी कंन रान जानं सुंनि घर
आइ अपुब्ब पुही भपइ आही। दालित महल सनी ६

३६.२७४ : दूहा— दुह अ समर किन्नी विषम उदय देखि रवि व्योम।
संत पष्ष श्रावन त्रितीय भयो सुकंदक सोम ॥

३७.२०१ : चौपई— बात कहू प्रिथीराज सुनि घर इक्कै भाई।
सर सुके त्रिघ पालिली सोमू गयाई।
कोरि पवारे कि्द्ध तै अभि मग्गे जाई।
हूंक सरि आइ त्रिलपीयो नाहि तरसहि पइ।

३७.२७४ : कवित्त— सबल नरेसर पोहोवि राय दुव हठि जितो।
करि सुभट्ट तर त्रिकट कलह बवा पर चित्तो।
गजि गोरी हंमी तुरक्क मारीया चताई।
मंडु लाडावडी दीयो अजमेरि चढाई।
ईम जंपे चंद बरदीया कप्पि लीद्ध कड्ढ कनै
इस सहस लष्ष तै ठंठ मैं अजहूं थक्कै गञनै

३७.२७८ : कवित— सुनहि बान चहूआन सोषि सायर सर मंडुयो।
सुनहि बान चहूयान राम रावन सिरु पडुयो।
सुनहि बान चहूयान हनू परबत सम पाल्यो (डुयो)।
सुनहि बान चहूआन पथ करि करन संघारयो।
करि तक्क चक्क संधे सुसर राह राह पछे मवे
चहूआन रान संभरिधनी सुमन सुबके साटे लवे

(तुल० स० ६७.५२१)

३७.२८४ : दूहा— सुनि सुपनंतर निप मन बर संजोइय जगिग।
हुय अवस्सि चहुआन किय सुनिय प्रान गये भग्गि ॥

शुद्धि-पत्र

पृथ्वीराज रासउ (भूमिका)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२५	पंथूवजा	पथूवजा
४	८	को	की
५	३	पाठनार्थं	पठनार्थ
६	२४	परमारि सुघुळी	सुघुळी आवसि
६	३३	विचार	विचारि
६	३८	१२४अ, तथा १२५अ	१२४ अ
७	६	भुज	सुष
८	१८	जेत	पेत
१०	२६	कब्यि	कब्वि
११	४	१८४१-५६	१८,४१-५६
११	१३	घर	धर
१२	१८	ह्य	ह्म
१२	३४	इनमें	इसमें
१३	२५	को	की
१५	३४	चला	चली
१९	२०	प्रतिलिप	प्रतिलिपि
२२	८	वनाउ	वताउ
२३	१५	इक्कु	इक्क
२४	१२	अर्धौं	अप्पौं
३०	२९	सामन्तों में	सामन्तों के
३०	३४	मिलती	मिलता
३१	२८	सो०	मो०
३१	३१	का	की
३२	१६	उ [द्] धृतः	उ [द्] धृतः"
३४	२६	अनुमान	अनुमान है
३५	१९	प्रतियाँ	प्रतियों
३८	२	विघनान जानि कविता	विघना न जानि कविना
४१	१	कथोपनथन	कथोपकथन
४१	२	से	में
४२	११	छन्द-शृंखलायें	छन्दों की उक्ति-शृंखलायें
४५	५	चन्द के	चन्द जयचन्द के
४५	१३	कामिनो	कामिनी
४६	३	वर 'उड्डिय	'वर उड्डिय
४६	१२	धा० २४२	धा० २४२ में
४७	१३	'सपड्डिय'	'सपड्डिअ'
४८	६	५८२	३८२
४९	११	पुकीयो	पुकरीयो
५२	३६	थाउ	थरउ
५७	३०	पाठ वृद्धि-जनित	न पाठ वृद्धि-जनित
६०	२५	स० ४५, १२२	स० ५५, १२२
६१	२०	सा०	स०
६७	२७	फा०	फ०
६८	१०	२ को	२ के
७१	३८	धा० ६७ अ	धा० १९, धा० ६७ अ
७२	६	२२ ३५	२२–३५
७२	८	निम्र	निम्न
७३	१३	की	को
७३	२०	यह म० ह० स०	म० ह० स०
७३	२१	ञोवन	जोवन
७४	१७	पी	पीर
७५	७	ना० [वा] हु	, ना '[वा] हु
७५	२७	फ ' ० कवि	फ० 'कवि
७६	३८	और कर उसके	और उसके
७७	१८	'विदारति' 'विराजति'	'विदारहि' 'विराजहि'
७७	३४	दास	दासि
७८	९	ज्ञा० स० हुअ)'	ज्ञा० स०) हुअ'
७९	१८	नहनी	ग्रहनी
८०	५	अ० फ०	अ०
८१	४	कँवर	'कँवर
८४	७	हो !"	हो !"'
८८	१४	५७ १२२,	५५.१२२।
९६	१८	४६.७८	४६.७७ अ
९६	२३	५६.९७	४६.९७
९६	३४	४६.१२७	४६.१२५, ४६.१२७
९६	३५	४६.१३१	४६.१३१, ४६.१३४
९६	३६	४६.१३५	४६.१३७
९८	९	मार	सार
९९	३२	[संयोगिता	[जयचंद कृत अपमान और संयोगिता
१०४	२	वह भोग वह	वह भोग कर
१०४	२३	स्वप्न में एक सुन्दरी उससे	"स्वप्न में एक सुन्दरी मुझसे
१०५	२८	तो	,
१०९	१२	मर्दन वर्मा	मदन वर्मा

११० २३ की ८८)थी	की थी (८४)
१११ ३१ १८,२७-२८	१२,२७-२८
११२ ३० बलीराम	बलीराय
११३ ५ १२१९	१२.१९
११३ १० प्रतीत है	प्रतीत होता है
११७ २५ सं० १२०० ई०	१२०० ई०
११७ २८-२९ सन् ११९३	११९३ ई०
११८ ३-४ 'विजय' 'पण्डित' को	'पण्डित' को 'विजय'
१२२ २ स्वतः	स्वतः
१२३ १४ उसने	वह
१२३ २० उसके	उससे
१२३ २३ आकाश को	आकाश की ओर
१२४ २६ हाडसन	डाउसन
१२६ १० मैत्री व	मैत्री
१२७ ३ निषकसित	निष्कासित
१३६ २६ हत्थु	हत्थु
१४२ १५ कि	किन्तु
१४८ २६ कदाचित	कदाचित् सबके सब
१५९ १५ प‌ुचवता	पहुँचना
१५५ ३९ धा० छंद ८८-९०	२. धा० छंद ८४-९०
१५६ १५ संपादितःपठ	संपादित पाठ
१६१ २१ निर्विभक्तक	निर्विभक्तिक
१६४ २१ विद्यापिति	विद्यापति
१६७ २४ चार पीढ़ियों	तीन पीढ़ियों
१६९ २६ २.१९.४	३.१९.४
१७० ३२ चद्र<चंद	चन्द्र>चंद
१७३ १४ लगभग होगा	लगभग को होगी
१७५ २२ वैभव के	वैभव की
१७६ ३७ पुरातत्व	पुरातन
१७९ २५ है होगा	ह.गा
१८८ २ विलासता	विलासिता
१९० २८ हरत्र	हरुअ
१९६ १ चन्ड चन्द	चड चन्द
२०५ १६ शिशर	शिशिर
२१२ १० सामान्य शैली	सामान्य रूप
२१७ १३ एक	एक-सा

पृथ्वीराज रासउ (पाठ)

३ अन्तिम नासिनी	नासिनी[६]
४ १६ विना	विधना
५ २३ विराजंत	विराजंत छंद
५ ३० सरपं	सरूपं
६ ३४ नाम ×एक×	नाम+एकं+
७ ३५ भावी	भावी
८ ६ कंठ	कंठं
८ २४ तिन	तिनै
११ १९ गौण रज्जत	गौष रष्यत
११ ३७ जीमुत	जीमूत
१३ ७ गताः	गत
१५ ५ बिंव[३] लीयं[४]	बंब लीयं[३]
१५ ६ साम	सोम
१५ २३ (११)	(२१)
१५ २९ पृथ्वी, नरेश	पृथ्वी-नरेश
१६ ५ वह	इन्हें
१६ १८ पाकठ	पाठ के
१६ २७ (३)मो आर,	३.मो. आर,
अ.फ. शरु	अ. फ. वाठ
१७ ९ धा. ३. ।	।३. धा.
१७ २५ ३.	२.
१८ १८ मा.	म.
१९ २६ सजिन	सपिन
१९ ३५ (४५)	(४७)
२२ १ रम्म[३]	रम्म[२]
२२ ५ जिन कंत	जिन[२] कंत[३]
२४ २२ ओ	ओट
२५ ४ अक्कगिय	अक्कुगिय
२५ २७ प्रमान+	प्रमान+[४]
२५ ३१ (प्रामाणिक रूप) के से	(प्रामाणिक रूप से)
२६ १० मो. अतिरिक्त	मो. के अतिरिक्त
२८ २४ मो.	३, मो.
२९ १७ जिनिअ	जितिअ
२९ २१ कथने	करने
२९ २२ हूँ	है
३० २ कर[१]	[१]कर
३१ १० मो.	२. मो.
३१ ११ २.	३.
३१ २२ उधारि	उसार
३१ ३५ जुवत्ति	जुवत्ति
३२ ८ <यत	<यत्
३२ २१ गगहि	गंगहि
३३ ४ संभव	संभवं

३३ ११ मन — नैन
३४ १० दिसावद्दी — दिषावद्दी
३४ १६ भाँति चित्त चातुरीनि — चित्त चातुरी
३४ १६ [इसका ठीक स्थान ३४. १७ का उत्तरार्द्ध है]
३५ २ छुड्इय — छंडइय
३५ ४ अप्सरसि — अप्सरस्
३५ ९ मानि न[1] मुकइ — मानि[1] न मुकइ
३५ १६ सुक्ष — गुक्ष
३५ २७ सेर — सूर
३५ २८ सग्ग — षग्ग
३५ २९ न मयुक्यु (=नमक्यउ) — न म्युक्यु (=न मुक्यउ)
३६ १७ घरनोपि गोरी धरं — घरनोपि गोरी धरं
३६ २५ नारत्ती–अ. — आरत्ती–अ.
३८ २१ मी. — मो.
३९ २५ जो अनिनद — जोअन दिन
३९ २५ फजुवन — फ. जुवन
३९ अंतिम अंसु — अंसुउ
४२ १४ कपिट — कंपिड
४६ १४ साहिरस सहावसाहि[1]+ — साहिरसं+सहावसाहि
४६ १४ सकलं[2] इच्छामि[3] जुद्धाइने[4] — सकलं[1] इच्छामि[2] जुद्धाइने[3]
४७ २१ ४. — ३.
४७ ३२ आनयउ — आनयउ[4]
४८ ८ नरयंद — नर्यंद
४८ २८ भ. — म.
४९ ८ मुच्छि — मुच्छ
५० १० पुनर — पुनर्
५३ ५ सुबाल[1] कीर सुद्धयो — सु[1] बाल कीर सुद्धयो[2]
५३ १४ (२४) — [4](२४)
५३ २० [4](३०) — (३०)
५४ ३० साहंता — सोहंता
५५ २४ सुवत्त — सुरत्त
५६ २ [बढ़ाइए : ३, उ. स. में यहाँ और है : सजुत्त ओप कारिनी ।]
५६ ४ [निकालिए : उ.स. में यहाँ और है : सजुत्त ओपकारिनी । ४.]
५६ १० कलाति — कलीति
५७ २ नश — नश्
५७ ११ आशीर्वाद दिया — जाकर आशीर्वाद दिया
५७ १७ बैठे — बैठीव
५९ अंतिम संचरइ*[5] कवन[3] सुहे[4] — संचरइ*[3] सु कहे*[4] बनइ*[5]
६० २५ ईदृश — ईदृक

६२ १० अमेज — अजेज
६२ २७ । २. म. जुगनिपुर — म. जुगनिपुर २. ।
६३ ८ सप्रत — संप्रतै
६३ २० ३. — ४.
६३ २२ =लुगउ — =उगउ
६३ २२ धरा–फ. — धरो–फ.
६४ ८ जालहि — जालहि[6]
६४ २६ कारन — कारनं
६४ ३४ ३. — ४.
६५ ३ भजीय — भर्जीयै
६५ ६, ७, ८, ९ कारन — कारनै
६५ ११ सुकिल — सुकिल
६७ ११ =लिकखउ — =लिक्खउ
६७ २० जुल — जुलन
६७ ३१ उ. स. बालान मंग — उ. स. बालान मंगि
६८ ७ वढिठ — वढ्ठि
६९ ९ सहिदेव, उ — सहिदेउ
६९ २९ धा दिखवावई — धा. दिख्खावइ
६९ ३१ जई — नइ
७४ २१ विहद्द — विरद्द
७५ ८ लियौ — लिए
७५ २८ ना. संभरवारि — ना. संभरवार
८० १७ थ. — म०
८१ २४ मन — मनुं
८३ ३१ २. फ. जटनि — फ. जटनि
८३ ३२ २. धा तरंगे — १. धा. तरंगे
८५ ११ इरइ*[3] — इरइ*[2]
८५ २९ इहै — इरै
८५ ३१ झकोलनि — झकोलति
८६ ७ सेउरी — सेउरा[2]
८६ २६ गुंज — गुंज[2]
८६ ३० चलंति सोइ सौइये[1] — चलंति[1] सोइ सौइये[2]
८७ ३५ संपुरी — संसुरी
९० २२ धा. कत्तिन करता — धा. कत्तिज करतार
९३ २५ मो. — मो.
९३ ३४ मुध — मुव
९३ ३५ २. — ३.
९४ १४ उ. स. साइ — उ. स. साइं
९६ १ शंशोधित — संशोधित
९६ २ गइ — गई
९६ २० नमसकार — नमसकार[2]
९७ ४ मेष — मेष
९७ १० निझं — जित्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९८	२०	पट्टने[४] ग्रेह[३]	पट्ट [१] ग्रह[२]
१०१	१३	दहाय[२] ।	डहाय[२] ।[३]
१०१	२२	पांम	पांप[१]
१०२	१	ओप[२]	ओप[३]
१०३	१५	कोचतु	कोच तु
१०३	२०	सीता	सीत
१०३	२७	तहाय	डहाय
१०३	३३	जु	जु
१०५	१३	तौलि	तौला
१०६	५	पायउ[२]	पायउ[३]
१०७	९	गुजर	गुज्जर्
१०७	३४	गरठु	गरिठु
१०८	७	(२) सथ्य<साथ	(४) सथ्य<सार्थ
११०	५	बिवाउ	ब्वेवाउ
१११	१४	म. उ. स. कीमो	कीमौ
११५	३९	=त्रिघ	=तिघ
११६	२१	विर्जपाल	फ. विर्जपाल
११७	२६	रत[१] हथ्थगाह[२]	रन हथ्थगाह[१]
११७	२६	चंद्द[३]	चंद्द[२]
११९	१०	दिढ्ढि	दिढ्ढि[१]
११९	१२	हथ्थि	हथ्थि[४]
१२१	२०	कथ्थ	कथ्थ
१२२	३	अप्सरसि	अप्सरस्
१२६	४	रुवविघ (?)	विढ
१२७	२६	पृथीराज सिघासन	पृथीराज संघासन
१२८	११	कथ्थति	कथ्थहि
१२८	१४	मुदङ्ग	मृदंग
१२९	१	घनसार	घनसार
१२९	१०	मा. महलउच	मा. उच महिल
१३१	१८	सेषर[६] करक्कसं	सेषरं करक्कसं[३]
१३१	२१	धुने	धुने[३]
१३१	२५	पर्द	बर्द
१३३	१३	मभंत	भमंत
१३३	१४	ममंति	भमंति
१३४	३३	प्ररंभ	प्र+रम्
१३४	३३	अखडल	अखंडल
१३४	३४	अलस्य	अलक्ष्य
१३६	१५	+चिह्नित	×चिह्नित
१३७	९	जिह्वि	जिह्व
१३७	३१	समक्षा	समक्षता
१३८	१५	हथ्थ[४]	हथ्थ[५]
१३८	१६	चदवरदिया को	चंद वरदिया की
१३९	१०	<रुधग्=रोकना,बंद करना	<रुधा=रुकना
१३९	२५	पउनर ...	आर ...
१४०	५	नियो	अप्रिया
१४०	२१	लिपतब	लिपत
१४२	१०	संठ<संगठन	संठा<संस्थान=रचना
१४३	२	किन	किंत
१४३	३	).पी...इति	=मिले), पा. कल लीन्हति
१४४	१३	तेज गुट्ठ	तेज गुट्ठ[२]
१४४	१५	बारा।[४]	बारा[३] ।
१४४	३०	(=अक्षक)	(=अंक) [२]
१४५	९	जिनके...है	वे भाजी घूटने पर देसे होते थे
१४६	२	५.	४.
१४६	२३	'फद्दे' या 'फंदे'	'फंदे' या 'फंदे'
१४६	३६	मिनै	मिलै
१४७	३६–३७	नंष<लंघ	नंष<लंघ्
१४७	३७	पुर	धुर
१४७	३८	प्र+क्षम	प्र+ईक्ष्
१४८	१५	दक्खन	दक्खिन
१५०	२८	अउरत	अउर
१५०	३०	अँग	अंग
१५१	७	संस्मर्	सं+स्मृ
१५१	३१	पंगुरा	पंगु राइ
१५४	४	मोरी[२] अप्पिय	मोरि[३] अप्पियं[४]
१५५	२०	२.	३
१५५	२८	छंडि ४. । ना.	छंडि । ३. ना.
१५६	अंतिम	वीढ	बिढ
१५७	९	४. मो. सुध, ए.	४. मो. सु, धा.
१५७	२१	धा. जोगिन	४. धा. जोगिन
१५७	२१	४. धा. पुरह	५. धा. पुरह
१५७	२५	ठंग	थंग
१६३	२१	५.	४.
१६३	२५	नश	नश्
१६३	३१	समाउ[१] तुरी जिम कुद्दइ[२]	समाव तुरी जिम कुद्दइ[१]
१६४	१८	छव[२]	छवै[२]
१६५	४	बजिता	बजिता[२]
१६५	अंतिम	कथम्<कथा	<कथन्=कथा
१६६	२६	विग्यवयन	विन्यवन
१७०	९	चहुवान	चहुवान को
१७०	१३	आगस्त गहु	अगस्त गहु
१७०	१५	<अस्तमायन	<अस्तमयन
१७०	२०	मनं	मनं[३]
१७०	२३	धुरे	धुरे[२]
१७१	४	धर कायर बलरिय	धर[१] कायर बलरियं[२]

सुखों	१८६	१२	आप विछुरे	आप बिछुरे
धा हहनकिल	१८७	३	~ द	मिद
वनकिन	१८७	१३	बासके	बासरे
सवाहिनि	१८७	३०	स. भूत्त मंगि	ना. स. भूत्त मंगि
घर	१८७	४०	संयुत्त	संयुत्त
रहिसं ³	१८८	२७	१. मखे दोइ	१. धा. मखे दोइ
नहिर्य ²	१८८	३१	उवरैं	उप्परैं
फनिंद ²	१८९	४	रषी ¹।	रषी ¹ ।²
मृगा	१८९	७	बनेच	बनेचरं
धून धूपे	१८९	१०	षी ¹ ।	षी ¹ ।²
धोम धुम्मे (धूपे–म.)	१८९	१३	व्याग का [सा]	बाण व्याध का [सा]
उक्चेलवा	१९०	३	मो म, रषी, शेष में	मो. रषी शेष में
तहाँ	१९०	११	बिम्भारषी । कोट	बिभूभारषी । कोह
घर हिलिय	१९०	२३	स्वामि ना.	स्वामिना,
गिने	१९०	२८	म. पवंग	अ. पवंग
अ. फ. ना. म. उ. स.	१९१	४-५	३. फ˙˙˙नहीं है	[न होना चाहिए]
म. छिति अंग	१९१	१४	लग्गं ⁵	लग्गं ²
लग्गी	१९३	२३	मो लग्गं	मो. लागं
धा. लग्गो पुहामी	१९३	२५	हेभ	हेम
जोगेंद्र	१९४	१	अ. संधि	म. संधि
कोइ सज्जइ	१९४	५	१. जुरे	१. ना. जुरे
बाजिन्न	१९४	१०	मैं संत	मैमंत
सुसंगा	१९४	२९	पंचियं	पंचियं
हत्थं	१९५	४	मिले–ना.	मिलं–ना.
ना. बहु	१९५	१०	सुमैं	सुमैं
अ. फ. ओपम्म पंड	१९५	१२	रोतं	होतं
ना. ओपमा पंड	१९५	१८	'जितो'	'जिते'
अच्छरिअ	१९५	२५	गज्जैं	गज्जैं
चाइ–उ. स.	१९५	२६	रीस < दृश्	रीस < सदृश्
१. अ.फ.ना.म.उ.स.	१९६	१४	विट्यौ	विट्यौ
थनि	१९७	२	पहु (= परउ)	पहू (= परउ)
धा. दिष्षइ	१९७	२०	कमधज्ज रहउ*	कमधज्ज ² रहउ* ³
धुरंगा ²	१९७	२०	आहुट्टउ* ²	आहुट्टउ* ⁴
कंपइ* ³	१९७	२४	योग	भोग
लग्गैं+ ²	१९७	३४	(= सुक्रवारह)	(= सुक्रवारह)
म. छत्र सह रंग	१९८	३	नींद न, बुद्यो	नींद न बुद्यो
अदूत	१९८	४-५	[पाठान्तर २,३ क्रमशः ३,२ होने चाहिए]	
तिहं नहि,	१९८	१५	जिमि	जिम
बनराइ	१९८	३०	सुब	सुब
मधि–म.	१९९	२०	मन्न रुद्दु	मन रुद्दु
तर=वेग, बल	१९९	२३	मंडतु	मंडतु
मिलि	१९९	२७	नीरे	नीरं
(उडि–म.)	२००	३	जतो मई– .	जतो अई–उ.

२०० ४ मइनी — मेहनी
२०० २० जुइ — जुद्ध
२०९ २ अ. फ. स. — अ. फ. ना.
२०९ ५ परिन — फ. परनि
२०९ २७ मरन 'भय' — 'मरन भय'
२१० १ धा० साहंत — साहंतो
२१० १० < मदमत्तो — < मदमत्त
२१० ३५ रषित — रषति
२११ २ रक्खें — रक्खैं
२११ १० राइ कइं — राइ कइं
२११ २८ तैं रष्षयौ — तें रष्यौ
२१२ २ जर्दो — जद्दो
२१२ ६ सरणि — मरणि
२१२ ८ धरावर — धराधर
२१२ १४ षडिअइ — षंडिअइ[४]
२१२ २६ अ ध. — अ. फ.
२१२ २७ अ. — म.
२१२ २९ स. क्रपन — स. क्रियन
२१२ ३० उ. स. दिग्न — अ. उ. स. दिग्न
२१२ ३४ मरन दी — मरन की
२१३ ४ कमवज्ज स. — कमधज्ज सू.
२१३ १२ नथ्थउ[४] — नथ्थउ[४]
२१३ २६ ना. अंठ — ना. अठं
२१३ २८ धा. लग्गयेध — धा. लग्गये
२१३ २९ कहयो — कह्यो
२१३ ३० धरि — धरि
२१३ ३१ वैठें — बैठै
२१४ २ सूरिया — सूरिमा
२१४ २ धा. उ. स. पिक्ख — धा. उ. स. पिक्खि
२१४ ४ बथ्थैं — बथ्थै
२१४ ५ परनि राइं — परनि राइ
२१४ १० कवित्तनो — कवित्तनी
२१४ २० शंघ स — संशोधित
२१४ २२ मिटयौग — मिटयौ ।
२१४ २२ र. अ. उ. । — र. अ. ण ।
२१४ २३ दहनो — कहनो
२१४ २४ गटणो — गहणो
२१४ २५ 'गय नहीं है — 'गय' नहीं है
२१५ ३ म. उ. स. सिनद — म. उ. स. सितभ
२१५ ६ म. उ. सरे. परनमं — म. उ. स. पूर्व रेन
२१५ ७ (=जोगिनि > — (=जोगिनि)
२१५ ७ (जौगिणि—धा.), ना. पुरपति, — (जोगिणि—धा.) पुरपति, ना.

२१५ ८ जुगिनि पति मर — जुग्गिनि पति मग
२१५ ८ मो ना. धारसौ — मो. ना. धारस
२१५ १६ बर्ले — बर्ल[१]
२१५ १९ परी[३] — परी[२]
२१६ ४ ठुठक — ठठुक
२१६ ३२ उ. स. कटिक ति — [न होना चाहिए]
२२५ ३ दीठि — दीठि[६]
२२५ ९ गया — गयौ
२२५ १२ ना. मा. उ. स — ना. म. उ. स.
२२५ १६ उप्परि — उप्परि[२]
२२६ १० फ. विटिंछा जषवर — फ. विंटिया अ षप्पर
२२६ १२ जय सिंध — जय सिंघ
२२६ २७ म. न रिंदवर — म. नरिंद वर
२२६ २८ धा. निहइ — धा. निडह
२२६ २९ ना. द झुझि गय — ना. झुज्झि गय
२२६ ३२ पंग मय — पंग भय
२२८ २२ <त्रुड् — <त्रुद्
२२९ १६ धा अप्पही — धा. अप्पहो
२२९ १६ म. उ. स. — म. उ. स.
२२९ २२ बह मारे — बइ मारे
२३० १२ मो. रफि — मो. रंकि
२३१ ६ स्वर्ग क — स्वर्ग की
२३१ २० दीनु (> दीनत) — दीनु (< दीनउ)
२३१ २३ [वहाइय : ३. धा. कब्बरिउ ।]
२३१ ३५ < स्मरन् — < स्मृ
२३१ ३६ < अप्सरा — < अप्सरस्=अप्सरा
२३२ अंतिम उसुकल — उ. सुक्कल
२३३ ११ बन(<छत पति परि। — बन (<छत) पति परि
२३४ २० अ.फ.जसर्दानि न भयउ — अ.फ. जसद्दानि न भउ
२३५ २ अमग्ग — अमग्ग
२३५ २ < वल्भ् — वल्
२३५ १२ उस. गंटि — उ. स. गंटि
२३५ १३ विट<वेष्ठित — विट<वेष्ट्य् —वेष्टन करना
२३५ ३० राइरूप — राइ रूप
२३६ ६ जन (वज-फ.) — जब (वज-फ.)
२३७ १ लुक्किग — लुक्किग[४]
२३७ २२ अंतावलि — अंतावलि
२३७ २९ धन — घन
२३७ ३१ धुन्य — धुन्यौ
२३८ ९ सुमेल — सुमेल
२३८ १२ ढिल्लीपरहि — ढिल्लीय रहि
२३८ १५ घर — धर
२३९ १३ रधि (=रधइ) — मो. रधि (=रधइ)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३९	१९	टट्टुर	टट्टर
२४०	३	निट्ठुर	निठ्ठुर
२४०	६	पचीय	पचाय
२४०	१४	घुर	पुर
२४०	१८	मूरु	मूरु
२४०	१९	प्रगटत	प्रगटित
२४०	२४	राजाद्युति	राजन द्युति
२४२	४	सव	सय
२४३	४	फ. म. ति मनह	म. ति मनह
२४३	३०	<पक्षी	<पक्षिन्
२४५	११	ना. विराजइ	विराजहि
२४५	२८	छै	है
२४५	३३	ना. अंधौ	ना. अंधौ भूत
२४५	३४	१२,१२०	१२,६२०
२४६	९	सा	सा[3]
२४६	२५	अ. फ. बकल	अ.फ. बकलया। २. धा.
२४६	३०	पश्यामि ते	पश्यामि ते[4]
२४८	१८	मुगता[3] मुक्तानि	मुगता मुक्तानि[3]
२४८	२९	धा. पत्ते, पत्त	धा. पत्तेपत्त
२४८	३०	ग्रेह। २. धा मुगतान	म. ग्रेह। २. धा. मुगता
२४९	१०	सज्ज	सज्जा
२४९	अंतिम	निध्ध	निध्ध
२५०	१८	म. वारणोच	म. वारणो च
२५०	२३	धुब्बारया	उब्बारया
२५२	१७	३.	४.
२५२	१२	कलह कियउ	अ. कलह कियउ
२५२	अंतिम	फ.धा. यामिनि	धा. यामिनि
२५३	३	जानहि*[3]	जानहि*[2]
२५३	४	वरि	वरि[4]
२५३	८	काभदेव	कामदेव
२५३	११	धा. घर,	धा. घर।
२५३	१९	त्रिवस्य कनइरु	त्रिवस्य करु
२५४	९	४. धा. मोह्यो	४. मो. मोहुं (=मोहउ), धा. मोह्यो
२५४	२१	अ. जिहि	अ. फ. जिहि
२५४	२३	मलयौ	चलयौ
२५४	२७	'समौंशे'	'समौ'
२५५	१५	झल (झकोरे) रहा खा है	झल (झकोरे खा रहा) है
२५५	३२	फ सि	फ. सिध
२५६	१५	जंघनं	जंघनं[?]
२५७	७	नासिका	नासिका
२५७	९	अवीन[2]	अवन[2]
२५७	२८	(४) उसके	(३) उसके
२५८	८	निरस्म	निरस्त
२५८	१८	कसे	के से
२५८	२०	अवनो	अवणों
२५९	१	सुर्चम	सुर्चमरे
२५९	२	यों संयोग	मो. संयोग
२५९	२	(धा. पाठ)	[न होना चाहिए]
२५९	८	लध्धनं	लधधनं
२५९	२३	धा. परसत	२. धा. परसत
२५९	३७	कुंद	कुंड
२६०	१९	अ. बंकसी	अ. फ. बंकसी
२६०	२८	ध.	फ.
२६०	२९	अलिलस	अलिलस
२६०	३७	तस	तसु
२६०	३९	सीसयौ-फ.	सीसयौ-फ.
२६१	४	अविलोबि	अविलंबि
२६१	११	संच्छयौ	सुच्छयौ
२६१	१५	थयो	संथयउ
२६१	१६	सठिल्लया	सुठिल्लया
२६२	८	अ मुग्गवे	अ. मुग्गवे, फ. मुग्गथे
२६३	९	रा.	शा.
२६४	११-१२	पयलग्गि,	पय लग्गिय,
२६४	२०	रेनु	रेनु[2]
२६४	२१	आभरनेन	आभरनेन[4]
२६४	२७	लु०	तुल०
२६४	३२	सा.	स.
२६५	३	कहिय	कहिय[4]
२६६	११	आवलि*[2]	आउरि*[2]
२६६	२५	आउरि<अवली	आउरि<आवलि=अवली
२६६	३०	मीर°	मीर°
२६७	२९	< असंभाव्य	असंभूत ?
२६८	१३	धा. कह	धा. कहै
२६९	६	निसि	स. निसि
२६९	७	दिन सो	धा. दिन सो
२६९	८	१. मो.	१. धा. मो
२६९	११	१. मो धा. घर,	१. मो घर, धा.
२६९	१४	१. धा. दसु	१. धा. जसु
२६९	१४	२. अ फ. हुस जस;	२. धा.अ.फ. हंस जसु
२६९	१४-१५	म. हंस तउ	मो. हंस तइ
२७०	९	सुवनइ	सुवतइ
२७०	१८	उप्पयउ*	उप्पइउ*[4]
२७१	६	जप	जंपे
२७१	९	दुष्ठ	दुष्ट

२७१	२३	अति	अति
२७१	२७	किय	किय[५]
२७२	७	१. सुनिवि	१. धा. सुनिवि
२७२	८	धा. स. मुलिय	ना. धा. सा. मुलिय
२७५	८	मो. संमुह	मो. संमह
२७६	१३	सरताण	सुरताण
२७७	१७	३. पान	३. ५. षान
२७७	२६	फ. बंधिवि	अ. बंधिवि
२७७	अंतिम	तिहि	तिह
२७९	७	सन्निवार	सन्निवार[१]
२८०	२४	मुकवि	सुकवि
२८२	२९	(१८)	३(१८)
२८४	८	लग्गौ	लग्गं
२८४	१२	अ. फ. तुट्टे	अ. फ. तुट्टै
२८४	३३	= चढ़े	= चढे
२८६	९	उवलय्	उवल
२८७	१	मो. धा. स.	४. मो. धा. स.
२८७	२१	बाहत	बाहत[३]
२८८	१९	परे	पर[६]
२८९	१४	जंप	जंपै
२८९	१८	प्रब्बहु	गब्बहु
२९१	१	(परिगु–फ.)	(परिगु–फ.)
२९१	५	मो. गजनेव रह	३. मो. गजनेव रह
२९१	५	अ. फ.	अ. फ. ना.
२९२	७	मुख्य <मुख्य	मुख्य <मुख्य
२९२	९	पीर	पीर[४]
२९३	१६	'गयो वा 'गयो'	'गयो' वा 'गयौ'
२९४	१४	३.	२.
२९४	१९	मो. बापंडधन, पाषंड धन	मो. बापड धन, अ. पापड धन
२९४	२१	१. रहि	१. मो. रहि
२९५	३	गुदरह*	गुदरह*[३]
२९५	८	[सुल्तान]	[सुल्तान के
२९५	२५	धा. पुनि	धा. मुनि
२९५	३१	परद्दार	परदार
२९६	२०	अंप्पणी	अप्पणी
२९७	२०	सवे	सवंगे
२९७	२७	धा.	धा.
२९८	६	अरुपान	अरुणंन[४]
२९८	१८	पहुर	पहुर
२९९	३	(१४)	[५](१४)
२९९	११	रुक्कयउ*	रुक्कयउ*[१]
३००	११	फरि	करि
३००	१४	धा. नजरि	धा. निजरि.
३००	१७	मानहु	सोभ मानहु
३००	२०	अ. उठसु	अ. उससु
३००	२९	तुरियनहि	तुरिय नहि
३००	३४	अ. धुम दनुज	अ. धुम दनुज
३०१	२	सउय	सउयो
३०१	५	सदेस	सुदेश
३०१	६	सरंग	सुरंग
३०१	२५	मै	दै
३०१	२६	सषान	सुषान
३०१	२८	उद्+आ.सु	उद्+आसयु
३०२	२५	रषि	रषि
३०२	२९	तेहि	तेहि३
३०३	३४	पारले	पाले
३०४	२२	गाहल	गाल
३०४	अंतिम	वर+अना	वर+अङ्गना
३०५	११	इम अपे स	इमि अप्पे सु
३०५	अंतिम	वांन	बांन
३०६	११	=बहराग	=बहराग
३०६	१३	ना. दुह	ना. दुह
३०७	३	पुछ्छयह	पुछ्छियह
३०७	११	तप	तप
३०७	११	जाय (<जाय)	जाप (<जाय)
३०९	१७	मिलत न,	मिलत न,
३११	५	किया	कियो
३११	२८	करिवौं–फ.	परिवौं–फ.
३१२	२९	सहा	सहो
३१३	४	२. फ. छोर	२. फ. छोर
३१४	१०	परिस्थितियौं	परिस्थितियों
३१५	११	धा. संमरे रा	धा. संमरे राह
३१६	३०	२. म धुनिहि न	२. मो. धुनिहि
३१६	३१	ना. नितसंभ	ना. मितसंभ
३१७	२०	तमने	तुमने
३१७	२५	मो. सभित	मो. सुभित
३१७	२८	अबोधन	प्रबोधन
३१९	७,८	पिल्ल	पिल्लै
३१९	९	तुसह	तुसह
३२०	७	अ. यति	अ. इयति
३२०	अंतिम		[न होनी चाहिए]